Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक : अर्चना वर्मा | बलवन्त कौर

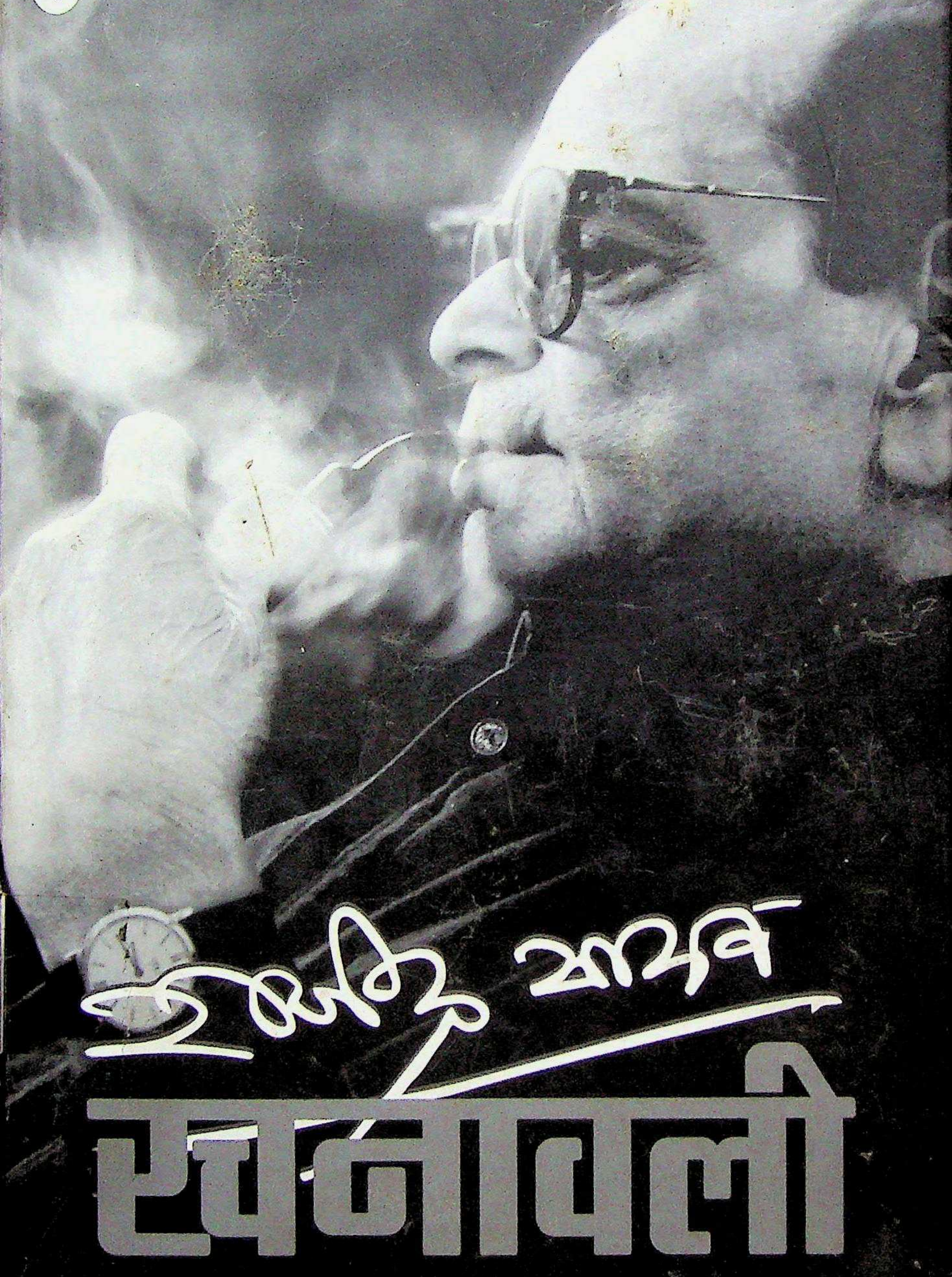

रचनावली

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

162112

राजेन्द्र यादव आज़ाद हिन्दुस्तान की दहलीज़ पर तैयार खड़ी नौजवान पीढ़ी के उस समुदाय के सदस्य हैं जिसकी मानसिकता 20वीं सदी के तीसरे-चौथे-पाँचवें दशक में विश्वव्यापी निराशा और मोहभंग में संरचित हुई है। दहलीज़ पर खड़ी आज़ाद, नौजवान पीढ़ी के इस समुदाय के लिए विचार, दर्शन, रणनीति, भविष्य की संरचना, आगामी का नक़्शा—सबकुछ एक भिन्न विवेक और नए तर्क के सहारे गढ़ा जाना है। उसकी मंशा में नई शुरुआत अतीत के साथ सम्पूर्ण विच्छेद से होनी है।

राजेन्द्र यादव के रचनात्मक उपक्रम की अन्तर्वस्तु यही विचार है जो नई दुनिया की रचना का मूलाधार है। यह 'कैंड़े' के आदमी का काम है; गुर्दा चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो यह एक विरल पराक्रम है। अपनी पीढ़ी के रचनाकारों में राजेन्द्र यादव विशेषत: अपने विचार को उसकी तार्किक संगति की आख़िरी हद तक ले जा सकने की क्षमता से लैस दिखाई देते हैं।

उनका आत्म-कथ्यात्मक लेखन इस बात की गवाही देता है कि उनके स्वत्व या निजत्व और व्यक्तित्व की गढ़न्त में उनके इस विचार की भूमिका बुनियादी है। इसलिए रचनावली के 9, 10, 11 तथा 12वें खंड मुख्यत: उनके आत्मकथ्य, व्यक्तिगत डायरियों तथा पत्रों का कोलाज़ हैं। ये चारों खंड राजेन्द्र जी की उस अन्तरंग यात्रा के गवाह हैं जिससे गुज़रकर वह अपने व्यक्तित्व और कृतित्व की वह पहचान हासिल कर सके जिसने उन्हें 'राजेन्द्र यादव' बनाया।

Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेन्द्र यादव रचनावली

खंड-12

डायरी : II

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेन्द्र यादव रचनावली

12

डायरी : II

सम्पादक

अर्चना वर्मा
बलवन्त कौर

162112
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
081,VER-R
162112

राधाकृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
081
वर्मा-रा

ISBN : 978-81-8361-672-0

राजेन्द्र यादव रचनावली-12

© रचना यादव

पहला संस्करण : 2015

मूल्य : ₹ 15000
[पन्द्रह खंडों का सम्पूर्ण सेट]

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002

शाखाएँ : अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800 006
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001
36 ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700 017

वेबसाइट : www.radhakrishnaprakashan.com
ई-मेल : info@radhakrishnaprakashan.com

मुद्रक : बी.के. ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

RAJENDRA YADAV RACHANAVALI (Vol. 12)
Edited by Archana Verma, Balwant Kaur

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश की फोटोकापी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुन:प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

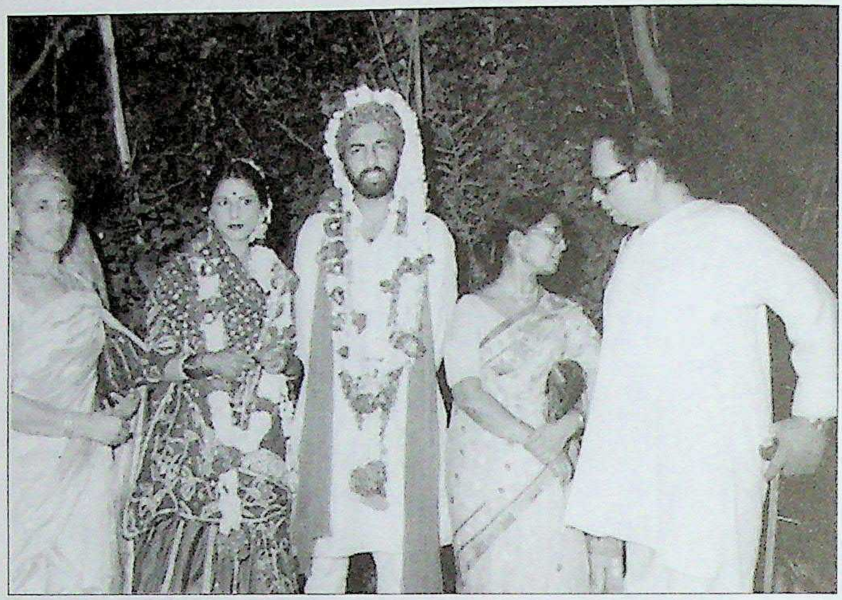

बेटी रचना यादव तथा दामाद दिनेश खन्ना के विवाह के समय

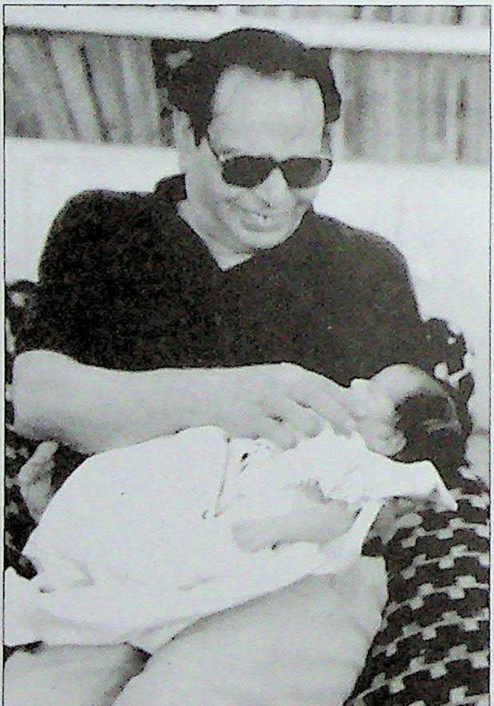

नातिन मायरा के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहन सुमन यादव के साथ

बहन शालिनी यादव के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

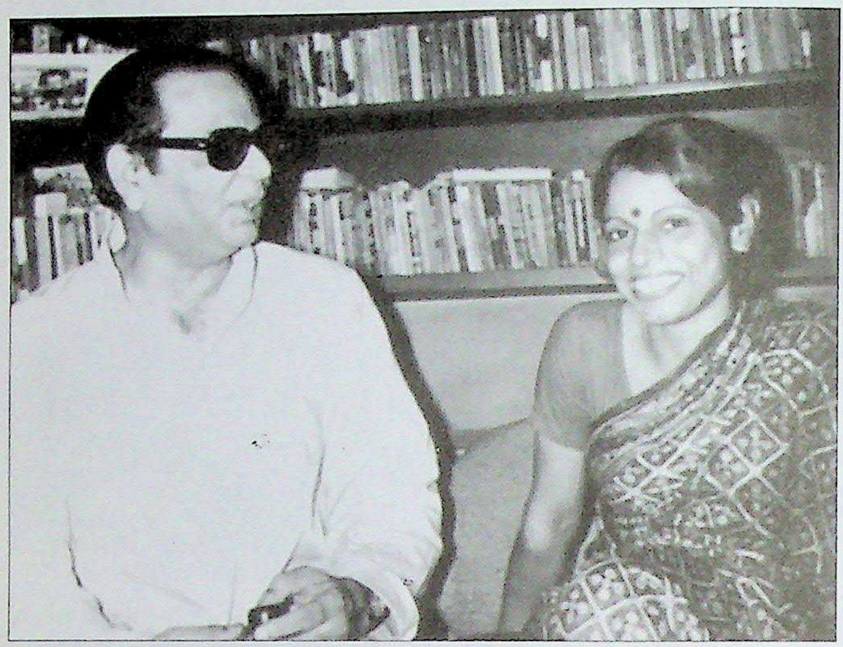

बहन नलिनी यादव के साथ

नातिन मायरा और माही के साथ अपने जन्मदिन के मौके पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायरी

1 जनवरी, 1980 — 23 जनवरी, 2012

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1.1.80

आज साल का पहला दिन है। अभी तक तो कुछ भी ऐसा नहीं हुआ है जिसे व्यक्त कर सकूँ। कल शाम को मैं, मलिक साहब, अजित और शानी यहीं दफ़्तर में बैठे थे। इरादा जल्दी उठने का था, लेकिन बातें कुछ ऐसी होती रहीं कि दस बज गए। पहले केसर-कस्तूरी चली, फिर थोड़ी-सी रम। मैं और मलिक साहब अजित के स्कूटर पर ही गए। बाद में अकेले खाना खाकर टीवी देखते रहे। नींद बहुत अच्छी नहीं आई। अजीब सपना दिखाई दिया : मैं, शानी और एक कोई और साहब (शायद मलिक साहब) एक गली में जा रहे हैं। गली एक बहुत रोशनीवाली दुकान पर खत्म होती है। दुकान भी अजीब है, आधी ऊँचाई से दुकान है, नीचे घर का रास्ता है, जैसे वहाँ कुछ होता है। हम लोग उससे पन्द्रह-बीस क़दम पहले ही हैं कि पीछे आते शानी की पीठ में 'खच' से आकर कोई चीज़ घुसती है। वह निकालता है—पतले फलवाली लम्बी छुरी, खून में तर-बतर। छुरी को हम सब देखते हैं फिर पीछे देखते हैं, हल्की दाढ़ीवाले दो लम्बे-चौड़े मुसलमान सफ़ेद कमीज़नुमा कुर्ते और तंग मोहरी के पाजामे, अपने निशाने के कमाल पर खुश—शानी सीधा वहाँ चला जाता है, दबे और सख़्त लहजे में बोलता है : 'हरामज़ादो, मेरा नाम गुलशेर खाँ है।' कहकर धीर भाव से लौट आता है। मेरे हाथ में खून से सनी छुरी है। शानी की पीठ का लाल धब्बा बड़ा होता जाता है। जल्दी-जल्दी हम लोग आगे बढ़ते हैं। वह खूब रोशनीवाला मकान, जिसमें सीढ़ियाँ उतरकर नीचे जाना होता है, नाहरा का है। उपचार होता है और उसे लिटाकर एक सफ़ेद चादर उसके ऊपर डाल दी जाती है...सपना इतना ही है। मगर दूर खड़े हुए लम्बे-चौड़े शरीर और खसखसी दाढ़ीवाले मुसलमान, गली, छुरी के लम्बे फल पर लगा खून, शानी की पीठ का सुर्ख धब्बा—सब मुझे बहुत साफ़ दिखते रहे। क्या अर्थ हो सकता है इस सपने का, मैं तब से यही सोच रहा हूँ।...आजकल सुबह साढ़े पाँच पर उठकर मैं दुबारा सो जाता हूँ। साढ़े सात पर उठा। ठंड इतनी थी कि कुछ भी करने की इच्छा नहीं हुई। 'अक्षर' आ गया। दिमाग़ पर बोझ है कि अपने-आपसे वायदा किया था, आज से कुछ नया लिखूँगा। अभी तो मन में कुछ भी नहीं है। एक बहाना और है, परसों चुनाव हैं। वे समाप्त हो जाएँ तभी कुछ करेंगे। देखें, कौन-सी सरकार आती है! फिर रिजल्ट्स निकलेंगे। दस के बाद शायद जगत सिंह आए। आगरा भी जाना है। इस बार कुछ-न-कुछ फ़ैसला करना ही होगा। 'अक्षर' में कल नई कुर्सियाँ आ रही हैं। शायद जब से बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तब के बाद पहली बार फर्नीचर बदला जा रहा है। मीता का फ़ोन आया था, उसे बधाई दे दी है। दुबे आया—मेज़र।

10.1.80

इधर शानी ने अजीब रवैया अपनाया हुआ है। पहले इस बात को लेकर मैं योगेश से परेशान था, अब क़रीब-क़रीब वह जगह शानी ने ले ली है। सुबह उसे दफ़्तर आना होता है। 11-12 पर आकर वह इधर आ जाता है। क़रीब-क़रीब उसी समय मैं भी आता हूँ। अब सुबह से जो बैठना चालू होता है तो अन्त तक—छह-सात बजे तक। यानी मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इस बात को वह भी समझता है कि किसी की उपस्थिति में मैं कोई काम नहीं कर सकता। वीना भन्नाती है, कर्ण सिंह सारे दिन चाय बनाता है। मैं जानता हूँ, इस बात को वह खुद महसूस करता है, मगर बाकी सबसे मिलना-जुलना चूँकि शाम को होता है इसलिए तब तक तो बैठना ही है। एक बार जाकर दुबारा घर से लौटना कितना मुश्किल है, यह मैं भी जानता हूँ। मगर उससे मेरी समस्या हल नहीं होती। मैं जैसे सिर्फ़ एंटरटेन करने की चीज़ रह गया हूँ। एकाध बार इशारे से कहा भी। अब शायद सीधे ही कहना होगा। हम लोग अब हर समय 'आगे क्या होगा' को लेकर ही आपस में सिर फोड़ते रहते हैं। इधर पिछले दिनों लगातार चुनाव की उत्तेजना बनी रही। कांग्रेस (आई) ने बहुत पैसा ख़र्च किया, फिर भी उम्मीद थी कि जनता के काफ़ी लोग आएँगे। मगर जो नतीजा आया, वह स्तब्ध कर देनेवाला था। इन्दिरा कांग्रेस ने जैसे सारे देश को बुहार दिया। न केवल इन्दिरा ने दो जगहों से अभूतपूर्व सफ़लता पाई, बल्कि संजय, बंसीलाल, विद्याचरण शुक्ल—सभी भारी बहुमत से जीते। 524 के सदन में 351 सीटें लेकर, डी.एम.के. को मिलाकर दो-तिहाई बहुमत होना काफ़ी खतरनाक हो उठा है। यह सही है कि सारा देश एक शक्तिशाली केन्द्र, कानून, सुरक्षा और अनुशासन के लिए तड़प रहा था और वर्तमान स्थिति में वह केवल इन्दिरा ही दे सकती थी, मगर अब तो वह एकच्छत्र, निरंकुश महारानी है। वे लोग सारे कानून, विधान और नियम बना सकते हैं। शायद यह स्थिति तो एमरजेन्सी से पहले भी नहीं थी। पता नहीं, राजनीतिक लोग पिछली भूलों और गलतियों से कोई सबक़ लेते हैं या नहीं—मगर मुझे तो लगता है कि परिस्थितियों का दबाव और एडवांटेज आदमी को प्राय: एक ही ढाँचे में व्यवहार करने को मजबूर करता है। पिछले दिनों इन्दिरा और संजय का जो अपमान हुआ है, उसे क्या दोनों ऐसी आसानी से भूल जाएँगे ? इस चुनाव की सारी सामग्री के नीचे श्रीकान्त का नाम जाता रहा है। अनुमान है कि श्रीकान्त और खुशवन्त अपनी एक निष्ठ फ़रमाबरदारी के लिए कोई न कोई पद पाएँगे ही। बहरहाल, एक व्यक्ति में इस प्रकार केन्द्रित सत्ता का शेष लोगों से सिर्फ़ एक ही सम्बन्ध बनाया जा सकता है, कृपा और भय—अगर उनकी कृपा न रही तो ? हर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति उन्हें ही खुश करेगा। मुझे लगता है कि बहुत जल्दी ही हम लोग पुराने आतंक के दिनों में लौटेंगे—इस बार उन सावधानियों के साथ जो पिछले दिनों नहीं ली गई थीं। फिर कभी-कभी सोचता हूँ कि आम आदमी को अगर सुरक्षा और सुविधाएँ मिलें तो केवल कुछ तथाकथित बुद्धिजीवियों के एक काल्पनिक भय के लिए (हो सकता है, वह सच ही हो) क्या उनकी कुरबानी दी जा सकती है? फिर कौन से बुद्धिजीवी? जो ज़रा से टुकड़ों और कृपादृष्टि के लिए हर बार करवटें बदलते रहे हैं? क्या करेंगे अब राजेन्द्र अवस्थी, भारती और नन्दन? हिमांशु जोशी और लक्ष्मीनारायण लाल? कुत्तों की तरह अब इनके तलुए चाटेंगे। नहीं, हमने यह नहीं कहा था, नहीं, हमारा यह मतलब नहीं था। उस वक़्त भी हमने आपकी प्रशंसा की थी। यही अब रह गया है। कितना दिलचस्प है इन चमगादड़ों और गिरगिटों को रंग बदलते देखना...सत्ता से सुविधाएँ और सम्मान चाहिए तो लातें तो बर्दाश्त करनी ही होंगी। बेशर्मों और रंडियों की तरह कहना होगा ही कि हमारी नौकरी ही ऐसी है जिसमें हमें महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को 'कवर' करना होता है। उनकी न्यूज़ वैल्यूज़ है। किराए के वकीलों में और इनमें कहाँ फ़र्क़ रह गया है, हत्यारा मुवक्किल है तो उसे निर्दोष सिद्ध कर रहे हैं, बलात्कारी को बचा रहे हैं...धिक्कार है! मगर मुझे बेहद खुशी है कि किस तरह एक्सपोज़ हो रहे हैं...

ये शायद ऐसे दिन हैं जब सचमुच मन में लिखने को कुछ नहीं है। कुछ कुलबुलाता और कचोटता भी नहीं है। एकदम खाली और शून्य—पहले चुनाव थे, फिर भयानक ठंड पड़ी और अब नई सरकार बन जाए। क्या होगा मेरा...इन दिनों तो कुछ पढ़ा भी नहीं है।

21.1.80

लगता है, बीच-बीच में ऐसे फ़ेज़ेज़ या पीरियड आते हैं, जब मैं मानसिक रूप से एकदम ब्लैंक हो जाता हूँ। पहले मैं ध्यान नहीं देता था, लेकिन जैसा कोरा महसूस कर रहा हूँ उस पर ध्यान दिया तो लगा कि ऐसे दिन पहले भी कई बार आए हैं। इनकी साइकिल क्या है, अभी पकड़ नहीं पाया। इन दिनों न तो वैचारिक रूप से मन में कुछ होता है, न रचनात्मक रूप से। जैसे कुछ होता ही नहीं है। कन्नड़ में अनुवाद के लिए जब काफ़्का वाला लेख भेजने के लिए देखा तो आश्चर्य हुआ कि क्या इन स्तरों पर मैं ही सोचता रहा हूँ? वे दिन गुज़रे भी बहुत अर्सा नहीं गुज़रा जब काफ़्का के एक-एक पक्ष पर नई-नई बातें नहाते शेव करते आया करती थीं। कहानियाँ मँडराया करती थीं। अब कुछ भी नहीं है। जैसे रील टूट गई है और सफ़ेद स्क्रीन ही सामने है। कितने दिनों चलेगा यह फ़ेज़?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल बड़ा अजीब सपना देखा। चंडीगढ़ से लौटकर अजित जी के यहाँ गए। जैसे-तैसे कुरेदकर जब इस मुद्दे पर लाए कि क्यों स्नेह जी अलग रहने लगी हैं तो पैसे-टके को लेकर ऐसी हिसाबी-किताबी बातें आने लगीं कि मैं स्तब्ध रह गया। स्नेह जी इस तरह बोलती हैं? अजित से अपना सारा हिसाब माँगकर पैसे चाहती हैं। अलग ही रहेंगी। वह सब कुछ जो हुआ, बेहद शॉकिंग था। उससे भी भयानक शॉकिंग तब हुआ जब स्नेह जी ने सिगरेट निकालकर परम अभ्यस्तों की तरह पीनी शुरू कर दी। इतनी शालीन, सौम्य, स्निग्ध स्नेह जी अब यह कह रही हैं। स्वतंत्रता इनके लिए सिगरेट-चाय पीना है। मैं उनके, मन्नू के साथ, सरयू या सलमा भाभी के साथ ये सब जोड़ ही नहीं पाता। संस्कार ही सही, मगर परम धक्का लगा। मुझे लगा कि उनकी आदर्श हो गई हैं प्रभा, अर्चना, कृष्णा जी और जिस टूटते धरातल पर उतरकर अर्चना ने के.जी. से हिसाब किया, कुछ वही यह भी करना चाहती हैं। परेशान-सा घर आया। और रात को सपना देखा : एक एम्बैसेडर कार में हम कुछ लोग जा रहे हैं। पीछे मैं, मन्नू और एक कोई और बैठे हैं। सामने कोई ड्राइव कर रहा है, शायद आनन्द गर्ग हैं। बगल में बैठी है मृदुला। गाड़ी घनी हरियाली झाड़ियों के जंगल से सँकरी-सी सड़क पर पहाड़ी जैसे चढ़ाव-उतार पर आड़ी-टेढ़ी जा रही है। शायद रात है। अचानक मृदुला वाला दरवाज़ा खुलता है—खुला रहता है और हम देखते हैं कि मृदुला नहीं है। गाड़ी चल रही है। मैं अचानक पूछता हूँ : "मृदुला जी कहाँ हैं?" कोई नहीं सुनता। एकदम मैं देखता हूँ मृदुला पीछेवाले दरवाज़े की खिड़की को हाथों से पकड़े, आगेवाले दरवाज़े पर पाँव टिकाए लटकी हुई लेटी हैं—कार के समानान्तर बाहर। यही नहीं जैसे किसी दौरे के प्रभाव में खूब झूम रही हैं। अब चलती गाड़ी पर लम्बाई में बगल में लटकी, जान-बूझकर हिचकोले खाती वह बेहोश-सी हैं। झाड़ियाँ, हरी डालियाँ उससे उलझती-टकराती हैं, मगर उसे चिन्ता नहीं है। ज़रा हाथ या पाँव की पकड़ छूटने पर वह गिर भी सकती है। आनन्द उसी व्यस्त भाव से गाड़ी चलाते हुए कहते हैं : उसे लटके रहने दीजिए, उसमें ज़बर्दस्त 'डैथ-विश' है—पता नहीं क्यों, यह सपना मुझे सुबह से परेशान किए है। स्नेह जी में 'डैथ-विश' या आत्म-नाश की वृत्ति देखकर यह भाव आया, या मृदुला के सिगरेट पीने से उनका सिगरेट पीना जुड़ा—चलती गाड़ी में इस खतरनाक ढंग से लटकना वही प्रतीकात्मक हो गया—कुछ भी कह पाना बड़ा कठिन है। मगर स्नेह जी में वह आत्मनाश की प्रवृत्ति है, यह मुझे कहीं बहुत समान बात लगती है...मगर स्नेह जी के साथ मृदुला कहाँ आ जुड़ी?

28.1.80

अभी-अभी किशोर साहू के दो उपन्यास पढ़े, 'कुछ मोती कुछ सीप' और 'पर्दे के पीछे'। पहला तो बकवास है और किसी फ़िल्म के लिए लिखा गया है। इसलिए उसमें सारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़िल्मी मसाले हैं। फ़िल्मी मसाले दूसरे में भी हैं, मगर बीच-बीच में कुछ संवाद कम्बख्त ने बेहद ख़ूबसूरत लिखे हैं। इसमें संयोग हैं, घटनाएँ, दुर्घटनाएँ हैं, काश्मीर की ख़ूबसूरती और लेह की भाग-दौड़ है, आगज़नी और आत्महत्या की कोशिशें हैं, ईर्ष्या और खलनायकत्व—यानी एक हिन्दी फ़िल्म में जो कुछ होता है, वह सभी है। नैनतारा, जो बाद में तारा चौधरी नाम से फ़िल्म एक्ट्रैस बनती है, रात में बम्बई के समुद्र में आत्महत्या करने जाती है तो कैलाश सिन्हा उसे बचा लेता है। बाद में धोबी की लड़की को उसका कुर्ता पहने देखकर पता लगता है। इसी तरह अन्त में श्याम के मुँह से अँगूठी की डिबिया की बात सुनकर तारा जीवन से शादी करने का निर्णय बदल देती है और बम्बई भागती है। कैलाश बॉम्बे स्टूडियो की आग के समुद्र में कूदकर मेहतरानी के बच्चे गगन को बचाता है और अपनी 'ज्वालामुखी' फ़िल्म में झोंक देता है। या जिस तरह 'मिट्टी' नाम की फ़िल्म बनती है और बड़े बजट या स्टारकास्ट वाली फ़िल्म रेशमी रूमाल के मुकाबले सफल होती है—ये सारी अविश्वसनीय घटनाएँ हैं—मगर बीच-बीच के अन्तर्द्वन्द्व और कुछ प्रसंग बड़ी गहरी अन्तर्दृष्टि या अनुभव की विश्वसनीयता से लिखे गए हैं, जैसे प्रेमी कैलाश और कलाकार कैलाश की भीतरी कशमकश अपनी निर्मिति तारा चौधरी को लेकर उसका भावनात्मक संघर्ष, रतिका कैलाश को खींचकर जुहू बीच पर रात बिताने का दृश्य, सलमा का कैलाश को सिड्यूस करने और रात को साथ लिटाकर उत्तेजित करने का प्रयास, कैलाश का तारा के साथ नाचने का अनुभव या आग में अपनी फ़िल्म 'ज्वालामुखी' को बचाने का उन्माद, या तारा का काश्मीर में जीवन के प्रति इच्छा के विरुद्ध खिंचते चले जाना—विवाह के किनारे जा पहुँचना...ये या ऐसे ही बीसियों हिस्से हैं जहाँ लगता है कि किशोर साहू में कलाकार की निगाह और स्थिति को जीने की क्षमता तो बहुत ज़बर्दस्त है। काश फ़िल्मी लॉजिक उस पर इतनी हावी न होती...कुछ फ़िल्मी फॉर्मूलों को छोड़कर मुझे उपन्यास अच्छा ही लगा। सलमा, फ्रांसिस, या रहमान के चरित्र स्टॉक हैं और अच्छे पात्रों के आदर्श फ़िल्मी नमूने हैं। मगर सब मिलाकर फ़िल्मी माहौल सजीव ढंग से पकड़ा गया है। वहाँ की सफलताएँ, असफलताएँ, ईर्ष्याएँ, शोषण, पार्टियाँ और मनोरंजन, काम के प्रति निष्ठा और जद्दोजहद सब कुछ हैं। बड़ा उपन्यास है, इसलिए फ़ालतू चरित्र और स्थितियाँ भी कम नहीं हैं।

13.2.80

कल अमृता प्रीतम से मिलकर आया और तभी से सोच रहा हूँ कि उस औरत ने ऐसा व्यवहार क्यों किया? वह तो हमेशा ही मुझसे ऐसे प्यार और अपनेपन से मिलती थी। हुआ यह कि शानी की टाइम्स ऑफ़ इंडिया में नौकरी 8 को खत्म हुई तो मैंने इन्दिरा गांधी को ज्ञापन देनेवाले काम को फिर से उठाया। उनसे टाइम लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए उषा भगत को फ़ोन किया। उषा श्रीराम सेंटर में आ गईं। वहाँ गंगा प्रसाद विमल और कृष्णा सोबती मिल गए। वहीं सारी बातें हुईं। इन लोगों ने कहा कि अमृता प्रीतम उनके बहुत निकट हैं, पिछले दिनों फ़िल्म पर भी काम किया था, अगर वे साथ हों तो बात का प्रभाव तत्काल ही पड़ेगा। मैंने तय किया कि जाकर खुद ही सारा काम कर आऊँगा। रात को फ़ोन किया साढ़े नौ पर तो पता चला दूसरे कमरे में इंटरव्यू दे रही हैं, आधा घंटे में करें। फिर किया तो अगले दिन ग्यारह-साढ़े ग्यारह का समय तय हुआ। उसी दिन शाम को मुझे शर्मा जी के यहाँ खाना खाने जाना था। वहाँ अरुणाचल के चीफ़ सेक्रेटरी गुप्ता जी आ रहे थे। रात को दस-ग्यारह बज गए तो सोचा, यहीं रह जाएँ, वर्ना ग्यारह बजे पहुँचो और सुबह फिर भागो। शर्मा जी ने सुबह वहाँ छोड़ दिया। वहीं लवलीन भी मिली, वह निकल रही थी। 'हलो-हलो' हुई। कैसी लगने लगी है। बैठे। बीच-बीच में उन्हें दरवाज़ा खोलने जाना पड़ता था। नौकर नहीं था। मैंने शायद ग़लती यह कर दी कि एकाधिक बार कहा कि मैं इस घर में पहली बार आ रहा हूँ। पिछली बार कमलेश्वर के साथ आया था। ख़ैर, शानी का केस समझाया। उनसे हस्ताक्षर और सलाह के लिए कहा। बार-बार जब उन्होंने कहा कि ''यादव, ये देखना पड़ेगा कि पीछे तो कोई बात नहीं है। वहाँ से क्यों हटे थे?'' मैंने कारण बताते हुए कहा कि वहाँ की गवर्नमेंट का लैटर है और उसका ज़िक्र वात्स्यायन जी ने भी किया है। उसमें वहाँ की सरकार की सारी स्थिति ही नहीं बताई गई है, शानी की तारीफ़ भी है। मगर वे यही कहती रहीं कि पता लगा लूँ। मुझे ग़ुस्सा आ गया। यह अपने ढंग से क्या बताएँगी? सुमन जी से कहेंगी, वह तो ठीक है, मगर एक सही आदर्श के लिए जिस पर पहले ही अनेक लोगों ने हस्ताक्षर कर रखे हैं, उन्हें क्या आपत्ति है? भीष्म, मैं, अश्क या और अनेक लोग बिना जाने-बूझे इसमें साथ हैं? मगर उन्होंने नहीं किए। मैंने कहा, छोड़िए, फिर कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। मुझे लगा, मेरा यहाँ आना ग़लत था। इस मूर्ख, आत्ममुग्ध और अहंकारी बुढ़िया से आगे कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। मैं इसके पास आनेवाला शायद आख़िरी व्यक्ति रहूँगा। दुनिया भर के लाभ, यश और प्रतिष्ठा, भौतिक सुविधाएँ इसे लेखन ने दी हैं और यह हिन्दी के प्रति ऐसा रवैया रखती है। एक आदमी मुसीबत में है और समझाती है कि वह अपने लिखने पर क्यों नहीं रहता? इस अन्धी को कैसे बताया जाए कि तेरी बकवास से तुझे इतनी रॉयल्टी मिल सकती है कि तू इस पाँच लाख के मकान में बैठकर प्राइम मिनिस्टर की तरह बोल सके, मगर सबके साथ तो ऐसा नहीं है। तू फ़िल्मी कहानियाँ लिख-लिखकर मशीन की तरह हर महीने दो किताब छपा सकती है, हर कोई शायद ऐसा न करना चाहे...और मैं व्यक्तिगत अपमान में भुनता और उसे गालियाँ देता, जूते खाया-सा चला आया। मैं खुद जाकर कहूँ और यह 'बिच' इस तरह का व्यवहार करे! यह लेखिका और कवयित्री बनती है और रूस, चैकोस्लोवाकिया में लेखकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर हुए अत्याचारों को लेकर दुनिया भर के वक्तव्य जारी करती है। और निर्मल की तरह अपने नाक के नीचे होनेवाली ज़्यादतियाँ इसे दिखाई नहीं देतीं। आज सात दिन पहले के इस अपमान का दंश उतना नुकीला नहीं रह गया है, उस दिन तो मैं भीतर से खौल रहा था।

कल शर्माजी रोडेसिया गए—वहाँ के चुनाव में प्रेक्षक होकर। इस बीच में लालानी इत्यादि के साथ दो-एक बार और 'अणुव्रत' को ज्ञानोदय जैसा बनाने की योजना पर बातें हुईं। आज शाम को सुरेश कोहली के यहाँ जाना है। इन दिनों मैं आइन रैंड का 'फाउंटेन हैड' पढ़ रहा हूँ। लेखिका उतनी हल्की नहीं है, जितनी समझकर मैंने पिछले बीस साल से उसे फेंका हुआ था। बातें तो नए ढंग से कहती ही है...

1.3.80

कल ही शानी को नियुक्ति-पत्र मिला है। वह 'भारतीय साहित्य' यानी साहित्य अकादेमी के हिन्दी त्रैमासिक का सम्पादक हो गया है। 8 फरवरी को उसकी टाइम्स से छुट्टी हुई और 29 फरवरी को नई नौकरी शुरू। इस बीच काफ़ी भाग-दौड़ करनी पड़ी। कभी सुमन जी, कभी केलकर, कभी नामवर सिंह और कभी कोई और। कुछ से मिलना, कुछ से बातें। जैनेन्द्र जी से भी मिले। सोमवार को इंटरव्यू था। मंगल को एक्ज़ीक्यूटिव काउंसिल ने कन्फ़र्म किया और शुक्र को नियुक्ति। 1100 से स्टार्ट है—सब मिलाकर 17-18 के बीच। वे लोग बेहद-बेहद खुश हैं। शानी को तो कल से पहले विश्वास ही नहीं था कि सब कुछ इतनी आसानी और बिना विघ्न के हो जाएगा। भाभी, सूफ़िया, शानी और आस-पास के जितने भी हैं, बेहद खुश हैं—बिना कहे यानी सारे-के-सारे मेरे प्रति कृतज्ञ हैं। सुमन जी से लेकर जो मिलता है, यही कहता है कि मेरे कारण हुआ है। मगर मैं भीतर से बेहद ठंडा हो आया हूँ। लगता ही नहीं कि मैंने कुछ किया है। सिर्फ़ एक निश्चिन्तता है कि चलो, हो गया। अच्छा हुआ। कार्य की सफलता और विजय का जैसा उल्लास होना चाहिए था—उसका कहीं पता नहीं है। क्या मैं शानी की सफलता से दुखी हूँ? उसने इंटरव्यू बहुत ही अच्छा दिया था। बातचीत में प्रभावित तो करता ही है। मगर भीतर टाइम्स में कुछ न कर पाने की अनुभूति इतनी तीव्र है कि इस विजय को खा गई है।...जिस दिन ई.सी. ने शानी की नियुक्ति को कन्फ़र्म किया उसी दिन उसने अपने घर दारू पर बुलाया। सुमन जी, मैं, मलिक साहब, त्यागी, श्याम व्यास और सुकुमार चटर्जी। मैंने देखा है कि त्यागी ऐसे माहौल में बहुत फिट नहीं हो पाता। बचकानी बातें करता है। ख़्वाजा डेढ़ पैग के बाद बहकने लगते हैं। कला या किसकी बात कर रहा था कि सुकुमार नाराज़ हो गया त्यागी से। बोला, त्यागी, बैठकर पीयो। आर्ट-वार्ट की बातें मत करो। कुछ तेज़ बातें जैसी भी हुई थीं और लगभग ऐसे ही ढंग से बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीं निर्मल वर्मा ने...अरविन्द ने अनन्तमूर्ति को अपने घर बुलाया था। निर्मल से पिछली बार झगड़ा हो गया था—तब देखा, उसके मन में कितना फ्रस्ट्रेशन है। इस बार भी उसने कुछ और बातों के सन्दर्भ में उसी तरह की बातें कीं। पीने के बाद उसकी सारी कुंठाएँ और घाव बोलने लगते हैं। अरविन्द का घर और बाहरी आदमी अनन्तमूर्ति न होता तो सुनाने का मन था। अगली बार उसने अगर यही सब किया तो मैं भी आक्रामक हो जाऊँगा, यह तय है। रात को एक बजे घर पहुँचा। इधर शानी के चक्कर में यह पीने-पिलाने का सिलसिला बहुत बढ़ गया था। पिछले तीन महीने में तो लगभग डेढ़ हफ़्ते में तीन-चार बार हो गया था। अब सोचता हूँ कि एकदम कम कर दूँगा। पिछले छह-आठ महीने से चूँकि हर दिन उसके सामने तलवार लटकी रहती थी, इसलिए उसे बुरा न लगे के चक्कर में मैं कुछ अतिरिक्त लिहाज़ बरतता था। आगे क्या होगा का भूत...और अब अचानक लगता है कि रीतकर फिर अपने लिखने की ओर लौटना है...यानी अपने छोड़े हुए युद्ध को वापस सँभालना है। यानी लिखने के आमने-सामने होने की नियति से न अब कोई बचाव रह गया है, न बहाना!...इधर नए साल से आलोचना और विचार लेख भी बन्द कर दिये हैं। सिर्फ़ इसलिए कि अपना रचनात्मक लेखन करना है। देखें, अब वह होता भी है या नहीं।

7.4.80

आजकल पिछले लगभग महीने भर से मेरा पेट ठीक साफ़ हो रहा है। यह मेरे लिए इतना बड़ा सुख है कि मैं इसे छत पर चढ़कर सभी को सुनाना चाहता हूँ। कारण शारीरिक हो सकते हैं मगर मैं अपनी मानसिक स्थिति से जोड़ने के लिए अभिशप्त हूँ। पिछले तीन-चार महीने से लग रहा है कि न कुछ लिखना है, न पढ़ना। मन में तय कर लिया है कि आलोचना या विचार का साहित्य लिखना नहीं है और रचनात्मक तभी लिखना है जब कोई भीतरी दबाव हो—यानी कोई अनुभव या बात पूरी तरह दिल-दिमाग़ पर छा जाए। यानी कुछ भी लिखना किसी विस्फोटक क्षण के लिए स्थगित है। रही पढ़नेवाली बात सो इधर 'फाउंटेन हैड' को छोड़कर कोई बड़ी चीज़ शुरू नहीं की। वही पत्र-पत्रिकाएँ। पिछले दिनों शानी का कॉज़ बनाकर उसमें जुटे रहे, फिर भी वह समाप्त हो गया। यानी दिमाग़ को खरोंचने और कुरेदनेवाली कोई भी चीज़ नहीं रह गई है। कोई भी ऐसा विचार नहीं है जो रात को सोते समय मन-मस्तिष्क पर छाया रहे। घर व्यवस्थित है और ख़र्चे की चिन्ता नहीं है। हज़ार रुपए महीने मैं प्राय: वहाँ देता हूँ—चार-पाँच सौ अपने सिगरेट-पान, आने-जाने में ख़र्च होते हैं। कहीं कोई दबाव नहीं है। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ जो अपने लिए कभी साक्षात् चुनौती लगती थीं—अब कभी स्वप्न में ही परेशान करती हैं। पत्रिका भी एक धुँधले दृश्य की तरह कभी कौंध जाती है। मानो एक खास क़िस्म का रैज़िग्नेशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि जो होगा सो ठीक है, अपनी तरफ़ से हाथ-पाँव मारना ग़लत है। यानी एक सन्तुष्ट क्लर्क या छोटे-मोटे अफ़सर की निर्द्वन्द्व ज़िन्दगी है। इसलिए स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ी नहीं है। पेट साफ़ रहता है—महीने में दो-एक बार दारू, पार्टी, सिनेमा या नाटक। इससे सुखी और निर्विघ्न जीवन की कब किसने कल्पना की थी ? यही तो हर हिन्दुस्तानी आदमी या पति का स्वप्न होता है। आखिर मन्नू के भीतर की पत्नी ने इस स्थिति में ला ही डाला। क्या उसे कभी ख़याल आता है कि मैंने यह 'सिद्धि' कितनी बड़ी क़ीमत देकर पाई है ? चले थे साले, लेखक, विचारक होने और बन गए औसत सुखी भारतीय गृहस्थ—क्या सारी ज़िन्दगी की यात्रा इसी बिन्दु तक पहुँचने के लिए थी ? शाम को घर पहुँच जाओ, टी.वी. देखो, दोस्तों से फ़ोन पर गप्प कर लो, थोड़ा उनकी समस्याओं में रुचि लो और फिर सो जाओ। सुबह पाँच-साढ़े पाँच पर जागो। चाय-अखबार पीयो, नहा-धोकर अक्षर...

26.4.80

पिछले आठ-दस दिनों से गला खराब है। बोल नहीं पाता। इधर तो कुछ ठीक हो रहा है। या तो पाइप के तम्बाकू में कभी-कभी ऐसी मिलावट आ जाती है कि गला जवाब दे देता है, या कोई और बात है। आजकल दो तम्बाकू मिलाकर पी रहा हूँ। एक तो डी-लक्स स्टोर वालों की अपनी है, दूसरी प्रिंस हैनरी। हो सकता है, वह तम्बाकू ही ग़लत हो। मज़ाक़ यह कि इसी बीच मुझे बम्बई जाना पड़ा। किशोर साहू से किताबों की बातें करने। फिर आगे फ़ुरसत नहीं दिखाई देती थी। उनका फ़ोन आया और वे चाहते थे कि मई में आऊँ। क्योंकि लौटने के टिकट इससे पहले के नहीं थे। मगर मैंने कह दिया कि प्लेन का करा दीजिए। यह भी बात हुई कि अगर राजधानी दादर रुकेगी तो वे स्टेशन आएँगे, वर्ना बम्बई सेंट्रल से मैं खुद ही आ जाऊँगा। उन्हें हार्ट-अटैक हो चुका था और आराम बताया गया। सो जाने से पहले आत्मकथा को दुबारा पढ़ा। नोट्स लिये। पहुँचे तो गला बेहद ख़राब। ख़ैर, उनके घर गए। प्रीति जी और किशोर ने बहुत ख़ातिर की। यह भी साफ़ ही था कि मैं उन्हीं के लिए गया था। 19 अप्रैल को बारह बजे के क़रीब पहुँचा था। बीयर पी। प्रीति जी ने साथ दिया। खाकर सो गए। शाम को बैठकर आत्मकथा के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से बातें हुईं। मैंने अपनी प्रतिक्रियाएँ, ख़ूबसूरत हिस्से सभी कुछ बताए। मेरा कहना था कि किशोर इस पर दुबारा मेहनत करें। और इसके लिए वे तैयार नहीं थे। अगले दिन फिर बैठे और प्रकाशन सम्बन्धी योजनाओं पर विचार हुआ। तय यही हुआ कि अक्षर या नेशनल तीन किताबें एक साथ छापे—आत्मकथा, परदे के पीछे उपन्यास और चुनी हुई कहानियों का संग्रह। इसमें किशोर तैयार हुए कि 25 से 30 हज़ार तक उधार दे देंगे और वह दो-ढाई साल में दे दिया जाएगा। उनका आग्रह था कि दो-दो हज़ार छपें। मैंने एक लाख का इन्वेस्टमेंट बताया। 'आत्मकथा' जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह की छपाना चाहते थे वह जाकर हो रही थी 500 पृष्ठों की। दो फ़ार्म तसवीरों के। यानी दाम किसी भी हालत में 100 रुपए से कम नहीं हो रहे थे। 22 अक्टूबर को उनका जन्मदिन है और मेरा कहना था कि ये पुस्तकें तभी आएँ। वे पन्द्रह हज़ार की कम-से-कम पब्लिसिटी चाहते थे। उन्होंने आश्वासन दिया कि हो सकता है, इस बीच मेरी फ़िल्म बनाने की कोई योजना चालू हो जाए और मैं विज्ञापन में मदद करूँ। वैसे भी बीस-पच्चीस हज़ार का विज्ञापन मैं फ़िल्मी मैगज़ीनों में कराऊँगा। उस दिन इतनी ही बातें हुईं। दोपहर को मंगला जी की गाड़ी आ गई—उनके यहाँ खाना खाने गए। मंगला जी से बहुत आत्मीयता से बातें हुईं। उन्हें मेरे और कमलेश्वर के सम्बन्धों की जानकारी नहीं थी इसलिए उन्होंने उससे पूछा होगा, मेरे आने के बारे में। मैंने उन्हें स्थिति समझाई। लौटते हुए माहिम पर पन्द्रह-बीस मिनट के लिए भीमसेन के यहाँ रुके। गप्पें लड़ाईं और फिर जैसा तय था बासु के पास। दोनों मियाँ-बीवी थे। टिंकू अहमदाबाद गई थी—बड़ी बहन के पास। भाभी जी दुबली हो गई थीं और विवेकानन्द या रामकृष्णाश्रम में दिलचस्पी लेने लगी थीं। फ़िल्म कोई नहीं है और बासु फुरसत में हैं। केवल दो हाथ में हैं। मैंने उन्हें याद दिलाया 'एक लेखक', 'एक निर्देशक' वाली पुस्तक के लिए। उन्होंने सत्यजित पर छपी किताब दिखाई। मन्नू की तीन कहानियाँ होंगी—'यही सच है', 'स्वामी' और 'एँखोने आकाश नाई'—इन तीनों की फ़िल्म स्क्रिप्ट। छापने के लिए पैसे देने की बात हुई। कम-से-कम पच्चीस। मगर पैसों की बात पर मुझे विश्वास नहीं है। बहुत पहले अपने फ्लैट के लिए भी बासु से पच्चीस की बात हुई थी। चुप्पी मार गए। हालाँकि फ्लैट को ठिकाने लगाने के लिए तीन-चार लाख का दफ़्तर बना दिया है। कभी मुसीबत में काम आएगा। कहने लगे बैंक से पैसे दिला दूँगा। ख़ैर, देखेंगे। यहाँ आकर गला क़रीब-क़रीब जवाब दे गया। बाद में जब उनकी एयरकंडीशंड कार में बैठे तो आवाज़ ही बन्द। स्कॉच का एक-एक पैग लिया। अमोल पालेकर ने नया फ्लैट लिया है। उसकी पार्टी थी। नौ के क़रीब गए। मैंने किशोर से कह दिया था कि खाना घर ही खाऊँगा। अगले दिन ट्रेन से सुबह छह बजे निकलना था। अमोल बहुत ही आत्मीयता और अच्छे ढंग से मिला। मन्नू के बारे में पूछता रहा। उत्पल दत्त मिले, कुमार साहनी से भी मुलाक़ात हुई। गले की वजह से बातें नहीं हो पाईं। मैं एक पैग लेकर ही उठ लिया। शायद अमोल को मेरा इस तरह आना बहुत अच्छा लगा। टैक्सी मँगा दी और बाहर तक छोड़ने आया। फिर किशोर के यहाँ। सुबह पाँच बजे निकल लेना था।

सुबह चार बजे ही आँख खुल गई। ख़ैर, तैयार हुए। पाँच बजे विक्रम आ गया और गाड़ी में ले चला स्टेशन। मैंने बीच में वापस जाने का आग्रह किया, मगर टिकट कन्फ़र्म नहीं था। जम्मू-तवी एक्सप्रेस से टिकट था। परिणाम यह हुआ कि प्लेटफ़ॉर्म, डिब्बे में चक्कर लगाकर लौट आए। टिकट कन्फ़र्म नहीं हुआ। वापस घर। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
R 081 वर्मा-रा

किशोर ने प्लेन के लिए प्रयास किया। चूँकि ये पैसे उन्हें ही देने थे, इसलिए वे बच रहे थे। क्योंकि ट्रेन का टिकट 144 का था और प्लेन का 512 का। मुझे 22 को हर हालत में पहुँचना है यह मैंने पहले ही बता रखा था। ख़ैर, अब कोई काम नहीं था और हम लोग बैठ गए। उस समय जो बातें हुईं वे सचमुच उपयोगी थीं। एक तो यह तय हुआ कि उधार की तरह नहीं, बल्कि अनुदान की तरह किशोर 20 हज़ार देंगे—हालाँकि मैं 25 की ही बात मन में सोचे हुए था। प्राथमिकता अक्षर की होगी। इसके अलावा और बहुत-सी कला साहित्य, उनके लेखन आत्मकथा की दिक़्क़तों की बातें हुईं। काफ़ी आत्मीयता और विस्तार से। भाभी जी को भी शामिल कर लिया। रोहित से भी मुलाक़ात हुई। मालूम हुआ दोनों ने शोलापुर डिस्टिलरी नाम से एक फैक्टरी लगाई है और उसे ठीक ही चला रहे हैं। एकाध साल में जम जाएगी तो फ़िल्मों में आएँगे। ख़ैर, उस दिन मैं घर ही रहा। नौ बजे का प्लेन था। शाम को साढ़े सात तक चलते-चलते भाभी जी ने एक पैग दे ही दिया। दोपहर को बीयर पिलाई। इन तीन दिनों किशोर मुझे लगातार होम्योपैथी की दवा देते रहे। उससे बमुश्किल मैं बातें करता रहा। एयरपोर्ट पर शंकरदयाल सिंह और रामलखन सिंह यादव से भेंट हो गई। दस बजे प्लेन उड़ा, बारह पर दिल्ली। घर-घर आते दो बज गए। बस से आए। और यह ज़रूरी काम एक हिस्से में पूरा हुआ।

24 को नेशनल प्रोग्राम में रिकॉर्डिंग थी। कपिला वात्स्यायन, श्यामला पप्पू और प्रमिला कपूर के साथ। पप्पू नहीं आई। गला ख़राब होने के बावजूद मुझे ही कष्ट करना पड़ा। प्रोग्राम अच्छा नहीं हुआ और मुझे बिल्कुल भी सन्तोष नहीं हुआ। उसी दिन देर तक शानी से बातें होती रहीं।...कल काफ़ी देर बातें हुईं वीणा से। सुषमा के जाने के बाद। जिस परिश्रम, अपनेपन और दिलचस्पी से इस लड़की ने सारा कुछ सँभाला है वह मुझे काफ़ी अच्छा लगा है। बहुत जल्दी ही सब कुछ सीखा है। वह आगे कहीं अच्छी सरकारी नौकरी करना चाहती है, यह बहुत स्वाभाविक है। 21 की उम्र है। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि इससे बहुत कुछ उम्मीद करना क्या बहुत जल्दी तो नहीं है? अभी तो कुल सात महीने हुए हैं इसे। इधर जिस तरह काम हुआ है, जितनी किताबें फिर से छापनी पड़ी हैं और आगे जो दिखाई दे रहा है, उससे मुझे यह भी लगता है कि लड़की अक्षर के लिए लक्की होकर आई है। अगर साल भर में मेरे मनचाहे ढंग से चीज़ें बढ़ती रहीं तो क्यों न इसे ही अधिक देकर रोका जाए : मैं भी तो एक ऐसे व्यक्ति की तलाश में हूँ जो बराबर के इन्वॉल्वमेंट के साथ काम करे—सब कुछ को कुशलता और योग्यता से सँभाले और धीरे-धीरे मैं केवल ऊपर से निरीक्षण करता रहूँ। दो-चार महीने को कहीं जाऊँ तो यहाँ की चिन्ता न हो। अगर राजकमल में शीला जी, मोहन गुप्त और जगदीश शर्मा को डायरेक्टर बनाकर ला सकती हैं तो कुछ दिनों बाद मैं क्यों नहीं ले सकता? पंजाबी तेज़ लड़की है, कोई भाई न होने के कारण अपने घर-बाहर का खुद ही सब कुछ सँभालती रही है। यहाँ

162112

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भी सँभाल लेगी। फिर कभी-कभी सोचता हूँ कि कहीं ज़रूरत से ज़्यादा प्रत्याशा तो नहीं लगा रहा मैं ? हो सकता है, अपने जजमेंट में धोखा हो। सबसे पहले तो होगी बदनामी। इसे इतने अधिकार और विश्वास देने पर। लोग तरह-तरह के अर्थ लगाएँगे। दूसरे, अभी उम्र क्या है ? हो सकता है, कल को इसका हाथ खुल जाए और वही सब करने लगे जो मित्तल ने किया ? या आगे जाकर और भी महत्त्वाकांक्षाएँ जग जाएँ और मैं ही इसे बोझ लगूँ। अक्षर हाथ में आता लगे। चौधरी वाली बात। हो सकता है, खुदा न करे, किसी के बहुत निकट आ जाए और वह ही ये सारे रास्ते सुझाने लगे! कभी-कभी एक बहुत स्वार्थ की बात भी आती है। क्यों न इसे भावनात्मक ढंग से इन्वॉल्व कर लिया जाए ताकि उसकी निष्ठा मेरे माध्यम से अक्षर के साथ बनी रहे। पर क्या ऐसा हो जाएगा। लड़कियाँ तो ये सब सूँघने में बहुत तेज़ होती हैं। साल दो साल में समझ जाएगी तो विपरीत मतिवाली मानसिकता शुरू होगी। फिर सोचता हूँ कि अगर इसकी आर्थिक ज़रूरतें पूरी की जाती रहें तो शायद अक्षर में वह खुद एक स्थायित्व और भविष्य देखने लगे। फिर सोचता हूँ कि अगर ये सब मैं सचमुच कर सकूँ तभी करना चाहिए—वर्ना खुद यह जानते हुए कि यहाँ कुछ नहीं होगा, उलझाए और बहकाए रहें तो हद दर्जे की क्रूरता, अमानवीयता और स्वार्थपरता होगी। कल उसकी उम्र निकल जाएगी और वह सरकारी नौकरी के लायक भी नहीं रहेगी। यह नीचता मुझे नहीं करनी चाहिए। संस्कार इस लड़की के शुद्ध पंजाबी। निम्न मध्यवर्ग और वह भी कैम्प के हैं। सफ़िस्टीकेशन नहीं है। कभी-कभी खासी फूहड़ और क्रूड हो जाती है। अगर अक्षर के भविष्य के साथ जोड़कर देख रहा हूँ तो यह कल्चरिंग भी करनी होगी। ताकि यहाँ बैठकर उसी ग्रेस और डिग्निटी से चीज़ों को सँभाल सके। सारे नियंत्रण और अंकुश रखते हुए ही ज़िम्मेदारी देनी होगी, इतना तो साफ़ है। और कल ये ही कुछ बातें मैंने उससे कीं। लड़की तेज़ है और खुलकर बातें करती है। बार-बार यही कहती रही कि आप मुझे ओवर एस्टीमेट कर रहे हैं। मुझमें इतनी क्षमता और योग्यता नहीं है। आप जो भी कहेंगे वह तो मैं करती रह सकती हूँ, अपने-आप मैं शायद बहुत कुछ न कर पाऊँ...वैसे तो मैं समझता रहा कि ज़िम्मेदारी पड़ने पर सभी को सब अक्ल और योग्यता आ जाती है—फिर मैं तो हूँ। पर कभी-कभी शंका भी होती रही कि उससे ये सारी बातें करना बहुत जल्दी तो नहीं है ? क्या उसके मन में मैं ग़लत आशाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ तो नहीं जगा रहा ? हालाँकि मैं उससे बार-बार यही कहता रहा कि ये सब न वायदे हैं, न प्रलोभन। अपनी ज़रूरत को देखते हुए सिर्फ़ मुखर चिन्तन है। हो सकता है इसमें से कुछ भी पूरा न हो...अगर बत्ती न जाती तो शायद हम लोग देर तक बातें करते रहते। घर की एक मात्र ज़िम्मेदार लड़की होने के नाते उसमें जो कॉफ़िडेंस, आत्मविश्वास और व्यवहार कुशलता है—उसी से मुझे लगता है कि शायद मैं वह सहयोगी खोज निकालूँगा...।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20.5.80

इस बीच जो बहुत-सी चीज़ें हुई हैं, उनमें सुमन की शादी भी एक है। उन लोगों ने 14 मई तय की कि बहुत सादा और क़ानूनी ढंग से शादी होगी। तीन-चार लोग आएँगे। इधर सत्ते ने किसी कमरे में नीचे ताला लगाया होगा, जिसे मालती-भूपेन्द्र ने तोड़ ही दिया, रोकने पर सत्ते को धक्का भी दिया। मुझे बहुत ही ग़ुस्सा आया दोनों पर। एक अपनी कन्फ़्यूज़्ड थिंकिंग और लालच में सारी चीज़ें उलझाए चला जा रहा है और दूसरा इसका फ़ायदा उठाकर सब कुछ हड़प रहा है। सत्ते पर दया भी आती है। कल सुमन चली जाएगी, अकेला रह जाएगा और उसे ये लोग बहुत आसानी से ठिकाने लगा देंगे। फिर सारा घर इनका। ग़ुस्सा यह आता है कि सत्ते को न आगे दीखता है, न पीछे और इस झंझट में धीरे-धीरे हर चीज़ से ग्रिप छूटती चली जा रही है। एक दिन दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया जाएगा। सचमुच मेरी समझ में नहीं आता कि मकान, पैसा, जायदाद को लेकर आदमी कैसे इतना टुच्चा होता जाता है कि सारे जूते खाने के बावजूद वहीं पड़े रहना चाहता है। उधर मालती ऐसी अनपढ़, फूहड़ और कमीनी औरत आई है जो माँ-बहन की गाली देकर बीच बाज़ार में सीन क्रिएट कर सकती है। पता नहीं उसने भूपेन्द्र की कौन-सी नस दबाई है कि जो चाहे कराती है, जो चाहे कहती है और वह पिल्ले की तरह बैठा-बैठा देखता रहता है। और उसी को देखकर मुझे लगता है कि आदमी के शिक्षा-संस्कार न डिग्रियों से तय होते हैं, न रहन-सहन से! सीधे-सादे उसकी आवेश में बोली गई भाषा से तय होते हैं। अगर मैं ग़ुस्से में किसी को माँ की गाली देता हूँ तो वह साम़ने वाले को लगे न लगे, मेरा अपना मानसिक स्तर, शिक्षा, संस्कार और परिवेश ज़रूर उजागर करता है। और यही बात मैंने कही भी थी, मगर मैं नहीं समझता कि वह इस महीन बात को समझ पाई है। सो मैंने एक सख्त पत्र भूपेन्द्र को रजिस्टर्ड लिखा था। उसके जवाब में वह आया। रात को ग्यारह बजे आया और सुबह छह बजे चला गया। उसके दम्भी रवैये को देखकर मुझे और भी झुँझलाहट होती है। जायदाद में से अपने हिस्से को शान्ति और समझ के बँटवारे के एवज़ में भेंट की तरह मैं इन भाइयों को दे देना चाहता था, मगर अब लगता है लेना ही पड़ेगा। किसे देना है बाद में देखेंगे।

19.6.80

इस मन:स्थिति को आप क्या कहेंगे जब आदमी सुबह पाँच बजे उठ जाता हो, सुबह चाय-पाइप पीते हुए अखबार पढ़ता हो और सिर्फ़ समय बिताता रहे कि अब नहाना है, अब कसरत करनी है, जैसे-तैसे दस-साढ़े दस बजा दे और फिर अक्षर आ जाए। शाम तो दिल्ली में अपनी है ही नहीं। और इसी तरह दिन पर दिन बीतते जाएँ— देखते-देखते छह महीने हो जाएँ और एक लाइन न लिखे। मन में तय कर लिया है कि आलोचना और समीक्षा लेख लिखेंगे नहीं, दूसरा कुछ लिखने की मानसिकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। इतनी हरामख़ोरी तो कभी की नहीं। कभी-कभी तो अपने आप से, अपने होने से बेहद ही कोफ़्त होती है। अब कहीं कुछ नहीं लिखना—कोई कहीं भी दबाव नहीं है का ऐसा भाव तो कभी भी नहीं रहा। नहीं, इन दिनों गड़ा खज़ाना कभी-कभी कौंधती है और हर बार लगता है जल्दी ही इसे लिखना। कितनी पुरानी है यह कहानी। दसियों सालों से इस पर सोच रहा हूँ। पाँच-दस पन्ने कभी लिखे भी थे। लगता है, यह कहानी जैसे मुझे लिखनी ही है। जैसे मैं लिखना चाहता हूँ अगर वैसी ही लिख जाए तो शायद मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी होगी ही, हिन्दी की भी कुछ गिनी-चुनी कहानियों में से होगी। मगर मैं जानता हूँ, वैसी लिखी नहीं जाएगी। इधर एक ख़ास तरह की आर्थिक निश्चिन्तता भी आ गई है। पहले कभी-कभी पत्रिका की बात भी मन में उठा करती थी, वह भी अब ठंडी हो गई। लगता है, अब कहीं भी कुछ करने को नहीं बचा। तो क्या मेरी उपलब्धि के नाम पर यही सब बचा रह सकेगा? सिर्फ़ इतना-सा और ऐसा सतही कि पिछले दिनों 'सारिका' में मेरा लेख आया है : 'नचिकेता होने की नियति', 'फ्रैंक काफ़्का' लेख मैंने बेहद परिश्रम और इन्वॉल्वमेंट के साथ लिखा है। राजी, शर्मा जी, अर्चना, स्नेह जी—इन सब लोगों ने जब लेख की तारीफ़ की तो मन बहुत ही गद्‌गद हुआ। लगा, काश! ऐसे ही चार-छह लेख मैं लिख जाता। चन्द्रकान्ता, काफ़्का, ओंप्रकाश—पिछले वर्ष यही कुछ लेख लिखे—राजीसेठ की कहानियों पर—उनको पढ़कर लगता है, बहुत बुरा नहीं लिखता। अभी भी लिखने में कुछ मौलिकता, व्यक्तिगत ही सही सिंसियेरिटी और इन्वॉल्वमेंट ऐसा लगता है जो सिर्फ़ मेरा है। शायद कोई और लिख भी नहीं सकता था।

20.6.80

बहुत दिनों से सोच रहा था कि इस बार जन्मदिन पर मन्नू को एक मंगलसूत्र देना है। जाने कब से कह रही थी। कभी स्थिति ही नहीं थी। इस बार ऐसी स्थिति लगी, तो नाहटा से कहकर एक मंगलसूत्र का प्रबन्ध कराया और 13 जून को चाय की मेज़ पर सुबह दिया तो मन्नू स्तब्ध। हक्की-बक्की-सी रह गई, फिर भीतर जाकर रोई भी। औरत सचमुच कितनी भावनाप्रवण होती है। पचास वर्ष की उम्र में भी वह अपने प्रति भावना का आश्वासन 'चीज़ों' के माध्यम से पाती है। उस दिन शर्मा जी के यहाँ खाना था। वहाँ ऊपर छत पर बैठकर सभी ने 'मंगलसूत्र' देखा, तारीफ़ें हुई, पहनाने का नाटक हुआ और शर्मा जी द्वारा बनवाया हुआ विशेष केक काटा गया। उसमें मन्नू का नाम लिखा था। सच पूछा जाए तो मुझे अपने ढाई हज़ार के मंगलसूत्र के मुकाबले वह केक ज़्यादा 'सिंसियर' लगा। दिया कृष्णा जी ने, अजित, स्नेह जी ने भी—लेकिन हरेक ने सिर्फ़ यही कहा कि 'राजेन्द्र जी, आपने तो कमाल कर दिया।' यही बब्बू और सुशीला जी ने कहा। और मुझे सहसा ऐसा लगा, जैसे या तो मैं बहुत छोटा हो गया हूँ या मेरी दी हुई चीज़ छोटी हो गई। मन्नू के जन्मदिन पर मैंने हमेशा कोई-न-कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीज़ दी है, मगर वह महत्त्वपूर्ण इसलिए नहीं थी कि सौ-दो सौ की थी। जैसे ये सब कहना चाहते हों कि ढाई हज़ार की चीज़ देना ही असली भावना है। अगर आपके पास इतना नहीं है तो आपके मन में कोई प्यार, सम्मान या लगाव नहीं है। हो सकता है, मैं सारी चीज़ को वल्गैराइज़ कर रहा हूँ—मगर मुझे लगा यही। टिंकू के जन्मदिन पर मैंने सिर्फ़ सौ रुपए और छोटी सुन्दर-सी डायरी दी। वह इसी में खुश है।

इधर शानी की स्थिति बिगड़ती जा रही है। आज उसने मकान बदलकर जंगपुरा एक्सटेंशन का ले लिया होगा। 26 रेडियोथैरॉपी के कोर्स लेने के बाद हड्डियों का ढाँचा निकल आया है—दाँत नकली लगते हैं, क्योंकि चौड़ा मुँह सिकुड़ गया है। मुँह में छाले, स्वाद का एक सिरे से खो जाना और महीने सवा महीने से शरीर में कुछ भी ठोस खाने को न जाने ने उसे दयनीय बना दिया है। पिछले दिनों मैंने अक्षर की ओर से पाँच सौ रुपए दिये, परसों अपने पास से चार सौ। जगह इत्यादि बदलने में आसानी होगी। इतने दिनों बाद यह पहला साल है जब मैंने 80 प्रतिशत रॉयल्टी दे दी है, कुछ कर्ज़े उतार दिये हैं और अपने रोज़मर्रा के ख़र्चों को लेकर दबाव नहीं महसूस हो रहा। ये पैसे मैंने चुपचाप भाभीजी को दिये। शायद उसे मेरे आने तक पता ही न हो। उस दिन शानी की बात से इतनी तकलीफ़ हुई कि कुछ कह नहीं सकता : सामने सोफ़े पर बैठा था—मैं बगल में, सामने साजिद उससे कह रहा था, तुम सोच नहीं सकते मैं खाने के लिए कैसा तरसता हूँ। स्वाद नहीं रह गया, खाया नहीं जाता, खुशबुएँ आती हैं और मैं डेढ़ महीने से भूखा मर रहा हूँ। और वह जैसे रोने लगा। इस आदमी को यों लाचार रोते देखकर मैं जैसे ढह गया। इसे तो मैंने हमेशा तैश, जोश और आत्मविश्वास में देखा है—कड़कदार। ऐसा असहाय और दयनीय! कभी-कभी हम अपने भीतर के विश्वास को दूसरों के साथ इस तरह जोड़ देते हैं कि उनका टूटना कहीं अपना बेसहारा हो जाना या चीट लिए जाना लगता है!...ठीक जैसे अपने साथ काम करनेवाली लड़की वीणा को देखकर लगता है। पिता कल रहें, न रहें की चिन्ता, हम सिर्फ़ लड़कियाँ, औरतें क्या करेंगी? इधर यहाँ दस महीने काम करके आया हुआ आत्मविश्वास...अक्सर सरकारी और ऊँची जगह काम करने की बातें करती है। मुझसे आग्रह करती है कि सुषमा की तरह उसे भी लगा दूँगा। हो सकता है, यह आकांक्षा और किसी हद तक ज़रूरतें उसे प्रेरित करें और वह ऐसी जगह चली भी जाए। कैम्प और मुखर्जी नगर के निहायत ही दक़ियानूस अवरुद्ध वातावरण की लड़की जब खुलेगी तो निश्चय ही निरंकुश होने की पूरी सम्भावनाएँ हैं।

26.6.80

23 को अचानक प्रभा का फ़ोन आया, पौने नौ बजे कि संजय गांधी, हवाई जहाज़ के एक्सीडेंट में मारा गया। एकाध जगह और पूछा—वातावरण में बात थी। मगर पुष्ट हुई साढ़े दस बजे रेडियो से। ग्लाइडर का इंजन फेल हो गया और गिरते ही मृत्यु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गई। साथ था सुभाष सक्सेना। बहुत धक्का लगा। 33 साल का नौजवान—मेधावी, कर्मठ, ज़िद्दी और महत्त्वाकांक्षी। सारे दिन बेचैनी रही, काश यह खबर झूठी हो। मगर अगले दिन अभूतपूर्व भीड़ के बीच शान्ति-वन में उसका दाह-संस्कार कर दिया गया। क्या भीड़ थी—दिल्ली ने इतना बड़ा जमघट दो-तीन बार से ज़्यादा शायद नहीं देखा होगा। और इस बीच इन्दिरा जी, कैसी संयत, सँभली और दृढ़ रही हैं—वह तो अद्‌भुत ही है। जिस माँ का जवान बेटा सामने टुकड़े होकर पड़ा हो, कैसे वह उसके अन्तिम संस्कारों की व्यवस्था करेंगी, कैसे सक्सेना के घर जाकर सान्त्वना बँधाएँगी और कैसे देश-विदेश की राजनीति सँभालेगी ? मैं संजय के पक्ष में कभी नहीं रहा, बल्कि उससे घृणा ही करता रहा। वह दृष्टि और दर्शन ही, राइटिस्ट, महत्त्वाकांक्षी व्यक्तित्व हमेशा अमेरिका की ओर झुका रहा, कम्युनिस्टों से घृणा करता रहा और सत्ताक्रान्त रहा। जिसे देखो, वह संजय का नाम लेकर जो चाहे कुछ करा सकता था। उसने सब जगह अपने मुख्यमंत्री बैठा दिये थे, दिल्ली का आई.जी. और लैफ्टिनेंट गवर्नर उसके थे और इन्दिरा की गद्दी सँभालने के लिए सारी स्टेज तैयार कर ली थी। सारी सत्ता उसने अपने आपमें केन्द्रित करने के मंसूबे बना लिए थे। वह आता तो हमें भी शायद पाकिस्तान जैसे ही फ़ासिस्ट शासन का सुख भोगना पड़ता—जिसको चाहे मरवाता, जिसे चाहे जेल में ठूँसता। नेहरू, सारे विरोध और मतभेद के बाद भी पटेल को बर्दाश्त ही नहीं करता था, पूरा सम्मान देता था। ये लोग तो सिर्फ़ हाँ में हाँ मिलानेवाले लोग चाहते रहे हैं। वह अमेरिकन हाथों का खिलौना होने को अभिशप्त था। हो सकता है, ऊपरी तौर पर शान्ति और व्यवस्था बनी रहती। मगर...सब कुछ होने के बावजूद दबंग, नौजवान था और हो सकता है राजनीतिक धक्के खाकर सही रास्ता भी तलाश लेता। भीतर से भी सभी ने मान लिया था कि अगला प्रधानमंत्री वही होगा। इसलिए उस दिन की महत्त्वाकांक्षाएँ लोगों ने स्थगित कर दी थीं। अब फिर वही मार-धाड़ मचेगी जो मुरारजी के समय थी। या लोग इन्दिरा के आस-पास आएँगे, या अपनी-अपनी खिचड़ी पकाएँगे। अविश्वास और असुरक्षा के आतंक से ग्रस्त इन्दिरा अब अधिक हृदयहीन और क्रूर होगी। वैसे भी वह प्रतिहिंसालु और संकल्पवान महिला है। हो सकता है संजय की मृत्यु में अब कोई षड्यंत्र निकल आए। कुछ निकले तो ! मानसिक और तांत्रिक रूप से चाहते तो बहुत लोग रहे हैं कि संजय हटे। तुम सब यही चाहते थे न, अब देखो। मेरा अनुमान है कि अब प्रतिक्रिया यही रहेगी। हालाँकि कुछ कहते हैं कि अब वह उदार और क्षमाशील हो जाएगी। जो बात एक तरह स्थिर हो गई थी, लगता है अब नए सिरे से कन्फ़्यूजन होगा। फिर वही माफ़िया—कमलनाथ, धीरेन्द्र ब्रह्मचारी, गुरु अर्जुनदास, टाइटलर, या तो आपस में लड़ेंगे या घेरकर इन्दिरा जी को दबाएँगे। हो सकता है, कोई तय न कर डाले। इन्दिरा जी के निकट अब रह कौन गया है, यशपाल कपूर के सिवा—धवन इत्यादि तो संजय के लोग थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

28.6.80

नया संस्करण छपकर आया था, 'अनदेखे, अनजान पुल।' पन्द्रह-बीस दिनों से पड़ा था। कल उठाकर पढ़ डाला। प्रूफ़ की ग़लतियाँ तो थी हीं—लेकिन उपन्यास पढ़कर मैं दंग रह गया। मैंने ही लिखा है क्या? सच ही, उपन्यास अच्छा है और जैसे मैंने अपनी आत्मा की सम्पूर्ण गहराई में जीकर और डूबकर लिखा है। किस अधिकार और आत्मविश्वास से मैं निम्मी के मन की भीतरी पर्तों तक पहुँचता हूँ, खुद ही चकित हूँ। मेरे लिए जैसे यह नया आविष्कार था कि मैं इस उपन्यास को इस तरह लिख सका। आज तो सोच भी नहीं सकता। उपन्यास के पीछे की सारी घटनाओं, बातों को याद करता रहा, कैसे बाला कलकत्ता आई थी, विश्वनाथ दर यहाँ लेकर आया था। कैसे वे तीन-चार दिन बीते, प्रदर्शनी गए थे और स्टेशन पर विदा देते हुए कैसे वह भावाविष्ट हो आई थी। कृष्णाचार्य साथ थे और कुल्लू के रायसिन में बैठकर लिखना, रोज़ सुबह वरांडे में बैठकर मैन्युस्क्रिप्ट पर काम करना, खाना, सोना और शाम को घूमने जाना। कीड़ों इत्यादि के कारण रात को लिखना सम्भव नहीं होता था। एक महीने या उससे भी कम में कैसे मैंने सारी पांडुलिपि तैयार कर डाली थी। उस समय ध्यान बाँटने की कितनी बातें थीं। अपना आइसेनोफ़ी लिया था, नई जगह का थ्रिल था और साथ ही मीता...शायद उसकी ज़िन्दगी का तो यही एक ऐसा अनुभव रहा होगा जिसके साथ बाक़ी सारा सूनापन काट दिया जा सके...उपन्यास से अधिक उसके लिखे और सोचे जाने, बनने की सारी प्रक्रिया कितनी बहुमूल्य रही है। पता नहीं नायिका निम्मी के जीवन में कोई मोड़ आया था या नहीं, लेकिन उसके लेखन ने मेरा तो सारा कुछ ही बदल डाला। याद है जब रानीखेत में पहला ड्राफ़्ट लिखा था तो उन दिनों—कुल्लू के एक साल पहले भी मीता ही साथ थी। अगले साल कुल्लू में उसे पूरा किया। लगा निस्सन्देह यह मेरी सर्वश्रेष्ठ रचना है। अब इतना डूबकर कुछ नहीं लिख पाऊँगा। पढ़ते हुए मुझे यह भी ध्यान था कि चैख़व की कहानी 'किस' इसमें कितनी है। कहीं न कहीं दिमाग़ की भीतरी तहों में रही तो होगी ही। शायद है ज़रा-सी शादी या पार्टी की भागदौड़ में चोरी से चुम्बन लेने की घटना...मगर उसका तो संकेत भर है। बाक़ी तो मेरे अनुभव हैं, शादियों के, चौपड़ के, चौबारे की बीमारी के और प्रदर्शनी घूमने के...काश, अनदेखे की गहराई से फिर कभी लिख पाऊँ...।

दो-तीन दिनों से मन्नू कृष्णा जी के यहाँ है। यों ही आराम करने गई है। मैं और टिंकू ही रह गए हैं। रोज़ शाम को सात बजे लौट आता हूँ। अजीब बात है, मन्नू नहीं होती तो भीतर कहीं खुलापन महूसस होता है, लिखने को मन करता है। यानी मुझे इसी तरह का अकेलापन चाहिए। यही मन्नू को भी होता होगा...हम लोगों की लेखकीय मानसिकता के लिए कुछ दिनों अलग रहना बहुत ज़रूरी है। यह कई बार देखी हुई बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

29.6.80

मैं समझता था कि मुझे गुस्सा नहीं आता। मगर अब लगता है कि काफ़ी ज़ोर से आता है, वह भी एक विषय पर। सत्ते या भूपे जब आगरा की सम्पत्ति के बारे में कुछ कहते हैं, ग़ुस्सा आने लगता है। बात यह है कि दोनों इतने लालची, स्वार्थान्ध और मैटीरियलिस्ट हैं कि तर्क और समझदारी की कोई बात नहीं सुनना चाहते। इनके लिए सारे सम्बन्धों, सारी भावनाओं से ऊपर यही स्वार्थ है कि कैसे दूसरा मर जाए और वह हिस्सा उसे मिल जाए। दो सालों से बीसियों बार आगरा जाकर यही मैंने समझाने की कोशिश की, मगर समझ में ही नहीं आता। मैं आज भी शपथपूर्वक और विश्वास से कहता हूँ कि मुझे आगरा के एक पैसे का लालच नहीं है। मेरे हिस्से में चाहे पचास हज़ार निकलता हो या एक लाख—बिना मन में एक भी भाव लाए मैं एक सेकंड में सब छोड़ सकता हूँ, और अपने हिस्से को मैंने रखा भी इसीलिए था कि दोनों में से एक को दे दूँगा। मगर मुझे इधर यह कहना पड़ रहा है कि मुझे अपना हिस्सा चाहिए ताकि उससे समस्या को सन्तुलित ढंग से सुलझा सकूँ।

देखता हूँ कि सत्ते का लालच, तृष्णा और भूख अपार है। जाने कब-कब का हिसाब निकाले बैठा है। उस दृष्टि से विशेष हिस्सा चाहिए—फिर मेरा और मुन्ना का भी चाहिए और हालत है कि दसियों हज़ार की चीज़ों पर धूल जम रही है। न वह कुछ कर पाता है, न चीज़ों को सँभाल पाता है। हाथ-पैरों से एक कील भी नहीं लगती। सारी गर्मियों में सड़ता रहा है, एक पंखा तक लगवाया नहीं गया। सब कुछ दूसरे कर दें, सब कुछ दूसरे सँभालकर दे दें और वह बैठकर सुख से खाए-पीए—श्रद्धा और उपहार वसूले—यही उसकी इच्छा है। पिन से लेकर मकान तक उसे कुछ भी देने का मतलब है कि उस चीज़ का सत्यानाश हो जाए।

उधर भूपेन्द्र भाग-दौड़, हाथ-पैर सबसे सँभाल सकता है, मगर लालच इस तरह बढ़ गया है कि उसके हाथ में कुछ भी देने का मतलब है कि वह उसी की हो गई। दसियों बरस से किराया खा रहा है, मगर सुमन को एक रोटी देने में कष्ट है। निहायत फूहड़, उजड्ड और गँवार और कमीनी मालती उसे उँगलियों पर नचाती है। बन्दर की तरह उछल-उछलकर लड़ने आता है। उसे बहुत मिला है, अब जो हक़ का है वही मिलना चाहिए। मैं अभी भी चाहता हूँ कि जो भी बँटवारा है वह आराम और समझदारी से हो जाए। मगर सारी चीज़ों को इन्होंने इतना गन्दा कर दिया है कि बात करते ही मुझे ग़ुस्सा आता है। कल स्कूटर में मुझे सत्ते पर ग़ुस्सा आ गया। आज फ़ोन पर भूपेन्द्र पर। सुमन को बाई वाले कमरे में घुसने नहीं दूँगा। बाई की चीज़ों को मैं भी देखूँगा। मैंने कहा कि मेरी पाँच तक तारीखें हैं। उन्हीं के बाद आ सकूँगा। तब तक सुमन को बिल्कुल तंग न करें। टेलीफ़ोन पर ही क़िस्से सुनाने लगा। मुझे सचमुच बहुत ग़ुस्सा आ गया और मन होने लगा कि उसी तरह इसको भी सबक सिखाऊँ जैसे बम्बई में जाकर नवजीवन चिटफंड वाले को सिखाया था। या आगरे के किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ़सर से कहूँ कि इसे ज़रा तंग करे। थोड़ा-सा पैसा हो गया है तो किसी को कुछ समझता ही नहीं है। नाश्ता करते समय अचानक ख़याल आया कि कहीं आगरा जाकर इतना गुस्सा न आ जाए कि अटैक जैसा कुछ हो जाए। सचमुच कल से मैं परेशान हूँ। यह झंझट कैसे सँभाला जाएगा—यही समझ में नहीं आ रहा। काश किसी तरह इन भाइयों में अंडरस्टैंडिंग बनी रहे।

18.7.80

सुबह चाय पीने वरांडे में बैठा था। भोलेश्वर अन्दर चाय बना रहा था। तभी बड़ी अजीब-सी अनुभूति हुई। बिल्कुल जैसे भीतर घंटी बजती है, उस तरह लगा कि 'बस अब समय ख़त्म' जैसे जेल के क़ैदी से मुलाक़ाती लम्बी बात करता है तो आवाज़ लगती होगी। मैं जल्दी-जल्दी सोचने लगा, क्या-क्या करना है। अक्षर के चैक पर हस्ताक्षर करके रख दूँ, घर एक खाली चैक पर दस्तखत कर दूँ। अक्षर को समेटकर ज़्यादा व्यवस्थित और कम्पैक्ट करना था, वह नहीं कर पाया। उपन्यास पूरे करने थे, 'गड़ा खज़ाना' कहानी लिखनी थी—और भी पता नहीं, क्या-क्या?...फिर सोचा, कि ऐसी आवाज़ तो पता नहीं कब से आ रही है। बाद में जब सन् 71 की डायरी देखी थी तो पढ़ा, साल के पहले दिन भी मैं इसी अनुभूति से आक्रान्त था कि 'अब समय नहीं बचा है!' पिताजी, बाई, हो सकता है, 52 वर्ष की उम्र में गए। बड़े भाई साहब तो अस्सी तक कड़क थे। लेकिन सुबह उन दो-चार मिनटों में तो मैं सचमुच ऐसा घबरा गया, जैसे डूब रहा हूँ और सिर पानी के नीचे है और जल्दी से जल्दी बाहर आकर साँस लेनी है...प्रयत्न करना पड़ा इस स्थिति से बाहर निकलने में...फिर सारी चीज़ का दार्शनिकीकरण कर डाला। अभी भी ज़िन्दा कहाँ हूँ? दूसरी अनुभूति। जिसे बेहद शिद्दत से पिछले सप्ताह जी रहा हूँ, वह यह है कि यह कैसी ज़िन्दगी है? अब कोई किताब, कोई आइडिया, कोई सपना बिल्कुल-बिल्कुल परेशान नहीं करता। आगे, यानी किसी व्यक्ति, किसी घटना या किसी भी स्थिति से अपने को जुड़ा नहीं महसूस करता, कहीं कोई किताब, कोई स्वप्न पागल नहीं करता। पहले के दिन भी थे कि मैं पागल होकर एक-एक किताब पाने को व्याकुल रहता था, लिखने के भाव आया करते थे। व्यक्तियों से मिलने, जगहों पर जाने को तड़पता था—अब कहीं कुछ भी नहीं होता। कोई किताब पढ़े जाने के लिए पागल की तरह नहीं खींचती। आगे जैसे कहीं कोई भविष्य है ही नहीं। पिछली बातें भूल जाता हूँ, इसलिए अतीत वहाँ समाप्त हुआ। कैसी भयावह स्थिति है। बिल्कुल मौत। कैसे लोग होते हैं जिन्हें ऑब्सैशंस होते हैं। एक निष्क्रियता और निश्चिन्तता है जो जड़ता की प्रतीक हो गई है। वही घर, वही रूटीन, वही अक्षर। किसी से भी न मिलने जाने को मन करता है, न बुलाने को। कोई आ गया तो बात कर ली और फिर भूल गए।...और तो और, हमने जो फ़्लैट बुक किया है, उसमें रहने के, कैसे उसे सजाएँगे, इसके भी सपने नहीं आते। शाम को रोज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर ही जाता हूँ। शर्माजी से मिले बरसों हो गए। मन ही नहीं करता। पहले सुन्दर लड़कियों से मिलने में अच्छा लगता था, अब मिलें तो ठीक, न मिलें तो ठीक इतना जड़ तो मैं कभी भी नहीं रहा। यह मर जाना नहीं तो क्या है जब ज़िन्दगी का अर्थ सिर्फ़ एक-एक दिन बिता देना हो, कोई अर्थ, प्रयोजन, उद्देश्य और कॉज़ न सिर्फ़ ग़ायब हो जाएँ, बल्कि उनकी ज़रूरत ही न लगे...इस तरह के जीवन की तो मैंने कभी कल्पना नहीं की थी। कैसे और कौन तोड़ेगा इस अवरोध और सड़ांध को ?...1 जनवरी, 80 से मैंने तय किया था कि कुछ भी आलोचनात्मक और वैचारिक नहीं लिखूँगा...नतीजे में पढ़ता भी नहीं हूँ—लिखना तो दिमाग़ से निकाल ही दिया है। कुछ और लिखने के लिए मन में है ही नहीं...सब कुछ जैसे समाप्त हो गया ?

हाँ, पढ़ने का सिलसिला अभी बना है। पिछले दिनों 'अछूत' दया पवार का उपन्यास पढ़ा, अनन्तमूर्ति का 'अवस्था' पढ़ा। 'अवस्था' एक आदर्शवादी युवक के क्रमशः व्यवस्था का हिस्सा बनते जाने की कहानी है जिसे लकवा मार गया है। लकवा प्रतीक है। व्यवस्था, भ्रष्टाचार का हिस्सा बनकर आप लकवाग्रस्त ही हो जाते हैं। जैसे इन दिनों मैं हो गया हूँ। दर्शक और हिस्से दोनों हो जाते हैं। मगर उपन्यास का आइडिया एक बात है, लगता है, लिखा कच्चे हाथों से गया है। दूसरी बार जो उपन्यास पढ़ा है, वह है बैंजामिन कॉन्सन्स का 'एडोल्फ'। पौने दो सौ से अधिक वर्षों पहले लिखा गया यह उपन्यास कितना टैरिफ़िक है, यह दूसरी बार पढ़कर भी लगा। स्तब्ध और दंग। कितनी महीन और बेधक दृष्टि है साले की! आज भी अगर मैं ऐसा उपन्यास लिख दूँ तो हिन्दी में तहलका मच जाए! एलोनोरे एडोल्फ से दस साल बड़ी है—उसी के प्रति प्रेम की कहानी है। अद्‌भुत—दूसरा उपन्यास जो ऐसे ही कौशल और सन्तुलन से लिखा गया है, वह है कोबी ऐबे का 'वुमन इन द डयून्स'। बहुत बारीकी और दार्शनिक गहराई से लिखा गया है। पता नहीं, आजकल क्यों पुरानी चीज़ें पढ़ने को मन करता है! उसी क्रम में ग्यारह-बारह साल बाद पढ़ रहा हूँ। जब लिखना नहीं है तो अच्छी चीजें पढ़ूँ ही...शायद मेरी इस मानसिक छटपटाहट को मन्नू समझ रही है। वह बैठकर बातें करना चाहती है और मैं टाल देता हूँ। एक बार तो उसने कहा था कि अगर आपको लगता है कि उस जड़ता और अवरोध से आप यहाँ से बाहर जाकर निकल सकते हैं तो मीता के साथ कुछ दिन रह लीजिए...दया और करुणा ही हुई सुनकर...यह बात उसने किस यातना-बिन्दु पर पहुँचकर कही होगी...लगता मुझे भी है कि शायद इस अन्धे कुएँ से वही साथ निकाल सकता है, मगर हिम्मत नहीं पड़ी। 'मैं मीता के साथ रहने दस दिनों को जाऊँगा', यह कहकर मैं निकल सकता हूँ? चुपचाप, चोरी-छिपे जाऊँ और भलामानुस बनकर लौट आऊँ, यह तो हो सकता है। यही शायद होता भी रहा है। मगर कहकर खुलेआम जाना...कैसा लगता है, जाने...चला भी गया तो शायद लौटने का मुँह नहीं रहेगा। यहाँ भी सब चीज़ें, रहना, व्यवहार नॉर्मल नहीं रह पाएँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

25.8.80—10.9.80

पिछले दिनों शानी से एक बहस होती रही है। वह उर्दू-हिन्दी-अंग्रेजी के सही और शुद्ध उच्चारणों को लेकर बहुत आग्रही है : विशेष रूप से उर्दू के। जो शीन-क़ाफ़ से दुरुस्त ज़बान नहीं बोलता, उसके लिहाज़ से जाहिल है। उर्दू की पृष्ठभूमि है, इसलिए ग़लत या अशुद्ध तलफ़्फ़ुज़ मुझे भी परेशान करते हैं। मैं भी चाहता हूँ कि ज़बान सही बोलूँ, सलीस ज़बान सुनकर अच्छा भी लगता है। मगर उर्दूवाले इस बात को लेकर जैसे दुराग्रही हैं, वहाँ मैं सहमत नहीं हो पाता। मैं कहता हूँ कि शब्दों के उच्चारण को लेकर यह अतिरिक्त आग्रह, फ्यूडल, मनमाना और मानसिक जड़ता या अहंकार है, यह किसी भी विकास को अस्वीकृत करता है। अगर बंगाल में अहमद को आहमेद, या कुरान को कोरान कहते हैं, या हैदराबादी ख़ुरान या ख़लम, ख़ाजी बोलता है तो वह ग़लत नहीं है, अगर बिहारी स, श में फ़र्क़ नहीं करता या बांग्ला में 'पद्य' लिखकर 'पद्‌दी' पढ़ा जाता है, लक्ष्मी लिखकर लॉक्सी बोला जाता है तो वे लोग जाहिल नहीं हैं, वहाँ 'स' है ही नहीं, 'श' ही है और वे 'भीम', 'भोट' बोलते हैं। हम सेंटर बोलें या केन्द्र उससे फ़र्क़ बिल्कुल नहीं पड़ता। मूलत: शब्दों का उच्चारण कोई महत्त्व नहीं रखता। इससे न अर्थ में फ़र्क़ पड़ता है, न ज्ञान में। उच्चारण, भौगोलिक, शारीरिक और परम्परा से स्थितियों से निर्धारित होते हैं। वे बदलते भी रहते हैं और बदलना भी चाहिए—आप स्कैड्यूल बोलें या शिड्यूल अर्थ और समझ में कहाँ फ़र्क़ होता है? यह बहस लगातार चार-पाँच दिनों से चल रही थी, एक दिन शानी ने कहा : तुम कम्यूनल हो, हमारे उच्चारणों के लिए तुम्हारे मन में सम्मान नहीं है। और तबसे तलफ़्फ़ुज़ का यह आग्रह मुझे एक दूसरी ही रोशनी में दीखने लगा। मुझे लगा, यह शानी का अवैज्ञानिक और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण ही है जो शुद्धता को सुरक्षित रखता है और समझता है कि अपनी अस्मिता बचा रहा है—ठीक वैसे ही जैसे सिख और मुसलमान, सिर्फ़ अपने धर्म में ही विश्वास नहीं करते, वे धर्म के नियमों के अनुसार शीन-क़ाफ़ से दुरुस्त दिखना भी चाहते हैं—मूँछें कहाँ से कटेंगी, कलम कितनी रहेगी, दाढ़ी की छाँट क्या होगी, पाजामा टखनों तक रहेगा या एड़ी तक। चलिए, वहाँ तक की बात सही है, मगर जब आदमी यह कहता है कि मैं जो ऐसा रहता हूँ, मुसलमान हूँ, बाकी सब जाहिल हैं और मुसलमान नहीं हैं। अगर बंगाल की औरत साड़ी और सिन्दूर को अपना पहनावा मानती हैं तो ज़ैबुन्निसा होने के बावजूद मुसलमान नहीं है? जो उर्दू को लखनऊ, दिल्ली की उत्तरप्रदेशीय 'शुद्धता' से नहीं बोलते वे जाहिल और गँवार हैं? मेरा कहना है कि शब्दों का उच्चारण कभी भी एक नहीं होता, वह परम्परा, अभ्यास और अनुकरण से निर्धारित होता है। आप ख़ुदा बोलें या खोदा—समान रूप से समझदार हो सकते हैं। उस दिन बासु आए थे और हम लोग 'ताज' होटल में बैठे थे। साथ शानी, बिदु बत्रा जी, फ़िल्मोत्सव निर्देशक रैना और कोई मिस्टर राव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। किसी ने 'अख़िलन' बोला तो राव भड़क गए, वही शानी की तरह कि आप अखिलन नाम का उच्चारण नहीं कर पाते, उनके लेखन को क्या समझेंगे ? तभी मैंने कहा, यह बिल्कुल ही ग़ैर महत्त्व की बात है कि हम किसी का नाम कैसे बोलते हैं, हम ग़ालिब को ग़ालिब, जीन पॉल सात्र्रे, वॉन गॉग, या मॉघम बोल सकते हैं, मगर यह कहीं भी आड़े नहीं आता कि हम उसके साहित्य को न समझ पाएँ। हम हैदराबादियों की तरह ख़लम, ख़ुरान बोल सकते हैं—मगर पढ़े-लिखे हो सकते हैं...इस पर मैं शानी से खुलकर बातें करूँगा।

और खुलकर बात करने के लिए अवसर तलाश कर रहा हूँ, कुछ साम्प्रदायिक समस्याओं पर भी। मुरादाबाद में ईद के दिन मुसलमानों और पुलिस में भिड़ंत हुई—गोली चली, कितने मरे, कितने नहीं—कोई नहीं जानता। लेकिन अफ़वाहें ऐसी फैलीं कि कानपुर, इलाहाबाद और अलीगढ़ में भी इस तरह की भिड़ंतें हुईं, कर्फ़्यू लगे और दो बार साजिद आया तो वही भावुकता और आँसू भरकर बच्चों, औरतों के भीषण दर्दनाक क़त्लों के क़िस्से बताता है। 'अक्षर' में भी बताए थे और आँसुओं से रो उठा था। ज़ाहिर है कुछ बातें उसने दबाकर बताईं जो शानी के साथ खुलकर बताई होंगी और वह सो नहीं पाया। रातभर उन क़त्लों के दर्दनाक क़िस्सों की तसवीरें देखता रहा और खौलता रहा। क़त्ल वह भी औरतों, बच्चों का कोई भी बर्दाश्त नहीं करेगा—मैं भी नहीं करता, लेकिन शानी इस सबको लेकर जैसे संकीर्ण और साम्प्रदायिक होता जा रहा है। मैं इन मुद्दों पर खुलकर बातें करना चाहता हूँ। मगर एक आशंका आपसी है दूसरी इस दिल्ली जैसे बेहूदा शहर की। आपसी यह कि मैं और वह दोनों ही अपनी बातें ईमानदारी से कहें तो एक-दूसरे को दोनों टुच्चे, स्वार्थी और साम्प्रदायिक लगेंगे। क्योंकि बहुत-सी बातें हम एक-दूसरे का ख़याल करके पचा जाते हैं, मैं इसलिए कि शानी को बुरा लगेगा और शानी इसलिए कि वह साम्प्रदायिक लगेगा। मैं सात दिन से अपने आप से बहस कर रहा हूँ और शानी की तरफ़ से जवाब दे रहा हूँ। यानी भीतर से बहुत उद्विग्न हूँ और चाहता हूँ, हम लोग खुलकर बातें करें।

मगर यहीं दूसरी समस्या है और उस पर पूनम जी से भी बहुत देर बात हुई। शानी अपने दफ़्तर से पन्द्रह किलोमीटर दूर है और उसने चार्टर्ड बस की हुई है जो उसे सवा नौ, साढ़े नौ पर चलकर पौने दस बजे दफ़्तर ले आती है। ठीक पाँच-सवा पाँच वापस जाकर साढ़े पाँच तक घर छोड़ देती है। स्कूटर से इतना लम्बा सफ़र ख़र्चीला ही नहीं, बेहद थकानेवाला, तनावभरा और खतरनाक है। कभी भी कोई एक्सीडेंट हो सकता है। यानी बात तभी हो सकती है जब हम लोग इस बीच के समय में एक-दूसरे के काम का नुक़सान करके मिलें। मेरे जाने का अर्थ लगभग तीस रुपए। यानी किसी सुअवसर के लिए यह आपसी संवाद स्थगित हो रहा है—जब या तो मैं जाऊँ या उसे रोकूँ—देर हो जाए तो सुलाऊँ। और शायद हम दोनों ही भीतर घुट रहे हैं। फिर मैं चाहता हूँ कि बातें सिर्फ़ मैं और वह ही नहीं करें...एकाध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भी हो। खासतौर से शानी के बच्चे—जिन्हें डायलॉग के अभाव में वह विषाक्त कर रहा है। यानी अपना ग़ुस्सा, क्षोभ उन्हीं के सामने व्यक्त करता है, बदले में उन्हें घनघोर साम्प्रदायिक बना रहा है।

और यही मुद्दा दिल्ली की बौद्धिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक ज़िन्दगी का आधारभूत रोग है। कॉफ़ी हाउस, टी हाउस जैसी कोई भी केन्द्रीय जगह नहीं रह गई है, जहाँ बिना किसी एपॉइंटमेंट और उद्देश्य के लोग मिलें, बैठें, अड्डा मारें, बहसें करें, काम की बातें हों और बौद्धिक मन्थन हो—जहाँ आप अपने तर्क, बौद्धिक जागरूकता, समस्याओं और रचनात्मकता को एक-दूसरे की टकराहट में आने दें। ठीक है, गुट होंगे, पसन्द-नापसन्द होंगी, लड़ाइयाँ-झगड़े और तानाकशियाँ होंगी। पर दूसरे की टक्कर तो होगी। तार्किक तीखापन, बोलने की, बातचीत की कला तो विकसित होगी। और इस केन्द्रीय अड्डे के अभाव को न तो एक-दूसरे के घरों में जाकर पूरा किया जा सकता है, न दफ़्तरों में। कहीं दूरियाँ, लौटने की समस्या, यातायात की सुलभता और ख़र्चा आड़े आता है तो कहीं आपस के अहं—मैं क्यों उसके यहाँ दफ़्तर में या घर जाऊँ? वही आए! मुझे उससे कोई काम, फेवर या कृपा नहीं चाहिए...कॉफ़ी हाउस ऐसी निरपेक्ष जगह होती है जहाँ बैठना, जाना-आना, मिलना आदत हो जाती है। वहाँ किसी की कोई कुंठा आड़े नहीं आती। यहीं पहले लोहिया, चन्द्रशेखर जैसे राजनीतिज्ञ बैठते थे। हुसैन-रामकुमार जैसे कलाकार बैठते थे, संगीतज्ञ, नाट्यकर्मी बैठते थे, अफ़सर, साहित्यकार बैठते थे। अब वह कुछ नहीं है और सब एक-दूसरे से मिलने को तड़पते हैं, और किसी भी टुच्चे फ़ंक्शन या आयोजन में सबके सब जमा हो जाते हैं। ऐसे सफल आयोजन शायद पहले कभी नहीं हुए—उद्देश्य आयोजन नहीं है, उद्देश्य मिलना-जुलना हो गया है। मगर वहाँ मिलना नहीं देखना रह गया है। खड़े-खड़े या चलते-चलते हलो होती है और एक अधूरापन या प्यास लिये हम सब लौट आते हैं। दिल्ली के इस नए पैटर्न ने सबको अपने-अपने घर क़ैद कर दिया है—एक-दूसरे के यहाँ आने-जाने को भी हम बहुत उत्साह से नहीं देखते। मैं कहीं भी चला जाऊँगा तो दस-बीस रुपए का किराया पेट्रोल ख़र्च होगा, या दो-तीन घंटे की बस की धक्का-मुक्की, समय बर्बादी होगी—मेरे यहाँ कोई बीस मील से आएगा तो मुझे चाय-पानी, शराब-भोजन जैसा भी हो देना ही होगा। यानी पच्चीस-पचास का ख़र्चा—नतीजे में दोनों ही टालते और स्थगित करते हैं...।

30.9.80

इस बीच कानपुर हो आया। स्टेशन पर एक घटना इतनी तेज़ी से हुई कि आज तक स्तब्ध हूँ। मैं गोमती में अपनी कोच की तलाश में पीछे तक जा रहा था कि एक सज्जन, कुछ गंजे से, बहुत मुस्कुराते हुए सामने आ खड़े हुए। लगा तेज़ी से कहीं जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे थे। ''कहिए, कैसे हैं?''...''ठीक''। मैं पहचानने की कोशिश करता रहा। फिर सोचा, मेरी याद्दाश्त वैसे ही कमज़ोर है, कभी मिले होंगे। ''आप भी इसी गाड़ी से जा रहे हैं न?'' मैंने 'हाँ' कहा तो पूछा, ''मैं भी जा रहा हूँ। वाइफ़-बच्चे साथ हैं? एक बच्चे का टिकट ले आऊँ?'' मैंने कहा, ''ज़रूर।''...''आप किस कोच में हैं?'' मैंने बताया, '''सी' में।''... 'सी' में ही मैं हूँ। 32-33 नम्बर है।... आपका 'सोलह' पास ही है। अच्छा है, साथ हो जाएगा।'' मैं अभी टिकट लेकर आया। ''मेरे पास सौ रुपए हैं। आपके पास छुट्टा है?'' मैं झिझका, ''थोड़ा-बहुत होगा।'' ''कुछ खुला दे दीजिए।'' मैंने पर्स निकाला, बस, अभी आता हूँ। मैंने नोट निकाले, कुल अड़तालीस थे (और पता नहीं मैंने क्यों, सभी को अड़सठ बताए हैं)। पहले उसने मेरे हाथ से पैसे लिए। बाक़ी तीन को मैंने कहा, ''इन्हें रहने दीजिए।'' बोला, ''नहीं, शायद ज़रूरत पड़ जाए।'' फिर उसने सारे नोट दिखाए, ''फ़ौर्टी एट हैं। मैं अभी आया। आप चलिए। वाइफ़ वहाँ है।'' सब कुछ आधे मिनट में हो गया। मैं वहाँ पहुँचा। अपना सामान रखकर उन सीटों पर देखा तो नदारद। इधर-उधर देखा। हाँ, मैंने उसका नाम भी पूछा था, वो...।

3.11.80

इधर एक बड़ा विचित्र आदमी या लड़का आकर टकराया है। अभी तक तो मैं यही मान रहा हूँ कि एकदम फ्रॉड है, बहुरूपिया और झूठा। मगर फिर सोचता हूँ, मुझसे क्या छीन ले जाएगा। हाँ दो-चार घंटे और दस-बीस रुपए स्कूटर के ख़र्च करा देगा। शानी, वीणा, मैं खुद—सभी जानते हैं कि परम चूतिया है और बेकार आकर झाँय-झाँय करता है।...हुआ यह कि दो-तीन महीने पहले शिवराम की चिट्ठी लेकर एक निहायत ही सूखे, अनइम्प्रैसिव से सज्जन आए। बोले, मैं तिवारी हूँ और मैं हरिद्वार में रहता हूँ। ठीक हरकी पौड़ी पर जो बड़ी सी बिल्डिंग है, वह मेरी है। कार्पेट का काम है। शिवराम जी हमारी ही धर्मशाला में रहते थे—उनसे दोस्ती हो गई है। उनकी हालत हमसे देखी नहीं जाती। पहले थोड़ी-बहुत मदद करता रहता था। अब एक दुकान खुलवा दी है—दर्जी की। उसमें और तो सभी कुछ ठीक है, एकाध मशीनें लगनी हैं। चारेक सौ रुपए की ज़रूरत है। फिर वह अपने बिज़नेस और लाखों रुपए की बातें करने लगे। मैंने कहा भी कि जब यही स्थिति है तो आप ही थोड़ी-सी मदद क्यों नहीं करते। इस समय मेरा हाथ तंग है। मतलब कई तरह और काफ़ी आग्रह से रुपए माँगते रहे। मैं और भी चौंका। स्थिति भी नहीं थी। बहरहाल शायद चाय-वाय पिलाकर टरका दिया। फिर लगभग इस बात को भूल ही गया। उसमें न इन तिवारी जी का कोई ज़िक्र, न रुपयों की कोई बात। अपने को सुदामा और मुझे कृष्ण बनाने की भावुकता थी। थोड़े दिन पहले शायद फिर पत्र आया। तीन दिन पहले वे सज्जन फिर अचानक प्रकट हुए...मैं तो पहचानता भी नहीं, वीणा ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बताया। तिवारी जी हैं और शिवराम जी के पास हरिद्वार से पहले भी आए थे। ख़ैर, आए—बैठे। वही लनतरानियाँ—अंकल जी ये, अंकल जी वो। पाँच सूट सिलने डाल आया हूँ, तीन के कपड़े ले आया हूँ। बे-पढ़ा-लिखा आदमी है। कहता है मेरा लाखों का बिज़नेस है। हमारे कार्पेट तो सारे विदेशों में जाते हैं। भदोही में कारखाना है। पिताजी की मृत्यु के बाद से मैं ही सब देखता हूँ। बस तभी से हरिद्वार आकर रहने लगे। तब से गया ही नहीं। यहाँ बायर्स (जिन्हें वह बाइर्स कहता है) हैं और वही एक्सपोर्ट करते हैं। उनसे मुझे पैसा लेना होता है। दस-बीस लाख बच जाते हैं। माताजी को बस यही शौक़ है कि कहीं मन्दिर बनवा दिया, कहीं दान कर दिया। मैं अकेला लड़का हूँ। अभी अंकल जी, हमने नेहरू प्लेस में एक शोरूम लिया है, उसे फ़र्निश करना है। मैंने विधु का नाम बताया। बोला, बिल्कुल करूँगा। हाँ, लग जाए दो-ढाई लाख—लेकिन चीज़ ऐसी बने कि 'बाइर्स' दंग रह जाए। हम तो यहाँ रहेंगे नहीं, गाड़ी रहेगी। मैंनेजर रहेगा। आप इस्तेमाल कीजिए। उसने कहा, हम यहाँ इस्तेमाल करेंगे? मैंने कहा, एकाध कार्पेट हमें भी चाहिए। कितने का पड़ेगा? बोला अंकल जी कार्पेट तो बीस-बीस लाख के होते हैं। मगर मैं आपको प्रिज़ेंट करूँगा। मैंने कहा, अरे छोड़िए—तब से पीछे पड़ा है, आप हमारी तरफ़ से सूट बनवा लीजिए। उस दिन हमें जर्मन राइटर के डिनर पर वसन्त विहार जाना था। मैं इसी परेशानी में था कि कैसे जाएँ, बोला मेरे पास गाड़ी है अंकल जी, छोड़ दूँगा। यहाँ तो एम्बैसेडर ही लेकर आया हूँ, हरिद्वार में फ़ियेट है...यानी हर बात में पैसा, अपनी फ़राख़दिली मस्ती की शेखी...मैंने पूछा कुछ लेते हैं? बोले नहीं, बस कभी-कभी बीयर ले लेता हूँ—थोड़ी-सी। शानी आ गया, उसने जहाँ उसकी 'श' को 'स' बोलने की ज़बान सुनी—निहायत बेवक़ूफ़ी और बचकानी बातें सुनी तो फौरन ऑफ़ हो गया। मगर उसे और हमें वसन्त विहार जाना था, इसलिए बर्दाश्त करता रहा...मैगज़ीन, वो मैं निकलवा दूँगा अंकल जी, साढ़े तीन लगा दूँगा। बाद में जब त्यागी इत्यादि आ गए थे तो प्रकाशन का हिसाब पूछने लगा, त्यागी ने कहा, पाँच लाख लगता है, प्रकाशन चलाने में। बोला, मैं दे दूँगा।

तब से लगातार मैं, वीणा, शानी तीनों ही सोच रहे हैं कि यह मूर्ख है, पागल है, शेख़ी-ख़ोर है या सचमुच कुछ दमवाला है। शानी कहता है शेख़ी-ख़ोर है, चूतिया है और हमारा धर्म है कि ऐसे लोगों को काटें। मैंने कहा, नहीं। मैं इसे देखना चाहता हूँ कि यह वास्तव में है क्या? शक्ल-सूरत, बातचीत, शिक्षा में कहीं का जूनियर क्लर्क लगता है। मगर यह भी सही है कि तीन सूट के कपड़े लेकर आया था—ओ.सी.एम. के। गाड़ी में भी वही। एम्बैसेडर गाड़ी थी, बोला यहीं से खरीदी थी—इसलिए डी.एच.वी. नम्बर है। क्नॉट-प्लेस में मोहन सिंह प्लेस गए। वहाँ हम दोनों नीचे बैठे रहे, यह ड्राइवर को लेकर ऊपर गया। हम लोग यही बातें करते रहे, शानी ने वही अपना पुराना मुहावरा लगाया—जाहिल मुत्लक़, कुन्दए-नातराश, सुअर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चा...लेकिन इसे हमें काटना चाहिए और लोधी में एक शाम अच्छी बितानी चाहिए। तिवारी जी सूट के थैले लेकर आए तो धुआँधार चालू हो गया। आपका अनुभव तो कमाल है तिवारी जी, आपने लाख रुपए की बात कही है। ये हुई ज़िन्दगी से निचोड़ी हुई चीज़। आप हमें राजेन्द्र को अंकल क्यों कहते हैं—अरे एक स्टेज के बाद सब दोस्त हो जाते हैं...तिवारी जी आप तो एकदम गुरु हो—बीयर क्या होती है जी...होटल में कोई लौंडिया-वौंडिया...अब वह कह रहा है कि आप एक की बात कहते हैं—मैं चार लाकर खड़ी कर दूँ। फ़लाने कॉलेज में मैं ट्रस्टी हूँ, पचास हज़ार साल देता हूँ, उनकी वार्डनों से हमारी दोस्ती है, हमें तो जब ज़रूरत होती है तभी मँगा लेते हैं। हमें वहाँ साढ़े आठ पहुँचना था, इसलिए राष्ट्रपति भवन के पास खड़े होकर कैम्पा इत्यादि पीने लगे। पीले दाँत, साँवला रंग, छोटा कद, पतले-दुबले से साहब, और बता रहे थे, हमारा तो चाँदनी चौक में ऐसा रुतबा है कि जिस सेठ के पास जाकर खड़े हो जाए वो उठकर खड़ा हो जाए। क्यों मुन्ना सच कह रहा हूँ कि झूठ...ड्राइवर मुन्ना ने कहा, बिल्कुल सच...तिवारी ने कहा, देखिए, आज ही तीन लाख जमा करके आया हूँ। और जेब से बैंक की काउंटर फाइल निकाली, शानी ने भी चश्मा कपाल पर चढ़ाया और देखने लगा। दो रसीदें थीं—एक सवा दो लाख की, एक पच्चीस-तीस हज़ार की। अब शानी और भी चालू हो गया। मुझे इस आदमी की इतनी जी-हुजूरी अच्छी नहीं लग रही थी, मगर देखना मैं भी चाहता था कि आख़िर यह है क्या चीज़। शानी ने उम्र की दीवार लाँघकर बराबरी से व्यवहार करने की बात कही, शराब और लड़कियों की बात कही तो वह भी चालू हो गया। लड़कियों का तो मैं एक से एक अच्छा इन्तज़ाम कर दूँगा। मैं...कॉलेज का ट्रस्टी हूँ। उसकी वार्डन को फ़ोन करता हूँ तो वह अच्छी से अच्छी लड़की को होटल में भेज देती है। कल एकदम पक्का रहा—शनिवार शाम। उसने हमें वसन्त विहार छोड़ा, वहाँ पहले तो हम लोग समय बिताते रहे, फिर ठीक टाइम पर पार्टी में पहुँचे...अगले दिन ये तिवारी जी फिर प्रकट हुए। बोले, अंकल जी आपके दोस्त हमें पसन्द नहीं आए। एक तो पहली मीटिंग में इतना खुल जाना अच्छा नहीं है। फिर जैसी वे बातें कर रहे थे, उनमें और बाक़ी उड़ाऊ-खाऊ दोस्तों में क्या फ़र्क़ है? मैंने कहा, छोड़िए...आज का कैंसिल कर देते हैं। आज वह महिलाओं के सूट के कपड़े लिये हुए था, पहले की तरह रसीदें दिखा रहा था। वीणा को दिखाए, देखिए साढ़े चार सौ के लाया हूँ। इन्हें लेकर कहीं गया था और आकर बोला, गाड़ी के बॉनेट पर रखकर पानी पीने लगा कि ग़ायब, बहुत ढूँढ़ा। मुझे शुरू से ही लग रहा था कि सब झूठ है। आग्रह कर रहा था कि अंकल जी कहीं चलें। आज शाम का खाना हमारी तरफ़ से है। मुझे नाहटा से मिलना था। बाहर काफ़ी देर तक खड़े रहे, स्कूटर ही नहीं मिला। अरविन्द घर जा रहा था, उससे कहा तो उसने हमें सागर छोड़ दिया। नाहटा के यहाँ गए। कोई नहीं, सिर्फ़ भाभी जी थीं। नाहटा कह गए थे कि ज़रूरी काम से जाना है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीघ्र ही आ जाऊँगा। नाश्ता लाकर रख दिया। दो-एक बार व्हिस्की के लिए पूछा तो मैंने हाँ कहा, पीटर स्कॉट रख गई। हम लोगों ने दो पिए। इस बीच वह इस फ़्लैट का दाम वग़ैरा पूछता रहा। मैंने बताया कि अब तो कम-से-कम पन्द्रह का होगा। नाहटा नहीं आए तो हम लोग विदा हुए। मैंने स्कूटर में उसे लालकिले पर छोड़ा। बोला, चाँदनी चौक में काम है। मैं समझ गया कि यहीं कहीं टिका होगा और अब इसे किसी दुकान पर बैठकर खाना खाना है। बहुत ज़िद करता रहा : अंकल जी, कल होटल आइए। सिनेमा देखेंगे, खाना खाएँगे...मैंने कहा देखा जाएगा। सुबह फिर फ़ोन आया। मैंने कहा रीगल पर मिल जाते हैं, स्टैंडर्ड में खाना खाएँगे या कॉफ़ी पिएँगे। मैंने बहुत कहा खाना नहीं। दिन में बब्बू, नीरा और बैनी साहब आनेवाले थे। सब आए। रवि बाबू को मैंने सारा क़िस्सा बताया। सभी ने एक मत से कहा फ्रॉड है। बीच में भी फ़ोन आया। पाँच बजे स्टैंडर्ड में मिलना तय हुआ। जाते हुए बैनी साहब रिवॉली पर उतर गए। किताबें देखता भटकता मैं ठीक पाँच बजे रीगल पहुँचा—तिवारी मौजूद। थोड़ी देर अपने दोस्तों को खोजते रहे। फिर दोस्त मिले—नाम शायद गुप्ता बताया। ऊपर गए। मालूम हुआ गुप्ता जी किसी कांट्रेक्टर के लड़के हैं और इन्हीं के माध्यम से तिवारी ने नेहरू प्लेस के शोरूम ख़रीदे हैं और उन्होंने सलाह दी है कि वहाँ शोरूम के बजाय कॉफ़ी शॉप खोली जाए। अब कह रहे हैं कि शिमला में मेन मालरोड पर आपकी इतनी बड़ी कोठी है, आठ-दस लाख लगाकर छोटा सा होटल खोला जाए। शिमला में होटल की बातें होती रहीं। तय हुआ कि कल तिवारी के साथ शिमला जाएँगे। बातचीत में गुप्ता बोला, "जैसे आप तिवारी जी नौकर हैं, ऐसे ही हम भी रहेंगे।" तभी तिवारी ने काटा, "हम क्यों नौकर होंगे...हम मालिक हैं।" ख़ैर, थोड़ी देर बातें करते रहे—इधर-उधर की। गुप्ता अपने बाप के दो लड़के हैं। बाप का पक्षपात दूसरे बेटे के साथ है। अलग रहते हैं। घर के खाते-पीते हैं। तिवारी प्लास्टिक के लिफ़ाफ़े में सूट के कपड़े लाया था। फ़ोन पर भी कहा था, अंकल जी यह तो हमारी तरफ़ से लेना ही होगा। मैंने कहा छोड़िए, यहाँ भी काफ़ी आग्रह किया : मैंने तो दो सूट गुप्ता जी को भी बनवा दिये हैं। हमारा तो यही सौक है अंकल जी...जब मैं आठ बजे उठने लगा तो बोला, अंकल जी, अभी कैसे जाएँगे ? अभी हम लोग खाना खाएँगे, सिनेमा देखेंगे। मेरे पास ये ओपन पास है...दिलवाए हैं। मैंने कहा, नहीं, मैं एक ही बार खाना खाता हूँ। नीचे स्कूटर में बैठकर हम आ गए। स्कूटर में बैठते समय उसने विदा दी। सूट के कपड़े हाथ में थे, मगर कुछ नहीं कहा। पहले कह रहा था कि ये तो आपके ही नाम के हैं, मैं साथ रख दूँगा। मैं चला आया। अब नाटक में मुझे भी दिलचस्पी आने लगी।

अगले दिन फिर अक्षर में हाज़िर...अंकल जी, अब हम शिमला नहीं जाएँगे। गुप्ता ने हमारे साथ ग़लत किया। आठ साल की दोस्ती के बाद...मैंने पूछा तो बताया कल हमने सिनेमा देखा, खाना खाया, होटल गए और रात को वह दस हज़ार माँगने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा। हमने पेमेंट लिया था एक पार्टी से, उसे पता था। हमने सोचा, अभी से अगर दस हज़ार माँग रहा है तो जब हमारे रुपए फँस जाएँगे, फिर तो बहुत तंग करेगा। शिमला का आइडिया कैसा लगा। मैंने धीरे से कहा, गुप्ता जी आपके दोस्त हैं, मगर...झट बोला, वह तो हमने आइडिया ही खत्म कर दिया। सूट के कपड़े मेरे कुर्सी पर रखे थे। सुबह उसका फ़ोन आया था, अंकल जी, हम तो चलते वक़्त भूल ही गए थे। यह तो आपको लेना ही होगा। अभी फिर ज़िद करने लगा। मैंने बताया, उसके सूट के आग्रह की बात बता दी। वह बोला, देखिए, हमने तो आपके लिए लिए हैं, हमें तो इधर-उधर करना होगा। एक तरह नाली में ही फेंकना होगा। ख़ैर, वह दो की ज़िद कर रहा था, मैंने एक लिया। कमीज़ का कपड़ा भी था। आज नया सूट पहनकर आया था। बोला, मैं तो एक सूट दूसरे दिन पहन ही नहीं सकता। बोला, अंकल जी, आपसे मिलकर जाता हूँ तो मुझे तुरन्त पेमेंट मिल जाती है। इसीलिए हमारी खुशी के लिए आप ये ले लीजिए। ख़ैर, मैं मान गया। फिर वह गाड़ी देखने गया।

उसने बताया हुआ था कि गाड़ी बनने दी है और उसमें पिस्टन इत्यादि डल रहे हैं। लम्बा काम है। मलिक साहब हँस रहे थे—आपको क्या था, आप दो ले लेते। एक हमें दिला देते...दो-तीन घंटे में फिर आया। इस बार गफ़्फ़ार दर्ज़ी को लेकर। वही पुराना लड़का। उसको शायद आश्वासन दे रखा था कि तुझे डी.डी.ए. की दुकान दिला देंगे। मेरे पास ड्यूक टेलर के लैटर पैड भी छोड़ गया था। अब बोला, राजेन्द्र प्लेस में, कनॉट प्लेस में कहीं भी दिला दीजिए...मैंने बताया कि विकास मीनार से फॉर्म लाकर पहले तो आप रजिस्टर होइए...अब वह यादव जी पर आ गया था। बोला, यादव जी, इन्हीं से क्यों नहीं अपना सूट बनवा लेते ? मैंने कहा, हमें क्या है अगर ये दो-एक दिनों में दे दें। नाप लिया गया, जिसे तिवारी लिखता गया। थोड़ी देर में कपड़े लेकर गफ़्फ़ार के साथ चला गया। फिर आया। बोला, आज हमने बहुत पैसा जमा किया। 18-20 लाख के ड्राफ्ट बनवाए। बैंक स्लिपें दिखाने लगा।

मैंने इस बार खुद देखी। पचास हज़ार, चार लाख, आठ लाख, पाँच लाख। एस.के. पांडेय एंड कम्पनी के नाम से जमा थी। बताया था, पांडेय एंड कम्पनी मेरी और मेरी माँ के नाम की पार्टनरशिप फ़र्म है और तिवारी एंड कम्पनी मेरी अपनी भदोही में। बाद में पच्चीस हज़ार का एक बियरर चैक देकर बोला, एक साहब ने हमें दे दिया है, अंकल जी, इसे आप कल निकलवा दीजिए अपने आदमी से। मैं तो आज चला जाऊँगा। यह निकालकर रख लीजिए। मैंने मना कर दिया, मैं किससे निकलवाऊँगा ? हज़ार-दो हज़ार तो मैं अपने आदमी से मँगा लेता हूँ। पच्चीस मैं नहीं मँगाऊँगा और ख़ुद लेने जाऊँगा नहीं। मैंने देखा, सेल्फ की स्पेलिंग सही नहीं थी। कहने लगा, आप रख लीजिए, मैं दो-चार दिनों में आऊँगा तो ले लूँगा। मैंने कहा, जैसे आपके पास रखा है वैसे मेरे पास। मैंने उसकी तरफ़ सरका दिया। तभी लोकभारती का रमेश आ गया। उसने अपना ब्रीफ़केस रखकर पाइप निकाला तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौंका, मेरा ब्रीफ़केस? इधर-उधर देखा। बाहर-भीतर, फिर सिर पकड़कर बैठ गया, शायद स्कूटर में छूट गया। पीछे रख दिया था। पूछा, "क्या था उसमें?... "थे थोड़े से पैसे। उनसे भी ज़रूरी काग़ज़ात।"..."कितने?"..."बीस निकलवाए थे, उसमें ग्यारह-बारह दर्जी को दे दिये। थे कोई साढ़े अठारह हज़ार"...हम सब चौंक गए। उसने दो-एक जगह फ़ोन किया, किसी पी.डी. गुप्ता को (जिसका बियरर चैक था), किसी रामअधार को। मालूम हुआ, गुप्ता जी बम्बई गए हैं। आदमी ने देखा, रामअधार ने खोजा। कहीं कुछ नहीं मिला। मैंने करन सिंह को साथ करके स्कूटरवाले की तलाश में भी भेजा। रमेश भी परेशान। सब ने कहा, पुलिस में रिपोर्ट करो। उसने पार्लियामेंट थाने को फ़ोन किया, वहाँ भी किसी से बातें कीं, अपना हरिद्वार का पता छोड़ा, फिर जब दरियागंज थाने के लिए हमने आग्रह किया तो एक और जगह फ़ोन किया : "सी.बी.आई.? आर्या साहब हैं? अच्छा, आप ही बोल रहे हैं।" फिर घटना का पूरा विवरण। वहाँ से भी कहा गया कि अब मिलना मुश्किल है। थाने में रिपोर्ट कराए। मैंने मार्कंडेय सिंह का ज़िक्र किया तो बोला, कुछ नहीं होगा। थानेदार पाँच-सात सौ और झाड़ लेगा। पहले भी ऐसा हो चुका है। मुझे लग गया कि यह पुलिस में रिपोर्ट नहीं कराएगा। पाँच-सात फ़ोन ज़रूर करेगा। आर्या को डी.आई.जी. सी.बी.आई. बता रहा था।

सुबह ही मैंने बिजली के लिए पैसे भेजे थे। घर पर डॉ. टी.एन. मदन आनेवाले थे। निकलने लगे तो बोला, "मैंने होटल में एकाध पार्टी को बुलाया है। यादव जी, कुछ रुपए होंगे?" मैंने दिखा दिये—पच्चीस-तीस रुपए हैं, उनसे काम चल जाए तो ले लीजिए। बोला, वहाँ तो छह-सात सौ का मामला है। कम-से-कम आठ सौ तो हों। मैंने शुरू से ही उसे बता रखा था कि पैसे मैं रखता नहीं हूँ। इतने होते भी नहीं हैं। चलते-चलते वह दो-ढाई सौ पर आ गया। वह भी नहीं थे। साथ बाहर निकले। कोने पर मलिक साहब की गाड़ी खड़ी थी, उसमें बैठकर चले तो आए, डर लगता रहा कि कहीं ताले-वाले को खोलने की कोशिश न करे। पैसे माँगते वक्त यही कह रहा था कि कल सुबह दस-साढ़े दस बजे की बात है। फिर तो आप दस-बीस हज़ार माँगेंगे तो दे दूँगा। पच्चीस का चैक है ही।

आते ही मैंने रवि बाबू को फ़ोन किया कि सुबह आते समय लोधी में पता लगाएँ। वहाँ फ़ोन किया—वहाँ से पता लगा कि न तो वहाँ कोई पी.एस. तिवारी है, न एस.के. पांडे कम्पनी का कोई नाम है। हरिद्वार से कोई आया ही नहीं है। 105 में कोई आर.एन. बिड़ला एक महीने से रुके हैं। ख़ैर, मदन आए, बीच में फ़ोन आया : "होटल से बोल रहा हूँ। बहुत थक गया हूँ। कोई पता नहीं लगा। आप परेशान हो रहे होंगे।" मैंने कहा, "मैं ख़ुद परेशान हूँ और आपको कांट्रेक्ट करने की कोशिश करने की बात सोच रहा था। मैं तो फ़ोन करनेवाला था।" चौंककर पूछा : "आपने फ़ोन किया था क्या?"..."नहीं।" फिर कहा, "आप होटल में ही हैं। अभी मेहमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, मैं थोड़ी देर में करता हूँ।'' बोला, ''नहीं, रहने दीजिए। मैं बहुत थक गया हूँ। खा-पीकर सोने जा रहा हूँ। सुबह बात करेंगे।''...''कोई बात नहीं...'' मैंने कहा। फिर आकर बातों में लग गया। हँसी आती रही, देखें, कल क्या होता है!

सुबह उसका भी फ़ोन आया। रवि बाबू का भी। वे रात को गए थे। वहाँ कोई आदमी हरिद्वार से एक महीने से नहीं आया। तिवारी बोला, ''हम तो जा रहे हैं। ग़फ़्फ़ार हमारा-आपका सूट लेकर आएगा। पैसे मैंने दे दिये हैं। आप सिर्फ़ रख लीजिए। नहीं गया तो आऊँगा।'' सुबह मन्नू ने भी पूछा था, ''होटल से ही बोल रहे हैं क्या? वे नहा रहे हैं, अभी कर लेंगे।'' मेरे पास नं. था ही। उधर से कहा गया— ''नहीं मैं तो निकल रहा हूँ। दफ़्तर में मिलूँगा।'' मुझे मालूम था, आएगा। मैंने वीणा को सब बता दिया तो भड़ककर बोली, ''मैं चाय को भी नहीं पूछूँगी।'' मैंने उसे सँभाला : खेल देखो। वह एक बजे के क़रीब घबराया हुआ आया : पता नहीं वह चैक कहाँ गया? बहुत देखा, मिला ही नहीं।'' मैंने कहा, ''आप यहाँ क्यों बैठे हैं, आपको तो बैंक में जाना चाहिए।'' बोला, ''मैं वहीं था। सब लिखकर दे आया हूँ। पता नहीं, कुछ क़िस्मत ही खराब है। इतना नुकसान हो गया। ख़ैर, नुकसान तो एक सौदे में भर जाएगा...'' मैं उसे खिला रहा था। चिन्ता, परेशानी, अफ़सोस। इस मामले में वीणा भी अच्छी एक्टर है। मलिक साहब भी झाँक गए। मैं सोच रहा था कि कब गुब्बारे में पिन चुभाई जाए। वह जाने के लिए पैसों की पृष्ठभूमि बना रहा था। बैंक के मैनेजर को भी फ़ोन किया। फिर एक चिट पर लिखकर अपने पास रखा। दूसरी चिट पर लिखकर मुझे दिया। होटल में सामान रखा है। ढाई सौ कम पड़ गए हैं। आप दे दें तो मेहरबानी होगी। बात हम दोनों के बीच ही रहेगी। अब समय आ गया था। मैंने चिट पेपर वेट के नीचे दबाई, ''तिवारी जी, ये पैसे आपको नहीं दे पाऊँगा। एक तो मेरे पास पैसे नहीं, यह मैं आपको कई बार बता चुका हूँ। दूसरे, आप बिल्कुल लोधी होटल में नहीं रुके हैं। मैंने फ़ोन किया और उधर के एक आदमी को भेजा था। आपके रुपए खो गए हैं, इसलिए आप परेशान होंगे। मैंने अपने साढ़ू साहब से कहा कि देखकर आएँ। जितने भी नाम बताएँ हैं, वहाँ इस नाम का कोई आदमी कभी नहीं ठहरा।''...''यादव जी ऐसा तो मत कहिए, आपका ख़याल है कि मैं झूठ बोल रहा हूँ?'' मैंने समझाया, ''मैं बिल्कुल नहीं कहता, आप झूठ बोल रहे हैं। मगर आप वहाँ नहीं ठहरे। नेशनल इंश्योरेंस के मैनेजर हैं मि. भंडारी। झूठ वे भी नहीं बोलेंगे। खुद जाकर देखा था उन्होंने। उस कमरे में महीने भर से एक बिड़ला डटे हुए हैं।'' कहने लगा, ''आप अभी फ़ोन से पूछ लीजिए—मैं ले चलता हूँ।'' मुझे लगा कि यह और झूठ बोलेगा, दयनीय हो जाएगा। कहा, ''आप झूठ बिल्कुल नहीं बोल रहे। लेकिन जैसा आपने कहा, आपके मामा और माताजी ज़बर्दस्ती आपकी शादी करा रहे हैं। हो सकता है, आप चुपचाप चले आए हों और अपना पता-ठिकाना किसी को न बताना चाहते हों। ऐसे में लोग अपने घनिष्ठ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घनिष्ठ मित्र को नहीं बताते।'' उसे एक सहारा और तर्क मिला। ठप्प पड़ गया। ''हम क्या करते, वहाँ उन्होंने एक लड़कीवालों को बुला लिया था। चले आए।'' मैंने सोचा, अब ठीक है। तीन-चार दिनों से वह बिल्ड कर रहा था कि ऐसी शादी करूँगा अंकल जी कि आप भी कहेंगे, क्या बात है। एल.आई.सी. के किसी अफ़सर की लड़की को अपनी बहन मानने की बात भी कह रहा था जिसके लिए लेडीज़ सूट लेकर गया था। बोला, हमारे पिताजी से घनिष्ठ थे—घर का उठना-बैठना वही निभा रहे हैं। अब बोला, अब हम चलते हैं। मैंने कहा, ''नहीं आप खाना खाइए।'' वह जाने के लिए जल्दी मचा रहा था। जैसे-तैसे एक पराँठा खिलाया। शायद मन्नू और सरयू जी आनेवाली थीं। फिर पता नहीं कि बनती चाय छोड़कर उठकर चल दिया। वीणा बुलाती ही रह गई। ''यादव जी, एक दिन जल्दी ही हम अपनी माँ को लेकर आएँगे तब आपको सारी स्थिति पता चलेगी...'' जिस तरह गया, उससे मुझे लगा, जैसे उसे डर हो गया था कि मैं कहीं पुलिस न बुला लूँ...अब वीणा मेरे ऊपर सवार हो गई, ''ऐसी भी क्या भलमनसाहत! आपको दया आ गई कि झूठ पकड़े जाने पर वह शर्मिन्दा होगा। उसको पीटना चाहिए था, पुलिस में देना चाहिए था।''

बहरहाल, तिवारी प्रसंग समाप्त। तब से मैंने सूट का भी पता नहीं लगाया। मलिक साहब ज़रूर छेड़ते हैं। कह गया था कि मैं सात को आऊँगा। सात को फ़ोन आया, ''यादव जी, मैं पांडे एंड कम्पनी का मालिक बोल रहा हूँ।'' मैंने कहा, ''तिवारी जी, क्या हाल है? कब आए?'' बोला, ''मैं तो हरिद्वार से ही बोल रहा हूँ।'' पूछा, ''सीधा डायलिंग है क्या?'' बोला, ''हाँ, है। वहीं से बात कर रहा हूँ। माताजी से बातें करेंगे?'' मैंने मना कर दिया, ''मैं उन्हें जानता नहीं। आप ही आइए...'' बोला, ''आऊँगा।'' शिवराम के बारे में पूछा—''कहाँ हैं? पता नहीं है बहुत दिनों से। धर्मशाला में ही हैं क्या?'' बोला, ''हाँ, वहीं हैं। जबकि शिवराम का पत्र आया था कि हालात इतने बुरे हो गए हैं कि वे लोग झुग्गी में शिफ्ट कर गए हैं। यह कहता था कि ''उन्हें दुकान खुलवा दी है। दो-तीन मशीनें हैं। मगर जिसके साथ काम कर रहे हैं, वह उन्हें धोखा देगा। नज़ीर मास्टर।'' शिवराम ने ऐसी कोई बात नहीं लिखी थी...बाद में मैं चीज़ों को जोड़ता रहा, क्या यह गैंग था या सबको यह धोखा दे रहा था? वह गाड़ी, मिस्त्री, बाद में गफ़्फ़ार टेलर फिर स्टैंडर्ड में गुप्ता...उसने मुझसे कोई बहुत उम्मीद लगाई थी या कोई और योजना थी? अगर असफल हो गया है तो शायद छोड़ेगा नहीं। जान तो बहुत कुछ गया है। हो सकता है, कोई उल्टा-सीधा फ़ोन आए, बेवकूफ़ बनाने की कोशिश करे...वीणा कहती है पूरा गैंग था...।

25.12.80

शायद इस साल की यह अन्तिम प्रविष्टि है। सोचा था कि जब और कुछ नहीं लिख रहा तो इस साल डायरी और नोट्स ही लिखूँगा। तय किया था कि इधर आलोचनात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखना बन्द। नतीजे में और कुछ भी नहीं लिखा गया। सिर्फ़ प्रेमचन्द वाला लेख ही लिखा गया। हाँ 'औरों के बहाने' किताब ज़रूर आई। सुन्दर और आकर्षक छपी है। उसका गैटअप सभी को आकर्षित कर रहा है। वैसे भी लेखों से मुझे बहुत सन्तोष है। अब जल्दी ही 18 उपन्यास तैयार कर डालने हैं। कोशिश तो कर रहा हूँ कि इस वर्ष कम-से-कम एक कहानी की शुरुआत या समापन तो हो ही जाए। समय भी अनुकूल ही है। मन्नू और टिंकू दोनों ही कलकत्ते गई हैं—पाँच जनवरी तक के लिए। मतलब कि मैं सारी एकाग्रता से लिख सकता हूँ। कोशिश तो करूँगा ही।

इस बीच 10 दिसम्बर को आगरा गया था...पारिवारिक सम्पत्ति के बारे में। मामाजी रामगढ़ से, लक्ष्मीनारायण जी जयपुर से आए थे। मैं घनश्याम के साथ ठहरा था। 9 बजे ही पहुँच गया। दस को हम लोग दोपहर बाद मिले और सभी कुछ शान्ति से तय हो गया। सत्ते को समझाना पड़ा। चारों दुकानें बाज़ार की, ऊपर के कमरों के साथ मैंने और हेमेन्द्र ने लीं। बाई वाले मकान का सौदा पहले ही भूपेन्द्र के साथ हो चुका था, उस हिसाब में उससे सात हज़ार और लिखा। मकान की क़ीमत एक बीस मानी गई। ऊपर सत्ते का जो लगा है, उसे निकालकर 93 हज़ार उसे देने की बात तय हुई। पाँच रुपए के काग़ज़ पर लिखा-पढ़ी हो गई। भूपेन्द्र और मालती का व्यवहार ठीक ही रहा। सुमन को वहाँ से हटा दिया। इस प्रकार बातें तो सब शान्ति से हो गईं—बशर्ते समय पर भूपेन्द्र रुपए दे दे, या सत्ते इस निर्णय पर दृढ़ रहे। मुझे इस बात में कतई दिलचस्पी नहीं थी कि क्या मिलता है। मैं तो चाहता था कि घर में शान्ति और सौहार्द रहे। 12 को मैं लौट आया। मन में फिलहाल सन्तोष ही है कि चलो, एक ज़रूरी काम हो गया।

परसों ही उदयपुर से लौटा हूँ। वहाँ तीन दिन का सेमिनार था। प्लेन से ही जाना-आना हुआ। तीन दिन वहाँ बहुत अच्छे बीते। वेददान हमेशा सेवा में रहा। एक दिन उसके यहाँ ही रुका। आनेवाले दिन डॉ. मेहता से भी मिला। मौसम आख़िरी दिन ख़राब हो गया था। अगले दिन जिस एरोप्लेन में आना था, कुहासे के कारण वह आया ही नहीं। तीन-चार घंटे बिताकर बोइंग से आए। परसों ही उषा भगत का फिर फ़ोन आया कि साढ़े छह पर जैसे भी हो आएँ। हस्बेमामूल मन्नू जाने में खिच-खिच कर रही थी। मगर जैसे-तैसे तैयार किया। ठीक साढ़े छह पर हम लोग अकबर रोड की कोठी में पहुँचे। रामकुमार, नामवर, नेमिजी, अशोक, कारंत, बंसी कौल, रघुवीर सहाय, दीना पाठक, मन्नू और मैं थे। सोचा था कि आध घंटे बातें करेंगे।

26.12.80

साढ़े छह पर इन्दिरा जी आईं। पहले बातें कृष्णामूर्ति से शुरू हुईं। फिर मैंने ज्ञानपीठ वाली उनकी बात से सिलसिला शुरू किया। हुआ यह था कि नोबेल पुरस्कार के दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मेम्बरों का इंटरव्यू 'टाइम्स' में छपा था। उसमें उन्होंने इस प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जवाब में कि अभी तक दो को छोड़कर एशिया के किसी देश को क्यों नहीं मिला, कहा था कि वहाँ का साहित्य बड़ा प्रिमिटिव है। कई लोगों ने हिन्दुस्तान ख़ासतौर पर हिन्दी के लिए कहा है कि वहाँ इस स्तर के लोग हैं। इस पर इन्दिरा जी ने कहा था कि वे लोग अभी तक कॉलोनियल मैंटेलिटी से सफ़र करते हैं। क्या इसका कारण हमारी अपने देश में स्थिति ज़िम्मेदार नहीं है कि हमें ठीक से प्रोजेक्ट नहीं किया जाता और इसी पर सारी बातें शुरू हुईं। सबसे अधिक सुझाव, विश्लेषण इत्यादि दिये अशोक वाजपेयी ने। एक ऐसा केन्द्र बनना चाहिए जो भाषाओं के आदान-प्रदान, अनुवाद इत्यादि की योजना ले। लेकिन सारी बातें मुख्य रूप से ललितकलाओं, विशेष रूप से मंच की गतिविधियों पर ही होती रहीं। मध्यप्रदेश में जो बातें अशोक ने की हैं, वे सचमुच उल्लेखनीय थीं और उनका बार-बार उल्लेख हुआ। वह साहित्य को समझता है, सारी सरकारी कार्य-पद्धति को जानता है और एक कुशल ब्यूरोक्रेट है। मुझे लगा, उसने काफ़ी प्रभावित किया और आगे भी महत्त्वपूर्ण होने जा रहा है। उसने पाँच करोड़ का बाक़ायदा एक प्रोजेक्ट दिया। बहरहाल कुछ हो या न हो, लेकिन बातें आधा घंटे नहीं, दो घंटे चलीं। इन्दिरा जी जैसे निश्चिन्त भाव और दिलचस्पी से सुन रही थीं, उससे आश्चर्य हो रहा था। लगता है, न कहीं आसाम है, न नासिक। सारे देश में त्राहि-त्राहि जैसी कोई चीज़ नहीं है, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ज्वालामुखी के मुहाने पर नहीं खड़ी है, न संजय मरा है, न ब्रजनेश आया था। चारों तरफ़ अन्धड़-तूफ़ान, गोलियाँ, लाठियाँ, रेप, टार्चर कहीं कुछ नहीं है—बस कला और मंच की ये समस्याएँ हैं जिन पर हम सात-आठ लोग बैठे बातें कर रहे थे। वर्तमान संस्थाओं का क्या हो, ब्यूरोक्रैसी क्या ये सारे काम करने देगी, फाइनेन्स मिनिस्ट्री कहाँ अड़ंगे लगाएगी इत्यादि पर बातें करते हुए बार-बार यही मुद्दा उठता था कि 'मैडम' चीज़ें तभी होंगी जब चीज़ें सीधे आपके साथ जुड़ेंगी। तभी प्रभावशाली और अड़चन रहित कार्यान्वयन होगा।

मेरे भीतर स्थिति की सच्चाई स्वीकार करते हुए बार-बार यह भी उठ रहा था कि क्या ये ही तरीक़े नहीं होते जिनमें हम अपने सारे निर्णय, अधिकार, स्वतंत्रता एक आदमी के ही हाथ में सौंपते चले जाते हैं। मान लीजिए, हमारी जगह आठ-नौ राजनेता होते और इसी तरह की बाधाओं, अड़चनों के डर से सारी चीज़ें इनके हाथ में सौंपने की पेशकश करते तो क्या अधिनायकवाद की ओर प्रेरित नहीं करते ? क्या हम ख़ुद ही अपनी लगामें सत्तावान के हाथों में नहीं थमा देते कि हमें चलाओ...हमें दिशा दो...हाँको...मगर आज स्थिति यह है कि ऐसा न सोचें तो कोई भी काम होता नहीं है, हो ही नहीं सकता—जाने कितने राजनीतिक और ब्यूरोक्रैटिक प्रभाव आएँगे, कौन-कौन असरदार आदमी अपने-अपने ऐंगिल फिट करेगा, नौकरियाँ और दूसरे फ़ायदे निकालने की तिकड़म करेगा और नतीजे में उद्देश्य भाड़ में चला जाएगा—रह जाएगा एक ढाँचा जिसे हर आदमी दुहने की तिकड़में सोचेगा। वर्तमान स्थिति में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम-से-कम एक व्यक्ति की शक्ति और प्रभाव से काम होना तो शुरू होगा।...और उनके जाने पर हम लोग अपनी-अपनी बातें सोचते हुए चले आए कि अगर कुछ हुआ तो हम कहाँ होंगे; मैडम पर हमने क्या प्रभाव डाला। हमें वे आगे कहाँ 'इस्तेमाल' करेंगी...ये सारी बातें सिर्फ़ अपनी मन बहलाव की बातें होकर रह जाएँगी या कुछ होगा भी...मन को सन्तोष दे रहे थे कि चलो, कुछ न हो अपनी बातें हमने मैडम तक पहुँचा तो दी ही। इन दो महीनों में मेरी उनसे यह दूसरी भेंट है—पहले रामगुलाम की पार्टी में हुई थी और उन्होंने खाने के बाद हॉल में मुझसे कहा था, ''आप तो मॉरिशस हो आए हैं। आइए, चाचा से बातें कीजिए।'' क्या उनके दिमाग़ में मुझे लेकर कुछ है? बच्चू बाबू और गिरिराज कहते हैं कि उनकी याददाश्त भयानक है; अब वे गिरिराज को दो-तीन बार मिलने के बाद चेहरे और पद से जानती हैं। ज़रूर कोई बात तो है ही...चलो, देखेंगे...।

परसों सुबह मन्नू-टिंकू को कालका में बैठाकर मैं नाहटा के यहाँ कटरा नील में गया। वहाँ उसका लड़का अशोक परसों गुज़र गया। कल उठावनी थी। उसमें भी मैं गया था।

28.12.80

अभी-अभी तीसरी या शायद चौथी बार 'तपस्या' फ़िल्म देखी है—टी.वी. में। इस फ़िल्म को जब-जब मैं देखता हूँ, मन बेहद उदास और अनमना हो उठता है। मुझे वहाँ राखी और परीक्षित साहनी नहीं दिखते: दिखती है मीता और मैं...इन्दु ने माँ-बाप के मरने के बाद सारी ज़िम्मेदारी सँभाली। छोटे-छोटे भाई-बहनों को पढ़ाया, उनकी शादियाँ कीं और अपने व्यक्तिगत को स्थगित करती रही—डॉ. सागर के प्यार के बल पर...पता नहीं, मीता को मेरा सहारा रहा या नहीं, मगर इसी त्याग और तपस्या से उसने भी तो अपने भाई-बहनों को जमाया है, उन्हें माँ-बाप या बड़ा भाई बनकर पाला है, अपने-आपको स्थगित करते हुए...मन पर बड़ा बोझ रहता है...मैं हूँ कि भरी-पूरी गृहस्थी बनाए सारी सुख-सुविधाओं के बीच बैठा हूँ। कभी-कभी होता है इस सबको छोड़-छाड़कर क्यों नहीं वहाँ चला जाता, जहाँ कोई अकेला, एकाकी तपस्या कर रहा है। मगर यह अब सम्भव कहाँ रह गया है...वहाँ भी और यहाँ भी। जाने कितनी विकृतियाँ, कुंठाएँ, शिकायतें आ गई हैं वहाँ भी। शायद दो दिन भी रहना असम्भव हो जाए...फिर भी एक अपराधबोध तो है ही कि कमज़ोरी मेरी ही रही है।

घर अकेला है। कुछ दिनों अकेले रहना अच्छा लगता है। पिछले ही दिनों से तो साजिद आया हुआ है, इसलिए शाम को बैठ जाते हैं रम लेकर...ठंड बहुत है का तर्क होता है। परसों निर्मला जी आ गई थीं और तय हुआ कि ताज में खाना खाने ले जाएँगी। नौ बजे गोलचा के सामने मिलीं और हम लोग ताज से खाकर आए। खाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा था। पप्पू ने शायद कम्प्लिमेंटरी दिलवाया था वर्ना बनते कम-से-कम दो-ढाई सौ रुपए तीन आदमियों के। कल साजिद की बर्थ-डे पार्टी थी। 20 की बजाय कल रखी थी। मलिक साहब के रोहतक रोड के फ़्लैट में। धुँआधार हुआ। लोग थे—विष्णु खरे, सुरेन्द्र वर्मा, सुकुमार चैटर्जी, सत्यव्रत मुखर्जी, शानी, मैं, मलिक साहब, त्यागी। अच्छी रही—मगर वही अश्लील मज़ाक़, वही गन्दी-गन्दी बातें...मुझे लगता है, बहुत हो गया है यह सब। एक तो इस साजिद की वजह से शराब-बाज़ी बहुत हो गई है, दूसरे अश्लील बातें भी हद से गुज़र रही हैं। शानी को तीसरे दिन इस तरह की थ्रिल चाहिए...शराब और महफ़िलबाज़ी, अड्डा मारना मुझे भी अच्छा लगता है—मगर शानी में जैसा उत्साह और तन्मयता है, उससे मुझे लगता है, ज़िन्दगी की गहरी सोच से वह बचता है। यह पलायन, सच्चाई का सामना न कर पाने की यह प्रवृत्ति उसे इस शराबबाज़ी की ओर ठेलती है। वैसे भी हम लोगों की भाषा में मुसलमान शारीरिक स्तर पर अधिक जीता है। मगर ज़िन्दगी की अच्छी चीज़ें, नियामतें अच्छी तो हमें भी लगती हैं। मन में धिक्कार ज़रूर रहता है।

शायद उसी का नतीजा है कि आज बेहद ठंड थी। और मैं सारे दिन कम्बल ओढ़कर सोया या लेटा रहा। एकाध पैग लेने की बात मन में आई भी, मगर फिर सोचा, बहुत हो गया है, अभी तो आगे नए साल की रात पड़ी है, उससे पहले भी एकाध बार होगा ही। छोड़ो। और टाल गया। आज अपने को घर में क़ैद करके इसी में लगाए रहा कि किसी कहानी पर सोचूँ, कुछ लिखने की कोशिश करूँ...कोई बात ही दिमाग़ में नहीं आती। अब पछता भी रहा हूँ कि कुछ न लिख पाता, सारे साल तो कम-से-कम डायरी ही लिखता। लिखने को टालकर अच्छा नहीं किया। जैसे कमज़ोर आदमी औरत के पास जाते डरता है, कुछ-कुछ वही हालत है।

1.1.81

फिर एक नया प्रारम्भ। कल घर पर हंगामा था। शानी, साजिद, सुरेन्द्र वर्मा, सुकुमार चटर्जी और बाद में त्यागी। मलिक साहब मेरे साथ ही थे। कुछ देर के लिए अजित भी आए थे। त्यागी पीकर आया था और यहाँ दो-तीन पैग में ही उखड़ गया। बकने लगा, बदमज़ा कर दिया सब कुछ। शायद उसके मन में बहुत गहरा हीनता बोध है—सुकुमार को लेकर। भड़का वह साजिद पर था। वातावरण में कटुता आ गई, एकाध बार रोक लिया मगर दूसरी बार बिना खाए चला गया। साजिद नॉनवैज लाया था और इस प्रकार हम पाँच-छह लोगों ने तीन बोतलें रम पी डालीं। खाना खाया और नया साल उतारा। यानी जैसे ही टी.वी. ने तारीख बदली, हम लोग गले मिले, विदा हुए। सुबह सोकर उठा तो पिछली रात का धिक्कार घुल गया था और एक अजब-सी खुशी-उत्साह अपने भीतर महसूस हुआ। लिखने-पढ़ने की बातें आईं, एक कहानी लिखने का मन हुआ। 'उसका बाल'। लगा, अब कहानियाँ मन में काफ़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जमा हो गई हैं क्यों न लिखना शुरू कर दिया जाए। मगर दो फ़िज़ूल के काम जान को लगे हैं : एक 'काला जल' की भूमिका और दूसरा वर्ष का सर्वेक्षण। कल हेमेन्द्र ने अपनी बच्ची की तसवीरें भेजी थीं, सूचना दी थी कि उसने बड़ौदा के पास कहीं दूसरी जगह नौकरी कर ली है, पैसे क़रीब 4 हज़ार मिलेंगे। अजीब-सी खुशी हुई। आज उसे तार किया। मीता को भी तार किया। उसकी कोई सूचना नहीं मिली...परसों निहाल सिंह साथ था, उसने बताया कि अपने बच्चों को लेकर आजकल 'चुड़ैल' वहीं जमी है, इसलिए कोई भी सूचना मिलने का कोई सवाल ही नहीं है। अक्षर में सबसे पहले वीणा ने बेहद आत्मीयता और सिंसियेरिटी के साथ शुभकामनाएँ दीं, फिर लोग आते रहे। क़ाज़ी अब्दुल सत्तार, द्रोणवीर कोहली, भीमसेन, सुरेश कोहली—सभी आए। सुबह राजी का फ़ोन आया। वर्ष बदलते ही पहला फ़ोन शर्माजी का मिला, फिर त्यागी का। कुछ मैंने किए। दिन में गिरिराज का फ़ोन आया। शाम को लौटकर टी.वी. देखा और अब सोने जा रहा हूँ। कल देर तक जगे थे। सुबह काला जल पढ़ूँगा, लिखकर देना है। इस प्रकार कुछ अलग ढंग से प्रारम्भ हो रहा है।

9.1.81

आजकल बासु यहीं हैं, फ़िल्म फ़ैस्टीवल के लिए। लेकिन कल पहली बार पड़ोसी मारवाह के यहाँ साथ बैठे। मैं इससे बहुत दिनों से बच रहा था। अपने लड़के को फ़िल्म में घुसाना चाहता है, पता नहीं, कहाँ से तय कर लाया। शायद वे लोग इसी सिलसिले में किसी फ़ंक्शन में मिले थे। बासु के साथ थे—रंजन बोस, रॉबिन गुप्त और खुद। हम भी तीन हो गए थे, निहाल सिंह, शानी और मैं। अच्छा ही रहा। हालाँकि हम सभी बहुत अनुत्सुक थे और मैं तो ख़ासतौर पर इसलिए कि पता है बासु कोई चांस देनेवाला नहीं है। कुछ उल्टी-सीधी बात कर देगा। मगर उसने निभाया। लड़के को सलाह दी। वह कितना सन्तुष्ट हुआ, पता नहीं। रात को ग्यारह बजे घर पहुँचे।

इधर शैलेश भी आया है। अपने मित्र योगेश अग्रवाल के साथ। वही अपना मुक़दमा लेकर। सुप्रीमकोर्ट में शायद कल आख़िरी तारीख़ थी। किसी के ज़रिए आर.के. गर्ग को किया था। फीस चाहे वह न लें, मगर डिपॉज़िट इत्यादि चार हज़ार होंगे, एक सामान्य ख़र्चा। इस तरह कुल पाँच। मैंने वायदे के अनुसार डेढ़ निकलवाकर दे दिये। मैंने स्पष्ट देखा, वीणा थोड़ी दंग हुई। मन्नू को बताया तो खुश हुई। मुझे खुद भीतर से सन्तोष मिला। न्याय को आख़िर तक देखा तो जाए। बता रहा था कि किस तरह रघुवंश और नरेश मेहता ने वायदा किया था, मगर जब ज़रूरत पड़ी तो ज़िक्र भी नहीं किया। फिर अपने तर्कों को बताता रहा जो उसने हाईकोर्ट में जज बख़्शी के सामने दिये थे। तर्क और बयान तो सचमुच ही ज़ोरदार थे। कल से ही बटरोही भी आया हुआ है। अजीब भुन्ना-भुन्ना-सा आदमी है। वह इन समस्याओं में शायद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बिल्कुल भी दिलचस्पी नहीं रखता था। उसे तो गिरिराज की तरह यही धुन थी कि उसकी कौन-सी किताब कहाँ से प्रकाशित हो। शायद नए लेखक की सबसे बड़ी समस्या भी यही होती है।

10.2.81

इधर दारू बहुत बढ़ गई है। मन्नू के इस आरोप में सच्चाई है कि जब से शानी आया है, प्रायः यह शराबख़ोरी नियमित हो गई है। कोई भी पाँच-छह दिन नहीं जाते। इधर तो लगातार ही रही है। दो-ढाई महीने से। हालाँकि पहले योगेश गुप्त के साथ था, मगर इतना नहीं। कारण हर बार यही होता है। यार मिले हैं तो हो जाए। आज बहुत ठंड है, आज फ़लॉ चीज़ सेलिब्रेट करनी है, कल सुरेश चला जाएगा, आज साजिद आया है। मतलब कोई न कोई तर्क और बहाना खोज लिया जाता है। और रोज़ बैठ जाते हैं। 31 दिसम्बर की रात को जब त्यागी बिगड़ा था तो हमें बुरा लगा था, मगर उसकी नाराज़ी भी सही है, वही शराब और नशे की बातें, वही अश्लील मज़ाक़—अपने अवचेतन की दबी हुई कुंठाएँ...कभी-कभी बेहद इंटेलिजेंट और साहित्यिक बहसें भी होती हैं, मगर अगले दिन उन्हें याद कौन रखता है? अर्थात् सब मिलकर एक-एक शाम सौ-सवा सौ रुपयों का हवन और चार-पाँच घंटे का नियमित और बाक़ायदा नाश...क्यों हम लोग इतना समय बर्बाद करते हैं? मुझसे इस तरह रोज़-रोज़ शराब नहीं चलती। वही संस्कार और कुछ ग़लत करने का बोध, आत्मा को कोंचते हैं। वैसे मैं न कभी अपनी क्षमता से ज़्यादा लेता हूँ और न कभी आउट होता हूँ। और यह भी सही है कि पीना बहुत ही अच्छा लगता है, मगर इसका यह अर्थ तो नहीं कि किसी के भी आने या कहीं भी जाने पर यह ज़रूर हो! साजिद के तो आने का अर्थ ही यह है कि जितने दिन वह यहाँ रहेगा, हम लोग रोज़ बैठेंगे। पिछले दिनों नया मेंम्बर निहाल सिंह भी रहा था, अब वह बाहर अमेरिका चला गया है। साजिद सौ-पचास रोज़ ख़र्च करता है, कहीं कैसे भी और किसी भी क़ीमत पर मिले वह ज़रूर दारू का प्रबन्ध कर लेता है, कभी मुर्गे, कभी सामी या टिक्के...दफ़्तर में रोज़ यह हो, यह न मुझे पसन्द है, न वीणा-कर्ण सिंह को। मन्नू को तो दस बार में एक बार ही पता लगता होगा। मकानवाले भी भीतर ही भीतर विरोध करते होंगे। हालाँकि आज तक न हमने कभी वाही-तबाही बका, न कभी कोई ऐसा काम किया कि आपत्ति हो—जैसे चार दोस्त मिलकर बातें-बहसें करते हैं, ठीक वही वातावरण रहा है। साढ़े नौ, पौने दस तक सभा विसर्जित...इसमें सबसे अधिक चिन्ता है—साजिद। उसके पास इतने रुपए कहाँ से आते हैं, वह क्या काम करता है, सौ-डेढ़ सौ रुपए रोज़ कहाँ से ख़र्च करता है—कोई नहीं जानता। बम्बई, कलकत्ता, भोपाल—कहीं भी घूमता है, अच्छे होटलों में रहता है और वहाँ पाँच-सात सौ रुपए रोज़ ख़र्च करता ही होगा। मैं बिल्कुल नहीं मानता कि उसका बिज़नेस, अलीगढ़ में इतना अच्छा है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह दस-बीस हज़ार महीना ख़र्च कर सकता है। पहले वह जब भी मिलता था, बिज़नेस की एक-न-एक स्कीम साथ लाता था। कभी प्रेस तो कभी बिना बिजली, डीजल, पानी फेंकनेवाला बूस्टर, कभी जापानी डैंचर तो कभी तार खींचनेवाला प्लांट। पहले मैंने भी दिलचस्पी ली, शर्मा जी से मिलाया—मगर अब चाहे वह मकान खरीदने की बात करे या नोएडा में शैड की—मुझे यही लगता है कि ये सिर्फ़ बातें हैं। कहीं न कहीं कोई घपला ज़रूर है। मगर वह क्या है, शानी कहता है कि पिछले आठ-दस सालों से वह इसी तरह रह रहा है, यों ही ख़र्च कर रहा है। शानी मज़ाक़ में कहता भी है कि तू अलीगढ़ का अपना पता किसी को क्यों नहीं बताता? कभी-कभी मुझे लगता है कि ऐसा न हो कि किसी दिन इसके बारे में जानकारी करती पुलिस आ पहुँचे। यह मैंने शानी से भी कहा। उसके पास काफ़ी पुराने सिक्के हैं, जिन्हें कभी वह अब्बा के दिये हुए बताता है, कभी कहीं पड़े हुए और एक-एक के लिए एक-एक हज़ार डॉलर की उम्मीद करता है। पाकिस्तान शायद मेरे परिचय के बाद (दो-ढाई साल में) तीसरी बार जाएगा। हो सकता है, बीच में चुपचाप भी चला गया हो। पहली बार अपने चाचा—जो अपनी बेटी के पास पाकिस्तान गए थे—से मिलने गया था, प्रापर्टी का चक्कर बताकर। मुझे लगता है, घपला यहीं है—या तो सऊदी अरब, पाकिस्तान से यहाँ पैसा लाने का माध्यम है या कोई और चक्कर है। आदमी इमोशनल, स्नेही, खुशदिल है—मगर उसकी किसी बात पर भरोसा नहीं होता। यों नाटक पूरा होता है शायद दोनों तरफ़। इकलौता लड़का है, बाप नहीं है, मम्मी सख़्त हैं और वही प्यार के लिए भूख है : ये सारी बातें मुझे कन्विन्स नहीं करतीं। हर बार वही शराब लाए और हम लोग बैठकर पीए। यह स्थिति वैसे भी मुझे बहुत अच्छी नहीं लगती। मगर मैं उसके हिसाब से एफ़ोर्ड भी नहीं कर सकता।

12.2.81

जैसे किसी के शरीर के हिस्से क्रमशः लकवे से मरते चले जाएँ, ठीक इसी तरह मुझे महसूस हो रहा है अपने भीतर, कहीं कुछ निरन्तर कुछ निर्जीव होता चला जा रहा है। वैसे तो बड़ा सुख है, शायद यही इस मौत का कारण है, सुबह पाँच-साढ़े पाँच पर उठना और फिर कुछ न कुछ पढ़ना, पौने सात चाय आती है। वहीं बैठकर आठ-साढ़े आठ तक चाय, पानी, अख़बार, फिर शौच, ब्रश शेव, कसरत, नाश्ता इसी सब में साढ़े नौ-दस बज जाते हैं और तब एकाध फ़ोन, अक्षर आने की तैयारी। प्रायः ग्यारह-साढ़े ग्यारह की बस लेता हूँ। बारह-साढ़े बारह तक यहाँ। यहाँ का काम, आने-जानेवाले, फ़ोन, चलते-चलते कुछ पढ़ना, छपनेवाली पुस्तकों में कुछ देखभाल, मित्रों से बातचीत, यहाँ आनेवाले लोगों का सिलसिला और शाम को कोई न कोई प्रोग्राम...कभी यहीं तीन-चार दोस्तों के साथ बैठकर शराब, अश्लील बातें, गम्भीर बहसें, परनिन्दा और आयोजन, या फिर कहीं न कहीं जाने का क्रम। कभी कोई गोष्ठी, कभी कोई फ़िल्म,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक या एक-दूसरे के यहाँ जाना...बस, यही दिनचर्या रह गई है। इसमें कहीं कोई परिवर्तन नहीं है। रात को साढ़े दस और ग्यारह बजे के बीच सोना। ज़िन्दगी कितनी नियमित-निर्धारित हो गई है। वही मशीनी रूटीन। बीच-बीच में किसी संस्था, सेमिनार के लिए बाहर दो-एक दिनों की यात्रा। मैं सोचता हूँ कि 'मर जाना' शायद इसी को कहते हैं। न कोई चीज़ याद रहती है, न आगे का कोई सपना आक्रान्त करता है। पीछे की मधुर स्मृति आगे का आकर्षक सपना दोनों ही अस्तित्व के लिए अपरिचित होते चले जा रहे हैं। बस बीच की जो ज़िन्दगी है उसे ही अनुक्षण जीकर समाप्त कर देता हूँ। कोई दुख भीतर से नहीं सालता और कोई खुशी मन को नहीं छू पाती। न कुछ बुरा लगता है, न अच्छा। न कहीं चिन्ता परेशान करती है, न निश्चिन्तता मुक्त करती है—कोई आशा-आशंका कहीं भी कुछ नहीं है। एक ख़ास तरह की अवसन्नता आस-पास आगे-पीछे के लिए। लगता है एक पारदर्शी सैलोफ़ीन के बोरे में बन्द कर दिया गया हूँ। जहाँ न कुछ मुझ तक आता है, न छूता है। जो कुछ है : वह है। पढ़ता हूँ और मन में आश्चर्य से भर जाता हूँ कि देखो, लेखक की याददाश्त कितनी अच्छी है, कैसे कौशल से वह परिवेश और व्यक्ति के महीन से महीन डिटेल्स याद रखता है, उचित समय पर उनका इस्तेमाल करता है।

इन दिनों मोपांसा की कहानियाँ पढ़ीं—कम्बख़्त को प्रकृति, वातावरण की कैसी जानकारी है—क्या निगाह पाई है और कैसी ख़ूबसूरती से सबको सही जगह फिट करता है। क्या सचमुच, अब मैं कभी ऐसा लिख पाऊँगा? क्या 'उखड़े हुए लोग' मेरा ही लिखा है, जहाँ एक-एक महीन डिटेल विस्तार से अंकित है। तब क्या चीज़ें मुझे याद रहती थीं या मैं उनका अन्वेषण करता था? वह कौन था जिसने पिछली कहानियाँ और उपन्यास लिखे थे? कहाँ चला गया वह? कैसी शिद्दत से महसूस होता है कि इस जीने का अर्थ क्या है? क्या ऐसा ही व्यर्थता-बोध होता है जब लोग अपने 'इस होने' को समाप्त कर डालते हैं? मैं नहीं कर पाऊँगा। वे लोग दूसरे होते हैं। मगर इसमें कोई शक नहीं है कि नीचे के सरदार, किसी क्लर्क या अफ़सर और मुझमें कहीं कोई अन्तर नहीं रह गया है। वही घिसी-पिटी ज़िन्दगी, वह दुनियावी चीज़ों के प्रति रवैया, वही हमेशा पैसों, चीज़ों या मैटीरियल वस्तुओं के प्रति लगाव—मकान की किस्तों की योजनाएँ...कहीं कोई उदात्त, ऊँचा और अतिक्रमित संसार नहीं...कभी लगता है, मन्नू की बहुत अधिक व्यावहारिकता ने शायद धीरे-धीरे मुझे अपनी निगाह में इतना व्यर्थ और उसकी दृष्टि में उपयोगी बना दिया है। पराक्रम सिंह जी, वसन्त बाबू साहब और पी.के. जैन जैसी ही तो ज़िन्दगी यह मेरे लिए बताया करती थी और धीरे-धीरे उसने वही मुझे बना दिया है। मुझे सुख-सुविधा और इन्हें बनाए रखने का साधन बनाकर मार डाला—सारी दुस्साहसिकता, एडवैंचरिज़्म और इनीशिएटिव छीन लिये। फिर लगता है, शायद यह हमारी पीढ़ी में सभी के साथ घटित हुआ है। औरों ने इस मृत्यु को सत्ता, साधन, सफलता, समृद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भर लिया है, सन्तोष खोज लिए हैं। अपनी झक में मैंने वह भी नहीं पाया, इसलिए वेक्यूम सारे दिन, हर पल मुझे खाता है...।

8.3.81

पिछले दिनों काफ़ी सस्पेंस रहा। हमें जाना था गुजरात। 27-28 को भावनगर में प्रोग्राम था और वहाँ से बड़ौदा, बल्लम विद्यानगर, बड़ौदा, अहमदाबाद, आनन्द। क़रीब 15 दिन उस दिशा में घूमने की बात थी। मैं और मन्नू। वह हिस्सा हमने देखा भी नहीं था। सोचा था कि दो-एक दिन हेमेन्द्र के पास भी रहेंगे। मगर उस सारे क्षेत्र में इतनी उथल-पुथल, आन्दोलन और हड़तालें थीं कि उसे कैंसिल किया। डॉ. मजीठिया का फ़ोन आया कि प्रोग्राम 20-21 मार्च को रख दिया है और हम लोग प्लेन से आ सकते हैं। मगर अहमदाबाद में पाँच घंटे रुककर, तीन-चार घंटे का बस द्वारा सफर। फिर भावनगर में शान्ति नहीं थी। अब सब मिलाकर तय हुआ कि अक्टूबर में ही ठीक रहेगा। इस बीच में शानी को बासु ने दसेक दिनों के लिए बुला लिया—बम्बई। शायद तीन बुड्ढ़ों की कहानी लिखने के लिए।

जो सबसे बड़ी घटना हुई वह यह कि शायद 28 फरवरी को शाम को फ़ोन आया, डी.पी. सिन्हा का, यादव जी साहित्य कला परिषद् ने तय किया है कि आपको सम्मानित करें। 5100 रुपए, एक शॉल और सरस्वती की प्रतिमा दी जाएगी।'' मैंने कहा कि ''मैं तो लेता ही नहीं हूँ।'' सिन्हा बोले, ''मैं व्यक्तिगत रूप से कह रहा हूँ—हम सब लोगों ने एक मत से यही तय किया है।'' ख़ैर, मैंने यह कहकर मना कर दिया कि जिस क्षण मैं स्वीकृति दूँगा, उस क्षण आप तसवीर से हट जाएँगे, 'साहित्य कला परिषद्' रह जाएगी। उस मीटिंग में उन्होंने मुझे भी रखा है और मुझे जाना था—मैंने न स्वीकृति भेजी और न गया। बाद में उसके दो-तीन रूप सुने, एक तो यह कि यह बात सिन्हा को अच्छी तरह मालूम थी कि मैं नहीं लूँगा, इसलिए उसने पहले मेरा नाम लिया और बाद में सर्वेश्वर दयाल का नाम स्वीकृत करा लिया। दूसरा यह कि मेरे बाद मन्नू का नाम आया तो निर्मला जी ने सीधे विरोध नहीं किया, मगर काट दिया, यह कहकर कि अगर महिला को ही देना है तो कृष्णा जी का नाम ज़्यादा है। मुझे तब से निर्मला जी पर ग़ुस्सा आ रहा है। यह औरत इतनी हिसाबी है कि अगर संयोग से इसके पास दो दाने भी आ जाएँ तो दुनिया भर के हिसाब लगाएगी। वैसे भी त्रीसियों जगह मन्नू को काटती रही है। निर्भर इस पर बिल्कुल नहीं किया जा सकता। पहले इसने 'सारा आकाश' काटने की बहुत कोशिश की थी, वह तो उदयभानु सिंह ने शायद नहीं कटने दिया। मलिक साहब कहते हैं, नगेन्द्र जी की कोई अच्छी बात इन्होंने ग्रहण की हो या न की हो, यह टुच्चापन ज्यों का त्यों ले लिया है। वह कुंजड़ों-जाहिलों की ज़बान में औरों का बखान करना, दुनिया भर के दंद-फंद करना और जिन्हें 'अपना' कहकर फ़ायदे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठाती है, सबसे पहले उन्हें ही काटना। तभी से मेरा मन हो रहा है कि या तो सम्बन्ध इनसे बिल्कुल काट लिए जाएँ या साफ़ बात कर ली जाए।

परसों अरविन्द के 'चयन' का उद्घाटन था और उसमें टी.एन. चतुर्वेदी मुख्य अतिथि थे। लेखकों की ओर से मैं बोला था, और मुझे लगा या औरों ने बताया कि बुरा नहीं बोला था। बहुत-से लोग थे और बहुत-सों ने तारीफ़ की थी। हालाँकि दो-तीन घंटे पहले ही हम लोग अनूप शहर से लौटे थे। एक दिन पहले अनूपशहर गए थे, घसीटकर ले गए थे याज्ञिक अपनी जन्मभूमि और पुरानी जगह दिखाने के लिए। वे दो-तीन महीने के लिए अमेरिका जा रहे हैं, इसलिए देश को लेकर, सम्बन्धों को लेकर बेहद भावुक हैं। राजी को भी साथ ही घसीट लिया था, हालाँकि सेठ साहब का न होना थोड़ा अजीब ही लगता रहा। हम लोग साढ़े तीन के क़रीब कार से निकले। मैं, मन्नू, याज्ञिक और राजी। सात के क़रीब अनूपशहर पहुँचे। इनके घर इत्यादि को देखा। हिन्दी साहित्य परिषद् की ओर से सेनापति के स्मारक का शिलान्यास था, क्षेमचन्द्र 'सुमन' का सम्मान था, कवि सम्मेलन था। उस दिन डेढ़ बजे तक कवि सम्मेलन भी सुना। यह देखकर अच्छा लगा कि कवित्त फिर से जाग्रत हो गया है, लोगों के गले अच्छे हो गए हैं और सारी की सारी कविताएँ राजनीतिक चुनौतियों से भरी हैं, सत्ता को चुनौती देते हुए : 'बाग़ी होना मजबूरी है।' और जनता मुग्ध—तीन-चार हज़ार की भीड़।

2.4.81

उत्पादन, रचनात्मकता से जुड़ना ही नैतिक मूल्यों के प्रति सजग होना है। हमारे राजनेता, पत्रकार चूँकि सत्ता-संघर्ष या खुशामद परस्ती से जुड़े हैं, इसीलिए किसी प्रकार की भी नैतिकता के लिए उनके मन में कोई सम्मान नहीं है : वे सबको आराम से कुचल सकते हैं। इन्हीं ग़ैर-रचनात्मक लोगों का सभी सत्ता सीटों पर अ़धिकार कर लेना ही आज के सारे नैतिक कैऑस के मूल में है। मूल्यहीनता के खेत में ही शतरंजी सत्ता के पैंतरे पनपते हैं। पहले वे रचनात्मकता से अलग हुए थे और तब उन्होंने मूल्यहीनता को जिया था, या पहले मूल्यों से जान छुड़ाकर वे रचनात्मकता के क्षेत्र में छा गए, यह अभी तय होना बाक़ी है।

21.4.81

सचमुच हफ़्तों हो जाते हैं, कलम हाथ में लिये हुए—भीतर से भय तो नहीं, एक ख़ास उदासीनता है। वही सुबह से शाम तक की भागदौड़, वही एक सुबह को खींच-घसीटकर रात तक ले आना और फिर आत्मधिक्कार और व्यर्थता-बोध को जीना... कभी कोई वक़्त होगा तब 'अपना' असली करेंगे—आज तो ये कर लें—चार दिन का ये झंझट है, फिर बैठेंगे...फिर करेंगे...उल्लू के पट्ठे आख़िर वह दिन कौन-सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा जब आप अपने से कहेंगे—हाँ, वह क्षण आ गया है, जब असली शुरू हो रहा है। यह समय बहुत हैक्टिक का रहा है, व्यस्तता को कभी दिल्ली पर, कभी अक्षर पर, कभी मन:स्थिति पर, कभी कब्ज पर—बस समय बिताना, ट्रैश पढ़ना और...

24.4.81

इस महीने की शुरुआत हुई थी अभिमन्यु अनत के साथ बैठक से, ये सब लोग विदेशों से आए थे। प्रेमचन्द अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार में हिस्सा लेने...चार तारीख को आगरा गए और वहाँ लक्ष्मीनारायण जी भी आए थे। सबने मिलकर घर के बँटवारे को अन्तिम रूप दे दिया। काग़ज़ पर लिखा-पढ़ी हो गई। सत्ते को उसके 91 हज़ार रुपए मिल गए। सामान सब उठ गया। सत्ते ने अलग जगह ले ली है। उसे भी देखा। कुर्सी मेज़ सभी का बँटवारा तकलीफ़देह था। मैं घनश्याम के यहाँ ही रुका था। पंखे, फ़र्नीचर, घर के और सामान सब कुछ दोनों भाइयों ने बाँट लिये। मैं जैसे भीतर से जड़ हो गया था। कहीं कुछ भी नहीं लग रहा था। बस, मन में यही था कि अब शायद इस घर में आना न हो। शादी-ब्याह पर कभी आए तो ठीक है। दो दिन लगातार सत्ते का कार्पेट ही तनाव का केन्द्र बना था। मालती बार-बार घोषणा कर रही थी कि मैं किसी भी हालत में कार्पेट नहीं दूँगी। क्योंकि पैसे मैंने दिये थे। इस बात के लिए शालिनी ने जयपुर से भी पत्र लिखा था कि कार्पेट सत्ते भाई साहब का है। सत्ते का कहना था कि मोहिनी, अम्मा, सुमन के साथ पसन्द करने मालती भी गई थी। जहाँ तक पैसों का सम्बन्ध है, उन दिनों यही चलता था कि भूपेन्द्र या मालती दे देते थे और हिसाब बाद में होता रहता था। इस झाँय-झाँय पर भन्नाकर भूपेन्द्र ने कहा कि चलिए बाई-पिताजी के तसवीर के सामने कहिए कि कार्पेट आपका है। दोनों झपटते हुए ड्राइंग रूम में गए और वहाँ सत्ते ने जब कहा तो भूपेन्द्र ने कार्पेट दे दिया। शायद उस समय घनश्याम भी था। चाँदी भी भूपेन्द्र ने सँभलवा दी। जिसे सत्ते सुमन के यहाँ रख आया। चलते हुए सत्ते हस्बेमामूल भावुक हो आया और जाकर बाई-पिताजी की तसवीरों के सामने रोता रहा। अजीब अन्तर्विरोध है इसमें भी। वह पैसों, चीज़ों और दूसरी दुनियावी चीज़ों में भयानक आसक्ति भी रखता है, हर चीज़ को छाती में समेटकर रख लेना चाहता है और फिर भावुक और विह्वल होकर रोता भी है। मेरा भाई, मेरे माता-पिता, उनका मकान—ऐसे स्वार्थी आदमी का यह सारा रूप देखकर झुँझलाहट ही आती है कि तुम्हें जो मिलना था, मिल गया। अब यह नाटक करने की क्या ज़रूरत है। कभी-कभी सोचता हूँ, एक स्वार्थी और टुच्ची औरत ने आकर सारे घर को किस तरह तितर-बितर कर दिया। सबको अपमानित, लांछित किया और सब कुछ दबाकर बैठ गई।...अभी काग़ज़ भूपेन्द्र के पास है। दुकानों को उसने मुझे दे दिया है। बँटवारे के काग़ज़ों पर हेमेन्द्र के हस्ताक्षर हो जाएँगे तो फिर फ़ोटो स्टेट हम सबको मिल जाएँगे। फिर मैं दुकानदारों को ख़त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखूँगा और कोशिश करूँगा कि दुकानों को बेच दूँ... चलो, झंझट ख़त्म हुआ। अब अपनी-अपनी ज़िन्दगी है, अपनी-अपनी दिशाएँ हैं।

पिछले बुध, यानी 15 को टीन.एन. चतुर्वेदी जी से उनके घर मिले। काफ़ी देर बातें हुईं। गम्भीर लेखकों और पत्रकारों की बातें, सरकारी पत्रिकाओं को मिलाकर एक अच्छी मासिक पत्रिका की बातें और ख़ुद एक पत्रिका निकालने या 'सरस्वती' को पुनर्जीवित करने की बातें। सरस्वती को लेकर चतुर्वेदी जी भावुक हो गए। मैंने कहा यह हिम्मत तो तभी की जा सकती है जब आप आठ-दस हज़ार साल भर खरीदने का आश्वासन दें। कैसे, कहाँ के बाद उन्होंने कहा कि साल से काम नहीं चलेगा, दो साल के लिए पाँच हज़ार प्रतियों का वायदा तो किया जा सकता है। तभी उन्होंने बताया कि भगवतीशरण सिंह भी 'सरस्वती' लेने की बात कर रहे थे। मैंने कहा कि न उनके पास साधन है, न विज़न। इसी सिलसिले में 'हिन्दी डायरेक्टरेट' में किसी युवा अफ़सर को लाने की बात भी मैंने कही ताकि केवल सेमिनारों और मीटिंगों में ही वह इधर-उधर न भागता फिरे, बल्कि कुछ काम भी करा सके...ख़ैर, काफ़ी कुछ सुन छोड़कर आया उस दिन। अशोक वाजपेयी से लेकर सेवाराम शर्मा और कमलकान्त द्विवेदी, गिरिराज किशोर सभी का ज़िक्र आया कि वहाँ कौन ठीक रहेगा...ख़ैर, वहाँ से आया तो बहुत प्रसन्न था और दिमाग़ में चर्खी चल रही थी कि कैसे 'सरस्वती' को लिया जाए। कैसे उसे चलाएँगे, क्या व्यवस्था होगी ? लालानी, रमेशचन्द्र अग्रवाल, मलिक साहब, अरविन्द कुमार किसके साथ मिलकर इसका ढाँचा खड़ा करना है ? अभी किसी को यह सब बताना नहीं है, यह तय था। मगर मेरे मन में बात टिकेगी कैसे ?

और उसी दिन शाम को शानी आ गया और हम लोग (मेरा ख़याल है) गम्भीरतापूर्वक बिना किसी तीसरे की उपस्थिति या शराब के काफ़ी गम्भीर बातें करते रहे। तभी मैंने 'सरस्वती' वाली बात बताई कि 18-19 को इंडियन प्रेस का महत्त्वपूर्ण डायरेक्टर कल्याण घोष आ रहा है। तभी हम लोग हो सकता है, इस सारी बात को अन्तिम रूप दे दें। अब तो कल्याण घोष की प्रतीक्षा। मलिक साहब से कैसे और क्या बातें करनी हैं, किस तरह हम लोग सिर्फ़ बकवास करते और चार-चार घंटे बर्बाद करते रहे हैं, यही सारी बातें होती रहीं। इतना बड़ा प्रकाशन है, क्यों न इसका सही उपयोग किया जाए ?

पिछले शनि को जाना था मुझे सिरसा। तय हुआ कि वे लोग नामवर और सुषमा स्वराज को लेते हुए हमारे यहाँ आएँगे और सुबह आठ बजे निकल लेंगे, ताकि एक-डेढ़ तक पहुँच जाएँ। ढाई बजे पुस्तक का विमोचन है। उससे एक दिन पहले ही मैंने भूमिका लिखकर दी थी। उन्होंने रात में ही छपाई होगी। लेकिन ये लोग आए बारह बजे। नामवर को कोलरा के इंजेक्शन लगने थे, क्योंकि 25 को वे वियतनाम जा रहे थे। रास्ते भर सुषमा जी से गप्पें लड़ाते गए। युवा, सुन्दर, इंटेलिजेंट, पढ़ी-लिखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिला है जिसने एक बार देवीलाल की मिनिस्ट्री को हिलाकर रख दिया था। मैंने ध्यान दिया कि वह स्थान-स्थान की भाषा की ऐसी सुन्दरता से नक़ल कर लेती थी और काफ़ी कुछ पढ़ी-लिखी थी। यहाँ सुप्रीमकोर्ट में एडवोकेट थी। ख़ैर, हम लोग शाम को छह बजे पहुँचे और आध घंटे में ही पुस्तक-विमोचन का कार्यक्रम शुरू हो गया। मैं बहुत ही ख़राब बोला। नामवर भी बहुत फीके थे। जमाया सुषमा ने। वह तो एक तरह से उस क्षेत्र की हीरोइन है। एक लेखक सुखचैन सिंह भंडारी, बन्दूकों के व्यापारी और लेखक ज़बर्दस्ती पकड़कर ले गए घर। डिप्लोमैट पिलाई और बाहर होटल में आकर खाना खिलाया। क्योंकि पहले सोचा था कि आठ बजे रवाना हो जाएँगे। मगर फिर सोचा ड्राइवर रोहतास भी थका हुआ है, छह घंटे की यात्रा है, कहीं झपकी न आ जाए। सुबह जाने की बात तय हुई। रात को कवि-सम्मेलन था और उसका संचालन सुषमा ने किया था। जब हम चुपचाप श्रोताओं में पहुँचे तो कवि सम्मेलन को शायद घंटा भर हो चुका था और सुषमा क्रमशः हर कवि की कविताओं से महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए अपनी कविताओं और शायरी के मोती पिरोती हुई भाषण दे रही थी। सारे दिन का सफ़र, फिर ग्रन्थ विमोचन इत्यादि, फिर रात को एक बजे कवि-सम्मेलन का संचालन—बोलने का इतना सुन्दर ढंग। उसकी एनर्जी और याददाश्त...सचमुच मैं दंग रह गया। यह औरत तो अद्भुत है।

16.5.81

कल 'अठारह उपन्यास' किताब की पहली प्रति छपकर आई। शायद सुन्दर ही बनी है—हालाँकि छपी उतनी अच्छी नहीं है। चूँकि समर्पण मीता के लिए है, इसलिए पहली प्रति भेज दी। मगर सच बात है कि खुशी बिल्कुल नहीं हुई। कहीं भी कुछ हो जाए, कोई खुशी नहीं होती। परसों सुरेश जिंदल आया था, फ़िल्म बनाने की बातें करता रहा, ढाई सौ की किताबें ले गया। कल कोई जगदीश बंसल आए थे—बंटी की बातें करते रहे। राखी हीरोइन होगी, संजीव या डॉ. लागू में से कोई डॉ. जोशी बनेंगे। पैसों की बातें करते रहे। अपनी तरफ़ से बहुत देर बाद बीस हज़ार की बात कही, मैंने डायलॉग और कहानी के लिए फ़ियेट की बात की। ख़ैर, अगले महीने आने को कह गया है।...इधर जो दूसरी सबसे बड़ी बात हुई है वह है 'सरस्वती' का फिर से जागना और मेरे दिमाग़ में फिर पत्रिका की चर्खी। एक चित्रकार हैं सत्यसेवक मुखर्जी...वे इंडियन प्रेस के रोहतक रोड वाले मकान में रहते हैं। हम सबको जानते हैं; एक बार आए तो बताने लगे कि इंडियन प्रेस वालों के कितने निकट हैं। मैंने उनसे सरस्वती वाली बात कही तो बोले, हो जाएगा। मैं होली पर जाऊँगा और सारी बातें तय कर आऊँगा। ख़ैर, दो-तीन महीने बाद कल्याण घोष आए। वे देने को तैयार हैं लेकिन एक भावुक मोह है कि हमारा भी कुछ रहना चाहिए। हम लोग तैयार थे कि बाक़ायदा ऊपर नाम जाएगा, 'चिन्तामणि घोष इंडियन प्रेस इलाहाबाद द्वारा संस्थापित'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर वे मिल्कियत देने में हिचकिचाते रहे। जाकर जवाब देने को कहा। बात घर की रही और पिछले दिनों मुखर्जी से यह भी तय हो गया कि चलिए, एक रुपए साल की रॉयल्टी तय हो जाती है। अब मैं अक्सर सरस्वती के सपने देखता हूँ—उसकी कैसी रूपरेखा रखेंगे, दाम कितने होंगे (चार) पाँच को शिक्षा मंत्रालय लाएगा, किसी व्यापारिक संस्थान से तय करके शुरू करें। बीसेक हज़ार प्रतियाँ रीडर्स डाइजेस्ट की तरह बँट जाएँगी—अस्सी साल की पत्रिका । दुनिया की सबसे पुरानी पत्रिका है। अगर ठीक से पब्लिसिटी की जाए तो सर्कुलेशन तीस-पैंतीस आसानी से किया जा सकता है, लालानी बीस हज़ार का पुरस्कार देना ही चाहता है, क्यों न हर अंक में पाँच हज़ार रुपया उससे लेकर नाम देते हुए पारिश्रमिक दिया जाए। मैं सौ प्रतिशत आश्वस्त हूँ कि पत्रिका ज़रूर-ज़रूर चलेगी। मगर शुरू में पब्लिसिटी और तीन-चार अंकों की व्यवस्था चाहिए—एक डेढ़ या दो। मैंने सबसे पहला ऑफ़र मलिक साहब को दिया है कि अगर सुरेन्द्र जी चाहें और इसके लिए आप एक फंड अलग रख सकें तो इससे अच्छी व्यवस्था दूसरी नहीं हो सकती, आप जब कह देंगे और खुशी-खुशी अनुमति देंगे, तभी किसी दूसरे से बात करूँगा। जिससे बात करूँगा, वह भी बता दिया : या तो अरविन्द होगा या रमेश अग्रवाल...पाँच-सात लोग जमा हों और करें, यह असम्भव है। होगा किसी एक के साथ ही...।

पिछले 26 अप्रैल को मैं, मलिक साहब, शानी और साजिद अलीगढ़ और वहाँ से नरौरा गए थे। जगह तो सुन्दर थी ही। बेहद ही मस्ती की। एक मिनट मैं पॉल के यहाँ भी झाँका था, वहाँ मुन्ना मिल गया और उसने बताया कि निहाल सिंह ने वही नौकरी कर ली है, दुबारा...।

9.6.81

पहले तो सिर्फ़ लिखने की समस्या थी, अब तो जैसे डायरी या 'व्यक्तिगत' लिखना भी स्थगित होता जा रहा है। बिल्कुल टिपीकल क्लर्कों वाली ही ज़िन्दगी रह गई है। सुबह पाँच-छह के बीच में उठे। अख़बार न आने तक कुछ पढ़ते रहे और फिर मुहिम शुरू हुई पेट साफ़ करने की। पानी, चाय, सिगरेट आठ-साढ़े आठ तक शेव-ब्रश और यह सब करके कुछ कसरत...पेट को रोकने की, फिर नाश्ता। कुछ इधर-उधर की टाल-मटोली, पन्द्रह-बीस मिनट की नींद और प्रस्थान। वहाँ वही आने-जानेवाले लोग। शाम को कहीं का कुछ प्रोग्राम, किसी से मिलना-जुलना और वापसी, कभी देर से कभी जल्दी। इस बीच में '18 उपन्यास' किताब भी आ गई है। एक किताब का बहाना और है। 'उपन्यास : स्वरूप और संवेदना'...मगर लगता है, क्रियेटिविटी तो शायद हर स्तर पर ख़त्म हो गई है। पहले कम-से-कम समीक्षात्मक तो लिखता था, 1 जनवरी 81 से तय किया कि वह भी नहीं लिखूँगा। छोटा-मोटा कुछ लिखा होगा। अपने को 'भूखा मारूँगा' शायद तभी कुछ लिखने का मन हो। एक व्यर्थ, पशु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन से प्रायश्चित्त—या उसे अतिक्रमित करने का भाव ही कुछ लिखने की मजबूरी भीतर से महसूस कराए। इस रचनात्मक शून्य की भीतरी पहचान के लिए इन दिनों मैंने फिर पढ़ा, 'स्नोज़ ऑफ़ किलिंजारो'। लगा कि हैमिंग्वे ने भी इस शून्य को जिया था। मैं तो शिद्दत से कुछ भी नहीं महसूस करता। पहले जीवन के बारे में, अपने आसपास के सम्पर्कों के बारे में उदासीन था, अब हर बात-विचार के बारे में भी यही दृष्टिकोण है। सेंसियरिटी, इमोशन सब कुछ हो रहे हैं और इसके प्रति विद्रोह के सबसे पहले स्वर आज मैं पकड़ पा रहा हूँ...।

हुआ यह कि टिंकू को मेरा पाइप पीना बेहद नापसन्द है। पिछले दिनों मुझे यह चीज़ कुरेदती रही है कि मेरा उसके साथ कोई संवाद नहीं है। मन्नू और टिंकू आपस में बहुत अच्छी दोस्त हैं, एक-दूसरे पर विश्वास, भावना और भौतिकता के स्तर पर आपस में निर्भर करती हैं। इस घर में मैं अपने को एक ऐसे फ़ालतू चूतिये की तरह महसूस करता हूँ जो सुबह अपने अख़बार किताबों में डूब जाता है, दस-ग्यारह पर अक्षर, शाम को आया तो टी.वी. फ़ोन, पढ़ना या फिर देर से आना। एक तरह हज़ार रुपए देकर मुक्त। सिर्फ़ जिसकी उपस्थिति जैसे-तैसे बर्दाश्त की जा रही है। कभी सिनेमा, नाटक या किसी के यहाँ आना-जाना। मैं जानता हूँ मेरे इस रवैये को, रहने को दोनों ही नापसन्द करती हैं और रिजेक्ट करती हैं। मन्नू अब नहीं बोलती—या बहुत कम। टिंकू के चेहरे पर तनाव और नापसन्दगी दिखाई देती है। मुझे मालूम है, टिंकू के जो 'मूल्य' बन गए हैं उनमें सिगरेट, शराब, पार्टियाँ, शान-शौकत का बहुत बड़ा स्थान है। टिपीकल कालेबाज़ारियों की आकांक्षाएँ हैं! विदेश, विलायती नामों वाली चीज़ें। मगर मेरे पाइप के प्रति गहरी वितृष्णा। गाड़ी में मत पीजिए, हमसे बात करते समय मत छुइए, कमरे में कुछ देर तो बिना इसके रहिए। निश्चय ही यह तम्बाकू या पाइप के प्रति नापसन्दगी नहीं है, या तो यह वह संचित विद्रोह है जो किसी भी बहाने से फूट निकलता है। मानो वह अपने प्रति ज़िन्दगी-भर की उपेक्षा का बदला है, या मन्नू के विद्रोह-विक्षोभ का एक मुखर विस्तार—ए लाउडली एक्सप्रेस्ड एक्सटेंशन। मानो मेरे सबसे अधिक निकट, ज़रूरी और अनिवार्य चीज़ को तिरस्कृत करके अपने अनकहे विद्रोह की अभिव्यक्ति...या इसके अलावा क्या है, मैं समझ नहीं पाता और तीन-चार दिनों से लगातार सोचे जा रहा हूँ। ज़िन्दगी के जिस तौर-तरीक़े को मैंने पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों में स्वीकार कर लिया है। उसे ग़लत, अनुचित सिद्ध करने की अवचेतन कोशिश...इस पर मैं अभी और सोचूँगा...यह मुझसे या मेरे सबसे प्रिय से चिढ़ अकारण नहीं है।

मन्नू आजकल डॉ. कृष्ण शर्मा के यहाँ है। पहले इन्दौर चली गई थी। आई तो एकान्त में अपना नाटक पूरा करने वहाँ चली गई। मुझे लगता है, निर्विघ्न एकान्त के अलावा दो कारण और भी हैं: या तो अपनी लम्बी अनुपस्थिति से वह टिंकू और मेरे बीच एक संवाद की गुंजाइश बना रही है या फिर अपनी नाराज़ी प्रकट कर रही है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि मैंने '18 उपन्यास' पुस्तक को ज़िन्दगी में खुले रूप में मीता को समर्पित किया है। इन्दौर से आई थी, तब देखा। बोली कुछ नहीं। मगर बात बुरी लगी है, यह तो बहुत ही साफ़ है। शायद यह वह जानती है कि मेरा उससे अब कोई सम्पर्क नहीं रह गया है।

20.7.81

आज 'अक्षर' से तीस हज़ार का ड्राफ्ट बब्बू (आनन्द बोर्डिया) के नाम बनवा दिया। कल शायद फ़ियेट 'अक्षर' के नाम हो जाएगी। पिछले पन्द्रह दिन इसी परेशानी में गए। बब्बू की पोस्टिंग लन्दन में फ़र्स्ट सेक्रेटरी की तरह हो गई है और उसे इसी महीने की छब्बीस को जाना है। पिछले दो महीने से आपस में चर्चा चल रही थी कि उसकी गाड़ी लें या न लें। टिंकू-मन्नू निरन्तर आग्रह कर रहे थे। मैं बाद के ख़र्चे सोचकर चुप था। फिर लगा कि 'अक्षर' के नाम से ले ही लेना चाहिए। रुपयों के लिए भाग-दौड़ शुरू हुई। मलिक साहब ने उस समय आठ ही कराए। दस नाहटा से लिये, तीन निर्मला जी वाले जैन साहब से, पाँच टिंकू के हिसाब में अरविन्द से। फिर भी आज पता चला कि तीनेक सौ कम हैं। ख़ैर, किसी तरह ड्राफ़्ट बन गया। अब मुझे परेशानी है कि हर महीने का हज़ार-पन्द्रह सौ का ख़र्चा कैसे चलेगा? अगर मैं सीखूँ भी तो दो-चार महीने लगेंगे। इरादा है, भोलेश्वर और मैं सीख लें। तब तक साढ़े चार-पाँच सौ का ड्राइवर रखो, कर्ज़ा चुकाओ और फिर इस सफ़ाई को बनाए रखो कि यह गाड़ी बब्बू की है जो छह-आठ महीने में ले जाएगा, वर्ना हमारी और अक्षर की हिम्मत कहाँ कि एक और गाड़ी ख़रीद सकें। नीचे फुटपाथ पर दो गाड़ियाँ रहेंगी तो सरदारों के दिमाग़ में अलग साँप लोटेगा। मुझे अभी भी लगता है कि ग़लती हो गई। मगर अब तो सँभालना ही है। अभी तक तो मैंने किसी को, यहाँ तक कि मलिक साहब तक को नहीं बताया है। एक चिन्ता यह भी है कि चौधरी-धीरेन्द्र या औरों को पता लगेगा तो यही सोचेंगे कि अक्षर में अन्धाधुन्ध प्रॉफ़िट है और राजेन्द्र मस्ती मार रहा है। गाड़ी चाहे दस रुपए की हो, मगर संख्या में दो होना ही अपने-आपमें चर्चा का विषय होगा। 'अक्षर' में कभी गाड़ी होगी, यह तो सभी के लिए कल्पनातीत बात थी। मुझे तो आज भी विश्वास नहीं है कि...।

28.7.81

आनन्द 26 की सुबह लन्दन के लिए रवाना हो गया। शायद तीन साल बाद आएगा। हम लोग रवि बाबू के यहाँ रात को 11 बजे ही उसे विदा देकर आए। गाड़ी एफ.डब्ल्यू.बी. 61 फ़ियेट अक्षर की हो गई। 30-35 दिनों में शायद ट्रांसफ़र भी हो जाए। लोग तो शायद गर्व से अपनी गाड़ी दिखाते होंगे। मुझे छिपाना है कि हमने गाड़ी ले ली है। दूसरा चाहे शुद्ध डिब्बा हो और स्कूटर के दामों से कम में खरीदी हो मगर है तो सही। लोग सोचेंगे, पता नहीं, कहाँ से फट पड़ा है कि दो-दो गाड़ियाँ रखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए हैं। अभी तो मुझे यही कहना है कि बब्बू छोड़ गया है—हमें बेचनी है। ठीक दाम लगेंगे तो किसी को दे देंगे। अब सबसे बड़ी दिक्कत आएगी इसके इस्तेमाल की। हज़ार रुपए महीने का ख़र्चा बढ़ेगा। ड्राइवर का इन्तज़ाम क्या हो, इस पर बहुत सिर खपाने के बाद यही तय हुआ कि भोलेश्वर को अक्षर में रख लिया जाए और सुबह पाँच-साढ़े पाँच से छह-सात तक किसी को लगाकर सिखाया जाए। महीने भर में सीख लेगा। हमारे और भोलेश्वर के बीच तय हुआ है कि साल भर उसे केवल सौ रुपए मिलेंगे, बाक़ी पैसा सीखने में लगनेवाले पेट्रोल इत्यादि में जाएगा। सीखने के बाद वह ग्यारह-साढ़े ग्यारह पर मुझे लेकर आएगा, फिर बस से वापस। पाँच बजे चलकर फिर यहाँ और जहाँ भी आना-जाना हो या सीधे घर लौटना हो। किसी के साथ निकलना हो तो गाड़ी यहीं छूटेगी। घर पर बर्तनों के लिए किसी और को रख लेंगे। इस तरह भोलेश्वर को भी एक कौशल हाथ आएगा। अब कर्ज़ा कैसे उतारा जाए, मेरा दिमाग़ इसी में लगा रहता है।

रविवार, 26 जुलाई को निर्मला जी आई थीं घर। 18 को उनका इंटरव्यू था और उसमें वे चुन भी ली गईं। यानी दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रोफ़ेसर हैड होंगी। दूसरा नम्बर डॉ. ओमप्रकाश का है। कौन हो दोनों में से, पिछले दिनों यही द्वन्द्व और राजनीति चल रही थी। इंटरव्यू से पहले मैंने बता दिया था कि इसमें नामवर से जो भी होगा, ज़रूर करेंगे। हालाँकि उन्हें आपसे शिकायतें हैं, मुझे भी हैं लेकिन बाद में ही बताएँगे। रविवार को फ़ोन आया। शिकायतों वाला प्रसंग हो जाए। मैंने कहा, ई.सी. की मीटिंग हो जाए। सारी बातें अन्तिम रूप ले लें। फिर सोचा, उसके बाद तो वे खुद अत्यधिक व्यस्त हो जाएँगी। इसलिए बुला लिया। इधर-उधर की बातें होती रहीं। असली बातें बहुत बाद में आईं। मैंने सीधे ही पूछा कि आपकी ऐसे कितने लोगों से मित्रता है जो न तो कृपा लें, न कृपा दें? यानी न आपके विभाग के हैं, न ही सत्ता में? सचमुच निर्मला जी को सोचना पड़ा तब मैंने शुरू किया कि आदमी की कल्चर वहाँ दिखाई देती है जहाँ वह ख़र्च करता है और कैरेक्टर वहाँ दिखाई देता है जब उसके हाथ में शक्ति आती है। शक्ति या सत्ता के साथ ट्रैजेडी यही है कि उसे हमेशा अपने-आपको बनाए रखने के लिए थर्ड-रेटर्स चाहिए। इंटेलिजेंट लोग हमेशा उसे ख़तरा लगते हैं। सत्ता की सुरक्षा के लिए आपके लिए भी अनिवार्य हो जाएगा कि डॉ. नगेन्द्र की तरह बेवकूफ़ों और मूर्खों को अपने आसपास जमा करें। पूछा—''आपको आशंका है, मैं डॉ. नगेन्द्र हो जाऊँगी?'' मैंने कहा, ''पूरा विश्वास है कि आप वही हो जाएँगी।'' बोलीं, ''मैं तो उनके तौर-तरीक़ों और जमूरों को बुरी तरह लताड़ती रही हूँ।'' मैंने कहा, ''जिसे आप बहुत प्यार करते हैं, उसे जान-बूझकर और जिससे अज़हद घृणा करते हैं उसे अनचाहे और अनजाने ही अपना आदर्श या मॉडल बना लेती हैं। आपने, हो सकता है, उनके तरीक़ों से नफ़रत करने के दौरान उन्हें अपनाया हो!'' और सारी बातें इसी साफ़ भाषा में हुईं। मैंने कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''उन्हें लगता रहा हो कि घोड़ा ख़तरनाक है और गधा उपयोगी। इसलिए उन्होंने गधे चुने और दूसरों को या अपने-आपको विश्वास दिलाते रहे कि उन्होंने घोड़े ही चुने हैं! नतीजे में घोड़ों के अस्तित्व से ही उन्हें नफ़रत हो गई। यह बेईमानी और बेग़ैरती उनमें थी ही, इधर उनमें एकैडेमिक डिसऑनेस्टी भी ज़बर्दस्त रही है।'' मैंने उनके 'साहित्य कोश' के उदाहरण दिये।

31.7.81

कल निर्मला जी की नियुक्ति ई.सी. द्वारा पुष्ट हो गई। मैं किताब, 'अठारह उपन्यास' लेकर गया था। वहीं भेंट की। वर्मा मुझे पकड़कर नाहटा के यहाँ ले गया था। शालीमार वाली अपनी जगह की बात करने। वसन्त विहार की भी बात करने। उसे लगा : नाहटा तो ऊँचा आदमी है। उसने ही निर्मला जी के यहाँ छोड़ा। तब तक पता नहीं चला था। डॉ. नगेन्द्र पता लगाकर आए। 'कुत्ते हैं, भौंकते हैं' की भाषा के साथ उन्होंने सफलता की सूचना दी। उन्होंने ही मुझे घर तक छोड़ा...परसों रंजन आ गया था। मोटा हो गया है। उसे मैं ऑब्ज़र्वेशन हाउस ले गया। वहाँ समाज-विरोधी कार्यों के लिए सज़ायाफ़्ता या बिगड़े हुए बच्चे आते हैं। उमेश सहगल सोशल वेलफेयर के सेक्रेटरी बने हैं। उन्होंने एक बच्चे—स्वर्ण कुमार का जन्मदिन मनाया था। जैनेन्द्र जी, मैं और मन्नू, यशपाल जैन इत्यादि आए थे, शर्मा-शर्मी भी थे। अपनी तरह का नया आयोजन था। हम सभी काफ़ी प्रभावित थे। जैनेन्द्र जी को मैंने '18 उपन्यास' किताब दी। वहाँ से हम सभी रविबाबू के यहाँ डिफ़ेन्स कॉलोनी गए। और रंजन फ़ियेट लेकर साथ आया। इस तरह एफ.डब्ल्यू.बी. 61 अपने दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई। जब पाँच लीटर पेट्रोल भरवाया, 30.25 पैसे दिये तो धक्का लगा। क्या लगभग रोज़ इतना ही नहीं भरवाना पड़ेगा? तय यही किया कि इसकी ट्यूनिंग इत्यादि कराके पहले भोलेश्वर को सिखाना शुरू कर दिया जाए। कल ट्यूनिंग नहीं हो पाई। अब शायद रविवार से भोलेश्वर का प्रशिक्षण शुरू होगा। कहीं लगता ही नहीं है कि मैंने अक्षर के लिए गाड़ी ख़रीद ली है।

लगभग पिछले पूरे महीने 'अन्ना कैरेनिना' सम्पूर्ण और असंक्षिप्त पढ़ता रहा हूँ। अभी भी क़रीब 400 सौ पन्ने बचे हैं। कैसे धैर्यपूर्वक सद्भाव के साथ बदमाश ने उपन्यास लिखा है!

13.8.81

परसों पंकज सिंह ने कहा था कि वह मुझसे शान्ति से कुछ बातें करना चाहता है। मैंने कल सन्ध्या के लिए कह दिया। ठीक छह बजे आ गया। मेरा ख़याल था कि अक्षर में बैठकर ही बातें करेंगे मगर वह घर जाने की तैयारी करके आया था। ख़ैर, स्कूटर किया और हम लोग घर पहुँचे। मन्नू उपन्यास के डायलॉग लिख रही है, अमाल के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए। कपड़े बदलकर हम लोग इधर ड्राइंग रूम में बैठ गए। तब उसने एलिज़ाबेथ के साथ के अपने सारे सम्बन्ध विस्तार से बताए। पेरिस का रहना, वहाँ के झगड़े, तनाव, यहाँ आने के बाद उसका दो-तीन बार आना और महीने-महीने को आकर रहना। फिर एक हल्की-सी कटुता के साथ विदाई। हर बार 'लैट्स ब्रेक' के साथ बात शुरू करना और मधुर स्मृतियों की भागीदारी याद करना, फिर निकट आना। सब कुछ बहुत विस्तार से उसने बताया। मैं सुन रहा था और सोच रहा था, पंकज सिंह जो एक-एक रुपए की तकलीफ़ में रहता है वह यों जनपथ, मौर्या, वोल्गा में खाने, टैक्सियों में घूमने, साड़ियों सिल्क की खरीदारियों की बातें कैसी कैजुअलीटी से कर रहा है! उसने अगर तीन हज़ार ख़र्च किए होंगे तो इसने भी हज़ार तो ख़र्चे ही होंगे। ऊपर से मैं उसके सारे क़िस्से सुनता रहा और मैंने सारी बातें सुनकर निर्णय दिया कि चूँकि तुम्हारी सेक्स ज़िन्दगी बहुत ही तृप्तिदायक रही है, इसलिए 'लैट्स ब्रेक' कहने से यह सम्बन्ध टूटेगा नहीं, लेकिन बहुत स्मूथ ही चले, यह भी मुझे नहीं लगता। जब तक कोई और उसकी जिन्दगी में न आता, तुम्हारे साथ यों ही चलेगा। वह फ्रांस में जाकर जमना चाहता है। मैं इसके पक्ष में नहीं हूँ। वैसे वह सुनना यही चाहता था कि सम्बन्धों के ये तनाव बहुत स्वाभाविक हैं। अकेली बच्ची होने के ये मानसिक विकार हैं जो तुम्हें भुगतने ही हैं। और हम विदेशी लड़कियों के भारतीय जोड़ों पर देर तक बातें करते रहे। वह उसके उच्चवर्ग की होने और उसके क्रान्तिकारी चरित्र के बारे में बताता रहा। ऊपर से जुझारू और लड़ाकू यह लड़का भीतर से बहुत भावुक है और मुझे दूसरे सैकड़ों लोगों की तरह इसका भविष्य भी वही लगता है। यहाँ रहेगा तो उसकी सुविधाओं के लिए साधन जुटाएगा, वहाँ रहेगा तो दोनों जगहों की वास्तविकता से कटा रहेगा। सम्बन्धों के जो भी शेड्स उसने बताए, वे कहीं मुझे अपने भी लगे। जब उसने कहा, फ्रांस में मुझे ऐसा लगता था, जैसे मैं एक मुर्दा हूँ, क्योंकि वे सारे सपने, कविताएँ मेरे मन में उगनी बन्द हो गई थीं जिन्हें मैं यहाँ जीता था तो मुझे लगा, वह अपने बारे में नहीं, मेरे बारे में बोल रहा है। मैं भी तो एक डैड मैन हूँ। मेरे मन में भी ये सब अब कहाँ आते हैं...हम लोगों ने टॉल्स्टॉय, सौमित्र मोहन, योगेश गुप्त, विष्णु खरे, शानी— सभी के बारे में बातें कीं। रात को देर तक खाने के कारण यहीं रुका। सुबह मेरे ही साथ बस में निकला। एक शाम उसके साथ बिताकर अच्छा लगा।

18.8.81

15 अगस्त को टी.वी. में लालकिले का प्रोग्राम देखकर, छुट्टी के दिन मैं हस्बेमामूल सो गया। जागा, एक सपने से। वह सपना अभी भी मेरे सामने बहुत साफ़ है। आज भी मैं उस सपने को जैसे बिल्कुल साक्षात् देख रहा हूँ : कहीं दो-चार लोग किसी मुद्दे पर बहस कर रहे हैं। पास ही एक कुएँ का मुँह है, बहुत तराशा हुआ—सुथरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह शायद अभी कुछ समय पहले तैयार हुआ है। मैं अचानक उस कुएँ में छलाँग लगा देता हूँ। कुआँ बेहद गहरा है। देर तक मैं उसमें गिरता रहता हूँ, दोनों तरफ़ की काली, खुरदुरी दीवारें ऊपर भागती रहती हैं। मैं तौंदे की तरह नहीं गिर रहा, जा रहा हूँ—जैसे मंज़िल से ज़मीन की तरफ़ जाते हैं। धप् से मैं तली में जा खड़ा होता हूँ। कुआँ सूखा है, नीचे कोयले और मिट्टी का चूरा बिछा है। नीचे खड़ा होकर मैं ऊपर देखता हूँ, कहीं कोई सिरा नहीं दिखाई देता। मैं ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ें लगाता हूँ : 'डॉ. विनय...विनय... !' और मुझे लगता है, मेरी आवाज़ ऊपर तक नहीं पहुँच रही। गूँज जैसी कुछ पहुँची भी होगी तो इतनी नहीं होगी कि बहस करते लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सके। मैं घबरा जाता हूँ और पहली बार मुझे आतंक महसूस होता है, अगर किसी ने ऊपर कोई आवाज़ नहीं सुनी तो ? मुझे कूदने से पहले कुछ करके आना चाहिए था। और जाग जाता हूँ!...अब अगर यह रूपक या प्रतीक है तो बहुत बेहूदा और घटिया है। मैं एक गहरे कुएँ में पड़ा हूँ और मेरी आवाज़ किसी तक नहीं पहुँचती—अपनी स्थिति का इससे अधिक फूहड़ रूपक क्या होगा ? हज़ारों बार का घिसा-पिटा...मगर मुझे लगता है, यह बहुत गहरा है। ऊपर बातों में लगे आदमियों के चेहरे और पहचान याद करता हूँ, क्या वहाँ विनय था ? शायद नहीं। रचनात्मक अन्धकूप से विनय कैसे निकालेगा ? विनय को न तो मैं ऐसा तेज़ और समझदार आलोचक समझता हूँ, न उससे इतना घनिष्ठ हूँ। महीने में एक-दो बार आध घंटे के लिए मिलता हूँ। फिर इस सबका अर्थ ? इन दिनों तो कोई ऐसा नया रियलाइज़ेशन हुआ नहीं है। पढ़ रहा था उन दिनों टॉल्स्टॉय का 'पुनरुत्थान'। उसमें भी कोई ऐसी घटना या स्थिति नहीं है। फिर यह सपना क्यों आया और अभी तक याद क्यों है ? विनय अगर समीक्षक का प्रतीक है तो क्या मुझे इस कुएँ से समीक्षक निकालेगा ? नीचे जो कोयले और मिट्टी का चूरा बिछा था वह क्या था ?

बहरहाल, 'कुआँ गूँजता है' नाम से एक कहानी जैसी कुछ ज़रूर ध्यान में आती है, फिर सोचता हूँ, क्या इसे अपनी दसियों सालों से प्रतीक्षित, अलिखित कहानी 'गड़ा खज़ाना' का हिस्सा बनाया जा सकता है ? सपनों का भी अजीब हाल है, अभी-अभी एक सपना देखकर सुबह पाँच बजे उठा हूँ : 'कोई खबर देता है, आपके वो जो छोटे भाई हैं न, (हेमेन्द्र) उनको लाठी...' बात ऐसी जगह टूटती है जहाँ दोनों अर्थ, उन्होंने लाठी से किसी को मारा और उन्हें लाठी लग गई। यह एक दिमाग़ी फ़ितूर भी हो सकता है। किसी सच्चाई की सूचना भी, क्योंकि सुबह ही देखा है। क्या एक तार डालूँ या पहुँच जाऊँ ?

21.8.81

कल फिर अपना जन्मदिन है। कौन-सा पता नहीं। पचास-इक्यावन के बाद शायद उम्र की गिनती रखना छोड़ देता हूँ। यही बहुत है कि एक और जन्मदिन मिल गया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अतिरिक्त उपलब्धि। जैसे आप अपना मूल खा चुके हैं और सिर्फ़ सूद पर जीवित हैं। बहरहाल, फ़र्क़ क्या पड़ता है। जो कुछ बन पड़े वह करो और जियो—एक धुँधला-सा सपना पाले रहो कि आपके हाथों कभी कुछ महान होगा। पिछली बार अपने से प्रॉमिस किया कि इस वर्ष रचनात्मक लेखन में फिर आ जाऊँगा, आलोचना बिल्कुल भी नहीं लिखूँगा। मगर लिखा सब वही और बुरा नहीं लिखा। 'औरों के बहाने' किताब आई, 'अठारह उपन्यास' आया।

11.9.81

कल से एक समस्या सामने है। 'अक्षर' में एक लड़की काम करती है, वीणा चाँदना। शुरू से ही मैं उसे बीना कहता हूँ। अच्छी चुस्त, एक्टिव और सज-सँवर ले तो—देखने में भी बुरी नहीं। सबसे बड़ी बात यह कि बहुत ज़िम्मेदार, ईमानदार और भली—किसी हद तक इमोशनल...दो साल हो गए। 29 अगस्त, 1979 को आई थी मिलने, 31 से काम पर। मैं उस पर अक्षर के सिलसिले में बेहद ही निर्भर करने लगा हूँ। सभी कुछ सँभाले है। मुझे बिल्कुल चिन्ता नहीं है कि कब कहाँ आना या जाना है। यहाँ सभी की प्रिय है—अब उसे छेड़ते भी हैं और पसन्द भी करते हैं। परसों अचानक निर्मला जी ने कहा कि उन्हें एक हिन्दी स्टेनो-टाइपिस्ट चाहिए। शुरू में एडहॉक बेसिस पर रखेंगे, फिर पक्का कर देंगे। वेतन होगा सात-साढ़े सात सौ के बीच। बीना को मैंने आश्वासन दिया था कि जब भी कोई सरकारी नौकरी मिलेगी—या कोई अच्छी जगह आएगी तो मैं खुद तय कर दूँगा। समस्या आर्थिक तो है ही, इन लोगों के यहाँ लड़की की अगर सरकारी नौकरी हो तो शादी भी ठीक-ठाक हो जाती है। यूनिवर्सिटी से बत्रावाला इसका घर दो मिनट का रास्ता। मुश्किल से तीन-चार किलोमीटर। इससे अच्छी नौकरी और वह भी सुविधाजनक जगह इसे कभी नहीं मिलेगी। आज इसी बारे में फिर निर्मला जी से और पक्की बात हुई। अब मैं तभी से देख रहा हूँ कि अक्षर और अपने-आपको देखूँ या फिर बीना और उसके भविष्य को? सारी बातें दिमाग़ में आती हैं। आने-जानेवालों की ऐसी आवभगत करती है जैसे घर आए हो! चाय-पानी सभी ख़ुद लाती है। ज़रूरत पड़ने पर पोंछा भी लगा सकती है। जिस तरह घर पर आदमी सारा काम करता है, वैसे ही सब सँभालती है। अब नए सिरे से फिर किसी को ट्रेंड करो, अपनी और अपने दोस्तों की आदतों का अभ्यस्त करो। सुबह दस बजे आओ, दफ़्तर खुलवाओ और छह बजे तक रहो। सिखाओ, उसकी आदतें, कमज़ोरियाँ समझो। पहले सुषमा गई, अब यह जाएगी। यह सच है कि अगर मैं चाहूँ तो बिल्कुल नौकरी नहीं मिलेगी। मगर क्या यह उसके हित में है? आख़िर मुझे भी तो एक भरोसे का एक सहायक चाहिए। मैं क्या लोगों को सिर्फ़ ट्रेंड करता रहूँ और फिर उनका हित देखकर अपने को सीढ़ी की तरह इस्तेमाल होने दूँ? मुझे यह लगने लगा था कि घर पर जो अटैंशन, सेवा, सहायता या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केयर नहीं मिलती, वह यहाँ मिल रही है। हो सकता है, मैं निहायत सामन्तवादी ढंग से सोच रहा हूँ, मगर लड़की हो, बहन हो, पत्नी हो या ऐसी सहायिका—शायद इस उम्र में आदमी को एक सहायक तो चाहिए ही। लेखक की तरह भी, आदमी की तरह भी और कम्पनी चलानेवाले की तरह भी। मैं जानता हूँ कि यह कमीनापन मुझसे नहीं होगा कि मैं उसकी उन्नति में रोड़ा अटका दूँ। मगर परोपकार का यह सुख आख़िर ले कहाँ जाएगा ? मैं लोगों को नौकरियाँ और सुविधाएँ ही जुटाता रहूँगा मगर बहादुर को मैंने रमेश जी के यहाँ लगवाया, सुषमा को साहित्य कला परिषद्, अब बीना को यूनिवर्सिटी। यों जिसकी जो मदद होती है करता ही रहता हूँ, चाहे वह गिरिराज हो या शानी, शैलेश हो या कमलेश्वर। जैसे शिवराम को तो दसियों हज़ार से मदद की है। और आप खुद वहीं के वहीं...घरेलू नौकरी में रामू, किशन, भोलेश्वर—सभी को अच्छी जगह लगाया है, लगाना चाहता हूँ। मुझे अच्छा भी लगता है। मगर होगा क्या इस सबसे ? कभी सोचता हूँ कि कर सकता हूँ, इसलिए करता हूँ, वर्ना कर भी कौन पाता है। फिर भी बीना ने मन उदास तो कर ही दिया है।

30.9.81

आज बीना ने यूनिवर्सिटी जॉयन कर ली होगी। कल रो रही थी। भावुक भी है और मजबूर भी। रोती इस बात से है कि 'आपको बहुत असुविधा हो जाएगी। मैं पहले ही कहती थी कि इतना निर्भर मत कीजिए।' तकलीफ़ तो ख़ैर, मुझे भी है और ख़ासतौर से इसलिए कि दूसरी लड़की का इन्तज़ाम नहीं हुआ है। वैसे भी सारे दिन गुलज़ार तो रखती ही थी। काम सारा सँभाले थी।

30.10.81

लगता है, अक्षर में कोई काम ही नहीं है। बीना थी तो चिट्ठियाँ थीं, किताबें आती-जाती थीं, लोग आते थे। सब जैसे एकदम रुक गया है। परसों आई थी और रो रही थी। सचमुच यहाँ से, मुझसे, सभी से बहुत ज़्यादा जुड़ी हुई थी। नया प्रबन्ध कुछ नहीं हुआ है। दो-एक दिन देखकर विज्ञापन दूँगा। कैसी व्यवस्था होगी, कैसी लड़की आएगी, कितने दिनों में ज़िम्मेदारी सँभालेगी, सभी कुछ सोचने-देखने की बात है।

परसों—यानी 1 अक्टूबर को हमें मिश्रा जी—बबली के यहाँ खाना खाने जाना था। हुआ यह था कि वेददान ने उनसे ज़िक्र किया था कि आपका जनता से जुड़ा होने का दावा कहाँ तक सही है, पूरे लिंक-हाउस से कोई हिन्दी की पत्रिका नहीं निकलती। उन्होंने कहा कि हम खुद ही इस पर विचार कर रहे हैं, राजेन्द्र जी से बातें करेंगे। चार-छह दिन रुककर मैंने फ़ोन किया और वेददान वाली बात का ज़िक्र किया। वे तो अत्यन्त उत्साह में आ गए। बोले : मैं चाहता हूँ, सारी बातें हो जाएँ तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं पाँच को चीन जा रहा हूँ। पीछे इन्हें एस्टीमेट इत्यादि के लिए बता जाऊँगा। आकर फ़ाइनल कर लेंगे। मन्नू छह बजे यहाँ आ गई। ठीक साढ़े छह बजे राकेश नाम का ड्राइवर आ गया। हम लोग सर्वप्रिय विहार पहुँचे। मन्नू शुरू से बहुत उत्साहित नहीं थी। मिश्रा जी ने बताया था कि उन्हें चीनी दूतावास में उनकी वर्षगाँठ पर रिसैप्शन में पहुँचना है। थोड़ी देर की माफ़ी दे दें। ख़ैर, वहाँ कमीज़, पैंट में प्रमिला लुईस नाम की महिला थी। वह भी बबली के साथ काम कर रही है। पति अंग्रेज़ हैं और ऑक्सफ़ोर्ड के डायरेक्टर हैं। इन दिनों पाकिस्तान में हैं। गाँव की समस्या पर देर तक बातें करते रहे। तब बबली और मिश्रा जी आए। बबली यानी रेणुका यानी बब्बू की बहन अपना परिवार, पति, बच्चे और घर छोड़कर मिश्रा जी के साथ रहने लगी है और महरौली के मज़दूरों में काम कर रही है। कैसे—वह दो पत्रिकाएँ निकालती है! रहते पति-पत्नी की तरह ही हैं। ख़ैर, हिन्दी पत्र को लेकर बातें हुईं। मैंने उनका आइडिया पूछा। बड़ा नाज़ुक था यह पूछना कि आप पहले कांग्रेस के एम.पी. थे। अब कैसे रायसीना पब्लिकेशंस प्रा.लि. एसोसिएटेड (या ऐसा ही कुछ) जर्मन्स लिं. के मैनेजिंग डायरेक्टर, बालिया ट्रस्ट के सेक्रेटरी कैसे हो गए? ख़ैर, डर वही था कि कहीं हर जगह कम्युनिस्ट रूसी भक्ति का आग्रह न हो क्योंकि यह पूर्वग्रह ही पत्रिका को मारता है। उन्होंने कहा, नहीं, यह आग्रह नहीं है बल्कि हम इस आग्रह को छोड़ रहे हैं। मैं तो फ़िल्म बनाने की बात पर भी विचार कर रहा हूँ। पत्रिका क्या हो, यह सोचना है। दिनमान, रविवार या क्या? 'इंडिया टुडे' वग़ैरा सोचते हुए जब उन्होंने पूछा कि आपके मन में क्या है तो मैंने कथा-पत्रिका वाली बात बताई। वही कि दस हज़ार से शुरू करके पचास तक ले जाना है। बोले, प्रोडक्शन का ख़र्चा मैं निकलवा लूँगा। आपकी तरफ़ कितना होगा। मैंने सोचकर बोलने को कहा। यह भी बता दिया कि नौकरी की भाषा में मैंने कभी नहीं सोचा। मुझे छोड़कर ख़र्चा लगभग दस आएगा।

5.11.81

उधर मन्नू के यह कहने पर कि ये तो ऐसी योजनाएँ बनाते ही रहते हैं, बबली समझ रही थी कि मिश्रा जी के साथ दिक्कत यह है कि ये अगर किसी काम को ले लेते हैं तो पूरा कर डालते हैं। और अपनी जान को बीसियों चक्कर लगा रखे हैं। ख़ैर, मैंने बात को मज़ाक़ में उड़ा दिया कि एम्बेसेडर अगर खाली है और उसमें अगर दो आदमी बैठते हैं तो न अतिरिक्त श्रम पड़ता है और न बोझ। सब हँस पड़े। उन्होंने हमें अंसारी रोड तक लाकर छुड़वा दिया। यहाँ मन्नू की गाड़ी से आए। रास्ते में मैंने कहा कि "तीसरा हिस्सा फिर जाना है।" और हमेशा की तरह दिमाग़ में फिर सारा चर्ख़ा शुरू से चालू हो गया। दो दिन सोचने के बाद मैंने 2 तारीख़ को फ़ोन किया। सोचा यह था कि स्टाफ़ के लिए तीन-चार व्यक्ति चाहिए तो क्यों न पाक्षिक की बात भी सोची जाए। एकाध आदमी ही तो बढ़ाने की बात है। सोचा 23 × 36 × 8 दिनमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साइज़ में 128 का मासिक या 80 का पाक्षिक रहे। मैंने मिश्रा जी से दोनों की लागत निकलवाने को कहा। वे बोले, 15 को बबली प्रयाग से आ जाएगी तो आपको जो डमी इत्यादि बनवानी हो, वह मँगा लीजिए। मैं सब कह जाऊँगा। उसी दिन यह भी बात हुई थी कि हम लोग 2 तारीख को मिलेंगे—तब वे सारी बातें होंगी। पत्रिका की डमी इत्यादि बनेगी। सम्पादकीय ख़र्चा, पारिश्रमिक इत्यादि। मैंने कहा कि नौकरी की तो मेरी इच्छा नहीं है, मगर फिर भी हमारे आपस के बीच क्या रहेगा, यह भी तभी बातें करेंगे। यहीं हम अलग हुए थे।

जितना ही मैं कान्विन्स होता जा रहा हूँ कि यह योजना शायद रंग ले ही आए, वहीं मेरे भीतर दूसरा द्वन्द्व उभर रहा है। पत्रिका मुझे कितना महत्त्वपूर्ण, प्रभावशाली इत्यादि बना देगी, जहाँ कल तक कोई पूछ नहीं थी, वहीं कैसे मैं अनिवार्य अपरिहार्य हो जाऊँगा; सम्पादकीय में क्या लिखूँगा और किस तरह चारों तरफ़ छाई हुई अनैतिकता और मूल्यहीनता या लेखक सम्पादकों की हरामज़दगियों का भंडाफोड़ करूँगा—ये सारी बातें आ रही थीं, वहीं यह भी डर था कि क्या इस आधार पर खड़े होकर उन सबको चुनौती दे सकने की स्थिति होगी ? क्या लेखकों को सम्मान और पारिश्रमिक दे पाऊँगा, जिसकी शिकायत हमेशा करता रहा हूँ ? मैं खुद क्या लूँगा— गाड़ी और एंटरटेनमेंट का ख़र्चा—या कुछ और भी ? कम-से-कम चार आदमी होंगे, एक चपरासी, एक स्टैनो—यानी पाँच हज़ार प्रति अंक पारिश्रमिक रखा जाए, पाँच सहायकों के, दो ऊपर और तीन अपने। मोटे रूप से यही सोचता हूँ कि पन्द्रह का इधर का ख़र्चा होगा—उधर का ख़र्चा शायद दो रुपया प्रति पड़े—यानी साल में पन्द्रह हज़ार प्रतियों की एवरेज नेट सेल (3 रुपया प्रति के हिसाब से 45 हज़ार) मासिक और बीस पृष्ठ विज्ञापन हों तभी पत्रिका चलाने की बात सोची जा सकती है। सर्कुलेशन अगर 12 अंकों में पच्चीस-तीस नहीं होता तो यह ख़र्चे निकाल सकना मुश्किल होगा।...जहाँ दिमाग़ में ये सारे हिसाब-किताब चल रहे थे वहाँ अमरकान्त की एक कहानी 'आकाशवाणी' भी टकरा रही थी। उसमें एक दिवास्वप्नी लड़का तरह-तरह की योजनाएँ बनाता है—कभी यह, कभी वह। और उन योजनाओं के आधार पर कुछ नहीं करता। उन्हीं में रहना उसका स्वभाव बन गया है। एक बार बाप उससे कह देता है कि वह पैसे का प्रबन्ध कर सकता है और वह योजना में लग जाए। यह समझकर कि अब स्वप्न में नहीं, वास्तविकता में उसे योजना से जूझना पड़ेगा, लड़का बीमार पड़ जाता है। उसके हाथ-पाँव फूल जाते हैं। मैं जितना इस पत्रिका की योजना के साकार रूप लेने के प्रति कन्विन्स होता हूँ उतना ही अपने को लेकर शंकाएँ पैदा होती हैं। उतना सब कर पाऊँगा ? पत्रिका तो पूरा झंझट है। सैकड़ों रचनाएँ पढ़ो, लेखकों को लिखो, उनका सर्वश्रेष्ठ दो, अगले अंकों की प्लैनिंग करो, पीछे पड़कर लिखवाओ। यह स्थिति उस कामुक व्यक्ति की है जो औरत को लेकर सोचता तो बहुत है, मगर असली क्षण सामने पाकर जिसके हाथ-पाँव फूल जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं।...ख़ैर, कल से पद्मधर त्रिपाठी, शानी, अजित कुमार से इस बारे में बातें कर रहा हूँ। अभी तक असली स्थान नहीं बताया है। अभी बताऊँगा भी नहीं।

6.11.81

आज भगवतीचरण वर्मा नहीं रहे। दुख हुआ। उनका शव सुबह 11 बजे वायुयान से लखनऊ ले जाया गया। फिरोजशाह रोड से मैं और अजित शानी के यहाँ गए। वहाँ पत्रिका की बातचीत हुई। अभी लौटकर आया हूँ। बीना के न रहने से एकदम सन्नाटा-सा छाया रहता है। कम्बख़्त चहकती रहती थी और इसे अपना दूसरा घर समझती थी। आज यूनिवर्सिटी की छुट्टियाँ हैं, मगर नहीं आई। परसों की शादी का ताम-झाम समेट रही होगी। मुझे किसी-न-किसी काम में उलझाए रहती थी। अब जैसे फ़ुरसत ही फ़ुरसत है, इसलिए रोज़ यह डायरी लिख रहा हूँ। बारह-एक बजे आने पर वह घेर लेती थी। दफ़्तर का काम ज़बर्दस्ती करा लेती और फिर लोग आने शुरू हो जाते। लगता है, जैसे अब लोग भी कम या न के बराबर आते हैं।

12.11.81

इतना खाली, व्यर्थ और सिर्फ़ अस्तित्व तक सीमित तो मैंने कभी भी महसूस नहीं किया। सुबह वही पाँच-साढ़े पाँच पर उठता हूँ। लिखने की बात सोचता हूँ तो पत्रिका की बातें, दूसरी बातें दिमाग़ में आती हैं। लिखने से तो जैसे कभी कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। कोई कहानी दूर-दूर तक सामने नहीं है। कभी सोचता हूँ कि अपनी आजकल की स्थिति ही बैठकर लिख डालूँ कहानी के रूप में। मगर वह भी लिखने लायक़ नहीं लगती। दो-तीन छुट्टियाँ थीं, बीना आई थी, काफ़ी पत्र इत्यादि लिख डाले। कल निर्मला जी के साथ पहले नाहटा के यहाँ, फिर वहाँ से गौतम-नगर प्लॉट देखने गए। वहाँ से विधु के यहाँ होते हुए उन्हें छोड़ा और हम लोगों ने 'सोनी-रूपा' में डोशे इत्यादि खाए। आज अकेला बैठा हूँ। उम्मीद है कि शायद कोई लड़की आएगी। कहलवाया तो कइयों से है।

18.11.81

कल सुप्रीम कोर्ट में शैलेश का मुक़दमा खारिज हो गया। जज ए.डी. कौशल ने कहा, संजय के साथ चित्र छपने में कोई मान-हानि नहीं है। परसों मैंने तार दिया था। फ़ोन पर बहुत कोशिशों के बावजूद लाइन नहीं मिली। शैलेश का कहना है कि जज को मैनेज किया गया है। मुझे भी लगता है। पिछली बार जब केस स्वीकार किया गया था तो देसाई जज ने यही कहकर लिया था कि यह डिफ़ेमेशन मरसी स्पष्ट दिखनेवाला है। मैं स्तब्ध। अब तो कहीं कोई सुनवाई भी नहीं है। शैलेश खुद आश्वस्त है कि सुप्रीम कोर्ट के लोग भी ऐसा कर सकते हैं। कहने लगा कि मैंने उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षण को देखा है जहाँ लोग हत्यारे, डाकू या क्रान्तिकारी बनते हैं। अगर इतनी साफ़ बात का न्याय यही है तो न्याय फिर मैं ही करूँगा। मगर मैं लेखक हूँ और यह सब मेरे लिखने को धार देगा। व्यक्तिगत बात होती तो शायद मैं टूटता, मेरे लिए तो यह मूल्यों की लड़ाई है और मैं इसे अब जनता तक ले जाऊँगा। मैंने भी पत्रिका की बात बताई। हुआ यह कि शाम को मैं उसे अपने साथ ही घर ले आया। हम लोगों ने थोड़ी रम ली और वही बातें कर रहे थे। मैंने कहा, पहले अंक में यह केस, दूसरे में कानूनदाँ लोगों या जस्टिस्ट अय्यर, पी.के. त्रिपाठी जैसे लोगों से प्रबुद्ध पाठकों से राय। ग़ुस्सा तो सचमुच यही आ रहा है कि इन बदमाशों की एक-एक नक़ाब उतारकर रख दूँ। अब तो सचमुच बहुत ही ज़रूरत हो रही है, एक पत्रिका की। मना रहा हूँ कि मिश्रा वाली बात जैसे भी हो, बन जाए।

कल भोलेश्वर ने शक्ति नगर पर ही एक बुड्ढे को बचाने के चक्कर में गाड़ी ठोक दी।

20.11.81

किताबें भी पुकारती हैं, आवाज़ें देती हैं। पिछले बीस सालों से 'ब्रदर्स कर्माज़ोव' किताब मुझे बुला रही थी, मुझे पढ़ो, मुझे पढ़ो। और उसे टालकर, अनसुना करके मैं और-और किताबें पढ़ता रहा था—हालाँकि उसकी पुकार निरन्तर बनी रही। 1000 पन्नों की महीन-महीन छपी किताब पता नहीं महीना ले, दो महीना ले। सोचा, कभी फुर्सत मिलेगी, कभी बीमार पड़ूँगा और समय काटना दूभर हो जाएगा, कभी पहाड़ पर या समुद्री यात्रा पर जाऊँगा और समय काटे नहीं कटेगा तो इसे पढ़ लूँगा। पिछले महीने भर से कुछ भी नहीं पढ़ रहा था—आख़िर उसकी आवाज़ ने धर दबोचा। अब कितना भी समय लगे, जैसे भी हो इसे समाप्त करना है। इन बीस वर्षों के दौरान कितनी स्पष्ट आवाज़ सुनी है मैंने इस उपन्यास की—एक अप्रतिरोध पुकारा, आज पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

अर्चना के अनुवाद का संशोधन आज पूरा हुआ। महीना-भर आँख फोड़ मेहनत खा गया। एक तरह से मैंने इसे फिर से अनुवाद कर डाला है।

8.12.81

कितनी तेज़ी से दिसम्बर बीत रहा है। बीना के यूनिवर्सिटी जाने के बाद पहले तो हमने इधर-उधर से ही किसी लड़की को तलाश करने की कोशिश की, फिर 'नवभारत टाइम्स' में विज्ञापन दिया। पच्चीस-तीस लड़कियों ने सम्पर्क किया, फिर एक लड़की रखी—शशि कालरा। पन्द्रह दिनों उसे देखा। बीना को जो लड़की ठीक लगी थी, वह योग्य मुझे भी लगी—लेकिन एकदम बच्ची थी। आख़िर उसे ही बुलाया। दो या तीन से वही ठीक है और मुझे भी लगता है ठीक ही है। योग्य है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम बोलती है। फिर उधर ऑडिटिंग, पुस्तकों की छपाई, अन्य व्यस्तताएँ बढ़ इसलिए भी गईं कि भोलेश्वर ने क़रीब-क़रीब ड्राइविंग सीख ली है। शायद महीने भर में पक्का हो जाएगा। सुबह मुझे छोड़कर आता है, फिर पौने छह की बस लेकर सवा-साढ़े छह तक पहुँच जाता है। तभी चलना होता है। बीना क़रीब रोज़ ही आती रही है। उसे किंग्ज़वे कैम्प तक छोड़ देते हैं। इस लड़की ने सचमुच बहुत मदद की है। पता नहीं, यह वफ़ादारी और लगाव मेरे प्रति है या 'अक्षर' के।

इस बीच बातें तो बहुत हुईं, मगर लिखने का अवसर नहीं मिला। हाँ, सबसे दिलचस्प चीज़ हुई, साहू जैन के मालिक अशोक जैन से मुलाक़ात। हुआ यह कि इस बार का ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला पोट्टेकाट्ट को। फंक्शन में तो नहीं जा पाए, हाँ, चाय पर गए। वहीं अशोक जी से भेंट हुई। मैंने कहा कि मुझे आपसे मिलना है। बोले—जब चाहें। परसों—यानी 1 दिसम्बर को सुबह का समय तय हुआ। उस दिन संयोग से रंजन आ गया, फ़ियेट लेकर हम लोग चले। अशोक जी के पास टाइम्स ऑफ़ इंडिया पहुँचे। चौथी मंज़िल। 20-25 मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ी, मुझे खुद बड़ा अजीब लग रहा था कि मैं क्यों यहाँ बैठा अशोक जी की राह देख रहा हूँ? मुझे करना क्या है? क्यों नहीं उठकर चल देता—जाए भाड़ में अशोक जी। मगर एक अपना तर्क होता है, एक स्थिति का। आ ही गए हैं तो यह भी सही। ख़ैर, बुलावट हुई। बड़े उत्साह से खड़े होकर—माफ़ी माँगी देर होने की। मुझे ध्यान नहीं था, वग़ैरा-वग़ैरा। ख़ैर, शुरू की औपचारिकता हमने भी निभाई। आपसे अभी तक देखा-देखी थी, यह पहली बार मिल रहे हैं। और मैंने शुरू कर दिया। गम्भीर होकर कहा : "अशोक जी, मुझे नौकरी चाहिए!"..."क्यों, क्या ज़रूरत हो गई?"..."ऐसे ही आ गई स्थिति। और नौकरी बोनेट कोलमैन या टाइम्स ऑफ़ इंडिया में नहीं, किसी सीमेंट, काग़ज़ या वनस्पति फ़ैक्टरी में प्रोडक्शन इंचार्ज की हो तो ज़्यादा ठीक है।"..."साहित्य से मन भर गया क्या?"..."हाँ, ऐसा ही समझिए।"..."पर वहाँ तो टेक्निकल..." मैंने बात तोड़ दी। "मगर आपके यहाँ तो टेक्निकल जानकारी या डिग्री की ज़रूरत नहीं है। आपके यहाँ तो दूसरी वजहों से नौकरी मिलती है। जिस आदमी ने कभी ज़िन्दगी में कहानी न लिखी हो, वह कहानी की मैगज़ीन का एडीटर हो जाता है। जिसकी कहीं कोई वकत न हो, वह हिन्दी का सबसे बड़ा दैनिक सम्पादित करने लगता है। मुझे नहीं पता, आप किसी और जगह यह रिस्क क्यों नहीं लेते?" और फिर जो मैं चालू हुआ तो वह सब सुनाया जो अशोक जी को कोई नहीं सुना सकता। मैंने कहा, "आपने एक गधे को कहानी की पत्रिका का सम्पादक बनाकर बैठा दिया, ठीक है, सर्कुलेशन की बात है तो मनोहर कहानियाँ छापिए। आज भी चार लाख छपती हैं। जिस दिन चैख़व की एक ही कहानी दो नामों से एक ही अंक में छपी उस आदमी को उसी दिन निकाल दिया जाना चाहिए था। आपका दैनिक पढ़ने में पाँच मिनट से ज़्यादा नहीं लगते। उसे न पढ़कर मैं कुछ भी मिस नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता। 'गार्जियन' या किसी ब्रिटिश पेपर को नीरद चौधरी ने लेना बन्द कर दिया तो उनका आदमी पहुँच गया। आप कहेंगे, जाए भाड़ में, वह नहीं लेता तो क्या है? हमारा अख़बार चार लाख बिकता है। 'नई दुनिया' पढ़ें तो सचमुच मज़ा आता है। मैंने यह भी कहा कि अंग्रेजी में तो आप हरेक को नहीं लेते। वहाँ तो अरुण शोरी, कुलदीप नैयर, और जाने कौन-कौन चाहिए—आप चन्दन को 'साइंस टुडे' का सम्पादक बनाइए न...मैंने यह भी शुरू में बता दिया था कि आप कहीं यह न समझें कि मेरी कोई और इच्छा है। इसलिए बता दूँ कि लक्ष्मीचन्द जी मौजूद हैं। सन् 63 में 'सारिका' के सम्पादन के लिए उन्होंने दो दिन लगातार कितना नहीं कहा कि आपकी क्षमता से अलग, हमें यह भी फ़ायदा है कि एक साथ दो नाम मिलते हैं। और सब सुनाकर माफी माँगता हुआ मैं तो चला आया।

अशोक के मन में यह ज़रूर आया होगा कि किस गधे को बुला लिया, आधा घंटा खा गया। इस बीच पता नहीं क्या-क्या कर सकता था। मैंने यह भी कहा था कि क्या वजह है कि आपके यहाँ अब कोई प्रतिभा और नामवाला आदमी रह ही नहीं पाता? और मैं चला आया। सचमुच उस दिन ऐसी खुशी हुई कि बयान नहीं की जा सकती! आखिर कोई तो इन लोगों से कहे...उस दिन मिश्रा जी से भी मिलने गए, फिर शाम को भिक्खु जी के यहाँ भोजन था।

मिश्रा जी (आर.के.) ने परमेश्वरन से मिलाया। परमेश्वरन 27 साल 'रीडर्स डाइजेस्ट' के बिज़नेस मैनेजर रहे हैं। पत्रिका की रूपरेखा से प्रसन्न हुए। मिश्रा जी तो यह मानकर चल रहे हैं कि हो गया सब कुछ। उन्होंने पैट्रियट के सम्पादक चोपड़ा जी से मिलाया, अरुण जी से मिलाया। इन्हीं के साथ मिलकर हम हिन्दी की पत्रिका निकाल रहे हैं। पहली दिसम्बर को भी कहा था कि आप इलाहाबाद से लौट आइए। 19 को आपके जाने से पहले सभी कुछ फ़ार्मलाइज़ कर लेंगे। इधर हस्बेमामूल लालानी के दोस्त पटावरी से भी बातें चल रही हैं। एकाध मीटिंग भी हो चुकी हैं।

2.1.82

जैसा हर साल लगता है, यह वर्ष भी अनन्त सम्भावनाओं वाला ही लग रहा है। 19 को सतना के लिए रवाना हुआ था, फिर वहाँ से 21 को अहमदाबाद के लिए। 22 की रात को अहमदाबाद पहुँचे। राजी की बहन गुड्डी के पति मनमोहन सिंह पुलिस कमिश्नर हैं। मन्नू एक दिन पहले सीधे सर्वोदय से आ गई थी। 23 को चार बजे बस से रवाना होना था—भावनगर के लिए। दो दिन उनके साथ अच्छे कटे। लोग बहुत ही खुले और आत्मीय हैं। लगता ही नहीं है कि पुलिस कमिश्नर हैं। खुद गाड़ी में घुमाते रहे। बस पर छोड़ गए। रात को भावनगर। डॉ. त्रिवेदी, मजीठिया—सभी लोग मिले। एक गैस्टहाउस में रुकाया। अगले दिन से लगातार भाषण—कभी महिला कॉलेज में तो कभी साभलदास में। मुझे लगा कि मैं अब काफ़ी साधकर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छे ढंग से बोलने लगा हूँ। अन्तिम दिन भावनगर साहित्य सभा में सचमुच ही झंडे गाड़ दिये। 27 को सुबह हेमेन्द्र के पास कालोल जाना था। बस में बैठकर सारे दिन चले और शाम को कालोल पहुँचे। मजीठिया ख़ुद उपन्यासकार और नाटककार है—सॉलवैलो काफ़्का के नाम लेता है। लेकिन मुझे लगा, अपने हल्के-फुल्केपन बातों में बहलाता है। उसने हर व्यक्तिगत मीटिंग को टाला। मुझे गहराई नहीं लगी। हेमेन्द्र कहीं गया था, रेणु को लेकर। शाम को लौटा, इस बीच उसके मकान-मालिक के पास बैठे। ऊपर हज़ार रुपए महीने का फ़्लैट कम्पनी ने दिला दिया है। तीन-चार कमरे का फ़्लैट है। फर्नीचर नहीं है—कम हैं। स्कूटर दिया हुआ है। कभी-कभी बड़ौदा इत्यादि जाने के लिए कार भी मिल जाती है। कहता तो है कि 3900 महीने में मिलते हैं, मगर मुझे लगता नहीं है। सुबह नौ बजे जाकर लंच को आता है। फिर शाम को कुछ भी तय नहीं है। कांकरिया पेपर मिल का चीफ़ पेपर मेकर है। कहीं कुछ डरा और सहमा रहता है।

5.1.82

या तो उसे लगता है कि कहीं कुछ भी पक्का नहीं है, या फिर सोचता है कि वह जितना डिज़र्व करता है, उससे बहुत अधिक मिल रहा है। कहीं निकल न जाए हाथ से। बहरहाल अगले दिन शाम को उसके कुछ दोस्त, बल्कि दोस्त और उनके पिताजी—श्री सिन्हा और लाल मिलने आए। सिन्हा तेज़, स्मार्ट आदमी है, शायद हेमेन्द्र को उससे अधिक मिलता है, फिर भी बोलने के लिए उसके पास कोई विषय नहीं है। सिन्हा कांकरिया कैमिकल्स और पेपर मिल्स में एडमिनिस्ट्रेटिव ऑफ़िसर है। हेमेन्द्र का कहना है कि उससे कहीं जलता है। सब मिलाकर हेमेन्द्र मुझे काफ़ी बन्द और भीषण हीनता भाव के कारण घुन्ना लगा। बेहद ही कन्ज़र्वेटिव है। उसे लगता है, सारे लोग ईर्ष्यालु, तिकड़मी, बदमाश और अनडिज़र्विंग हैं। रेणु का कहीं आना-जाना पसन्द नहीं करता। वह शक्की है। अपने को नेहा में ही व्यस्त रखता है। मैं उसके लिए काफ़ी चिन्तित हूँ। कल वहाँ अगर और बाक़ायदा क्वालिफ़ाइड आदमी आ गया, जो यहाँ या विदेश से प्रशिक्षण लेकर आया हो, तब तो इसकी हालत और भी बुरी होगी। सारी स्थिति से मुझे यह भी नहीं लगता कि उसे 3900 रुपए मिलते होंगे—हज़ार रुपए का मकान, स्कूटर पेट्रोल, आवश्यकता पर गाड़ी तो मिल जाती है—लेकिन बड़ौदा आने के लिए जिस तरह झिझकते, डरते उसने गाड़ी माँगी और वह जैसे आई या जैसे ड्राइवर व्यवहार कर रहा था, उससे मुझे हेमेन्द्र पर दया ही आती रही। इसके साथ कुछ घपला न हो जाए। बड़ौदा आए। मनमोहन सिंह का प्रोग्राम पक्का था—सिपाही, दारोगा, इंस्पेक्टर—सभी हमारे लिए टिकट लेकर तैनात थे। उन्होंने समय पर गाड़ी में बैठा दिया। हेमेन्द्र को वहाँ मैंने समझाया कि रेणु को तूने बिल्कुल ही मालती बना दिया है। एम.ए. की डिग्री और इस सबका फ़ायदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या है? अपने ऊपर इतना डिपेंडेंट मत बनाओ। उसे कहीं काम करने दो, ताकि उसमें भी कॉन्फ़िडेन्स आए और दिक़्क़त के वक्त एक लाइन तो बनी रहे। मेरी दबंगई का एक बहुत बड़ा कारण तो यह भी है कि मुझे मन्नू का सहारा है। पता नहीं, वह कितना समझा। ख़ैर, बच्ची और रेणु हैं, दोनों बहुत प्यारी बच्चियाँ। गाड़ी ठीक समय से चली लेकिन एक मालगाड़ी के डिरेल हो जाने से 12 घंटे लेट हो गई। रात को दस के आसपास पहुँचे। वहाँ फ़ोन आ रहे थे, कभी खरे का, कभी शानी का। ये लोग 'अक्षर' में बैठे थे। मैं चाय पीकर यहाँ आ गया। साजिद, सुरेन्द्र, शानी, मलिक साहब, खरे— सभी थे। बोतलें खुली थीं। निकले तो तीन बज रहे थे। नया वर्ष बदलने के समय सबसे पहले घोषणा मैंने पत्रिका की ही की।

और अब पत्रिका। अगले दिन मधु का फ़ोन आया। मधु जैन निधि प्रकाशन में काम करती है। दो साल राजपाल में विश्वनाथ जी के पास भी रही थी। निधि का सारा दफ़्तर सँभाले हुए है। मुझे लगा, वह लड़की मेरे काम की है। और उसे मैं रोके हुए हूँ। स्थिति उसके सामने मैंने एकदम साफ़ कर दी है। तब मिश्रा जी को फ़ोन किया। पहले दिन तो वे थे नहीं, कहीं बाहर गए थे। घर का फ़ोन ख़राब था। अगले दिन मधु के सामने ही फ़ोन किया। मैंने कहा, इस लड़की को मैंने रोका हुआ है और मुझे लगता है, इससे अच्छी सहायिका नहीं मिलेगी। दो महीने से आश्वासन दे रहा हूँ। क्या करना है? कहा, परसों मैं फ़ोन करके बताऊँगा, या आपकी तरफ़ आ ही जाऊँगा। लेकिन आज मंगल है और उनकी कोई सूचना नहीं है। इसी तरह जाने से पहले उन्होंने कहा था कि एक लुनिया जी आएँगे, वे आपसे सारे डिटेल्स की बात करेंगे। लुनिया जी नहीं आए तो मैंने फिर फ़ोन किया। मालूम हुआ, बीमार हैं, कल ज़रूर आएँगे। नहीं आए। हम लोग चले गए। वर्ना योजना के अनुसार हमारी अनुपस्थिति में कॉस्ट ऑफ़ प्रोडक्शन, प्रेस, सम्भावित पाठकों की सूचियाँ—सभी कुछ तय कर लेना था। मैं जानता हूँ...मधु को रखने का निर्णय कहीं सारी योजना को मान लेना ही नहीं, उसे शुरू कर देना है। अभी तक तो बातें ज़बानी हैं, इसके बाद तो कमिटमेंट हो जाएगा। हो सकता है, सोचने का समय ले रहे हों, सलाहें कर रहे हों—हो सकता है, बीसों झंझटों के कारण फुरसत ही न मिल पाई हो। बहरहाल, आज मैं फ़ोन नहीं करूँगा। और कल सारी बातें कर लूँगा कि अगर सारी बात पर आप पुनर्विचार कर रहे हों तो बता दें—क्योंकि तब मेरे पास दूसरा विकल्प है!

और विकल्प! 2 की सुबह को ही लालानी से बात की थी। वह पटावरी के साथ मिलकर एक टाइम्स ऑफ़ इंडिया जैसा संस्थान बनाना चाहते हैं। लालानी ने कहा, कल मैं नौ तक के लिए बम्बई जा रहा हूँ, इसलिए आज शाम को ही मिलें। मैं पटावरी से बातें करके अभी बताता हूँ। उसका फ़ोन आया। शाम को सात बजे। और बीच में फ़ोन आया चोरड़िया का। तय हुआ, यहीं आएँगे और दारू लेते आएँगे। शाम को वह कर्नल लेते आए। मधु के जाने के बाद, वे लोग आ गए। बैठे दस तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोतलें खत्म कर दीं। तय हुआ कि पत्रिका निकालनी है और उसमें पहले साल तीन का घाटा होगा। लालानी 50 प्रतिशत उठाएँगे, पाँच प्रतिशत चोरड़िया—शेष पटावरी। उसका जन्मदिन था। वह नहीं आया था। यह ख़र्चा उन्होंने यह मानकर लगाया था कि एक भी विज्ञापन नहीं आएगा। मैंने पाँच पृष्ठ विज्ञापनों की बात कही। यानी अपना ख़र्चा मैं उठाऊँगा। 'अक्षर' के साथ हो या अलग। इस पर भी बात आई। मैं तीन लाख के घाटे की बात भी नहीं मानता। घाटा लाख-डेढ़ लाख का होगा। बातों-बातों में मैंने कहा, अगर नौ से पहले मैं ठीक इसी प्रकार की पत्रिका कहीं और तय कर डालूँ तो? यह इशारा मैंने पहले भी दिया था। बोला, कहाँ? आख़िर मैंने बता दिया कि लिंक वालों के साथ। 'लाल' वाली बात आई। मैंने कहा, यह डर मुझे भी है। लेकिन अब वे लोग प्रोफ़ेशनल ढंग पर ही चीज़ें निकालना चाहते हैं। उनकी फोटो सैटिंग मशीन अक्टूबर तक तैयार हो जाएगी। मगर मैं मई, 82 कहता हूँ। अगर तैयार हो गए तो? 'देख लीजिए, हमने तो तय कर ही लिया है कि पत्रिका निकालनी है बल्कि पत्रिकाओं की शृंखला।' मैंने यही कहा कि आप लोगों से इतनी देर से बातें हो रही हैं, यहाँ साथ उठने-बैठने वाले दोस्त हैं। वहाँ बहुत ही इम्पर्सनल मामला है। प्रिफ़र मैं यहीं करूँगा। बोला, कल आपको पटावरी जी से बातें करके जवाब दूँगा। और अगले दिन 12 बजे फ़ोन आया, रविवार को। 'गो अहैड' सब मिलकर तीन का घाटा हम लोग बर्दाश्त करेंगे। फरवरी में निकाल दीजिए। मैंने कहा, नहीं, तीन-चार महीने चाहिए। ख़ैर, बाकी बातें लौटकर। नौ या दस को। मगर मेरे सामने साफ़ है कि मिश्रा जी से बातें होती हैं तो उसे ही प्राथमिकता दूँगा। बड़ा संस्थान है, व्यवस्था और मशीनरी है, इम्पर्सनल सम्बन्ध हैं, यहाँ ठीक रहेगा।

अगले दिन नाहटा के पास गया तो उसे सारी बातें पता थीं। सलाह के लिए मैंने अपनी समस्या रखी, तो कहा, दोनों ही रखो जी। मैं भी सोच रहा हूँ कि दोनों को देखें। अब अगर मिश्रा जी ढील दिखाते हैं तो इधर केन्द्रित कर दूँगा। इसीलिए मधु से कल कहा था कि अगर ऐसी बात है तो तुम महीने भर चुप रहो। मैं अपने पास से दूँगा, स्थितियाँ अपने ढंग से साफ़ होंगी। मेरा बार-बार पूछना कहीं दबाव डालने जैसा लग सकता है। वह मैं नहीं चाहता। अब तो उनका फ़ोन आएगा तभी करूँगा। इसीलिए आज और राह देख रहा हूँ।

और इसी आधार पर उपन्यास की एक थीम आज सुबह दिमाग़ में कौंधी...मेरी सारी ज़िन्दगी की शक्ति—जिसने मुझे न जाने कितने समझौतों से बचाया है—यही रही है कि मेरे पास हमेशा कोई न कोई विकल्प रहा है। एक सहारा मैंने हमेशा ऐसा रखा है कि बहुत नीचे झुककर समझौता या कम्प्रोमाइज़ करने की ज़रूरत नहीं रही, और इसीलिए जो कुछ चाहा है, अपनी शर्तों पर लिया। अद्‌भुत बात है कि उस विकल्प को इस्तेमाल करने की ज़रूरत मुझे प्राय: नहीं आई है। वह है और मैं उस पर निर्भर करता रह सकता हूँ, यही स्थिति मुझे बल देती रही है। तब मैंने देखा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ते से लेकर आज तक की ज़िन्दगी को इस सूत्र से परिभाषित कर सकता हूँ। फिर याद आया खेतान जी का सहारा जिसके कारण कलकत्ते में नौकरी अपनी शर्तों पर की, रहा अपनी शर्तों पर। श्यामलता सिंहानिया के साथ ने मुझे मारवाड़ियों के यहाँ चक्कर लगाने से बचाया—एक इमोशनल विकल्प दिया, मीता ने दूसरी तरह सहारा दिया, फिर अक्षर ने दिल्ली की न जाने कितनी ज़लालतों में पड़ने से रोका—मैं पुरस्कार-फ़ैलोशिप सभी मना करता गया। आज भी अगर यह स्थिति आई है तो वह जीवन के पूरे पैटर्न में फ़िट ही होती है। इस पॉइंट पर और गहराई और विस्तार से सोचना है। लगता है, अब शायद बड़े उपन्यास की बात मैं सोच सकता हूँ। वृहन्नला उपन्यास को एक आधार मिलता है।

11.1.82

दो दिन राह देखकर मैंने फ़ोन किया था—मिश्रा जी के घर। बबली थी। बताया, वे बम्बई गए हैं और आठ को लौटेंगे। बाई द वे मैंने पूछा कि मेरे सतना जाने से पहले उन्होंने लूनिया जी को भेजने को कहा था, नहीं भेजा। फिर इस लड़की के बारे में बताने को कहा था, नहीं बताया। कहीं ऐसा तो नहीं है कि सारी चीज़ पर पुनर्विचार कर रहे हों? बोली, ऐसा है तो नहीं, फिर भी मैं बात करूँगी। नया वर्ष है, बहुत भाग-दौड़ है। व्यस्त हैं। ख़ैर, नौ को सुबह ही उनका फ़ोन आया, ठीक आठ बजे। कहने लगे, इस तरह हम मन-वन नहीं बदलते। वह तो तय ही है। 24 को परमेश्वरन आ रहे हैं। तभी आपको फ़ोन करूँगा। ऊपर गेस्ट हाउस में ठहरेंगे—28 तक। दो-तीन शाम में सारी बातें तय कर डालते हैं। अगर तब तक वह लड़की रुक सके तो अच्छा है, वर्ना जॉयन कर ले। आप सोम-मंगल को रजिस्टार न्यूज़पेपर जोगलेकर से मिल लीजिए। मैं समय तय कर दूँगा। और वे दिलचस्पी ले रहे हैं कि 'हंस' को किसी तरह निकालने में मदद कर दें। मैंने बताया कि अपने लेवल पर मैं भी कोशिश कर रहा हूँ। इसलिए अगर मेरे माध्यमों से नाम उन तक जाए तो देख लें। प्रेस बाद में बदल लेंगे। दूसरे 'बुक फ़ेयर' के समय हमें 'दिनमान' में एक एनाउंसमेंट देना चाहिए। अगर परमेश्वरन के साथ सारी बात तय हो गई तो उसी समय दे देंगे। तब तक मैं गैफ़ीसेड से कहूँगा कि हमारे लिए एक पन्ना रखें। मैटर महीने के अन्त में दे देंगे। बोले, हाँ, ऐसा कर दीजिए। ख़ैर, बातें करके लगा कि सारी चीज़ अभी ज़िन्दा हैं। और तब से लगातार पत्रिका फिर दिमाग़ में घूम रही है। उधर कल लालानी को फ़ोन किया। सो रहा था। बाद में फ़ोन आया। मैं मन्नू की गाड़ी की बैटरी लेने गया था। बातें हुई होंगी कि पहले साल ढाई-तीन लाख का घाटा सहने की योजना है। दूसरा टाइम्स ऑफ़ इंडिया जैसा सेटअप बनाना है। आठ फ़ैक्टरी खोलने से जो यश नहीं मिलता, वह एक पत्रिका देती है। यानी यह भी उतने ही गम्भीर हैं। अब मैं सोच रहा हूँ कि दोनों को कैसे सँभाला जाए। अगर मन्नू हिम्मत करे, इसे लेने की तो सारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें बन सकती हैं। हो सकता है, मुझे 'हंस' और मन्नू के लिए 'सरस्वती' नाम मिल जाए। कल बीना के यहाँ खाना खाने गए थे। बहुत मन से खिलाया—मक्के की रोटी, सरसों का साग।

12.1.82

किसी चीज़ की रचना-प्रक्रिया का अंग बने रहना कितना कष्टप्रद है। दिल्ली गेट पर एक राउंड अबाउट है। बीच में नेहरू जी की प्रतिमा है। भीड़ होती थी। अब दूसरी व्यवस्था हो रही है और वह गोला खोदा जा रहा है। जब भी मैं उधर से गुज़रता हूँ, मन में आता है कि महीने भर को मैं कहीं चला जाऊँ और जब लौटूँ तो सब कुछ बना-बनाया तैयार हो। एक-एक स्टेज बनते देखना यातनाप्रद है।

28.1.82

महिलाएँ 'चीज़ों' के साथ जितने साधिकार ढंग से एकाकार हो जाती हैं, शायद पुरुषों के लिए सम्भव नहीं है। वह हमेशा ही दूर और बाहरी बना रहता है। घर की चीज़ों के साथ टिंकू और मन्नू जिस तरह 'जुड़ी' हैं, वह मुझे आज भी नया लगता है। मेरे मन में हमेशा पता नहीं एक दूरी बनी रहती है। जैसे वे चीज़ें मेरी न हों! शायद यह 'कहीं कम न होने' के स्थायी अहसास का ही एक रूप हो।

पिछले दिनों काफ़ी द्वन्द्व की स्थिति रही। पिछले शुक्र यानी 22 को जब राजेन्द्र सिंह भंडारी ने सूचना दी कि 'हंस' नाम आपको मिल गया है, उसका कार्ड भी तैयार हो गया है, तो मन में आया कि मुझे खुशी से उछल पड़ना चाहिए, कि मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि कितना बड़ा काम हो गया है। पता नहीं, कितने लोग कब से लगे होंगे। यह मेरे सपने को पूरा करने में ही मदद नहीं करेगा, सारी चीज़ को बेहद आसान बना देगा। पत्रिका निकलेगी और ज़रूर निकलेगी। नई पत्रिका जो सम्मान और प्रभाव दो-तीन वर्षों में देगी उससे बीसियों गुना 'हंस' के साथ वैसे ही जुड़ा है...मगर मैंने कुछ नहीं किया। सिर्फ़ प्रसन्न होकर रह गया। क्योंकि उसी दिन शाम को लालानी इत्यादि के साथ मीटिंग तय थी। अजित, मन्नू, चोरड़िया, पटावरी—सभी आए थे। मैं अपने भीतर उतना उत्साह नहीं पचा पा रहा था। इन लोगों के हिसाब से मेरा होमवर्क भी पूरा नहीं था। यानी मैंने 'पत्रिका' के व्यक्तित्व की पूरी तैयारियाँ नहीं की थीं। लालानी बिल्कुल साथ था। साथ चोरड़िया भी था कि पहले साल तीन लाख तक का घाटा देने की तैयारी से शुरू होगा। 12 अंकों के बाद अगर उत्साहजनक लगा तो फिर एक साल चलाएँगे। फिर दो-तीन पत्रिकाएँ निकालेंगे। हमें तो इसे बैनेट कोलमैन बनाना है। लेना हमें कुछ नहीं है, इससे। हमें तो नाम और सम्मान चाहिए। इस पर चोरड़िया ने साफ़ कहा—करोड़-दो करोड़ का फ़ायदा होने लगेगा तो पैसा भी सबको चाहिए। पहले मैंने स्थिति साफ़ की कि 'अक्षर' के साथ जोड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे निकालना सम्भव नहीं होगा। हमें अलग ही यूनिट बनवाना होगा। बहस होती रही, सोसायटी या प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी। इसमें अपने चार्टर्ड एकाउंटेंट विनोद कुमार जैन ने काफ़ी अज्ञानता का परिचय दिया। उनका एकाउंटेंट भी था। उसने ज़िम्मा लिया। मैंने मकान-मालिक से काम करने देने की अनुमति का ज़िम्मा लिया। लालानी ने आश्वासन दिया कि नई कम्पनी में स्थिति तो हम ही लोगों की मज़बूत होगी लेकिन न आपके काम में कोई हस्तक्षेप होगा, न सम्मान में कोई आँच आएगी। मन्नू मुझे इशारे कर रही थी। उधर लालानी कह रहे थे कि आप फ़ौरन ही स्टैनो एपॉइंट कर लीजिए। कल पैसे भिजवाए देता हूँ। जब कम्पनी बनेगी तो उसमें इसे ले लेंगे। पत्रिका की तारीख़ तय करेंगे। बाक़ायदा धूम-धाम से समारोह होगा! पत्रिका का स्वरूप क्या हो, यही बच गया। पटावरी डेढ़ घंटे में चला गया। वे अजित और मन्नू को इसमें शामिल करने का आग्रह करने लगे। मैंने दूसरी पत्रिका की बात शुरू की जिसे किसी ने अनुमोदित नहीं किया। जब उठने लगे तो मन्नू ने मुझे डाँटा...यह क्या मज़ाक़ कर रहे हो? उधर मिश्रा जी से सभी कुछ तय है और इधर इन बेचारों को लटका दिया है। ये लोग तो इतने कीन हैं और सभी कुछ करने को तैयार हैं, तीन लाख का घाटा बर्दाश्त करने की योजनाएँ बनाए हैं—तारीख और नियुक्तियों की बात कर रहे हैं। मैंने भी सोचा कि अब बता ही देना चाहिए। लालानी की गाड़ी नहीं थी। चोरड़िया और लालानी को दरियागंज छोड़ना। तब मैंने 'हंस' का नाम बताया। गाड़ी में बैठकर सारी योजना समझाई। पैसों के लिए बात हुई तो बताया कि पाँच के आसपास पड़ेगा। चोरड़िया ने छूटते ही कहा! तब आपको उधर ही जाना चाहिए। लालानी थोड़ा शॉक्ड हुआ। सारा कुछ आपको लेकर ही था। आपने बीच में छोड़ दिया। मैंने समझाने की कोशिश की—लेकिन बहुत बुरा लगा है—यह स्पष्ट था। बात शायद और बहुत आगे बढ़ चुकी थी। और रास्ते भर मन्नू ने जो भर्त्सना की कि वे लोग तो इतना डिपेंड कर रहे हैं और आपका यह व्यवहार! मेरे पास तर्क नहीं थे। द्वन्द्व और परेशानी थी। अगले दिन मन्नू ने सारी स्थिति को शब्द भी दिये कि आपका वही पुराना रवैया है। उधर मीता को शादी के पाइंट तक ले आए और इधर मुझसे शादी की बातें करते रहे। यहाँ भी यही। यह क्या चरित्र है...और रविवार को मन्नू ने सारी बातें अजित जी से कर डालीं। 'लिंक' वाली बात। अजित को समझाने की कोशिश की कि इन लोगों की योजना को आप ले लीजिए। हज़ार-पन्द्रह सौ का सिलसिला रहेगा। अजित के मन में तो है लेकिन वही पुराना नाटक कर रहे हैं, मेरे बस का नहीं है इत्यादि...रविवार को प्रगतिशील लेखक संघ साहिबाबाद के लिए मुझे लेने जब कर्णसिंह चौहान, जानकी प्रसाद आए तो मैंने यह कह दिया कि 'हंस' निकाल रहा हूँ। आगे बात न बढ़ाने का आग्रह किया, मगर जानता हूँ, अब सब जगह बात पहुँचेगी। अब भागता हूँ, परमेश्वरन आए हुए हैं। फ़ोन आया है...अभी। लंच साथ करना है और इस बात को अन्तिम रूप देना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

30.1.82

परसों परमेश्वरन से भेंट हुई। ठीक एक बजे मैं पहुँच गया। ऊपर दूसरी मंज़िल पर अच्छा-ख़ासा कमरा है। वहीं खाना खाया और पत्रिका के स्टाफ़ के बारे में, रूप-रेखा के बारे में, समय के बारे में बातें हुईं। उसका आग्रह है कि खींच शुरू में नहीं करनी चाहिए। जिसे आप हज़ार में सोचते हैं, उसे बारह सौ में लाइए। अच्छी और विस्तार से बातें हुईं। तय हुआ कि परसों तीन बजे वह 'अक्षर' आएगा। जगह देखेगा। बाक़ी इन सारी बातों के बारे में तय करेगा...दफ़्तर आ गए। यहाँ कान्तिलाल राठौर और उनकी पत्नी मिलीं। वे 'रामनगरी' बनाकर लाए हैं और उसे रविवार को दिखा रहे हैं। एक दिन शाम साथ बितानी थी, सोचा आज ही क्यों नहीं। मुझे साहित्य अकादेमी जाना था। क़ाज़ी अब्दुलसत्तार कहानी पढ़नेवाले थे। बेहद ठंड थी। कहानी बहुत ही साधारण थी। मगर बातचीत हुई। वहाँ से गाड़ी में ही इरविन कॉलेज से राठौर को लिया। भोलेश्वर चला रहा था। तभी तेल खत्म हो गया। सिकन्दरा रोड पर खड़ा रहा। ख़ैर, उन लोगों को घर लाए। देर तक बैठे। अच्छा लगा। साढ़े ग्यारह तक बैठे...कल ठीक तीन बजे। फिर परमेश्वरन आ गया। मैंने कुछ पत्रिकाएँ मँगा रखी थीं। सारी जगहें देखीं। फिर बैठकर हिसाब बना। फ़र्नीचर का, स्टाफ का। बीच-बीच में क़ाज़ी, त्यागी, साजिद इत्यादि आते रहे। फिर तय हुआ कि वह सोमवार को हमारे साथ आएगा। सर्दी आज भी भयानक थी। मलिक साहब का मन था, इसलिए एक-एक घूँट हम लोगों ने बची हुई रम समाप्त कर डाली। मौसम सहनीय और सुहाना लगने लगा। उन्हें मिश्रा जी और पैट्रियट का नाम लिए बिना हमने बातें बताईं—कुछ इस तरह जैसे परमेश्वरन से पत्रिका के डिस्ट्रीब्यूशन के सिलसिले में बात हुई थी। अब वह खुद दिलचस्पी ले रहा है। सोचा था लालानी वाली संस्था के साथ मिलकर प्रकाशित करेंगे और परमेश्वरन के साथ वितरण होगा। मगर यह लगता है कि हम लोग ही निकालें। यह आदमी प्रोफ़ेशनल है और पत्रिका के काम को जानता है। वे लोग पैसेवाले हैं, लेकिन समझते नहीं हैं। लालानी एसर्टिव है और बहुत कुछ समझता है। वह हस्तक्षेप करेगा।

7.2.82

आज 'हंस' का डिक्लेरेशन हाथ में आ गया!

11.2.82

आज 'ब्रदर्स कर्माज़ोव' समाप्त कर दिया। महीन-महीन छपे 950 पन्ने हैं। इसलिए एक साथ पढ़ने का तो सवाल ही नहीं उठता। जब-जब एक साथ कुछ पन्ने पढ़े हैं, उपन्यास ने हमेशा बाँधा है। आश्चर्य की ही बात है कि इतना बड़ा और किसी विराट उपन्यास का प्रारम्भ होने के बावजूद कहीं भी स्खलन नहीं है। मित्या (दिमित्री कर्माज़ोव)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने बाप की हत्या नहीं की, मगर क़ानूनी फ़ैसले के हिसाब से उसे सज़ा हो गई। कोल्यट को लड़कों ने पत्थर मारकर मारा था और वह बीमार होकर मर गया। उपन्यास का अन्त उसके न दफ़नाने की लम्बी प्रक्रिया से हुआ है। अलयोशा कर्माज़ोव इस सारे बोझ को अपनी आत्मा पर लेता है। ठीक उसी तरह 'दफ़नाया' गया है, मित्या। क़ानून और समाज ने उसे भी मारा है। मुकदमे की विवरणों, बहसों ने दो सौ से अधिक पन्ने हैं, मगर दोनों पक्षों के तर्कों में दोस्तोयेवस्की की प्रखर मेधा हर पंक्ति में दिखाई देती है।

अब मैं सबसे 'हंस' निकालने की बात कह रहा हूँ।

12.2.82

''अगर ईश्वर नहीं है तो हर काम जायज़ है।'' यह कहता है ब्रदर्स कर्माज़ोव में स्मिद्रियाकोव यानी बाप फ़्योदोर कर्माज़ोव का नाजायज़ बेटा—जो एक पगली लिज़ से हुआ है और कर्माज़ोव परिवार में रसोइया, दरबान नौकर सभी कुछ है। बचपन में पाला है उसे घर के नौकर-नौकरानी ने। इसे ईश्वर न होने की बात बताता है, ईवान कर्माज़ोव—पहली मृत पत्नी का बेटा, दूसरी पत्नी के हैं दिमित्री और एल्योशा। बाप ने सबकी सम्पत्ति मार ली है। झगड़ा खुले रूप से है दिमित्री और बाप में—मृतकों की सम्पत्ति के हिस्से को लेकर बाप और बेटे दोनों उस पैसे को बाज़ारू लड़की श्रुशेन्का पर फूँक रहे हैं। बाप की हत्या के जुर्म में सज़ा होती है दिमित्री को, जबकि बहस के दौरान ही स्पष्ट हो जाता है कि हत्या नाजायज़ बेटे स्मिद्रियाकोव ने की है। वह खुद भी अपने बाप को जानता है और कहीं अपनी माँ का बदला, अपनी वर्तमान स्थिति का प्रतिशोध लेता है हत्या करके। उसे भीतर से कह देता है यह ईश्वर का मरना...लेकिन यह दृष्टि और दर्शन तो ईवान ने दिया है। इस तरह उपन्यास में तीन हत्यारे हैं: नाजायज़ बेटा, ईवान और दिमित्री (जो अक्सर बाप को मार डालने की घोषणाएँ करता है) और इन तीनों की यातनाओं के नरक को अपनी आत्मा में जीता है—एल्योशा। यह यातना उसे और भी श्रेष्ठतर मनुष्य, उच्चतर व्यक्ति बनाती है—क्योंकि उसके पास ईश्वर है।

ईश्वर को मारकर हमने वहाँ तरह-तरह के दर्शन रखने की कोशिश की कि आस्था का एक केन्द्र बना रहे...मगर वह दर्शन भी तो झूठे निकलते चले गए...हमारे पास भी रह गई अब यह दृष्टि कि जब ईश्वर नहीं है, कोई दृष्टि नहीं है तो सभी कुछ जायज़ है। और हमने जायज़-नाजायज़ का भेद मिटा दिया है।

आजकल सत्ते का बहुत ख्याल आ रहा है। बेचारा पता नहीं कहाँ होगा? कैसा ठंडा मौसम है और वह मालूम नहीं कहाँ भटक रहा है—खाने-पीने, रहने किसी का भी ठिकाना नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15.2.82

13-14 को 'जनवादी लेखक संघ' में रहा। सारे हिन्दुस्तान से तीन-चार सौ लेखक आए थे। घोषणा पत्र पर विचार हुआ, कांस्टीट्यूशन पर बहस हुई। मुझे स्वागताध्यक्ष बना दिया। बहुत संक्षेप में मैंने अपनी बात कही। अनुभव और विचार की। विचार के माध्यम से ही हम अपने अनुभव के स्वरूप, उसकी प्रकृति और बनावट को समझते हैं। ऐसा न हो कि विचार ही हावी हो जाए...

ब्रदर्स कर्माजोव को लेकर बार-बार एक विचार आता है। पता नहीं, किसी ने इस रूप में उसकी व्याख्या की है या नहीं। फ़्योदोर कर्माज़ोव यानी बाप जैसे अपनी पूरी बनावट और परम्परा के साथ रूस है, देश है जो ऐयाशी में डूबा है। बेटों को कुछ नहीं देना चाहता—उनकी माँओं के बल पर ऐयाशी कर रहा है। चारों बेटे जैसे उसे मिलकर मार देते हैं। नाजायज़ लड़का हत्या करता है, ईवान उसे मारने के लिए ब्रेनवाशिंग करता है, मारने के लिए अपराधी माना जाता है दिमित्री और इन सबके किए हुए को अपनी आत्मा पर लेता है एल्योशा...जैसे सबको इस बाप की लाश ने पंगु बना दिया है। जैसे नई पीढ़ी अपने को अच्छे रास्ते पर पाती है। मुझे उपन्यास बार-बार याद आता है। शायद दिल्ली न रहकर मैं किसी छोटी जगह रह रहा होता तो उपन्यास महीनों हाउंट करता। यहाँ तो किसी भी भावना, अनुभव, स्वप्न को अधिक समय तक जी सकना असम्भव है। इधर पढ़ना शुरू कर दिया मैंने 'गोरा' वात्स्यायन का अनुवाद। फिर वही गोरा...अंग्रेजों के ज़माने के भारतीय सांस्कृतिक व्यक्तित्व की जटिल प्रतीकात्मकता...।

18.2.82

कल शानी आया—शाम को। बेहद खुश और उछलता हुआ। भोपाल में अत्यन्त ही भव्य समारोह हुआ। भारत-भवन बना और उसमें यह समारोह हुआ था। इन्दिरा जी ने भाषण दिया। व्यक्तिगत रूप से बातें भी कीं। जहाँ से शानी बेहद जलीलोख्वार होकर निकाला गया था, वहीं उसे शिखर-सम्मान मिला, 2100 का रॉयल्टी का ड्राफ़्ट मिला और बड़े से बड़ा व्यक्ति जैसे रातोंरात बदल गया। शानी जैसे ज़मीन पर नहीं है। शाम को मिलने का तय हुआ था। मन्नू भी आ गई थी और हम तीनों—मैंने, शानी ने और मलिक साहब ने रम ली। बातें होती रहीं। कहा तो शानी ने यही कि किसी जर्नलिस्ट ने उड़ा दिया कि इस बार श्रीकान्त की जगह शानी आ रहा है, राज्यसभा में। अच्छा लेखक है, मध्य प्रदेश का है, आदिवासियों पर अधिकारिक विद्वान है, मुसलमान और हिन्दी का लेखक है। मुझे लगता है कि शानी की महत्त्वाकांक्षाएँ अब फूट पड़ी हैं, अब अंकुश लगना मुश्किल है, मन्नू के शब्दों में अब वह यश, पद, प्रतिभा की दौड़ में शामिल हो गया है। यानी एक कंगूरा और गिरा। अब लिखना उसके लिए पहला सरोकार नहीं रह गया है और उसने वह लाइन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुन ली है जहाँ पुराने के यश पर ही फूलते रहो और कमलेश्वर की तरह तेज़-तर्रार—ब्रिलिएंट बातें करके प्रभावित करते रहो। इसी को लेकर कल बहुत देर बातें हुईं, फिर सुबह चाय पर भी मन्नू से बहस होती रही। पुरस्कार लेखक को क्यों नहीं लेना चाहिए—जब रेडियो, टी.वी., कॉलेज सभी से आप लेते हैं—वह पैसा भी तो सरकारी है। मैं तो यही कह सकता हूँ यह अनर्जित पैसा है जो आदमी को अन्धा करता है...अब आप फूले हुए हैं कि साठ-बासठ की उम्र में इन्दिरा जी की त्वचा कैसी चिकनी और पारदर्शी है कि याद्दाश्त कैसी अद्भुत है कि कैसे छोटी से छोटी बातों में वे दिलचस्पी लेती हैं कि कैसे वे आदिवासियों पर मंच पर ही शानी से बातें करती रही थीं। शरद् जोशी ने इसे कहा था : संस्कृति का भागलपुर-भोपाल। यहाँ लेखकों को अन्धा किया जाता है। दृष्टि यह होनी चाहिए थी कि जिस लेखन के बल पर इतना सम्मान, यश मिला है, अब उसके प्रति अधिक निष्ठावान होना है। मगर हुआ यह है कि अब और सम्मान और यश और प्रतिष्ठा चाहिए। आखिर क्यों न मिले? मैं इतने दिनों उपेक्षित रहा हूँ, मैंने मुसलमान होने की इतनी क़ीमत दी है, बुरे-से-बुरे दिन देखे हैं, इतने उत्कृष्ट उपन्यास को गुमनामी के बारह-चौदह वर्ष भुगतने पड़े हैं—अब मुझे पूरा हक़ है कि मैं पूरा ख़मियाज़ा वसूलूँ। शानी का तर्क है! मैंने उसी सिलसिले में कहा कि सारी तिकड़मों और दंद-फन्दों के बावजूद इस मामले में मैं वात्स्यायन और नगेन्द्र का सम्मान करता हूँ—लिखने को उन्होंने फुरसत और दूसरी प्राथमिकता की चीज़ नहीं बनाया; बल्कि जो कुछ भी लिखते हैं, उसे आज भी पूरी निष्ठा और क्षमता से लिखते हैं। पुरस्कार और सम्मान को लेकर मैं बहुत कन्फ़्यूज्ड हूँ।...पैसा लेखक न चाहे, पर सम्मान और यश तो चाहता ही है। इतना तो कम-से-कम चाह ही सकता है। वह यश-सम्मान मिलता है इसी प्रकार के पुरस्कार सम्मान से, कोई राजनेता आता है तो अखबार, टी.वी., रेडियो सभी दौड़ पड़ते हैं। आप रातों-रात महान बन जाते हैं। क्या करें मीडिया इन्हीं के हाथों में है। आज शानी को पाँच आदमी पढ़ते हैं तो कल निश्चय ही पाँच सौ पढ़ेंगे। क्या लेखक यह नहीं चाहेगा? आत्मसम्मान और इस सम्मान के बीच वह कैसे सन्तुलन बनाए?

4.3.82

उस दिन लगातार सुबह उठते ही बचपन में सुना गाना मन में गूँज रहा था—'रखियो रे लाज मेरी, शरण गहे की...' आगरे के पुराने घर में हमारी तरफ़ वाले बरामदे में झूला डालकर शकुन्तला, शान्ति जी गाया करती थी।...तब मैंने अचानक ही पाया था कि मैं एकदम नकारा हो गया हूँ। मन्नू के साथ सेक्स सम्बन्ध दसियों सालों से है ही नहीं, क़तई इच्छा ही नहीं होती और हम लोग बाहर भी जब अकेले होते हैं तो बिल्कुल दो अपरिचितों की तरह ही सोते हैं। मन्नू के साथ भी कहीं सेक्स जैसी किसी चीज़ का सम्बन्ध है, कभी ख़याल ही नहीं आता। मन में जैसे तय है कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ़ निम्मी के साथ ही है—साल-दो साल बाद जब भी अवसर मिले। इस बीच में कहीं कोई स्थिति ही नहीं है। बल्कि इधर दो-एक साल से मैं अनुभव कर रहा हूँ, मुझे शीघ्र स्खलन की बीमारी है। उत्तेजित होते ही स्थगित-स्खलित। बल्कि जब साजिद अलीगढ़ में अपने मित्र के यहाँ बाज़ारू लड़की ले आया था और इन दोनों ने मेरे सामने सम्भोग किया तो मैं भी मन को समझाकर अपनी पीठ ठोकता रहा कि मैं खरीदे हुए शरीर के साथ सम्भोग नहीं कर सकता, यह भावना और कामना का रिश्ता है और सारी प्रक्रिया को अपने सामने होते हुए देखकर भी मैं अपने को सन्तुलित-संयमित रख सकता हूँ। उस समय बस बैठे-बैठे नामालूम से ढंग से स्खलित हो गया। तब भी मैंने नहीं रियलाइज़ किया था कि मुझे असल में हुआ क्या है? उस दोस्त को आध-पौन घंटे जब लगातार कुत्ते की तरह सक्रिय सम्भोग करते देखा तो सचमुच दंग रह गया था। बीच-बीच में थककर एक-दो मिनट रुकता था और फिर चालू हो जाता। कैसी भयानक स्तंभन शक्ति है, मैं यही सोच रहा था। उस समय और बाद में भी मैं जैसे हर क्षण अपने को बचाकर रखे हुए हूँ कि मैं तो सिर्फ़ एक ही जगह, व्यक्ति के साथ यह सम्बन्ध रख सकता हूँ और वह निम्मी है...मगर इधर जब तीन-चार दिन पहले अवसर मिला तो पाया कि मैं तो एकदम व्यर्थ हो गया हूँ। या तो शीघ्रपतन या पूर्ण असमर्थता, पिचका गुब्बारा किसी तरह हरकत नहीं करता...कितनी ग्लानि और कैसी आत्मघाती धिक्कार भावना...यह क्या हुआ? क्या हमेशा के लिए ऐसा हो गया? अब क्या मैं कभी किसी औरत के साथ नहीं सो सकूँगा? मैं तो ऐसा नहीं था—मैंने तो सेक्स का सुख, आनन्द, सफलता सभी कुछ को जाना है—क्या यह इतने दिनों अपने को भूखे मारने का परिणाम है कि न खाने की इच्छा होती है, न खाना पचता है? डेढ़ साल पहले जब मिले थे, तब भी तो कुछ ऐसा ही अनुभव किया था और तब ध्यान नहीं दिया था कि अब यह स्थायी स्थिति होने जा रही है। तभी से सोच रहा हूँ कि क्या इसका कोई इलाज है? किससे और कहाँ इस बारे में बात की जा सकती है? इलाज कराया जा सकता है? यह मनोवैज्ञानिक बाधा है, सचमुच शारीरिक अक्षमता...मुझे लगता है, इसका कारण खुद निम्मी है। पिछले दिनों उसका जो व्यवहार रहा है उसने कहीं भीतर एक बहुत गहरा 'प्रोटैस्ट' पैदा कर दिया, यह मानो अवचेतन विद्रोह है, कि जब तुम चाहोगी तभी मैं तैयार नहीं हूँ। तुम्हारे लाख प्रयास करने पर यह एक जगह है जहाँ मैं स्वतंत्र हूँ—मेरा 'सेल्फ' जो मुझसे भी निरपेक्ष है—लेकिन इस शारीरिक नपुंसकता के क्षोभ, ग्लानि, 'हाय, मैंने तो इस दिशा में कुछ भी नहीं देखा', 'ठीक चोट, पस्ती और पराजय के साथ जो दूसरा दिल दहलानेवाला विचार उठता है वह यह कि क्या यह रचनात्मक क्षमता की सम्पूर्ण समाप्ति है? क्या यह इस बात का सूचक है कि अब रचनात्मक लिख सकने की सारी सम्भावनाएँ समाप्त! समझ में नहीं आता कि इस मनोवैज्ञानिक धक्के को कैसे सँभाला जा सकता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15.3.82

अजीब 'सेंस ऑफ़ अनरीयल्टी' इन दिनों छाई रहती है। लगता है, जो दिन बीता है, वह और पिछले सारे दिन हमने जिए नहीं, एक खास तरह की बेहोशी में ऊपर से गुज़र गए हैं—जैसे पिछले दिनों मैं यहाँ नहीं, कहीं बाहर से, अस्पताल या हिल स्टेशन से लौटा हूँ और यहाँ उपस्थित नहीं था। यह अनुपस्थित रहने की अनुभूति अतीत के अस्तित्व को मिटाती जाती है और भविष्य की ओर से उदासीन रखती है। जैसे स्लेट पर कोई अनदेखा हाथ है जो पीछे से सारी इबारत को पोंछता चला आ रहा है।...भविष्य के प्रति इतना अनुत्सुक, स्वप्नहीन और अनासक्त शायद मैं कभी नहीं रहा। अब जैसे हंस की बात चल रही, एक बात होती है और चीजें दस दिन आगे खिसक जाती हैं। खिसकें, हो जाएँगी। अब तो कभी अजीब ढंग की दहशत होने लगी है कि अगर सचमुच 'हंस' की बात तय भी हो गई तो क्या मैं सँभाल पाऊँगा? अमरकान्त की 'आकाशवाणी' जैसी कहानी याद आती है जहाँ लड़का रोज़ तरह-तरह की योजनाएँ बाप के सामने बनाता है, उन्हीं सपनों में खोया रहता है और उन्हीं में रहने की उसने आदत पाल ली है। एक बार बाप उसकी एक योजना के लिए रुपयों का प्रबन्ध कर लेता है तो लड़का इस वास्तविकता का साक्षात्कार नहीं कर पाता। बीमार पड़ जाता है। मैं भी शायद पत्रिका की इस कल्पना में रहने का इतना अभ्यस्त हो गया हूँ कि इस निरन्तर निकट होती हुई वास्तविकता से कतराता हूँ। जैसे सारी चेतना सुन्न हो गई है—न पीछे कुछ है, न आगे। वर्तमान भी ठोस नहीं लगता। ऐसी बाहरी आसक्ति भीतर के भरेपन से, किसी स्वप्न से आक्रान्त रहने से आती है। मगर यह तो भीतर का भयावह शून्य है जो बाहर तक फैल आया है। मृत्यु इसके सिवा और क्या होती है? रोज़ एक लम्बी अँधेरी सुरंग से बाहर आने की अनुभूति...।

18.3.82

कल परमेश्वरन से टाइम था। शाम को आने का समय नहीं था, इसलिए तय हुआ कि बुध को साथ ही खाना खाएँगे। मिश्रा जी ने कहा था कि इस बार सारी चीज़ें फ़ार्मलाइज़ कर लेंगे। उम्मीद थी कि हो सकता है अनुबन्ध पर भी हस्ताक्षर हो जाएँ। मिले लिंक हाउस में ही। विज्ञापन के लिए रीडर्स डाइजेस्ट के अफसर को उन्होंने तय किया था और वह अप्रैल से आनेवाला था। मालूम हुआ कि नहीं आ रहा। सारा प्रोग्राम अप-सैट हो गया है, इसलिए चीज़ों को सँभालकर चलाना है। सारी बातें जो हुईं उनमें तय हुआ कि अक्टूबर का ही अंक निकाला जाए। वह तो जनवरी की बात भी कह रहा था। मैंने कहा, वह बहुत दूर हो जाएगा। अक्टूबर के लिए वह पहली जुलाई से काम शुरू करने की बात कहता है। मैंने कहा, नहीं, मुझे चार महीने चाहिए। यानी जून से। यानी मई में हमारा दफ़्तर चालू हो जाए, सब कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैट हो। यानी अप्रैल में हम बैठकर सब कुछ काग़ज़ पर कर लें। उसने कहा, मैं पन्द्रह अप्रैल के आसपास आऊँगा। तभी करेंगे। तब तक आप नाम की डिज़ाइन करा लें। किन-किन लोगों को रखना है, उनकी तलाश में रहें। प्रेस का एस्टीमेट फिर से लिया गया—लेटर प्रेस पर कैसा रहेगा। साइज़ भी तय हुआ। सब मिलाकर बात फिर अप्रैल पर आ गई। मैं चला आया। सोचता रहा कि मिश्रा जी से बातें करुँ या नहीं। सुबह आज उनसे कहा कि कल क्या बातें हुई थीं। उसी में बता दिया कि बातें डिस्कशन से आगे नहीं बढ़ रहीं। जब तक सारी चीज़ें बाक़ायदा नहीं हो जाती मैं किससे क्या बात करूँ? कहने लगे, आज शाम को वह जा रहे हैं। दोपहर को हम मिलेंगे और इसी रविवार से पहले चीज़ें फ़ार्मालाइज़ कर लेंगे। कल मैं भी फ़ोन करूँगा, मगर आप भी कोशिश कर लीजिए क्योंकि नम्बर नहीं मिलता, देखें इस सप्ताह क्या होता है!

कल से रंजन के पिताजी, रंजन, लक्ष्मीनारायण जी सभी आए हुए हैं। ऐसी भाग-दौड़ की ज़िन्दगी है कि कहीं साँस लेने को समय ही नहीं मिलता। इन दिनों कहानी लिखने की फिर इच्छा होने लगी है।

23.3.82

आज मन्नू के 'महाभोज' के नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के प्रस्तुतीकरण का पहला दिन है। कल मिश्रा जी ने गाड़ी भेजी थी, चार बजे। हमारा समय तय हुआ था शनिवार को, मगर यहाँ रघुवीर सहाय को 'दिनमान' के सम्पादक-पद से हटाए जाने के सिलसिले में मीटिंग थी। कल मिले तो वही थरूर की बात कि उसके न आने से सारा प्रोग्राम गड़बड़ हो गया है। हमारे सारे लोग यही आग्रह कर रहे हैं कि कोई न कोई आदमी तत्काल लिया जाना चाहिए। प्रशान्त सान्याल, जिन्होंने पी.पी.एच. जमाया था और अब आनन्द बाज़ार ग्रुप के डायरेक्टर हैं, हमारे साथ आ गए हैं। उनका भी पत्र आया है कि हमने तीन-चार महीने यों ही खो दिये हैं। अब परमेश्वरन को जल्दी से जल्दी आदमी तलाश कर लेना चाहिए। आपको भी चार महीने चाहिए और उसे भी। परमेश्वरन का कहना है कि सारा काम जुलाई से हो...मैंने बताया कि सारी चीज़ें बहुत ही खिंच रही हैं। एक महीना तो दफ़्तर को जमाने में भी लगेगा। सारा काम पहली जून से ही। मान गए हैं मिश्रा जी। तय हुआ कि 10 अप्रैल को हम लोग आपके घर आएँगे। आठ-नौ को हमारी मीटिंग है। परमेश्वरन को भी लेते आएँगे। 15 तक सारी चीज़ें लिखित में हो जानी चाहिए...और फिर मैं चला आया।

29.3.82

इस बीच दो-तीन बार 'महाभोज' देखा। जिस ढंग से इसे लिया जा रहा है, या जैसी चारों तरफ़ धूम मच गई है, पत्रिकाओं में रिव्यू निकल रहे हैं, वह अद्भुत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविश्वसनीय है। लोग स्तब्ध और अवाक् रह जाते हैं। सपने में भी हमें उम्मीद नहीं थी कि इसका ऐसा प्रस्तुतीकरण होगा। सभी कुछ ऐसा, सधा, नुकीला और प्रभावी है कि लगता है, वर्ष की एक महत्त्वपूर्ण घटना होने जा रही है। मुख्यमंत्री, रुका हुआ फ़ैसला और छोटे सैयद से अधिक उत्साही प्रतिक्रियाएँ हैं। सब लोग परम प्रसन्न हैं। परसों अमाल ने अपने घर खाना दिया था। शो से निकलकर गए थे हम लोग। शर्मा जी भी थे। अलग-अलग चरित्रों पर घंटों बहस होती रही। मन्नू ऐसी खुश है कि बस...कहती है कि साहित्य कला परिषद का सम्मान और पाँच हज़ार छोड़कर मैंने अच्छा ही किया। आत्मा और मन पर बोझ ही बना रहता। मेरे लिए असली प्रशंसा तो यही है। मन्नू की प्रशंसा से मुझे क्यों अच्छा लगता है, क्यों टाइम्स ऑफ़ इंडिया में उसका रिव्यू पढ़कर आँसू आ जाते हैं, मैं नहीं कह सकता।

5.4.82

'महाभोज' का सिलसिला अभी चल रहा है। नाटक भयानक हंगामा किए है। नौ-दस शो हो चुके हैं लेकिन टिकट नहीं मिलते। लोग लौटते हैं, खुशामद करते हैं। एक दिन लालानी को दिखाया, राजेन्द्र माथुर को दिखाया। उस दिन गोविन्द निहलानी, श्यामानन्द जालान सभी आए थे। निहलानी ने आज ही फ़ोन किया और आध घंटे मन्नू की जो प्रशंसा की है, मन्नू ज़मीन पर नहीं है। स्तब्ध, मुग्ध—सभी की यही प्रतिक्रिया है। मैंने भी इस बीच दो बार और देखा है और लोग जैसे उठते हैं, वह अपने आप में एक अनुभव है। लालानी तो पागल हो गया है। अपने लिए अलग से एक शो चाहता है—अपने सदस्यों के लिए। शुरू का ख़राब न हो, इसलिए साढ़े सात से आग्रह कर रहा है। वह तो कहता है कि हिन्दी में आज तक ऐसा ज़बर्दस्त नाटक ही नहीं हुआ। अख़बारों ने बैनर लगाकर समीक्षाएँ दी हैं। मन्नू ने परसों चाय दी थी।

7.4.82

मैं सोचता हूँ कि मन्नू का यह यश क्या मुझे सचमुच बुरा नहीं लगता? सही बात है कि मैं देवता नहीं हूँ और मुझमें भी ईर्ष्या-द्वेष सभी है, मगर मन्नू के मामले में अच्छा ही लगता है। लगता है, उसके गौरव में कहीं मेरा हाथ भी है; बल्कि कभी-कभी लगता है, मेरे कारण ही है। यह भी जानता हूँ कि ऐसा सब मेरी ज़िन्दगी में नहीं होगा। मगर जो हो रहा है, उसका लाभ भी तो मुझे ही मिलना है। जैसे अपने बच्चे के यश से मिलता है। उस दिन मृदुला भी आई थी। आनन्द के साथ। बाद में बिना मिले चली गई—वर्ना शिष्टाचार के नाते ही कुछ कह जाती। मगर इस सिलसिले में सबसे अधिक आश्चर्य हो रहा है। उसने अच्छी-बुरी कोई राय नहीं दी। मन्नू को भी बुरा लगा। कम-से-कम फ़ोन करके यह भी कह ही सकता था कि मुझे अच्छा नहीं लगा। उसके साथ कुछ भी होता है और हम लोग दौड़े जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। सेलिब्रेट करते हैं। उसे हम लोगों से ईर्ष्या होगी, यह बात सोचने में थोड़ी तकलीफ़ होती है। मैंने देखा है कि दूसरे लोग चिन्ता करें, आवश्यकता पड़ने पर भाग-दौड़ करें, उसके और उसके बच्चों के लिए कोशिश करें—ख़र्च करें—यह उस सबको 'टेकन फ़ॉर द ग्रांटेड' ही लेता है। दूसरों के लिए उसने शायद ही कभी कुछ किया हो। जिन दिनों टाइम्स ऑफ़ इंडिया की नौकरी के दौरान, या वहाँ से हटने के दौरान, या अपनी दूसरी परेशानियों में, जगह की ज़रूरत के दिनों में रोज़ यहाँ घंटों बैठता था, और मैं दौड़-दौड़कर उसकी समस्याएँ सुलझाता था, खिलाने-पिलाने से लेकर फ़ोन-दारू तक सारे कुछ मेरा होता था, हमेशा अपनी समस्याएँ और परेशानियाँ लेकर आता था, तब एक दिन बीना ने कहा था—कभी भी क्या शानी जी ने यह पूछा है कि आपकी भी कोई समस्या हो सकती है? पर मैंने ध्यान दिया कि सचमुच वह कभी भी किसी दूसरे के बारे में नहीं सोचता। यही सब मैं सुरेन्द्र से कह रहा था तो उसने दुबे वाली बात बताई कि बाला दुबे को भी यही शिकायत थी कि रोज़ लेने आता था, दुनिया भर के टेस्ट कराता था, वापस छोड़ता था।

11.4.82

अचानक सूचना मिली कि शानी की तबीयत ही ख़राब हो गई। साजिद आया। उसने फ़ोन किया तो पता चला, ऑफिस में ही लेट गया था, अपने आदमी के साथ भेज दिया है। थोड़ी देर बाद हम और मलिक साहब पहुँचे। पड़ा तड़प रहा था। छाती में जलन थी और किसी करवट चैन नहीं था। दो दिनों पहले फ्रिज़ में रखी मछली खाई थी (निश्चय ही उसी महिला अंजुम के साथ) नासिरा शर्मा से बातें कर रहा था कि बेचैनी हुई। हम लोग छेड़ते रहे। क़ै करने से आराम मिला था, लेकिन बेचैनी और जलन कम नहीं हो रही थी। आख़िर डॉक्टर को बुलाया। मिसेज़ दुआ। उसने देखा-भाला, पूछा जब घबराहट हुई थी तो पसीना आया था। थोड़ा-सा। फिर हम लोग चले आए। अगले दिन पता चला कि रात को दस बजे डॉ. दुआ आए थे और फ़ौरन ही अस्पताल ले गए। जी.बी. पंत में और उसे इंटेंसिव में रखकर पेस-मेकर लगा दिया। हम लोग तो दोपहर को ही पहुँच पाए। अन्दर नहीं गए। मालूम हुआ कि मैसिव हार्ट अटैक था और जिस समय वह बेचैनी बता रहा था, उस समय एक तरह से उसका दिल संघर्ष कर रहा था। हम लोग सूफ़िया, पप्पू और भाभीजी की बातें सोच रहे थे। अगर खुदा-न-खास्ता शानी को कुछ हो जाए तो ये लोग क्या करेंगे? उसने इन्हें पाला इस ग़लत तरीके से है कि एक भी अपने पाँवों पर खड़ा नहीं हो पाएगा। मलिक साहब सचमुच परेशान थे। ख़ैर, रात को आए। आठ की रात को मुझे मेड़ता जाना था। हरि की फ़ैक्टरी का प्रोडक्शन चालू था। रात की गाड़ी पकड़कर मैं मेड़ता रोड पहुँचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ गाड़ी आई थी। बड़ी फ़ैक्टरी बनाई है। वहाँ से शाम को गाड़ी से चले। अजमेर होते हुए जयपुर। वहाँ से अगले दिन दस बजे की बस से दिल्ली। मिश्रा जी वाली मीटिंग तो स्थगित हो गई थी।

16.4.82

कल दोपहर को परमेश्वर-मिश्रा जी के साथ लंच था। हालाँकि यह बात 10 अप्रैल के लिए तय थी कि हम लोग शाम को मिलेंगे और सारी बातें तय कर डालेंगे। मगर परमेश्वरन नहीं आए। ख़ैर, सारे काग़ज़-पत्तर उठाकर मैं पहुँचा लिंक-हाउस। मिश्रा जी ने बताया कि उन्हें तीन हफ़्तों के लिए विदेश जाना है। कल से तबीयत ख़राब है। डिसैंट्री। यानी मैं परमेश्वरन के साथ अकेला लंच करूँगा। मेरा माथा ठनका। ख़ैर, बैठे ऊपर। परमेश्वरन ने फिर वही विज्ञापन का आदमी न मिलने की बात कही। अपनी व्यस्तता की। मिश्रा जी मई मध्य तक आएँगे। तभी किसी आदमी को अन्तिम रूप से तय कर लेना है। दूसरी पत्रिका की योजना भी इसी के कारण खटाई में पड़ी है। मतलब यह है कि अगस्त से काम शुरू किया जाए और दिसम्बर का अंक निकाला जाए, फिर जनवरी से लगातार शुरू हो। बात इतनी बार स्थगित हुई है कि मुझे लगता है, ये लोग कुछ नहीं करेंगे। मैंने कहा भी कि हम लोग इसे बहुत ड्रैग कर रहे हैं और अब मैं काफ़ी स्टैटिक हो गया हूँ। बहुत देर करने से हमारे और साथी, या दूसरा ग्रुप भी पीछे हट गया है। इस पर पहले तो उसने कहा कि 'आप की इच्छा' फिर बताने लगा कि आप ही हमारे एसेट हैं। हिन्दी पत्रिका की बात आप ही को लेकर आई है, अगर सन्तोषजनक प्रबन्ध न हो तो मैं इनसे पाँच-सात लाख लगाने के लिए कैसे कह दूँ। मैं बिल्कुल नहीं चाहता कि इन्हें बाद में पीछे हटने के बहाने तलाश करने पड़ें। ख़ैर, यह बात मुझे कहनी थी कह दी। अगली बार वह मई के अन्त में आएगा और छह-सात दिन रुकेगा। मैंने व्यवस्था को लेकर भी बात की कि अगर वे लोग पैट्रियट की नौकरी में रहेंगे तो हो सकता है, हमारे और मिश्रा जी के बीच कोई ग़लतफहमी पैदा हो जाए। ज़्यादा अच्छा तो यह हो कि जो कुछ भी हम सम्पादकीय व्यवस्था इत्यादि पर ख़र्च करना चाहते हैं वह सारा कुछ हर महीने अक्षर को मिले और स्टाफ़ आदि अक्षर के ही हों। 'अक्षर' सम्पादकीय सेवा के लिए अनुबन्ध करे। सब मिलाकर 25-30 होता है। लेकिन उसमें मुझे काफ़ी झंझट हो जाएगा। कम-से-कम छह-सात लोग रखने पड़ेंगे। फिर उनका बोनस, प्रॉविडेंट फंड इत्यादि का हिसाब रखना। ज़्यादा अच्छा हो कि एक तीसरी संस्था बना ली जाए। ख़ैर, इसके लिए वह तैयार है। मगर बात कहाँ अटकी है, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।...और फिर मुझे लगता है कि शायद यह योजना भी ठप्प हो जाएगी। कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मिश्रा जी जिस तरह बोलते हैं उसमें तो कहीं भी शक की गुंजाइश नहीं है, मगर...।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

19.4.82

कल रविवार था और बहुत दिनों बाद लगभग आठ साल बाद मैंने एक कहानी शुरू की। रेडियो वालों ने एक कहानी माँगी थी, कुछ दिन सोचने के बाद मैंने अनुबन्ध भेज दिया हस्ताक्षर करके। वक्त होगा तो कहानी लिखी जाएगी। आज उसकी रिकॉर्डिंग थी। हस्बेमामूल टालता रहा—सुबह-शाम पर। समझ में नहीं आ रहा था कौन-सी लिखूँ। लिख भी पाऊँगा या नहीं। बिल्कुल वैसा ही डर था जैसे एक किशोर या प्रौढ़ नई लड़की के पास जाने से पहले सोचता है, कुछ कर पाऊँगा या नहीं। लगता है जैसे चीज़ों, स्थितियों और व्यक्तियों के सारे डिटेल्स दिमाग़ से गायब हो गए हैं और मैं किसी के बारे में कुछ भी नहीं लिख पाऊँगा। समझ में नहीं आ रहा था कि एक लाइन के बाद क्या लिखूँगा? अक्षर के जिस दफ़्तर में रोज़ बैठता हूँ—पिछले पन्द्रह साल से, शायद उसके बारे में भी दो-तीन लाइनों के बाद समझ में याद में नहीं आएगा कि आगे क्या लिखना है। ऐसी ब्लैंकनेस तो सचमुच भयानक है। बहरहाल पुरानी डायरी पलटते हुए दो-तीन कहानियों के नामों पर ध्यान गया। ये नाम मैंने उन कहानियों के लिख रखे थे कि जो कभी लिखनी हैं। 'सीज़ फ़ायर' कहानी अटकी। इस पर शायद लिख सकूँगा। यह नाम बांग्लादेश की लड़ाई के समय लिखा था। बाहरी डिटेल याद नहीं है कोई बात नहीं, परिचित मनःस्थितियों पर ही लिखूँगा। कुछ डिटेल्स उस समय की डायरी में तो लिखे ही हैं, उन्हीं का सहारा लेने से बात बनेगी—कैसी अजीब बात है, कभी मैंने गिरीश अस्थाना के सन्दर्भ में कहा था कि आप बीस साल के अन्तराल से लिखना शुरू करें—अनजाने ही शुरू वहीं से करते हैं, जहाँ से आपने छोड़ा था। यानी रचनात्मकता की खाई को आप विचारों या चिन्तन की मदद से नहीं फलाँग सकते। ये सारी यात्रा तो रचना के माध्यम से ही तय करनी पड़ती है। और ताज्जुब की बात है कि मैंने कहानी शुरू ही नहीं कर दी, रेडियो के लायक़ लगभग लिख ही डाली। आज उसे और बढ़ाना है। हो सकता है, पूरी हो जाए। मैं जानता हूँ, बहुत अच्छी नहीं है, भाषा साथ नहीं देती—वे ही कॉमन प्लेस, शब्द, वही घिसे-पिटे वाक्य। कहीं कुछ भी तो ब्रिलियंट नहीं है; स्थिति भी वही है जब मन्नू और मेरे बीच टेंशन और अबोला रहता था। बड़ा लम्बा सफ़र है अपनी सारी रचनात्मक दृष्टि को फिर से पूरी तरह पकड़ पाना—और आज की समझ तक लाना...पर फिर भी खुशी है कि चार पन्ने लिखे तो। वर्ना मुझे तो यही आश्चर्य होता था कि कैसे लोग कहानी उपन्यासों के वाक्य और पैरा बनाते हैं, कैसे कहानी को सँभालते हैं, कैसे ऐसी अछूती बातें उन्हें सूझती हैं। इसी प्रसन्नता में हर बार की तरह तय कर रहा हूँ कि इस कहानी को पूरा करने के बाद नियमित रूप से लिखूँगा। प्रसन्नता के साथ विस्मय भी है कि ऐसा हुआ कैसे है? क्या इसके पीछे शानी का हार्ट-अटैक है? तुम भी साले किसी दिन यों ही टें बोल जाओगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब समय कहाँ है? या रामविलास शर्मा के इंटरव्यू का वह वाक्य है—उम्र बहुत हो गई है, पता नहीं, कब साँस टूट जाए। कुछ ज़रूरी चीज़ें पूरी करनी हैं, उन्हें जल्दी से जल्दी पूरा कर लेना चाहता हूँ। या इन दिनों दिग्दिगन्तरों में गूँजनेवाला मन्नू का यश है कि पिछले दो-तीन सप्ताह से कोई पत्रिका ऐसी नहीं है कि 'महाभोज' की प्रस्तुति न गा रही हो। कल तो टी.वी. में 'जीना यहाँ' भी आई थी। तुम साले, आलसो राइट्स में ही रह गए...या कहीं गहराई में और दूसरा कारण है...इधर उस भयानक फ्लॉप के बाद मैंने पाया कि मुझमें सेक्स की इच्छा ही इधर ख़त्म हो गई है। आज मन्नू के साथ तो जैसे इस बात को कहीं जोड़ता ही नहीं हूँ। यह सिर्फ़ मीता के साथ जुड़ी है। मगर अवसर और व्यक्तित्वों के अलग विकास के कारण बरसों से वह स्थिति भी समाप्त ही हो गई है। नतीजे में पिछले दिनों से कभी-कभार कुछ अश्लील मज़ाकों के सिवा सोचना भी छोड़ दिया था कि सेक्स भी कुछ होता है। पिछले दिनों की भयानक, शर्मनाक असफलता के बाद मैं सचमुच चिन्तित हो उठा कि यह मेरे भीतर सेक्स की मौत है या रचनात्मकता की। बिजेन्द्र की सलाह पर मैंने इधर कई बार हस्तमैथुन किया तो लगा कि इतना असमर्थ नहीं हूँ। यह खुद अपने इलाज की दिशा में एक प्रयास था—भीतर की रचनाशीलता का अनुसन्धान...क्या इस रचनाशीलता की खोज का कोई सम्बन्ध इस कहानी लिखने से है?...बहरहाल अब लगता है कि अगर इस सूत्र को ज़रा मज़बूती से पकड़ लूँ तो शायद वर्तमान अन्धे कुएँ से बाहर निकल आऊँ...।

19.4.82

कल रात को सवा दस बजे बैठा और पौने दो तक कहानी 'सीज़ फ़ायर' पूरी कर डाली। जानता हूँ, उस पर अभी काफ़ी काम करना है। आठ साल बाद लिखा है और जैसे पैन सूख जाने पर बार-बार झटकारकर स्याही का प्रवाह ठीक करना होता है, ठीक वही हुआ है। पृष्ठभूमि पाकिस्तानी हमले की है, 71 के बांग्लादेशवाली। उन्हीं दिनों की डायरी मैंने कुछ लिखी थी। कुछ हिस्से ज्यों-के-त्यों उठा लिये हैं। अभी तक कह नहीं सकता कि कहानी अच्छी है या बुरी। लेकिन लिखते हुए एक बात ज़रूर लगी। कुछ दूर तक तो मैं डायरी और याददाश्त के आधार पर स्थितियों से बँधा रहा। मगर फिर जैसे कहानी अपनी ही दुनिया में चली गई। बड़ा ग़लत और बनावटी लगेगा (प्रिटेंशस) कहना कि पिछले दो पन्ने कहानी ने ही अपने आपही मुझसे लिखवाए। जैनेन्द्र जी की भाषा लगती है। मगर यह सच है कि तब कहानी मेरे भीतर कोई लिख रहा था, मैं नहीं। अजीब बात है कहानी पूरी करने के बाद न वैसी प्रसन्नता हुई, न वैसा भरा-भरापन लगा। सिर्फ़ इतना महसूस हुआ कि अगर चाहूँ तो आगे भी कहानी लिख सकता हूँ। जब कहानी सोची थी तो जिस मानसिकता में मैं जी रहा था, व्यक्तिगत धरातल पर मन्नू और मेरे बीच जो तनाव था, और निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही जो आज नहीं है। मगर कहानी में वही सब आ गया है। उस मवाद को निकाले बिना कहीं कोई निस्तार नहीं है। अब आगे क्या क़ैद कहानी को उठाऊँ?

परसों तय हुआ था कि मिश्रा जी अपनी गाड़ी भेजेंगे छह के क़रीब और हम लोग मिलेंगे। गाड़ी सात बजे तक नहीं आई। मैं वापस लौट गया। न रात को बात की, न सुबह। फिर सोचा, पूछ ही लें। नौ बजे बात हुई। उनका फ़ोन ख़राब था—वहाँ केवल रिसीव किया जा सकता था। ख़ैर, आज दोपहर के बाद, किसी भी समय की बात तय हुई। कल तो रेणुका को अक्षर के लिए छोड़ना था, इसलिए बहुत भाग-दौड़ थी। वे अभी विदेश नहीं जा रहे। ख़ैर, पाँच बजे उनका ड्राइवर राकेश आया। वे वहीं बातें दुहराते रहे जो परमेश्वरन ने कही थीं। पहली जुलाई से या तो परमेश्वरन आदमी तय कर देंगे, या छोड़ देंगे या खुद आ जाएँगे। बताने लगे, विज्ञापन की दुनिया के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। इसीलिए मैंने उन्हीं पर छोड़ा हुआ है ताकि कल यह न कहें कि सही व्यक्ति नहीं मिले। मैंने कहा, जुलाई में मान लीजिए, वे कहते हैं कि न आदमी है, न मैं आ सकता हूँ तो हम लोग नए सिरे से फिर शुरू करें। हम लोग जिस धुँधली स्थिति में छह महीने पहले थे, उसी में तब होंगे। बोले, आप जैसा कहें। पिछले दिनों बोर्ड मीटिंग में हमने हिन्दी पत्रिका की बात तय की थी और सब बड़े उत्साह में थे। अगले महीने की मीटिंग में हमें भी जवाब देना है। मैंने कहा, हमें अक्टूबर से निकालने की बात तय करनी है। कम-से-कम कहीं कोई चीज़ तय हो, लिखित में आए तो आदमी निश्चिन्त तो महसूस करे। 27 अप्रैल को परमेश्वरन आ रहे हैं, हम लोगों को इस बार किसी लिखित नतीजे पर आना चाहिए ताकि दोनों ओर से दबाव बना रहे। मिश्रा जी इसके लिए तैयार हुए। और भी इधर-उधर की बातें हुईं। फिर मैं चला आया। आज शानी को देखने गए अरविन्द के साथ।

परसों विश्वनाथ जी के यहाँ अमृता प्रीतम के सम्मान में डिनर था। इस बार का 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार उन्हें मिला है। एक से डेढ़ लाख हो गया है। यह पुरस्कार महादेवी और जैनेन्द्र के रहते अमृता को मिले, मुझे काफ़ी अटपटा लगता है।

30.4.82

इस बीच 'सीज़ फ़ायर' के साथ-साथ एक और कहानी पूरी की है, छोटी-सी।

21 को परमेश्वरन से बातें हुईं। वह अड़ा हुआ है दिसम्बर के लिए—यानी सारे काम जुलाई से शुरू हों—एपॉइंटमेंट्स इत्यादि। इस बार न जाने में वैसी थ्रिल थी, न लौटने में अतिरिक्त उत्साह था। आज फिर मिश्रा जी से बात हुई। जो नोट परमेश्वरन छोड़ गए हैं, उन्होंने फ़ोन पर सुनाए। तय हुआ कि 9 मई को हम लोग मिलेंगे। मैंने आज अपनी ओर से सुझाव दिया कि अगर 25-30 पेजों का इन्तज़ाम अगर मैं कर दूँ तो क्या अक्टूबर-नवम्बर में हम लोग इसे निकाल सकेंगे? थोड़ी देर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचते रहे, फिर बोले, 9 को ही बात कर लेते हैं। तब से मैं सोच रहा हूँ कि 40 मैं कहाँ से लूँगा। कुछ लोग दिमाग़ में आ रहे हैं। इस समय सामने सोढी बैठा अपने हिसाब और खातों की बातें करते हुए धारा-प्रवाह बोल रहा है और मैं इन पंक्तियों को लिख रहा हूँ। तीन-चार दिनों से यह रोज़ आ जाता है और अगर मैं अकेला होता हूँ तो लगातार अपने बिज़नेस, पैसे, हिसाब और खाते की बातें करता है। अपने 50 हज़ार हमारे ऊपर निकाले बैठा है और हर समय दबाव डालता है कि मुझे एकदम ये रुपए मिलने चाहिए। इन दिनों पीछे पड़ा है कि अक्षर की ओर से चिट फंड के मेम्बर हो जाएँ और एक साथ चालीस के आसपास दे दूँ और फिर हज़ार रुपए महीने 40 महीने तक देते रहें। मैं एक बार चिट फंड के चक्कर में पड़ चुका हूँ, इसलिए दुबारा उसमें भरसक नहीं पड़ूँगा। हालाँकि मैं बिल्कुल भी सुनने का भाव नहीं दिखा रहा और लिख रहा हूँ। मगर उसके बोलने में कहीं कोई रुकावट नहीं है। खुद ही सवाल करता है और 'कि नहीं ?' के साथ खुद ही जवाब दे देता है। अभी मलिक साहब के साथ हुए वार्तालाप को सुना रहा है।

इन दिनों मैं 'इरविंग वैसेल' का 'निम्फ़ो एंड अदर मैनियाक' पढ़ रहा हूँ। उसने कहाँ से रिसर्च की है, मैं नहीं जानता हूँ। हो सकता है फ्रेंक हैरिस की 'माई लाइफ़ एंड लव' में से उड़ाया हो, मगर शैली, बाइरन इत्यादि सभी के साथ की औरतों के बारे में बड़े अधिकाधिक और प्रामाणिक ढंग से लिखा है। पत्रों और समकालीनों के लिखे से कोट करते हुए...।

5.5.82

आज टिंकू की नौकरी का पहला दिन है। बहुत दिनों से पीछे पड़ी थी कि नौकरी करेगी। फिर अपने आप ही सामनेवाली संगीता के यहाँ जाकर किसी 'बीना' फैशंस वाले से बातें करके आई। पालिका बाज़ार कनॉट प्लेस में उनकी तीन दुकानें हैं, वहाँ उन्हें सेल्स के लिए लड़कियाँ चाहिए। 10 से 7 बजे तक का समय है। शुरू में 650 रुपया महीना और कमीशन जो लगभग डेढ़ सौ बनेगा। सच है कि मुझे अच्छा नहीं लग रहा कि टिंकू इस तरह की नौकरी करे। आठ-साढ़े आठ तो मैं पत्रिका के बाद अक्षर से दे सकता हूँ। आशंका सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि वहाँ जाने कौन लोग हों, जाने कौन लोग आएँगे। आशंका यह है कि दिल्ली में जाने कितने रैकेट हैं, स्मलिंग से लेकर कॉल गर्ल्स तक। इनमें किसी चक्कर में न पड़ जाए। ग्लैमर के लिए उसके मन में जो बेचैनी है यह पता नहीं उसे कहाँ ले जाकर फेंकेगी। मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता कि वह अपना लड़कीपन दिखाकर कुछ करने की नौकरी चाहे, चाहे वह सेल्स गर्ल हो, मॉडलिंग हो या रिसैप्शनिस्ट बने। मुझे गर्व होता और अच्छा लगता अगर राजेन्द्र यादव और मन्नू भंडारी की लड़की बौद्धिक या सांस्कृतिक क्षेत्र में जाती और वहाँ अपनी जगह बनाने की कोशिश करती। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजीब ही है कि यह लड़की हमारी चीज़ों में बिल्कुल भी दिलचस्पी नहीं लेती। कल को हम लोग नहीं रहेंगे तो कैसे करेगी? हमारी किताबों और रचनाओं को कैसे सँभालेगी? सारी सुविधाओं और सुरक्षाओं के बावजूद यह लड़की इतनी मैटिरियल्टिक क्यों है?

7.5.82

कल राजदूत बनने के अवसर पर बच्चू प्रसाद सिंह ने अपने यहाँ चाय की दावत दी थी। वहाँ से मैं और विनय शानी के यहाँ गए। साजिद और मलिक साहब पहले पहुँच गए थे। आठ बज गए। सूफ़िया आई तो मैंने उससे कहा कि तुम टाइप सीखो, कुछ चीज़ें पढ़ो। पता नहीं और क्या हुआ। शायद मैंने उसकी नई बढ़ी हुई मूँछें काटने की कोशिश की। ख़ैर, वह भड़क गया। सूफिया स्टेनो बने, यह उसे बिल्कुल पसन्द नहीं है। एडिटिंग करे, इसके लिए किसी ट्रेनिंग की ज़रूरत नहीं महसूस करता। मैंने कहा, दो महीने हैं, पत्रिका की दृष्टि से जहाँ तुम अपने को ठीक समझो। शानी टाइपिंग पर ही लटका रहा। मैंने कहा, शानी, तुम बच्चों के विकास में बाधा दे रहे हो। वह यहाँ सेट करे, यह इससे अच्छा तो कुछ सीखे।''... ''मेरे बच्चे का हित मुझसे ज़्यादा तुम समझते हो। तुम डिक्टेटर हो, चूतियों को तुम अपने यहाँ घेरकर तुम अपने को बहुत लोकप्रिय समझते हो। मेरे घर के मामले में इंटरफ़ियर करते हो। बीमार आदमी को उत्तेजित कर रहे हो।'' सचमुच मैं चुप रहा। बीच में एकाध वाक्य ही बोला। मगर तब से भीतर कुछ भन्ना रहा है। यह मूर्ख सचमुच भीतर से बीमार है। पता नहीं किस 'एज' में रहता है। या शायद मैं ही कुछ अलग या ग़लत ढंग से सोचता हूँ। चाहूँ तो आज टिंकू को अपनी जगह बैठाकर उसे हज़ार-बारह सौ दे सकता हूँ; मगर जब उसने 'सेल्स गर्ल' बनना चाहा, तो मुझे लगा कि बीस साल की समझदार लड़की है और लड़की होने के ख़तरे आज नहीं तो कल उसे ख़ुद अकेले ही भुगतने हैं। अच्छा है, जिस दुनिया में रहना है, उससे कुछ परिचित हो जाए। मैं कहाँ-कहाँ तक उसे प्रोटेक्ट करता फिरूँगा। जानता हूँ, दो-दो टके के लोगों को कपड़े दिखाने पड़ेंगे, बीस कपड़े दिखाकर ग्राहक कुछ नहीं लेगा। या लड़कियों के आसपास ज़्यादा चक्कर लगाएगा। लोग रिमार्क करेंगे। सब है। पर भुगतना उसे ही है। मुझे नहीं लगता, मेरे सोचने में ग़लती कहाँ है? वह पता नहीं, क्या सोचता है। रेडियो में नौकरी दिलाओ। मैंने कहा, मेरे हाथ में नहीं है। जिसके दिमाग़ में भरा हो कि जगह क्रिएट की जाती है, ट्रेनिंग की ज़रूरत नहीं होती। सही बात है कि सूफ़िया को रखने से शानी के साथ बहुत-सी समस्याएँ पैदा होती हैं। मलिक साहब ने भी यही समझाया था। मैं तो 1500 रुपए की नौकरी बिना किसी पूर्व तैयारी के नहीं दे सकता कि सब सीख जाएगी। औरों को भी जवाब देना है। ख़ैर, मन बहुत खट्टा हो गया। शानी सिर्फ़ अपने ढंग से सोचने का अभ्यस्त है। वह सिर्फ़ अपने ढंग से चीज़ें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता है। लेकिन दूसरों से उम्मीद करता है कि वे उसी के ढंग से चीज़ें जुटाएँगे। ख़ैर, जाए भाड़ में। सुबह जब सोकर उठा तो यही सब बातें दिमाग़ में धमाचौकड़ी मचाए थीं।

10.5.82

गाड़ी का नया दिल्ली का नम्बर मिल गया है—डी.ई.वाई-25 पहला था एफ.डब्ल्यू.बी.-61 यानी जोड़ दोनों का सात है। अगर कुछ नम्बर किसी के लिए सौभाग्यशाली हों तो मेरे लिए भी 'सात' होना चाहिए। गाड़ी में नई पॉलिश—डीप चॉकलेट—हुई है, सारे डेंट ठीक हुए हैं और अब ख़ासी ख़ूबसूरत लगने लगी है। सुविधा और साधन तो बनता है, मगर होती बहुत खर्चीली है। इसका आधा ख़र्चा इंश्योरेंस वाले देंगे। जनकराज हमारा गाड़ी खरीद रहा है। स्टैंडर्ड।

शानी को ही लेकर सोच रहा हूँ। जब मुरादाबाद में दंगा हुआ था तो दिल्ली में भी बेहद तनाव का वातावरण बन गया था। बीवी, बच्चे इसने भोपाल या ग्वालियर भेज दिये थे और सारे दिन के लिए हमारे घर आ गया था। तब भी मुझे ख़याल आया था कि शायद भयभीत होकर वह निकल आया है। रात को भी रहा था। अब सोचता हूँ कि क्या शानी कायर है? कायर होता तो केवल भयानक इच्छा-शक्ति के बल पर कैंसर के इलाज के सिलसिले में कोबाल्ट रेज़ लगने के दिनों में जो केवल हड्डियों का ढाँचा रह गया था, या इस ज़बर्दस्त हार्ट अटैक के बाद जिस ढंग से इसने अपने को सँभाला है। क्या यह कायर होना है? जिन तकलीफ़ों में दूसरा कम इच्छा-शक्तिवाला आसानी से हिम्मत छोड़ देता, उसमें इसने जो साहस दिखाया है, क्या वह वीरता की निशानी नहीं है? लगा, निश्चय ही शानी 'वीर' है। मगर फिर कायर कौन होता है? मुझे लगा, जो ज़िन्दगी को बेहद प्यार करता है वही कायर हो सकता है। वह ज़िन्दगी को इतना प्यार करता है कि जैसे भी हो उसे बचाकर रखना चाहता है। क्या निचोड़ यह हो सकता है कि जो ज़िन्दगी को प्यार करता है, वही कायर है। वीरता के पीछे प्रेरणा ज़िन्दगी से घृणा, वैराग्य या पराजय ही है? वीरता के सारे काम उन्हीं लोगों ने किए हैं जो कहीं न कहीं ज़िन्दगी से बेहद डिस्गस्टैंड हो गए हैं और डैस्परेट होकर आत्महत्या की जगह अपनी हत्या के लिए दूसरे के हाथों में छोड़ देते हैं। या फिर The brave kills himself for the other for living the life so much?

12.5.82

आजकल रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियाँ और उपन्यास पढ़ रहा हूँ। पिछले दिनों साहित्य अकादेमी से प्रकाशित कहानियाँ पढ़ी थीं। फिर 'गोरा', 'आँख की किरकिरी' उपन्यास पढ़े। अब 'योगायोग' पढ़ना शुरू किया है। अक्सर पाया है कि बंगालियों में शुरू से ही उपन्यास, कहानियों में एक तेजस्विनी नारी का चरित्र होता है जो प्राय:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवा, परित्यक्ता या देवता जैसे निकम्मे पति की पत्नी होती है। यह नारी प्रायः स्वीकृत मूल्यों के विरोध में खड़ी होती है। बाहरी प्रवादों, दबावों या लांछनाओं के कारण न अपने सम्बन्धों से डिगती है, न विश्वास और आत्मविश्वास डिगने देती है। लेकिन अन्त में जैसे स्वयं निर्णय लेकर व्यवस्था के समर्थन में सिर झुका देती है। अदा और तेवर यही रखती है, मानो यह भी कोई विद्रोही कार्य हो। 'आँख की किरकिरी' की विधवा विनोदनी, पहले महेन्द्र के प्रति आकर्षित होती है, उसे जीतना चाहती है, मगर खुद प्यार करने लगती है बिहारी को—जो इसे बार-बार ठुकराता और लांछित करता है। जब उसके प्यार को स्वीकार करता है और शादी के लिए तैयार है तो बुढ़िया अन्नपूर्णा के साथ वृन्दावन के लिए निकल पड़ती है। यही 'शेष प्रश्न' में है—यानी ऐसी नारियों की परम्परा है जो अपने तेज और तमक का प्रयोग अन्त में व्यवस्था को मजबूत बनाने में ही करती हैं। कुछ स्थितियाँ, पात्र उनके व्यक्तित्व, आपसी सम्बन्ध, सामाजिक पृष्ठभूमि ऐसी हैं जो लम्बे अरसे तक बंगला उपन्यासों में दुहराए जाते रहे हैं। एक की अनुगूँज दूसरे में सुनाई देती है। देवता जैसा कंसीडरेट, समझदार धीर ज़मींदार नायक, समर्पित उदार पत्नी, तेजस्विनी अनाथ या विधवा नायिका...यही स्थितियाँ बार-बार रवीन्द्र और शरत में आती हैं। यह दुहराव है या अनजाने ही साहित्य की एक रवायत या परम्परा बनने की प्रक्रिया—स्थिति का मिथ बनने की दिशा में विकास ?...यही स्थिति कुछ रूसी साहित्य में है। एक ग़रीब क्लर्कनुमा नायक और वेश्या बनने की दिशा में जाती पुत्री या बहन...नायक के साथ साइबेरिया जानेवाली नायिका...यह बेहद ग़रीब नायक दब्बू, घुना, घुटनेवाला, अपराधी या कभी-कभी आत्मघाती भी होता है...यही नायक गोगोल, चैख़व और दोस्तोयेव्स्की में बार-बार आता है, बार-बार ही आती है, वह गिरी हुई पवित्र तेजस्विनी औरत जो अपराधी नायक के साथ सज़ा भोगने साइबेरिया जा रही है—टॉल्स्टॉय दोस्तोयेव्स्की इत्यादि—यह एक की दूसरे में अनुगूँज स्थितियों की समानता से आई है या एक के लिए दूसरे लेखक को चुनौती, आदर्श हो जाने की मजबूरी में ? हो सकता है, एक लेखक ने दूसरे को अपने लिए चैलेंज समझा हो कि इसी भावभूमि और चरित्र पर मैं लिखकर बताऊँगा कि यों लिखा जाता है! इस तरह कहते हैं 'सखुनवर सेहरा...' मगर इस तरह हिन्दी में क्यों नहीं हुआ ? प्रेमचन्द, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, अज्ञेय, किसी में भी तो दूसरे की अनुगूँज नहीं है। सुनीता के जवाब में यशपाल ने 'दादा कॉमरेड' लिखा, रांगेय राघव अलग-अलग लेखकों को रचना-प्रत्युत्तर देते रहे—मगर एक दूसरे की छाया नहीं कहा जा सकता ? इसलिए हमें अपने यहाँ न तो नायक-नायिका का उस तरह का क्रमबद्ध इतिहास मिलता, जैसे बंगला, रूसी साहित्य में है, न स्थितियों का दुहराव। हर लेखक की भावभूमि, मनुष्य के विषय में धारणा अलग है और वह बिल्कुल ही दूसरे सुर में बोलता है। यह साहित्य के विकास के लिए अच्छा है या बुरा ? कथा-साहित्य में मिथक बनना क्या बहुत ज़रूरी है ? ऐसा नहीं है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में एक-दूसरे के जवाब नहीं दिये गए। प्रसाद ने 'कंकाल', 'तितली' प्रेमचन्द के आरोपों के जवाब में ग्रामीण चित्रण के लिए लिखे, 'चित्रलेखा' की ही छाया है, तीन वर्ष का देवदास। मगर पात्रों की सारी बनावट रेस्पॉन्सेज़ सामाजिक वैल्यू बिल्कुल अलग है।

19.5.82

परसों मिश्रा जी से मिला था। आजकल गाड़ी ठीक करा ली है, गहरा चॉकलेटी रंग और अन्दर नई गद्दियाँ—सब कुछ बड़े रौब का है। पीछे गाड़ी में बैठकर, जब भोलेश्वर चलाता है तो सहसा विश्वास ही नहीं होता कि यह गाड़ी मेरी है...मैं बड़े बॉस की तरह बैठकर घूमता हूँ। 'अरे अकबरा, तेरे ये ठाठ...' अपने से बोलता हूँ। अभी तक औरों के सामने नहीं कह पाता कि अपनी गाड़ी है। अभी भी सचमुच बताने, अपना कहने में शर्म आती है। मैं तो यही कह रहा हूँ कि बब्बू की गाड़ी है और मुझे तीन साल में इसके पैसे दे देने हैं। तो मिश्रा जी से मिला। उन्होंने सारी स्थिति साफ़ की—वही विज्ञापन और आदमी न मिलने की बात। फिर वे सारी बातें बताईं जो परमेश्वरन लिख गए थे। अक्षर के साथ जगह का अनुबन्ध करना। 1800 रुपए महीने, फ़ोन का आधा। मेरे साथ अनुबन्ध करना, फ़र्नीचर इत्यादि का एस्टीमेट देना इत्यादि। उसमें डिक्लेरेशन बदलना है। अगले दिन मलिक आ गए और हम लोग पुलिस कमिश्नर श्रीराजन मिश्र के यहाँ गए। डिक्लेरेशन का नया फॉर्म भरना था। वह दिया गया। मुझे और एक फॉर्म देना पड़ा जिसमें मैंने बताया था कि उक्त पत्र मैं नहीं निकाल रहा। इस तरह कल 'हंस' का डिक्लेरेशन उन्हें दे दिया गया। मिश्रा जी ने बताया कि 24 को उनकी मीटिंग है, उसमें परमेश्वरन और प्रशान्त सान्याल दोनों आ रहे हैं। 25 को हम लोग क्यों न मिल लें फिर 27 को वे तीन सप्ताह के लिए विदेश जा रहे हैं। मैं तब 25 को शहडोल जाने की बात सोच रहा था। उत्कल का समय नहीं पता था। इधर दफ़्तर में कोई भी नहीं था। शशि छोड़ गई है, करणसिंह भाई की शादी में गया है, इसलिए जाने का बहुत मन नहीं है। हाँ, जयपुर ज़रूर जाना पड़ेगा। आज श्री कान्ति कुमार जैन और कमला प्रसाद आए थे और बहुत ज़ोर दे रहे थे। टिकट कराने का आश्वासन देते थे। मैंने आधी अनिच्छा तो बता दी है। देखें, क्या होता है!

24.5.82

कल सुबह पिंक-सिटी एक्सप्रेस से जयपुर गए—मन्नू के साथ। जनवादी लेखक संघ ने 'महाभोज' पर एक गोष्ठी रखी थी। डेढ़-पौने दो सौ लोग होंगे। जयपुर में लक्ष्मीनारायण जी मिले। माधवी ने काफ़ी उत्साह से स्वागत किया और उसका घर तो है ही बहुत व्यवस्थित...दोपहर को सी.आई.डी. के डी.आई.जी. भटनागर आ गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर राजेन्द्र मेहता और ज्वैलर आ गए। ये आगरे के ही थे, राय साहब गणेशी प्रसाद के समधी। फिर राघव प्रकाश, संयोजक आए। चार बजे पहुँचे। खूब जमकर गोष्ठी हुई। ढाई घंटे चली। मैं भी बोला। मगर मुझे लगता है मैं शायद और भी अच्छा बोल सकता हूँ, मगर उस समय बातें अधिक याद नहीं आतीं। जो याद होती हैं, वे भी उस समय भूल जाता हूँ। फिर भी शायद ठीक ही बोला। मन्नू के बोलने की तो तारीफ़ होती ही है। गोष्ठी का संचालन किया राजेन्द्र वोहरा ने... । ख़ैर, वहाँ से आकर थोड़ा-सा बैठे कि इतवारी पत्रिका के ओमप्रकाश थानवी आ गए। इंटरव्यू के लिए। बीच में राजेन्द्र शर्मा, भाभीजी आए। मगर मैं अन्दर आकर बैठ गया। बहुत देर और काफ़ी अच्छी बातें हुईं। ग्यारह बज गए। खा-पीकर उठे तो बारह बज रहे थे। सत्ते के मानसिक ढुलमुलेपन पर बातें करते रहे। ख़ैर, सुबह जल्दी उठे और भागदौड़ कर बस पकड़ी। हरी भी आ गया था। बारह बजे अक्षर में। रास्ते में तय किया कि टिंकू से अब बात करनी चाहिए...बेटे, इसे सँभालो। आगे-पीछे सँभालना ही है। अब कुछ सीखोगी। यही शिद्दत से महसूस होता रहा कि अब टिंकू को सँभाल लेना चाहिए... ।

आजकल अक्षर में न टाइपिस्ट है, न चपरासी। सारे दिन भूत की तरह बैठा रहता हूँ। थोड़ी-बहुत सफ़ाई भोलेश्वर से करा लेता हूँ। शाम को बर्तन इत्यादि साफ़ कर देता है। करण सिंह, भाई की शादी के लिए छुट्टी पर गया है, अभी तक नहीं आया। हमारा 15 हज़ार का ऑर्डर कटा जा रहा है। 'आस-माता' तैयार करानी है। कोई भी भाग-दौड़ करनेवाला आदमी नहीं है। इधर पन्द्रह-बीस दिनों से देख रहा हूँ कि लोग भी नहीं आ रहे हैं। ख़ैर, आजकल तो मानसिकता यह है कि हर बात को यही सोचकर टाल देता हूँ कि एक बार पत्रिका का तय हो जाए, फिर साले सभी आगे-पीछे चक्कर लगाएँगे।...आज मिश्रा जी के लोगों की मीटिंग होगी। कल वे सम्पर्क करेंगे, यही उम्मीद है। कल शायद इन लोगों से मिलना है। फिर तो 27 को मिश्रा जी विदेश जा रहे हैं। 15 जून को आएँगे। अगर जून में ऑफिस सैट करना है तो सारी लिखा-पढ़ी तो अभी होनी है। मैं उँगलियाँ मोड़कर (फ़िंगर-क्रॉस करने को क्या कहेंगे?) बैठा हूँ! कल अगर फ़ोन नहीं आया तो परसों मैं ही करूँगा।

पिछले दिनों अक्षर में कोई नहीं था। मैंने पिछले पत्र निकाले। सबसे ज़्यादा पत्र उमा और अंजना के हैं। जिन्होंने मुझे भावुक कर दिया, वे पत्र देविन्द्र के थे—बहुत प्यार और आत्मीयता भरे...शायद एक-डेढ़ साल आए। पुत्र होने के बाद कम हुए और अब तो दस-बारह साल से पता ही नहीं कि वह कहाँ है? बहुत प्यारी लड़की थी। उसने सचमुच मुझे जवान बना दिया था। मीता के पत्रों ने बीसियों साल पीछे लौटा दिया। क्रमशः इस सम्बन्ध का विकास कैसी विषम और विपरीत स्थितियों में भी चलता रहा है। स्थायी अन्तरे की तरह यही एक संगीत है जो हमेशा साथ रहा है। अब भी अगर मन में कहीं कोई रोमांटिक ख़याल आता है, कहीं आने-जाने की बात उठती है तो इसी की बात मन में आती है। मैं पिछले तीन दिनों से भयानक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नॉस्टेल्जिया में जी रहा हूँ। पत्रिका वाली बात हुई तो इसे एक सुन्दर-सा मंगल-सूत्र और साड़ी दूँगा। मैंने इसे कभी कोई अच्छी चीज़ नहीं दी। इस बार दूँगा।

28.5.82

25 को परमेश्वरन और शेट्टी घर गए। शेट्टी विज्ञापन का आदमी है, तेज़ में काम कर रहा है और इसे इन लोगों ने चुना है। शर्मा जी को भी बुला लिया था। आदमी जवान और डायनैमिक है। शराब और खाना हुआ। 'अक्षर' के साथ एग्रीमेंट और मेरे साथ एग्रीमेंट अब हो जाना है, यह बहुत पहले से तय था। फिर एक बार तय हुआ कि एक-दो दिनों में हो जाएगा। कल भेज देंगे। शेट्टी इन लोगों को 1 जून से जॉयन कर रहा है। सुबह मिश्रा जी से बात हुई। उन्होंने भी बताया कि मैं अब 27 को नहीं, 29 को जा रहा हूँ, उससे पहले ये एग्रीमेंट वाले काम करा जाऊँगा। परमेश्वरन एक साप्ताहिक की बात भी कह रहा था कि उसकी बात भी सोचिए। 'नई दुनिया' के राजेन्द्र माथुर के बारे में जब हम लोगों की बात हुई तो कहने लगा कि अगर वह वहाँ मालिक या संचालकों में से नहीं है तो निश्चय ही हम दिल्ली बुला लेंगे...परमेश्वरन 27 को जानेवाला था, इसलिए मैंने सुबह ही फ़ोन किया। बताने लगा कि मिश्रा जी को एकदम रूस जाना पड़ा। वहाँ के पी.एम. से बातें करने। यही अवसर था जब वे बातें कर सकते थे। हमारी पी.एम. ने ख़ासतौर से मिश्रा से कहा, आप फ़ौरन जाइए...काग़ज़ उन्हीं के पास हैं, इसलिए लौटकर ही होगा। मगर 2 जून को शेट्टी आपसे मिलकर बातें करेगा। आप लोग सब तय कर लीजिए। मैं भी सोमवार दुबारा आ रहा हूँ।...कभी सोचता हूँ, कहीं ये लोग दुबारा टाल तो नहीं रहे। एग्रीमेंट क्यों नहीं हो रहा ? मैंने तय कर लिया है कि जब तक एग्रीमेंट और एपॉइंटमेंट हाथ में नहीं आते मैं किसी को कुछ भी नहीं बताऊँगा। अब सारी बात जून के पहले सप्ताह के लिए टल गई है।

आज प्रभा के यहाँ से एक कैसेट प्लेयर, ट्रांजिस्टर-कम-स्टीरियो ले आए हैं। सब मिलाकर छह हज़ार का है। कभी सोचता हूँ, अपने पास ये सारी चीज़ें तो होनी ही चाहिए। कभी सोचता हूँ कि क्या सचमुच मेरी स्थिति ऐसी हो गई है कि एक झटके से छह हज़ार की चीज़ें खरीद सकूँ ? गाड़ी एक तरफ़ है, चमचमाती हुई। जिस दिन एपॉइंटमेंट लैटर मिलेगा—उस दिन क़ीमती घड़ी लानी है हज़ार तक। सबको साड़ियाँ दूँगा।...देखें, क्या होता है ? रविवार को लालानी लोगों से मिल रहा है, चोरड़िया के यहाँ पर।...कहीं लगता तो है कि चीज़ें बहुत तेज़ी से बदल रही हैं...अब सचमुच कहीं कुछ बदले तब तो बात बने...

2.6.82

काफ़्का का एक बड़ा ही सुन्दर वाक्य पढ़ा—"Kill me, or You are a murderer."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4.6.82

दोपहर का शो 'शौकीन' देखकर हम लोग लौट रहे थे। गाड़ी में मैं और मलिक साहब, जहाँ नेहरू मार्ग से तुर्कमान गेट की ओर सड़क मुड़ती है, वहीं एक संजय टेकरी है। दो आदमी एक काले बकरे की रस्सी पकड़े गोले से निकल रहे थे। बकरे के गले में पीले गेंदों की माला थी, एक घंटी थी। बकरा उछल-उछलकर बहुत खुश चला जा रहा था—शायद कटने। जब वहाँ से आगे निकल आए तो मुझे ख़याल आया कि उन आदमियों के चेहरे तो मैंने देखे ही नहीं। मुझे तो सिर्फ़ दो आदमियों के बीच माला पहने उछल-उछलकर सड़क पार करता बकरा ही देर तक दिखाई देता रहा...।

22.6.82

पिछले दिनों फ़्लावेयर के उपन्यास 'मादाम बीवारी' को पढ़ते हुए एक अद्‌भुत बात महसूस हुई, मैं शायद ज़िन्दगी में सबसे अधिक इसी उपन्यास से प्रभावित हुआ हूँ। अद्‌भुत इसलिए है कि चैख़व मेरा प्रिय लेखक रहा है और ज़्विग के 'बी वेयर ऑफ़ पिटी' का मैं अन्धा भक्त हूँ—मगर अनजाने ही जो चीज़ कहीं गहरे चेतना के अनजान स्तरों पर खुल गई है, वह है 'मादाम बीवारी'। मुझे याद है 52-53 में मैंने इसका हिन्दी अनुवाद पढ़ा था और लेखक की महीन निरीक्षण शक्ति से इतना प्रभावित हुआ था कि 'उखड़े हुए लोग' में वैसे ही महीन और बारीक ऑब्जर्वेशंस देना चाहता था। अभी अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ा है और ख़याल आता है कि शायद हिन्दी अनुवाद बुरा नहीं था। जिस चीज़ ने मुझे सबसे अधिक तब प्रभावित किया था वह था स्थानों का चित्रण, चेहरे-मोहरे, भाव-व्यवहार का चित्रण—इस बार लगा कि स्थितियों का चित्रण कम्बख़त ने और भी प्रामाणिक और सजीव किया है। मन:स्थितियों पर इस फ़्लावेयर की पकड़ तो विलक्षण है। एम्मा की पूरी परिकल्पना उसने ऐसे कौशल से बनाई है कि कहीं आप उँगली नहीं रख सकते। उस ज़माने के ऐसे साहसी चरित्रों को अन्त में मार डालना मुझे हमेशा चिन्ता में डाल देता है। क्यों उनका जीवित रहना नहीं बर्दाश्त कर पाते थे ये लोग? टॉल्स्टॉय ने आत्मा से आत्महत्या कराई, फ़्लावेयर ने बीवारी से...फिर भी टॉल्स्टॉय में वही आस्था या नियति जैसी चीज़ है। अन्ना की मृत्यु प्रारम्भ में ही लगभग तय हो गई है जहाँ वह रेल से कटे आदमी को देखती है—एम्मा जैसे अपनी मृत्यु का चुनाव खुद करती है : वह मरती नहीं, मौत को खुद जीती है—तिल-तिल कर। भयानक अन्त है एम्मा का—अन्ना के मुकाबले...लियॉन से मिलने जाती है तो रास्ते में एक अन्धा भिखारी मिलता है जो हमेशा इसकी गाड़ी में चढ़ आता है और अपनी घिनौनी कोटरों वाली आँखों सहित चेहरा खिड़की में घुसा देता है। अन्ना को उससे बेहद चिढ़ है—मगर मरने से ठीक पहले अपनी बेहोशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एम्मा को वही चेहरा और उसका गाना याद आता है। तब क्या, जब वह लियॉन के यहाँ गई थी, तभी तय हो गया था कि उसे इस तरह मरना है? एडोल्फ़ के समय क्यों तय नहीं हुआ? पहले पहल तो पाप और अपराध तो उसने एडोल्फ़ के साथ ही किया था? वहाँ वह भिखारी क्यों नहीं है।...बहुत पहले न्यू स्टेट्समैन में लेसली फीड्लर या लायनोल ट्रिलिंग का एक लेख पढ़ा था जिसमें उसने बीवारी को बहुत विस्तार से लिखा था। अभी भी मुझे याद है उस लेख में वह किसी काली बंद बग्घी का ज़िक्र करता है जो दुर्भाग्य या अपशकुन की तरह उसी समय दिखाई देती है जब एम्मा पतन के रास्ते पर एक क़दम और बढ़ रही है। यहाँ तक कि उसने एक प्रतीक को काफ़ी आगे तक खींचकर बताया था कि हर 'उतार' पर एम्मा को यही गाड़ी ले जाती है—उपन्यास के तीन भाग हैं और तीनों के अन्त या प्रारम्भ में यह गाड़ी है। मैंने काफ़ी ध्यान से देखने की कोशिश की : मुझे तो कहीं यह गाड़ी नहीं दिखाई दी! मगर यह सच है कि उपन्यास में ऐसे संकेत बड़े कौशल से पिरोए गए हैं। पूरे उपन्यास की बुनावट में अजीब-सी योजनाबद्ध लयात्मकता है।

3.7.82

आजकल घर में अकेला हूँ। मैं, भोलेश्वर और मिस्टी। मन्नू और टिंकू कलकत्ता गई हैं। पहले इस तरह के एकान्तों के लिए तरसता रहता था, क्योंकि तब अपने संसार में सम्पूर्ण होता था। अच्छा अभी भी लग रहा है, मगर उस तरह का रचनात्मक दबाव नहीं महसूस होता जैसा हमेशा होता था। पहले कोई-न-कोई कहानी, लेख ऐसे क्षणों में मँडराया करते थे। अब तो ऐसा लगता है कि बड़ी मुश्किल से स्वतंत्रता मिली है : खूब घूमो-फिरो। अगर गाड़ी में भोलेश्वर-मिस्टी होंगे तो जल्दी से जल्दी लौटकर आना होगा। घर लौटने का ज़्यादा बन्धन है अब।

पिछले दिनों अमर गोस्वामी आए थे। हेमेन्द्र के हाथ पत्र लिखकर भेजा था कि जल्दी से जल्दी आकर मिले। साथ शैलेश भी। गोस्वामी डेढ़ दिन रहे। पत्रिका के स्वरूप को लेकर बातें हुईं। दो हज़ार का वेतन तय हुआ। मिश्रा जी से मिला दिया। किराया दिलवाया। सब मिलाकर प्रसन्न लगा। 15 तक डमी जैसी चीज़ भेजेगा। लेकिन इधर मलिक साहब खाली नहीं कर रहे। एकाध दिन कहते-कहते दो महीने निकाल दिये हैं। अभी भी एकाध दिन कहते हैं। सारे शहर में 'हंस' की चर्चा तो बहुत है लेकिन हंस है कि आसमान से उतर ही नहीं रहा। मिश्रा जी ने कहा तो है गोस्वामी से कि 15 तक सूचना दे देंगे, आप कब से आकर रहें। वहाँ एक महीने का नोटिस तो देना ही होगा।

इधर शशि अक्षर में दुबारा आ गई है। पहले चली गई थी। महीने भर बाद खुद ही आई। क़ायदे से रखना नहीं चाहिए था, लेकिन बीना ने ही बताया था, रजिस्टर या काम तो सारा अपटुडेट है। वैसे भी टाइप इत्यादि काफ़ी सीख गई है। जो दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़कियाँ आ रही हैं, उन्हें न काम आता है, न भाषा। चार-छह महीने तैयार करो और फिर वही सरकारी नौकरी का चक्कर। लेकिन इधर मैं देख रहा हूँ कि यह बहुत परेशान है, टेलीफ़ोन पर धीरे-धीरे न जाने क्या बातें करती है, न आने का ठीक है, न जाने का। परसों एक्सप्रेस के स्टॉप पर साढ़े सात बजे खड़ी थी। मैं, शर्माजी और शैलेश याज्ञिक के यहाँ जा रहे थे—कार से अधिक तो नहीं देख पाया लेकिन यह खड़ी थी और स्टैंड की मुँडेर पर एक लड़का बैठा था, पता नहीं वही भाई साहब थे जो यहाँ एक बार बारह बजे आ गए थे और दो बजे तक बैठे रहे थे। निश्चय ही प्यार-व्यार का चक्कर है और उसमें कहीं भयानक तनाव आ गया है। इसकी हरकतें और व्यवहार देखकर मुझे डर लगता है कि कहीं यह लड़की कुछ खा-पी न ले! कभी शक यह भी होता है कि कुछ दूसरी तरह की गड़बड़ न हो गई हो और यह परेशान हो...न जाने क्यों मुझे लगता है कि ये लड़की कोई न कोई झंझट ज़रूर खड़ा करेगी। आजकल माँ भी यहाँ नहीं है, इसलिए परम स्वतंत्र है। आज भी पौन के क़रीब आई है। या तो यह ग़लत संगति में फँस गई है या ग़लत स्थिति में...पूछने पर बताती कुछ नहीं है।

12.7.82

मुझे लगता है, कभी-कभी ऐसे फ़ेज़ आते हैं कि मैं एकदम ब्लैंक हो जाता हूँ। लगता है—न कुछ सोचने को है, न करने को। यह नहीं कह सकता कि ऐसा क्या किसी किताब को पढ़कर होता है या अपने-आप। पर मैं महसूस करता हूँ कि होता ज़रूर है। इन दिनों मैं घंटों चुपचाप बैठा पाइप पीता रहा हूँ, सोचता रहा हूँ और एकदम ब्लैंक—कहानी, उपन्यास, लेख, विचार, याद, इम्प्रेशन, कोई वाक्य, वार्तालाप का टुकड़ा—कहीं कुछ नहीं। आज सुबह तो सोच रहा था कि अगर कहीं कुछ बोलने की ज़रूरत अब महसूस हो तो क्या मेरे पास एक भी वाक्य, थीम, विचार है जिस पर बोलूँगा ? क्या पिछले दिनों मैंने ही लिखा, सोचा और बोला है ? अभी इस ब्लैंक पीरियड की फ्रीक्वेंसी को नहीं पकड़ पाया हूँ। ऐसा है, सिर्फ़ यही महसूस और पुष्ट किया है। कारण भयानक भीषण गर्मी भी हो सकती है, पत्रिका के स्तर पर किसी भी चीज़ का आगे न बढ़ना और सभी कुछ का स्थिर हो जाना हो सकता है या फिर 'पैपिलॉन' जैसी दिल दहला देनेवाली किताब का पढ़ना हो सकता है जो आपको सुन्न और स्तब्ध छोड़ जाती है। याद नहीं पड़ता कि पिछली बार ऐसा हुआ था तो क्या मैंने कोई किताब पढ़ी थी ? पैपिलॉन (या पैपियो) उस अपराधी की कहानी है जिसे हत्या के (ग़लत) आरोप में आजीवन कारावास हुआ और वह फ्रांस के कालापानी फ्रैंच गायना की औपनिवेशिक जेल में सड़ने-सज़ा भोगने भेज दिया गया। वहाँ से नौ-दस बार जेल तोड़कर भागने की यह कहानी लोमहर्षक हिंसा, यातना, उत्पीड़न, हत्या, अपराध और दुरूह-बीहड़, अनकटे जंगलों, अक्षितिज फैले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सनकी सागर और आसमान के क्रुद्ध या आश्वस्तिदायक विस्तारों से भरी पड़ी है। पैपिलॉन के साथ हैं हमेशा हत्या, चोरी, हमले और तस्करी में पकड़े गए बीहड़ क़ैदी या फिर उन्हें किसी भी शर्त पर कुचल डालने की प्रतिबद्ध हिंसक सन्तरी, बार्डर और फौजी-अफ़सर। यानी हर समय मनुष्य अपने नीचतम रूप में प्रकट हुआ है और इसी में है छूट भागने की, स्वतंत्र होने की, निर्बंध होकर जीने की पैपिलॉन की दुर्दमनीय जिजीविषा...जो उसे हर जगह से उकसाती और भगाती है। पकड़े जाने पर हड्डियाँ-पसलियाँ तोड़ी जाती हैं और हैनरी है कि फिर भागता है। वह जज, सरकारी वकील और मूर्ख व्यापारी जूरियों को दिखा देना चाहता है कि उसने समाज से काटकर मुझे समाप्त हो जाने के लिए जिस नाले में धकेल दिया था, वहाँ से मैं जीवित निकल सकता हूँ। तुम्हारे बनाए हुए प्रारब्ध को ठुकराकर खुद अपना रास्ता बना सकता हूँ।

सच है, यह दुस्साहस और जिजीविषा आदमी को अवसन्न ही छोड़ सकती है। अब याद नहीं आता कि 'अन्ना कैरेनिना', 'ब्रदर्स कर्माज़ोव' या 'मैडम बीवारी' पढ़ने के बाद भी ऐसी मन:स्थितियों के दौरे आए थे या नहीं। कभी सोचता हूँ कि इसका कुछ इलाज कराना चाहिए और कभी सोचता हूँ कि हंस का काम जब शुरू हो जाएगा तो दिमाग़ के खाली रहने का इस तरह कोई सवाल ही नहीं उठेगा। अभी तो सारा काम स्वयं लिया हुआ या स्वेच्छा का है। फिर दबाव और माँग बाहरी होगी—वे कैसे दिमाग़ को खाली रहने देंगे। कभी गहरा और पुराना डर भी सिर उठाने लगता है कि कहीं यह उस पुरानी नपुंसकता का ही तो मानसिक हमला नहीं है?

इस बीच, शायद तीन जुलाई को फिर परमेश्वरन से भेंट हुई। इस बार उसने बुलाया था अपने यहाँ। शर्मा, सरयू को भी। सरयू की तबीयत ख़राब हो गई। पेट में दर्द हो गया। वे ऐन मौक़े पर ड्राप कर गए। मैं अकेला था। लगा कि अब परमेश्वरन खुद ही सँभालेंगे। पन्द्रह दिन यहाँ रहेंगे, पन्द्रह दिन बम्बई। मिश्रा जी ने भी संकेत दिया था। परमेश्वरन का कहना है कि पन्द्रह तक हमें सब कुछ तय कर लेना है। बीस को मिश्रा जी अमेरिका जा रहे हैं, इसलिए ज़रूरी है कि अभी तय हो जाए। मुझे खुन्दक यही चल रही है कि सारी बातें ज़बानी हुई हो रही हैं—कहीं कुछ बढ़ नहीं रहा। होगा तो सही, मगर खिंच इतना रहा है कि होने का सारा मज़ा ही ख़त्म हो गया है।

लगता है मेरे, हेमेन्द्र और टिंकू—तीनों के जीवन में एक साथ मोड़ आ रहा है। हेमेन्द्र हालोल (बड़ौदा) से छोड़ आया है और जैन ट्यूब वालों की शिवा पेपर मिल (रामपुर) जॉयन कर चुका है। एपॉइंटमेंट लेटर मिलेगा। मैं लिंकवालों के साथ आ रहा हूँ और टिंकू का तय नहीं है कि मास-कम्यूनिकेशन ज्वॉयन करेगी या अक्षर सँभालेगी। मैं अगर 'हंस' में चला गया (यानी यहीं बैठकर सँभालने लगा) तो उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर दो कमरे बनवाकर 'अक्षर' सौंप दूँगा। हालाँकि लगता है, उसे व्यस्त रखने लायक़ काम इसमें है नहीं। मगर हो सकता है, वह खुद निकाल ले!

14.7.82

कल मन्नू की गाड़ी आ गई। आसमानी रंग की फियेट। रंजन लेकर आया है। अपने घर से। 1500 किलोमीटर ड्राइव करके। जितनी खुशी होनी चाहिए थी, उतनी नहीं हुई। तीन आदमियों के बीच दो-दो गाड़ियाँ हों, यह ज़्यादती है। मगर किया क्या जाए, हम लोगों के कार्य-क्षेत्र इतने अलग हैं कि दो गाड़ियाँ चाहिए। मन्नू को कॉलेज जाना होता है, कहीं और जाना होता है। अब या तो वहाँ से स्कूटर या पैदल पहुँचे या फिर मैं आऊँ। टिंकू का चक्कर भी रहता ही है। ख़ैर, नीचेवालों को, मुहल्ले में तो सबको धक्का लगेगा ही, हालाँकि मन्नू के पास तो गाड़ी पिछले बारह साल से रही ही है। ऐसी चीज़ें ख़रीदकर लोग दिखाते हैं, मैं जैसे अपराधबोध से छिपाता हूँ।

कल मिश्रा जी के पास गया। तरह-तरह से बहुत-सी बातें हुईं। मैंने आग्रह किया कि हमने अगर गोस्वामी को 15 तक निश्चित जवाब देने को कह दिया है। इस बार बिज़नेस के लिए उन्होंने कोई आदमी कलकत्ते में तलाश किया है। वह 1 सितम्बर से जॉयन करने की बात कहता है। मेरे सामने ही बम्बई भी बात हुई। परमेश्वरन से। वह भी सोमवार को जा रहा है। तरह-तरह की बातों में लगभग यह स्पष्ट हो गया कि ये लोग तब तक कुछ नहीं करेंगे जब तक इन्हें आदमी न मिल जाए। परमेश्वरन ने कहा है कि जहाँ राजेन्द्र जी इतना रुके हैं, थोड़ा दस-पन्द्रह दिन और रुक जाएँ...वहाँ से जब आया तो मैं बहुत खुश नहीं था। अब जो भी होगा देखेंगे। लैट दैम टेक देयर टाइम...।

20.7.82

करण सिंह की बहू मर गई। पहली बार लड़की हुई थी, घर में चख-चख थी और मैंने उसे सलाह दी थी कि पत्नी को अपने पास रखो। दूसरी बार भी लड़की हुई। बीमार तो थी ही। दो दिनों से खाना नहीं खा रही थी। करण सिंह शायद शनिवार को गया था—वह तो संयोग से पहुँच गया वर्ना वे लोग तो बिना उसके ही दाह-संस्कार किए दे रहे थे। लड़की के माँ-बाप को भी खबर नहीं की। मुझे तो साफ़ घपला लग रहा है। एक मन है कि पुलिस में रिपोर्ट कर दूँ, मगर न तो मुझे उसके माँ-बाप का पता है न गाँव का। दूसरी लड़की होने पर जो तानेबाज़ी हुई होंगी, उनकी मुझे जानकारी है। अफ़सोस है कि हम कुछ भी नहीं कर सकते। पुलिस का मतलब है, पुलिस उसके घरवालों से दो-चार हज़ार रुपए झटककर मामला दबा दे। कितनी सस्ती हो गई है एक लड़की की ज़िन्दगी! विस्तार से ख़बर तो उसके आने पर ही मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बीच भयानक गर्मी पड़ रही है। बारिश का नाम-निशान नहीं है। रंजन गाड़ी लाने के बाद लगभग कल तक साथ ही था। टिंकू उससे अच्छे ढंग से हँस-बोल रही है। पता नहीं, मास-कम्यूनिकेशन में एडमिशन के बाद उसका रवैया यही रहेगा या नहीं। मुझे इस लड़की का यह पंजाबी, स्वार्थी दृष्टिकोण कहीं भीतर तकलीफ़ पहुँचाता है। हमेशा लगता है कि यह सहज-स्वाभाविक झुकाव नहीं है। बहुत अस्थायी और स्वार्थ-प्रेरित है। यानी उसे फिर धक्का लगेगा और रोएगा। वैसे रंजन हम सभी को पसन्द बहुत है। अगर टिंकू फिर से सोचकर कुछ तय कर ले तो बहुत खुशी होगी...रविवार को डॉ. कृष्णा शर्मा का जन्मदिन था और हम सब लोग गार्गी कॉलेज गए थे। वहाँ से फ़्लैट देखने गए। फ़्लैट कब मिलेंगे, यह तो तय नहीं है। लगता है, एशियायी खेलों के बाद ही नम्बर आएगा। पहले देंगे तो काम इन्हें बहुत ही ज़ोर से कराना होगा। टिंकू ग्राउंड फ़्लोर के पक्ष में नहीं है। उसे डूप्ले अच्छा लगता है। उसमें खुली जगह बहुत है। ग्राउंड में तो आर-पार हवा जाने की भी व्यवस्था नहीं है। बन्द कर लेने पर एकदम पिंजरा हो जाता है। ख़ैर, किसी से बदलने की बात भी सोचेंगे।

मलिक साहब बहुत ही धीमी गति से बाहरवाला कमरा खाली कर रहे हैं। अभी तक नहीं हुआ है। शायद इस महीने के अन्त तक करें...पत्रिका वाले फ्रंट पर तो अभी सब कुछ ठंडा है। मालूम नहीं, सालों का कोई इरादा है या नहीं।

26.7.82

कल टी.वी पर तीसरी बार 'तपस्या' फ़िल्म देखी। जब-जब इस फ़िल्म को देखता हूँ, तबीयत बहुत उदास हो जाती है। ठीक मीता की तरह ही नायिका (राखी) इन्दु अपने छोटे भाई-बहनों को पढ़ाने के लिए, कुछ बनाने के लिए अपनी जवानी, ज़िन्दगी झोंक देती है। फ़िल्म में नायक (परीक्षित साहनी) सागर अन्त तक प्रतीक्षा करता है, यहाँ नायक शादी करके, गाड़ी, मकान, यश-योजनाओं के जंगल में फँसा है और उधर तपस्या आज भी चल रही है। व्यक्तित्व में बहुत गाँठें आ गई हैं, सब कुछ उलझ गया है, एकाकीपन अब स्थगित होती स्थिति नहीं नियति बन गई है।...फिल्म का अन्त कल भी रुला गया है। बाद में बहुत देर सोचता रहा और फिर 'प्राइज़' उपन्यास में डूब गया। साढ़े सात सौ पन्नों का यह बड़ा उपन्यास न जाने कब से टल रहा था। पैपिलॉन के बाद सोचा कि इसे अब पढ़ ही डाला जाए—पाप कटे। वैसे भी मुझे इर्विंग वैलेस उपन्यासकार पसन्द है। हाँ, सारा लेखन फ़ॉर्मूलाबद्ध लेकिन जानकारियाँ और शोध इतनी है कि हर पन्ने पर ढेरों सूचनाएँ भरी पड़ी हैं। साहित्य, फ़िजिक्स और शरीर विज्ञान, सभी के नोबेल पुरस्कार प्राप्त लोगों के चरित्र, उनके शोध के विषय, पृष्ठभूमि, पहले लोगों की उपलब्धियाँ और आविष्कार—सभी पर कमाल का अधिकार ज़रूर है। यह सही है कि वैलेस भावना और अनुभव का नहीं, सूचनाओं का कथाकार है। मगर वहाँ भी कितना प्रोफ़ेशनल परफ़ेक्शन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिंकू का एडमिशन इंस्टीट्यूट ऑफ़ मास कम्यूनिकेशन में हो गया है। ऑफ़िशियली तो आज सूची निकलेगी, मगर जसवन्त यादव ने बताया है कि उसका एडमिशन हो गया है। दिल्ली से 350 लोग थे, सीट कुल बीस हैं। हो सकता है, बाहर के सेंटरों से भी बैठे हों! कान्ति देव मिनिस्ट्री में हैं, शायद डिप्टी-सेक्रेटरी और इसी विभाग को देखती हैं। उनसे भी कहा था, और वे बोली थीं कि मैं पहले ही बता दूँगी। अभी तक फ़ोन नहीं आया। समस्या अब दूसरी है, सुबह नौ बजे पहुँचना होगा। दो बसें बदलनी होंगी। सोचा यही है कि उसका कुछ प्रबन्ध उधर ही कर दिया जाए। शायद डॉ. कृष्ण शर्मा के यहाँ गार्गी कॉलेज में, या रवि बाबू के यहाँ डिफेंस कॉलोनी में पेइंग गेस्ट बनकर रहे यानी वह वहाँ चली जाएगी। लगा, हम लोग सिर्फ़ दो ही यहाँ रहेंगे? टिंकू के लिए मन उमड़ आया। मुझे लगता नहीं है कि मैं टिंकू से इतना अटैच्ड हूँ। मगर अचानक ही कुछ होता है।

29.7.82

कल विनय से बातें करते हुए अचानक ही एक आइडिया आया। उसे सुनाया तो बोला, इस पर अगर मैं नाटक लिखूँ तो? यह कई लोगों ने मुझे बताया है कि वह इसी तरह लोगों से विचार चुराता है। बहरहाल, आइडिया है : शंकर कोल-भील किरातों का देवता है। वह रहन-सहन, आचार-विचार सभी में एंटी देवता है और देवताओं की तरह न चिकना-चुपड़ा, न मुलायम ज़नाना। स्पष्ट है कि वह ब्राह्मणों के इन तथाकथित देवताओं से एकदम अलग जाति, वर्ण और रेस का व्यक्ति है। हो सकता है, आर्यों के बीच अनार्य देवता हो। मगर वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से हो गया—प्रसिद्ध त्रिमूर्ति! वह इन तीनों में सबसे अधिक पूजित है, प्रिय है और अपने मूल रूप में लोक देवता। विष्णु अपने अवतारों में उतने स्वीकार्य हुए हों, खुद नहीं। ब्रह्मा तो मूर्ख है। यह कैसे हुआ? यह क्यों हुआ कि शिव सबका शिरोमणि ही नहीं बना, उसने अपना लिंग पुजवाया। उसकी सहचरी है शक्ति—पार्वती! यानी वह परम उत्पाती और उपद्रवी और विद्रोही बनकर रहा। उसने निश्चय ही इन सबकी नाक में दम कर दिया और इनकी ज़िन्दगी हराम कर दी। गणेश ने ब्राह्मणों के यज्ञ ध्वंस किए और उन्हें मारा। वह आतंक और टैरर बन गया था, लोग कोई भी कार्य करते समय यह मनाते थे कि कहीं वह न आ जाए। उसका भाग पहले ही निकालकर रखते थे। शिव ने अपनी इन्हीं आतंकवादी प्रवृत्तियों के ज़ोर से दक्ष कन्या पार्वती से विवाह किया होगा—जिसे बाद में मरवा डाला गया। और गुस्से में उसने और भी ध्वंस मचाया। शक्ति का सहारा लेकर उसने अपने-आपको न केवल हिन्दुओं के शीर्ष देवताओं में अपने को शामिल कराया, बल्कि अपने लड़के को भी विघ्न-विनाशक बनाकर पुजवाया। उजड्ड और लंठ तो शिव था ही, उसने आग्रह किया होगा कि लोग ब्रह्मा, विष्णु को जैसे चाहे पूजते रहें, मगर उसके तो लिंग की पूजा होगी। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हुआ। मुझे आशंका है कि जिसे लोग शिव के सिर से निकली हुई गंगा कहते हैं, वह कहीं लिंग से प्रवाहित जल तो नहीं है? वह महान प्रोडक्टिविटी का प्रतीक वीर्य हो सकता है, या सीधा-सादा पेशाब हो सकता है। कोई आश्चर्य नहीं कि उस जंगली ने हाथ में त्रिशूल लेकर (एट द गन पाइंट) बाकी देवताओं और ब्राह्मणों को मजबूर किया हो कि वे न केवल लिंग पूजें, बल्कि उसके पेशाब का भी आचमन करें। सब मिलाकर यह ब्राह्मणों के वर्चस्व का विरोध तो है ही। इस प्रकार शिव मुझे शक्तिसम्पन्न व्यक्ति का ब्राह्मणों के जाल को कुचलकर देवताओं में शामिल हो जानेवाला विद्रोह लगता है। जैसे सिखों के समर्थन के बल पर सबको लतियाता हुआ जैल सिंह राष्ट्रपतियों में से एक हो गया।

अपनी यह व्याख्या मुझे काफ़ी आकर्षक लगती है। अगर मैं इस पर विस्तार से लिखूँ तो हिन्दू लोग मुझे मार डालेंगे। सोचता हूँ कि एक राम की कहानी की अपनी व्याख्या इस शिव की यह कहानी दोनों मिलाकर लिख डालूँ। (जानता हूँ, लिखा नहीं जाएगा।)

12.8.82

6 अगस्त की रात को मैं कानपुर के लिए रवाना हुआ। जनवादी लेखकों का प्रान्तीय सम्मेलन था। दस बजे दिल्ली एक्सप्रेस चली और घंटों शाहदरा खड़ी रही, फिर साहिबाबाद, चार के क़रीब तुगलकाबाद से आगरा होती हुई ढाई बजे कानपुर पहुँची। बेहद उमस, घुटन। सीधे सूटरगंज, गिरिराज के पास। वह सुबह वाले सैशन में अध्यक्षता करने गया हुआ था। नहा-धोकर वहाँ पहुँचा। दिल्ली से कोई भी नहीं आ पाया था। ख़ैर, शाम की मीटिंग अटैंड करके जीजी को देखने पहुँचा, क्योंकि गिरिराज कुछ देर पहले ही निकला था। जीजी को दूसरी बार एडमिट किया गया था। उनके गर्भाशय का ऑपरेशन हुआ है, कैंसर था। फिर टाँके खुल गए। ये लोग सचमुच मुझे देखकर खुश होते हैं। बहुत आत्मीयता और ऊष्मा है। लगता है, प्रतीक्षा कर रहे थे। शाम को मैं और गिरिराज आई.आई.टी. आ गए। अगले दिन सुबह निकले और मीटिंग में पहुँचे। साढ़े दस से तीन बजे तक चली। जो कुछ बोलना था, बोला। शायद जनवादियों को अच्छा न लगा हो। बहुत ही स्पष्ट दो लाइनें थीं, डॉ. रणजीत, सव्यसाची और चंचल चौहान उदार रचनात्मक लाइन लिये थे, भैरव, चन्द्रबली सिंह इत्यादि कट्टर राजनीति वाली। जहाँ सारी दुनिया पूँजीवादी और जनवादी खेमों में बँटी है, मैं तो रचनात्मक लाइन के ही पक्ष में हूँ। वही बोला। इन लोगों ने सौ रुपए दिये। वहाँ से सूटरगंज होते हुए आई.आई.टी.। उद्भ्रान्त से कैलिपर के लिए सम्पर्क नहीं कर पाया था। गोष्ठी में मिल गया तो कहा। ख़ैर, अगले दिन नरेश जी (नरेशचन्द्र चतुर्वेदी) से सम्पर्क किया। उत्साही और स्नेही चतुर्वेदी जी गाड़ी लेकर आ गए। सारे दिन उन्हीं के साथ रहे। उनके यहाँ जाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाना खाया। कैलिपर के लिए नाप दिया और डॉ. सुमन राज से मिले। फिर जीजी के यहाँ और आई.आई.टी., सामान लेकर सूटरगंज। सुबह तूफ़ान पकड़ने के लिए जल्दी निकलना था। सत्या जीजी की छोटी बहन आई हुई हैं, मुझे लगता है, मेरी इन लोगों के साथ घनिष्ठता वे बहुत पसन्द नहीं करतीं। वैसे भी गिरिराज ने बताया कि सत्या जी के सारे हिसाब-किताब पर उनकी निगाह है। अच्छा हुआ, उनके यहाँ मैंने एक भी बार खाना नहीं खाया। इन लोगों के यहाँ नौकर है गोपाल। पुराना। सत्याजी छेड़ती हैं कि यादव लोग हमें इतने प्रिय हैं कि हमने नौकर भी यादव ही रखा है। अच्छा और भला है। मेरा तो विशेष ध्यान रखता है और इंटेलीजेंट इतना कि दस साल बाद भी फ़ोन पर पहली आवाज़ में पहचानता है। शादी कर ली है, दोनों पति-पत्नी वहीं रहते हैं। इस बार बच्ची भी थी। मैंने छोटी जीजी से बचाकर बच्ची के लिए दस रुपए दे दिये। बेहद ही खुश हो गया। सुबह तूफ़ान पर आ गए। शिकोहाबाद में मीता मिली।

इस बार बाहर निकलने में अजीब ही अनुभूति हुई। कुछ ऐसा लगा, जैसे दसियों बरस बाद मैं किसी निहायत ही अपरिचित और अनजानी जगह के लिए निकल रहा हूँ। यात्रा मुझे पहले की तरह रोमांच और उत्साह से नहीं भरती। कहीं हल्की-सी भीति और अनखायापन रहता है, वही स्कूटरवाले, कुली, रास्ते की चिपचिप गर्मी-पसीना। हर बार मन होता है, टालो जी, कहाँ झंझट में फँसे? लगता रहा, जैसे लोगों से, स्थान, यातायात से बरसों बाद सम्पर्क हो रहा है। हर चीज़ को देखकर लगता, अरे यह ऐसा है! अरे, लोग हड़बड़ाकर ऐसे चढ़ते हैं, अच्छा! कुली एक चक्कर का सवा रुपए लेने लगे हैं, यानी उम्मीद डेढ़ या दो रुपए की करते हैं! इस ज़रा-सी अटैची के हर बार दो रुपए देने पड़ेंगे? दो टिकिया एक रुपया, चाय चालीस पैसे, रिक्शा ढाई और तीन रुपए...। जैसे दिल्ली की सुनिश्चित और सुपरिचित रूटीन ज़िन्दगी के बाद मैंने मानो पहली बार रि-डिस्कवर किया कि कैसी भयंकर महँगाई हो गई। पाँच-सात सौ में लोग बेचारे कैसे रहते होंगे? कुछ न करो तो बाहर निकलते ही दस-बीस रुपए खुलना बेहद ही स्वाभाविक बात है। गिरिराज के यहाँ का सिलसिला यही है। वहाँ आज भी सर्फ़ के बड़े डिब्बे खुलते हैं, वह बाहर जाता है तो मिठाई लेकर आता है, चाय के साथ पकौड़ी-पकौड़े, मठरी—यही हाल जीजी के यहाँ है। लगातार चाय बनती है। रिक्शे से चार-चार चक्कर लगते हैं। गिरिराज की तो तनख्वाह रुकी है। मेरे सामने ही टेलीफ़ोन करा। इलाहाबाद के चक्कर लगाने पड़ेंगे। सात हज़ार में आर.के. गर्ग को तय किया है। क़र्ज़ा लेगा। किसी और नौकरी की उम्मीद में लगा है।...सचमुच बाहर हालत भयानक है। अखबारों से बाहर की हालत जानते-जानते सब कुछ मेरे लिए अमूर्त और निराकार हो गया था—एकदम एबस्ट्रैक्ट। एक बार वह फिर मानो साकार हुआ। लगता है, अपने को जीवित और जीवन्त रहने के लिए मुझे बार-बार यात्राएँ करनी चाहिए...। पहली बार समझ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आया कि क्यों मैं कहानी, उपन्यास नहीं लिख पाता। कहीं कुछ सारी सोच—प्रक्रिया में ऐसा गड़बड़ा गया है कि एकदम विस्मृति में जाकर एबस्ट्रैक्ट हो जाता है।

17.8.82

इधर घर पर और बाहर घटनाएँ बेहद तेज़ी से घटित हो रही हैं। शनिवार को टिंकू अपनी किसी दोस्त की पार्टी में गई थी, हम लोग गए शानी के यहाँ। पप्पू का जन्मदिन था, लेकिन दावत हमारी थी। मैं, मलिक साहब, नामवर, विनोद भारद्वाज, विष्णु खरे, केदार नाथ, सुरेन्द्र वर्मा—सभी थे। उस दिन परेशानी के वज़न पर खरे-शानी शब्द जाना। अगले दिन सुबह नवलखाजी के यहाँ खाना खाया, टिंकू को ग्रेटर कैलाश छोड़ा। एस. 271 में कोई भल्ला है उनके यहाँ। लड़की दिव्या अकेली है, माँ-बाप बाहर गए हुए हैं। मगर टिंकू के लिए जगह बहुत सुविधाजनक रहेगी, ऐसा नहीं लगता। वहाँ से गए मिश्रा जी के यहाँ। पिछले सप्ताह उनकी मीटिंग हुई थी। उसमें 28 को फिर मीटिंग करके तय करने की बात हुई। घर आकर एकदम उजाड़ जैसा लगा। टिंकू के जाने से घर ऐसा सूना हो जाएगा, यह हम लोगों ने नहीं सोचा था। लगता है, जैसे घर में कोई है ही नहीं—मैं, मन्नू, मिस्टी जैसे तीनों ही अपनी धुरी से कट गए हैं।

इधर मैं कानपुर जाने से पहले एक पत्र मिश्रा जी को लिख गया था कि अगर बारह-तेरह की मीटिंग में बात तय नहीं होती तो हमें पत्रिका वाले कमिटमेंट से अपने को मुक्त समझना चाहिए। क्योंकि पिछले सवा साल से हम लोग सिर्फ़ बातें कर रहे हैं, हर बार पन्द्रह-बीस दिनों पर बात टल जाती है। कभी परमेश्वरन कहते हैं कि स्टाफ़ तलाश कीजिए और कभी आप कहते हैं कि अमुक आदमी अगर आपके काम का है तो उसे बुला लीजिए। इसी सिलसिले में अमर गोस्वामी को हमने बुलाया। अब तो लगभग बात सभी जगह फैल गई है। इसमें मेरी पोज़ीशन बहुत कम्प्रोमाइज़िंग होती है। लौटकर आया तो बाई हैंड मिश्रा जी का पत्र मिला। उसमें यही बात थी कि हिन्दी-पत्रिका की बात तो हम लोगों ने तय कर ली है, अब जब तक तैयारी पूरी नहीं होती, कुछ भी करना ग़लत है। तीन अंक निकालकर बन्द करने की बजाय, छह महीने देरी करना ज़्यादा अच्छा है। पत्र बहुत शिष्ट था, लेकिन उसमें से जो ध्वनि निकलती थी, वह यही कि अगर मुझे जल्दी है तो अपने मित्रों के साथ मैं निकल लूँ।

रविवार को मैं मिला था गिरिराज के लिए। उसने अपने मुक़दमे के लिए किया है आर.के. गर्ग को। वह चाहता था कि गर्ग सिर्फ़ पेशे के लिए नहीं, व्यक्तिगत रुचि लेकर करे। मिश्रा जी जानते हैं और उन्होंने आश्वासन दिया कि वे करा देंगे। पत्रिका के लिए बताया कि न्यूज़ प्रिंट पर 20 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है और अब केवल एस.टी.सी. ही एकमात्र एजेंसी है जहाँ से आप काग़ज़ ले सकते हैं, पहले की तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग-अलग जगहों से नहीं। इसका असर पत्र-पत्रिकाओं पर भयंकर पड़नेवाला है। उसी हिसाब से सारी प्लैनिंग करनी है। हम लोग 28 अगस्त को मिलकर अन्तिम रूप से तय कर रहे हैं। मैं चुप हो गया। लगा अब मुझे प्रभाष जोशी के जरिए इंडियन एक्सप्रेस या लालानी के साथ मिलकर ही इस योजना पर बात आगे बढ़ानी चाहिए। मैं जितना निश्चिन्त होकर बैठा था, स्थिति उतनी ही निश्चिन्त नहीं है। हमने तो 'अक्षर' का सामनेवाला कमरा भी खाली करा लिया है। मुझे कुछ न कुछ जल्दी ही करा लेना चाहिए...मैं मानसिक रूप से काफ़ी परेशान हो उठा हूँ।

23.8.82

इधर मणि मधुकर का क़िस्सा सारे अख़बारों में आ रहा है। दरियागंज में ही हैं एक डॉ. ओ.पी. भार्गव। उनका परिचय मणि मधुकर से हुआ नन्दन की लड़की की शादी में। उनका कहना है कि वह अपने को तांत्रिक भी बताता है और आपकी अमुक दिन मृत्यु हो जाएगी, कहकर मणि ने उन्हें दो नगीने दिये 48 हज़ार कैश में। पहले तो काफ़ी दिनों पत्थर तलाश करने, कहीं से मँगा देने की बात करता रहा, फिर मँगाकर दे दिये। उन लोगों ने पत्थर जब जौहरी को दिखाए तो पता लगा कि एकदम नक़ली है। उन्होंने पैसे वापस माँगे होंगे। इस पर उसने इन्हें दो चैक दिये। एक 18666 का और एक तीस हज़ार का। पहला चैक मिल गया और दूसरा रुकवा दिया गया। इसके साथ ही डॉ. भार्गव को रजिस्टर्ड नोटिस मिला कि आपसे अनैक्सी बेचने का जो सौदा हुआ था, उस बारे में आपने छुपाया था। वह जगह तो कानूनी झगड़े में पड़ी हुई है। उस पर मुक़दमा है। इसलिए मैं यह चैक लौटा रहा हूँ। मुझे यह सौदा मंजूर नहीं है। इसलिए आप पैसे लौटा दें। अब इनके हाथ-पाँव फूले। इन्होंने नन्दन और रमेशचन्द्र जैन के चक्कर लगाए और उन्होंने अपने प्रभाव से पुलिस को मणि के पीछे लगा दिया। एक दिन मणि 'अक्षर' आया था। उसने केस का दूसरा रूप बताया कि मेरा परिचय डॉ. भार्गव से नन्दन की लड़की की शादी में हुआ। मुझे तब नहीं पता था कि कमला भार्गव नन्दन की सरोजिनी प्रीतम हैं। हुआ यह कि मेरे ससुर का एक मकान है जयपुर में। सौदा तय हुआ कि डॉ. भार्गव वह मकान खरीदेंगे और उसके बदले अपने मकान के पीछे जो अनैक्सी जैसी जगह है, वह देंगे। दोनों का अन्तर चैक से दिया जाएगा। डॉ. भार्गव तंत्र-मंत्र में बहुत विश्वास करते हैं और अक्सर दरीबा के एक चौहान तांत्रिक के यहाँ आते-जाते हैं। उसी तांत्रिक के कहने पर यह राशि 48666 तय हुई। यह भी तय हुआ कि पैसे लेने-देने और लिखा-पढ़ी के लिए अमुक समय ठीक रहेगा। मैं गया और मैंने चैक उन्हें दिये। शाम को लिखा-पढ़ी होनी थी, शाम को पता चला कि डॉ. भार्गव को दिल्ली से बाहर जाना पड़ा। दो-तीन दिन मैं अलग-अलग समय पर फ़ोन करता रहा और कमला जी बताती रहीं कि वे बाहर हैं। फिर मैं खुद ही पता लगाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। अलग-अलग समयों पर उनके न होने की बात बताई गई। एक दिन उस अनैक्सी का एक किराएदार मिल गया और उसने बताया कि डॉ. यहीं है, कहीं भी नहीं गया। उनसे हमारे मकान को लेकर 68 से मुक़दमा चल रहा है, बीच में मारपीट भी हो गई थी। तब मेरा माथा ठनका। मैंने चैक रुकवा दिया और उन्हें पत्र लिखवाया कि पैसे लौटा दें, हमें यह सौदा मंजूर नहीं है। कुछ दिनों बाद अचानक मेरे घर पुलिस आ गई—आपको थाने चलना है। मैंने उन्हें तो किसी तरह टाला और बजरंगलाल को फ़ोन किया। उन्होंने पुलिस तो रुकवा दी और अगले दिन ग्यारह बजे आने को कहा। मैं सारे काग़ज़ लेकर गया। उन्होंने बाहर बैठाया। काफ़ी देर बाद उसमें से डॉ. मिसेज़ भार्गव, नन्दन और रमेश जी निकले। तभी मेरी समझ में आ गया कि मामला क्या है, बजरंगलाल का सारा रवैया ही बदल गया। उन्होंने काग़ज़ रखवा लिये और अगले दिन आने को कहा। गया तो बोले कि आपके खिलाफ़ बहुत लोगों की शिकायत है। हो सकता है, कुछ वरिष्ठ अधिकारियों की भी हो। मैं मणि की ये सारी बातें बहुत ध्यान से सुन रहा था, अब बोला : भगवतीशरण सिंह की तो नहीं? क्योंकि साक्षरता निकेतन को मणि ने कैसे चूना लगाया, यह मैं जानता था। इसी दौरान मणि ने डॉक्टर के मकान के पिछले हिस्से का नक़्शा दिखाया कि ये डॉ. ने खुद बनवाकर दिया था और डी.डी.ए. के रिटायर्ड इंजीनियर का बनाया हुआ है। राजेन्द्र जी, ऐसे कोई कैसे किसी को अपना नक़्शा दे देता है? नक़्शे पर (मणि के अनुसार ही) डॉक्टर के नाम के साथ लिखा था : डॉ. ओ.पी. भार्गव का मकान, Sold to Mani Madhukar। मैंने कहा, इसमें तो नक़्शा बनानेवाला फँसेगा। इंजीनियर को क्या मतलब कि मकान किसी को किराए पर दिया गया है या बेचा गया है। इस पर वह चौंका। ख़ैर, यह कहकर चला गया कि अब नन्दन कहता फिर रहा है कि जेल कराएगा।...मैं कानपुर गया तो वहाँ अख़बारों में पढ़ा कि मणि गिरफ़्तार हो गया, मगर अग्रिम ज़मानत पर था, इसलिए छूट गया। फिर ठगी का सारा विवरण। अगले दिन मणि का वक्तव्य और मकान का क़िस्सा आया तो यहाँ सबकी एक ही प्रतिक्रिया, फँसा है, फँसने दो। एक दिन मैंने भीष्म साहनी को कहा तो वह उससे मिलने गया। आकर फ़ोन किया कि पुलिस उसे परेशान कर रही है। तुम भी जाकर मिल आओ। 14 को मुझे पप्पू के बर्थडे पर जाना था शानी के यहाँ। वहाँ थे—नामवर, विष्णु खरे, विनोद भारद्वाज, सुरेन्द्र वर्मा, केदारनाथ सिंह, मैं, सुरेन्द्र गए थे, मलिक साहब भी थे। मन्नू भी। वहाँ जमकर बहस हुई। सभी मणि के ख़िलाफ़ थे, ख़िलाफ़ मैं भी था, लेकिन एक तो पुलिस उसको और घरवालों को परेशान न करे, दूसरे, नन्दन और राकेशजी को हम यह अधिकार नहीं देंगे कि वे पुलिस पर प्रभाव डालकर जिसको जैसे चाहें, तंग कर सकें। मैंने ज्याँ ज़ेने का उदाहरण दिया। नामवर ने कहा : वह पहले चोर था, बाद में साहित्यकार बना; यह पहले साहित्यकार था, बाद में चोर बना। उधर शायद मन्नू,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिसेज़ खरे इत्यादि भी इसी प्रसंग को धुनते रहे। बहरहाल सोलह को मैं गया। सात के आसपास तब वहाँ दो पुलिसवाले थे—सादा वर्दी में। वे उसे अलग ले गए। मैं रचना से बातें करता रहा। रहन-सहन सभी दृष्टियों से मकान एक फ्रीलांसर का तो नहीं ही था। मैं आध घंटा बैठा। मणि से बात नहीं हुई। चलते-चलते भेंट हो गई। हम लोग एक स्टेटमेंट दें कि केस अपनी मैरिट पर दें, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है, मगर उसे और उसके परिवार को पुलिसवाले तंग न करें—यह हम ज़रूर चाहते हैं। रात को भीष्म ने स्टेटमेंट पढ़कर सुनाया। अगले दिन रचना आई और हस्ताक्षर कराके ले गई। उसमें भीष्म, कृष्णा सोबती, गंगाप्रसाद विमल इत्यादि के हस्ताक्षर थे, अगले दिन पता लगा कि अमृता प्रीतम, नामवर, मनोहरश्याम जोशी, डॉ. मानकेकर इत्यादि सभी के हस्ताक्षर थे। लेकिन इस सबको लेकर घर में, बाहर भयानक बहस छिड़ी हुई है। रात में मन्नू से युद्ध हुआ कि उस फ्रॉड को उसके किए की सज़ा मिलनी चाहिए। मैंने कहा कि अगर पाँच की सज़ा होती हो तो दस और पन्द्रह की हो, मगर इंवेस्टिगेशन के दौरान पुलिस अपने तरीक़े न इस्तेमाल करे। मन्नू, शर्मा जी, शानी और दूसरे लोगों का कहना है कि यह क़रीब-क़रीब उसका पक्ष लेने जैसी ही बात है और अगर उसे पुलिस का डर था तो उसने ये-ये सारे काम क्यों किए? फिर पुलिस के जुल्मों की आपको यहाँ ही चिन्ता क्यों है और कहीं क्यों नहीं? आप साफ़ क्यों नहीं कहते कि आपको नन्दन का कम्प्लेक्स है, टाइम्स ऑफ़ इंडिया से चिढ़ है। और तब से यही बहस छिड़ी है, मैं बहुत से एकेडमिक प्रश्न उठाकर इस सवाल को सैद्धान्तिक रूप से तय करना चाहता हूँ कि ये चीज़ें साथ-साथ क्यों जाती हैं, जैसे क्रुकेडनैस और इंटेलिजेंस सेन्स् वॉयलेंस, पॉवर और क्रूरता, प्रतिभा और अपराध—इन पर हमें गम्भीरता से सोचना चाहिए...

इधर 'पत्रिका' के फ्रंट पर एक और नई बात हुई है। मिश्रा जी के ठंडे रवैये से मुझे यह लगने लगा है कि शायद उनके बस का नहीं है। गिरिराज के लिए आर.के. गर्ग के बारे में बात करने के सिलसिले में 15 को हम लोग मिश्रा जी के यहाँ गए थे। मन्नू का भी ख़याल है कि उनमें इतना उत्साह नहीं है। अब 28-29 को तय हुआ है कि उनकी मीटिंग होगी, कलकत्ते में और वे बताएँगे। मैंने फिर आग्रह किया है कि बात को आख़िरी रूप से ही तय कर दें।

24.8.82

गिरिराज की नौकरी के लिए ही मैं मिला था, प्रभाष जोशी से। तभी उन्होंने बताया कि उनकी मशीनें आ रही हैं और उन लोगों की योजना है हिन्दी की पत्रिकाएँ निकालने की। मैंने जानना चाहा कि अगर हम लोग 'हंस' निकालेंगे तो क्या वे डिस्ट्रीब्यूशन लेना चाहेंगे? यानी क्या 25 हज़ार बेच सकते हैं। जोशी बोले कि गोयनका जी आएँगे, तभी बातें होंगी। मैं भी बाहर जा रहा हूँ, इसलिए शुक्र को बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करें। अंग्रेज़ी लेख के बारे में भी बातें हुईं और मैं चला आया। दो-एक दिनों में अचानक ख़याल आया कि पैट्रियॉट वाली बात इन्हीं से क्यों न की जाए? शुक्र को फ़ोन करके प्रभाष जोशी से शाम को मिलने गया। अरविन्द शानी के साथ कैब्रे दिखाने ले जा रहा था। इसलिए बीच में रुककर मैं प्रभाष जोशी को ले गया कोटला में। वे ही ले गए। ऐसी अच्छी जगह है, मुझे पता ही नहीं था। वहाँ बैठकर पैट्रियॉट की बात बताई। 'हंस' की पूरी योजना सहित। वे कहने लगे कि ऐसा नहीं हो सकता कि नाम आपके पास रहे और वे निकालें। वे इस पूरे प्रोजेक्ट को ले सकते हैं। मैंने कहा, यही सही। बताया, गोयनका जी आनेवाले हैं—उनसे बात करके आपको बताऊँगा। शनिवार को पूछा तो बताया, अभी मुलाक़ात नहीं हुई है। कल होगी। नौ तक कल मैं बता दूँगा। आप मिल लीजिए। अगले दिन रविवार को नौ बजे तक फ़ोन आया था। अगले दिन दस बजे 'जनवादी लेखक संघ' के प्रान्तीय सम्मेलन में दस बजे पहुँचना था। फ़ोन नहीं आया। मन्नू लंच से पहले लौट आई। मैं छह बजे आया तो बताया, फ़ोन आया था। जोशी अहमदाबाद जा रहे हैं। आप गोयनका जी को उनके घर या दफ़्तर में फ़ोन करके टाइम तय कर लें। मैंने साढ़े आठ के क़रीब फ़ोन किया। अगले दिन 12 बजे का समय तय हुआ।

कल मैं बारह बजे पहुँचा तो मिले गोयनका जी—अपने अलग गैस्ट हाउस में। अलग ही छोटा-सा दफ़्तर है, सेक्रेटरी का। बहुत ही क्षमाशील होकर बोले—राजेन्द्रजी, मुझे बाद में खबर मिली, सामनेवाली बिल्डिंग के सिलसिले में अभी सुप्रीमकोर्ट पहुँचना है। कल हम लोग जब और जितनी देर को चाहें मिल सकते हैं। 11 का समय फिर तय हुआ। आज ठीक ग्यारह बजे पहुँचा। बातें हुईं। 'हंस' की। आपकी योजना क्या है? योजना बताई। पैट्रियॉट वाली बात बताई। कहने लगा, मेरी पक्की धारणा है कि आइसोलेशन में कोई भी पत्रिका नहीं चल सकती। मुझे हिन्दी दैनिक निकालना है, 26 जनवरी से। उन्हीं के साथ यह भी हो सकता है। तो फिर साथ ही निकालिए। मैं तो हिन्दी तेली-तमोली के समझने के स्तर पर निकालना चाहता हूँ। 'औपनिवेशिक साम्राज्यवाद' वह नहीं समझता। लोग मुझे हिन्दी विरोधी समझते हैं। गौ-हत्यारा समझते हैं। विदिशा में मैंने शुद्ध हिन्दी में भाषण दिया। संस्कृत श्लोक कोट किए। मेरे अपने घर में 200 गउएँ हैं। 40 साल पिंजरापोल का सेक्रेटरी रहा। अपनी इन कहानियों के बीच उसे पाइंट पर लाना मुश्किल था। बहरहाल रूपरेखा और सम्पादकीय बजट दिया, उसकी उसने तत्काल ही फोटोस्टेट कॉपी करा ली। बोला, मैं ख़र्चे की चिन्ता करता हूँ, न विज्ञापनों की। काग़ज़ और छपाई का ख़र्चा निकल आए। ऊपर का ख़र्चा तो होता ही रहता है। फिर अपना पूरा प्रोग्राम बताया। पहले मद्रास जाऊँगा, फिर बम्बई। पहले सप्ताह दिल्ली में आऊँगा। तभी आपको कांटेक्ट करूँगा। एक घंटे बात हुई। कितना उत्सुक हुआ, क्या हुआ, कुछ भी पता नहीं, लगा। पता नहीं कांटेक्ट करेगा भी या नहीं। प्रभाष जोशी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्नू से कहा था कि अगर कोई ज़रूरी बात हो तो एक्सप्रेस से टैलेक्स करा दे। अभी-अभी जोशी को टैलेक्स किया है।

28.8.82

आज फिर अपना जन्मदिन है। वैसे तो मैंने शायद नसीर अफ़रीदी को लिखवाया है कि घरवाले समझते हैं कि पचास के बाद के जन्मदिन को हर व्यक्ति विशेष रूप से घरवाले समझते हैं कि शायद यही अन्तिम है। मगर मैंने तो 53 पूरे कर लिए। शायद 54वें में लगा हूँ। चलो, माँ-बाप दोनों की अन्तिम सीमा 53 भी पूरी हुई। अब कोई डर नहीं है। शायद दस-बीस वर्ष और खींच डालूँ।...कभी-कभी सोचता हूँ कि न मुझमें अधेड़ और बूढ़ों जैसी कोई भावना आती है और न ही यह लगता है कि हो सकता है, यह जन्मदिन ही अन्तिम हो...दो-तीनों से लग रहा है कि मुझे तो सिर्फ़ भविष्य ही दिखाई दे रहा है, सामने योजनाएँ हैं 'हंस' निकालने की, उपन्यास लिखने की, एक लेखकीय ज़िन्दगी जीने की—सपने हैं, मैं अपने को क्यों बूढ़ा या उम्रदराज़ मानूँ? यह सही है कि अतीत की स्मृतियों में जीने की आदत पुरानी है और मैं इसीलिए कभी भी बोर नहीं होता। जब ज़रा भी सुविधा या समय होता है, बैठकर अपनी किताब खोल लेता हूँ और पढ़ने बैठ जाता हूँ। आगे-पीछे की जाने कितनी कहानियाँ, उपन्यास, अनुभव और छवियाँ हैं जो अपने पन्ने फड़फड़ाती रहती हैं। और यह भी सही है कि न तो मुझे मानव-व्यवहार चकित करता है और न मानवीय, मनोविज्ञान मेरे लिए रहस्य-जैसा लगता। 'अरे, इस सबको तो मैं समझता हूँ' का भाव है—हो सकता है, यही बुढ़ापा हो! हर घटना या अनुभव का एक समानान्तर क़िस्सा होना और उसे याद करके सुनाना ही बूढ़ा होना है और यह भी सही है कि जब जीवन और जगत में कुछ भी जानने योग्य न लगे—हर मानव स्वभाव और व्यवहार प्रेडिक्टेबल हो, यानी वहाँ अनप्रेडिक्टेबल कुछ न मालूम हो तो बुढ़ापा होता है। मैं समझता हूँ कि यही मानसिकता उपन्यास, कहानी लिखने के लिए सबसे घातक होती है। लेखन के माध्यम से डिस्कवर करने की वृत्ति ही मर जाती है। हर वर्णन और विवरण एक दुहराव जैसा लगता है। उसमें पहली बार जानने और लिखने की थ्रिल नहीं रहती। इस अर्थ में निश्चय ही यह मेरा बुढ़ापा है। मगर इस दृष्टिकोणवाले बुढ़ापे का सम्बन्ध तो मन से है और बहुत-से लोग किशोरकाल से ही बूढ़े लगते हैं। मुझे लगता है, मेरे भीतर का जीवन, लोगों से जुड़ने की ललक, चीज़ों को लेकर रिएक्ट करने की तत्परता, छेड़छाड़, सेक्स को लेकर दिलचस्पी, सुन्दर लड़कियों का सुन्दर लगना ये सब कहाँ मुझे बूढ़ा होने देते हैं? अभी तो मैं जवान हूँ... गो हाथ में जुम्बिश नहीं, आँखों में तो दम है...रहने दो सागर-ओ-मीना मेरे आगे...।

हर बार टिंकू सुबह ही मेज़ पर मेरे लिए उपहार सजाकर रख देती थी और उसे जानते हुए भी मैं चकित और प्रसन्न होने का भाव दिखाया करता था। इस बार टिंकू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रेटर कैलाश है, सिर्फ़ फ़ोन आया। सुबह फीकी रही—हाँ, मैं पाँच बजे उठ गया और मैंने कहानी टाइप करनी शुरू कर दी—'सीज़ फ़ायर'।

पहली बार मेरे मन में आने लगा है कि अपना जन्मदिन इतना सूना और डल रखने का क्या लाभ है? आज बीना और शानी के फ़ोन ही अपने-आप आए हैं। शर्माजी और टिंकू को तो मैं मानकर चलता हूँ कि आएँगे। न कोई मिलने आया है, न किसी का पत्र है—मीता का भी नहीं। भेंट-उपहार कुछ भी नहीं। आगे से इसे कुछ 'गे' यानी उल्लासमय बनाऊँगा। लगे तो सही कि हाँ, है। नवलखा जी की तरह...।

1.9.82

आज सुबह 'सीज़ फ़ायर' कहानी की टाइपिंग पूरी कर दी। अनुमान था कि टाइप होकर पन्द्रह पृष्ठों के आसपास होगी, मगर पाया कि काफ़ी छोटी है—कुल 9 पन्ने। इस पूरे वर्ष में अभी तक यही कहानी लिखी है। रिवाइज़ करने में मज़ा नहीं आया—कुछ यों ही-सी है। ख़ैर, आज शानी को दे दूँगा। वह 'समकालीन भारतीय साहित्य' में छापना चाहता है। लगता है, साल को सार्थक करने के लिए एक कहानी और लिखनी पड़ेगी जल्दी ही...

लगता है, मिश्रा जी वाली बात भी ठस ही हो गई। 29 को मैंने बबली को फ़ोन किया। उसकी तबीयत ख़राब थी। पहली सूचना तो यही मिली कि 28 की मीटिंग स्थगित हो गई, इसलिए मिश्रा जी यहीं हैं। मैंने उससे सलाह माँगने की दृष्टि से पूछा, तो लगा कि यहाँ बात ख़त्म हो गई। मैंने इशारे से कहा भी कि अब डेढ़ साल बाद अपने दोस्तों के पास वापस जाना कहीं झिझक पैदा करता है और सारी चीज़ अब तक तो शायद कोई रूप भी ले लेती। मगर बबली बहुत ही ठंडी थी। मैंने मिश्रा जी से 2 तारीख को बात करने को कहा था, अब कल ही करूँगा। उधर गोयनका भी इसी सप्ताह दिल्ली आएँगे। अब धुँधली-सी आशा यही है कि शायद ये लोग ही तैयार हों, वर्ना फिर लालानी इत्यादि से बात की जाए...संकोच यही है कि इन पैट्रियेटवालों के चक्कर में बात चारों तरफ़ फैल गई है। अब न निकालना बहुत ग़लत हो जाएगा। लेकिन सारा मामला इतना ख़र्चीला हो गया है कि हिम्मत नहीं पड़ती। ख़ासतौर से डर यही रहता है कि कहीं लालानी इत्यादि से सम्बन्ध न ख़राब हो जाए।

2.9.82

आज सुबह अपनी पुरानी कहानी 'एक्टरवाली' (An Awakward exit) बैठकर पढ़ी। सोचा, इन दिनों कुछ मूड आया हुआ है तो क्यों न उसे ही रिवाइज़ कर डाला जाए! लगा, सारी कहानी पर दुबारा सोचना पड़ेगा। बहुत मेहनत चाहिए। आज नौ बजे मिस्टी ने बच्चे देने शुरू कर दिये। जब तक मैं घर था, पाँच हो चुके थे। अभी पता नहीं, कितने हुए हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6.9.82

शुक्र यानी 3 को मैंने फ़ोन किया मिश्रा जी को। क्या वह आदमी आ गया? बोले, आ गया है और उसने जॉयन भी कर लिया है। नाम है—सुब्रतो चक्रवर्ती। इंडियन एक्सप्रेस, आनन्द या अमृत बाज़ार में काम किया है। इस प्रकार अंग्रेज़ी के साथ-साथ भाषायी पत्रों का भी अनुभव है। मैं सोमवार-मंगल को फ़ोन करके बताऊँगा कि कब हम लोग मिल सकते हैं। अब तीनों बैठ जाते हैं और तय कर लेते हैं। सारा स्वर बदला हुआ था। आज सोमवार है, अभी तक तो फ़ोन आया नहीं है। इसी प्रकार मैंने एक्सप्रेस में भी फ़ोन किया तो पता लगा कि गोयनका आज तो दिल्ली हैं, कल सुबह ही चंडीगढ़ जाएँगे। सोमवार को आ जाएँगे। लड़की रेणु को मैंने अपने नम्बर दे दिये हैं। घर से पता चला कि प्रभाष जोशी आठ को लौटेंगे, अहमदाबाद से। अगर आज या कल में गोयनका का फ़ोन आया तो ठीक है, वर्ना जोशी जी से ही बात होगी। मन में एक आशंका भी है। मान लो गोयनका से भी बात बन जाए और मिश्रा जी भी तैयार हो जाएँ तो किससे तय करना चाहिए? मैं सोचता हूँ कि गोयनका से कहूँगा कि अगर आप तत्काल ही शुरू कर सकते हैं तो एग्रीमेंट कीजिए, वर्ना धीरे-धीरे तो मिश्रा जी ही ठीक हैं। मगर चीज़ें कुछ तो आगे बढ़ें। हर जन्मदिन पर मुझे लगता है कि इस बार सभी कुछ ठीक और स्मूथ होने जा रहा है। मालूम नहीं ग्रह-नक्षत्र हैं या क्या, बात एक स्थिति तक बढ़ती है, फिर रुक जाती है। इधर मैं लालानी एंड कम्पनी को भी ज़िन्दा रखना चाहता हूँ कि अगर दोनों फेल कर जाएँ तो उनसे बात चलाई जा सके। मालूम नहीं यह पत्रिका वाली योजना कभी सिरे चढ़ेगी भी या नहीं?

18 तारीख को सिहोर (भोपाल) में रेडियो की कहानी गोष्ठी है और उसमें मुझे जाना है। आजकल दिमाग़ लगातार कहानियाँ टटोल रहा है, कौन-सी उठाई जाए...।

8.9.82

हालाँकि मिश्रा जी ने ज़ोर देकर कहा था कि वे सोमवार या मंगल को फ़ोन करके चक्रवर्ती के साथ बैठने का तय करेंगे और तभी हम लोग पत्रिका के रूप पर भी चर्चा करेंगे। मगर उस समय भी मैं जानता था कि ऐसा होगा नहीं। वे नहीं करेंगे फ़ोन। लक्ष्मण टंडन ने कहा था कि यह ऋषि (मिश्रा जी) का कॉम्प्लेक्स है, वे फ़ोन करने को कहकर चीज़ों को एक निश्चयात्मकता दे देते हैं, मगर फिर जान-बूझकर भूल जाते हैं ताकि सामनेवाला ही इस अनिश्चयात्मकता के दबाव से दुखी होकर फ़ोन करे। इससे उनका अंह तृप्त होता है, सामनेवाले की ग़र्ज़ जैसी दिखाई देती है। मैंने सोम-मंगल को राह देखी। मैं भी उन्हें फ़ोन नहीं कर रहा। इधर गोयनका के यहाँ भी मैंने फ़ोन छोड़े थे, उसकी भी कोई सूचना नहीं आई। आज मैंने प्रभाष जोशी से बातें कीं। उन्होंने बताया कि कल ही आए हैं और अभी गोयनका जी से बातें करने का समय नहीं मिला। आज बातें करूँगा और बातों के अलावा यह भी बात करूँगा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको ख़बर करूँगा। अब तो मैं सचमुच यही चाहता हूँ कि एक्सप्रेस से बातें हो जाएँ। यहाँ सारे सम्बन्ध प्रोफेशनल होंगे तो स्थिति ज़्यादा साफ़ रहेगी। मिश्रा जी के यहाँ चूँकि कुछ न कुछ व्यक्तिगत है इसलिए गड़बड़ी होने की सम्भावना है। व्यक्तिगत होने के कारण ही तो मैं लालानी इत्यादि से नहीं कर रहा। आज सिर्फ़ प्रतीक्षा कर रहा हूँ। कल मुझे लगता है, मिश्रा जी का भी फ़ोन आएगा और जोशी का भी।

इधर त्यागी पर एक कहानी दिमाग़ में कुलबुला रही है। उसे ही लिखकर भोपाल रेडियो में पढ़ूँगा। चाहता हूँ, इसी सप्ताह लिख डालूँ।

14.9.82

पिछले दिनों कहानी पर ही सोचता रहा। लेकिन इधर अपने बिज़नेस के सिलसिले में हरि जयपुर से आ गया। जिस समय आप कुछ लिखना या पढ़ना चाहें, उस समय मेहमानों का आना बहुत झुँझलाहट पैदा करता है। एक ही कमरा है और उसमें आप मेहमानदारी करने में लगे होते हैं। समय नहीं रह गया है फिर भी मैं मन-ही-मन प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि वह जल्दी से जल्दी जाए तो अपने काम में लगूँ। कहीं अलग कमरा हो तो शायद उतना असर न पड़े...ख़ैर, आज हरि रहे या जाए, कहानी तो पूरी करूँगा ही...

11 तारीख को मलिक साहब के जन्मदिन पर भी हम लोगों ने पार्टी रखी। यहीं दारूबाज़ी हुई। साजिद, खरे, शानी, अजित, सुरेन्द्र, मैं, मलिक साहब— सभी थे। मुझे साजिद और शानी से चिढ़ होने लगी है। ये लोग सेक्स और शराब के अलावा कोई बात ही नहीं कर सकते। आज तक शानी को मैंने यह कहते नहीं सुना कि मैंने अमुक किताब पढ़ी है या अमुक लेखक की अमुक रचना देखी है...या यह नया प्वाइंट सोचा है। आजकल वह अपनी स्टेनो मधु जैन के पीछे लगा—चूमा-चाटी, लिपटना-लिपटाना—इसी का फ़ेज़ है और पागल है। सुरेन्द्र से, मलिक साहब या सबसे कमरा माँगता रहता है।

कल मिश्रा जी को फ़ोन किया था। सात दिन राह देखकर। कहने लगे, मैं कलकत्ता चला गया था। परसों ही लौटा हूँ। अभी उससे तय करके घंटे-दो घंटे में आपको ख़बर करता हूँ। आज अभी तक तो फ़ोन आया नहीं है। अब मैं समझता हूँ कि इधर से ध्यान छोड़कर प्रभाष जोशी की तरफ़ ही देखना चाहिए। इन लोगों में दम नहीं है। भोपाल से लौट आऊँ फिर जोशी जी से बात करूँगा। तब तक गोयनका भी लौट आएँगे।

30.9.82

भोपाल शानी के साथ गया था। 16 की रात को। स्टेशन पर मिले कालिया और मेहरा...बाद में कालिया बहुत ही मस्त-मलंग आदमी निकला। हम वहाँ हायर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेकंडरी बोर्ड के गेस्ट-हाउस में रुके। शानी ने अपनी प्रेमिका से मिलने की सुविधा के कारण वह जगह रखी थी। उस दिन शाम को कालिया के यहाँ मिले, फिर अगले दिन कुछ नहीं किया। मिश्रा के यहाँ मिलने गए। शाम को कालिया ने अपने घर खाना रखा था। शानी का एक दोस्त इजलास भी था। तय हुआ कि कल की गोष्ठी में पढ़ी जानेवाली कहानियाँ शाम को ही पढ़ी जाएँ, टेप हों। मेरी कहानी तो तैयार नहीं हो पाई थी, इसलिए 'व्यवस्था' को ही पुनः टाइप कर लिया था। दारू के साथ हम सबने कहानियाँ पढ़ीं।

ओ.पी. मेहरा की कहानी बेहद ही बचकानी, भावुकता-भरी थी। वही प्रेमिका, शादी, लड़के का आहत होकर लौट आना। शादी में सभी तरह का सहयोग। शानी ने 'जहाँपनाह जंगल' नाम से एक कहानी लिखी थी। बाद में उस पर बातचीत हुई। मेहरा की पत्नी ने तो यही कहा कि ये इस बचकानी थीम से उबर नहीं पाते हैं। कालिया की छोटी बच्ची ने अपनी प्रतिक्रिया अपने ढंग पर बहुत अच्छी तरह दी। शानी ने वही अपने उजड्ड ढंग से मेहरा की कहानी की धज्जियाँ उड़ा दीं। शायद मेहरा ने बुरा माना। उसके मूड से लगा। खाना हुआ। रात को मैंने शानी से बातें कीं। दो बजे तक हम लोग इस व्यवहार पर बातें करते रहे। मेहरा गोष्ठी में जानेवाला था, लेकिन नहीं गया, या तो सचमुच काम निकल आया था या फिर टाल गया। गाड़ी उसने भेज दी। कालिया भी समय पर नहीं आ पाया। ख़ैर, मैं, शानी और इजलास— तीनों ही गए।

मेहरा आजकल एक्साइज़-सेक्रेटरी है, सो उसने अपने एक असिस्टेंट कमिश्नर को साथ लगा दिया था। वह हमें सीधा सिहोर के सर्किट हाउस में ले गया। वहाँ कृष्णा अग्निहोत्री, मृदुला गर्ग, आशालता या और भी जाने कौन-कौन था। थोड़ी देर में जैसे ही ये लोग गोष्ठी में गए, उन्होंने भीतर कमरे में ले जाकर दो-दो पैग पेट में डाल दिये। क्या सर्किट हाउस था। ख़ूबसूरत और आरामदेह...फिर गए जहाँ गोष्ठी थी। वहाँ की माइक व्यवस्था और श्रोताओं को देखकर सारा उत्साह ठंडा हो गया। ख़ैर...पढ़ना था सो पढ़ दिया। बाद में शानी ने बताया कि प्रतिक्रिया बहुत अच्छी थी। वहाँ से भोपाल आए ग्यारह के क़रीब। मेहरा के यहाँ भोजन। बहुत प्यार से पीकर खाना खाया और वापस। अगले दिन राज भाभी से मिलने गया। उन्होंने उस बात की पुष्टि की कि उनके पुत्र आलोक का सम्बन्ध कमलेश्वर की मानू के साथ हो गया है। मैंने यों ही मज़ाक़ में कहा कि बात तो दुष्यन्त की मुझसे हुई थी। बोली, आपने कहा ही नहीं। मैंने बताया कि छेड़ रहा हूँ। दुष्यन्त की बातें करते हुए आँसू आने लगे। बताने लगी, एक जब वे और दुष्यन्त बम्बई गए थे तो दुष्यन्त ने कमलेश्वर के फ़्लैट, को देखकर कहा था : "जमा कर ले, तुझे जो भी करना है। आना तो मेरे ही घर है..." कभी-कभी कही हुई बात कैसे सच हो जाती है! ख़ैर, वहाँ से मिश्रा के यहाँ होते हुए इजलास के यहाँ और फिर गेस्ट-हाउस। शाम को सदर्न से वापसी। इन तीनों दिनों दोपहर को शानी की मंजू आई। दो-दो, तीन-तीन घंटे रही। जिस तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती है, खाना लेकर या आकर उसके कपड़े इत्यादि धोती है, वह सब बहुत अच्छा लगा। रात को देर तक बातें करते रहे। सुबह अपने-अपने घर...।

वहाँ से आकर फिर यहाँ वही चक्कर। शशि नहीं आई—बीमार है आजकल। पत्र मैं ही टाइप कर रहा हूँ। कभी-कभी बीना आ जाती है। जोशी को दो-एक बार फ़ोन किया। पता लगा कि बीमार हैं और नहीं आ रहे हैं। घर पहुँचे निर्माण विहार। उसने कहा, पहले मैं मिल लूँ, फिर हम तीनों बैठ जाएँगे। हर बार कह देता है कि फ़ोन करूँगा, मगर दो-तीन दिनों राह देखकर मैं ही फ़ोन करता हूँ। सारी चीज़ एक अजीब स्थिति में आ गई है। उधर मिश्रा जी चुप्पी लगाए बैठे हैं। लगता है, वहाँ तो मामला ठंडा ही हो गया है। फ़ोन इसलिए नहीं कर रहा कि अब तो पत्रिका वापस ही माँगनी होगी। इधर कुछ हो तो उधर अधिकार से बोलूँ। इधर या तो जोशी जान-बूझकर बात नहीं कर रहा या फिर सचमुच ही गोयनका से मुलाक़ात नहीं हो रही। हर चीज़ जैसे स्थिर हो गई है। इधर ख़र्चे मुझसे सँभल नहीं रहे। सामनेवाली जगह हमने खाली करा ली है। अमर गोस्वामी का बेचैन होना अपनी जगह सही है। पिछले रविवार को हम लोग अपना फ़्लैट देखने गए थे। नम्बर 103 निकल आया है। देखा, सामने की सड़क के पीछेवाले दूसरे स्क्वायर में है। तीन कमरे हैं। देखें, मन्नू अब उसे कैसे ठीक करती है। तीन बेडरूम हैं—डायनिंग और ड्राइंगरूम है। अगर हम लोगों ने तीन घेर लिए तो एक-एक कमरा मिल तो अलग-अलग जाएगा, लेकिन अगर कोई आया तो उसे कहाँ रुकाएँगे, यही समझ में नहीं आ रहा। ख़ैर, देखेंगे। विधु के साथ गए थे। रंजन और टिंकू साथ थे। रात को ही रंजन के पिताजी आ गए। कल गए हैं। तीन दिन उनकी ख़ातिर में गए। बड़ी अजीब स्थिति है। एक भी बाहर से आ जाता है तो सारी व्यवस्था उलट-पलट जाती है। और आने का सिलसिला ख़त्म नहीं होता। कहानी पूरी करनी है।

परसों मंगोलिया से विमला पंडित आ गई। स्कर्ट और ब्लाउज़ में काफ़ी सुन्दर लग रही थी। रंजन के पिताजी बैठे थे, खूब खुलकर दोनों बाँहें फैलाकर मिली। वह तो यह मानकर बैठी है कि पत्रिका में उसके लिए जगह होगी ही। मैंने बता दिया कि जो दो सहायक सम्पादक हैं, उनकी अधिकतम तनख़ा पन्द्रह सौ होगी। वह तैयार है। पिताजी के साथ रहेगी। मगर मैं यही सोचता रहा कि मंगोलियन भाषा का अनुभव, हिन्दी की पी-एच.डी. क्या सहायक-सम्पादक की पूरी क्वालीफ़िकेशन होगी? मान लीजिए, उसे तैयार भी कर लिया, दो-चार महीने में; तो क्या उसे लेकर एक पारिवारिक संकट तो नहीं पैदा हो जाएगा? लड़की श्रद्धालु और सुन्दर है। अगर वह मेरे प्रति आकर्षित होती है तो मन्नू बर्दाश्त नहीं कर पाएगी और अगर यहाँ रहकर दूसरी जगह सिलसिला जमाती है तो मुझे बुरा लगेगा। मैं यही सोचने लगा कि इसे टाला कैसे जाए। अच्छा है, यह झंझट दूर ही रहे और कभी-कभी मिलती रहे। सुन्दर लड़की के साथ होना, उससे मिलना अच्छा तो लगता ही है। इसीलिए मैंने बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टलता-सा उत्तर दिया कि तुम पहले श्रीनगर जाकर जमो, स्थिति देखो, फिर मुझे लिखना। मना यही रहा हूँ कि इसे कहीं और काम मिल जाए। यह या तो स्टेनोग्राफ़ी जानती होती या सम्पादन का अनुभव होता तो बात एक बार बर्दाश्त भी हो जाती। अब तो सौन्दर्य है और डिग्री है, यानी उपयोगिता नहीं है।

कल बीना को अक्षर छोड़े एक साल हो गया। उसके घर मिलने गया था। बहुत प्यार से मिली।

20.10.82

इन दिनों लिखने को तो बहुत था, पर लिखा नहीं। अपना टाइपराइटर मैं अक्षर में ही ले गया हूँ। नई लड़की नहीं है इसलिए काफ़ी कुछ चिट्ठियाँ ख़ुद ही टाइप कर लेता हूँ। इस दौरान स्वदेश दीपक का उपन्यास 'मायापोत' पढ़ा। संजीव का 'सरकस' पढ़ा—पांडुलिपियों के रूप में। संजीव में बहुत दम है, सरकस पर ख़ासा प्रामाणिक और रोचक उपन्यास लिख डाला है। स्वदेश दीपक अंग्रेज़ी के चलताऊ उपन्यासों और ख़ास बौद्धिकता का मारा है। इसलिए उपन्यास भी नकली है, लोलिता, एक्ज़ॉर्सिस्ट—सब घोल-घालकर उपन्यास लिख डाला है। बेपरवाह घूमता, प्यार करता, ख़ूबसूरत स्वस्थ नायक है, ऊँचे होटलों और गवर्नर के घरों की पार्टियों में जाता है, बिलियर्ड की चुनौतियाँ स्वीकार करता है और जीतता है, लड़ाइयाँ मोल लेता है और जीतता है। बीमारी के दौरान एक लेडी डॉक्टर को प्यार करता है। डॉक्टरनी विधवा, मगर ग़ज़ब की ख़ूबसूरत है, उसकी एक लड़की है। यह मर्द नायक लड़की के प्रति अजीब-सा प्यार और डॉक्टरनी से सम्भोग करता है। फिर अति प्राकृतिक भूत-प्रेत, काला जादू, जादूगरनी और भयानक बिल्ली—यानी विदेशों में चलती हुई या चलनेवाली सारी सामग्री है। सो इन दोनों को उपन्यास पर प्रतिक्रियाएँ देते हुए लम्बे पत्र लिखे। इस बीच गिरिराज आया था। आजकल अपने लिखने पर बहुत बोलने लगा है, प्रश्नात्मक ढंग से। अपना उपन्यास 'यथा प्रस्तावित' दे गया। उसे पढ़कर गिरिराज के पूरे लेखन पर एक लेखनुमा पत्र ही लिख डाला। मैंने यही कहा है कि तुमने केवल चरित्र और घटनाएँ देखी हैं, उनके साथ तुम्हारी निष्क्रिय-सी सहानुभूति है, वे तुम्हारी संवेदना का अंग नहीं हैं। तुममें सिम्पैथी हो सकती है, एम्पैथी नहीं है। तुम ठंडे ढंग से उन पर लिखते हो। छद्म-दार्शनिकता और शाश्वत वाक्यों का मोह अनावश्यक जगह घेरता है—जिसका कोई अर्थ नहीं है। लिखने को जान देती है कोई भावना, कोई विचार, कोई विचारधारा, कोई यातना—तुम्हारे पास इनमें से कुछ नहीं है। मैं इनके बारे में भी जानता हूँ कि दंभ से तुम लिखते जाते हो। समरसैट मॉम की तरह तुम सिर्फ़ 'वैरायटीज़' दोगे। वैरायटी लेखक की बहुत मदद नहीं करती। वह उसका ट्रम्प कार्ड नहीं हो सकता है। वह क्या है जो दोस्तोयेव्स्की, टॉल्स्टॉय, काफ़्का की सारी अलग-अलग रचनाओं के पीछे है? क्यों लगता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दोस्तोयेव्स्की का हर उपन्यास एक ही यातना के ऑफ़ शूट्स या अलग-अलग आयाम है?—मुझे मालूम है, पत्र गिरिराज को बहुत दुखी करेगा। मगर यह भी तो कम दुख की बात नहीं है कि एक आदमी इतनी लगन, मेहनत और निष्ठा के साथ लगातार लिखे चला जा रहा है, मगर लेखन है कि कहीं खरोंच तक पैदा नहीं करता। मगर मेरे पत्र से वह रुककर आत्मविश्लेषण करे, तो हो सकता है, अब लिखने के प्रति पूरा रवैया बदले, वर्ना सिर्फ़ काग़ज़ काले करेगा। इसी बीच एक काफ़ी लम्बा पत्र बटरोही को लिखा। चतुर्वेदी जी को लिखे पत्र की प्रतिक्रिया में उसने काफ़ी लम्बा पत्र मुझे लिखा था, उसका ख़ासा लम्बा जवाब दिया। और फिर आया शैलेश का लम्बा पत्र : न जाने कब से कहने लगा है कि मैं क्यों जनवादी लेखक-संघ में हूँ। क्यों इनसे अलग नहीं हो जाता। वह व्यक्ति और संगठन के आपसी सम्बन्धों को लेकर परेशान है और मुझे लगता है कि वह किसी भी सामूहिक प्रयास का विरोधी है। बटरोही ने पत्र या उसकी नक़ल शैलेश को भेज दी। उसी की कुछ बातों को लेकर शैलेश की प्रतिक्रिया थी। कई दिनो तक टालता रहा—फिर बैठकर दस पन्ने की चिट्ठी टाइप कर डाली। शायद टाइप पर कुछ अधिक आसानी से लिखे जाने के कारण लम्बी चिट्ठी में भी आलस्य नहीं आता। इस प्रकार पिछले दिनों लम्बी-लम्बी चिट्ठियों का ही दौर रहा। सोचता हूँ कि अगर इन्हें ही जमा कर दूँ तो अच्छी-खासी पुस्तक बन जाए।

पिछले दिनों प्रभाष जोशी को फ़ोन करता रहा। 22 को गोयनका आ गए होंगे, एक दिन प्रभाष के यहाँ निर्माण विहार मिलने भी गया। उसने कहा भी कि पहले मैं बातें कर लूँ फिर तीनों बैठ जाएँगे। मैं तय करके आपको फ़ोन करता हूँ। लेकिन तीस तक जब कोई सिलसिला ही नहीं बना और मैं ही फ़ोन करता रहा, तो लगा कि या तो यह जोशी जी ही इसमें दिलचस्पी नहीं रखते, या उनके गोयनका से ऐसे सम्बन्ध नहीं हैं। हर बार कि बस दो-एक दिन में तय करके आपको फ़ोन करता हूँ। दफ़्तर में करता हूँ। मगर कभी उधर से फ़ोन नहीं आया। यह कहने के लिए भी नहीं कि बात नहीं हुई। तभी मैंने मिश्रा जी को फ़ोन किया कि बहुत दिन हो गए, अब उधर देखा जाए। बड़े उत्साह से बोले, परमेश्वरन संयोग से परेशान भी थे। बोले, आपकी उम्र बहुत बड़ी है। अभी आपका नाम लेकर ही चुके हैं, क्यों नहीं मंगल को हमारे साथ लंच करते? अक्टूबर पाँच को मंगल था। मैं गया। प्यार से मिला। बताया कि वैसे ही कर्टसी के तौर पर सोचा। बातचीत में यही कहा कि ख़र्चा अपनी मशीन पर आधा हो जाना है। जहाँ आप इतना रुके हैं—दो-एक महीने और रुक जाइए। ख़ैर, खा-पीकर लौट आए। हफ़्ते भर बाद फिर शायद 12 को मैं मिश्रा जी से मिला। सोचा बात ख़त्म कर दी जाए। अब सिर्फ़ डिस्ट्रीब्यूशन की बात की जाए। मैंने बताया कि अजीब बात है; न तो मैं लोगों से यह कह सकता हूँ कि मैं पत्रिका निकाल रहा हूँ, न यह कि नहीं निकाल रहा। इससे अच्छा तो यही है कि आप डिस्ट्रीब्यूशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ज़िम्मा ले लें, कम-से-कम 25 हज़ार प्रतियों का। हम निकालते हैं। बोले, यह नई बात है, इस पर भी सोच लेंगे। फिर बताया कि 15 नवम्बर को परमेश्वरन के साथ एग्रीमेंट ख़त्म हो रहा है। हमें लगता है कि यह व्यवस्था ठीक नहीं रही इसलिए हो सकता है, रिन्यू न करें। हमने जिन चक्रवर्ती को लिया है, वह बेहद ही शान्त लेकिन बेस आदमी है। हिन्दी पत्रिका का ज़िक्र भी मैंने कर दिया है। एक हफ़्ते में आ जाएँगे। हम तीनों बैठकर तय कर लेते हैं। फिर उन्होंने परमेश्वरन का पत्र दिखाया। लिखा था, मैंने राजेन्द्र यादव से बात कर ली है, वह प्रतीक्षा करने को तैयार हैं। मैंने कहा कि मैं कर भी क्या सकता हूँ। लेकिन यह मैं ज़रूर चाहता हूँ कि हम शुरू दो साल बाद करें, लेकिन चीज़ें लिखित में हो जाएँ। ख़ैर, तय यही हुआ कि बीस के बाद मिलकर बैठें और कोई ठोस बात करें...आज बीस है। कल मैं ही फ़ोन करूँगा। आज तो लालानी के शाम को इधर आने की बात है। स्थिति के बारे में उन लोगों को भी बताऊँगा।

भोपाल जाने से पहले कहानियाँ लिखने का जो मानसिक माहौल बना था, वह जैसे एकदम ही ग़ायब हो गया है। बस, पढ़ना और पढ़ना। 'फादर एंड सन्स' तुर्गनेव का पढ़ा। पहले जितनी चमत्कारी रचना लगी थी, उतनी नहीं लगी। और रचनाएँ दुबारा पढ़ने पर ज़्यादा अच्छी लगीं, यही कुछ अधिक कमज़ोर प्रतीत हुई। बज़ारोव के बारे में सिर्फ़ यही पता लगता है कि वह निहलिस्ट है, एकदम नए ढंग से सोचता है। किसिनारोव परिवार में बड़े भाई से झपड़ भी होती है। औरत से प्रेम करने की आन्तरिक आकांक्षा के बावजूद भागता है। जनता की सेवा में लगा, डॉक्टर है। मगर मरता टिटनेस से है। वह अगर द्वन्द्व युद्ध में मरता तो शायद सार्थक अधिक होता। वैसे उसे निहलिस्ट की जगह निर्बन्ध कहना ज़्यादा सही है; प्रेम-प्यार, सुख-सुविधा कहीं भी वह बँधकर नहीं रहता। परम्पराओं का विरोधी है। भू-दासों को मुक्त करना चाहता है। मगर करना क्या चाहता है, यह उसके सामने साफ़ नहीं है। बड़ी क्रान्तियों से पहले शायद इसी तरह घुटन-भरे युवा-युवतियाँ होते हैं जो यह तो जानते हैं कि उन्हें क्या नहीं करना चाहिए—मगर क्या चाहिए, यह साफ़ नहीं होता।

लगता है, लिखने की क्षमता और उबाल पत्र लिखकर ही समाप्त हो रहे हैं। लड़की कोई मिल नहीं रही। एकाध दिन में विज्ञापन दूँगा।

21.10.82

कभी-कभी अपने को गन्दी-गन्दी गालियाँ देने को मन करता है : उल्लू के पट्ठे, वही खाना और हगना...सुबह को शाम करना और शाम को सुबह तक लाना। उल्टी-सीधी चीज़ें पढ़ना और समझना कि 'मानसिक माहौल' बन रहा है लिखने का...पढ़े हुए को अगले दिन बिल्कुल भूल जाना। इस हद तक कि अगर किसी से बात करनी हो तो घंटा भर फिर किताब देखने की ज़रूरत हो (जैसे दो दिनों पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़े उपन्यास 'पिता और पुत्र' में बज़ारोव की प्रेमिका का नाम ही याद नहीं आता)...पुरानी-पुरानी किताबों को निकालकर ऐसे नए भाव से पढ़ना, जैसे कभी पढ़ी ही न हो (जैसे आसामू देज़ाई की 'सैटिंग सन') दुनिया की हर चीज़ से असम्पृक्त रहना इस मुग़ालते में कि अपने को बचाए हुए हूँ। किसलिए बचाए हूँ, क्यों, यह बिल्कुल साफ़ नहीं है। हर अगले दिन की एक धुँधली-सी प्रतीक्षा कि कल कुछ होगा। क्या होगा, कुछ नहीं मालूम? क्या प्रतीक्षा है, यह भी नहीं पता। कुछ घटने की, पत्रिका की, किसी से मिलने की, किसी दुर्घटना या लॉटरी जैसी घटना की? कुछ नहीं पता। दिन-महीने-बरस निकल रहे हैं, कुछ हो ही नहीं रहा। किसी दिन भीतर का सब कुछ पिघलेगा, बैठूँगा और लिखता चला जाऊँगा, लिखता चला जाऊँगा। एक के बाद एक। उपन्यास-कहानियाँ...कभी लगता है, अब कभी नहीं लिखूँगा। ज़िन्दगी यों ही दिवा-स्वप्नों में जाएगी। आतंक पैदा करता है यह भाव कि क्या जो कुछ भीतर है, जिसे इतने दिनों से सँभाले बैठा हूँ वह कभी नहीं लिखा जाएगा? क्या इतनी ही बैटरी थी और ख़त्म हो गई—मर गई, और मैं सोचे बैठा हूँ कि फिर से चार्ज हो रही है? दोनों बातें सच लगती हैं। क्या करूँ, समझ में नहीं आता। मुझमें कुछ रह भी तो नहीं गया है, न मुझे गुस्सा आता है, न प्यार। मैं किसी भी चीज़ को लेकर आविष्ट और उद्विग्न ही नहीं महसूस करता। जो कहीं भी उद्वेलित और उद्विग्न न हो, वह कैसे कुछ लिख सकता है? यह भी तो हो सकता है मेरे भीतर कभी कुछ लिखने का था भी नहीं। वैसे ही कुछ लिख-लिखा दिया और मान लिया...अब मरे जा रहे हैं।

25.10.82

अभी कोर्ट की तारीख से लौटा हूँ—पटियाला हाउस। अक्षर और डी.डी.ए. का केस है कि हम इस रिहाइश की जगह को व्यावसायिक रूप से इस्तेमाल कर रहे हैं। साल-डेढ़ साल से चल रहा है। मैं, मृदुला, मन्नू—सभी अभियुक्त हैं। मन्नू मुझे छोड़ती हुई गई है। भोलेश्वर गाड़ी ले गया है। आया तो अक्षर बन्द था। कोई नहीं। लड़की तो है ही नहीं, लगता है कर्णसिंह भी बीमार पड़ गया है। आजकल चारों तरफ़ डेंगू फैला हुआ है। लगता है, चपेट में आ गया। यानी सारे दिन मुझे अकेले रहना है। चाहूँ तो कहानी पर सोच सकता हूँ, कुछ पढ़ सकता हूँ—मगर जानता हूँ, कुछ भी नहीं कर पाऊँगा। कितना सोने लगा हूँ आजकल? कल सारे दिन सोया और फिर रात को शर्माजी की तरफ़ गए, वहाँ से दस-साढ़े दस पर आ गए। ग्यारह के आस-पास फिर सो गया। सोचा था, जल्दी उठ जाऊँगा—उठा वही पौने सात पर। यानी और दिनों के मुकाबले भी देर से। मालूम नहीं, क्या हो रहा है! ख़ास तरह का दर्द कमर में महसूस करता हूँ। मुझे लगता है, हर साल ठंड आते या जाते हुए यह दर्द शुरू होता है। कभी कमर में कभी पुट्ठे पर। गोलियाँ खाकर रोकना होगा। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलावा भी एक अजीब जड़ता और जकड़न अपने भीतर महसूस करता हूँ। सब कुछ जैसे ठस हो गया है। कितनी कोशिश करता हूँ इन दिनों कहानी लिखने की, मैं ही जानता हूँ। सारे-सारे दिन बैठा रहता हूँ, पढ़ता या सोचता रहता हूँ। लगता है, जैसे कभी कोई कहानी सोची ही नहीं थी। शानी ने शायद दूसरी कहानी लिख डाली है। वह हरामी है, बदमाश है, लेचरस या कामान्ध है, बहुत भावुक है : यानी सब मिलाकर चीज़ों के प्रति री-एक्ट करता है, उसमें जिजीविषा है, ओज है, वह उद्वेलित-आन्दोलित होता है। इसीलिए लिखता है, आज भी लिख लेता है। मैं ठंडा हूँ चीज़ों के प्रति इतनी शिद्दत से री-एक्ट नहीं करता, एक तरह से पूरी ज़िन्दगी के प्रति उत्साहहीनता का रवैया है, इसलिए लिखने की बातें भी दिमाग़ में नहीं आतीं। इधर तो रुटीन की जड़ता भी महसूस करने लगा हूँ और रह-रहकर यही मन में आता है कि आठ-दस दिनों को कहीं बाहर निकलना चाहिए। कहीं बाहर जाकर रहना चाहिए। हो सके तो मीता के साथ। तभी शायद ज़िन्दगी की यह बर्फ़ानी शिला टूटेगी या कम-से-कम खिसकेगी, वर्ना हर समय मैं यही महसूस करता रहूँगा कि सेक्सुअली किसी काम का नहीं रह गया और बुढ़ापा चढ़ता चला आ रहा है। किसी बाक़ायदा बुड्ढे का चेहरा देखकर पहला ख़याल यही मन में आता है कि इसकी उम्र क्या होगी ? आज या कल मेरा चेहरा भी ऐसी ही झुर्रियों से भर जाएगा, हाथों में ऐसी ही सलवटें उभर आएँगी, गाल यों ही लटक आएँगे ? अपनी बाँहों, भुजाओं को छूकर लगता है, अब इसमें वह तनाव और शक्ति नहीं रह गई है। कैसे अपने-आपको निरंकुश, वर्जनाहीन अनुभवों में फेंक दूँ कि लौटूँ तो एकदम नया होकर...भरा हुआ... !

26.10.82

कल कान्तिदेव की उपन्यासिका पढ़ी, 'अनिकेत' अच्छी लगी। एक महत्त्वाकांक्षी एक्ज़ीक्यूटिव जो केवल अपना स्वार्थ देखता है, उन्नति के लिए सारे काम करता है, पत्नी तक को इस्तेमाल करने से नहीं चूकता। ऐसे में सहारा देता है असीम...नया युवक सेल्समैन...मगर जब नायक असीम के प्रभावशाली बाप को इस्तेमाल कर चुकने पर असीम को रास्ते से हटाने के लिए उस पर ही चरित्रहीनता का आरोप लगाता है और उसे सस्पैंड करा देता है, तो रश्मि जैसे विद्रोह कर उठती है। असीम को इसकी खबर देती है, पति ने जो पत्र चेयरमैन को लिखा है, उसके बारे में सूचना देती है। उधर असीम ही जब अपने बचाव के लिए रश्मि को इस्तेमाल करता है तो जैसे वह टूट जाती है। असीम अपने बचाव में कहता है कि मुझे फँसाने के लिए पति-पत्नी दोनों ने जाल फेंका था, पत्नी अलग से मुझे पटाती थी। मैं बड़े बाप का बेटा था—सुन्दर, अविवाहित और सम्भावना वाला नवयुवक था। रश्मि की तकलीफ़ यहाँ दुहरी प्रताड़ना सहने की है—उपन्यास में स्वार्थांध पति की सारी गतिविधियाँ बड़े सुन्दर ढंग से विकसित की गई हैं...अच्छा लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल शाम को शानी, मलिक साहब और अजित, स्नेह जी घर पर आए थे। शानी ने कहानी सुनाई। नई। इसके अलावा बहुत खुशगवार वातावरण रहा। खूब हँसे...साढ़े बारह तक बैठक जमी। अच्छा लगा। शानी रात को यहीं रह गया। यह साला तो बाक़ायदा लिखने लगा।

29.10.82

कभी-कभी दिमाग़ इतना अधिक सक्रिय हो जाता है कि बातें और चीज़ें अपने-आप कौंधती हैं। पढ़ने का मन करता है, भविष्य में चीज़ें होती हुई लगती हैं, आप सम्भावनाओं और सपनों में रहते हैं। और कभी-कभी सब कुछ ऐसा ठस-ठहरा हुआ और निश्छल हो जाता है कि ज़िन्दगी सिर्फ़ खाने-सोने और हगने में गुज़र जाती है, चौबीस घंटे पेट साफ़ है या नहीं, इसी की चिन्ता बनी रहती है। आज-कल मैं शायद इसी मनोदशा से गुज़र रहा हूँ। यों कुछ अच्छे कहानी संग्रह पढ़े हैं, धीरेन्द्र अस्थाना, रघुवीर सहाय, विजयमोहन के। 'धर्मयुग' में संजीव की कहानी 'प्रेतमुक्ति' पढ़कर फिर उसे पत्र लिखा है। इन्तज़ार हुसैन का 'बस्ती' पढ़ा और आजकल ओजामू देज़ाई का 'सेटिंग सन' दुबारा पढ़ रहा हूँ। कितना आश्चर्य होता है, लोग कैसी आसानी से लिखते चले जाते हैं! शनिवार को शानी आ गया था। घर गए। मलिक साहब, अजित, हम। उसने 'दोज़खी' कहानी पढ़ी। मुझे लगा, कुछ अतिरिक्त भावुकता और 'था' वाली शैली बहुत हावी हो गई। 'मैं घर चला गया था, कुछ नहीं बोला था।' इत्यादि, काफ़ी बहस हुई। रात को वहीं सोया। आजकल गिरिराज से भाषा को लेकर बात हो रही है। मेरे लम्बे पत्र पर शैलेश का कोई ख़त नहीं आया इसलिए चिन्तित हूँ। मीता का कोई पता ही नहीं है। शिकोहाबाद है या आगरा...पता नहीं, कब तक की छुट्टियाँ हैं। फ़ीरोजाबाद का एक रामसनेही शर्मा अपनी छात्रा को लेकर आनेवाला था, वह भी नहीं आया। वह मेरे ऊपर काम कर रही है।

30.10.82

इधर मैं देख रहा हूँ कि शानी के साथ हर मीटिंग एक अशोभन या अनप्लैज़ेंट नोट पर ख़त्म होती है। मीटिंग शराब पर होती है, यह दूसरी बात है। कल भी यही हुआ। साजिद क़ाज़ी अब्दुल सत्तार को ले आया था। शाम को हम लोग बैठे। सबसे पहले तो पूरी मीटिंग की टोन इसी बात से तय हो गई कि शानी पहले से ही बैठा था और क़ाज़ी बाद में आए। देखते ही बोला—'अस्सलामु अलैकुम...' क़ाज़ी ने कहा, 'आदाब अर्ज़'। उसने हाथ मिलाते हुए दुहराया और क़ाज़ी ने वही जवाब दिया। और फिर बातचीत शुरू हुई। मलिक साहब को बुलवाया गया। साजिद 'रम' ले आया। बातचीत मुहम्मद हसन से शुरू हुई। क़ाज़ी ने उन्हें गुरु बताते हुए उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयनीय पारिवारिक जीवन का चित्रण किया। क़ाज़ी अकेले आदमी थे जिन्होंने शादी से पहले सलाह ली और इन्होंने मना कर दिया। इसके बाद की घटना उन्होंने बताई कि एक दिन जो मिलने गए तो सुना, आवाज़ आ रही थी, 'बचाओ, बचाओ!' क़ाज़ी ने दरवाज़े पर दस्तक दी, तनतनाती हुई बीवी निकली, कहा—नहीं हैं। बोले— हैं और अगर आप इस साहब की बीवी न होतीं तो मैं आपको जान से मार देता और क़ाज़ी ईंट उठा लाया, ताला तोड़ने के लिए—तब कहीं वह औरत चाबी लाई। खोला, बनियान और धारीदार पाजामे में बदहवास...और यह आज तक हाल है। वे पिटते हैं। शानी भड़क उठा, "लानत है, मैं पठान की औलाद नहीं, कुत्ते की औलाद हूँगा जो ऐसी औरत की बोटी-बोटी न काट डालूँ और कुत्ते के सामने न फेंक दूँ। वह आदमी कैसे बर्दाश्त करता रहा?" लोगों ने अपने-अपने री-एक्शन दिये। मैंने कहा—शानी, तुम लेखक होकर इस रिश्ते की जटिलताएँ नहीं समझते? इंटेलेक्चुल्स को सफ़र करते रहना पड़ा है। बस, भड़क गया : "क्या कम्प्लीकेशंस हैं, बताइए?" चूँकि हर बात में वह मेरे लेखक होने का हवाला देता रहा है, इसलिए पहली बार मैंने उसके भी लेखक होने के बारे में कहा। मैंने कहा, "वे क्या कम्प्लीकेशंस हैं, यह तो मैं भी नहीं जानता, मगर मुझे बताइए कि क्यों सुकरात, ग़ालिब, टॉल्स्टॉय, गांधी, लिंकन अपनी बीवियों से परेशान रहे? क्यों उन्होंने क़त्ल नहीं कर दिया?" क़ाज़ी ने कहा, "शेख सादी ने तो लिखा है कि मेरी बीवी मुझे चार-चार दिन खाना नहीं देती थी..." और इस पर चख-चख हुई। एकाध बार उसने साजिद की तरफ़ देखकर उसे धमकाया। अब बोलता क्यों नहीं है, चुपचाप बैठा है। जब दो बार हो गया तो मैंने कहा, "वह किराए का गवाह है, जो बोलेगा? और बोले तो तब जब मैं अपनी बात से पीछे जा रहा हूँ।

क़ाज़ी ने सफ़रिंग शब्द कहा तो उस पर चढ़ दौड़ा, "तो आप मुझे सफ़रिंग का मीनिंग बताएँगे?" क़ाज़ी ने कह दिया, "सफ़रिंग सिर्फ़ शारीरिक नहीं होती, मानसिक भी होती है।" जब मैं बीमार बच्चे के सिरहाने बैठकर रात भर जागता हूँ या तीन दिन खाना नहीं खाता तो सफ़रिंग शारीरिक है और जब मैं बच्चे या बीवी को छोड़कर दोस्तों के साथ बैठा हूँ तो मानसिक रूप से सफ़र करता हूँ। ख़ैर, वातावरण ऐसा बन गया कि एक-एक शब्द पर बदमज़गी होने लगी। "हम तो फटेहाल हैं।" शानी की इस बात पर क़ाज़ी ने कहा, "आप फटेहाल नहीं हैं, कितने लोग इस मुल्क में आप जैसी हालत के हैं? आप साहित्य अकादेमी के जिम्मेदार अफ़सर हैं, आप गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया के गज़टेड ऑफ़िसर हैं...मैं रीडर हूँ और चौबीस सौ रुपए पाता हूँ। मैं फटेहाल नहीं हूँ।" इस पर और तेज़ी आई। 'पठान की औलाद' का जिक्र आया। एक बार शानी बिफरकर जाने लगा और फिर क़ाज़ी ने माफ़ी माँगी। क़ाज़ी भी थोड़े बड़बोले हैं: "मैंने बीस साल से किसी उर्दू अदीब के साथ बैठकर नहीं पी। मैं अलीगढ़ में ये हूँ और किसी के यहाँ नहीं जाता...मैंने किसी साले से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माफ़ी नहीं माँगी...आपसे माँग रहा हूँ।'' ख़ैर, वातावरण किसी भी तरह ठीक हुआ ही नहीं। साजिद को इतना बुरा लगा कि रोने लगा। शानी ने ख़ुद महसूस किया कि वह ग़लत और अकेला पड़ गया है...और इसी कटुता के साथ हम लोग अलग हुए।

और मैं कल से परेशान हूँ कि यह आदमी क्या सचमुच एक केस हो गया है? मानसिक रूप से बीमार है? इससे बात करना मुश्किल है। मान सकता हूँ कि धर्म इसका कमज़ोर हिस्सा है, मगर क्या कोई भी इंटेलेक्चुअल या कैसी भी बात इससे नहीं की जा सकती? यह तीसरी या चौथी बार है जब इसने ऐसा सीन किया है। अपना विरोध क्या बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर सकता? इससे कैसे बात की जा सकती है? फिर धीरे-धीरे मुझे लगा, यह पैरोनाइड है। दूसरों की बीवियों, बेटियों से इश्क़ करेंगे, मेरी बेटी, बीवी की तरफ़ कोई देखेगा तो काटकर फेंक देंगे...मैंने उस वक्त भी कहा था कि इसी तरह पति पत्नियों को काटकर फेंक दिया करते तो कहीं कोई तलाक़ नहीं होता। टॉल्स्टॉय जो लड़ाइयों में रहा, दो-चार बार द्वन्द्व-युद्ध भी किया होगा, वह अपनी बीवी को गोली नहीं मार सकता था? क्यों यातना सहता रहा? आप औरत को बराबर का दर्जा नहीं देंगे? इसलाम की प्रशंसा में कहेंगे कि वहाँ औरत का दर्जा बिल्कुल बराबर है? मुझे लगा : ''शानी उस क्लर्क मानसिकता से ग्रस्त है जो अफ़सर बन जाता है, अपने से छोटे आदमी की असहमति पर दाँत पीसते हुए 'गेट आउट' कहेगा, बराबर वालों और बड़ों के बीच 'आई क्विट' कहेगा। पढ़े-लिखे आदमी से बात करना मुश्किल होगा, इसलिए आवाज़ की ऊँचाई और तमतमाहट में उसे धमकाएगा होगा। 'अच्छा, तो अब आप हमें फ़लाँ शब्द का अर्थ समझाएँगे? कहेगा और बात-बात में पठान होने की दुहाई देकर बात को वज़नदार बनाएगा...यह हीनता ग्रन्थि ही उसे मुसलमान बनाती है, आक्रामक बनाती है।

वह हठपूर्वक पुरानी दक़ियानूसी जाहिल धारणाओं से चिपका रहना चाहता है और वहीं उसे सुरक्षा मिलती है। इन्फ़ीरियॉरिटी काम्प्लेक्स और इंसिक्योरिटी उसे पुरानेपन और मुस्लिम वर्ग से चिपके रहने की प्रेरणा देती हैं और अगर आप वहाँ उँगली रखते हैं तो तिलमिला जाता है। ऐसा हो नहीं सकता कि उससे बराबरी की बहस हो और वह कटुता में न समाप्त हो...अजीब शेखचिल्लीपने का रवैया है कि आप सोलहवीं सदी के हथियारों से बीसवीं सदी की लड़ाई लड़ रहे हैं। मुझे रात को देर तक और सुबह भी लगता रहा है कि मैं उससे बातें करूँ कि अपने इन दक़ियानूसी, जाहिल और वहशियाना विचारों के लिए तुम्हें कितने सहारे चाहिएँ...मुसलमान होने के, बीमार होने के, पठान होने के? लगता है, जैसे हम दो अलग सौर-चक्रों के लोग हैं। दिल्ली जैसा शहर बुद्धिजीवी, पढ़े-लिखे लोगों के बीच कब तक ये सहारे मदद देंगे? वह गर्व से छाती ठोंककर कहता है कि मैं उन खुशक़िस्मत लोगों में हूँ जिन्हें बहुत सच्चे दोस्त मिले हैं। कल भी क़ाज़ी से कह रहा था। क़ाज़ी ने कहा, ''आप सचमुच खुशक़िस्मत हैं। और अकेले हैं। मैं तो किसी को नहीं पाता जिसे अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोस्त कह सकूँ...''...''हाँ, मेरे हैं।'' तब मैं उसका भ्रम नहीं तोड़ना चाहता था। यह कहकर कि ये क्रेडिट तुम्हें नहीं, उन्हें ही है। जब तक वे तुम्हारे लिए कुछ करते रहेंगे, तुम्हारे दोस्त होंगे। जिस दिन तुम्हें कुछ करना पड़ेगा, उस दिन पूछूँगा। शानी, तुम शायद भूलते हो कि तुम्हें सिर्फ़ बर्दाश्त किया जाता है, तुम्हारी जहालत और दक़ियानूसी ताज्जुब को सिर्फ़ तरजीह दी जाती है, कटुता से बचने के लिए बात को टाल दिया जाता है, वे भी तुम्हारे धरातल पर बातें करें तो एक मिनट में असलीयत पता चल जाए...आज मैं समझ सकता हूँ, अश्क ने इसे तास्सुबी (विद्वेषी) कहा था और क्यों दुष्यन्त से इसकी लड़ाई हुई थी... ?

1.11.82

बहुत दिनों बाद आज सुबह सपने में पिताजी दिखाई दिये। वही दुबले-पतले, जब उनकी आँखों का मोतियाबिन्द का ऑपरेशन हुआ था तो एक आँख पर उन्होंने अन्धा चश्मा (ग्राउंड ग्लास) लगाया हुआ था। जैसे एक नाव है, खड़ी हुई। धुँधली रोशनी है। वे कुर्सी पर बैठे हैं, मैं खड़ा हूँ। पास ही मलिक साहब भी खड़े हुए हम लोगों की बातचीत सुन रहे हैं। पिताजी गहरी साँस लेकर रुँधे गले से कह रहे हैं : ''तुम मुझे कहाँ ख़त लिखोगे ?'' और मेरी छाती में भाला फँसने लगता है। तभी आँख खुल जाती है। साढ़े पाँच बजे थे। मैं देर तक बैठा सोचता रहा : यह सपना मुझे क्यों दिखाई दिया ? मलिक साहब का वहाँ होना तुलनात्मक है कि इकहत्तर साल की उम्र में एक वे हैं—लाल, चमकते हुए और तिरेपन साल में एक पिताजी हैं; या यह मलिक साहब की फ़ादर इमेज़ है जो अपना रूप पिताजी में भी बदल रही है। पत्र न लिखने की शिकायत या मेरा 'लिखूँगा' कहना क्या संकेत है ? पिताजी को यह यातना क्यों है कि मैं इतना बड़ा, अलग या महान हो गया हूँ कि उन्हें पत्र भी नहीं लिखूँगा ? नाव क्या चलने से पहले रुकी हुई थी, या कहीं से आकर रुकी थी ?

4.11.82

पिछले कुछ दिनों से एक फ़ोन आ रहा है, कभी टिंकू के पास और कभी हमारे यहाँ। अक्सर मन्नू या टिंकू ही उसे लेती रही है। कल पाँच बजे सुबह फ़ोन आया। मन्नू ने उठाया, फिर मेरे पास लाकर रख दिया। फिर बजा, ''अंकल आपकी बेटी स्मोक करती है, ड्रिंक करती है, आप उसकी दराज़ खोलकर देख लीजिए...'' फिर आया : ''अंकल, आपने कुछ सोचा...आपकी बेटी ड्रिंक करती है, स्मोक करती है...।'' पिछले दिनों यानी दो तारीख़ को मैं निर्मला जी के दो हज़ार रुपए लौटाने गया, खड़े-खड़े दिये तो उन्होंने क़िस्सा सुना दिया कि आपकी बिटिया साढ़े बारह बजे 'मौर्या' में कैसे-कैसे लोगों के साथ थी...एक कपल था और बहुत ही बेहूदे ढंग से व्यवहार कर रहा था। पप्पू ने उसे देखा तो टिंकू ने पीठ कर ली। स्वाभाविक ही था कि ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग 'घुँघरू' में जाते। इस कपल के व्यवहार को देखकर लॉबी मैनेजर ने पप्पू से कहा कि इनसे कहिए कि ढंग से बिहेव करें। इस पर पप्पू बोला, इनमें से एक लड़की को मैं जानता हूँ। तो किसी और को भेजकर वार्निंग दी गई...या निकलवाया गया... मैंने हँसकर उड़ा दिया। लेकिन भीतर से मैं अपसेट हो गया। मन्नू को बताया और हमेशा की तरह बेचैन हो गया। बहुत लिहाज़ करता हूँ। अब बिल्कुल साफ़ कहूँगा। टिंकू मिली ही नहीं। रात को काफ़ी डाँटा, एक तो छिपाया, दूसरे न जाने किन-किन लोगों के साथ भौर्या, मचान, रात को भटकती हो; ऐसे लोगों के साथ जिन्हें मैनेज़र को निकलवाना पड़े। और यह सूचना हमें मिली निर्मला जी से, जो अतिशयोक्ति की ख़ुदा हैं। दुनिया भर में कहेंगी। ख़ैर, मुझे भी काफ़ी गुस्सा आता रहा। क्या हो रहा है इस लड़की को, किधर जा रही है? कहाँ जाकर रुकेगी?

परसों मिश्रा जी का फ़ोन आया कि वे सज्जन शनिवार को आपसे मिलेंगे। शायद यहीं आएँगे साढ़े 12 बजे। परसों डॉ. बच्चन सिंह आए। कल डॉ. राजुरकर और उन्होंने बताया कि मुझे उन्होंने अपने विश्वविद्यालय की कमेटी ऑफ़ कोर्सेज़ में ले लिया है। अगले महीने सूचना आएगी, जनवरी-फ़रवरी में आना होगा। शाम को डॉ. विनय के यहाँ मैं, मलिक साहब और राजुरकर बैठे। अच्छा रहा।

6.11.82

अभी-अभी शुभेन मुखर्जी, लिंक पैट्रियॉट का बिज़नेस मैनेजर 'हंस' की पूरी स्कीम पर दो-ढाई घंटे बातें करके गया है। वह अपने ढंग से प्रोजेक्ट बनाना चाहता है। परमेश्वरन के प्रोजेक्ट को उसने एक तरह ग़लत या अव्यावहारिक बताया। बहुत-सी बातें हुईं।

10.11.82

कल ही जयपुर से लौटा हूँ। रविवार को सुबह पिंक सिटी से गए थे—मैं, मन्नू, निर्मला जी और जैन साहब। जयपुर में रामानन्द राठी मालाएँ इत्यादि लेकर आ गया था। गाड़ी भी थी। वह सब विदा कर दिये।

11.11.82

लक्ष्मीनारायण जी आ गए थे। उन्हीं के साथ घर आए। पहले तो निर्मला जी ने अनिच्छा प्रकट की, मगर फिर जब घर गईं और उनका व्यवहार देखा तो लगता है, काफ़ी प्रभावित हुईं। माधवी के घर से सभी प्रभावित होते हैं। अच्छे होटल की तरह हर चीज़ साफ़-सुथरी। शाम को साढ़े चार बजे रवीन्द्र रंगशाला में रामानन्द राठी की पुस्तक 'एक साक्ष्यहीन मौत' का विमोचन हुआ। निर्मला जी से भी बुलवाया। मैं बोला। अति प्रशंसा नहीं की। वही शुभकामनाएँ और कुछ स्पष्ट-सी बातचीत। दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्चे पढ़े गए। वही बँधी हुई शब्दावली और अतिशयोक्तियों से भरे। वहाँ से निकलकर नीना के यहाँ गए। अगले दिन सुबह ही देवेन्द्र मलिक के यहाँ नाश्ता, फिर हॉस्पिटल। वहाँ से बल्लू बाबू के यहाँ भोजन। लौटे तो राठी बैठा था। उससे देर तक बातें हुईं। उसने किराया इत्यादि कुछ भी नहीं दिया। मैंने संकेत से कहा भी। उस दिन शाम को नीना, शान्ति भार्गव इत्यादि से मिलने गए।

16.11.82

अहरकर नाम के युवा लेखक से 'जनवादी लेखक संघ' और मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी के बढ़ते हस्तक्षेप पर देर तक बातें हुईं। अगले दिन घर पर ही रहे। शाम को निकलना था, उसके भी अगले दिन निकले। सुबह बारह तक पहुँचे। जैन साहब छूट गए। बाहर एक तक घर आ गए। उसी दिन शाम को निर्मला जैन ने सबको खाने पर बुलाया।

दीवाली धूमधाम से गुज़री। पिछले तीन-चार दिन तो मैं एकदम भूल ही गया कि लिखने-पढ़ने से कोई सम्बन्ध है। खाना, सोना, घूमना और रात को ताश खेलना। परसों प्रभा के यहाँ, फिर निर्मला जी के यहाँ। कल दीवाली के दिन हमारे यहाँ रहा। रंजन-टिंकू भी आ गए थे। अब फिर वही पुरानी ज़िन्दगी। निर्मला जी के यहाँ से लौटकर काफ़ी देर लेटे-लेटे सोचता रहा कि क्यों न सुरीर के दिनों की अपनी आत्मकथा दिख दी जाए। कुछ घटनाएँ, इम्प्रेशन, सेक्स प्रबुद्धता, बचकाने प्रयास...मगर क्या उन सबको मैं साफ़-साफ़ लिख और कह पाऊँगा? शायद नहीं।

30.11.82

आज पाँचवाँ दिन है : मैं गाड़ी सीख रहा हूँ। सुबह छह बजे उठकर रंजन को उठाता हूँ और हम लोग ठंड में निकल जाते हैं। बहुत आत्मविश्वास नहीं है कि सीख पाऊँगा। स्वप्न की तरह सोचता ज़रूर हूँ कि औरों की तरह मैं भी गाड़ी चलाता हुआ यहाँ से वहाँ निकल जाया करूँगा। किसी का मोहताज नहीं रहूँगा। भोलेश्वर हो या कोई और—कोई गाड़ी चला रहा है और बुर्जुवा सेठ की तरह पीछे बैठा मैं लोगों को सफ़ाइयाँ दे रहा हूँ कि हम बाक़ायदा ड्राइवर नहीं एफ़ोर्ड कर सकते। सो यह पीर-बावर्ची, भिश्ती, खर—सभी है। एक गिल्ट अपराधबोध से दबे रहने की दुहरी मानसिकता। कहीं यह दिखाने की आकांक्षा कि हमारे पास भी शोफ़र ड्रिविन कार है, कहीं यह छिपाने की मनोवृत्ति कि हमारे पास भी गाड़ी है : दो गाड़ियाँ होने की सफ़ाई। अपने-आप ड्राइव करना इस बोझ से मुक्त करेगा। ड्राइवर के ख़र्चे में मैं ज़्यादा गतिशील हो जाऊँगा। रंजन कह भी बहुत दिनों से रहा था कि वह सिखाएगा। सात-आठ या अधिक साल पहले सत्ते ने सिखाने की कोशिश की थी। कुछ चलाई भी। पाँव का भी डर था कि इससे पूरा कंट्रोल होगा या नहीं। सो 25

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को रंजन को लेकर पम्बारी रोड गए। और लो, मैं तो चलाने लगा। गियर, एक्सीलेटर, क्लच कुछ भी नहीं सँभलता, मगर स्टीयरिंग पकड़कर चला लेता हूँ : पाँव बहुत बड़ी बाधा नहीं है। थोड़े-से अभ्यास और नियंत्रण के बाद शायद चला ही लूँ। सीखने की गति बहुत धीमी है, मगर लगा रहा तो हो जाए शायद। चारों तरफ़ ध्यान अपने-आप ही बना रहे, यह बोध अभ्यास से आएगा। स्कूटर-मोटर साइकिल चलाए हुए लोगों के लिए आसानी है। मुझे तो साइकिल के सिवा किसी का कोई अनुभव नहीं है। लेकिन चलाने से पहले जैसी आशंकाएँ, स्वप्न, उत्साह होता है या चलाना सीखने के दौरान जैसा ऑब्सेशन या थ्रिल महसूस होता है, वैसा कुछ नहीं है। सब एक ठंडापन है कि गाड़ी चलाना सीखना है, एक आशंका है कि कहीं बीच में न छोड़ दूँ। एक आत्मविश्वास हीनता है कि जैसे बाक़ी लोग चला लेते हैं, क्या मैं वैसा कर पाऊँगा? प्रशिक्षण और सफलता के बीच की प्रक्रिया बहुत धैर्य और श्रम चाहती है, वह मुझ में नहीं है। मगर सभी लोग जब कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकता?

देखें, आज क्या होता है? 27 को मन्नू कलकत्ते गई। 'भारतीय भाषा परिषद्' की ओर से पाँच को उसे पुरस्कार दिया जाएगा। यहाँ मैं अकेला हूँ। न टिंकू, न कोई और, बस मिस्टी। हो सकता है, मैं कुछ भी न कर पाऊँ। मगर एक ख़ास क़िस्म की उमंग, सैन्स ऑफ़ लिबरेशन, एक खुलाव अपने भीतर महसूस होता है। क्या एकान्त के लिए सचमुच ही मैं इतना तरस गया हूँ? मगर आत्म-साक्षात्कार के लिए जितना अकेलापन चाहिए, वह तो मुझे अक्सर मिल ही जाता है। सुबह-शाम। शायद भीतर से एक निर्मुक्तता की अनुभूति नहीं है। कहीं मन में 'स्वतंत्र' होने की प्रतीक्षा और उस क्षण की चेतना बनी रहती है।

162112

6.12.82

ये सात-आठ दिन भी निकल गए और कुछ नहीं हुआ। एक भी लाइन नहीं लिखी और न उल्लेखनीय कुछ पढ़ा। मैं, भोलेश्वर और मिस्टी तीनों दरियागंज जाते थे और सन्ध्या को लौट आते थे। इधर वह मोहनलाल भास्कर आ गया, वह अपनी पुस्तक के लिए बेचैन है। भारत की ओर से जासूसी करने के सिलसिले में साढ़े छह साल पाकिस्तान में रहा—जेलों में। उसका प्रयास था कि मैं दुनिया की सारी चीज़ें छोड़कर उसकी पांडुलिपि में लग जाऊँ। चारेक दिन गाड़ी सीखने गया। रंजन तो चला गया। भोलेश्वर के साथ जाता था। बहुत ही धीमी प्रगति है, पर अब लगता है कि शायद सीख जाऊँगा। वस्तुत: सारा ध्यान एशियाई खेलों में लगा रहा। इस बीच एक दिन बब्बू-नीरा भी आए। शनिवार के दिन तो अजीब ही हुआ। शुक्र की रात को अचानक एक सज्जन आए, ईश्वर गोयल। बम्बई से अपने भाई की बीमारी में, लेकिन बंटी बनाना चाहते हैं। सुबह आने को कह गए। उसी दिन बब्बू का फ़ोन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया। वे लोग लन्दन से आए हैं और उदयपुर जा रहे हैं। शनि को सुबह वह गोयल आया। भास्कर भी न जाने कहाँ से आ गया। पहले कंस्ट्रक्शन का काम करता था। फ़िल्म लाइन में बंटी के साथ आना चाहता है। डायरेक्टर हैं शिशिर मिश्रा, जिसने भीगी पलकें बनाई है, लिखने का कम करेगा कोई हशमत। पैसों की बात हुई। अलग जाकर भी। मैंने पचास के आसपास उसे बता दिया। उसके बैठे हुए ही शायद एक दिन पहले ही उपेन्द्र सूद का फ़ोन आया था कि 'त्रिशंकु' के सिलसिले में बात करना चाहता है। कोई सज्जन हैं, फ़िल्म इंस्टीट्यूट के अमित त्यागी। घर का पैसा भी है; वे बनाएँगे। अगले दिन ही जाएँगे। मिलना था। उधर सुरेश जिन्दल अपनी नई फ़िल्म 'कथा कछुए खरगोश की' लेकर आया था। 11 बजे दिखा रहा था। वहीं मिलने का तय हुआ। निर्मला जी, भास्कर और हम तीनों गए। वहाँ मृदुला भी आई थी। ख़ैर, फ़िल्म तो अच्छी थी। सामनेवाली सीट पर उपेन्द्र आकर बैठ गया और वहीं सारी बातें होती रहीं। उसने अमित त्यागी की बात कही कि सुरेश जिन्दल से उसके बारे में पूछा जा सकता है। बाहर निकलकर ही मैंने सुरेश से पूछा तो वह त्यागी की बहुत तारीफ़ करने लगा। त्यागी और उपेन्द्र दोनों को यह अनुमान था कि 'त्रिशंकु' बासु के पास है। मैंने कह दिया 3 जनवरी को बासु आ रहे हैं, उससे पहले ही हम लोग बात कर लें तो ज़्यादा अच्छा है। ख़ैर, फ़िल्म काफ़ी ठीक-ठाक थी। निर्मला जी बीच से चली आई थी। मैं अक्षर आया। बब्बू-नीरा आए—दो-एक घंटे बैठे। फिर साजिद, शानी आ गए। हम लोगों ने दारू पी और मैंने खुलकर उस दिन के व्यवहार के लिए काफ़ी कुछ कहा। वह आज भी नहीं मानता कि उसने कोई ग़लती की है।

अब मिश्रा जी और 'हंस' प्रसंग। मिश्रा जी से बात हुई थी और तय हुआ कि हम लोग 29 को मिलेंगे। 30 को उनकी मीटिंग है। मेरी शुभेन मुखर्जी से बात हुई थी कि साढ़े ग्यारह मिल लेंगे। मिले। उसने बड़ा हवाई बजट बना रखा था। आठ रुपए कॉपी पड़ेगी। जब मैंने काग़ज़ और प्रिंटिंग के बारे में कुछ वास्तविक बातें कीं तो बिना किसी बहस के बजट काट दिया छह रुपया कॉपी। यानी अगर सारे ख़र्चे मिला लिए जाएँ तो साल भर में बीस लाख। आमदनी न वह विज्ञापनों की ले रहा है, न सेल की। कहता है कि अगर 'सोसायटी जेंटलमैन' जैसी पत्रिका होगी तो मैं कहूँगा, छह महीने में प्रॉफ़िट देगी। इसका कुछ नहीं कह सकता, न जाने क्यों मुझे लगता है, इस पत्रिका को लेकर वह उत्साहित नहीं है। बंगाली आदमी है, काम बढ़ाना नहीं चाहता। जिस ढंग से पत्रिका का बजट बनाया, उससे भी लगता है कि सही स्थिति जानने की कोशिश नहीं करता—जो फ़िगर मन में आई, या दूसरों ने दी, उसी को मिश्रा जी के सामने रख दिया। परमेश्वरन के बजट की आलोचना ज़रूर करता है। अगर पत्रिका निकली तो बहुत सहयोग नहीं देगा। प्रेस इन लोगों का छह महीने और लेगा। मिश्रा जी कहते तो हैं कि 15 को फिर बोर्ड की मीटिंग हो रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उसमें फ़ाइनल बातें करनी हैं, पर देखें। मैंने उन्हें थामसन प्रेस के कोटेशंस भेज दिये हैं। रमेश जी से भी ले लूँगा। अब मालूम नहीं, ये लोग कितना और घसीटेंगे।

कल विजय तेन्दुलकर का नाटक 'कमला' देखा था—राजेन्द्र नाथ का। अच्छा लगा।

7.12.82

आज मन्नू कलकत्ता से आ गई है। अभी घर जाकर सारे समाचार जानूँगा। कल जगदीश चतुर्वेदी की लड़की की शादी में गए थे। सभी थे। ब्रजेन्द्र तिवारी ने आने को कहा था छह तक, नहीं आया। फिर अजित और निर्मला जी आ गए। गाड़ी उन्हीं की थी। उन्हें दूसरी शादी में आना था। मैं बाद में स्नातक जी के साथ आया। बहुत लोगों से मुलाक़ात हुई। अनेक लोगों ने तो इस तरह आकर कहा (सागर से राजनीतिशास्त्र विभाग की अध्यक्षा और आकाशवाणी से जयकान्त जेठवानी) कि हम तो पता नहीं कब से आपको पढ़ते आ रहे हैं। उनकी श्रद्धा और सम्मान देखकर अच्छा लगता है, मगर ऐसा भी महसूस होता है जैसे मैं पिछली शताब्दी से लिख रहा हूँ और ये लोग बचपन से पढ़ रहे हैं। साहित्यिक मित्रों से मिलने में जो विरक्ति होती है, वह कल नहीं थी। बूफ़ेखाने में प्लेट लेकर लाइन लगाना, लंगर में भिखारियों की लाइन की याद दिलाता है। सुना, ब्रजेन्द्र बाद में घर आया था, मलिक साहब को लेकर। सारे दिन सोढ़ी और भास्कर बैठे रहे। देख रहा हूँ, यह भास्कर बहुत चिपकू है।

9.12.82

कल भारती से भेंट हुई। शीला झुनझुनवाला की लड़की की शादी थी। पहले हम लोग गए चुघ साहब की लड़की की शादी में, फिर तिलक मार्ग। कितनी गाड़ियाँ थीं, मेरा ख़याल है—दो-ढाई सौ गाड़ियों से सारी सड़क भरी थी। शादी क्या थी, मेला था। आना-जाना मुश्किल। सुना, अमिताभ, राजकपूर, दिलीप और न जाने कौन-कौन। सारे साहित्यकार। शायद और क्षेत्रों के लोग भी रहे हों। वहीं दुबेजी बी.एन. और बिशन टंडन से भी भेंट हुई। सामने भारती। वही प्यार के शब्द, मगर कटखने वाक्य। तीन-चार बार आमना-सामना हुआ और शायद दोनों में से किसी ने भी बचने की कोशिश नहीं की। राज वेदी के मरने की बात, कमलेश्वर का फिर से फ़िल्मों में कोशिश करना, सभी बातें हुईं। कब तक है, यह मैंने नहीं पूछा। रात को दस के क़रीब लौट आए। घर पर रंजन था।

15.12.82

पता नहीं, कैसे मेरे दिमाग़ में जम गया है, और हो सकता है, यह सही ही हो कि वासना का गहरा सम्बन्ध रचनात्मकता से है। पिछले दिनों जब से मुझे यह अहसास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है कि मैं 'इम्पो' हो गया हूँ तभी से भीतर से बेहद ही परेशान हूँ। चार-पाँच महीने पहले मैंने अपने ढंग से 'इलाज' करना शुरू किया था, भोपाल जाने से महीना भर पहले से। हस्तमैथुन से कोशिश करता था कि 'इच्छा' बनी रहे। इधर लिखने की सारी इच्छाएँ हैं। सुबह जल्दी उठकर लिखने के मूड में भी आता हूँ, मगर लिखना नहीं होता। इधर इच्छा एकदम, एकदम ही मर गई है। यहाँ तक कि लिंग ने खड़ा होना बन्द कर दिया है। हाथ से एकाध बार कोशिश भी की, मगर कुछ भी नहीं होता। न सख्ती आती है, न कुछ निकलता है। यह मुझे क्या हो गया है? लोग तो सत्तर-साठ साल तक सक्रिय रहते हैं, बल्कि शेखी बघारते हैं, किसी भी औरत को सन्तुष्ट करने की। मुझमें केवल (पंजाबी शब्द के अनुसार) ठरक रह गई है, लड़कियों को छूना, छेड़ना अच्छा लगता है, मगर बस। ऐन समय पर कुछ नहीं होगा। लो, साली इच्छा ही मर गई। बैठे-बिठाए बिल्कुल ही बेकार हो गए। अब क्या वह सुख, विजेता होने का वह गर्व कभी नहीं मिलेगा? और लिखना? क्या वह भी इसके साथ जुड़कर अकाल मृत्यु को प्राप्त होगा? पहले आलोचना इत्यादि लिखा करता था और लिखने का सिलसिला बना था—अपना असली लिखने के लिए घेर-घार करने, भूखा मारकर लाइन पर लाने के जोश में वह भी समाप्त हो गया। पूरे साल में जैसे-तैसे एक कहानी लिखी है। पढ़ना और पढ़ना—फिर अगले क्षण भूल जाना। जैसे पढ़ना एक आत्मिक सन्तोष नहीं, आदत बनकर रह गया है। कुछ भी तो नहीं टिकता। भीतर से इतना खोखला, मृत और जड़...क्या ज़िन्दगी भर का प्राप्य यही रह जाएगा? इसी बिन्दु पर आने के लिए इतनी तैयारियाँ, गर्जन-तर्जन था? न खुले उन्मुक्त आदमी होकर ज़िन्दगी का सुख भोगा, न लेखक होकर लेखक के सन्तोष को—अब तो समय भी नहीं रह गया है...।

पिछले शनिवार को सुबह-सुबह सपना देखा। कहीं जाने की तैयारियाँ—ताँगा है या गाड़ी, या कार ठीक से याद नहीं है। सारा सामान रखा जा चुका है, अचानक मुझे याद आया, तम्बाकू के पैकेट तो रखे ही नहीं हैं। घबराकर बगल में लटके झोले की ज़िप खोलकर देखता हूँ! दो-तीन पैकेट रखे हैं। हाँ, हैं, चलो, अब निकलते हैं। आँख खुल गई। संस्कार जागा; सुबह के सपने सच्चे होते हैं। किस यात्रा की तैयारियाँ हैं? कहाँ जाना है, कब जाना है? क्या किसी से कहकर इस सपने के प्रभाव को समाप्त कर डालूँ?—मगर जो कुछ होना है, वह इससे कैसे अनछुआ होगा? शाम को एल.एम. सिंघवी के लड़के की शादी के प्रीतिभोज में जाना था।

16.12.82

परसों इलाचन्द्र जोशी के न रहने से सचमुच भीतर से कुछ खाली हो गया। इस उपन्यासकार को मैं कभी बेहद पसन्द करता रहा हूँ और मुझे हमेशा लगता है, जैसे इनका सही मूल्यांकन नहीं हुआ। मन होता है, इनकी रचनाएँ पढ़कर एक लम्बा लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा जाए। परसों ही मैं एक 'मौखिकी' में विशेषज्ञ होकर जे.एन.यू. गया। पी-एच.डी. का वायवा था, लड़का समझदार और तेज़ था। मैंने और बच्चन सिंह ने वायवा लिया। इसी दस तारीख को राकेश वाला कार्यक्रम भी हो गया। मैंने प्रारम्भ में कुछ बातें कहीं, लेखकों के दो विभाजन किए; एक जिनके व्यक्तित्व से सारे साहित्य का मूल्यांकन होता है, उसी सन्दर्भ में उसे देखा-परखा जाता है, दूसरा जिनके लेखन से उनका व्यक्तित्व उभरता है। वात्स्यायन के सारे साहित्य को उनके व्यक्तित्व की गरिमा के साथ ही देखा जाता है, जबकि हो सकता है मुक्तिबोध का व्यक्तित्व बहुत उपेक्षित-नगण्य रहा हो, मगर अब जो व्यक्तित्व उभर रहा है, वह साहित्य से। इसके बाद विजयमोहन सिंह, नेमिचन्द्र जैन और इन्द्रनाथ मदान ने लेख पढ़े। नेमि बोले। मदान को छोड़कर सभी ठीक बोले। श्रद्धांजलि और संस्मरणों से हटकर एक सार्थक मूल्यांकन की शुरुआत के रूप में बताकर मैंने गोष्ठी समाप्त कर दी। फिर पंजाब-हाउस में हम कुछ लोग जमा हुए। दारू-दौर शुरू हुआ। वहाँ प्रयाग शुक्ल ने इतनी पी ली कि खाने की मेज़ पर बिखर गया। मेरी पुस्तक कोई नहीं छापता, मुझे कोई नहीं पूछता। मैं तब तक नहीं उठूँगा, जब तक कि किताब नहीं छपेगी। बड़ा दयनीय दृश्य उपस्थित किया। शानी, राठी, विनोद भारद्वाज, मैं, प्रयाग—सभी थे—केदार बाबू भी।

20.12.82

कल का दिन तो बेहद ही हैक्टिक—भाग-दौड़ भरा रहा। दो-एक दिन से बासु के साथ रोज़ प्रोग्राम बन रहे हैं। एक दिन उनके होटल में गए। कनिष्क में। साजिद, मैं और शानी थे। अच्छा रहा। घर लौटे एक-डेढ़ बजे। फिर शानी के घर शनिवार को। शनि को ही ईश्वरदयाल गोयल, अपने डायरेक्टर शिशिर मिश्रा को लेकर आ गए। शिशिर मिश्रा बहुत बोलता है, दूसरे को नहीं बोलने देता। मन्नू के पास दो-तीन घंटे बैठा होगा। रविवार को आने की बात तय हुई। रविवार को ही बासु को भी आना था। नतीजा हुआ कि रवि को सबसे पहले मालती के भाई भगवान दास आए। फिर ईश्वर गोयल और शिशिर मिश्रा आए। कुछ देर तक वह 'बंटी' का ट्रीटमेंट बताता रहा। उसने 'बंटी' पर काम इतना कर डाला है कि पैसे कुछ भी माँगे जाते तो ज़रूर दे देता। काफ़ी राइटिंग वर्क कर रखा है। इस बीच लालानी और चोरडिया दोनों आ गए। माँगीलाल जी के लड़के की मृत्यु पर दोनों आए थे। उनके जाने के बाद फिर पैसों की बात हुई। पिछली बार मैंने पचास बोले थे। कहने लगा, बहुत ज़्यादा है। फिर बातचीत में मैं चालीस पर आया। थोड़ी बहस के बाद मन्नू ने अपनी तरफ़ से 35 पर बात तय कर दी। मुझे लगा, जल्दी कर दी। मगर तय हुआ, उन्होंने टोकन-मनी की तरह दो हज़ार एक दिये। सारी बातें बहुत ही अच्छे वातावरण में हुईं। लगा कि अगर फ़िल्म सफल हुई तो शायद ये लोग कुछ और भी दे दें। फिर आध घंटे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद चले गए। इस बीच में कुछ और लोग आए। शाम को बासु, चुन्नी लाल जी आए। फिर हम लोग फ़िल्मों की बातें करते रहे। बासु ने शंकर वाली कहानी सुनाई। मुझे और मन्नू को बहुत क्लिक नहीं की। 'त्रिशंकु' की बात हुई। बताया कि अगर सारा लिखा हुआ मिल जाए तो पच्चीस-तीस मिल जाएगा। केवल कहानी के 10-15। फिर बजाज (राम गोपाल), सुरेन्द्र, रणजीत कपूर आए। पीने के बाद खाना। शाम को जब ये लोग गए तो बहुत थक गए थे। भोलेश्वर का तो कचूमर निकल गया।

23.12.82

फिर 'अक्षर' में लड़की की समस्या। कान्ता आई और ज़िम्मेदारी से इसने सारा काम सँभाला, उससे लगा कि शायद बीना की कमी पूरी करेगी। लेकिन दो दिन बाद ही बताया कि सरकारी नौकरी लग गई है। पास में ही है एमका हाउस। अब बेचारी लंच में, या सुबह-शाम आ जाती है, थोड़ा-बहुत काम करती है, मगर मेरी तलाश जारी है।

27.12.82

कल सुबह ही मैं और टिंकू बब्बू को लेने पालम गए—गाड़ी से। बब्बू नहीं आया। उसने ग़लत ख़बर दी थी। राजुल आई। उसे धौलाकुआँ पर छोड़ा और वापस आए। सारे दिन सोया। आज फिर बब्बू को लेने गए।...परसों अचानक बबली, रेणुका का फ़ोन आया कि सोमवार को आप लोग साथ ही भोजन करें। कुछ निकटवालों को बुलाया है। शाम को जब पहुँचा तो मन्नू ने बताया, कमला भसीन का फ़ोन आया था। उसी से पता लगा कि बबली और मिश्रा जी ने शादी कर ली है, और उसी सिलसिले में यह पार्टी। पहले तो मैं धक् से रह गया। हालाँकि दोनों वर्षों से साथ ही रह रहे थे, और हम लोगों ने जैसे स्वीकार भी कर लिया था। मगर इस सूचना से क्यों धक्का-सा लगा, समझ में नहीं आया। मन्नू ने भी मार्क किया। फिर मैं स्वाभाविक हो गया। कैसे संस्कार हैं कि एक बार हम दो लोगों का बिना किसी सामाजिक स्वीकृति के रहना तो बर्दाश्त कर सकते हैं, उस रहने की सामाजिक स्वीकृति नहीं देना चाहते। तब शायद यह उम्मीद बनी रहती है कि साल छह महीने में अलग हो जाएँगे और फिर सभी कुछ ठीक-ठाक हो जाएगा। 'विवाह हो गया' का अर्थ कि मामला पक्का है, लौटने की गुंजाइश नहीं है। या फिर यह ईर्ष्या कि देखो, इन सालों ने वह कर लिया जो हम नहीं कर पाए। हम यों ही झींकते रहेंगे और फिर मुझे 'उखड़े हुए लोग' के सूरज जी का ख़याल हो आया।

28.12.82

कल बब्बू ने वेददान के बारे में बताया कि मैंने प्रोफ़ेसर से कह दिया कि यार, तुम 'ग्रो' बिल्कुल नहीं कर रहे? मैंने पूछा कि 'ग्रो' करने का मतलब क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बब्बू बाला, ''वही धरातल जिस पर छोड़ा था, अभी भी है।'' मैं जैसे अनजाने रूप से सोचता रहा कि पिछले दस-बारह साल से क़रीब-क़रीब यही स्थिति तो मेरी भी है। वे ही दोस्त, वे ही समस्याएँ, वे ही सपने, वे ही कुंठाएँ और वे ही प्रयास—सब मिलाकर सब कुछ वही। क्या मैं भी 'ग्रो' नहीं कर रहा? क्या इसी को स्थिर और जड़ हो जाना कहते हैं? तब क्या वही आदमी सबसे अधिक डायनैमिक है; जिसके लक्ष्य, दोस्त, सपने, प्रयास हर तीसरे-चौथे साल बदल जाते हैं? तब का निष्ठावान, सिंसियर और फ़ाइडल आदमी कहीं जड़ ही होता है? यह तो सही बात है कि जिसकी ज़िन्दगी में कहीं कुछ नहीं बदलता, वही जड़ है। यानी हर स्थिति, सम्बन्ध, लक्ष्य प्रयास को केंचुल की तरह बदलते जानेवाला आदमी ही डायनैमिक है। दूसरे शब्दों में बेईमान, मतलबी, तोताचश्म, मौक़ाशनास लगता है, इन शब्दों के साथ नैतिक मूल्य या निर्णय-बोध जोड़कर हम इन्हें हेय बनाते हैं और ये हेय बनानेवाले वे हैं जो यह सब कुछ नहीं कर पाते। यानी ये उन जड़ और स्थिर लोगों के मूल्य हैं जो उन्होंने अपनी ईर्ष्या और असमर्थता में से बनाए हैं। राकेश, वात्स्यायन इत्यादि निश्चय ही डायनैमिक व्यक्ति थे। अगर गति और गत्यात्मकता ज़िन्दगी के आधारभूत तत्त्व हैं तो फिर कहीं भी चिपककर रह जाना कैसे निष्ठावान और सिंसियर होना है? ज़िन्दगी के हर धरातल पर सब कुछ नहीं बदलता, मगर कहीं कुछ तो बदले। शानी की तरह सेक्स के धरातल पर ही कुछ परिवर्तन, बदलाव हो, नए चैलेंज हों तो आदमी अपने को जीवित और जीवन्त अनुभव करे। मेरी ज़िन्दगी तो हर धरातल पर ही जड़ और स्थिर है। जितना व्यर्थ यह 82 का साल बीता है, ज़िन्दगी में बहुत कम साल निकले होंगे। और कुछ नहीं तो वैचारिक और आलोचनात्मक तो कुछ लिखता ही रहता था। इस साल इस हठ में कि लिखेंगे तो कहानी-उपन्यास ही लिखेंगे, वह भी नहीं लिखा और कहानी-उपन्यास लिखे नहीं गए। केवल पढ़-पढ़कर ही समय गुज़ारता रहा। सोचता और हर अनुभव को सँजोता रहा कि इससे लिखने का दबाव बनेगा और मैं आगे लिखूँगा। कभी-कभी बहुत गहराई से पूछता हूँ कि क्या सचमुच अब कभी लिख पाऊँगा, या सिर्फ़ भूतपूर्व होकर ही रह जाऊँगा?

31.12.82

लीजिए साहब, आ गया साल का आख़िरी दिन। गुज़र गए 365 कार्यकाल। क्या हुआ? हर स्थिति जैसी थी, वैसी ही बनी है। पत्रिका आज भी उतनी ही अनिश्चित, उतनी ही अधर में लटकी है। लिखना उसी तरह स्थगित हुआ चला जा रहा है। आर्थिक स्थिति जैसी थी, वैसी ही बनी है। मकान वही है। पिछले साल की तरह आज भी वही शानी, खरे, मलिक साहब का जमावड़ा है, शायद अक्षर में ही। मन्नू के वैसे ही उतरते-चढ़ते मूड्स हैं। हालाँकि मन्नू के लिए साल बुरा नहीं रहा। 'महाभोज'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक की दिग्दिगन्तरों में धूम हुई, 'बंटी' का सौदा हो गया, मकान की क़रीब आख़िरी क़िस्त दे दी गई। मेरी केवल एक कहानी 'सीज़ फ़ायर' आई। बाक़ी कुछ लिखा भी नहीं गया। अपने को लिखने का आश्वासन पहले की तरह देता रहा।

4.1.83

चाहता था, साल के पहले दिन डायरी लिखूँ, मगर ठंड इतनी ज़्यादा थी कि सिवा पढ़ने के कुछ भी नहीं हुआ। हाथ-पाँव ही जैसे सिकुड़कर रह गए। हालाँकि कोई अभूतपूर्व ठंड नहीं थी। 31 की रात को पहले तो हम लोग 'अक्षर' में मिले : मैं, मलिक साहब, अजित, शानी, खरे...फिर अरविन्द ने तय किया कि उसके घर ही मिला जाए। सामग्री और दूसरी चीज़ें लेकर अजित की गाड़ी में पहुँचे। काफ़ी देर तक देखते रहे कि शायद साजिद या सुकुमार चटर्जी आ जाए। नहीं आए। वहाँ रमेश लोकभारती वाला भी आ गया। ख़ैर, ढाई बजे तक पीते-खाते रहे। घर आते-आते साढ़े तीन बज गए थे यानी अगले दिन नए वर्ष में निद्रा के भाव से प्रवेश किया।

और पहले दिन के परिवर्तन की सूचना मिली, नेमिचन्द्र जैन की लड़की की शादी के रिसेप्शन पर। कीर्ति की शादी हुई तनवीर नाम के शायद मुसलमान लड़के से। इंडिया इंटरनेशनल में रिसेप्शन था। बहुत लोगों से मुलाक़ात हुई। मन्नू नहीं गई थी, हम वहीं से चले गए थे। मैं, अजित, गिरिराज इत्यादि। मिलना-जुलना हुआ। वहीं मिला अशोक वाजपेयी। तकल्लुफ़ाना बातों के बाद उसने कहा, अगर आप इजाज़त दें तो एक बात कहूँ? शानी भी पास था। मैंने पूछा : फ़रमाइए। कहने लगा : आपको किसी 'चेयर' पर आने में क्या आपत्ति है? दुनिया के सारे लेखक आते रहे हैं। शानी ने भी लगाया : मैंने पिछली बार भी बात की थी। मैंने कहा : सोचने दीजिए। पूछा : कब तक? मैंने कहा : दस-बारह दिन। पन्द्रह तक बताऊँगा। ख़ैर, अलग से शानी ने बताया कि यार, तुम इसे ले लो। इससे तुम्हें लिखने-पढ़ने में सुविधा मिलेगी। अशोक ने कहा : भोपाल, उज्जैन और सागर तीनों जगहों में से कहीं भी आप चुन लें। ख़ैर, शानी के हिसाब से ढाई-तीन हज़ार रुपए महीना होगा। फ़र्निश्ड क्वार्टर, एक ऑफ़िस, चपरासी इत्यादि मिलेंगे। भोपाल चले आओ, प्रेमचन्द चेयर पर। ख़ैर, प्रलोभन ज़ोरदार तो था ही। तब से दिमाग़ में बहस चल रही है। 'अक्षर'? शानी कहता है, हमेशा यहाँ आते-जाते रह सकते हो। यहाँ बैठकर ही सिवा वक़्त बर्बाद करने के और क्या करते हो? जो कुछ लम्बा लिखने की बात सोचते रहे हो, वह लिखो।

सचमुच मैं किसी ऐसे अवसर के लिए ही तो सपना देखता रहा हूँ। जब रहने के लिए निर्विघ्न जगह होगी, कोई आर्थिक खींचतान नहीं होगी और छोटी जगह में बैठकर लिखूँगा और वह अवसर अब सामने है। अशोक से मैंने कहा था, क्यों नहीं गिरिराज को ले लेते? उसे ज़रूरत है। तो उसी नाटकीय अन्दाज़ में बोला, यू नो, ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इज़ नॉट दैट, आई मीन, ही इज़ इन सैकिंड लाइन...मतलब उतना प्रमुख नहीं है। घर आकर मैं अजित को ऊपर ले आया। काफ़ी देर बाद यह समस्या उनके सामने रखी। टिंकू भी थी। न जाने क्यों, इस ऑफ़र को मैं उतनी आसानी से नहीं झाड़ पा रहा हूँ। मन्नू और टिंकू में से कोई भी इसे अभी नहीं सँभाल सकेगी। रंजन पर भी विचार किया। अगर भोपाल की जगह यह ग्वालियर में होता तो ज़्यादा आसान हो जाता। पाँच घंटे का रास्ता है, कभी भी आ जाइए। शनिवार को आइए, सोमवार को वापस। बारह घंटे भोपाल के बहुत होते हैं। शुरू में शायद आऊँ भी, फिर वही अन्तराल। आते-जाते रहकर बीना सँभाल सकती है। सचमुच अगर 'अक्षर' नहीं होता तो मैं शायद फ़ौरन ही इसे स्वीकार कर लेता। वस्तुतः यह मुझे सम्मानजनक भी लगता है और अपने लिए—ख़ासतौर से लिखने के लिए बहुत बड़ी सुविधा भी। अपने को समय देकर एक बार देख लेने में हर्ज क्या है कि आख़िर अब लेखक बचा भी है या नहीं।

मन्नू को अशोक वाजपेयी से कुछ भी लेना बहुत गले नहीं उतर रहा। मैं सोचता हूँ कि क़ायदे से फिर तो अशोक रहेगा कहाँ, यूनिवर्सिटी और मेरे ही सम्बन्ध रहेंगे। इससे अधिक सम्मानजनक ढंग से कोई भी क्या बुलाएगा?...यह भी सही है कि अक्षर के रहते या उसे बनाए रहते हुए यह सम्भव नहीं होगा। क्या अक्षर को बेचा नहीं जा सकता? मैं इस पर भी विचार करने लगा हूँ कि क्यों यहाँ झख मारी जाए। अपने लिखने-पढ़ने की दुनिया में वापस लौटो। बनियाबाज़ी बहुत हुई। हिसाब लगाया—साढ़े तीन-चार लाख या ऊपर दिया जा सकता है। साढ़े तीन में मेरी, मन्नू की रॉयल्टी, और बाज़ार के कर्ज़े और बाक़ी गाड़ी, टेलीफ़ोन इत्यादि...मैंने लालानी से इस बात का ज़िक्र भी किया। 'हंस' पता नहीं, कब निकले। दो साल से तो मिश्रा जी बातें ही किए जा रहे हैं। कल मैंने बीना से बात की। पाँच हज़ार के शेयर ले और डायरेक्टर बनकर बैठ। हफ़्ता-पन्द्रह दिनों में मैं आता-जाता ही रहूँगा। ख़ैर, वह तो अपने को इस लायक़ ही नहीं मानती। बहुत सम्भव भी नहीं लगती।

सब मिलाकर इन कुछ समस्याओं के हल निकल आएँ तो मैं जाने को तैयार हूँ, मन्नू बहुत पक्ष में नहीं है। टिंकू अपना काम करेगी। नए मकान में जाकर मैं अकेली कैसे क्या करूँगी? डेढ़ हज़ार में मैं काम चलाऊँ, हज़ार भेज भी दूँ—फिर भी अकेले रहना! शायद भीतर डर मीता का भी है। उसका वहाँ आना-जाना शुरू हो जाएगा। और यह बात सच भी है!...ज़िन्दगी ने एक अवसर तो लाकर खड़ा कर ही दिया है, अब देखना यही है कि मैं इसका किस तरह से उपयोग करता हूँ...चाहूँ तो यहाँ से तोड़कर एक नई शुरुआत कर सकता हूँ। छोटी जगह, कम परिचय, अकेले रहना...सिर्फ़ लिखो और पढ़ो...

अभी मैं दो-एक दिन पहले ही सोच रहा था कि हम लोगों की ज़िन्दगी में 'घटता' कुछ नहीं है। सिर्फ़ घटे हुए की सूचनाएँ मिलती हैं। 'एक्शन' से कितनी दूर होते चले जा रहे हैं। एक्शन के साथ जुड़ें या उसमें सक्रिय भागीदार हो, यह अब रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं गया है, खुद निर्णय लेकर वही एक्शन पैदा करने की हिम्मत नहीं है; केवल सूचनाओं के धरातल पर ज़िन्दगी गुज़र रही है। इसलिए सब कुछ जैसे सारी दुनिया—कहीं और घटित होती लगती है, हम तो जैसे धुँधली-सी झिल्ली में बन्द किसी धारा पर बेबस बहे चले जा रहे हैं...

8.1.83

नए दिन के बाद सात दिन और गुज़र गए। कुछ भी नहीं किया। यहाँ तक कि पढ़ा भी नहीं। वही पोलिश उपन्यास 'राख और हीरे' समाप्त किया और पसन्द आया। असल में सर्दी ऐसी भयानक है कि घर पर जाते ही या तो 'बलोअर' के सामने बैठे रहो, या रज़ाई-कम्बल ओढ़कर पड़े रहो। घंटों हिम्मत बनाओ तो वॉश-बेसिन या बाथरूम जाने की स्थिति पैदा हो। 2 तारीख़ को यहाँ अक्षर में लड़की के लिए विज्ञापन निकला, और अगले दो-तीन दिनों में पच्चीस-तीस लड़कियों के फ़ोन और एप्लीकेशंस आ गईं। कुछ को देखकर दया भी आती है। पर रखनी तो हमें एक ही है। एक शायद मलिक साहब के यहाँ लग जाए...इधर शर्माजी का रवैया अजीब ठंडा होता चला जा रहा है।

10.1.83

कल रविवार था और मैं बिस्तर से हिला ही नहीं। सुबह बाथरूम की तैयारी करते-करते, चाय-पानी पीते-पीते नौ बज जाते हैं। शेव किया और फिर वापस घुस गए। शाम को कमला नगर गए स्वेटर लेने। दो स्वेटर लाए, एक जाकेट पूरे गले की। मन्नू ने जाकट दिलाई है। 'सारिका' के पैसों से। वह प्रतियोगिता की निर्णायक थी। जब छह बजे टिंकू वापस गई तो इतनी सर्दी में उसे जाते देखकर बड़ी तकलीफ़ हुई। बेचारी दो बसें बदलकर जाएगी। वहाँ पहुँचकर इस तरह के कामों के लिए उसे एक गाड़ी दे दूँगा। रात को 'गृह प्रवेश' देखी। फ़िल्म बहुत अच्छी लगी। इधर दस-बारह दिनों से कोई किताब नहीं उठाई थी। यह सोचकर कि बोर होकर अपने आप कुछ न कुछ लिखने की बात आएगी। मगर कोई आती ही नहीं। सुबह बैठा रहता हूँ, शाम को व्यर्थ अखबार पढ़ता रहता हूँ। कल रात को जल्दी सो गया था। सुबह उठकर जब कुछ भी समझ में नहीं आया तो 'वार एंड पीस' उठा लिया। लगभग एक साल से शीलाजी से माँगकर लाया हूँ। शुरू करने की हिम्मत ही नहीं पड़ रही थी। आख़िर आज शुरू ही कर दिया। पचास पन्ने पढ़ भी लिये। इस भयानक ठंड में और कुछ हो भी नहीं सकता। एक तो साला यह घर ही बेहद ठिठुरता रहता है। रज़ाई छोड़ने से पहले घंटों मानसिक तैयारी करनी पड़ती है। सबसे अधिक ठिठुरते हैं पाँव। आज सुबह बासु से तय हुआ कि शानी के यहाँ जाना है। अभी से ठंड का डर लगा है। पिछले दो दिनों फ़िरोज़ाबाद से डॉ. रामसनेही शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी शोध-छात्रा निर्मल कुमारी जैन को लेकर आए थे। मेरे ऊपर शोध करनी है। लेकिन सारी बातें, टेप, प्रश्न इत्यादि जिस तरीक़े से कर रहे थे कि लगता था, 'शोध' उन्हें ही करनी है। कह भी रहे थे कि चाहे मुझे स्वयं लिखना पड़े, लेकिन मैं हर पंक्ति बहुत गहराई से आपके सन्तोष के अनुसार ही लिखूँगा। कहाँ ठहरे थे, मुझे नहीं पता। कुछ अजीब ही रिश्ता लगा दोनों के बीच। हालाँकि लड़की तो बोल ही नहीं रही थी।

रंजन की यातना...तकलीफ़ होती है। यह लड़का पागल है टिंकू के पीछे। और टिंकू है कि कभी उससे बहुत बन्धुत्व जताती है, कभी जैसे उसे पहचानती ही नहीं। उसी के चक्कर में बेचारा आग में कूदने को तैयार है। पिछले दो-एक दिनों में उसने फ़ोन किया तो रंजन से जैसे बात ही नहीं की। शुक्र को आई तो आते ही किसी राजकिशोर को फ़ोन करने लगी। उससे ढंग से भी नहीं बोली। रंजन का थैला ग्रेटर कैलाश में छूट गया था। टिंकू ने बताया कि खोजने की फुरसत ही नहीं मिली। कटु होकर रंजन ने कहा, "फुरसत या इंटरेस्ट?" कहा कि "इंटरेस्ट नहीं था।" भन्नाकर उसने कहा, "हाँ, इंटरेस्ट भी नहीं था।" पूरे दौरान रंजन ने शायद दो-चार वाक्य बोले और सभी बेहद कटु थे। वह रात को ही जाने की ज़िद कर रहा था। ख़ैर, किसी तरह रोका। सुबह नौ बजे वह राजकिशोर लड़का आ गया। टिंकू उसे लेकर गप्पें लड़ाने बैठ गई। शायद रंजन ने अपने-आपको बेहद उपेक्षित महसूस किया। वह शेव इत्यादि करके चला गया। भन्नाकर गया! रंजन हम लोगों को चाहे कितना पसन्द हो, लगता है, इन दोनों के बीच अब वैसी आत्मीयता आएगी ही नहीं। कहीं कुछ इस तरह चटख और टूट गया है कि जुड़ता ही नहीं। और वह बेचारा इसी उम्मीद पर जिन्दगी ख़राब कर रहा है कि शायद टिंकू का मन बदलेगा। इसमें मैं ज़्यादा ग़लती टिंकू की ही मानता हूँ, वह जिस तरह लड़कों को अपनी तरफ़ खींचकर निकट लाकर फिर झटके से वापस खिंच जाती है, वह बहुत ही स्वार्थी दृष्टिकोण है। वह जैसे इस्तेमाल करती है।

अभी कल तक—दोनों फ़्लैट सजाने के लिए भागदौड़ कर रहे थे, अब अचानक अपरिचित हो उठे हैं। उसकी तकलीफ़ों को मन्नू अतिरिक्त वात्सल्य, आत्मीयता देने की कोशिश करती है, मगर वह घाव तो कहीं और है। पहले मैं भी सोचता था कि शायद धैर्य और समझदारी से कुछ समय बाद टिंकू को वापस लाया जा सकता है। मगर अब सोचता हूँ कि ग़लत होगा। सम्बन्धों का सन्तुलन ही बिगड़ गया है। दोनों साल भर में ही अलग हो जाएँगे। रंजन वस्तुतः बेहद ही सामन्ती पति साबित होगा। वह चाहेगा कि टिंकू न तो किसी से मिले, न बातें करे। वह केवल और केवल रंजन में ही सिमटकर रह जाए। उधर टिंकू को जैसे लोग, पार्टियाँ, बड़े होटल, चमक-दमक, घूमना-फिरना, पिकनिक, सैर-सपाटे पसन्द हैं, वे ख़ास मुझे भी पसन्द नहीं हैं, मगर रंजन की तो नसें चटखा देंगे। इस मामले में दोनों ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़लत हैं। रंजन शर्मा जी की तरह बेहद पॉजेसिव, शक्की और ईर्ष्यालु है। न मैं टिंकू के छिछले, दिखावटी और बौद्धिकता-विरोधी रवैया का समर्थन करता हूँ, न रंजन की संकीर्ण, घोटनेवाली मानसिकता का। मेरे देखते-देखते टिंकू ने सबसे पहले राकेश को जैसे एकदम पटरी से उतार दिया (वही सामने पढ़ने आया लड़का) और उसे धकेलकर रंजन आया तो उसकी भी यही गति हुई। तीन बार आई.ए.एस. में बैठा, न जाने कितने इंटरव्युओं में गया, कुछ नहीं हुआ। और अब उसने सारी उम्मीदें जैसे इस बार के आई.ए.एस. पर अटका दी हैं। मानो यह समझता हो कि जैसे ही वह आई.ए.एस. बना सभी कुछ ठीक हो जाएगा। टिंकू सही रास्ते पर आ जाएगी। और इसी में वह बेहद असामान्य हो गया है। वर्ना इतना संवेदनशील, लिहाज़ी, मेधावी लड़का है। इस छिछली, दिखावटी मूल्यों, चकाचौंध के पीछे दौड़नेवाली लड़की के लिए...अपने-आपको यों बर्बाद करना दया ही उपजाता है। इस मामले में टिंकू सैडिस्ट है। पता नहीं, उसने यह वृत्ति मेरी ली है या मन्नू की ओर से! सारे पुरुषों से बदला ले रही है। लेकिन क्या रंजन अब कभी टिंकू का मन जीत पाएगा? दया के आधार पर पाया हुआ सम्बन्ध हमेशा अपनी को याचक की स्थिति में रखता है। पति होने के बाद जैसे यही आदमी प्रकृति के अनुसार पॉजेसिव होगा कि विवाह टूट जाएगा। बड़ा अजीब हो गया है, सारा खेल...।

12.1.83

आज मीता आ रही है। घर ही रुकेगी। मैं चाहता हूँ, वह गुमनाम समानान्तर में न रहे। वैसे भी अब हम लोगों के सम्बन्ध भी कहाँ रह गए हैं।

13.1.83

कल फ़ोन से पता चला कि आसाम तीन घंटे लेट है, फिर चार बजे। मैं भोलेश्वर के यहाँ बैठा रहा। ठंड बहुत थी। लगता है, मुझे कुछ लगती भी अधिक है। प्राय: ठिठुरता रहता हूँ। दराज़ से रम निकालकर दो पैग मारे, एक भोलेश्वर को दिया। पता नहीं, उसे देकर ग़लत कर रहा हूँ या सही। मगर लगा कपड़े उसके पास भी पूरे नहीं हैं। दस बजे रात को मर जाएगा। पौने नौ के क़रीब पहुँचे। गाड़ी पौने दस पर आई। प्लेटफ़ॉर्म पर ठिठुरते रहे। नई दिल्ली के नए वाले दरवाज़े से गए। फिर मैं पुल पर, जहाँ दोनों तरफ़ के आने-जानेवाले पर निगाह रख सकूँ। खड़ा रहा। पहले गेट पर भोलेश्वर को भी भिजवाया। दो-एक बार इस प्लेटफ़ॉर्म के भी चक्कर लगवाए। कोई नहीं था। यह भी लगता था कि चूक गए तो बेचारी ठंड में कहाँ जाएगी? बहन के यहाँ? बहुत घपला हो जाएगा। ख़ैर, रोते-पीटते पौने ग्यारह तक घर पहुँचे। शायद मन्नू ने मन ही मन कहा भी होगा : हमारा कोई आनेवाला होता तो क्या इस तरह परेशान होते। अपनी 'वह' है न...ख़ैर, बोली नहीं। बल्कि जब पहले मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोलेश्वर को वापस भेज देने को कहा था तो खुद ही आग्रह किया था कि ठंड में आप लोग कैसे आओगे ? रोक लो, भोलेश्वर को। मैंने नाहटा जी से कहकर उसके लिए एक भेंट मँगवा ली थी। अगर पसन्द नहीं आई तो बदलवा लेंगे। खाते ही सो गया। आज रात को देर से लौटे तीसरा दिन था। शाम को यहाँ मुखर्जी आ गया था—सत्य सेवक मुखर्जी...गप्पें लड़ाता रहा।

परसों ग्यारह को विष्णु खरे के यहाँ खाना था। मैं किसी तरह टालना चाहता था। इससे एक दिन पहले शानी के यहाँ हंगामा हो चुका था और हम लोग रात को डेढ़ बजे घर पहुँचे थे। शानी के यहाँ बासु चटर्जी, बासु भट्टाचार्य, प्रबोध मैत्रा थे। वहाँ ओ.पी. मेहरा, उनकी पत्नी थी। हम, मलिक साहब। गाड़ी हमारी थी। भोलेश्वर चालक। फ़िल्मी लोगों को 'कनिष्क' होटल से लिया था। वहाँ बासु भट्टाचार्य ने जो बोलना शुरू किया तो लगातार चार घंटे खुद ही बोलता रहा। इस बीच सुकुमार चटर्जी और चित्रकार भानु पारिख आ गए। भानु से नहीं रहा गया। वह फट पड़ा कि बासु, हमने तुम्हारी फ़िल्में देखी हैं, लेकिन तुम मेरे चित्रों के बारे में कुछ नहीं जानते...और दोनों चिल्ला-चिल्लाकर एक-दूसरे को चुप करने या हराने की कोशिश करते रहे। कभी लगता लड़ाई हो जाएगी। एक बजे रात को इतना शोर...ख़ैर, भट्टाचार्य को साकेत छोड़ा। उस दिन गाड़ी लगभग अस्सी किलोमीटर चली।

फिर अगले दिन विष्णु खरे के यहाँ। जाते हुए तो अरविन्द ले गया, आते समय तय हुआ कि टैक्सी ले लेंगे। शानी परिवार, नामवर, विनोद भारद्वाज, केदार, विजयमोहन सिंह और हम लोग। खरे ने सारी विदेशी शराबें पिलाईं। शुरू हुए जिन से, फिर वोद्का, फिर स्कॉच, फिर रम...इस बदलाव में मलिक साहब उड़ गए। चला नहीं जा रहा था। बार-बार लुढ़क रहे थे। टैक्सी में कुछ ठीक हुए। शानी और विष्णु खरे सहारा देकर लाए थे। बजे तो ग्यारह थे, लेकिन जब उन्होंने मुझे छोड़ा तो मन पर बड़ा बोझ था। घर पर पता नहीं, उठ भी पाएँगे या नहीं! टैक्सीवाला पता नहीं कितने पैसे लेगा ? अगर मैं छोड़ता हूँ तो टैक्सी के पैसे मुझे देने पड़ेंगे—पचास से कम क्या होंगे ? फिर मलिक साहब के परिवारवालों को सौंपना और कहे-अनकहे आरोप झेलना। बहुत अपराधी महसूस करता रहा। अगले दिन भी मैं नेशनल में। सुरेन्द्रजी ने मलिक साहब को अकेला ही नहीं छोड़ा...भूषण और आ खड़ा हुआ। हो सकता है, उन्हें अपना काम रहा हो, मगर मुझे यही लगा जैसे कह रहे हों, आपने हमारे बाप को बहुत बिगाड़ा है। बहुत हुआ, अब नहीं होगा। यह सही बात है कि मलिक साहब के सारे घरवाले कहीं मेरे बहुत ख़िलाफ़ होंगे। जब से इनका साथ हुआ है, मलिक साहब बिगड़े हैं। पहले कभी छठे-छमाही पी लिया, अब तो हर महीने दो-चार बार धुत होकर आते हैं। जैसे मन्नू, शानी को लेकर मेरे बारे में कहती है। हो सकता है, वे यह भी सोचते हों कि मैं इस तरह पिलाकर उनसे अपने लिए विशेष सुविधाएँ या रुपया, या कुछ और लेता हूँ। वर्ना वे तो मुझे, दो दिनों में ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दें। जो काम जवानी में नहीं किया, वह अब बुढ़ापे में कर रहे हैं। हो सकता है, इससे पत्नी, लड़कों की निगाह में उनकी साख को भी गिराए। वे उनका कहना कम मानें। यह तय है कि मेरे सम्बन्ध में अगर वे कोई भी बात कहेंगे तो उसका कहा-अनकहा विरोध होगा। राजेन्द्र जी ने तो शराब पिला-पिलाकर इन्हें पटा रखा है, इसलिए ये उनकी ही बात कहेंगे। 'शर्म नहीं आती, बेटों को काटकर उनका फ़ायदा देख रहे हैं। आपको रोज़ शराब जो पिलाते हैं। आप तो उनकी-सी ही कहेंगे...' यह या ऐसे ही वाक्य...।

आज सुबह मिश्रा जी को भी मैंने 'प्रेमचन्द चेयरवाली' बात बता दी।

15.1.83

कल मीता का तार मिला कि आना स्थगित है। ख़ैर, अब कोई अर्थ नहीं है। जो भुगतना था, हो गया। ठंड ज़रा भी कम नहीं हो रही, बल्कि लगता है, बढ़ती ही जा रही है, हर चीज़ को स्थगित करते जाने की मानसिकता को बढ़ावा देती। इधर मुझे चार-पाँच महीनों से यह भी लगता है कि मैं बारह बजे से सात-आठ बजे तक का समय यहाँ क्यों ख़राब करता हूँ? कुछ भी तो नहीं होता। कभी-कभी न कोई व्यक्ति होता है, न काम। पढ़ता-लिखता यहाँ तक कि सोचता भी नहीं हूँ। सिर्फ़ बैठा रहता हूँ। मूर्ति की तरह...बाहरवालों को लगता होगा जैसे अपनी माँद में एक मकड़ा बैठा है, चुप और बुत बना हुआ, शिकार की तलाश में चौकस और सन्नद्ध...।

कल फ़ोन किया था सुधीर को...उसने बताया कि सत्ते यहाँ है। रविवार से। साउथ-एक्स के किसी गोविल के यहाँ ठहरा है। परसों सुधीर के पास भी गया था और रणजीत के पास भी। उसने न मुझे सम्पर्क किया, न फ़ोन। धक्का लगा, यह इसे क्या हो गया है, भूपेन्द्र, हेमेन्द्र, माधवी मुझसे सभी से लड़ा हुआ है और कट गया है। इस महा भयानक ठंड में कहाँ रहता है, क्या करता है, कैसे खाता-पीता है, कुछ भी नहीं मालूम। आज सुमन आई थी और मैं उसे यही बता रहा था कि मान लो, हौजख़ास में गैरेज के ऊपरवाले एक कमरे में इसकी व्यवस्था भी की जाए तो एक तो धीरे-धीरे वही हमारे फ़्लैट में ही आ जाएगा। क्योंकि स्वाभाविक रूप से यहीं ज़्यादा व्यवस्था, सुविधा और आराम होगा। पैसे ले तो हकबकाकर हमारी ज़िन्दगी हराम करेगा, फिर चौबीस घंटे, इस सन्देह और शंका से मरता रहेगा कि मालूम नहीं, किस स्वार्थ से उसे बुलाया है, मेरे पैसों और चीज़ों पर निगाह है।...इस सबके बावजूद मैं चाहता हूँ कि बुढ़ापे में उसे आराम मिले। ट्रैजेडी यह है कि उसकी भौतिक ज़रूरतों और मानसिक बनावट को मुझसे अधिक कोई नहीं जानता। मैं उसकी शक्ति भी जानता हूँ और असफलताएँ, अक्षमताएँ भी। मन में कसक और आशंका भी है, उसने बहुत सज़ा पा ली, अब उसे आराम मिलना चाहिए? कब तक भटकेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

18.1.83

पिछले दिनों राजी सेठ का उपन्यास 'तत्सम' पढ़ा। अभी तो उसकी महीन कताई, बारीक बयानी और अभिव्यक्ति क्षमता पर ही मुग्ध हूँ। बड़ी नाज़ुक-सी थीम ली है। वसुधा विधवा है—युवा,सुन्दर। यूथ फैस्टिवल में उसकी मुलाक़ात होती है विवेक से। दोनों एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। लेकिन दोनों अपनी-अपनी जगह खड़े हैं, जड़ हैं। वसुधा अपने पति दिवंगत निखिल को लेकर और विवेक विदेशी प्रेमिका को लेकर। दोनों आकर्षित महसूस करते हैं, अपनी-अपनी जगहों से हिलते हैं। वसुधा के ऊपर दबाव और आग्रह है कि फिर विवाह कर ले। लेकिन विवेक अपने-आपमें ही इतना सन्तुष्ट है कि हिल नहीं पाता। दूसरी बार जब दिल्ली आने की स्थिति पैदा होती है तो वसुधा बचती है, मगर जाना पड़ता है। फिर विवेक से भेंट होती है, वह घर खाना खाने बुलाता है, मगर लेने नहीं आता। चंडीगढ़ या कहीं और भाग जाता है। वसुधा अपने पुराने प्रसंग से उबर आई है, विवेक नहीं, लौटता है। फिर खिन्न, हताश वसुधा दक्षिण की यात्रा पर निकलती है। वहाँ बीमार पड़ जाती है और उसकी देखभाल करता है, आनन्द। धीरे-धीरे आनन्द बहुत निकट आ जाता है। वसुधा जैसे उसे पा लेती है। वहाँ से लौटकर मिलते हैं विवेक के पत्र। अपनी पहली मन:स्थिति स्पष्ट करते हुए वह प्रस्ताव करता है। वसुधा द्वन्द्व में है। अन्ततः तय करती है कि विवेक उसे जड़ता से, निखिल के बन्धन से निकालकर बाहर लानेवाला साधन, माध्यम और पुल था। यात्रा तो उसे आनन्द के साथ ही करनी है। और वह उसी आशय का पत्र लिखती है। कहानी वसुधा की है, अन्धे कुएँ से निकलकर बाहर आने की। मुक्त होने की युक्तियों और आनन्द के वरण की। इस स्तर पर वहीं नाम भी प्रतीक बन जाते हैं। इस कहानी को राजी ने जैसी ख़ूबसूरती, काव्यात्मक भाषा और सूक्तियों में लिखा है, उसे पढ़ना और उसमें रस लेना अपने-आपमें एक अनुभव है। हो सकता है, यह भाषा गद्य की न हो और एक-एक पंक्ति को सुन्दर कविता की पंक्ति की तरह पढ़ना सरस लगता हो। मगर राजी ने उपन्यास किसी बड़ी कविता की तरह ही सुन्दर लिखा है।

21.1.83

राजी का उपन्यास पढ़ने के बाद अपना सोचना, लिखना और यहाँ तक कि चीज़ों, व्यक्तियों या अपने-आपको देखना तक बड़ा स्थूल और सतही लगता है। भर्त्सना या धिक्कार ही मन में उठता है कि इतनी गहराई, लगाव और अहसास के साथ मेरी निगाह क्यों नहीं अनुभव को तराश पाती! हालाँकि पढ़ते हुए मन्नू बहुत झुँझला रही है कि ऐसी बारीकी और हवाई पच्चीकारी भी किस काम की कि सारे दिन में पच्चीस पन्ने भी न पढ़े जाएँ। मगर एक रचना से गुज़रने के बाद आप जो कुछ चाहते थे, बाद में वही नहीं रह जाते, अगर यह बात सही हो तो अस्थायी रूप से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तत्सम' ने मेरे साथ यही किया है। दूसरी रचना जिससे ऐसी आशंका होती है, निश्चय ही 'वार एंड पीस' होने जा रही है। अभी तक तो कुल 140 पन्ने ही पढ़े हैं, लेकिन हर स्वर किसी उस्ताद का है, यह अहसास एक-एक शब्द पर होता है। आन्द्रे लड़ाई में जा रहा है और अपने निहायत ही नियम-क़ायदे से रहनेवाले बाप के पास आया है गाँव। पत्नी लीज़ा को भी यहीं छोड़ना है। लीज़ा बेहद ख़ूबसूरत और प्यारी लड़की है, मगर पति-पत्नी के बीच कहीं कुछ है कि दोनों प्रसन्न नहीं हैं। बाप अपने कमरों और सुनिश्चित दिनचर्या में क़ैद है, बेटे के आने और जाने पर न कहीं अतिरिक्त भावुक होता है और न ही अपनी दिनचर्या में अन्तर आने देता है। जाते हुए भी यही कहता है कि हो सकता है, तुम लौट आओ, और हो सकता है, युद्ध में मारे जाओ। दोनों हालतों में यह मत भूलना कि तुम किसके बेटे हो...। उस समय के दोनों के वार्तालाप इतने सधे हुए हैं कि सामने आ खड़े होते हैं...।

22.1.83

परसों यानी 20 को सुबह साढ़े चार बजे मैं और भोलेश्वर दोनों रंजन को टाटा में बैठा आए। कई दिनों से टल रहा था। आख़िर हम लोगों ने तय किया कि एक बार पैसों के लिए रंजन को शिकोहाबाद भेजा जाए। 'अक्षर' के पक्ष में दिल्ली कोर्ट का फ़ैसला और कुर्की दोनों हैं। आशंका थी कि पता नहीं छोटी जगह के कोर्ट इत्यादि को सँभाल भी पाएगा या नहीं, क्योंकि पहले मैनपुरी जाना वहाँ से ऑर्डर लेकर इन लोगों से पैसे वसूल करना। यानी इन लोगों को सँभालना। हालाँकि मीता को मैंने लिख दिया था, यह भी कह दिया था कि एक दिन शरण देनी पड़ सकती है। मगर मसला नाज़ुक था। जिनके ख़िलाफ़ कुर्की है, उन्हीं के यहाँ ठहरना, मीता के लिए परेशानी ही पैदा करेगा। लोग पता नहीं बाद में क्या कहें! ख़ैर, गया। कल सुबह उठा तो मालूम हुआ कि रात में डेढ़-दो बजे आ भी गया है। मैं उत्सुक था कि वहाँ क्या हुआ। ख़ैर, उठा। पता चला कि डी.एम. भी नहीं था और सब लोगों से मिल भी लिया। इसकी रीडिंग थी कि पैसा मिल जाएगा। हालाँकि डी.एम. ने रविवार को फ़ोन करने को कहा है और उस समय वह वहीं होगा। मैं उत्सुक था यह जानने को कि मीता उसे कैसी लगी? उसका व्यवहार कैसा था, बहुत रुखा तो नहीं था? आख़िर पूछ ही लिया। बताया, पहले तो बड़ा रिज़र्व्ड-सा था। स्वाभाविक भी था, क्योंकि कॉलेज में भेंट हुई थी। जब म्यूनिसीपैलिटी गया तो उन्होंने बताया कि जो भी बात हो, बताना। खाने के लिए भी कहा था। बाद में व्यवहार वॉर्म हो गया। ज़बर्दस्ती दो-तीन बार खाना देकर आग्रह किया। व्यक्तिगत बातें कम हुईं।...आज रंजन शायद धनबाद चला गया होगा। किसी दोस्त के साथ कार से गया है, बनारस से ट्रेन लेगा। जाते हुए दुखी था कि वहाँ आख़िर करूँगा भी क्या? बोर ही होना है।...लड़के पर दया आती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

28.1.83

'वार एंड पीस' में ही लगा हूँ। पिछले दिनों साजिद आया था। वही हीरे के टॉप्स लिये हुए। एक दिन हम लोग कनॉट प्लेस भी गए। मालूम हुआ कि साठ-सत्तर के बीच ही क़ीमत लग रही है। इन टॉप्स को लेकर मुझे शक है। कहता तो अपनी ताई के हैं, जिन्हें कोकीन खाने की आदत पड़ गई है और उन्होंने अपनी करोड़ की जायदाद इसी में फूँक दी है। उन्हीं के टॉप्स हैं। हीरे हल्के-पीले हैं। सौलिटियर हैं और दोनों मिलकर तीन कैरेट, चौवन सैंट्स के हैं। मज़ाक़ में मैंने शानी के सामने कह भी दिया कि ताई-वाई तो ठीक है, असली बात बता कि कहाँ के चोरी के हैं। हो सकता है, डकैत लोग तेरे ही ज़रिए माल बिकवा रहे हैं। आज शानी ने भी कहा कि यह जो चीज़ें ला रहा है, इसमें हम फँस न जाएँ। इसके बारे में आठ-दस साल की जान-पहचान, उठने-बैठने के बावजूद कुछ भी नहीं जानते हैं। मैंने कहा कि चार साल से तो मैं जानता हूँ। बीसियों बार उठे-बैठे हैं, मगर जानता उतना ही हूँ जितना तुम। एक तो आज तक यह पता नहीं लगा कि साला करता क्या है? किसी नए प्रोजेक्ट में लगा हुआ है, ऐसा बताता है। पहले पानी ऊपर चढ़ाने का बूस्टर पम्प जापान से मँगा रहा था। अब पता लगा, टूथपिक बनाने का प्लांट लगा रहा है। कभी कहता है, अलीगढ़ में मोटर-पाट्र्स की फ़ैक्टरी है; कभी कहता है, बिल्डिंगों में लगाने के कब्ज़े, कुंडे, हत्थे बनते हैं। पहले दो साल तक उसके घर का बाथरूम ही बनता रहा, इसलिए घर नहीं दिखाया कि सारा घर खुदा पड़ा है तो इधर फ़ैक्टरी का शेड बन रहा है। कभी अचानक बम्बई चले जाने की बात करता है तो कभी काठमांडू।

एक कोई यहाँ न्यू राजेन्द्र नगर में कोई शर्माजी हैं—जो इसे बेटे की तरह मानते हैं, उनके साथ मिलकर कम्पनी बनाई है—आर.टी.एस.। पहले 'हमदर्द' में किसी को अक्सर फ़ोन करता रहता था। एक लड़की को या कभी एक साहब को। अब मुझे पता ही नहीं लगता कि साला चोरी का माल बेचता है या स्मगलिंग करता है या जासूस है। क्योंकि जिस ढंग से पैसा ख़र्च करता है उतना लगता नहीं है। शर्माजी इत्यादि वाली बात बकवास लगती है। बातें तो उसकी सभी झूठ लगती हैं। आज शानी ने जब ऐसी शंका जताई और कहा कि सलमा भी कह रही थी कि कहीं फँसा न दे। अब शानी की इस बात के पीछे हो सकता है, उस दिन की खुंदक हो! हो सकता है, वह सब हो जो उसने मुझसे शानी और मधु के सम्बन्धों को लेकर कहा था कि यह पचास साल का बुड्ढा होकर जिस तरह मधु के साथ खिलवाड़ कर रहा है, वह इसे भयानक संकट में डालेगा! लड़की को तो कन्फ़र्म होना है, पकड़ लिये गए तो इन पर 'वो' जूते पड़ेंगे कि सब भूल जाएँगे। मुझसे कह रहा था कि मैं बातें करूँ, वह नहीं करेगा। मुझे लगता है, उसने की हैं और शानी को वे बातें चुभ गई हैं। अब वह साला हीरे मेरे पास छोड़ गया है और मैं शंकित हो उठा हूँ। पहले शायद शानी के यहाँ छोड़ गया था। पता नहीं, यह क्या चीज़ हैं साजिद उर्फ़ मुहम्मद तारिक़...।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24 यानी सोमवार को मैं मिला था मिश्रा जी से। तय हुआ कि पहले साढ़े ग्यारह बजे मिलेंगे फिर शाम को लक्ष्मण टंडन के यहाँ जाएँगे। सुबह कोई ख़ास बात नहीं हुई। इस कमरे के किराए के बारे में बात हुई। बोले, पत्रिका निकलेगी तो यह हिसाब प्रारम्भिक ख़र्चों में चला जाएगा, वर्ना हिसाब कर ही देंगे। शाम को मैं भोलेश्वर को लेकर गया। मिश्रा जी को लेकर लाजपत नगर, 'अलंकार' के पास लक्ष्मण टंडन के यहाँ कुछ देर हो गई थी। फिर भी सात तक पहुँच गए। वहीं 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' का भार्गव भी था। वे लोग नए सिरे से पत्रिका का चरित्र, क्षेत्र इत्यादि पर बातें करने लगे। विज्ञापन वाले इन लोगों के हिसाब से चलें तो हल्की-फुल्की औरतों की पत्रिका निकालनी चाहिए, क्योंकि उपभोक्ता सामग्री के विज्ञापन उसी में सबसे अधिक मिल सकते हैं। यही मनोवैज्ञानिक लड़ाई चल रही थी कि मैं कहानी की पत्रिका का आग्रह कर रहा था और वह उसमें कुछ ऐसी सामग्री डालने की बात भी कह रहे थे जो पत्रिका को 'उपयोगी' बना सके। पहले शुभेन मुखर्जी बता रहा था कि खेलों, नवयुवकों के मतलब की चीज़ें हों और इनका ज़ोर है कि औरतों की पत्रिका हो। इनके हिसाब से 'मनोरमा' और 'गृहशोभा' आदर्श हैं। ख़ैर, मैं भी सोचता हूँ कि अभी कोई रिजिड स्टैंड न लूँ। एक बार पत्रिका शुरू हो तो देखेंगे। उनके हिसाब से जैसी पत्रिका की बात मैं सोचता हूँ, उसे जमने में तीन-साढ़े तीन साल लगेंगे। मैंने कह दिया कि इतने समय के लिए हम तैयार हैं। मिश्रा जी, चुप लगभग न बोलते हुए सुन रहे थे। दौर रम का था। चलते हुए मिश्रा जी ने कहा कि मैं कल सुशील को भेज दूँगा। आप कॉस्ट के लिए एक-एक आइटम लिख लीजिए—वह सूचनाएँ जमा कर लेगा। अगले दिन सुशील के आने की बात हुई। लगभग 9 बजे हम लोग उठे। मैंने मिश्रा जी को सर्वप्रिय विहार छोड़ा। पौने दस बजे घर पहुँचे। अगले दिन सुशील नहीं आया। कल मिश्रा जी से बातें हुईं। एक तो मैंने उन्हें घर आने का निमंत्रण दिया। शादी के बाद उनको आना भी है, यह कहकर। फिर सोचा, लक्ष्मण को भी बुला लेंगे। सुशील आज आया। उसे मैंने सारी बातें बता दीं और आग्रह किया कि तीन-चार तारीख़ तक दे दे, ताकि पाँच को जब हम मिलें तो काग़ज़ हाथ में हों।...अब तो यह पत्रिका की बात न उत्तेजित करती है, न उद्वेलित। गुस्सा भी नहीं आता। जैसे चल रही है, तो चल रही है। जब होगा तो पूरी हो जाएगी।

29.1.83

'वार एंड पीस' के महीन-महीन बड़े साइज़ के लगभग पाँच सौ पन्ने पढ़ लिये हैं। सच पूछा जाए तो कहीं भीतर हलकी-सी निराशा या डिस-एपॉइंटमेंट है। अभी तक ऐसा कुछ भी नहीं मिला है जो दूसरे रूसी या खुद टॉल्स्टॉय के ही उपन्यासों से भिन्न या श्रेष्ठ हो। हो सकता है, दो-ढाई सौ पन्नों में नेपोलियन के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूसी सेनाओं की लड़ाई के दृश्य रहे हों जो किसी और ने नहीं दिये। अभी तो 1910 के आसपास का समय है। पियरे ने अपनी अपूर्व सुन्दर पत्नी एलिस के साथ समझौता करके उसे अपने पास बुला लिया है और खुद फ्री-मैसन सोसायटी के उद्देश्यों, आदर्शों के प्रचार-प्रसार में लगा है। प्रिंस एंद्रीएव, बॉल्कोन्वस्की अपनी पत्नी की मृत्यु से उबरकर अपनी जायदादों के भूदासों को मुक्त कर चुका है, अस्पताल, स्कूल बनवा चुका है और मिलिटरी के रूल्स-रेगुलेशंस ठीक करने में लगने के बाद नताशा के प्रेम में पड़ गया है। नताशा उसे ज़ार की पार्टी में दुबारा मिली है। बोरिस की ओर से ठंडापन पाकर वह भी एन्द्रीएव के प्रेम के प्रति उन्मुख ही है। अब आगे देखता हूँ।

कल शानी का फ़ोन आया, ज़रूरी काम है और आज ही मिलना है। आया तो फिर साजिद : मैं तुम्हारी मदद चाहता हूँ। बताया कि मैं जब भोपाल में था तो साजिद घर गया था। शाम को बैठकर अकेला पीता रहा। इस बात को न सलमा ने पसन्द किया, न सूफ़िया ने। जो कुछ शानी ने बताया उससे लगता है, जैसे वह साजिद से आजिज़ आ गया है। आठ-नौ साल के परिचय के बावजूद आज तक नहीं पता कि यह साला करता क्या है, अलीगढ़ में रहता कहाँ है और इसके पास ये अन्धाधुंध पैसे कहाँ से आते हैं। कभी वहाँ मोटर पार्ट्स की फ़ैक्टरी की बात करता है, कभी कब्ज़े-चटखनियों की फ़ैक्टरी की। आज तक कभी किसी को घर नहीं ले गया। पहले जापान से बूस्टर पम्प की मशीनें आ रही थीं, अब मालूम हुआ कि दाँत कुरेदने के टूथ-प्रिक आ रही हैं। असल में सारी चीज़ें जैसे चरम पर आ गईं इस हीरे वाली घटना से। सलमा भाभी ने भी कहा, पता नहीं कब हमें कहाँ फँसा दे, कल को कुछ हो तो दिल्ली में हम कहाँ भागे-भागे फिरेंगे...इसके अलावा शानी अब फ़िल्मों में कोशिश करने जा रहा है—बम्बई। महीना या ज़रूरत पड़ने पर ज़्यादा भी वहाँ रहेगा। वह नहीं चाहता कि यह हर तीसरे दिन वहाँ रखा रहे और घर को दारूख़ाना बना दे...प्रत्याशा हर चीज़ की करता है, टूथ-ब्रश से लेकर पाजामा भी दीजिए। दस-ग्यारह बजे तक उठेंगे, चाय, नाश्ता, तर खाना...रात को बारह बजे भी पहुँचे तो भाभीजी जागकर खाना गरम करें...गोश्त तो चाहिए ही...फिर सोफ़े पर भाभीजी सोएँ, एक चारपाई इनकी सेवा में। कहता है कि हमें तो ऐसा लगता है, जैसे इस्तेमाल किया जा रहा है।...यह मामला साफ़ होना चाहिए। तुम मेरी मदद करो, शानी का बार-बार कहना यही है।...मैं देर तक सोचता रहा कि यह कौन-सा सुर बोल रहा है? साजिद ने शानी के लिए एक दूसरे धरातल पर शिकायत की थी। मधु को लेकर। क्या उसने शानी से भी मधु को लेकर कुछ कहा है? या शानी के भीतर क़ाज़ी अब्दुल सत्तार वाली बात, उस शाम का हादसा चुभ रहा है। यह सही है कि साजिद झूठ तो बहुत बोलता है कल या आज उसका फ़ोन आना चाहिए था कि मुझे शिकोहाबाद जाना है या नहीं। उसे भी साथ लेकर जाने की बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4.2.83

इस बीच मैं जयपुर हो आया। लक्ष्मीनारायण जी अपनी मेटाडोर में आए थे। हरि भी था। मुझे जूता लेना था। हम लोग 1 फरवरी को सुबह निकले और मादीपुर इत्यादि रुकते-रुकाते जा पहुँचे जयपुर। उसी दिन शाम को मैं श्रीमती रांगेय राघव के घर गया। माधवी और लक्ष्मीनारायण एक शादी में जाते हुए मुझे छोड़ गए। सुलोचना जी की तबीयत खराब थी। उनकी लड़की सीमांतनी कनोड़िया कॉलेज में अंग्रेज़ी पढ़ाने लगी है। बातें शुरू हुईं और आगरे के 'रांगेय राघव' पर्व से प्रारम्भ होकर जाने कहाँ-कहाँ भटकते फिरे। पता लगा कि रांगेय राघव ग्रन्थावली में 'किताब महल' ने उनकी किताबें दे दीं, राजपाल ने पुरानी किताबें रॉयल्टी पर कर दीं। सबसे अधिक कष्ट दिया चौधरी ने। उसने साढ़े सात हज़ार लेकर ही अपनी पुस्तकें शामिल करने को दीं। अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, शिवानी और मेरी रॉयल्टी सुनकर उन्हें आश्चर्य ही हुआ। मैं सचमुच यह महसूस करता हूँ कि उनकी रॉयल्टी इसकी आधी तो होनी ही चाहिए। अपने लेख की बातें कीं 'औरों के बहाने' वाले की। बताया कि यह पहली बार पढ़कर बुरा लगा, दूसरी बार लगा कि इतना बुरा नहीं है, तीसरी बार अच्छा लगा। यही सीमांतनी ने भी बताया। रात के समय बेहद ठंड पड़ रही थी। बर्फ़ानी हवा बाहर तेज़। अगर अपनी तरफ़ से जाऊँ तो मील भर पैदल चलना पड़े। नौ बजे लक्ष्मीनारायण जी आकर ले गए। रात के एकान्त में उन दोनों माँ-बेटी के पास बैठकर—उनके पूर्व पति या एक महान व्यक्ति के बारे में चर्चा करना किसी कोमल, पवित्र या रक्षणीय पर ग़लत पाँव न पड़ जाए, इसके लिए चौकन्ना रहना और उस स्मृतियों के माहौल में होना बड़ी अजीब, उदात्त और क्लासिक अनुभूति देता रहा, आज भी दे रहा है। बाद में अच्छा लगता रहा कि यह मिलना बहुत दिनों से उधार था, आज एक मर्यादा के साथ पूरा हुआ। शायद आत्मीयता का एक और सूत्र बँधा। हाँ, मुझे लिखना-बोलना तो है उनकी कहानियों पर। कुछ कहानियाँ लाया। वे समाजशास्त्र पढ़ाती हैं, उपन्यास और समाजशास्त्र पर उन्होंने काफ़ी लिखा है, उनकी थीसिस भी है, उसके कुछ ऑफ़ प्रिंट्स भी लाया।

जयपुर वालों ने जो कैलिपर बनाया है, वह बकवास है। मुझे लेना नहीं था, इसलिए पैसे वापस लेने की व्यवस्था की। माधवी ने यह पैसे दिये और मैं तीन बजे की बस से चलकर नौ बजे दिल्ली आया। कल यानी बृहस्पतिवार 3 फरवरी को साजिद अपने हीरे के टॉप्स ले गया। मना कर गया कि मैं शानी को न बताऊँ। शानी शाम को आया। मैं, मलिक साहब और शानी तीनों बैठे और वही साजिद प्रसंग आया। शानी ने अपने किसी दोस्त के हवाले से (शायद शाहिद माहली के भाई) बताया वह इंटेलिजेंस में काम करता है और बताता है कि इसका नाम तो पुलिस में है। ख़ैर, मैंने यह नहीं बताया कि सुबह आकर वह अपने टॉप्स ले गया है। बेकार शानी और भी भड़कता। अगर उन्हें आपस में लड़ना है तो अपने ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कारणों से लड़े, मैं क्यों आग में घी डालूँ ? या मेरे कारण क्यों उनमें आपस में दुश्मनी हो ? कल अगर वे बैठकर मिल जाएँगे तो मेरी स्थिति क्या बनेगी ?

10.2.83

पाँच तारीख़ को मिश्रा जी, बबली, शर्मा-शर्मी, लक्ष्मण टंडन, उनकी पत्नी इत्यादि आए थे—घर। एक तरह मिश्रा जी के विवाह के बाद साथ उठना-बैठना था। सुशील लूनिया ने अभी तक कॉस्ट को लेकर सूचनाएँ नहीं दी हैं। लक्ष्मण को मिश्रा जी कुछ काग़ज़ भेजनेवाले थे, वे भी नहीं भेजे हैं। परसों मैंने फ़ोन किया था। 'अक्षर' के कमरे के किराए के बारे में भी बातें कीं तो बोले, मेरी तबीयत ख़राब हो गई थी। इस बारे में फिर बात करूँगा। आज फ़ोन किया तो बताया कि सुशील ने सूचनाएँ तो जमा कर ली हैं, आज टाइप की जाएँगी। किराया अभी डिस्कस नहीं किया है। दो-एक दिन में तबीयत ठीक हो जाएगी तो सब करता हूँ।

पिछले दिनों 'वार एंड पीस' के बीच में हूँ। बढ़ती उम्र की मार्या, कुमारी और कुंठित झक्की बाप, फ्रेंच काउंटेस (शायद ब्रूनी) के यहाँ आई है—नताशा रुस्टोव, प्रिंस एन्द्री की मंगेतर नाटक में जाती है और पियरे की पत्नी एलिन के भाई अनातोले की आसक्ति में पड़ जाती है। एक तरह एन्द्री के प्रति सारी भावनाएँ समाप्त करके। इस हिस्से को टॉल्स्टॉय ने बेहद ख़ूबसूरती से लिखा है। नताशा, अनातोले के साथ भागने का प्रोग्राम बना लेती है, इसे ताड़ जाती है सोन्या और वह मेज़बान को ख़बर कर देती है। सारा प्रोग्राम ठिस हो जाता है। नताशा को शर्म और लांछना का सामना करना पड़ता है। पियरे उसे समझाता है, घर जाकर एलिन और अनातोले दोनों को डाँटता है और अनातोले को भगा देता है। उधर एन्द्री लौटता है और इस स्थिति से बौखला जाता है। द्वन्द्व के लिए अनातोले को खोजता फिरता है। घर में दो दल हैं, एक में है मार्या, एन्द्रीवा बिना माँ-बाप का लड़का और उधर है झक्की बाप—फ्रेंच ब्रूनी। इस सबसे क्षुब्ध होकर वह लड़ाई में पहुँचता है। नेपोलियन ने रूस पर हमला कर दिया है। मैंने लगातार 700 पन्ने पढ़ लिए हैं। इधर जीतेन्द्र के आने से पढ़ने में बाधा पड़ रही है।

उधर मुझे मेरठ के सेमिनार के लिए उपन्यास पर लिखना है, आगरे के लिए रांगेय राघव पर।

14.2.83

परसों और कल साहिबाबाद में 'जनवादी लेखक संघ' की ओर से विचार-गोष्ठी थी—'विचारधारा और कलात्मक अभिव्यक्ति'—जानकी प्रसाद, कर्णसिंह चौहान, चंचल चौहान इत्यादि मेटाडोर लेकर नौ बजे आ गए। फिर हम, डॉ. महादेव साहब आदि को लेते हुए साहिबाबाद पहुँचे। कॉलेज वाले पिछले नौ वर्षों से प्रगतिशील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक सम्मेलन कर रहे हैं। दो दिनों का। अब से वह 'जनवादी' होकर जाना जाएगा। वही धुआँधार भाषण सुने। क़ाज़ी अब्दुल सत्तार भी आए थे। मैंने देखा, लड़के काफ़ी तेज़ हैं और एक बौद्धिक स्तर रखकर बोलते हैं। कुछ ने अपनी वही कठमुल्लाइन पकड़ी और कुछ ने उदार होकर बातें कीं। रात को कहानियाँ सुनीं। और इस तरह साढ़े नौ-दस पर घर लगे। कल मन्नू को साथ लिया और अपनी ही गाड़ी से पहुँचे। पहले दिन मैं प्रायः नहीं ही बोला। कहानियों पर अपनी प्रतिक्रिया दी और शुरू में थोड़ा-सा बोला। आज बोलना था और कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि बोलना क्या है? कोई चीज़ साफ़ ही नहीं थी। सच पूछा जाए तो मैं बोलने से डरता हूँ। लोग कैसे घंटों बोलते रहते हैं। मैं आधी बातें भूल जाता हूँ और आधी गड़बड़ हो जाती हैं। अगर कोई पाइंट हो तो दस-पन्द्रह मिनट में ख़त्म हो जाता है। तब समझ में नहीं आता कि आगे क्या बोला जाए। बात चूँकि साफ़ नहीं होती इसलिए पॉइंट भी नहीं लिख पाता। एकाध बार पॉइंट्स लिखे भी तो उन्हें देखने का मौक़ा नहीं मिलता।

जब किसी को अच्छा बोलते हुए सुनता हूँ तो भीतर बेहद हीनता महसूस होती है कि देखो, किस तरह एक के बाद एक पॉइंट लेता चला जा रहा है! शायद बाद में इसे वह कचोट नहीं होगी कि अच्छी बातें उस समय याद ही नहीं आईं। कर्णसिंह चौहान, डॉ. ग्रेवाल, चंचल, राजकुमार शर्मा सभी बेहद आत्मविश्वास से पूरा-पूरा बोले। मुझे लोग बड़ा लेखक मानते हैं, मेरी बात सुनने को उत्सुक रहते हैं, शान्ति और एकाग्रता से सुनते हैं और मैं दस-पन्द्रह मिनट में ही 'फुस्स' हो जाता हूँ। जो बुलाता है, ख़र्च करता है वह आधा-पौन घंटा तो सुनना ही चाहता है, इतना ही बोलने की अपेक्षा रखता है। इतना कम बोलने पर शायद 'चीटेड' महसूस करता है। यह गिल्ट अपराधबोध मुझे कई दिनों कचोटता रहता है और अगले आयोजन की धड़कन बन जाता है। आगे मेरठ और आगरा को लेकर मैं फिर आशंका से भरा हूँ। ख़ैर, गोष्ठी लम्बी खिंच रही थी इसलिए बीच में खाना हुआ और चार बजे मैं बोला। सभी लोगों ने विचारधारा की बात कही थी। कुछ तो बोलना ही था। अलग, मौलिक और गहरा भी बोलना था। लगता था, जैसे सारा समारोह पहले दिन से मुझे ही सुनने को उत्सुक था।

सारा आयोजन चूँकि हज़ारीप्रसाद द्विवेदी व्याख्यान-माला के नाम से था, इसलिए वहीं से मैंने बात शुरू की। श्रद्धांजलि सभा की बात। जहाँ उनकी पुत्री ने भी सिर्फ़ एक वाक्य बोलकर सबको हिला दिया था : "मैं नहीं जानती कि दूसरा जन्म होता है या नहीं, फिर भी अगर दूसरा जन्म हो तो मेरी आकांक्षा है कि उन्हीं की पुत्री बनकर पैदा होऊँ...।" यह तकलीफ़ से, ईमानदार तकलीफ़ से जन्मी बात है, इसलिए सबको छू गई। मुझे नहीं पता इसमें कला है या नहीं, विचार है या नहीं। मगर ऐसी ही तकलीफ़ से ईमानदार बात अपनी कला खुद तलाश कर लेती है। यही साहित्य है। विचारधारा की लेखक को कोई ज़रूरत नहीं है। विचारधारा इतनी साफ़ कटी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
छँटी इकहरी होती है कि रचना को भी वैसा ही इकहरा और सपाट बना देती है। उसे सबसे बड़ी ज़रूरत है विश्वसनीयता की। पाठक को लगे तो सही कि जो बात कही जा रही है, वह विश्वसनीय है। तभी तो वह मेरा अपना भी अनुभव बनेगी—'रुट्स' में नीग्रो परिवार की छह पीढ़ियों की कहानी है। बेहद रिसर्च करके प्रामाणिकता से लिखी गई है। पाँच पीढ़ियों का लम्बा-चौड़ा विवरण देकर लेखक रुक जाता है सिर्फ़ यह कहकर कि उसके एक लड़का पैदा हुआ और अगला अध्याय है, उसके लड़के का नाम एलेक्स हैले था (लेखक) केवल इस वाक्य से पाँच-छह सौ पन्नों का इतिहास अचानक ही आत्मकथा बन जाता है। आत्मानुभूत बन जाता है। यह विश्वसनीयता ही तो हमें शामिल कर लेती है। हम बाहर खड़े आदमी नहीं रहते।

विचारधारा की लेखक को इसलिए जानने की ज़रूरत नहीं है कि वह इसके दिमाग़ में रहती है। संस्कार नहीं बनती। गाड़ी चलाने के नियम-क़ायदे बताने के बाद ड्राइवर को खुद गाड़ी चलाने दीजिए। मशीनों और औज़ारों को उसके संस्कार (सिस्टम) का हिस्सा बनने दीजिए। वह अपने विचार से नहीं, संस्कार से कहानी लिखता है, तभी पाठक में भी संस्कार जगाता है। एक पैरेलल अनुभव का पुनर्सृजन करता है। 'वार एंड पीस' में नेपोलियन के हमले के समय बड़े-बड़े जनरल-कर्नल बैठे हैं, मिलिट्री के थ्योरेटिशियन बहस कर रहे हैं और इस तरह के युद्धों से गुज़रा हुआ रुस्टोव सोचता है कि युद्ध की भी साइंस होती है? न जाने कितने फ़ैक्टर्स कंसीडरेशंस उस समय काम करते हैं जिन्हें आप सँभालते हैं। हो सकता है, लड़ते-लड़ते आप ऐसे मौक़े और समय पर पहुँच जाएँ जब सामने से आते सूरज के चौंध से आप जीती बाज़ी हार जाएँ...एक बार बेसिक्स को जानने के बाद गाड़ी चलानेवाले को खुद सड़क और स्थिति को नेगोशिएट करने दीजिए। विचारधारा अगर प्रकाश देती है तो उसके प्रकाश में हमें चीज़ों को देखने-समझने दीजिए, हमसे हमेशा सूरज की तरफ़ देखने का आग्रह मत कीजिए। हम चकाचौंध हो जाएँगे या खुद अपनी आँखों की रोशनी खो देंगे...विचार की दृष्टि से हमें खुद अपने आसपास के अनुभवों को, लोगों को, उनकी तकलीफ़ों को देखने दीजिए, उनसे जुड़ने दीजिए...बजाय हमें विचार बताने के आप पुरानी महत्त्वपूर्ण रचनाओं को उस दृष्टि से एनेलाइज़ कीजिए, ताकि विचार हमारे संस्कार बने, हम पर्सपेक्टिव बनें...कॉडवैल ने यही किया, लुकाच ने यही किया।

आप हमें कुछ विचार न देकर रचनाओं के सन्दर्भ से ही क्यों नहीं समझाते?...इन सारे भाषणों में जो चीज़ मेरी समझ में नहीं आती, वह है ज़िन्दगी। ज़िन्दगी से जुड़ने, उसे समझने, जीने या उससे जूझने की बात हर लेखक और वक्ता कहता है, मगर वह मेरे सामने कोई चित्र, कोई बिम्ब नहीं बनाती। वह एक शक भर रह गया है जो मेरे लिए कोई अर्थ स्पष्ट नहीं करती। किसकी ज़िन्दगी? मेरी, आपकी या आदर्शों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की वह ज़िन्दगी जिसकी हम वकालत करते हैं, बातें करते हैं। ज़्यादा अच्छा शब्द यथार्थ है और यथार्थ यह है कि मानवीय जीवन का कोई भी अनुभव अर्थहीन नहीं है। वह व्यक्तिवादी, प्रतिक्रियावादी, कुंठित, सीमित कुछ भी हो सकता है, मगर लेखक के लिए उसकी सार्थकता है। हम सिर्फ़ स्वस्थ लोगों की ही बातें क्यों करें? क्या बीमार, थके, टूटे लोग हमारा विषय नहीं हैं? जिसका हाथ या पाँव टूट गया है उसे हम अपनी सोच से बाहर निकाल देंगे? यहाँ मुझे काफ़्का याद आता है, उसकी कहानी 'बरो' (माँद) याद आती है, जहाँ भय, असुरक्षा के मारे एक साहब माँद में घुसकर बैठे रहते हैं, वहीं खोद-खादकर रहने की ऐसी जगह बना लेना चाहते हैं कि बाहर ही न निकलना पड़े। एक दीवार खोदते समय उन्हें कोई आवाज़ सी सुनाई देती है, दीवार तड़कती है और यह देखता है कि वहाँ एक और साहब भी खड़े हैं। वह भी किसी ऐसे ही एकान्त और सुरक्षा की तलाश में माँद में घुस गए थे। हर एकान्त अनुभव कहीं न कहीं दूसरे से जुड़ा होने के लिए मजबूर है, हम सबकी दीवारें एक-दूसरे तक पहुँचती हैं। नई कहानी के दौर के बाद जो कुंठा-हताशा इत्यादि की कहानियाँ आई थीं, वह भी मुझे इतनी निरर्थक नहीं दिखाई देती। उस समय को ज़रा समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने की कोशिश की जानी चाहिए।

आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक रूप से घुटन का शिकार उस समय का युवा अपने लिए कोई सार्थक अभिव्यक्ति नहीं पा रहा था, इसलिए आत्महत्या की दिशाओं में लौट आया था। न नौकरी, न आदर्श, न विचार...कर्म के सारे क्षेत्र, तिकड़म और राजनीतिक दाँव-पेचों में फँसे थे। उस नवयुवक के पास एक ही रास्ता था कि या तो उस व्यवस्था का हिस्सा बन जाए या उससे असहयोग कर दे। कहीं कोई रास्ता न पाकर वह सिर्फ़ अपने को ही मार सकता था। ऊर्जा, एनर्जी एक बार रिलीज़ होकर अपनी सार्थक अभिव्यक्ति नहीं पाती तो अपने स्रोत को ही खाती है, यही वजह है कि हमारे यहाँ संत्रास कुंठा, सेक्स विकृतियों की कहानियाँ हैं। हर चीज़ के नकार के तेवर हैं, अ-कहानी, अ-कविता इत्यादि। इस सारी स्थिति को गहराई से समझने की ज़रूरत है। मुझे जब एपीयरेन्स फ़ालतू लगने लगी, दिखावा और छलावा लगी तो मैंने फ़ैंटेसी कहानियाँ लिखीं...चीज़ों की असलियत तक पहुँचने के लिए...ताकि बाहरी यथार्थ को रिजेक्ट कर सकूँ...।

इस समय जब वह सब लिख रहा हूँ तो लग रहा है कि अगर धैर्य और कौशल के साथ बोला जाए तो एक बहुत अच्छे भाषण के लिए ये सारे मुद्दे बुरे नहीं हैं, बल्कि इनके साथ तो मैं सब पर छा जाता। लेकिन कुछ छूट न जाए इसलिए मैंने बहुत बुरे ढंग से और बहुत जल्दी-जल्दी में, ख़राब यानी अंग्रेज़ी-हिन्दी मिश्रित भाषा में कहा है, दसियों बातें छूट गई हैं जो अब, आज तक क्रमशः याद आ रही हैं। विषय-वस्तु अपना रूप स्वयं तय करती है। इस सम्बन्ध में मुझे विस्तार से 'हावर्ड फ़ास्ट' के स्पार्टाकस को याद करना चाहिए था। आदिविद्रोही स्पार्टाकस, एक मिथक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंवदन्ती था—विद्रोही गुलाम। लोगों ने उसके बारे में सुना था और सारा उपन्यास उस नायक के अलग-अलग व्यक्तित्व के आयामों पर सुनी हुई कहानियों की शैली में कहा गया है। महाश्वेता का 'हज़ार चौरासीवें की माँ' अन्तर्द्वन्द्व के रूप में अन्तर्यात्रा है। मुझे इन दोनों उपन्यासों का ज़िक्र ज़रूर करना चाहिए था। सोचा भी था, मगर उस समय ध्यान भी नहीं आया। कोई भी मानवीय अनुभव व्यर्थ नहीं होता, इस सन्दर्भ में मुझे दोस्तोयेव्स्की के 'क्राइम एंड पनिशमेंट' का ज़िक्र करना चाहिए। सब लोग आर्थिक दबावों में न सड़क पर आकर भीख माँगने लगते हैं, न क्रान्ति करते हैं। कुछ हैं जो इस बोझ को जब बर्दाश्त नहीं कर पाते तो या तो टूट जाते हैं, या अपराध करने लगते हैं। अपराध भी तो विचारहीन विद्रोह ही है। यशपाल ने अपने उपन्यास 'पार्टी कामरेड' में इस विचारहीन विद्रोह को गीता के माध्यम से विचार या क्रान्ति का वैचारिक धरातल दिया है।...इसी तरह अनुभव की विश्वसनीयता लाते समय मुझे बताना चाहिए था कि जब तक लेखक किसी अनुभव के साथ तादात्म्य, आइडेंटिफ़ाई नहीं कर लेता, तब तक पाठक में वह आइडेंटिफ़िकेशन नहीं स्थापित कर सकता। लेखक किसी पात्र या स्थिति से पहले आइडेंटिफ़ाई करता है, प्रेमचन्द ने 'होरी' के साथ किया, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट' के साथ किया—तभी तो पाठक होरी और वाण के पूरे व्यक्तित्व के साथ आइडेंटिफ़ाई कर पाता है। इस आइडेंटिफ़िकेशंस से दोनों तरफ़ संस्कार बनते हैं, वह हमारे भीतर अनुभवों की समानान्तर दुनिया जगाता है और इस तरह हमें समृद्ध करता है।

इसी तरह जब नई कहानी के बाद की स्थिति बताई थी तो कहना चाहिए था कि नवयुवक, आवेश और आदर्श में स्थिति को बदलना चाहते थे, यथास्थिति को तोड़ना चाहते थे, लेकिन किसी साफ़-सुथरी कन्विन्सिंग विचारधारा या जनआन्दोलन के अभाव में समझ नहीं पाते थे कि क्या करें? वे यथास्थिति के हिस्से या लूट के हिस्सेदार बनने से इनकार करते थे, इसलिए उन्होंने ड्राप-आउट होना पसन्द किया। यह उनका दिशाहीन या 'इनवर्टेड' विद्रोह था, जो अपने स्रोतों को ध्वन्स करने में लगभग था! वे ड्रग खाने लगे थे, वे सेक्स कुंठाओं और विकृतियों में डूब गए थे, वे डिस्को और ट्रिप में शान्ति पाते थे, वे योगा और रजनीश के पास दौड़ते थे। वे व्यवस्था को बदलने की जल्दबाज़ी में नक्सलाइट होते थे। ये सारे प्रयास विद्रोह के ही विभिन्न रूप हैं। बिना इनके पीछे के सामाजिक कारणों, राजनीतिक परिस्थितियों और भीतर के असन्तोष, विक्षोभ को समझे हम कैसे सीधे-साधे विद्रोह की बात समझेंगे? इन्हें रिजेक्ट करने की जगह सहानुभूति से समझने की ज़रूरत है।

हम लेखक हैं, और हारे हुओं, टूटे और भटके हुओं को हमसे सहानुभूति की अपेक्षा है। विचार के स्तर पर हो सकता है कि जो हमारे साथ नहीं है, वह हमारा विरोधी है। लेकिन लेखक की तरह हमें देखना होगा कि जो हमारे साथ चला था, वह कहाँ और कैसे छूट गया? हम डाकुओं का दल नहीं है कि जो ठोकर खाकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुठभेड़ में गोली या लाठी खाकर गिर गया है उसकी गर्दन उतारकर ही आगे बढ़ेंगे...या उन्हें सिर्फ़ गोली मार देंगे...इसी तरह पुरानी रचनाओं की पुनर्व्याख्या के समय मुझे पूछना चाहिए था कि हम मुक्तिबोध को कैसे जनवादी रचनाकार मानते हैं? उनकी कुछ कविताएँ, कहानियाँ मुझे काफ़्का और दोस्तोयेव्स्की की याद दिलाती हैं। हमें यह भी साफ़ करना होगा कि हम जन के बारे में लिख रहे हैं या जन के लिए लिख रहे हैं? मुक्तिबोध ने जनचेतना से सम्पृक्त होकर लिखा था। सच पूछिए तो आज भी पढ़ने में मुझे जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय अच्छे लगते हैं। राजीसेठ अच्छी लगती हैं। हमें कोई यह क्यों नहीं बताता कि सुनीता, त्याग-पत्र, शेखर एक जीवनी, वाणभट्ट की वह शक्ति क्या है जो अपनी ओर खींचती है? हम क्यों सार्वजनिक रूप से स्वीकार नहीं कर पाते कि वे हमारे प्रिय हैं? एक लाइन में उन्हें बकवास, प्रतिक्रियावादी कहनेवाले क्यों इस विस्तार में नहीं जाते कि उनकी शक्ति क्या है? उनकी कोई न कोई ऐतिहासिक भूमिका तो रही है, वह क्या है? कहाँ तक वे सही हैं और कहाँ उन्होंने हमें फ़ेल किया है? रचनाओं के माध्यम से विचार क्यों नहीं आते? वे अलग-अलग क्यों दिखाई देते हैं? वे उपदेशक क्यों बन जाते हैं? विचार के आग्रह हमें क्यों मजबूर करते हैं कि हम 'बोरिक एसिड मासवार, आधी छटाँक घी में डार—जखम तुरत नीक ह्वै जाई' को ही कविता मानें?

अब इस समय मैं सोचता हूँ कि अगर ये सारी बातें, जो मैं इस समय सोच या लिख रहा हूँ, अपने भाषण में शामिल कर पाया होता तो कैसा अद्‌भुत और विचारोत्तेजक भाषण होता! मगर नहीं, जो कुछ बोला, वह बेहद फूहड़ ढंग से था, अव्यवस्थित था और शायद असम्प्रेषणीय था। मन्नू के पास ये प्वॉइंट्स होते तो धुँआधार कर देती...निर्मला जी, नामवर सभी कर देते। मैं ही एक उल्लू का पट्‌ठा हूँ कि सबसे अधिक मौलिक विचार रखने के बावजूद चूतिया ही सिद्ध होता हूँ...। काश! बोलने की कला को मैं भी इन अध्यापकों की तरह साध लूँ...।

21.2.83

लगभग 'वार एंड पीस' के अन्त पर हूँ। कल रविवार था और हम लोग सारे समय दक्षिण दिल्ली में ही रहे। अपना फ़्लैट देखा। 103 नम्बर है। 104 वाले में लकड़ी का काम हो रहा है। बहुत ही सुन्दर लगता है। शानी के घर गए। टिंकू के यहाँ खाना खाया। कृष्णा जी से बातें हुईं। उनके पास एक योजना है—खुला विश्वविद्यालय बनाने की।

22.2.83

आज सुबह 'वार एंड पीस' पढ़कर समाप्त कर दिया। 1314 महीन-महीन छपे पृष्ठ। पीछे लगभग पचास पन्नों में तो समय, स्वतंत्र इच्छा, जीनियस, स्वतंत्रता इत्यादि पर ही दार्शनिक विवेचन है। टॉल्स्टॉय तो अच्छा-खासा दार्शनिक है। सच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछो तो 'वार एंड पीस' पढ़कर हलकी-सी निराशा ही हुई। इतना सुना और पढ़ा था कि बहुत ऊँची प्रत्याशाएँ कर डाली थीं। जैसे लोग हिमालय या ताजमहल के बारे में ज़िन्दगीभर सुनते रहते हैं और इतनी ऊँची प्रत्याशाएँ कर लेते हैं कि जब सचमुच इन्हें देखते हैं तो हल्की-सी निराशा ही होती है। तारीफ़ एक बात की है कि युद्ध की समस्या पर जिस एकान्त और एकाग्र भाव से टॉल्स्टॉय ने सोचा है और जितने बड़े कैनवास पर आकर सँभाला है वह अद्‌भुत और अद्वितीय है। वहाँ उसका कोई जोड़ नहीं है। मगर मैं 'वार एंड पीस' को नहीं, 'अन्ना कैरेनिना' को टॉल्स्टॉय की महान रचना मानने लगा हूँ। अब लगता है कि दोस्तोयेव्स्की अपनी सीमित परिधि में ज़्यादा बड़ा उपन्यासकार है। इस उपन्यास को पढ़ने में क़रीब 33 दिन लगे हैं, बीच में तो ऐसा लगता था, जैसे 'अपने' कुछ लोगों को छोड़कर मैं इधर आ गया हूँ और वापस जाना है। एक बहुत बड़ा काम था जिसे समाप्त कर दिया। न पढ़ता तो कसक रह जाती कि 'वार एंड पीस' नहीं पढ़ा। उस पूरी दुनिया में नेपोलियन के साथ युद्ध करते हुए अच्छा लगता था। वहाँ मैं ज़्यादा एक रुट-होम महसूस करने लगा था।

23.2.83

कल शाम को मिश्रा जी से मिलने गया था। पाँच बजे पहुँचे। दो-ढाई साल से लटकती स्थिति समाप्त ही-सी हो गई। इस बार साफ़ बातें हुईं। उन्होंने कहा कि बाहर से कराने में कॉस्ट ऑफ़ प्रोडक्शन बहुत बढ़ जाती है। अपने यहाँ लगभग पचास प्रतिशत का फ़र्क़ पड़ता है। अपनी मशीनें आ जाएँ और काम करने लगें, इसमें यह साल लग जाएगा। अब मैं ही फ़ोन करूँगा। मैंने फिर कमरे का हिसाब करने को कहा। मैंने कह दिया कि रसीद तो दूँगा नहीं, सबलैटिंग का चक्कर है। सोचते रहे, बोले, हिन्दी मैगज़ीन के प्रोजेक्ट और जनरल एक्सपेंसेज़ के हिसाब में दे देंगे। पहला पाँच पन्द्रह मार्च के आसपास, फिर अप्रैल के पहले सप्ताह में। ख़ैर, दिमाग़ में छाया सस्पेंस ख़त्म हुआ। फिर मैं साहित्य अकादेमी का समारोह देखने गया। हमेशा की तरह था। हाँ डोगरी के लेखक 'नूतन' ने खड़े होकर पुरस्कार अस्वीकार कर दिया—अकादमी की धाँधली के कारण कि डोगरी के नाम पर पैम्फ़लेट्स को मिलता रहा है। कुछ हँगामा-सा हुआ और खूब तालियाँ बजीं। मालूम हुआ कि 'क़ैदी' उपन्यास, पुलिस और न्यायपालिका की ज़्यादातियों पर है और लेखक ने खुद भी उस सबको भुगता है। अच्छा ही लगा।

28.2.83

आज यह महीना भी चला गया सिवाय इस डायरी के कुछ भी नहीं लिखा गया। इस बीच में अपनी गाड़ी में मेरठ घूम आया। मेरठ कॉलेज में 'उपन्यासों के नए प्रतिमान'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर गोष्ठी थी। मृदुला भी साथ थी। वहाँ लक्ष्मीकान्त वर्मा, डॉ. राजेन्द्र शर्मा, रमेशकुन्तल मेघ इत्यादि मिले। शायद मैं वहाँ बोला तो लगभग एक घंटा, मगर लगा कि सारी बात बिखर गई और आँय-बाँय-शॉय कुछ भी बोलता रहा। लगा कि लोगों की समझ में बात कम आई, वे आतंकित ही अधिक हुए। बाद में वहाँ बच्चन सिंह, परमानन्द श्रीवास्तव इत्यादि आ गए। खा-पीकर वहाँ से चले आए। लगभग चार बजे दिल्ली। गाड़ी में दिल्ली से बाहर जाने का यह पहला अवसर था। मृदुला को छोड़ने सुबह आनन्द आए थे। लगा, मूड अच्छा नहीं था। उन्हें भोलेश्वर जैसे ही एक नौकर की ज़रूरत थी जिसे खाना-रहना (अलग कमरा) और पाँच सौ देने को तैयार हैं। यानी होना 'ऑल परपज़' चाहिए। मैंने भोलेश्वर से कहा। वह सरकारी नौकरी के पीछे पड़ा है। उसे समझाऊँगा।

'वार एंड पीस' समाप्त करने के बाद उस पर कुछ नोट्स भी लेना चाहता हूँ। उपन्यास इतना बड़ा है और उसे इस तरह टुकड़ों में पढ़ा है कि कहीं कोई महत्त्वपूर्ण बात ही दिमाग़ में नहीं आ रही है। कल रविवार था और सुबह कुछ ऐसी मनहूस शुरू हुई कि न तो सारे दिन शेव, ब्रश किया और न ही एक पन्ना लिखा या पढ़ा। सारे दिन सोए या अखबार पढ़े। कहीं गए भी नहीं। रांगेय राघव की कहानियों पर लेख लिखना है, 'वार एंड पीस' पर नोट्स लेने हैं, अक्षर का कुछ काम करना है पुरानी मिनिट्स बुक लिखने का, और साथ ही एक कहानी लिखनी है; क्योंकि चार या पाँच मार्च को मैं कानपुर के लिए निकलना चाहता हूँ। वहाँ से जूता लेकर सीधे आगरा, वहाँ से हर हालत में दस को वापस, ताकि ग्यारह की कोर्ट की तारीख निपटा सकूँ...।

कहानी आई दिमाग़ में मन्नू की एक बात से। हुआ यह कि मैंने फ़्लैट के लिए मन्नू से कुछ रुपया देने का वायदा किया था, तीस-पैंतीस हज़ार। सोचा था कि दस अपने पास से शायद हो ही जाएगा, दस अक्षर से या किसी से माँगूँगा और दस मीता से लूँगा। मीता से लेने की बात मन्नू को बता दी थी। अब जब लगा कि पैसा देने का समय निकट आ रहा है तो उसे लिख दिया—ताकि थोड़ा समय मिल जाए। उसने सीधे पाँच हज़ार का ड्राफ़्ट ही भेज दिया। पाँच बाद में करने को कहा। परसों यह बात मैंने मन्नू को बताई कि पाँच आ गए हैं। पहले तो चुप रही, फिर बोली लौटा दो। कहीं न कहीं से हो जाएगा। उससे लेने की ज़रूरत नहीं है। पता नहीं, उसने कहा या मैंने ही मन में अनुवाद कर लिया, ''उसका पैसा मैं अपने घर में नहीं लगाऊँगी...'' और जैसे इसी के जवाब में मन में उत्तर जगा : ''जिस व्यक्ति ने अपनी सारी ज़िन्दगी तुम्हारे घर को बनाए रखने में झोंक दी, उसका रुपया लगाने में तुम्हें तकलीफ़ होती है।'' और लगा यह कहानी तो मुझे लिखनी ही होगी। शायद लिखनी ही चाहिए...।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परसों शेखर कपूर की फ़िल्म देखी 'मासूम'। एक सुखी-सन्तुष्ट घर में पुरानी प्रेमिका के मातृहीन बच्चे के आने जाने की कहानी। अच्छी है। इन दिनों मेरा पुराना अनुवाद 'चैरी का बग़ीचा' नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा की रेपर्टरी कम्पनी कर रही है, निर्देशक रिचर्ड शेख़नर। तारीफ़ है।

1.3.83

कल मैंने उषा जी को जा पकड़ा। सत्येन्द्र शरत पिछले पाँच-छह वर्षों से मुझसे न जाने क्यों नाराज़ है, कटा-कटा रहता है। हम लोग ग्रेटर कैलाश से लेकर मन्दिर मार्ग तक बीसियों बार उसके यहाँ गए। यह कभी पलटकर नहीं आया। मुझे पता है, कोई न कोई गाँठ बाँधकर बैठा होगा। बेहद ही कुंठित आदमी है। कब किस बात का बुरा मान जाए, या क्या बात किस तरह ले-ले, यह कोई भी नहीं जानता। मुझे लगता है, शायद उषा भाभी में ऐसा नहीं है, और वे अधिक समझदार हैं। 'चैरी का बग़ीचा' में सत्येन्द्र दिखाई दिया, लेकिन न तो मिला, न एक-दूसरे को विश किया। यहीं दरियागंज में कैम्ब्रिज स्कूल में पढ़ाती हैं; मैंने ठीक एक बजे कर्ण सिंह को भेजा, तो अगले दिन आने को कहा। अगले दिन बताया कि माँ की तबीयत बेहद खराब है, उन्हें हार्ट-अटैक होकर चुका है। जब भी फुर्सत मिलेगी आएँगी। फिर मैं खुद ही गाड़ी में पहुँच गया और स्कूल के सामने गाड़ी में बैठकर राह देखने लगा। निकलीं तो घेरा। बात वही माताजी वाली थी। परेशान थी। ख़ूबसूरत चेहरा एकदम मुरझा गया था। मैंने सत्येन्द्र की नाराज़ी वाली बात बताई कि पता तो चले। बोली, ऐसी कोई बात नहीं है। अनुराग के बारे में पूछा, बताया एलाइड सर्विसेज़ में आ गया है, पन्द्रह मार्च से नियुक्त हो जाएगा। खड़े-खड़े बात करना अच्छा नहीं लगता था, दूसरे एक महिला और भी थीं जो साथ जाती हैं, वे खड़ी होकर प्रतीक्षा कर रही थीं। इसलिए मैंने उन्हें जाने दिया। कहा सिर्फ़ इतना ही कि आप तो हमारी समधिन बननेवाली थीं। पहले चौंकी, फिर कहा, आपने ही तो मना कर दिया था।...ख़ैर, अब कभी मिलकर बातें करूँगा।

कल अरविन्द अपने काम से पहले तो शर्माजी के पास गया, मेरे साथ फिर घर गया। हम लोगों ने साथ-साथ 'रम' पी। अच्छा लगा।

23.3.83

इस बार तो कुछ ऐसी भागदौड़ रही कि ठीक बाईस दिनों बाद डायरी लिख रहा हूँ। रांगेय राघव की कहानियों पर एक लेख तैयार किया : 'परकोटे के बाहर के लोग'। 9-10 को आगरा में रांगेय राघव पर्व था। इससे पहले 27-28 को मेरठ में उपन्यास पर कोई गोष्ठी थी और हम लोग, यानी मृदुला और मैं कार से गए थे। भोलेश्वर गया था। आगरा मैं एक दिन पहले गया कि दुकानों का कुछ करूँगा। स्टेशन पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीता मिली। हम लोगों ने साथ चाय पी और मैं सीधा ब्रजेन्द्र तिवारी के यहाँ पहुँचा। उसने प्रसन्नता से स्वागत किया। ख़ैर, सोचा यह कि दुकानों की तरफ़ जाऊँगा। किराए की रसीद बुक लेकर पहले प्रह्लाद मित्तल के यहाँ, फिर वहाँ से दुकानों पर। प्रह्लाद की पुत्रवधू मर गई थी और तेरहवीं थी। नहीं, यह तो अगले दिन की बात है, उस दिन तो दोपहर को सोए, ब्रजेन्द्र के साथ घनश्याम के यहाँ गए। वहाँ डॉ. सुलोचना राघव आ गई थीं और किशन जी इत्यादि थे। दोस्तों के बीच गप्पें लड़ाकर पहुँचे विद्यानिवास मिश्र के यहाँ। सोचा डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन को ले आएँ। वे काफ़ी देर तक नहीं आए तो घनश्याम को साथ लेकर ब्रजेन्द्र अपने घर ले आया। उसने दारू मँगा रखी थी। खा-पीकर दस बजे घनश्याम को गाड़ी में छोड़ा। आजकल ब्रजेन्द्र खुद ही ड्राइव करता है। अगले दिन पहले प्रह्लाद के यहाँ फिर दुकानों पर। मालूम हुआ कि पिछले दिनों का सारा किराया भूपेन्द्र ले गया है। घड़ी वाले वर्मा ने अपने लड़के से भूपेन्द्र को बुलवाया तो पता चला कि गैस लेने चला गया है। थोड़ी देर बाद फिर भेजा तो मालूम हुआ, दुकान चला गया है। मैं उन्हें तो ग़लत बताकर दुकान पहुँचा, भूपेन्द्र नहीं था। थोड़ी देर में आया, इस बीच उसके साले ने काफ़ी ख़ातिरदारी की। इस बीच बालेश्वर सिंह आ गया। मुझे लगा कि वह बुलाया गया था। उससे मैंने कोई बात नहीं की। बाहर निकलकर भूपेन्द्र से कहा कि किराया क्यों ले रहे हो। बोला, जब तक दुकान की ज़मीनों के काग़ज़ नहीं मिलेंगे, मैं लूँगा। सतेन्द्र भाई साहब ले गए हैं, मुझे आज तक नहीं मिले। ख़ैर, उसकी टोन इत्यादि देखकर मैंने भी सोचा, जाने दो भाड़ में। बहुत गुस्सा आता रहा कि इस औरत और भूपेन्द्र को एक बार फिर मज़ा चखा ही दूँ। फिर सोचा, चलो, उस भूखी को यही सन्तोष पाने दो कि वह जैसे चाहती है, कर सकती है। मगर आज भी सोचता हूँ तो गुस्से से सिर भन्ना जाता है।

वहाँ से घनश्याम के पास पहुँचा। फिर मिंकी के स्कूटर पर बैठकर यूनिवर्सिटी के सीनेट हॉल में। वहाँ भाषणबाज़ी हुई। सुमन जी ने अपने भाषण में अनेक बार मेरा ज़िक्र किया। बाद में हम लोग के.एम. मुंशी संस्थान की ओर आए जहाँ प्रदर्शनी थी। भाषण समाप्ति पर मीता आ गई थी। प्रदर्शनी के बाद ब्रजेन्द्र ने हमें कार में स्टेशन के पास छोड़ा। वहाँ हम लोगों ने काफ़ी-चाय पी। फिर 'सूर-भवन' में राजेन्द्र रघुवंशी द्वारा मंचित 'कब तक पुकारूँ' नाटक देखने आए। इस बीच मुकुट या मुकुटेश्वरी मोहन से भेंट हुई। उसने शाम को पीने के लिए बुलाया। हम लोग इस चक्कर में थे कि 'सुमन' जी को भी ले आएँ। सात बजे नाटक शुरू होनेवाला था। हम लोग आठ बजे तक बैठे और उठ आए। मैं, घनश्याम, मुकुट, ब्रिजेन्द्र। सुमन जी नहीं आए। जब हम लोग अपना दौर खत्म कर चुके तो उन्हें उठा लाए और उन्हें दो पैग दिये, फिर विद्यानिवास जी के यहाँ छोड़ा। अगले दिन मुझे बोलना था। बोला, हस्बेमामूल आधी चीज़ें छूट गईं। फिर भी लोगों को पसन्द आया। बोले बहुत,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रांगेय राघव के अन्तरंग मित्र, मगर अपनी आगरे की बोली में सबसे अच्छा बाबू रेस्त्राँ वाला ही रहा। उसी पर 'दीवालिए' कहानी लिखी गई थी। उनकी मित्र मंडली के बल पर बाबू का रेस्त्राँ चलता था, बाद में उसने बन्द कर दिया और यूनिवर्सिटी में नौकरी कर ली। संध्या के सत्र में मैंने रांगेय राघव वाला लेख पढ़ा कहानियों पर। इसे मैं पिछले दिनों लिखता रहा था। गोष्ठी तो लम्बी चलनेवाली थी। छह बजे उठकर ताज एक्सप्रेस पर आए और फिर दिल्ली। सब मिलाकर यह 'पर्व' बड़ा आत्मीय और 'अपना' सा लगा। हालाँकि गोविन्द रजनीश का व्यवहार बहुत अच्छा नहीं लगा। एक ठंडापन और औपचारिकता थी उसमें।

24.3.83

दो दिन दिल्ली में रहकर 14 की रात को मैं गया कानपुर। जीजी के यहाँ पहुँचा। वहाँ से गिरिराज ने बुलवा लिया। उस दिन पता चला उद्भ्रान्त छुट्टी पर है और एलिम्फो में लॉक आउट है। अगले दिन चतुर्वेदी जी की मदद से काम शुरू कर दिया। उद्भ्रान्त को पकड़ा। दो दिनों सुबह से शाम तक बैठने के बाद जैसे-तैसे कैलिपर तैयार हुआ, जो अभी भी बहुत दर्द कर रहा है। अगर रुककर ठीक कराता तो शनिवार-रविवार छुट्टी थी। जैसे-तैसे 19 को सुबह आसाम से बैठकर रात तक दिल्ली आया। गिरिराज के यहाँ से आना-जाना बेहद कठिन है। किसी-न-किसी गाड़ी के साथ जुगाड़ भिड़ाना पड़ता है। सुबह नौ बजे अफसरों को लेनेवाली गाड़ी आती है उसी में आता था। एक दिन उद्भ्रान्त ने खाना खिलाया, दूसरे दिन चौबेजी के यहाँ खाया। सुबह-शाम गिरिराज से, मीरा जी से बातें होती थीं। व्यवस्था के साथ उसकी लड़ाई चल रही है। हाई कोर्ट में वह जीत गया है। दफ़्तर भी सँभाल लिया है मगर अभी कोई काम नहीं दिया है। हर समय वहाँ आने-जानेवाले एक ही चर्चा करते थे, आगे ये लोग क्या करेंगे? शान्ति से, सब कुछ भूलकर काम करने देंगे, ख़मियाज़ा देकर हटा सकते हैं, सुप्रीम कोर्ट जा सकते हैं, या फिर शो-काज़ नोटिस इत्यादि देकर परेशान करते रह सकते हैं। वस्तुतः वहाँ के डिप्टी डायरेक्टर किसी लाल का फ़ोन भी आया था और उन्होंने इनकम टेक्स पेड, ढाई लाख का प्रस्ताव रखा था। मगर इसमें गिरिराज के पुराने एरियर्स भी शामिल थे। लोगों का कहना है कि पुराना हिसाब अलग, अगर ये लोग सब मिलाकर चार या पाँच के बीच ऑफ़र करते हैं तो ले लेना चाहिए...मैं सारी बात इसी स्थिति में छोड़कर आया था।

कल मैंने अपनी दिन की रेल यात्रा के आधार पर एक कहानी समाप्त की है। अब दूसरी कहानी लिखी है। कल और आज में 'मैं दुर्गा खोटे' पुस्तक समाप्त कर ली। एक तरह फ़िल्म जगत की कहानी है। दुर्गा खोटे की लिखी हुई। मूक चित्रों के समय से लेकर अब तक वह फ़िल्मों में सक्रिय रही हैं। दिलचस्प है, लेकिन ऊपरी रूपरेखा है। बचा-बचाकर लिखी गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

30.3.83

कल होली थी और घर में एकदम सन्नाटा रहा। पिछले अनेक वर्षों से हम लोग होली पर कहीं न कहीं निकल जाते थे, सबको यह कहकर कि हम नहीं खेलते। इससे पहले बन्द रहते थे। दसियों बरस से मुहल्लेवालों ने तो आना ही छोड़ दिया था, शायद हमारा व्यवहार देखकर। बाहर से जो आते थे, वे भी मानो स्वीकार किए बैठे थे कि हम नहीं खेलते। नतीजे में हम तीनों ही भूत की तरह घर बैठे रहे। मिठाई इत्यादि बनाकर प्रतीक्षा करते रहे कि कोई आएगा। मुझे उस समय महसूस हुआ कि जिनका सामाजिक बहिष्कार हो जाता है, उन्हें कैसा महसूस होता होगा...जबकि यह स्थिति तो खुद हम लोगों की ही बनाई या चुनी हुई है। शाम को हम लोग सुमन, नन्हीं और बीना के यहाँ गए।...परसों हम तीनों लिंक पैट्रियट की वर्षगाँठ पर आयोजित सेमिनार में गए। वहाँ काफ़ी लोग थे और बातचीत या बहस का स्तर काफ़ी ऊँचा था। वहीं पहली बार जयकान्त से भेंट हुई। वह भी लैनिनग्राद जा रहा है। उससे पहले शायद बृहस्पति 24 को मैं मिश्रा जी से मिला था। अब बहुत साफ़ हो गया है कि वे लोग शायद जल्दी ही निकालने की स्थिति में नहीं हैं। सोचा, साल भर से कमरा उनके नाम पर खाली है, हज़ारों रुपए इस बीच आने-जाने, खाने-पीने में ख़र्च किए हैं, वे तो ले ही लेने चाहिए। मैंने मिश्रा जी से हज़ार रुपए महीने के हिसाब से आठ महीने के पैसे माँग लिये हैं। वे बोले पाँच हज़ार हिन्दी-पत्रिका की प्रोजेक्ट रिपोर्ट सबमिट करने के लिए और बाक़ी जनरल ख़र्चे में दे देंगे। वही टल रहा था। उस दिन उन्होंने लिफ़ाफ़े में चार दे दिये। बोले बाक़ी जब देंगे तो लिखकर दे दीजिए। आज हमारा एकाउंटेंट नहीं है। यह मैं अपने ही पास से दे रहा हूँ। ले आया। सही है इसके दो-ढाई साल में इससे अधिक तो मैंने खर्चा ही कर दिया है।

दिमाग़ पर भारी बोझ है कि सामाजिक प्रतिरोध और हिन्दी उपन्यास वाला लेख लिखना है। अब समय ही कहाँ रह गया है। पहली बार हो रहा है कि लेख लिखने में इतनी दिक्कत आ रही है। मेरे लिए कहानियाँ लिखना ज़रूर कठिन रहा है, मगर लेख तो काफ़ी आसानी से लिखे हैं।

1. जहाँ लक्ष्मी क़ैद है	28.7.55	कलकत्ता
2. छोटे-छोटे ताजमहल	27.5.59	गुरुद्वारा रोड
3. खेल	25.7.59	दिल्ली
4. मज़ाक	29.7.59	
5. खुशबू	7.3.60	
6. नए-नए आनेवाले	15.3.60	
7. बिरादरी बाहर	28.7.60	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8.	आत्मा की आवाज़	3.5.61
9.	भविष्य वक्ता!	8.9.61
10.	गार्जियन	14.9.61
11.	किनारे से किनारे तक	1.4.62
12.	माध्यम का विद्रोह	20.2.62
13.	प्रतीक्षा	26.2.62
14.	कटी हुई कहानी	22.11.63
15.	हँसनेवाली लड़की	12.3.63
16.	टूटना	6.4.63
17.	तनाव	10.12.63
18.	सिलसिला	14.12.63
19.	लौटते हुए	26.1.64
20.	मरनेवाले का नाम	22.8.64
21.	सम्बन्ध	16.9.64
22.	रिपीट ट्रेजेडी	8.12.64
23.	चुनाव	23.12.64
24.	खुली हुई साँझ	12.3.65
25.	दायरा	8.4.65
26.	आत्म साक्षात्कार	14.4.65
27.	परी नहीं मरती	28.4.65
28.	मंत्रविद्ध	24.3.66
29.	भविष्य के आसपास मँडराता अतीत	26.3.66
30.	अपने वार	20.7.66
31.	रिमाइंडर	16.12.66
32.	गड़बड़ी फैलानेवाले	2.1.67
33.	मेहमान	14.1.67
34.	फ्रैंच लैदर (कंडोम)	10.2.67
35.	अनुपस्थित सम्बोधन	27.7.67
36.	सिंह वाहिनी	19.1.68
37.	बेल	14.4.68
38.	गुलाम	11.5.68
39.	पेट्रोल पम्प	30.4.72
40.	वहाँ तक पहुँचने की दौड़	29.5.75
41.	व्यवस्था	21.7.76

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लरज़िश हुई थी सूफ़िए बदमस्त को अगर
दीवार मैकदे की पकड़ के सँभल गया...

–सूफ़ी

फलदार दरख़्तों पर पत्थर भी बरसते हैं
हम ख़ार की वादी में आहट को तरसते हैं

–अलम, अलीगढ़ी

मुफ़लिसी खींचती है इबादत की तरफ़
और कम्बख़्त अगर मुसलसल हो तो काफ़िर कर दे

ये धूप तो हर रुख़ से परेशाँ करेगी
क्यों ढूँढ रहे हो किसी दीवार का साया

–अहमद फ़राज़

वो लोग तुमने एक ही शोख़ी में खो दिये
पैदा किया था चर्ख़ ने जो ख़ाक छानकर

–मीर

2.4.83

कल पहली तारीख़ थी और चोरड़िया से समय हुआ कि मैं, सेठिया जी, पटावरी इत्यादि पत्रिका की बात करने को मिलेंगे। सारी बात घूम-फिरकर फिर इन्हीं लोगों पर आ गई है। साढ़े छह का समय था। लेकिन उन्हें आते-आते सात बज गए। मुझे साढ़े सात पर जंगपुरा एक्टेंशन में सुकुमार के दोस्त मिश्रा के यहाँ पहुँचना था। वहीं शानी भी आया था। यहाँ चोरड़िया ने किसी ज्योतिषी को बुला लिया था, इसलिए वहाँ सिर्फ़ ज्योतिष की बात होती रही। तय हुआ कि अपने विषय पर बातें करने के लिए हम लोग सोमवार की शाम को छह बजे उमराव सिंह चोरड़िया के दफ़्तर में मिलेंगे। इसके बाद मलिक साहब के साथ मैं अपनी गाड़ी में मिश्राजी के यहाँ पहुँचा। शाम बहुत अच्छी ही रही। इस आर. पी. मिश्रा की पत्नी बंगाली है और यही शायद सुकुमार और उनके बीच दोस्ती का सूत्र है। मिश्रा का साला भी था—रंजन राय। वह काफ़ी इंटेलिजेंट और बहस करनेवाला था। आँख में हलका-सा स्क्विट खुलता हुआ रंग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शानी सूफ़िया और पप्पू को भी ले आया। उधर सकुमार के बच्चे, शायद इतना इन्तज़ाम इन लोगों ने नहीं किया था। बाद में लगा खाना कुछ कम पड़ गया था। ख़ैर, आते-आते वही एक बज गया था। ऐसी शामों को मलिक साहब किस तरह एन्जॉय करते हैं, वह अपने-आपमें एक दृश्य होता है। कभी-कभी लगता है, हम लोग आने-जाने, शराब-कबाब में जाने कितना पैसा और समय ख़र्च करते हैं। साढ़े सात से एक तक का समय। अगले दिन सुबह कुछ न कर पाने की स्थिति—वही खुमारी और नींद। हो सकता है, इस दौरान सिर्फ़ घर पर सोते—मगर शायद वह ज़्यादा रचनात्मक होता। ऐसी शामों में बातें बहुत अच्छी होती हैं, कभी-कभी बड़े दिलचस्प लोग मिलते हैं, विचार और विवाद के नए मुद्दे उठते हैं—मगर अभी तक तो मुझे याद नहीं है कि उनमें से किसी का इस्तेमाल कभी मैंने किया हो।...अब रॉय ने छह बजे बुलाया है, हम सभी को। मन में कोई उत्साह नहीं है। शायद मैं जाऊँ भी नहीं। अभी तो वह लेख भी पूरा करना है, 'सामयिक प्रतिरोध और उपन्यास' अब उसी में ध्यान लगाना है। इधर शराबबाज़ी बहुत बढ़ रही है। इसलिए इस पर नियंत्रण लगाना है।

6.4.83

कल मैंने मिश्राजी को फ़ोन किया था। बाक़ी पैसों की दृष्टि से। बोले—पाँच-सात दिन रुकिए। डर हुआ कि कहीं टाल तो नहीं रहे?

इधर मैं फिर इधर-उधर निगाह दौड़ाने लगा हूँ। चोरड़िया के यहाँ माँगीलाल सेठिया और पटावरी से सोमवार को मिलने की बात हुई। छह बजे मिलने गए। पाँच-सात मिनट लेट हो गए थे। इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर मुद्दे की बात आई। मैंने सारी योजना को दुबारा उनके सामने रखा। बताया कि अकेली पत्रिका को इस परीक्षण की तरह लिया जा सकता है कि अगर परिणाम उत्साहजनक लगे तो बड़े स्तर पर पत्रिका-समूह बनाया जाए। पत्रिका की दोनों साइज़ें दिखाईं, सम्भावना बताई, 'हंस' की पृष्ठभूमि बताई कि किस तरह इसके प्रारम्भिक सम्पादक गांधी, मुंशी, राजगोपालाचारी और काका कालेश्वर के साथ प्रेमचंद थे। यह भी स्पष्ट किया कि आदर्श और विचारों की बात करनी है तो व्यावसायिक दृष्टि भूलनी होगी, फिर लाख रुपए साल के विचारों के प्रचार के खाते में डालें, यह सारा कार्य हमें व्यावसायिक दृष्टि से ही करना है। थोड़ा लम्बा समय लगने की बात कही, ज़रूरत और पठन-रुचि के बढ़ने और अच्छी सामग्री के उपलब्ध न होने की बात, समानान्तर सिनेमा की सफलताओं के आधार पर पत्रिका प्लैन करने की बात, शुरू के ख़र्चे, फिर बाद के छह अंकों के ख़र्चों की बात। सब सुनने के बाद सेठिया बोले—"चलिए अगर दो शुरू के और छह बाद के—यानी आठ की व्यवस्था कर दें तो आप फिर तो नहीं माँगेंगे?" मैंने कहा, "ज़रूरत तो नहीं पड़नी चाहिए। हाँ, बीच में अटक सकते हैं। उस समय अस्थायी रूप से ज़रूरत पड़ सकती है।" बोले—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वो हर बिज़नेस में होता है, उसकी कोई बात नहीं।" मैंने फिर याद दिलाया कि इसे अपने-आपमें लक्ष्य बनाकर नहीं देखना चाहिए। यह टेस्ट है, इसके बाद ही आगे पत्रिका-समूह प्लैन होगा। पटावरी ने नैतिकता और आदर्श की बात की, पत्रिका ऐसी होनी चाहिए जो पति को अच्छा पति, पत्नी को अच्छी पत्नी और बेटे को अच्छा बेटा बनाए। मैं चौंका, सेठिया उसमें धर्म के प्रचार की सम्भावनाएँ देख रहे हैं तो पटावरी नैतिकता की। मैंने साफ़ कहा, "विचारों को व्यवसाय के बीच में मत लाइए—या फिर लाख रुपए घाटे के लिए तैयार रहिए। अगर मैं नैतिकता और धार्मिक विश्वास पर छापूँगा तो उसका दूसरा पक्ष भी सामने रखूँगा। यहाँ दोनों पक्ष सामने रखकर ऑब्जेक्टिव रहना होगा। जैसे 'इंडिया टुडे' अगर अन्तुले की बात लिखता है तो दोनों पक्षों को सामने रख देता है, नतीजा आप निकालिए। धर्म, नैतिकता, परिवार के बारे में भी हमें यही करना होगा। ख़ैर, काग़ज़ पटावरी ने रख लिये। बोले—हम तो ज़्यादा लटकानेवाले आदमी ही नहीं हैं। अप्रैल में आपको बता देंगे कि कर सकते हैं या नहीं। लालानी जी को भी आ जाने दीजिए। मैं सचमुच नहीं चाहता था कि ऐसा लगे, जैसे हम लोग, लालानी को काटकर कुछ तय कर रहे हैं। उनके साथ बैठकर तो सभी कुछ तय होगा ही; बल्कि वही प्रमुख व्यक्ति रहेंगे। इसके बाद अलग हुए। चोरड़िया ने मुझे रोक लिया। उसे घर छोड़ा। गाड़ी में बैठकर उसने बताया कि आठ-दस लाख का बिज़नेस आज आकर्षित नहीं करता। योजना पचास-साठ की हो, शुरू भले ही आठ-दस से करें। मैंने बताया निगाह में तो वही है। सोचा, अगर बाद में ज़रूरत पड़ी तो पन्द्रह लाख के प्रेस की योजना दे दूँगा। फ़ोटो कम्पोजिंग, ऑफ़सेट प्रेस। ख़ैर, अब प्रतीक्षा है, लालानी आएँ और हम लोग देखें।

8.4.83

मन्नू कहती है, इनके साथ चलेगा नहीं। ये अलग-अलग विचार और उद्देश्य के लोग हैं। लालानी सर्वज्ञ और छा जानेवाले धाँसू व्यक्ति हैं। अगले दिन आपका मतभेद हो जाएगा। बहरहाल, पत्रिका वाली बात भी पिछले दसियों सालों से अजीब रूप लेती रही है। इस बीच मैंने प्रभाष जोशी को भी फ़ोन किया। अगर यहाँ डिस्ट्रीब्यूशन वाली बात एक्सप्रेस से हो जाती है तो सारी समस्या ही हल है। देखें, यहाँ क्या रेस्पॉन्स मिलता है!

लगभग दो महीने से एक बात स्थगित हो रही थी। छह को समय निकालकर मैं सरयू के पास गया। उसे नाटकों की ज़रूरत थी। उससे मैंने अपनी लेखन अक्षमता की बात विस्तार से बताई। ख़ैर, उसने बहुत सहानुभूति से सुनी।

11.4.83

परसों यानी 9 अप्रैल को 'जनवादी लेखक संघ' की ओर से मन्नू की रचनाओं पर एक सेमिनार था। शाम को साढ़े चार बजे। लेकिन ऊपर सेमिनार कक्ष में ढाई बजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
से प्रगतिशील लेखक संघ की मीटिंग थी। विषय था : 'मार्क्सवाद, मार्क्स और साहित्य'।

अधिकांश लोग दोनों में एक ही थे। ठीक साढ़े चार पर मैं उतरकर नीचे आ गया। यह मीटिंग भी काफ़ी वेल एटेंडेड थी। नीचे शुरू में तो कम लोग थे, लेकिन बाद में काफ़ी हो गए थे। डॉ. नित्यानन्द का पेपर अच्छा था। चंचल चौहान ने सर्वे कर दिया था, रणधीर सिन्हा का बेकार। पहले तो कोई बोलने को तैयार ही नहीं हुआ। फिर कुछ लोग बोले। मैंने भी दो वाक्य कहे। सब मिलाकर मामला बहुत साधारण था। वहाँ से अर्चना इत्यादि के साथ सीधे घर। लेखिकाएँ प्राय: नहीं ही आई थीं। न सुनीता, न मृदुला, न मृणाल...ख़ैर, कल रविवार को डटकर सोया। बहुत बोर हुआ। लेकिन अधूरे लेख पर बैठने का मन ही नहीं हुआ। मै देखता हूँ कि पेट साफ़ न हो तो कुछ भी करने की इच्छा नहीं होती। आज सुबह फिर जैसे नए सिरे से समय व्यर्थ गँवाने की ग्लानि और कुछ करने की इच्छा जगी।

18.4.83

शुक्र को हम लोग, मैं और मन्नू, नाटक देख रहे थे, 'क्या करेगा क़ाज़ी', अँधेरे में प्रवेश द्वार (जो अँधेरा होने के कारण खुला था) के पार सीढ़ियों पर लगे ग्लेज़्ड फ़ॉयर के पार बिजली चमकती दिखाई दे रही थी। लक्ष्मीमल्ल सिंघवी परिवार हमसे आध-घंटे पहले उठे थे, मगर जब पौने नौ बजे हम लोग नीचे आए तो देखा, धुआँधार बारिश हो रही है और वे भी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आध-पौन घंटे सभी लोग वहाँ खड़े रहे। किसी की हिम्मत नहीं थी कि दौड़कर गाड़ी तक भी पहुँच जाए। शायद सवा नौ बजे कुछ ज़ोर कम हुआ तो जैसे-तैसे भीगते हुए हम लोग गाड़ी तक पहुँचे। बैक करने में मन्नू को दिक़्क़त होती है, लेकिन सारी गाड़ियाँ पार्किंग स्थान से आगे जाकर रुक जाती थीं। सड़क पर पानी भरा था। जैसे-तैसे सड़क पर आए। पानी तो भरा ही था। ऊपर से बारिश रुकी नहीं थी। मन्नू बोली, मैं तिलक ब्रिज से नहीं जाऊँगी, वहाँ फँस जाएँगे। बुरी तरह पानी भरा होगा। मैंने भी सोचा कि बारहखम्भा रोड से स्कूल-लेनवाला फ्लाई ओवर लेकर सीधे तुर्कमान गेट और फिर आसफ़ अली से रिंग रोड। आधे पहिए डूबे पानी में हम लोग चले। मंडी हाउस के राउंड एबाउट के चारों तरफ़ सड़कें लबालब। दुनिया भर के वाहन, बसें, ऑटो, स्कूटर, तिपहिए, मैटाडोर, एम्बेसेडर और फ़िएट...जैसे-तैसे बारहखम्भा पर मुड़े ही थे कि गाड़ी बन्द। स्टार्ट करने की बहुत कोशिश की, लेकिन ठप्प...चारों तरफ़ पानी, रुकी हुई और खराब बसों, गाड़ियों, स्कूटरों की ढर्र-ढर्र। पानी हमारी गाड़ी में भरा आ रहा था। अब क्या हो ?...

धक्के के सिवा कोई रास्ता नहीं था। सभी को अपनी-अपनी पड़ी थी, धक्का दे तो कौन ? एक साहब भीगते जा रहे थे, रोका। बेचारे धक्का देने लगे। मुझे लगा, मैं भीतर बैठा रहूँ और वे धक्का दें, यह कमीनापन है। मगर जूतों के भीगने का डर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धक्का देनेवाले थोड़ी-बहुत कोशिश करके चले गए। थोड़ी देर बारिश के रुकने की राह देखी। इस तरह तो न जाने कब तक बैठना पड़े। आसमान में गड़गड़ाहट और बिजलियाँ। ख़ैर, मैं उतरा और धक्का देने लगा। एक और साहब से मदद माँगी, वे मदद करने लगे। गाड़ी के स्टार्ट होने का सवाल ही नहीं था। बस, किसी तरह कहीं ठेल दें। उन्होंने बताया, चारों तरफ़ पानी है, किसी तरह बारहखम्भा पर धकेलें, आगे ऊँची सड़क पर पानी नहीं है। पानी का बहाव ऐसा कि पाँव टिक ही नहीं रहे। गाड़ी के भीतर बाहर पानी—हम दोनों ने ज़ोर लगाकर धकेला। दस-पाँच गज़ धकेलते और थककर हाँफ जाते। ऊपर का पानी सिर, चश्मे को सराबोर किए जा रहा था। आसपास से बसें या कुछ और निकलता तो पानी का भारी सा रेला गाड़ी को छिलता-सा चला जाता। अब बचाव का कोई रास्ता नहीं था। ऐसे ही रहे तो रात भर बैठना होगा। ख़ैर, जैसे-तैसे सूखी सड़क आई और वे साहब बोले—मेरी तिलक नगर की बस छूट जाएगी। बेचारे ने बहुत मेहनत की थी। दो-एक लोगों से मदद माँगी तो किसी को फुर्सत ही नहीं थी। सूखी जगह आ तो गए, अब क्या हो? जूते मन-मन भर के। गाड़ी को फिर जान देने की कोशिश की, पर नहीं। हम मॉडर्न स्कूल के सामने खड़े थे। मन्नू आग्रह करती रही और मैं अन्दर बैठ जाता, हसरत-भरी निगाहों से आते-जाते लोगों को देखता। जब हम पानी में गाड़ी ठेल रहे थे तो आसपास गुज़रती बसों के लड़के तालियाँ बजा-बजाकर चिढ़ा रहे थे। उनका यह रिज़ेंटमेंट कितना स्वाभाविक है, गाड़ीवालों के प्रति!

पहले सोचा, जैसे-तैसे गाड़ी को धक्का देकर मॉडर्न स्कूल में पहुँचा दें, फिर देखेंगे। बोनेट खोलकर देखा। ज़रूर डिस्ट्रीब्यूशन कप में पानी भर गया था। मगर हम लोग कुछ भी नहीं जानते थे। फिर एक साइकिल सवार को रोका। वह कहीं आसपास ही रहता था। मैं और वह इतना धक्का नहीं दे पा रहे थे कि गाड़ी ज़रा स्पीड पकड़े और मन्नू स्टार्ट करे। चार-छह लोगों को रोका। मैं खड़ा होकर एकाध गाड़ी को रोकने की कोशिश करने लगा, ताकि किसी ड्राइवर से अनुरोध कर सकूँ कि डिस्ट्रीब्यूशन कप को साफ कर दे। पहले तो स्टार्ट करने पर थोड़ी आवाज़ भी हो रही थी। अब तो बैटरी एकदम बैठ गई थी और रही-सही उम्मीद भी जाती रही। थोड़ा धक्का देकर वह साइकिल वाला गया। हमने ही कहा कि भैया, तुम जाओ, हम देखेंगे। फिर एक और लड़का रुका। सड़क पर तो पानी नहीं था, मगर ऊपर से बारिश हो रही थी। एक रिक्शेवाले को भी रोका, थोड़ा धक्का-धुक्की करके चलाने की कोशिश की। यह लड़का नई दिल्ली स्टेशन का रास्ता पूछ रहा था, हमने कहा—गाड़ी स्टार्ट करा दो, तुम्हें वहीं छोड़ देंगे। दो-तीन मील है। उसे दिल्ली से बाहर जाना था और गाड़ी दो बजे जाती थी। अब साढ़े दस बज रहे थे। बड़ी देर हम दोनों पानी से बचने को गाड़ी के अन्दर बैठे रहे। फिर धक्का दिया और कुछ देर में ही लड़का उस रिक्शे में बैठकर चला गया। थोड़ी देर में ही सड़क की बत्तियाँ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चली गईं। अब बैठे रहने के सिवाय क्या रास्ता था! मैंने जूते उतारे और फिर कोशिश की। कोई भी गाड़ी रुकने का नाम न ले। सामने ही टॉल्स्टॉय मार्ग और स्कूल-लेन फ्लाई ओवर की बत्तियाँ थीं, मगर हम अँधेरे में थे। अब बैठे-बैठे क्या हो? क्या रात भर बैठना होगा? बारिश, अँधेरा, चश्मा, तर-ब-तर कपड़े...

एक एम्बेसेडर मुड़कर बाएँ हाथ की कोठी में गई। मन्नू के आग्रह पर मैं अन्दर गया, भीगता हुआ। गाड़ी बरांडे के पास रुकी थी और नौकर छाते लेकर आए थे। महिलाएँ उतरकर अन्दर गईं। मुझे देखकर एक साहब आए। नीला रेशमी कुर्ता, उसी रंग का पाजामा। आपस में गुजराती बोल रहे थे। मैंने उनसे अनुरोध किया कि अपने ड्राइवर को भेजकर ज़रा डिस्ट्रीब्यूशन कप साफ करा दें। बोले—वह एम्बेसेडर का है। अभी-अभी मुसीबत से गुज़रकर हम आ रहे हैं। आप पन्द्रह-बीस मिनट रुक जाएँ, पानी अपने-आप निकल जाएगा। यही हमने किया था। ख़ैर, उनका रवैया देखकर फिर आ बैठे। ठंड लग रही थी। मन्नू ने शॉल दे दिया। अब क्या हो? अन्दर बड़ी बनियान सुबह पहन ली थी। सब तर-ब-तर। पाइप पीने की कोशिश करता रहा। गैस ख़त्म। डी.डी.ए. की फाइल, मेरे काग़ज़, सब शायद भीग गए थे। पन्द्रह-बीस मिनट रुककर फिर स्टार्ट करने की कोशिश की। कोई सवाल ही नहीं। गाड़ियाँ बिना रुके गुज़र जातीं। कभी बरसाती-सी ओढ़े साइकिल वाले और कभी स्कूटर वाले। एक सज्जन और लड़की पीछे खड़े देर तक अपने स्कूटर में किकें मार रहे थे, तिपहिया वाला अलग, घट-घट कर रहा था! मैं कभी भीतर बैठता कभी बाहर। मन्नू फिर आध घंटे बाद कोठी में गई और पाँच मिनट में लौटी। दरबान, ड्राइवर अन्दर सभी बैठे हैं, कोई आने को तैयार नहीं। फ़ोन करने को कहा तो कहा, ख़राब है। ख़ैर, जैसे-तैसे और गाड़ी को ठेला। अब अगली कोठी में कोशिश करनी थी। इसके सिवा तरीक़ा ही नहीं था कि गाड़ी यहीं छोड़ें और जैसे-तैसे जाएँ। पहले कुत्ता आया। बरांडे में सन्नाटा रहा। फिर एक सज्जन कुर्ते-पाजामे में निकले, दूसरे सिरे से भी इसी तरह के सज्जन आए, दो महिलाएँ निकलीं। मैंने अपनी मुसीबत बताई। बोले—हमारी दो गाड़ियाँ कहीं ख़राब पड़ी हैं। अभी तो कोई है नहीं। ख़ैर, मैं फिर वापस आ गया। अब ठंड लगने लगी थी। एकदम सड़क की बत्तियाँ चली गईं। थोड़ी देर बाद फिर हम लोगों ने सोचा कि इस तरह कब तक बैठे रहेंगे। मैं फिर गया। तब उनकी गाड़ी आ गई थी। मैंने कहा—अगर आप इसे भेज दें तो गाड़ी हम अन्दर खड़ी कर जाएँ। सुबह मँगा लेंगे। उन्होंने ड्राइवर से कहा। वह गया और गाड़ी धकेलकर हमने अन्दर खड़ी कर दी। सारा सामान जो जैसा था, उसमें छोड़ा। मन्नू फ़ोन करना चाहती थी। महिलाएँ फिर निकलीं। पुरुष जब पहले निकले थे, तभी गँधा रहे थे, यानी ठंड दूर कर रहे थे। इस बार महिलाओं से मन्नू ने फ़ोन पर टैक्सी मँगा देने को कहा। बगल के कमरे से फ़ोन निकाला गया। महिला ने टैक्सी स्टैंड फ़ोन किया। न वहाँ कोई थी, न आने को तैयार थी। सोचा, बाहर निकलते हैं, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलेगा, उसी से चलेंगे। मन्नू ने एक फ़ोन बहादुर को किया। काफ़ी देर में समझाया कि नीचे बाहर ताला लगवा दे, खाना खा ले, और जागता रहे। ये सरीन लोग थे। उन्होंने बारिश रुकने तक बैठने का आग्रह किया, मगर हम उन्हें धन्यवाद देकर बाहर आ गए। बस स्टैंड पर एक-दो आदमी और थे। बाक़ी सन्नाटा। एकाध स्कूटर गुज़रा। एक तो रुका ही नहीं, दूसरा बीस रुपए माँगने लगा। बसें बिना रुके चली गईं। एक बस जैसे-तैसे रुकवाई थी बिना नम्बर देखे चढ़ गए। करोलबाग जा रही थी। सोचा, रीगल पर ही उतरकर कुछ तलाशेंगे। यहाँ से तो निकलें। वहाँ कुछ न कुछ मिलेगा। रीगल पर उतरे। बारिश बन्द थी। एकाध स्कूटर से खुशामद की। एक सरदारजी ने 12 रुपए माँगे। दस का आग्रह किया। ख़ैर, बैठाया। बोले—मुझे मल्कागंज से पेट्रोल लेना है। इस समय वही खुला हुआ होगा। पेट्रोल नहीं है। अब ठंड ज़ोर से लग रही थी। सरदारजी पँचकुइयाँ, झंडेवालान, फिल्मिस्तान से आए। दिल्ली क्लॉथ मिल पर बसों, ट्रकों, कारों का जमघट। पुलबंगश से पहले कोई एक्सीडेंट हो गया था और साइकिल भी नहीं जा सकती थी। बीच में फँस गए। सरदारजी ने बहुत इधर-उधर से निकालने की कोशिश की मगर बेकार। हारकर चक्कर लगाकर आए तो आज़ाद मार्केट क्रॉसिंग पर स्कूटर ठप्प। जैसे-तैसे स्टार्ट किया। जब सरदारजी ने स्कूटर रोशनआरा को न मोड़कर बाड़ा हिन्दूराव अस्पताल वाली रिज पर मोड़ा तो माथा ठनका। एकदम सुनसान रास्ता और जंगल। वहाँ दुनिया भर के लूटमार, कत्ल होते हैं। स्कूटर बार-बार रुक रहा था और हर पाँच-सात गज पर सरदारजी मुँह से पेट्रोल खींचकर उसे चलाते। चौराहा पीछे छूटने लगा। हर बार मन होता अब भी उतर लें—वरना कल खबर बनकर छपेंगे। ख़ैर, एक स्थिति ऐसी आई कि स्कूटर किसी तरह टस से मस नहीं हुआ। सरदारजी भरसक इसी प्रयास में थे कि यह फ़र्लांग भर पार कर लें तो पेट्रोल पम्प तक ढलान आ जाएगा। अब हम ऐसे सुनसान में आ गए थे कि वहाँ कुछ भी किया जा सकता था। मगर थोड़ी-थोड़ी देर में एकाध गाड़ी, टैक्सी आ जाती थीं। एक टैक्सी भी वहीं आकर खराब हुई। उसमें शायद बीमार बैठे थे। कोई एमर्जेंसी रही होगी। हमारे सरदारजी ने बड़ी खुशामद की कि एक बोतल पेट्रोल दे दें। उसके पास खुद खत्म हो गया था। वापस लौटने के सिवा कोई चारा नहीं था। ढलान पर आसानी से बरफ़खाने वाले चौराहे पर आ गए। यहाँ दो स्कूटर और एक तिपहिया पहले से खराब खड़े थे और लोग उन्हें ठीक कर रहे थे।

सरदारजी की काफ़ी कोशिशों के बावजूद न तेल मिला, न स्कूटर चला। बोले—आपके लिए रिक्शा ले आता हूँ। दौड़कर गए और थोड़ी देर में ही रिक्शा लेकर आ गए। बोले—तीन रुपए दे दीजिए। उन्हें दस रुपए दिये तो उन्होंने आठ रखकर दो लौटा दिये। तब लगा, सरदार शायद भला आदमी ही था और हमारी मदद करना चाहता था। ऐसे समय अपने सारे सोचे हुए पर ग्लानि होती है। अब खुले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिक्शे का सफ़र तय हुआ। बारिश फिर होने लगी थी। घंटाघर से सब्ज़ीमंडी वाला सारा रास्ता पानी से भरा था, रिक्शे के पहिए आधे डूबे थे। जगह-जगह गाड़ियाँ, स्कूटर मरे तिलचट्टों की तरह पड़े थे। ख़ैर, घर आए। घर के सामने भी लबालब। रास्ते भर मेरे घुटने और टाँगें ठंड के कारण बुरी तरह काँप रहे थे। मैं सचमुच ठिठुर रहा था और कहीं बारिश का मज़ा भी ले रहा था।...घर आकर सबसे पहले सारे कपड़े उतारे...और 'आशा' का आधा पैग नीट पिया। खाना खाया और सो गए। सुबह शायद एक छींक भी नहीं आई।...और फिर वही ज़िन्दगी। सुबह कर्णसिंह और भोलेश्वर को भेजकर गाड़ी मँगा ली। 9 नम्बर, बारहखम्भा रोड के सरीन लोगों को धन्यवाद भी नहीं दे सके। अब जाकर देखेंगे, कभी देंगे...

20.4.83

कल राजी सेठ, गुड्डी—उनकी छोटी बहन और सेठ साहब घर आए थे। उनसे बातचीत के सिलसिले में मैंने बताया कि "मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि जिस कमरे में मुझे रहना हो, उसमें एक भी किताब न हो...सचमुच कितना भयानक कमरा होगा, जहाँ चारों तरफ़ देखूँ और निगाह कहीं किसी किताब पर न अटके..." कहा भी और सोचता रहा, जैसे किसी भगवान-भक्त को भगवान की तस्वीर के होने से एक आश्वासन मिलता है, बल मिलता है, शायद यही स्थिति मेरी है। फिर कहा, "नहीं, आश्वासन नहीं, मुझे लगता है, जैसे पुस्तकें मेरे अपने अस्तित्व का विस्तार—एक्सटेंशन ऑफ़ माई एक्सिस्टेंस हैं..." इससे पहले कभी मैंने सोचा भी नहीं था कि पुस्तकें मेरे जीवन की ऐसी अनिवार्यता हैं। शायद इसकी तुलना उस पूँजीपति या लालची बनिए से की जा सकती है जो रोज़ रुपयों, या गहनों को देख-गिनकर अपने होने की सार्थकता महसूस करता है। मैं चाहे एक किताब न पढ़ूँ, मगर वे मेरी पहुँच में हैं, यही कितनी बड़ी चीज़ है।

5.5.83

हालाँकि गया सिर्फ़ दो ही जगह हूँ। मगर लगता है, जैसे बरसों से अपने ठीहे पर नहीं हूँ। यह एक नया फ़िनॉमिना है। पहले जाता था और आकर वापस मेज़ पर फिर जम जाता था। अब जाता हूँ और फिर लौटकर हर चीज़ को अपने लिए नए सिरे से 'जमाता' हूँ। 22 अप्रैल को 'कहानी कार्यशाला' में हिस्सा लेने भोपाल गया। शानी और सलमा भाभी साथ थे। वहाँ 'न्यू रेस्ट हाउस' में ठहरे। यहीं सन् '76 में मृदुला के साथ ठहरा था। तब शानी वहाँ था। विष्णु खरे से भेंट हुई। भारत भवन में शुरुआत हुई मुख्यमन्त्री के भाषण से। उसी दिन शाम को माखनलाल चतुर्वेदी ग्रन्थावली का विमोचन भी था, वात्स्यायन जी के हाथों। शाम को हम लोग अपने कमरे में बैठे—यानी मेरे। फिर अगले दिन वही भारत भवन, वही लंच-डिनर। वही शाम को दारू। उस दिन शानी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्बेमामूल नाटक किया। मुझे लगता है, अब इसके लिए सँभाल सकना मुश्किल हो गया है। हम लोगों को तीन पैग के बाद रुक जाना चाहिए। ख़ैर, 26 की शाम को मैं मामाजी से, ओ.पी. मेहरा और दूसरे दढ़ियल सज्जन से मिला। इजलाल और शानी आन्ध्र प्रदेश एक्सप्रेस से छोड़ने आए। अगले दिन ग्यारह बजे दिल्ली पहुँचे। घर पर 30 को, फिर बदायूँ चलना था। सुबह ही कार से रवाना हुए। साढ़े बारह-एक तक सुभाष वशिष्ठ के यहाँ पहुँच गए। शाम को नाटक में। दो-ढाई हज़ार की भीड़ थी। पहले तो फ़्यूज़ उड़ गया। नाटक सवा सात पर शुरू होना था, सवा आठ पर हुआ। फ़्यूज़ के कारण पौन घंटा और गया। मगर सभी बैठे रहे। माइकों का प्रबन्ध इतना ख़राब था कि डायलॉग ही समझ में नहीं आ रहे थे। पीछेवालों के सुनने का तो सवाल ही नहीं उठता। मगर फिर भी नाटक की तारीफ़ हुई। करनी भी पड़ी। सेट इत्यादि से लेकर अतिनाटकीय अभिनय। सुभाष पर तो नाटक छाया हुआ था। वैसे बदायूँ जैसी जगह में ऐसे नाटक कर सकना अपने-आपमें साहस की बात थी। जहाँ पहले रास और रामलीला के सिवा कुछ न होता हो, वहाँ टिकट, कुर्सियों, सेट से लेकर रिहर्सल, प्रस्तुतीकरण तक सभी करते हुए ऐसा दर्शक-वर्ग, अभिनेता तैयार कर लेना बहुत बड़ा श्रेय है। अकेले सुभाष ने बहुत बड़ा काम किया है। हज़ार-दो हज़ार रुपए अपने पास से हर साल फूँकता है। घर क्या है, जैसे धर्मशाला! पत्नी सन्तोष बहुत बड़ी सहयोगिनी है। वहाँ से आते ही मन्नू को बुख़ार। सुबह 'जनवादी लेखक संघ' की मीटिंग। दस बजे पहुँचे। बीस-बाईस व्यक्ति। संचालक मधुरेश। उल्टा-सीधा बोले। मधुरेश के यहाँ खाना खाया। शाम को पाँच बजे निकला था रामपुर के लिए। मगर मन्नू को भयानक बुख़ार। पहले सुभाष, भोलेश्वर के साथ डॉ. गुप्ता को लाया। दवा के लिए बाज़ार जाते हुए गाड़ी का हॉर्न ठीक कराया। रात हो गई। शाम को जाना स्थगित। सुबह पाँच पर तय हुआ। रात भर मच्छरों ने तंग किया। सुबह पौने छह पर निकले बरेली के लिए। रास्ते में टायर पंक्चर। बरेली में ठीक कराया—सवा आठ पर रामपुर। भोलेश्वर ने 90 के हिसाब से गाड़ी चलाकर पौन घंटे में रामपुर पहुँचा दिया। हेमेन्द्र का घर ढूँढ़कर पहुँचे। केवल रेणु थी, बच्ची और लड़का। घर फ़र्नीचर अच्छा था। रोना वही कि सुबह आठ बजे निकलकर रात को आठ पर या देर से वापसी। कभी भी कोई दिन ऑफ़ नहीं। सवा चार तनखा और घर-फ़र्नीचर। गाड़ी ले जाती है, लाती है। ख़ैर, सारे दिन हँसी-खुशी रहे। मन्नू वैसी ही मरी पड़ी रही। अगले दिन सुबह पौने छह पर रवाना। भोलेश्वर को चस्का लग गया था—90 पर लाया और दस तक 180 किलोमीटर पार करके दिल्ली। थकान थी, इसलिए 3 को सिर्फ़ सोए।

6.5.83

आते ही सबसे पहले समाप्त किया संजीव का उपन्यास 'किसनगढ़ के अहेरी'। गाँव की भयानक असुरक्षा, आतंक और जालसाज़ियों का लोमहर्षक दस्तावेज़। मगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इम्पैक्ट नहीं छोड़ता। यही मैंने संजीव को लिख दिया है कि तुमने दर्जनों कहानियों के हिस्से उसमें ज़ाया कर दिये हैं। फिर पढ़ी मृदुला के उपन्यास 'क़तार से बाहर' की पांडुलिपि। अपने और योगेश के सम्बन्धों को लेकर लिखा है कि किस तरह याचक बनकर घुसा और कैसे धीरे-धीरे ब्लैकमेलर हो गया। सचमुच बहुत तकलीफ़ और ग़ुस्से में ही उपन्यास लिखा गया होगा। मैं इसे कथा रचना की तरह तो पढ़ ही नहीं सकता। सिर्फ़ एक स्कैंडल की तरह पढ़ता रहा। इसमें मेरा चरित्र है, शब्द प्रकाशन के राजेश्वर मिश्र की तरह। मुझे सारी बातें याद आती रहीं—जब एजेंसी खोली थी, जब बैग में बोतल लिये आता था, जब नाटक करा रहा था। मैंने देखा कि '80 में मैंने जो 'क़ैद' कहानी लिखनी प्रारम्भ की थी, अनुमान से मैं भी सच के काफ़ी नज़दीक पहुँच रहा था। अभी सोच रहा हूँ कि दुबारा लिखूँ या नहीं। एक बार लगता है, मेरा अपना कोण है और लिखने में हानि क्या है? वैसे मृदुला ने उस आइडिया को एक चैप्टर के अन्त में एक पैराग्राफ़ में दे दिया है। कल उससे काफ़ी देर टेलीफ़ोन पर बातें होती रहीं।

आज मन्नू अपने हौज़ख़ास के फ़्लैट का पजेशन लेटर ले आई है।

7.5.83

इधर मैं महसूस कर रहा हूँ कि शर्माजी से दूरी बढ़ती जा रही है, जैसे निरंतर एक-दूसरे के लिए अपरिचित और बेगाने होते जा रहे हैं। आपस में संवाद टूट गया है। मुझे और मन्नू को यह ठंडापन शर्माजी के व्यवहार में ही लगता है, सरयू के नहीं। स्थिति पिछले छह-आठ महीने से यही है। पहले अजित परिवार से, निर्मलाजी से बड़ी निकटता थी, लेकिन अजित-स्नेहजी के आपसी तनाव, अजित के हर समय पैसे बटोरने की तिकड़मों में लगे रहने, या घुन्ने या आत्मकेन्द्रित स्वभाव ने हम लोगों को नहीं, सभी को दूर फेंक दिया है, आज न उनके निकट प्रभा-अर्चना रह गई हैं, न कृष्णा शर्मा। आप ही चाहें तो उन्हें फ़ोन करें, सम्पर्क करें—अपनी तरफ़ से उन्हें कोई ज़रूरत नहीं है। निर्मलाजी के सिर पर यूनिवर्सिटी का हेड होना ऐसा सवार है कि अगर जैन साहब भी दो बार उनके कमरे में घुस जाएँ तो उन्हें लगेगा कि इन्हें या तो नौकरी चाहिए या कोई काम निकलवाना है। डॉ. नगेन्द्र की चेली इस महिला के लिए कहीं भी कोई सम्बन्ध सहज-स्वाभाविक नहीं रह गया है। अपने चमचों से या तो अपनी प्रशंसा सुनना या स्वयं करना—यही दो स्थितियाँ हैं। ले-देकर यही शर्मा परिवार था जहाँ अपनापन और निर्व्याज घनिष्ठता थी। शर्माजी के स्वभाव को वस्तुत: मैं अभी तक समझ नहीं पाया हूँ। वे भीतर से वही पूजा-पाठी, कर्मकांडी हिन्दू हैं जो हज़ारों बार घोटी गई सत्यनारायण की कथा, या हनुमान चालीसा की पोथी को श्रद्धा-विश्वास की मशीनी आवृत्ति में आँख बन्द कर रोज़-रोज़ पढ़ता जा सकता है। संस्कृत से उन्हें भाषा और ज्ञान के धरातल पर नहीं, श्रद्धेय-मंत्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरातल पर प्यार है। मुझे लगता है, वे अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के सरोकारों से ऊपर नहीं उठ पाते। बाक़ी सृष्टि से उनके सम्बन्ध ऑफ़िशियल रह गए हैं। मैंने एक बार सोचा था कि उनका बौद्धिक विकास आधुनिक और विचारों के साथ नीचे से ऊपर यानी वर्टिकली नहीं हुआ है, एक ऐसे बौने पौधे के रूप में हुआ है जो कई-कई शाखाओं में छितराकर फैल जाता है। इसीलिए कहीं आधुनिकता है तो कहीं ब्यूरोक्रेसी, कहीं दक़ियानूसीपन, तो कहीं धर्मांधता और पुरातन प्रेम—सब अपनी-अपनी दिशा में फैले हैं, कोई भी एक-दूसरे को प्रभावित नहीं करता—यानी सब मिलाकर न एक दृष्टि बनती है, न दर्शन। कमोबेश हम सबका विकास इसी तरह छितराए ढंग से होता है। मगर हम शायद कुछ छोड़ते जाते हैं, कुछ ग्रहण करते जाते हैं। कुछ को पुराना और सामन्ती मानते हैं, कुछ को युक्ति-संगत। वे हर पुराने को सुरक्षित रखते हैं, उसके बनाए रखने को सही सिद्ध करते हैं...मगर क्या यही कारण रहा है कि मैं कहीं उन्हें छोटा दिखाना या सज़ा देना चाहता हूँ? फिर मेरी जो शिकायत है कि बिना दूसरे को छोटा सिद्ध किए अपना बड़ापन साबित नहीं कर सकते, वह क्या स्वयं मेरे ऊपर लागू नहीं हो सकती? हम लोग खुद अपने भीतर इतना बड़प्पन क्यों नहीं ला पाते कि दूसरा स्वयं छोटा हो जाए? बहरहाल, कहीं कुछ टूट तो गया! ही है। सरयू ने कल बताया था कि आप भी बहुत व्यस्त हो गए हैं और इनकी भी अपनी सरकारी उलझनें हैं। नतीजे में जब हम लोग चाहते हैं तो आप खाली नहीं होते और जब आप चाहते हैं तो हमें कुछ उलझाव होता है। जैसे आज इनकी उसी समय राजनिवास मार्ग में मीटिंग है जब मेरी एक कुलीग की शादी है। मुझे अकेले ही जाना होगा। अब जैसे उस दिन हम लोग गए तो आप श्रीमती सांघी के यहाँ सांघी साहब की मृत्यु पर गए थे। नतीजे में मुलाक़ात नहीं हुई।...हो सकता है, सरयू की बात सही हो, मगर यह स्थिति तो पहले भी थी। तय करके भी तो बहुत से प्रोग्राम साथ बनाए जा सकते हैं।

14.5.83

पिछले दस दिनों में दो बार हम और लालानी-चोरड़िया मिल चुके हैं। पता नहीं बात आगे बढ़ी है या नहीं। इलाहाबाद से सर्कुलेशन-सेल के लिए अमर गोस्वामी किसी निगम को भेजनेवाला था। वह नहीं आ पाया। अब उसे लिख दिया है कि 26-27 को आ जाए। तब तक पत्रिका की कॉस्ट इत्यादि की ही बातें हुईं। लालानी ने एक सुझाव और रखा कि नई कम्पनी को बनाने में 20 हजार के लगभग लगेगा, इससे अच्छा क्यों न हम लोग अक्षर में ही शामिल हो जाएँ! आप...मैजोरिटी शेयर रखकर बताइए, कितने परसेंट हमें देंगे। मैंने कहा—पैंतीस-चालीस। बोले—इस काम का अलग यूनिट बना देंगे। अपने चार्टर्ड एकाउंटेंट से बात कर लीजिए। मैंने सोचने का समय माँगा। इस बीच शायद वे भी सोचेंगे। इधर मिश्राजी कहते हैं कि हमें प्रेस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यादि की परमिशन, बैंक इत्यादि की क्लियरेंस मिल गई है। अब एक बार हम लोगों को मिलना चाहिए। उनके यहाँ छह-आठ महीने फिर भी लगेंगे ही। मैं सोचता हूँ, पहले यहाँ शुरू कर दें, फिर वह देखेंगे।

18.5.83

परसों से घर में अनबोला है—वही तनाव। हुआ यह कि नन्ही के बच्चों के लिए ट्यूटर के लिए पूछने और 'लेकिन दरवाज़ा' उपन्यास देने के लिए मैं सरयू की तरफ़ से होता हुआ आया। अज्जू ने बड़े प्यार और परिश्रम से कॉफ़ी बनाई। लिखने-पढ़ने की बातें स्वभावत: मेरे लिखने पर आ गईं। कारण पूछने लगी तो मैंने ईमानदारी से बता दिया कि पिछले साल-छह महीने से मैं अपने आपसे निरन्तर संघर्ष कर रहा हूँ, लिखने की कोशिश करता हूँ—मानसिक रूप से उसी सबके साथ जीता हूँ, मगर बात ही नहीं बनती। पूछा, 'क्यों ?' मैंने कहा, 'पता नहीं क्यों ?' शायद अपराध-बोध है। जिसने क्रमश: मुझे बाँझ कर दिया है, शायद ज़िन्दगी का यह पैटर्न है, जिसे कहीं भीतर से मन नहीं स्वीकार करता। कह नहीं सकता, क्या है। शायद इतनी निश्चिन्त, सुख-सुविधा की आसान ज़िन्दगी कभी मेरा सपना भले ही रही हो, मेरी भीतरी मानसिक बनावट के साथ जाती नहीं है। मुझे लगता है कि यह ज़िन्दगी मेरी नहीं है। मीता की बातें होने लगीं। मैं उसके प्रति अपनी ज़िम्मेदारी की बातें करने लगा। मैंने पूछा, ''तुम बताओ, रास्ता क्या हो ?'' हो सकता है, मेरे समझने में भूल हो, या मैंने आज उसकी कही हुई बात को बहुत सिम्पलीफाई कर लिया हो, उसने अनेक शब्दों में घुमा-फिराकर जो कहा, वह यह कि अब आप वहाँ कुछ नहीं कर सकते। उसकी जो भी ज़िन्दगी है, रहेगी। उसे भूलकर आप इधर ध्यान दीजिए और यहीं मन लगाइए। मैंने पूछा—''यानी पचास साल की उम्र में उसे मरने के लिए छोड़ दूँ ? मैं उसके साथ नहीं रह सकता, यह मैं जानता हूँ, मगर उसे यह आश्वासन और मानसिक विश्वास भी न हो कि कोई ज़रूरत पड़ने पर उसकी मदद कर सकता है। जब उसने पूछा कि क्या उसका कोई और नहीं है तो मैंने सारी स्थिति बताई। छोटे-से उस कस्बे में अकेले पड़े रहो, बीमार होकर मर भी जाओ तो मुझे दस-बीस दिनों बाद खबर मिले। फिर पता नहीं किस बात पर उसने कहा, ''माफ़ कीजिए, आप बहुत सेल्फ़िश हैं...।'' इस पर मैं भड़क गया। सन्तुलन नहीं खोया, मगर तर्क की तरह पूछा, ''अच्छा बताओ, महिलाएँ अच्छी नर्स क्यों होती हैं ?'' बोली, ''क्योंकि उनमें ज़्यादा धीरज और सहानुभूति होती है।'' मैंने कहा, ''बिल्कुल नहीं। इसलिए कि महिलाएँ अधिक क्रूर और हृदयहीन होती हैं। वे अधिक हिंसा और वॉयलेंस बर्दाश्त कर सकती हैं। खून और दूसरी शारीरिक तकलीफ़ों की वे बचपन से अभ्यस्त हो जाती हैं। हर प्रसव जैसे एक भयानक वॉयलेंस है। इसलिए घाव, खून-खराबा उन्हें उतना विचलित नहीं करता जितना पुरुषों को...'' बोली, ''बिल्कुल गलत है। मैं तो देखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही बेहोश हो जाऊँ। और जिस खून-खराबे की आप बात कर रहे हैं, उसे औरत देखती कब है, उसे तो सिर्फ़ भुगतती है...'' ख़ैर, इसी नोट पर मैं चला आया। फिर शायद एक-डेढ़ घंटा उसकी मन्नू से बातें हुईं। वही सब बातें हुई होंगी और तब से घर में नए सिरे से मौन, शीत-युद्ध...आज लगता है, थोड़ा ढीला हुआ है...पर समय लगेगा...

27.5.83

मैंने इलाहाबाद में अमर गोस्वामी के मार्फ़त जिस निगम को लिखा था, उसे 26-27 को आना चाहिए था। आज भी नहीं आया। हर बार लालानी इत्यादि के सामने अगली तारीख़ों की बात करना अच्छा नहीं लगता। मगर क्या हो ? प्रकाश आतुर के अनेक टेलीफ़ोनों के बाद मैं 23 को सुबह प्लेन से उदयपुर गया। उससे एक दिन पहले माधवी-लक्ष्मीनारायण आए थे, वे किसी को छोड़ने पालम जा रहे थे, ठहरे राजस्थान हाउस में थे। तय यही हुआ कि मैं ठीक सवा-पाँच पर राजस्थान हाउस पहुँचूँगा। फिर वहाँ से सब साथ पालम, सुबह निकले। कस्तूरबा मार्ग पर हिन्दुस्तान टाइम्स के सामने गाड़ी का पंखा ही टूट गया। कोई सवारी नहीं नहीं मिली तो जाती हुई डी.एल.वाई. पकड़ी। पहुँचे राजस्थान हाउस, वे लोग निकल गए थे, इसलिए सीधे पालम। उसने 40 रुपए लिये। माँग तो 70 रहा था। ख़ैर, पहुँचे उदयपुर।

एयरपोर्ट पर वही मालाओं से स्वागत। सुरेन्द्र व्यास नाम के एक डिप्टी मिनिस्टर भी थे। जयपुर में कोमल भी आ गए थे। ख़ैर, रुके हम सर्किट हाउस में। शाम को प्रोग्राम तय था। वहाँ चीफ़ मिनिस्टर तो नहीं आए, आई कमला बेनीवाल--शिक्षा मन्त्री। बहुत अच्छी हिन्दी में लेखकों के बारे में कहा। फिर मुहम्मद मांकड़, गुजरात साहित्य अकादमी के चेयरमैन। फिर मैं। मैंने वही बातें कहीं। पुरस्कार देना, लेखक का सम्मान करना, मान्यता देना अच्छी बात है, मगर उसे सबसे अधिक सन्तोष मिलता है, अपनी रॉयल्टी की कमाई से। पुरस्कार देना ऐसा ही है, जैसे आँधी-तूफ़ान पार करके आए आदमी को रस्सा फेंकना। यह उसकी रचनात्मकता में हिस्सेदारी नहीं, उसकी उपलब्धि का सम्मान है। मगर यह राशि कम है, इतनी तो मिलनी ही चाहिए कि लेखक साल भर आर्थिक रूप से निश्चिन्त होकर अपनी नई कृति पूरी कर सके। इस राशि में मैं सूट बनवा लूँगा या पुराना कोई कर्ज़ा चुका दूँगा...दूसरे, वातावरण चारों तरफ़ का जो है वह है ही, हिंसा, आपाधापी की पुस्तकें भरी पड़ी हैं। अच्छी किताबों को हमने अनुपलब्ध कर दिया है। और खुली छूट दे दी है बम्बइया सिनेमाओं और बाज़ारू पत्रिका को...क्यूब्रिक के 'क्लॉक वर्क आरेंज' की तरह हमारे भीतर की बूँद-बूँद संवेदना को निचोड़ फेंकने का यह षड्यंत्र हमें कहाँ ले जाकर छोड़ेगा ? राजनेताओं को साहित्यकार की ज़रूरत नहीं है, जिसे वह साहित्यकार कहता है, वह होता है पत्रकार...पत्रकार ज़्यादा उपयोगी, तत्काल फलदायक प्राणी है। ख़ैर, इसी तरह की बातें कहीं और उनकी बहुत प्रशंसा हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौटते हुए रास्ते में हनुमान प्रभाकर, दूसरे मन्त्री मिले। उनकी बातों से ऐसा लगा, जैसे मेरी बातों की आपस में चर्चा हुई है। उन्हें शायद यह भी लगा, जैसे कमलाजी का अपमान हुआ है। ख़ैर, मुझे लगा, जैसे मैंने अधिक आत्मविश्वास से सारी बातें कह दी हैं। शाम को शेषमल पगरिया, वेददान, प्रकाश आतुर हम लोग साथ ही बैठे। अगले दिन का टिकट उन्होंने नहीं कराया था। दोपहर को दादाभाई के यहाँ, शाम को हेमलता ललेसरा के यहाँ, फिर डॉ. मोहनसिंह मेहता के यहाँ गए। रात को गुलाब कोठारी के यहाँ, कोमल बाबू के साथ पीटर स्कॉट पी। पाँच-छह लोग थे। उन्होंने आनन्द-भवन से खाना मँगाया था। अच्छी बैठक रही। गुलाब कोठारी कुलिश का लड़का है और उदयपुर में 'राजस्थान पत्रिका' निकालता है। कोमल ने बताया कि 'राजस्थान पत्रिका' की सालाना विज्ञापन-आय आठ करोड़ से ऊपर है। मैं तो सुनकर ही स्तब्ध रह गया। पता लगा, शायद उन दोनों ने कोमल को अपने बोर्ड-ऑफ़ डायरेक्टर्स का चेयरमैन या ऐसा ही कुछ बनाया हुआ है। यही तो कारण है कि पार्लियामेंट स्ट्रीट पर उन्होंने डिकॉस्टा की पब्लिक ओपिनियन लिमिटेड के शेयर ख़रीद लिये हैं और मुनीरका में एक मकान ले लिया है। यानी दिल्ली में ऑफ़िस बनाने जा रहे हैं। ज़ाहिर है कि पच्चीस-तीस हज़ार महीना ख़र्च करेंगे। मुझे अन्दाज़ा नहीं था कि कुलिश सचमुच इतने बड़े हो गए हैं।...उदयपुर की व्यवस्था ही दस-पन्द्रह हज़ार से कम नहीं लगती।...तब से वेददान मूल प्रश्न को लेकर परेशान है कि कैसे इसे राजस्थान पत्रिका बनाया जाए।

इधर तीन दिन पहले से हमारे फ़्लैट का काम शुरू हो गया है। बेचारा रंजन धूप-गर्मी में भागदौड़ करके कभी लकड़ी जमा कर रहा है तो कभी संगमरमर। मिस्त्री लगा दिये हैं। आज या कल में उसका रिज़ल्ट भी आ जाएगा। बहुत ही आशंकाग्रस्त है। पता नहीं, क्या होगा? आज सुबह मैं गाड़ी सीखने भी गया था। अभी-अभी देखा तो एक छोटा-सा नेपाली लड़का 'अक्षर' के बाहर बैठा है, बहुत छोटा। लेकिन वस्तुतः तेरह-चौदह वर्ष का है। उसका बड़ा कोई नहीं है। कहाँ से आया है, कौन छोड़ गए हैं, कुछ भी नहीं पता। इतना छोटा है कि उससे किसी प्रकार के मिस्चीफ़ का डर भी नहीं लगता। हो सकता है, अपने-आप भेजा गया यह लड़का ही हमारी सारी समस्याएँ हल कर दे...शर्माजी से पिछले पन्द्रह दिनों से टेलीफ़ोन पर भी बात नहीं हुई है।

7.6.83

इन दिनों बेहद ही धर्मसंकट की स्थिति से गुज़र रहा हूँ। रंजन, आई.ए.एस. में तो नहीं, सेंट्रल सर्विसेज़ में अच्छी पोज़ीशन ले आया है। इधर उसने जिस तरह फ़्लैट का काम शुरू कराया है, या भागदौड़ की है, भयानक कड़कड़ाती धूप के बावजूद वह मुझे बहुत भीतर तक उसके साथ जोड़ती है। मैं जानता हूँ, कहीं इस सारे के पीछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिंकू के मन को जीतने का प्रयास ही है, मगर हम सभी उसके ऊपर इतना निर्भर करने लगे हैं कि उसे परिवार के सदस्य के सिवा कुछ सोच ही नहीं पाते। बाहर वाले तो यही समझते हैं कि टिंकू का लगभग तय ही है। मगर हम तीनों ही जानते हैं कि टिंकू शायद उससे शादी नहीं करेगी। उसका मन इतना फिर गया है कि वह इस भाषा में सोचती ही नहीं है। उधर रंजन है कि उसके एक इशारे पर जान निछावर करने को तैयार है। अगर वह अच्छी तरह बोलती है तो फिर उसके मन में सपने जागते हैं, अगर रूखी होती है तो आत्महत्या करने की बातें सोचता है। इसी उम्मीद पर बेचारा हमारा फ़्लैट बनवा रहा है कि शायद इसी अहसान से टिंकू पिघल जाए...मैं दिल से चाहता हूँ कि टिंकू का मन फिरे और ये लोग सफल वैवाहिक जीवन बिताएँ।

मगर इधर एक नई बात हुई है। बहुत पहले से तय था कि प्रकाश का लड़का सुनील आएगा। उसने या प्रकाश ने टिंकू की तारीफ़ सुनी होगी। बहुत पहले ज़िक्र किया था कि अगर यह सम्बन्ध हो जाए तो कैसा रहे? मैंने लिखा था कि तय करनेवाले हम कोई नहीं हैं, और दोनों एक-दूसरे को क्लिक करेंगे, तभी आगे बात बढ़ेगी। इस पर शायद भाभीजी या प्रकाश ने बुरा भी माना था। सुनील पिछले साल आनेवाला था। इस साल आया 31 मई को। आगरा होकर आज वह यहाँ है। आया कल ही था। हमारे साथ ही ठहरा है। लड़का स्मार्ट, सुन्दर और सुशील है। प्रकाश का लड़का हो तो मुझे और क्या चाहिए! हो सकता है, मेरे लिए ज़िन्दगी भर का सपना हो..आज लगा कि लड़का लगभग तैयार है। टिंकू हिचकिचा रही है। मैं न प्रकाश को मना कर सकता हूँ, न रंजन को। दोनों जगह भावनात्मक लगाव का सवाल है। इसलिए मैं और मन्नू दोनों चाहते हैं कि वह दो-एक दिनों में चला जाए क्योंकि शायद शनिवार को या रवि को रंजन आ जाएगा। हम चाहते हैं कि दोनों का आमना-सामना हो ही नहीं। मगर सुनील अभी अगस्त तक है। इधर रंजन की योजना जुलाई के पहले सप्ताह बहन के पास लन्दन जाने की है। हम चाहते हैं कि महीने भर मकान की व्यस्तता की बात करके सुनील को पन्द्रह जुलाई से पहले न बुलाया जाए। उसे नैनीताल, कश्मीर इत्यादि भी जाना है। बंगलौर भी। इस बीच वह घूम आए। यही तरीक़ा हो सकता है कि दोनों आमने-सामने न पड़ें। इसमें रंजन ही बेचारा दुख पाएगा। प्रकाश को भी मैं तकलीफ़ नहीं देना चाहता। मगर सुनील कई तरह जम नहीं रहा। यह सही है कि न मैं प्रकाश को दुखी कर सकता हूँ, न रंजन को। मगर प्रकाश को जानना एक बात है और उस आधार पर ऐसे लड़के के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है जो टूटे परिवार में पला और बढ़ा है। भाभीजी और प्रकाश के हमेशा से सम्बन्ध जो रहे हैं, उसमें मानसिक रूप से बहुत स्वस्थ बच्चे बढ़ेंगे, इसमें शक है। दूसरे उसे अपना कैरियर अमेरिका में ही तलाश करना है। यानी टिंकू अमेरिका जाकर रहे। तीसरे शादी इसी समर में, यानी एकाध महीने में हो। ये सारी बातें हमारे लिए असम्भव हैं। एक तो टिंकू बाहर रहे तो यहाँ कौन देखेगा? दस-बीस साल बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
क्या हम लोगों को बिल्कुल ही अकेला रहना होगा? 'अक्षर' हम लोगों की रॉयल्टी, पुस्तकों को हमारे बाद कौन सँभालेगा? फ़्लैट का क्या होगा? इसके साथ ही भीतर अन्धविश्वास या आशंका भी है कि कहीं टिंकू और सुनील के बीच भी प्रकाश-प्रतिभाजी वाली कहानी न दुहराई जाए! सभी दृष्टियों से बात मुझे व्यावहारिक लग नहीं रही। आज ये लोग शाम को मिलेंगे—फ़्लैट पर और चाणक्य इत्यादि जाएँगे। सचमुच कैसी अजीब स्थिति हो गई है।

7.7.83

लगभग महीने भर से कलम नहीं उठाई। पता नहीं, समय नहीं मिलता या मन ही नहीं बनता! सुबह इधर जाने कैसा अजीब रूटीन हो गया है कि नौ बजे से पहले पानी जाने के डर से नहाना-धोना, तैयारी करनी, फिर कुछ पढ़ना और भागना। भोलेश्वर ले आता है, वही प्रायः छह बजे के बाद ले जाकर छोड़ देता है। सुबह-शाम रंजन के साथ फ़्लैट में लगनेवाले पैसों और चीज़ों का हिसाब-किताब होता रहता है। शाम को भी वही। रंजन आ तो गया था 13 जून को ही, मन्नू के जन्मदिन से एक दिन बाद। फिर आए उसके पापा, वे भी दो-तीन दिन रहे। अपनी किसी गवाही के सिलसिले में आए थे। फिर कभी हरि, कभी कनाडा से हरि प्रकाश, कभी लक्ष्मी-नारायणजी इत्यादि आते रहे। इधर दिमाग़ में यह भी घुस गया है कि अब नए फ़्लैट में जाकर ही कुछ लिखना-पढ़ना होगा—अपना अलग कमरा, अलग व्यवस्था। तभी मन लगाकर कुछ लिखेंगे। अब तो वह ड्राइंग रूम भी है, मेरे पढ़ने-लिखने का भी कमरा है, सोने का भी कमरा है और दो-चार लोग आ जाएँ तो उठने-बैठने की जगह भी। हर बार वहाँ की और मानसिक व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। वेददान सुधीर कभी कोई और। फिर शुरू होता है टालने का सिलसिला कि ये अमुक साहब चले जाएँ तो फिर शुरू करेंगे, उनके जाते न जाते दूसरे आ टपकते हैं। कभी मेरे, कभी मन्नू के। कभी-कभी सोचता हूँ कि इस घर में पिछले बीस सालों में मैंने अपनी रचनात्मकता के कैसे सर्वश्रेष्ठ वर्ष भस्म किए हैं। मालूम हुआ, सात दिन शिशिर मिश्रा के चक्कर में चले गए, कभी घर की समस्या, कभी खुद का आलस्य और कभी अपने कब्ज़ के इलाज में सुबह पानी, चाय का सिलसिला। गाड़ी सीखनी शुरू की थी और अब तक तो शायद बाक़ायदा चलाने भी लगता, मगर कोई भी काम चलता ही नहीं है। शायद महीने भर से वैसी ही पड़ी है। कभी ख़र्चे का ध्यान तो कभी आरामतलबी...क्या अब यही ज़िन्दगी रह जाएगी? अभी तो सारी आशाएँ एक तरह इसी खूँटी पर लटका दी हैं कि नई जगह जाएँगे तो सब कुछ नए सिरे से शुरू हो जाएगा, मेरा लिखना, पढ़ना, ज़िन्दगी की उत्साह-भरी गतिविधियाँ...

रोटरी क्लब आगरा में ब्रजेन्द्र तिवारी का लड़का राजीव प्रेसीडेंट हो गया था तो उसने अपने प्रथम समारोह में मुख्य अतिथि की तरह मुझे बुलाया। क्लार्क शीराज़ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठहराया, घनश्याम और तिवारी सारे दिन साथ रहे। बीयर, खाना-पीना, गप्पें—सब चलती रही। रात में उनका आयोजन हुआ। शुरू में तो वे ही सारी औपचारिकताएँ जो होती हैं, फिर मैं बोला—बीसेक मिनट। मैंने यही बात उठाई कि जिस सेवा और मानवता की बात आप कर रहे हैं, उसकी तो कभी कोई परम्परा ही नहीं रही भारतीय संस्कृति में। वह तो परम व्यक्तिवादी, आत्मकेन्द्रित और स्वार्थी क़िस्म का ही धर्म रहा है। साढ़े दस के करीब शुरू हुआ था और पचास पर समाप्त। लोग डिनर के लिए बेचैन थे। जिन्होंने सुना और समझा उन्होंने काफ़ी प्रशंसा की ख़ासतौर से तिवारी परिवार। बल्कि अगले दिन अख़बार के लिए तितली ने उसे टेप किया और हमेशा की तरह मैं सोच रहा हूँ कि इसे लिख डालूँ। इस प्रकार पाँच-छह लेख मेरे पास हो जाएँगे। फिर 'नवभारत टाइम्स' या कहीं भी धारावाहिक रूप से निकलवा दूँ। लेकिन हर चीज़ जिस तरह टल रही है, डर है कि कहीं यह भी दिमाग़ से न निकल जाए। इधर तो कामों और आने-जानेवालों की ऐसी कुछ जैमिंग हो गई है कि कुछ भी नहीं हो पाता। पढ़ना तक छूट गया है।

9.7.83

परसों से पता नहीं दाहिनी आँख में क्या हो गया है, पढ़ने में दिक्कत होती है। कभी-कभी डर भी लगता है, एक ही तो सही-सलामत आँख है और उस पर भी यह मुसीबत आई तो क्या होगा?

11.7.83

शक्तिनगर छोड़ने का सिलसिला इतनी जल्दी शुरू हो जाएगा, इसके लिए शायद हम लोग मानसिक रूप से तैयार नहीं थे। मगर लगता है, छोड़ना पड़ेगा। उधर फ़्लैट में काम तेज़ी से हो रहा है, दोनों बच्चे लगे हुए हैं और हमसे कहते हैं कि जब तक तैयार न हो जाए, आने की ज़रूरत नहीं है। मगर कभी फ़िटिंग की दृष्टि से तो कभी चीज़ों को रि-पॉलिश कराने के लिए चीज़ें जा रही हैं। पलंग, गद्दे, कुर्सियाँ, कार्पेट—कुछ और सामान चला ही गया है, और हम लोग निहायत ही मानसिक अस्थिरता के समय काट रहे हैं। लगता है, चार-छह दिनों में ही जाना पड़ेगा। मैं तो ख़ैर, इस बारे में कुछ सोच ही नहीं रहा हूँ, मगर मन्नू बहुत गहराई में डिस्टर्ब्ड है। शायद बीस साल की जड़ें और आगे की अनिश्चितता ही इसके पीछे हो। इधर फ़्लैट की व्यवस्था करने में अन्धाधुन्ध पैसा जा रहा है। फिर शिशिर मिश्रा ऊपर आकर बैठे हुए हैं और बंटी का काम हो रहा है। यह भी बहुत ही ज़रूरी है। अगर ग़लत फ़िल्म बन गई तो वैसे ही माथा ठोकेंगे। हम लोगों का सबसे प्रिय उपन्यास अगर ग़लत समझ, दबावों के कारण यों ख़राब हो जाए तो डूब मरने की बात है। हालाँकि हमेशा लगता है कि ग़लत हाथों में दे दिया है। फिर भी घंटों खोपड़ी लड़ाकर किसी तरह किनारे ला रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद ठीक हो ही जाए। मगर समय बहुत ग़लत है, इधर शिफ़्टिंग, इधर कॉलेज, इधर पैसे की व्यवस्था और इधर बंटी। दो-तीन बार ऐसा हुआ है, जैसे मन्नू का दिल डूब रहा हो। एकदम घबराकर सिंक करने लगती है। दो-तीन बार पहले रात में हुआ था, कल दिन में हुआ। घर में और कोई नहीं था। मेरे पास आ गई: राजेन्द्र, बहुत दिल डूब रहा है। ख़ैर, पीठ पर हाथ फेरा, प्यार किया। माथे पर दोनों कनपटियों के बाल सफ़ेद हो गए हैं। ज़िन्दगी भर जिस घर के लिए सारा संघर्ष, सपने और प्रयास होते रहे, क्या वह ब्लड प्रेशर और सफ़ेद बालों की क़ीमत पर मिलेगा? अब मुझे लगता है कि हम लोगों को जल्दी से जल्दी शिफ़्ट कर लेना चाहिए। क्योंकि जितना ही यहाँ रुकेंगे, पुराने से मोह और नए की अनिश्चितता बड़ी और बड़ी होकर आएगी। कम-से-कम वहाँ पहुँचकर नई जगह की चिन्ताएँ ही इतना उलझा लेंगी कि डरने का समय ही नहीं मिलेगा। शिफ़्टिंग बहुत बड़ा झंझट तो है ही। ट्रकों में सामान लदेगा, फिर वहाँ जाकर जमाया जाएगा। मुझे तो सबसे बड़ी बात यही लग रही है कि अपना अलग कमरा होगा, जहाँ पढ़ना-लिखना हो सकेगा, कुछ भी अधूरी चीज़ अनिश्चित काल के लिए स्थगित नहीं होगी। मगर एक डर यह भी है कि हम तीन लोग अलग-अलग कमरों में होंगे। मेरी और मन्नू की उम्र है। अगर रात-बिरात एक-दूसरे की ज़रूरत पड़ी तो कैसे बुलाएँगे? हमें एक-एक घंटी ज़रूर लगा लेनी चाहिए।

12.7.83

मैं शायद कभी सोचता भी नहीं था कि मन्नू से मैं इस हद तक जुड़ा हुआ हूँ। इस सप्ताह स्पष्ट ही ब्लड प्रेशर के कारण, जो दिल डूबने की घटनाएँ हुईं, उससे मैं भीतर से कहीं परेशान हो गया हूँ। चिन्ता होती है कि क्या उसे यह फ़्लैट ब्लड प्रेशर की बीमारी की क़ीमत पर मिल रहा है? माथे के सफ़ेद होते बाल मुझे सोच में डाल देते हैं। फिर इधर तीन दिनों से शिशिर मिश्रा और महापात्र। शिशिर भावुक-बेवकूफ है। एक-एक मुद्दे को सुलझाने में घंटों लग जाते हैं। वह तो एकदम फ़िल्मी फ़ॉर्मूलों से स्क्रिप्ट भर लाया है। उसे धीरे-धीरे तर्क से, आग्रह से और मनोविज्ञान से समझाया जा रहा है। बहुत-कुछ लाइन पर ले आए हैं। देखें, आगे क्या होता है!

आज अभी शानी के यहाँ जाना है। ईद पर आने के लिए उसने बहुत दिन पहले आग्रह कर दिया था। आजकल शैलेश मटियानी यहीं है, सो उससे काफ़ी बहसें होती रहती हैं। हालाँकि जो लेख मैंने तय कर रखे हैं, उनकी शुरुआत भी नहीं हो रही।

20.7.83

यह सारा समय जितना व्यर्थ जा रहा है कि कहते नहीं बनता। आधा फर्नीचर, पलंग और गद्दे सब नए घर में चले गए हैं। तीन-चार दिन पहले पंखे भी उतर गए। वहाँ रंग-रोग़न होने हैं। सड़ी उमसवाली यातनाप्रद गर्मी। हम लोग कूलरों के पंखों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काट रहे हैं। लगता है, अब तो जल्दी ही शिफ़्ट करना होगा। बीस साल में साली ऐसी जड़ें निकल आई हैं कि लगता ही नहीं था कि कहीं जाना है। अब तो जैसे सभी कुछ वहाँ जाकर करने के लिए स्थगित कर दिया गया है। हर चीज़ को मन भरकर देख लेने की इच्छा होती है। 'यह पुर पत्तन यह गली, बहुरि न देखो आय'—कबीर की यही वाणी गूँजती है। टिंकू-रंजन कहते हैं कि फ्लैट बहुत ही ज़ोरदार बना है। वे लोग इसे हर तरह सजाने सम्पूर्ण करने में लगे हैं। और तभी जाने देंगे जब पूरा हो जाएगा। हो सकता है, इसी रविवार को हम लोग शिफ़्ट कर जाएँ। इस बीच में डेढ़ दिन के लिए आगरा से घनश्याम अस्थाना आ गया। बहुत ही असुविधाएँ थीं, लेकिन अच्छा लगा। चार-पाँच साल बाद आया था। उस दिन शाम को शर्माजी के यहाँ भी ले गए। एक दिन शैलेश से बातें हुईं— शर्माजी और अपने बीच बढ़ती दूरी को लेकर। मेरी शिकायत थी कि शैलेश भले ही भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान होने की स्थिति तक अपने विवेचन, परीक्षण से पहुँचा हो; लेकिन शर्माजी को उस सबमें अपने अन्धविश्वासों को ही बल मिलता है। जब से हमारे बीच संवाद टूटा है, वे और भी अधिक अन्धविश्वासी हो गए हैं। 'गीता' पढ़ना मेरी समझ में आता है, क्योंकि वहाँ व्याख्याओं के नए आयाम उद्घाटित होने की पूरी गुंजाइश है। लेकिन रोज़-रोज़ आदमी कैसे हनुमान चालीसा और सत्यनारायण की कथा पढ़ता जा सकता है, वह भी जो बौद्धिक रूप से इतना प्रबुद्ध हो? उन्हें आज सुख और आश्वस्ति मिलती है, मुरारी लाल की संगति में। वहाँ अफ़सर होने का भी सुख है और अपने धार्मिक अन्धविश्वासों का समर्थन भी। शैलेश के साथ ऊपर उठकर मदद कर सकने की महानता भी सन्तुष्ट होती है। शैलेश वैसे भी विनम्र है। मुझे लगता है, हमारे पास दो गाड़ियाँ होना, फ़्लैट का तैयार हो जाना जैसी चीज़ें भी इसके पीछे हैं। हालाँकि यही सब उनके पास भी हैं, मगर बराबर की स्थिति?

5.8.83

शक्तिनगर...19 सालों का शक्तिनगर छूट गया...31 जुलाई की शाम को आख़िरी सामान लादा गया और पहली को एक टैम्पों में बचा-खुचा...मन्नू सामान के साथ गाड़ी में गई। मैं अक्षर आया। उसी दिन लालानी इत्यादि के साथ मिलना था। लालानी के ड्राइवर ने पहले लालानी को फ्रैंड्स कॉलोनी छोड़ा, फिर मुझे फ़्लैट्स...वहाँ ये सभी लोग थे। मकान की शक्ल निकल आई है। रात को ही हम लोग दिव्या के यहाँ ग्रेटर कैलाश पहुँचे। सोए भी वहीं और सुबह सात बजे फिर फ़्लैट पर। तैयारियाँ इत्यादि कीं। अब फ़्लैट सचमुच इतना सुन्दर लगने लगा कि लोगों ने पूछना शुरू कर दिया कि क्या डी.डी.ए. का ही फ़्लैट है? रंजन ने हर चीज़ को इतनी सुरुचि और श्रम से कराया है कि विश्वास ही नहीं होता, हमारा अपना फ़्लैट है। बिल्कुल जैसे फ़िल्मी शूटिंग के लिए तैयार किया गया सेट हो!...आए बाहर से केवल सुधीर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमन, भोलेश्वर ने थोड़ा-सा हवन करा दिया। मैं, रंजन, टिंकू और कुछ मिस्त्री। बाक़ी लोगों को शाम को बुलाया था। शाम को आए शर्मा-शर्मी, उनके साथ कोई कैप्टन बीना (निर्मलाजी के साथ गाड़ी में—वे मुझे लेकर गई थीं), स्नेह जी, अजित। मुन्ना, टिंकू ने अपनी दो-तीन दोस्तों को बुला लिया था। उधर अजित पन्द्रह-बीस मिनट के लिए बच्चनजी को ले आए थे। ख़ास जमावड़ा था। हालाँकि ग्रुप थोड़ा गड़बड़ था। निर्मलाजी तो किसी को बोलने नहीं देतीं। शर्माजी थके हुए थे। फ़्लैट की तो सभी ने बेहद तारीफ़ की। रात को सोते-सोते साढ़े ग्यारह बज गए। सुबह फिर पाँच बजे उठ गए क्योंकि साढ़े छह पर रंजन को रवाना होना था। रंजन को विदा करते समय मेरी आँखें गीली हो आईं। बेचारे ने भरी गर्मियों, लू और घुटन में किस तरह जान मारकर काम किया है...!

6.8.83

और शक्तिनगर छूट गया...बीस साल का परिवेश...पहले नौ नम्बर बस के लिए और दो सौ चालीस के लिए उस मोहल्ले से जाना, सरदारजी का सोना, ऊपर फ़्लैट की पार्टियाँ, मेहमान, लेखन, फ़िल्म और नाटकों के सिलसिले, राकेश, कमलेश्वर चौधरी के साथ मुलाक़ातें, मन्नू के साथ की खींचतान, टिंकू की तीन वर्ष की उम्र का बढ़कर इक्कीस होना, कुसुम की मृत्यु, पता नहीं कितना कुछ है जो 29/17 शक्तिनगर में होता रहा है। ज़िन्दगी के सबसे कीमती वर्ष वहीं निकले हैं। कभी ख़याल ही नहीं आया कि इस मकान के अलावा भी अपनी कोई और जगह हो सकती है—सरदारजी से मुकदमा भी हुआ, नन्ही-रंजीत की शादी भी हुई और सत्ते से लड़ाइयाँ भी हुईं—यहीं मीता, अंजना, नलिनी आती रहीं...सभी कुछ तो इन दीवारों ने देखा था...मगर जब टैम्पो भरा जा रहा था तो मन में कहीं हल्का-सा भी अवसाद नहीं था। आज भी शक्तिनगर दिल को कहीं खरोंचता नहीं है, हालाँकि यह फ़्लैट अभी अपना हिस्सा नहीं हुआ है। बस, रह रहे हैं, यही लगता है। कुछ असुविधाएँ हैं जो ठीक हो जाएँगी, शायद कुछ के साथ रहने का अभ्यास डालना हो...अभी एक दिन सरदारजी से मिलने जाना है। लगता है, न इस घर में जड़ें उगी हैं और न वहाँ कभी थीं। यहाँ मेरा अपना कमरा है, सभी के अपने कमरे हैं, इतने अकेले और अलग कि जाड़ों में जब सब अपने-अपने कमरे बन्द कर लिया करेंगे तो पता भी नहीं चलेगा कि बगल में कुछ हो भी रहा है। हो सकता है, कोई घुस आया हो और लूट रहा हो! हत्या कर रहा हो! हो सकता है, किसी का हार्ट फेल हो रहा हो और वह तड़प रहा हो! यहाँ आकर बिल्कुल अकेले होने की अनुभूति ज़रूर है। अपने-आपसे काफ़ी भय लगता है कि क्यों नहीं मेरे मन में कोई उद्वेलन हो रहा है शक्तिनगर छोड़ते हुए? यह संवेदनहीनता है या आत्मसंयम और निर्लिप्तता...भय यही लगता है, जैसे आपका एक-एक अंग लकवे से सुन्न होता जाए, आप देखते रहें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कुछ महसूस ही न हो...यह ठहराव नहीं, मौत है। अपनी मौत का खुद साक्षी होना, हो सकता है, बहुतों में अन्तर्दृष्टि देता हो, मुझे तो आतंकित ही करता है। अब वह अकेलापन हो सकता है, अपने से बाहर निकलने की प्रेरणा दे, असुविधाओं और समयाभाव के कारण जिस सबको अब तक स्थगित किया जाता रहा था, उसके लिए क्या बहाना हाथ में आएगा। आज तीसरा दिन है, फिर भी कुछ महसूस नहीं होता। यह मुसाफ़िरी अनुभूति कैसी भयावह है! कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या मैं आज इसी निर्लिप्तता से घर छोड़कर कहीं और जा सकता हूँ? क्या इस 'रहन' का अभ्यस्त, निर्भर हो जाऊँगा...मन्नू कहती है, इस नए घर में उखड़े हुए और दुखी दो ही प्राणी हैं, एक मैं और दूसरी मिस्टी—मिस्टी ने तीन दिनों बाद कल ज़बर्दस्ती खाना खाया। सुस्त भरी पड़ी रहती है।

10.8.83

वही फ़्लैट 103, डी.डी.ए. (सेल्फ़ फ़ाइनेंसिंग स्कीम) हौज़ख़ास, नई दिल्ली का—घर ही सिर पर सवार है, कभी बिजली के लिए भागो तो कभी फ़ोन के लिए। अभी बाक़ायदा फ़ोन चूँकि शक्तिनगर से कटा नहीं है इसलिए वहाँ लग नहीं सकता। फ़ोन रुकवाना इतना बड़ा सिरदर्द होने जा रहा है, यह कभी सोचा नहीं था। जब तक वहाँ रहो, तब तक डी.डी.ए. वालों के पीछे यह-वह सुधरवाने, लगवाने को भाग-दौड़ करो। घर अभी तक 'घर' जैसा नहीं लगता। हालाँकि जो आता है, वह इसके खुलेपन और सुरुचिपूर्ण सज्जा की तारीफ़ ही करता है। मैं समझता हूँ जिस घर में चीज़ों की जगहें निश्चित हो चुकी हों, वही क्षण 'घर' लगने का होता है। अभी सुबह चाय पीने की जगह तय नहीं है, अख़बार की तय नहीं है, तौलिया की नहीं है। कुछ पता ही नहीं, कहाँ कौन-सी चीज़ मिलेगी। अभी तो वही अस्थायी स्थिति है कि यह हो जाए तो यह होगा। अलमारियों में पॉलिश हो जाए तो किताबें-कपड़े रखे जाएँगे। एक होटल या धर्मशाला में रहनेवालों का उखड़ापन है। हालाँकि यह भी जानते हैं कि अब यह घर छोड़कर कहाँ जाना है। यही हालत पढ़ने-लिखने की है—जैसे कुछ शुरू ही नहीं हुआ। कल साढ़े तीन पर नींद खुल गई रात में: खिड़की से पार्क और दूसरे फ्लैट दिखाई देते हैं। पार्क में ट्यूब लाइटें लगी हैं और पता ही नहीं चलता कि रात चाँदनी है या अँधेरी—हमेशा एक-सी रोशनी। अजीब बात है, मुझे कलकत्ता का डायमंड हॉर्बर वाला फ़्लैट याद आता रहा। दूसरे तल्ले पर ऐसी ही गर्मियों में मैं पंखे के नीचे सोता था, सड़क के पार स्कूल की चहारदीवारी थी और पेड़ों के पार ट्यूब लाइट जलती रहती थी—नहीं, शीशे के रिफ़्लेक्टर के आधे-चाँद जैसे आकार के बीच फ़्लोरेसेंट बल्ब...रात में इसी तरह आँख खुलती तो चाँद और चाँदनी का भ्रम होता...दूर खिदिरपुर डॉक में जहाज़ों के हूटर सुनाई देते, जू में शेर या बाघ दहाड़ते और कभी कोई गाड़ी घोंऽऽ करती निकल जाती। ट्राम का तवा टन-टन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके बजता...कौन होगा अब इस ज्योति स्टोर में...वे सनेहशीला बउदी, उनका मोटा निकम्मा पति और लड़की...कितने जन्म निकल गए उस बात को।

अभी तो घर में चाबियाँ तय हो रही हैं, कौन किसकी है, कहाँ रखी जाएगी। तीन-तीन नौकर हैं जिनमें से एक को कम करना होगा। ख़ैर, देखेंगे।

12.8.83

इस फ़्लैट ने मन्नू के बाल सफ़ेद कर दिये हैं, लगता है, मेरी भी नींद कम कर दी है। रात को साढ़े ग्यारह-बारह बजे सोता हूँ और सुबह पाँच बजे के आसपास जाग जाता हूँ। अभी नींद पूरी नहीं हुई है सोचकर फिर कोशिश करता हूँ, मगर बेकार। अभी तो कम्बख़्त चाय की जगह भी ठीक नहीं हुई। हमेशा लगता है, जैसे किसी और के घर आए हैं, यहाँ केवल कुछ दिनों के लिए ही रहना है। किसी चीज़ से जैसे न जुड़ाव है, न लगाव। इधर दो दिनों से मन्नू के साथ लौटना होता है। कल मन्नू शानी के पास गई थी। मेरा मिलना-जुलना तो रह नहीं गया, बातचीत भी बन्द है। 'शानी के कारण ही राजेन्द्र बहुत पीने लगे हैं,' इस बात से वह मन्नू से बुरा माने हुए थी। ख़ैर, कुछ बातें हुई होंगी। वह 21 के लिए बुला आई है। कल ये लोग सोच रहे थे कि 28 को किस-किसको बुलाना है। एक ग्रुप पीनेवालों का है, एक ग़ैर-पीनेवाले का। मैंने भी सोचा कि इन्हें ही आपस में तय कर लेने दो। अभी लिखने की बात तो दिमाग़ में नहीं आ रही है। हाँ, कुछ पुरानी चीज़ों को व्यवस्थित कर रहा हूँ। कल मन्नू के काग़ज़ों में पी.के. जैन का 'प्रेम-पत्र' पड़ा था। वह पैसे के पीछे पागल व्यवसायी आदमी कभी इतना भावुक था, विश्वास ही नहीं होता। परसों विजयमोहन और आशा आए थे। शाम अच्छी ही थी। फ़्लैट को तो जो भी देखता है, क्षुब्ध होता है। पूरी कॉलोनी में हमारे फ़्लैट की चर्चा है। कई लोग काम देखने आते हैं। अब मालूम कब तक ऐसा ही बना रहेगा। मुझे लगता है, एक स्टेज ऐसी होती है, जब चीज़ें आपकी सुविधा के लिए नहीं, आप फ़्लैट की सुविधा से रहने लगते हैं। मैं इसी स्थिति में हूँ। शायद यह अच्छी बात है कि इसी बहाने कुछ व्यवस्था आएगी।

17.8.83

अभी-अभी कोर्ट से लौटा हूँ। घर में बहुत काम होने हैं। पानी ऊपर से किसी की टंकी से टपकता है, हमारी पूरी दीवार पर सीलन है। बाथरूमों की नालियाँ ठीक नहीं हैं, वे घिसी जानी हैं, राजमिस्त्री का काम है, प्लम्बर का काम है, बिजलीवाले का काम है। डी.डी.ए. के ये काम करनेवाले भी दस से पाँच बजे तक रहते हैं, और लोगों को भी इसी बीच बाहर रहना होता है। इधर हमारा मकान अभी तक दो इंजीनियरों के ज़िम्मे था। सो कभी इधर भागो, कभी उधर। अब एक के पास आ गया है। कल मन्नू ने छुट्टी ली थी, आज मैं भी गया। फिर ग्यारह के बाद मन्नू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आएगी। भोलेश्वर को छोड़ आया हूँ। कल भी छोड़ा था। स्कूटर में पैसे जा रहे हैं। इधर मेहमानों का सिलसिला शुरू हो गया है। सबसे पहले हरिप्रकाश आया, फिर घनश्याम केवल एक-एक रात के लिए। परसों से पराक्रम सिंह जी हैं, वे बब्बू-नीरा को रिसीव करने आए हैं। आनेवालों का कोई पता नहीं है। उनकी सूचना देने के बहाने हरकावतजी तीन चक्कर लगा चुके हैं, मगर मूलतः उन्हें टिकने की जगह चाहिए। दिल्ली अक्सर आना होता है और वे किसी के भी यहाँ आकर डट जाते हैं। जाने का नाम ही नहीं लेते। हम सभी को डर है, कहीं वे आ ही न टपकें। तब बदतमीज़ होकर कहना होगा। नीरा-बब्बू तो आएँगे ही, उन्हीं दिनों बेनी साहब भी आएँगे। फिर तीसरे सप्ताह आने की बात हेमेन्द्र ने भी लिखी है। ख़र्चों ने अलग दिमाग़ ख़राब कर रखा है, फिर घर में एक दिन चैन न मिले। यह तो लगता है, भयानक सिलसिला होने जा रहा है। राजी रोती है कि मेहमान चैन नहीं लेने देते। यही स्थिति हमारी होने जा रही है। दिल्ली में अच्छा-बुरा भी घर रखने का मतलब है—मेहमानों का स्थायी निवास। आप सिर्फ़ उनकी ख़ातिर अपना मकान और अर्थ-साधन लिये बैठे रहिए। अलग कमरा मिला तो यह मुसीबत। हर आदमी घर की तारीफ़ करके यह समझता है कि टिकने का अधिकार पा लिया। इधर परसों से भोलेश्वर का मामा आया हुआ है जो पन्द्रह-बीस रोटियों से कम खाता ही नहीं है। घर में अजीब धमा-चौकड़ी मची हुई है। चार-चार नौकर डटकर खा रहे हैं, घरवालों को मिलता ही नहीं। कभी मैं दोपहर को बाजार से मँगाकर खाता हूँ तो कभी टिंकू। भयानक टेंशन है। हम सबसे निश्चिन्त है टिंकू। उसे जैसे कोई मतलब ही नहीं। अपने दोस्त, सोना और गाने लगाकर सुनना। उसकी यह निश्चिन्तता मन में अजीब झुँझलाहट पैदा कर देती है। देखते हैं, आठ-दस दिनों में क्या होता है। अभी तो घर पर बहुत-से काम कराने होते हैं।

26.8.83

पिछले लगभग दस दिनों से रोज़ डायरी लिखने की बात सोचता रहा हूँ। एकाध दिन घर भी ले गया। मगर फुरसत ही नहीं मिलती। यहाँ हमेशा कोई न कोई बैठा ही रहा है। पिछले दिनों घनश्याम, शैलेश मटियानी, राजुरकर—सभी आते रहे हैं और लम्बे-लम्बे बैठते रहे। 19 को शैलेश का केस लगा था, सुप्रीम कोर्ट में गए। पिछली बार तो शायद ऐसा नहीं हुआ था, मगर इस बार कोर्ट-रूम में जाने के लिए पास बनवाना पड़ा। नम्बर आया तो शैलेश ने हिन्दी में अपनी बातें कहने की कोशिश की। वहाँ से एक ही जवाब था कि पिछले हफ़्ते ही हमने रूलिंग दी है कि S.L.P. डिसमिस हो जाने पर रिट-पिटीशन नहीं लेते। शैलेश ने काफ़ी कुछ कहने की कोशिश की, मगर पत्थर की तरह सुनते रहे : यह हमारे ज्यूरिडिक्शन से बाहर है—कहकर फाइल एक तरफ़ सरका दी। एक दाक्षिणात्य था, दूसरा कोई मिश्रा। सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कितना मशीनी और अमानवीय हो गया है। ख़ैर, हम दोनों अपना-सा मुँह लेकर लौट आए। मैंने शैलेश को हिम्मत बँधाने की कोशिश भी की। चलो, देश के सर्वोच्च न्यायालय की यह भँडैंती भी ख़त्म हो गई। अब तो इसके सिवा कोई चारा ही नहीं है कि सभी कुछ पुस्तकाकार निकले। लेकिन अजीब है यह न्याय, जहाँ दूसरे पक्ष की न गवाही हो, न वे सम्मन लें, न सामने आएँ और फ़ैसला उन्हीं के पक्ष में तय हो जाए। सचमुच ऐसी झुँझलाहट होती है कि इन हरामी जजों का मुँह नोच लिया जाए। बहरुल इस्लाम, जगन्नाथ मिश्रा से सौदा करते हैं, अकाट्य प्रमाणों को झुठलाकर फ़ैसला भ्रष्टाचार के पक्ष में देते हैं और बदले में आसाम से एम.पी. हो जाते हैं। आज ही आनन्द बता रहा था कि—इन इकोनॉमिक ऑफ़ेन्सेज, जेनेरली जजमेंट्स आर इन फेवर ऑफ द वेल-ऑफ पीपुल इन नाइंटी परसेंट केसेज़।

कल फिर जन्मदिन आ रहा है। मन्नू-टिंकू के आग्रह से कुछ लोगों को बुला रहे हैं घर...जो दो लोग बिखर रहे हैं, वे शर्माजी और शानी...देखते हैं। कानपुर से गिरिराज आ गया है, अभी-अभी धनबाद से रंजन आ पहुँचा है। लेकिन यह साल जैसा बेकार हुआ है, शायद ही कोई साल हुआ हो। कुछ भी नहीं किया। एकमात्र उपलब्धि शायद यही है कि अपने मकान में पहुँच गए हैं। अब धीरे-धीरे अभ्यास में आ रहा है, सिस्टम का हिस्सा बनने में तो शायद समय लगेगा। सुबह-शाम डी.डी.ए. वालों से झाँय-झाँय होती है। बहुत ही धीरे-धीरे चीज़ें ठीक हो रही हैं। लगता है, महीना-डेढ़ महीना लगेगा...

कल के लिए मैंने शानी को बुलाया था। इससे पहले खरे से कहा तो उसने कह दिया कि अगर त्यागी या गिरिराज होंगे तो मुझे बाहर समझो। मैंने कह दिया कि मैं किसी को मना नहीं करूँगा। मेरे मित्र हैं। शानी ने परसों आने को कहा था, कल गिरिराज मिला था, उससे उसने न जाने क्या-क्या कहा। शब्दशः तो मैंने नहीं सुना, मगर सार यह था कि राजेन्द्र हमेशा मुझे ज़लील साबित करता है, मेरे बीवी-बच्चों के सामने मुझे टुच्चा सिद्ध करता है, इसके मित्र लालानी ने पैसे से मेरी मदद करने की बात कही थी, और भी न जाने क्या-क्या? उसने भी कहा था कि शानी नहीं आएगा। चूँकि उसके लौटने की समस्या होती, इसलिए मैंने मलिक साहब को पक्का कर लिया था कि वे आते हुए छोड़ देंगे। इसलिए मैंने आज फ़ोन किया, बोला—मेरा आना नहीं होगा। पप्पू मियाँ की तबीयत ख़राब है, सूफ़िया को देर से लौटना है और सलमा है नहीं। इसलिए किसी को घर पर होना चाहिए। मैंने कहा—ठीक है। बाद में मुझे बहुत ग्लानि हुई कि किस अहसान-फ़रामोश, कमज़र्फ़ और दक़ियानूस आदमी को मैं प्रसन्न करने की कोशिश कर रहा हूँ। मेरे और उसके बीच चार शताब्दियों का अन्तर है। वह आज भी मुग्ध भाव से अपने 'अब्बा हुज़ूर' की बातें करता है, लड़के को 'शहज़ादा' कहता है और बहुत ही कांशस है कि कौन कहाँ पर है, उससे 'सर' कहता है या कहलवाता है। मतभेद बर्दाश्त नहीं कर पाता, युक्ति और तर्क की जगह आवाज़ में तैश और गुस्से से उस कमज़ोरी को पूरा करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धिक बहस में भागता है और सिर्फ़ अपने आपसे 'आब्सैस्ड' है। चौबीस घंटे में शायद ही कभी उसे ध्यान आता हो कि अपने से बाहर भी कुछ सोचना है, वही मेरे मनोरंजन, मेरे बच्चे, मेरे कपड़े, मेरे शौक़, मेरी कुंठाएँ, मेरा धर्म...वही अन्तिम हैं। हर वक़्त मैं इन पर सोचूँगा, और आप भी इन पर ही सोचिए...अगर इस सबसे अलग सोचते हैं, तो ग़लत करते हैं।

29.8.83

कल मेरा जन्मदिन भी बीत गया। शायद पचपन में लगा हूँ। अजीब बात है कि पचास-बावन तक मन में एक प्रतिरोध, रेसिस्टेंस था कि नहीं अभी इतने बरस नहीं हुए हैं, अभी मैं इतना बड़ा कहाँ हुआ हूँ? अभी तो बहुत वक़्त है। इतनी जल्दी इतने बरस का कहाँ हो सकता हूँ! मगर इसके बाद जैसे कन्धे डाल दिये...होने दो 54 का 55 का या 60 का...हाँ, इसमें नई बार। फिर अपने आपसे संकल्प किया कि इस वर्ष उपन्यास ज़रूर पूरा करना है। अब तो अपना कमरा है, अपना एकान्त है। दस-पाँच दिनों में छोटी-मोटी समस्याएँ सुलझ जाती हैं, फिर बैठकर लिखना-पढ़ना ही है। कल नामवर सिंह, राजी सेठ, शर्माजी, मनोहर श्याम जोशी, अरविन्द, रमेश, गिरिराज, कृष्णा शर्मा, अजित—सभी आ गए थे और काफ़ी गप्प-शप रही...खाना-पीना हुआ। उम्मीद थी, भीष्म साहनी और मृणाल भी आएँगे। तय भी हुआ था। वे नहीं आए। इन लोगों ने सुबह से और बहुत शौक से तैयारियाँ की थीं। मन्नू आजकल बहुत जल्दी नर्वस हो जाती है, घबरा जाती है—लगता है, जैसे चीज़ें सँभलेंगी नहीं। विनोद को भी बुला लिया था। रंजन और टिंकू तो थे ही। बहुत हँसी-खुशी सारा कुछ हुआ। इन्होंने मुझे एक 'पाउच' दिया। अरविन्द एक स्कॉच की बोतल ले आया। शर्माजी ने ओ.डी.-कोलोन दिया। मीता का पत्र परसों ही आ गया था। आज राजेन्द्र सिंह राणा का पत्र आया। लगता है, अब सभी कुछ ठीक हो जाएगा। यह वर्ष शायद अच्छा निकलेगा।

5.9.83

लगता है, ठीक एक महीने बाद 'घर' कुछ-कुछ अपने साथ जोड़ रहा है। सच्चाई तो यह है कि अभी तक मन में कहीं पैठा ही नहीं है कि हमें यहीं रहना है। शायद यह 'रहन' बिल्कुल ही अलग है, अभी कुछ भी अभ्यास में नहीं आया है। कहीं कुछ है जो सिस्टम का हिस्सा नहीं बन रहा। या तो इतना व्यवस्थित, सुन्दर घर सिर्फ़ जाकर लौट आने के लिए ही देखा है या होटल में। अभी चीज़ों, जगहों के साथ वे आसंग नहीं बने कि अभ्यास में आ जाएँ। हमेशा चेतना बनी रहती है, बाथरूम गीला न हो जाए, दीवारें मैली न हो जाएँ, फ़र्श पर धूल-कीचड़ न पहुँचे या फ़र्नीचर पर दाग़-धब्बे न पड़ें। जहाँ आप हर क्षण इन चीज़ों के लिए चौकन्ने बने रहें। वहाँ अपनापन कहाँ होता है। यह क्या कुछ-कुछ ऐसा ही नहीं है जैसे आप किसी सुन्दर लड़की से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलें, उसे जीतने की नीयत से उसके सम्पर्क में रहें। मगर मैत्री शायद अभी इतनी प्रारम्भिक या कच्ची हो कि हर क्षण चौकन्ने, सचेत बने रहें कि कहीं हाथ न छू जाए, कहीं भाषा में कुछ ज़्यादा मुखर संकेत न आ जाएँ, या आपके हाव-भाव से वह 'उखड़' न जाए। मकान के साथ भी पोटिंग की वही कच्ची ज़मीन चल रही है। हाँ, मनोवैज्ञानिक रूप से इतना ज़रूर हुआ है कि शक्तिनगर का घर बिल्कुल ही निकल गया है। वह अब याद नहीं आता। लेकिन भावी जीवन की तस्वीरों में इस घर के कोने-दीवारें भी नहीं उभरतीं...बीच का 'स्थगन' काल है।...इस दृष्टि से शायद मेरा कमरा कुछ ज़्यादा ही समय लेगा। एक गलियारा, फिर कमरा। यानी अगर अन्दर बैठ जाओ तो शेष घर से एकदम कट जाओ। बुलाने के लिए भी बाहर जाना पड़े। मगर अन्दर बेचैनी होती है कि पता नहीं बाहर कौन क्या कर रहा है। नौकरों का, आने-जानेवाले का अभी ठीक नहीं है इसलिए चौकसी बरतनी पड़ती है। हालाँकि मन्नू का कमरा बाक़ी घर से शायद सबसे सीधे ढंग से जुड़ा है। वह वहाँ लेटे हुए भी बाहर निगाह रखे रहती है या रख सकती है। मगर अजीब मुर्दनी की शिकार है : कहीं कुछ होता रहे, ध्यान ही नहीं देती। रात को ताला बन्द हुआ, बत्तियाँ व्यर्थ तो नहीं जल रहीं, पंखे फ़ालतू तो नहीं घूम रहे, पानी घर में भरा है या नहीं—जैसे ये सब उसकी नहीं, मेरी ज़िम्मेदारी है। शिकायतें सभी हैं, कभी खाने की, कभी बरबादी की, कभी भोलेश्वर, बहादुर की हाथ-सफ़ाइयों या लापरवाहियों की; मगर इतना नहीं होता कि बीच-बीच में एक चक्कर लगाकर चीज़ों को सही ढर्रे पर रखे। हो चुकता है तो रोती है। इसी से मुझे चिढ़ है। उधर टिंकू जैसे मेहमान है। रात को आए, गाने लगाए, खाना खाकर सो गए, सुबह साढ़े आठ पर नाश्ता करके टिफ़िन बाँधकर चल दिये—लगता है, इस घर की चीज़ों की सबसे अधिक चिन्ता मुझे ही है। सबसे ज़्यादा समय लगेगा, मेरे खयाल से मन्नू और मिस्टी को। दोनों ही शायद दिन में एक बार रो लेती हैं। मुझे तो अभी अपनी चीज़ों का ही पता नहीं चलता कि कहाँ क्या रखा है! लगता है, समय काफ़ी लगेगा...अभी तक तो लौटते हुए यही सवाल उठता है कि कहाँ जा रहे हैं? क्यों? शक्तिनगर को जाना घर जाना होता था, हौज़खास को जाना अपरिचित और अस्थायी जगह पाना होता है।

यहाँ आकर लिखने को तो एक लाइन नहीं लिखी। पढ़ना भी व्यवस्थित नहीं है। हालाँकि लुडलुम का उपन्यास 'चान्सलर्स मैन्युस्क्रिप्ट' पढ़ डाला है। मगर नए घर में आकर पहला उपन्यास अमेरिकन बाज़ारू उपन्यास पढ़ना मन में 'गिल्ट' पैदा करता है।

7.9.83

हौज़खास आए लगभग एक महीना आठ दिन हो गए। एक पंक्ति भी नहीं लिखी। लिखने की स्थिति ही नहीं बनती। हालाँकि आजकल तो रोज़ सीधे घर ही पहुँच रहा हूँ। कभी मन्नू साथ होती है। जब उसकी क्लास 12.5 की होती है तो मुझे छोड़ जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, लौटते हुए एकाध घंटा रुकती है और साथ ही जाते हैं। जाकर एकाध घंटा बैठकर हाल-चाल जाने, खाना खाया और नींद से लड़ते हुए पढ़ने की कोशिश की। सुबह पौने छह या छह पर उठे; चाय, शेव, कसरत, नाश्ता करते 9 बज जाते हैं। घर में कोई नहीं होता। तब या तो रोज़ कहीं न कहीं जाने का बोझ मन पर होता है, कभी राशन ऑफ़िस, कभी डी.डी.ए., कभी फ़ोन के लिए— या फिर आने-जानेवालों से मिलना। बढ़ई, रँगनेवाले या कोई और भोलेश्वर और उसका भाई दोनों ही हैं। इन दिनों भोलेश्वर पर विशेष निगाह रखनी पड़ती है। यहाँ की कुछ भी चीज़ ऊपर ले जाने का मोह मन में आना बहुत ही स्वाभाविक है। बड़ी मानसिक परेशानी यह है कि भोलेश्वर बेहद परिश्रमी, चुस्त, योग्य और मेधावी है, लेकिन चालाक और गैर-विश्वास योग्य भी है। हर अच्छी चीज़ उसे चाहिए, मौक़ा लगने पर पर्स से भी निकाल सकता है, चीज़ें चुरा भी सकता है। आजकल घर का, भाई-भाभी, बच्ची सभी का बोझ उस पर है इसलिए नीचे से कुछ भी ले जा सकता है। जब एक दिन के लिए उसे कढोतिया के यहाँ भेजा था तो रामलाल को उसकी जगह लिया था। रामलाल सुस्त, सीधा और किसी हद तक अयोग्य है। इस तरह भोलेश्वर उस पालतू शेर जैसा है जिसे घुमाने ले जाते हुए बेहद सावधानी बरतनी पड़ती है; पता नहीं कब दाँत मार दे।

मैं इससे छूटना भी चाहता हूँ लेकिन विकल्प भी नहीं पाता। इसीलिए सुबह प्राय: ड्राइंगरूम में बैठकर पढ़ना पड़ता है, ताकि निगाह रख सकूँ। हो सकता है, इधर के भीषण आर्थिक दबाव ने यह मानसिकता बना दी हो। सच बात तो यह है कि पाँच-सात सौ रुपए किराए का कमरा, ढाई-तीन सौ का खाना, फिर साढ़े चार सौ मासिक वेतन—इस प्रकार 12-13 सौ का एक आदमी मुझे बहुत ही भारी पड़ रहा है, इसलिए उसका खाना भी बहुत अखरता है, बहादुर तो है ही। उधर उसकी इच्छा तो यह है कि भाई-भाभी का ख़र्चा भी हमारे यहाँ से ही निकले। कल जब उसने पंखा लगवाया और मेरे पास पैसे माँगने आया तो मुझे कहना पड़ा कि खुद देखो। पंखा, फ़र्नीचर, बल्ब लगवाओगे और उम्मीद करोगे कि हम ही पैसे भी दें—यह नहीं होगा। अजीब बात है, यह सारा तनाव मन्नू को ही होना चाहिए था, मगर वह कभी बातें कर लेने के अलावा अपने कमरे में निश्चिन्त गप्पें लड़ाती है या सोती है, तब मुझे बेहद ही झुँझलाहट होती है...

अक्सर अपने पर धिक्कार की भावना ही पैदा होती है, मैं क्या दुनियादारी और छोटी चीज़ों में इतना ज़्यादा फँस गया हूँ? मगर फिर खयाल आता है कि अपनी चीज़ों को लेकर सावधान तो मैं हमेशा ही रहा हूँ। अब ताम-झाम बड़ा है, इसलिए चिन्ताएँ भी बड़ी हैं। जैसे अब परेशान हूँ कि 'ओल्ड स्मगलर' की बोतल जिसे मैं सन् '61 से सँभाले घूम रहा था, एक शैम्पेन का हाफ़—जो शायद बब्बू ने लाकर दिया था, दोनों ही मिल नहीं रहे। अब उन्हें तलाश करना होगा। कौन कहता है कि अपना घर होने पर आदमी निश्चिन्त होता है... ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10.9.83

कल टिंकू के दफ़्तर के कुछ लोगों, पुराने साथियों और मित्रों की एक पार्टी थी, होंगे बीस-पच्चीस लोग। हम लोग भी थे। काफ़ी बड़ा जमावड़ा था। टिंकू के आग्रह पर ड्रिंक्स भी थे। गाने लगा दिये थे। हम लोग, मैं, कृष्णाजी, मन्नू अन्दर बैठ गए थे। ये नौजवान लोग बाहर थे। कृष्णाजी इस सबसे कष्ट पा रही थीं। मगर मुझे तो अच्छा ही लगा। युवा लोग हैं, मौज मना रहे हैं, हँस-खेल रहे हैं। करने दो। हमारे ज़माने में ये उन्मुक्त मिलने-जुलने कहाँ थे! इस युग में पैदा होकर कैसी बड़ी स्वतंत्रता इन्हें हासिल है। छेड़छाड़ भी है। एकाध लड़की ने शायद 'जिन' भी ली। दीपिका नाम की सुन्दर-सी लड़की थी। सव उसी को छेड़ रहे थे। कृष्णाजी बहुत दुखी-बुझी और मरी-सी आई थीं। इस वातावरण, कुछ छेड़छाड़ और कुछ पैग व्हिस्की ने उन्हें चैतन्य कर दिया। शायद खा-पीकर बारह-साढ़े बारह बजे ये लोग गए। ख़र्चा तो हुआ ही। मगर पार्टी बहुत ही शानदार थी।

12.9.83

मैं समझता हूँ जिस घर में बैठने, खाने, सोने की जगहें तय नहीं होतीं, वह घर रहनेवालों के सिस्टम का हिस्सा नहीं बनता। मैं कभी इस बाथरूम में चला जाता हूँ, कभी उसमें। कभी लगता है, पश्चिमी शौच ठीक है, कभी अपना। डायनिंग टेबल पर जगह तय नहीं है। वैसे अब घर में नया कुछ भी नहीं लगता—लोग जब पहली बार चकित-मुग्ध देखते हैं तो उनकी निगाहों से देखने की कोशिश करता हूँ।

जिस दिन अक्षर में कोई नहीं आता और कुछ भी पढ़ने को मन नहीं करता तो बेहद बोरियत होती है। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ? दोनों टेलीफ़ोन मरे पड़े हैं। वैसे भी एक या दोनों को मरे रहते महीनों हो गए। घर पर है ही नहीं। एक तरह टेलीफ़ोन विभाग की इस कुशलता ने फ़ोन को शायद दिल्लीवालों की ज़िन्दगी से निकाल ही दिया है और हम लोग अब सीखने लगे हैं कि बिना टेलीफ़ोन के भी रहा जा सकता है। हालाँकि काम नहीं हो पाते या अगले दिन के लिए स्थगित हो जाते हैं। मगर गाँववाली स्थिति लौट आई है। कहीं भी धड़का या खटका नहीं रहता कि कोई सूचना आएगी। बड़े शहर में बिना फ़ोन के, या एक बार फ़ोन की आदत पड़ जाने के बाद बिना फ़ोन के रहना ऐसा ही है, जैसे ऊँचे उड़ते विमान से कोई बिना पैराशूट दिये नीचे धक्का दे दे और आप असहाय नीचे गिरते रहें।

15.9.83

आज ही गार्सिया मारखेज़ का उपन्यास वन हंड्रेड इयर्स ऑफ सॉलिच्युड 'एकाकीपन के सौ वर्ष' समाप्त किया है। सच बात तो यह है कि नोबेल प्राइज़ से भी पहले भीष्म इत्यादि ने, फिर बाद में इतने लोगों ने उसकी गद्गद प्रशंसा की थी कि मैं सचमुच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उम्मीद में पढ़ता चला गया कि कहीं भीतर यह उपन्यास मुझे कुछ अभूतपूर्व देगा। मगर ऐसा नहीं हुआ। इसका बहुत बड़ा कारण तो उपन्यास खुद है, जो नैरेटिव में, यथार्थ और फैंटेसी को मिलाकर लिखा गया है। दूसरे ऑरिलियानो और दो-एक नाम इस तरह गड़बड़ा गए हैं कि बहुत ही उलझन होती है, जैसे रामलाल का बेटा रामलाल, पोता-परपोता रामलाल और अगर वे सब साथ ही हों तो बहुत स्वाभाविक है कि चीज़ें आपस में गड्डमड्ड हो जाएँगी। यही हाल औरतों का है, इसलिए मैं या पाठक तय नहीं कर पाता कि यह किसके बारे में पढ़ रहा है। हो सकता है, उन लोगों के जीवन और परिवेश की एकरूपता और एकरसता बताने के लिए लेखक ने जान-बूझकर इस तरह के कन्फ़्यूज़न की गुंजाइश रखी हो! एक निरन्तरता और सिलसिला दिया हो। कितनी बातें फैंटेसी में होती हैं, कितनी वास्तव में यह तय करना भी मुश्किल है। फिर मैंने उपन्यास को इतना तोड़-मरोड़कर तीनेक महीने में पूरा किया है। बीच में दर्जनों और भी चीज़ें पढ़ डालीं। इसी बीच शिफ़्टिंग ने मानसिक रूप से बिल्कुल ही उखाड़ दिया। इधर पिछले साल से अपने भीतर एक रोग और भी पनप गया है। मैं पढ़ नहीं पाता। आध-पौन घंटे में ही नींद आने लगती है। लेटकर पढ़ना तो पहले भी असंगत था, कुछ ही देर में नींद आती थी। अब तो बैठकर पढ़ने में भी ऊँघने लगता हूँ। सामने का पन्ना ब्लैंक हो जाता है। आगे कैसे पढ़ूँगा? ख़ैर, इस किताब को तो दुबारा पढ़ूँगा...इसलिए उस कॉपी में नहीं लिख रहा, जिसमें पुस्तकों पर आधी प्रतिक्रिया लिखता रहा हूँ।

नए मकान में आकर एक पंक्ति नहीं लिखी है...।

15.10.83

अजीब बात है कि ठीक एक महीने बाद ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। शायद इस बीच में घर की समस्याओं में ही बेहद उलझा रहा हूँ—छोटी-छोटी बातें, टुच्चे उलझाव। भोलेश्वर की हाथ की सफ़ाइयों के बचाव, उससे जान छुड़ाने का कोई सुविधाजनक तरीक़ा, कितना घर में बर्बाद होता है, हम दो अंडे खाते हैं तो वह चार, चीनी-घी जैसी चीज़ों को पार करता है, कभी बल्ब ले जाएगा, कभी बर्तन—यही सब कुछ उलझाए रहा है। इस सब के साथ बड़ी बातें कैसे सोची, लिखी जा सकती हैं। इनकी तरफ़ से आँखें भी नहीं फेरी जा सकतीं। बड़ा अजीब रूटीन हो गया है। पौने छह के आसपास उठना, बहादुर को जगाना और चाय की राह देखना। चाय-अख़बार होते-होते साढ़े सात, पौने आठ, शौच, कसरत, शेव तक साढ़े आठ-पौने नौ, फिर नाश्ता। साढ़े नौ, सवा नौ तक कमरे में गए। एकाध फ़ोन, फिर पढ़ने बैठे। अब हाथ में रह गया केवल एक घंटा। शाम को कभी कोई आ जाता है, कभी बाहर चले जाते हैं। इधर दारू का क्रम भी बढ़ गया है। तीन-चार दिनों में एकाध बार ज़रूर हो जाती है। पता नहीं, कैसी चर्या यहाँ होने जा रही है! हर आदमी घर की तारीफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है, कोई आए और अगर यह न कहे कि घर तो आपका बड़ा सुन्दर है तो बदमाश लगता है। कभी-कभी सोचता हूँ कि यही मेरी आकांक्षाएँ थीं कि एक फ़िल्मी सेट जैसा घर हो, जिसमें खुद मेहमान की तरह रहूँ, लोग आएँ-जाएँ, तारीफ़ करें या मन्नू के मुक़ाबले, 'यह भी बहुत अच्छे लेखक हैं' कहकर सान्त्वना दें और लिखने-पढ़ने के लिए या तो समय न हो, या फिर मन न करे, हमेशा पुरानी स्मृतियों में बना रहूँ। जब ड्राइवर वाली गाड़ी में पीछे अकेला बैठकर आता हूँ तो लगता है कि यही तो वह व्यक्ति था जो ऐसे जीवन के रवैये से सबसे अधिक घृणा करता था। और अब वही होकर रह गया है, एक उल्लू का पट्ठा और सुविधा-भोगी...पता नहीं, मन्नू इस सबके बाहर कुछ सोचती है या नहीं...इस बीच फ़ोन भी लग गया है और नम्बर है—655517।

1.11.83

कभी-कभी सोचता हूँ कि ज़िन्दगी को मैं कैसे 'कैलसली' खा रहा हूँ और उससे बड़ी कचोट यह कि ज़रा भी अपराधबोध नहीं। जैसे कोमा में आदमी के ऊपर से अनुभव, घटनाएँ सभी कुछ गुज़रते चले जाएँ—बिना छुए, बिना छाया...अभी-अभी एक मेला निकल चुका है। तीसरा 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' इन्द्रप्रस्थ स्टेडियम में हुआ था। तीनों दिन मैं वहाँ गया। हालाँकि मुझे और मन्नू को सिर्फ़ एक औपचारिक-सा निमंत्रण था। मन्नू ने कहा और मुझे भी खयाल आया कि मैं दिल्ली में अज्ञेय, जैनेन्द्र के बाद की पीढ़ी का एकमात्र कथाकार हूँ। हाँ, विष्णु प्रभाकर, भवानीप्रसाद मिश्र, और भीष्म साहनी के बाद। और मुझे इसी विरोध में उसका बायकॉट करना चाहिए था। मगर जिन लोगों के हाथ में सारा सम्मेलन था, यानी राजनेता और प्राध्यापक उन्होंने जान-बूझकर ही हम लोगों को काटा होगा। मगर सभी प्रमुख जगहों पर या तो सुधाकर, रत्नाकर पांडेय थे, या फिर सिद्धेश्वर, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव—बाक़ी गोष्ठी संयोजक राजेन्द्र अवस्थी जैसे लोग। उन्हीं में से एक में नामवर सिंह का होना अच्छा नहीं लगा। ...बहरहाल मुझे घूमना वैसे भी अच्छा लगता है, लोगों से मिलना-जुलना, पढ़ने-लिखने की दुनिया के आसपास बने रहना। हालाँकि तीनों दिन ऐसी थकान हो गई कि सारा शरीर टूटने लगा। गिरिराज, नरेशचन्द्र चतुर्वेदी साथ थे। दोनों ही लोदी होटल में रुके थे। हर चीज़ का प्रबन्ध ऐसा ख़राब था कि घंटों जगहें ही तलाश करते रहो—कहीं कोई संकेत नहीं, कोई जगह बतानेवाला नहीं। खाने का प्रबन्ध जैसे भीखमंगों का लंगर—सब अनाथों की तरह भटक रहे थे—शिवप्रसाद, बच्चन सिंह या दूसरे लोग। मृदुला-मंजुल हस्बेमामूल देशी-विदेशियों से सम्पर्क बना रही थीं। सबके ज़्यादा ज़्यादती तो जैसे ठाकुर दम्पति के साथ हुई। यहाँ लौटे तो ठाकुर साहब, भाभीजी इत्यादि बैठे थे। उन्हें ठाकुर साहब को घर ले गया। भाभीजी बैटरी लेन में अपनी बहन के साथ रुकी थीं। ठाकुर साहब अगले दिन चले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आए। अब इधर ठाकुर साहब, इधर सम्मेलन, भयंकर थकान...परिणाम यह हुआ कि उनसे फिर सम्पर्क ही नहीं बना। न वहाँ जाना सम्भव था, यह इस बात का यक़ीन कि जाने पर वे वहाँ मिलेंगे ही...बेहद आश्चर्य तो ठाकुर साहब पर हो रहा था। दुनिया भर से लोग आए हैं, उनके लिए चाहे महत्त्वहीन हो, पर हम लोगों के लिए छोटा अवसर नहीं है। वे आराम से 20 किलोमीटर दूर जा बैठे, यह सोचकर कि हम सब छोड़-छाड़कर वहाँ चक्कर लगाएँगे। उन्होंने एक बार भी फ़ोन नहीं किया, न अपना नम्बर दिया। शायद नम्बर है भी नहीं। अब तक शायद चले भी गए हों। गुस्सा भी आ रहा है और बुरा भी लग रहा है।...मैंने समझाया भी कि भोलेश्वर को अपना हमारा खाना-पीना भी तैयार करना होता है, मगर वे तो जैसे सच्चे अर्थों में बहरे हैं...

बहरहाल 20-25 वाला इम्पैक्ट ऑफ बुद्धा ऑन लिट्रेचर कानपुर आई.आई.टी. का सेमिनार जैसा अच्छा था, उतना ही बुरा यह हिन्दी सम्मेलन।

16.11.83

'रविवार' के जगमीत उप्पल ने 8 नवम्बर को लेख लिखवा ही लिया था, हिन्दी सम्मेलन पर और शायद एकाध दिन में आ भी जाए, 'देखने हम भी गए, पै तमाशा न हुआ...' काफ़ी तीखा लिखा है। फिर गिरिराज के साथ की बातचीत को टेप पर सुन-सुनकर संशोधित-सम्पादित किया। उसमें चार-पाँच दिन लग गए। यहाँ आकर अजीब दिनचर्या बन रही है, उठ तो सुबह पाँच के आगे-पीछे जाता हूँ, फिर लिखने या पढ़ने की कोशिश करता हूँ। छह पर जैसे-तैसे बहादुर को उठाता हूँ। साढ़े छह तक चाय मिलती है, कब्ज से छुटकारे के लिए तीन-चार कप चाय, पाइप पीते-पीते साढ़े सात, पौने आठ बज जाते हैं। शौच, शेव, सवा आठ-साढ़े आठ, थोड़ी कसरत, नाश्ता, यानी नौ बजे मैं इस लायक़ होता हूँ कि बैठकर कुछ लिखने-पढ़ने की बात सोचूँ। इसी में फ़ोन हैं, आने-जानेवाले हैं। इन दिनों तो घर की मरम्मत होती है, इसलिए सारा समय इसी में निकल जाता है। वैसे भी एक-डेढ़ घंटे से अधिक समय नहीं मिलता। शाम को लगभग अनिश्चित होता। कोई आ जाता है या हमें कहीं जाना होता है। कोई प्रोग्राम हो जाता है। आध-पौन घंटा पढ़ने को मिला है। आगे से यहाँ के लिए चलने का समय बारह बजे रखूँगा, ताकि सुबह दो-ढाई घंटे मिल सकें।

कल साजिद आ गया। सारे दिन बैठा रहा। वही औरत और शराब के क़िस्से या बीसियों बार दुहराई गईं काज़ी अब्दुल सत्तार, अतहर रिज़वी की कहानियाँ। शाम को साथ ही मलिक साहब की मैटाडोर में शानी के यहाँ गए। बहुत दिनों बाद जाकर अच्छा लगा। लौटते हुए मलिक साहब ने छोड़ा।...आजकल राजी से बहुत आत्मीयता हो रही है। वह औरत बौद्धिक रूप से काफ़ी तीक्ष्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

25.11.83

अजीब ग़ैर—लिखने-पढ़ने का वातावरण घर पर बन गया है। इधर मेहमानों का हमला है। पहले आया हेमेन्द्र, रेणु और उसके दो बच्चे। वे लोग आराम करने आए थे, लेकिन उनके बच्चे आराम करने दें, तब तो। रेणु का तो सारा समय ही उनकी देखभाल में जाता था। हेमेन्द्र भी काफ़ी घिरा रहता था। 21 को उनकी शादी की सालगिरह थी, घर पर तो कुछ हुआ नहीं, वे लोग ही कहीं घूमने चले गए। फिर हमारी वर्षगाँठ आई 22 को। कुछ भी नहीं किया। 21 को हम लोग जाजू की लड़की की शादी में गए, 22 को महावीर जी (धर्मवीर के भाई) की लड़की की शादी में लॉरेंस रोड पहुँचे। वहाँ रुचि-शैरी, अरुणा की लड़कियाँ आई थीं। वे लोग अमेरिका से खासतौर से इसी के लिए पहुँची थीं। 26 को जा रही हैं। इसी के लिए या रुचि-शैरी से मिलने; जयपुर से लक्ष्मीनारायण जी, माधवी, निशू, पिंटू आ गए। दो दिन वह हंगामा रहा। निशू हमारे ही यहाँ है। आज रुचि-शैरी को लेकर मन्नू आएगी, उधर जयपुर से हरि आ रहे हैं। उम्मीद तो यही है कि परसों तक सभी मेहमानों को चले जाना चाहिए। मगर कुछ भी पता नहीं है। मैं कल भीलवाड़ा जा रहा हूँ। इधर मन्नू इस घर में आकर बेहद ही टेंशन में रहती है—कभी नौकर, कभी मकान में कुछ तोड़-फोड़, कभी कुछ ख़राब, कभी कुछ। डी.डी.ए. वालों के आगे-पीछे भागते रहो। नौकर का कोई प्रबन्ध हो ही नहीं रहा है। ख़र्चे अन्धाधुन्ध बढ़ गए हैं और लिखने-पढ़ने का कोई समय नहीं है।

मन्नू इन सबसे तो परेशान है ही इधर टिंकू की दिनेश खन्ना से बढ़ती हुई घनिष्ठता हम दोनों को और परेशान किए है। टिंकू उसे कभी दिव्या के यहाँ ले जा रही है, कभी कृष्णाजी के। और वह लड़का गले किसी के नहीं उतर रहा। पता नहीं इसने क्या सोचा है। निशू से बातें करके, उसके शौक़ और ज्ञान को जानकर जहाँ कुछ अच्छा लगता है, वहीं टिंकू से तुलना भी जागती है। कितनी अन-एकेडेमिक और उथले शौक़ वाली लड़की बनी है टिंकू...हमने तो कभी भी नहीं चाहा था कि वह टिपीकल पंजाबी लड़की बने, शरीर और बाहरी दुनिया के स्तर तक ही रहे। मैंने एक दिन नाश्ते के वक्त कहा भी था कि तुम्हारे मानसिक स्तर और शक्तिनगर के सरदारजी की लड़की सुरेन्दर में यही तो अन्तर है कि तुम अंग्रेज़ी बोल लेती हो, ज़रा चमक-दमक वाले तौर-तरीक़े दिखा सकती हो, कॉफी-टी वही ग्लैमर, वही शारीरिक स्तर हाय-हूम के अंग्रेजी गाने डिस्को, होटल—यानी वही फाइव स्टार कल्चर...पता नहीं, इस लड़की के पालन-पोषण में हम लोगों ने कहाँ ग़लती कर दी है।

अब महसूस होता है कि मानसिक और बौद्धिक स्तर के लिए ज़रूरी है कि बच्चों का आत्मीय संवाद पिता से हो। मेरा टिंकू से बिल्कुल नहीं बन पाया। घंटा भर अगर हम लोग पास-पास बैठें भी तो समझ में नहीं आता कि क्या बातें करें? यह तो मैं अपनी ही महत्त्वाकांक्षा, अपना ही लेखन या और भावनात्मक परेशानियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर बैठा रहा या फिर सोचता रहा कि मन्नू से तो टिंकू का बहुत गहरा संवाद है ही। उसके मानसिक और भावनात्मक विकास के लिए इतना काफ़ी होगा। वही इसे हम लोगों के साथ जोड़कर रखेगा, उसे सँभालेगा। मगर जैसे ही कॉलेज छोड़ने का समय आया टिंकू का विकास अपने स्वतंत्र ढंग से होने लगा। उसका अपना मित्र-मंडल बना, अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ जाग्रत हुईं, अपना भावना-संसार निखरा और तब हमने पाया कि टिंकू हमसे, दोनों से ही बहुत दूर है। दोनों तरफ़ एक ख़ास डिस-एप्रूवल का भाव है। दिनेश को लेकर भी उसका रवैया ठीक वही लगता है जो किसी ज़माने में नन्ही का था। न उसे आदमी की समझ थी, न स्थितियों की। रणजीत के लिए मैं पूछता था कि तुम लोगों को कोई अंडरस्टैंडिंग भी है या नहीं। जवाब होता था, बहुत अच्छी अंडरस्टैंडिंग है। इसके लिए अंडरस्टैंडिंग का अर्थ था कि खिलाता-पिलाता है, घुमाता है और आज स्थिति सामने है, जानवरों और गँवारों की तरह पिटाई करता है, वहीं ठूँस-ठूँसकर अच्छे से अच्छा खाता है, दारू पीता है, और सेक्स चाहता है। इसके आगे उसकी कोई ज़रूरत या पहुँच ही नहीं है। थोड़ा सॉफ़िस्टीकेटेड धरातल पर यही कुछ टिंकू के साथ होने जा रहा है।

नन्ही की चिन्ता एक दूसरी परेशानी है, रणजीत उसे हैवानों और जंगलियों की तरह पीटता है और रह-रहकर वह अलग होने की बात सोचती है, सुधीर बीच में है। दोनों ही अपनी बातें उससे आकर कहते हैं। रणजीत ने प्रस्ताव रखा था कि डेढ़ लाख रुपया, टीवी, फ्रिज या जो भी कुछ चाहे वह ले ले और मेरी जान छोड़े। हमें भी लगा कि ख़त्म ही किया जाए। मगर फिर नन्ही ने विचार बदल दिया। 22 को जब उसे शादी में लॉरेंस रोड जाना था, मालूम हुआ तबीयत बेहद ख़राब है, 30-40 क़ै हो चुकी हैं। सुमन को स्कूटर पर छोड़ने आया तो घर ही नहीं लौटा। दोनों बच्चे हमारे साथ। रात को दस-ग्यारह बजे जब लक्ष्मीनारायणजी, मुन्ना, सुधीर छोड़ने गए तो वह नहीं लौटा था, कहीं दारू पी रहा था। उसने पड़ोस के बच्चों या लोगों से कहकर दवा मँगाई थी। उसी से पता लगा कि माताजी आजकल उस घर में जाने लगी हैं और दोपहर में उन्होंने ही कोई प्रसाद जैसी चीज़ दी थी। मैं अचानक चौकन्ना हुआ। यानी अब माताजी और रणजीत का प्लान यह है कि क्यों डेढ़-दो लाख ख़र्च किए जाएँ, धीरे-से नन्ही को ठंडा ही क्यों न कर दिया जाए। यह निश्चय ही उस खतरनाक हत्यारी औरत की योजना है। तभी से मैं परेशान हूँ। आज अभी यही बात मैंने सुधीर से फ़ोन पर की है कि थोड़ा-सा देखते रहें।

30.11.83

जैसे-जैसे वर्ष समाप्त होता है, मुझे लगता है कि इससे तो पिछला साल ही बेहतर था। कम-से-कम कुछ तो उल्लेखनीय किया ही था। पिछले वर्ष इन्हीं दिनों गाड़ी चलाना सीखा था, और सुबह नियमित रूप से उठकर रंजन को जगाया करता था, पम्बारी रोड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर गाड़ी चलाता था। वह सब वहीं छूट गया। साल भर में तो अच्छी-खासी प्रैक्टिस हो चुकी होती। ख़ैर...कल ही भीलवाड़ा से लौटा हूँ। वहाँ राजस्थानी लेखकों की एक 'उपनिषद' (सेमिनार) थी, 'कथा-साहित्य और मानव मूल्य' दो दिन रुका। जैसी मैंने तैयारी की थी, वैसा कुछ बोल नहीं पाया। आलम शाह खाँ और दुर्गा प्रसाद अग्रवाल से मुलाक़ात हुई। आलम बहुत अच्छी हिन्दी और राजस्थानी जानता है। दुर्गा प्रसाद समझदार समीक्षक लगा। एक कवि मिले अग्निवेश शुक्ल, नौजवान और मंचीय कवि है, नीरज का चेला। नीरज से भी भेंट हुई। वह तो अच्छा-खासा ज्योतिषी है। सबसे अच्छा लगा भवानीप्रसाद मिश्र के साथ दो दिन बिताकर। हमारे पहुँचने पर जैसे ही उन्होंने अपने चार सौ रुपए ट्रेन में खोने का ज़िक्र किया तो मेरा माथा ठनका। तो यह अधिक झटकने की गांधीवादी चाल है। फिर बाद में मिश्रजी मुझे अच्छे लगने लगे। सब मिलाकर भीलवाड़ा की यात्रा बहुत प्रसन्नतादायक नहीं लगी। हुआ कुछ नहीं, ऊपर से सभी ठीक था, मगर भीतर से उदास हूँ। शायद मन मुताबिक न बोल पाने का अवसाद हो। वैसे कुछ न कुछ लिखने का दबाव ज़रूर महसूस कर रहा हूँ। एक कहानी अपने घर बदलने को लेकर मन में आ रही है। कम-से-कम आज सुबह तक ज़रूर इच्छा थी कि अभी ही शुरू कर दिया जाए। मगर देखते हैं दिल्ली आकर कैसा लगता है, कहाँ तक यह दबाव बना रहता है!

मालूम नहीं, यह घर शुभ है या नहीं, मगर जब से यहाँ आए हैं, मन्नू की तबीयत (शायद) मनोवैज्ञानिक तनाव के कारण ख़राब ही रहती है। रात को नींद नहीं आती, रोती है। कुछ रंजन की याद है, कुछ टिंकू के नए चेले दिनेश खन्ना और उसके बढ़ते सम्बन्धों को लेकर चिन्ता है, कुछ सुबह साढ़े सात पर निकलकर बसों में धक्के खाते हुए कॉलेज जाना, फिर लौटकर ढाई-तीन बजे आना, कुछ डी.डी.ए. के मकान की प्रारम्भिक असुविधाएँ, बढ़ते हुए खर्चे और अपने कुछ अहसास। हमेशा या तो आत्महत्या, या आत्मधिक्कार, शारीरिक शिकायतें। वह सचमुच बीमार है। पीछे सुना, रुचि-शैरी के टिकटों को लेकर काफ़ी परेशानी रही और उन बेचारी लड़कियों को काफ़ी भटकना पड़ा। हरि, निशू और टिंकू इत्यादि ने सँभाला। रात-रात भर भाग-दौड़ तो हुई ही।

जाने से एक दिन पहले ही लालानी ने मरीना में डेली-टेलिग्राफ़ की टिन एडमंड (प्रतिनिधि) के लिए पार्टी दी थी। गिरिराज और सुरेन्द्र वर्मा थे। खाने के लिए हम जामा मस्जिद के करीम में। सिपाहियों ने गाड़ी रोकी तो उसके बाद लालानी ने जो व्यवहार किया वह खासा अशोभन था।

5.12.83

भीलवाड़ा प्रवास के दौरान एक कहानी घर बदलने पर जागी थी, लगा था कि जाते ही इस पर कुछ और सोचूँगा और लिखना शुरू कर दूँगा। मगर यहाँ आते ही दिल्ली ने जैसे झपटकर दबोच लिया। वही समस्याएँ, वही चिन्ताएँ और वही भागदौड़...पिछले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनों मन्नू की परेशानियों ने एक नया रूप ले लिया। उसने टिंकू से दिनेश खन्ना की बात पर कुछ कहा होगा, बाद में मन्नू ने ही उस बातचीत का सार बताया। लगता है, टिंकू अब काफ़ी स्वतंत्र ढंग से सोचती है। जब मन्नू ने दिनेश के गले न उतरने की बात कही तो टिंकू ने कहा कि मम्मी, तुम जो चाहती हो हम वह कर लेंगे, दिनेश की जगह रंजन से शादी कर लेंगे। लेकिन क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारी तरह ही हमारी भी ज़िन्दगी रो-धोकर कटे—तुम पप्पू की पर्सनल वाइफ़ कहाँ, सोशल वाइफ़ हो...मैं पप्पू और तुम्हारी दोनों की तकलीफ़ जानती हूँ और उससे बचना चाहती हूँ। बस, मन्नू को फिर नए सिरे से आत्मभर्त्सना और आत्मधिक्कार का दौरा। तुम अभी भी उसी के साथ बस जाओ। चौबीस-पच्चीस साल मेरे साथ रहे...टिंकू कहती है, तुम्हारी मानसिक हालत 'अर्थ' फ़िल्म की स्मिता वाली हो रही है। 'अर्थ' फ़िल्म त्रिकोण की कहानी है और कुलभूषण खरबन्दा, पत्नी शबाना को छोड़कर प्रेमिका स्मिता के साथ रहने लगता है, लेकिन स्मिता सामान्य-सन्तुलित नहीं रह पाती। उसे कुलभूषण की हर बात से शबाना की गन्ध आती है, दोनों पास लेटते हैं तो वह बीच में होती है। स्मिता को जैसे फ़ोबिया हो गया है और क्रमशः वह पागल जैसी ही हो जाती है। टिंकू का इशारा उधर ही था। यानी सब मिलाकर टिंकू की समस्या तो एक तरफ़ रह गई, हम लोगों के बीच पुरानी लड़ाई बीच में उभर आई। टिंकू की यह मैच्योरिटी देखकर मैं चौंका ही नहीं, डर भी गया। यह वही टिंकू है जिसकी एक पुरानी तस्वीर मुझे अभी मिली है : आगरे के घर के वाश-बेसिन पर मैं शेव कर रहा हूँ और नल का पाइप लेकर नंगी बैठी टिंकू कुछ कपड़े धो रही है। मुश्किल से डेढ़-साल की रही होगी। कहती है, एक बार मुझसे बातें करेगी।...अभी-अभी मैंने निर्मल वर्मा की एक कहानी 'एक दिन का मेहमान' पढ़ी। उसमें भी नायक इंग्लैंड में अपनी पहली पत्नी के पास एक दिन के लिए जाता है। पत्नी तो प्रायः सामने नहीं आती। सारी स्थिति को लड़की ही सँभालती है। 16 साल की लड़की कितनी समझदार और परिपक्व हो गई है! कहानी निर्मल ने अपनी ही लिखी है, और छूती है।...ख़ैर, हम सभी को लगता है कि दिनेश वाला मामला काफ़ी बढ़ रहा है।

ठंड बढ़ने लगी है अब बाक़ायदा। आज मैंने जैसे-तैसे उस कहानी 'घर' के सुबह दो पन्ने लिख डाले हैं और कोशिश में हूँ कि जैसे भी हो पूरी कर डालूँ। तय नहीं कर पाता हूँ कि इस नए घर को लेकर मैं उखड़ा हुआ महसूस करता हूँ या जगता हुआ रहने का क्रमशः अभ्यास हो रहा है। यह सही है, मगर यह 'मेरा घर' है और अब यहीं रहना है। इस तरह महसूस करने का अभ्यास शायद नहीं है। परसों अरविन्द के यहाँ गए थे, खाना खाने। बहुत लोग थे, शानी और खरे भी। नामवर, उदय प्रकाश, विनोद भारद्वाज, मंगलेश डबराल, मनोहर श्याम जोशी। अच्छा जमघट था और सभी लोग मेरे उस 'रविवार' वाले लेख की तारीफ़ कर रहे थे।...घरेलू तनाव के कारण वही 'घुसपैठिए' की फ़ीलिंग रहती है। रंजन को आना था, कम्बख़्त अभी तक नहीं आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6.12.83

अब तो सचमुच आश्चर्य ही होता है कि कैसे लिख लेते हैं लोग उपन्यास-कहानियाँ ? मैंने 'घर' नाम से कहानी की शुरुआत की है, कल भी लिखी थी। आज भी। डायरी के मुश्किल से सब मिलाकर दो पेज। आगे समझ में ही नहीं आ रहा क्या लिखूँ ? कल सुबह पाँच-छह बजे लिखा, आज नौ-दस बजे। सुबह का ही समय ठीक लगता है। कोशिश करूँगा कि कुछ भी लिखूँ सुबह ही थोड़ा-बहुत ज़रूर लिखूँगा।...आज कमला नाम की नेपाली नौकरानी आ गई है और वह घर का सारा काम करेगी। यानी भोलेश्वर का दबाव बढ़ गया है कि मैं उसे नौकरी दिलाऊँ।

9.12.83

अभी-अभी 'इंडिया टुडे' के लिए महादेवी पर लेख पूरा करके भिजवाया है। कल फ़ोन आया था श्री वेंकट रमन का और उन्हें तत्काल ही लेख की ज़रूरत थी। ख़ैर, मैं मान गया। कुछ यहीं बैठकर लिखा, कुछ रात में घर जाकर। यहाँ जो टाइप हुआ था वह अधूरा लगा। सुबह जल्दी उठकर जो बैठा तो साढ़े नौ तक लेख पूरा कर लिया था। 'मर्डर इन कैथेड्रल' गिरजाघर में मौत। कोई विशेष नई बात नहीं है, लेकिन लगा, लेख अच्छा ही है। शायद ज़िन्दगी में इतने कम नोटिस पर यह पहला लेख है। मान इसीलिए गया कि कम-से-कम ऐसी मजबूरियों में लिखना तो हो। ख़ैर, वेंकट नारायण ग्यारह तक घर आनेवाले थे। उधर 12.5 पर मन्नू का क्लास था, 11.15 तक राह देखकर चिट छोड़ी और भाग आया। यहाँ आकर फ़ोन किया और उन्होंने लेख मँगा लिया। अब देखें, क्या होता है ? परसों से मन्नू का मूड ख़राब है। आज मैंने कहा कि लेख पढ़कर अपनी राय दो, तो पढ़ा ही नहीं।

इधर भोलेश्वर ने एक नया कांड कर रखा है। पिछले कई दिनों से एक लड़की के लिए कह रहा था कि वह काम कर सकती है, दूसरी जगह कर रही है, दो सौ लेगी। राज स्कूल में चौकीदार की पत्नी है। दो दिन वह लड़की आई, पिछली बार तो गर्भवती लगी थी। इस पर भोलेश्वर ने कहा दो महीने पहले तो आई है, गर्भवती कैसे होगी ? बिना खाने-पीने के दो सौ तय हुए। मगर देखा कि उसे न पकड़े धोने आते हैं, न खाना बनाना। भोलेश्वर पिछले दिनों कह रहा था कि चौकीदार इस औरत को खाना नहीं देता, मारता है और कहता है, मुझे रुपए लाकर दे। इसीलिए सुबह सात से रात को नौ-साढ़े नौ तक के लिए तैयार है कि वह यहाँ रहे। जब हमने कहा कि यह तो नहीं चलेगी तो अचानक बोला—इस लड़की को उसके पास नहीं रखना। इससे मैं शादी करूँगा। पहले कहीं ले जाकर पन्द्रह-बीस दिनों रखूँगा। और लीजिए, कल सुबह दोनों आए, भोलेश्वर ने मेरे पाँव छुए, कमला से कहा तो उसने मन्नू के पाँव छुए। देखा, उसकी माँग में सिन्दूर भरा है। पता लगा, इनके यहाँ शादी इसी तरह हो जाती है। सारी बात कैसी आसान और सीधी है, मियाँ-बीवी राज़ी, तो क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेगा क़ाज़ी ? मेरी आँखों में आँसू आ गए। पता नहीं, यह सब देखकर या भोलेश्वर के व्यवहार से। वह बेहद गम्भीर था। आज भी गम्भीर है। इनके यहाँ सब कुछ कैसा ग़ैर-उलझन भरा है। काश, यही सब हमारे यहाँ होता! यहाँ तो शादी जैसे एक झमेला हो। दुनिया भर का आगा-पीछा, लड़की की मानसिकता, एडजस्टमेंट सभी की मुसीबत है...कल शाम को रामाधार भाई और वैदिक आ गए...

17.12.83

लगता है, 'इंडिया टुडे' में घपला है। यह लेख काफ़ी भारी लगा। दूसरे उनके पास कोई आदमी नहीं है जो सही या कामचलाऊ अनुवाद कर सके। मैं दफ़्तर में गया। कनॉट प्लेस में है ऊपर...और काफ़ी अच्छा। दस-बारह लोग थे, सभी नौजवान, उत्साही और स्मार्ट...दफ़्तर का काम देखकर अच्छा लगा। यह होता है अखबार का दफ़्तर। वहाँ वेंकट नारायण से मिला। वह एक टाँग से छोटा है लेकिन अरुण पुरी के बराबर का केबिन है। लगता है, काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। उसी से बातें हुईं। अनुवाद डेविड नाम के लड़के को दिया हुआ है। वह हिन्दी बिल्कुल नहीं जानता या कम जानता है। ख़ैर, मुझे लगा, इनके बस का नहीं है। घर पहुँचे तो दिनेश था। लगता है, यह दिनेश अब चिपक ही गया है। चलो, लड़की जिसमें खुश रहे...

बुध यानी शाम को 'होटल सूर्या' फ्रैंड्स कॉलोनी में लालानी ने अपने दोस्तों का एक प्रोग्राम रखा। हम निमन्त्रित थे। बम्बई की कोई अनीसा साबरी हैं, वे दिल्ली आई हुई थीं। रज़िया में कोई छोटा-मोटा रोल भी है। लालानी ने सुपरलेटिव में उसकी तारीफ़ करते हुए बताया कि बेग़म अख़्तर के बाद महिलाओं में ग़ज़ल किसी ने साधी है तो वह अनीसा साबरी हैं। मैं पास ही बैठा था। पीछे बाप हारमोनियम पर, भाई तबले पर। यानी परिवार ही था। संगत के लिए छोटी बहन। फ़र्श पर ही प्रबन्ध था। लोगों ने कहा कि गला अच्छा था, मगर ग़ज़लों का चुनाव अच्छा नहीं था। पहले तो शराब चलती रही। लगभग 30-35 लोग थे। स्नैक्स, ड्रिंक्स, फिर खाना। लालानी ने अनीसा को महानतम तो बताया था, मगर जैसी कि आदत है, बीच-बीच में बातें करते रहे। लगता था, सब अपनी-अपनी बातें ही कर रहे थे। इससे भी गानेवाला काफ़ी उखड़ जाता। फिर उसे अच्छे शायरों के कलाम भी याद नहीं थे। बीच-बीच में पचास रुपयों के पाँच-सात नोट भी आए, पटावरी ने सौ डाले। सुना बाद में उसे शिकायत रही कि पैसा नहीं आ रहा। खाने के समय मैंने उससे बातें कीं। कहती है कि एक प्रोग्राम के 15-20 हज़ार लेती है। चूँकि दिल्ली आई थी, इसलिए लालानी ने तय किया था 2 हजार में। मगर उसने चलते समय झटके तीन। एक शाम में सातेक हज़ार तो लगे ही होंगे। ये लोग कैसी आसानी से रुपया ख़र्च करते हैं! पहले भी लालानी ने पाँचेक हज़ार ख़र्च किए होंगे। उसके सारे व्यवहार में नव-धनाढ्यों वाला गर्व बोलने लगा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

23.12.83

पिछले दिनों विशेषकर रविवार को मैंने सोचा कि किसी काम में मन नहीं लग रहा तो लाओ, पत्रों को ही ठीक लगा दूँ। पुरानी फाइलें, पांडुलिपियाँ, कटिंग और पत्रों के बंडल निकाले। राकेश, कमलेश्वर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, भारती, अश्क—सभी के पत्र निकाले और पहले एक जगह किए। फिर अलग-अलग फ़ाइलों में रखे। यह साला ऐसा नामुराद काम है कि आप पुराने काग़ज़ ही नहीं उलटते- पलटते, सारा अतीत ही दुबारा जीने लगते हैं। एक पूरा युग दुबारा आपके ऊपर से गुज़र जाता है। बड़ी अजीब बात दिमाग़ में आई कि यह सब कुछ को पुनर्व्यवस्थित करने का काम क्या बहुत स्वाभाविक ढंग से हो रहा है या पीछे और कोई प्रेरणा कार्य कर रही है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि एक दिन चुपचाप 'टें' बोल जाऊँ और बाद में कहने को रह जाए कि शायद उन्हें (मुझे) भास था कि ऐसा होना है, इसीलिए सारे काग़ज़-पत्तर व्यवस्थित कर गए...

1.1.84

फिर नया साल...नया दिन, नए आश्वासन अपने-आपको और आशंका कि पता नहीं ये पूरे भी होंगे, या पिछले वर्षों की तरह सिर्फ़ कुंठाएँ बनकर धिक्कार की एक तह और बना जाएँगे। पिछले तीन दशकों की मेरी डायरी को अगर देखा जाए तो शायद ही कोई दिन होगा जब मैंने अपने-आपको धिक्कारा न हो, अपनी काहिली और हरामख़ोरी की आदत को गालियाँ न दी हों, या अपनी प्रतिभाहीनता को कोसा न होगा। सचमुच अगर कभी कोई मेरी ज़िन्दगी की थीम या अन्तर्सूत्र जानना चाहेगा तो वह होगी आत्मधिक्कार...ऊपरी ज़िन्दगी में चाहे जो होता रहा हो, मैं चाहे जो कुछ भी करता रहा होऊँ—यह सेल्फ रिप्रोचमेंट निरन्तर ही बना रहा है। बहरहाल, जो चीज़ मेरी डायरी या आन्तरिक जीवन में एक सिरे से नदारद है, वह है संकल्प—इसलिए इस साल के लिए अपने-आपसे क्या वादा करूँ...हाँ, एक आकांक्षा ज़रूर है, हौज़ख़ास का यह नया घर मेरे कथा-लेखन के सिलसिले को दुबारा चालू कर दे...कोशिश तो भरसक करूँगा। वैसे इस घर और कमरे के एकान्त में लिखने-पढ़ने का सिलसिला तो थोड़ा-सा लगता है। और कुछ नहीं तो पुरानी चीज़ों को ही सँवारने को ही मन करता है।

पुराने वर्ष की उपलब्धि, इस नए फ़्लैट में आ जाना और मानसिक रूप से पिछली जड़ता से उखाड़ पाना। कोशिश कर रहा हूँ, इसी कथ्य पर एक कहानी लिखने की : 'नया घर'।

25 तारीख़ से आया हुआ है मोहन लाल 'भास्कर'—'अक्षर' की पुस्तक 'मैं पाकिस्तान में भारत का जासूस था' का लेखक। यह सही है कि किताब की बहुत चर्चा है। पता नहीं, ऐसी ही स्थिति कभी शुरू में मेरी भी थी या नहीं, मगर प्रचार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूख देखकर बहुत वितृष्णा होती है। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद हो जाए, यह फ्रेंच में आ जाए, मेरे फोटो भारत के सभी पत्रों में मुखपृष्ठ हों...मेरे मुँह से निकला हुआ एक-एक वाक्य छपे। चालू कविताओं की 'बढ़े चलो छाप' डायरी लेकर आ गए और लगे मेरी जान को कि यह उसका हिस्सा है, इसे छापो। मैंने उससे कभी कहा होगा कि अब तुम्हें हिन्दुस्तान में पाकिस्तान की जासूसी पर कुछ लिखना चाहिए। चालू हो गया। दिक़्क़त इसके साथ यह है कि अपने हर लिखे को फ़ाइनल ही मानता है। मुझे पढ़ाने और सुनाने को बेचैन, मैंने इस उत्साह को काफी ठंडे ढंग से ही लिया—लार्किन्स और साँवा, सभी कुछ कहता रहा। मैं प्रभावित ही नहीं हुआ। पहले इसे अपने आप लिख लेने दो, फिर इस पर काम होगा। न अपनी कल्पनाशीलता है, न पढ़कर सीखना चाहता है। मैंने इसे दो-चार उपन्यास बताए—जो विश्वप्रसिद्ध घटनाओं पर लिखे गए हैं। पिछले रविवार को आया था और रोज़ दो बजे आकर बैठना, पाँच-छह बजे जाना। मैं काफ़ी बोर हो गया था। मैंने त्यागी और रमेश गौड़ से कहकर एक प्रेस कांफ्रेंस का आयोजन किया। वैसे तो हर पंजाबी की तरह पैसे की चिन्ता न करने की बात करना, मगर भीतर से यही इच्छा कि यह सब 'अक्षर' ही करे। इसे दूल्हे की तरह हाथों पर उठाए। पाँच-दस हज़ार दे दे। मेरे पास पैसे नहीं हैं, कहकर आठ सौ रुपए लिये। ख़ैर, उसमें साढ़े चार सौ इस पार्टी में ही ख़र्च कर दिये—या मैंने करा लिये।

शराब पीकर मेरे साथ लग लेता था कि अब मैं घर नहीं जाऊँगा। वैसे रोज़ कैब्रे देखता था। मलिक साहब की रोहतक रोडवाली जगह में पार्टी की। जितनों की उम्मीद थी, उतने नहीं आए। फिर भी काफ़ी हंगामा रहा। रात को डेढ़ बजे लौटे। कल नए वर्ष के लिए हमने अपने दोस्तों की पार्टी की व्यवस्था की थी। कह दिया था कि उसमें तुम नहीं जाओगे। मिसफ़िट हो। मगर साथ लगने के चक्कर में शाम तक वहीं बैठा रहा। परसों साथ आ गया था। सारे दिन साथ रहा, फिर भी इच्छा यह कि नया साल साथ बिताए...तब मुझे ही कहना पड़ा। बड़ी मुश्किल से गया। हम लोग फिर रोहतक रोड जमे। मैं, विष्णु खरे, अजित, मलिक साहब, शानी, साजिद, सुकुमार और हर वर्ष की तरह नया साल करके आए...डेढ़ या पौने दो बज गए थे...साजिद और शानी का मयूर विहार छोड़ा।

इधर टिंकू और दिनेश प्रसंग बहुत तेज़ी से बढ़ रहा है। दिनेश की बहन की शादी बड़ी जल्दी-जल्दी में तय हुई और आज शादी थी। सिद्धार्थ में। पिछले दो-तीन दिनों से टिंकू लगभग वहीं रह रही थी। परसों आई ही नहीं, कल ढाई बजे आई। रामजस रोड पर बहुत पास ही दिनेश का घर है। साढ़े बारह के आस-पास वे सभी लोग आए, 'हैप्पी न्यू ईयर' हुआ और उन्होंने फिर टिंकू को रोक लिया। कल दिनेश की माँ का फ़ोन आया कि खाने के लिए मैं आज सिद्धार्थ ज़रूर आऊँ। ख़ैर, हम गए और मैं इसी दृष्टि से देखता रहा कि कैसे लोग हैं, यानी टिंकू को जो घर मिल रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वह कैसा है, वे लोग कैसे हैं? दिनेश के पिता नहीं हैं। चाचा-ताऊ लोग मिले। बहनें मिलीं। सब मिलाकर लोग तो ठीक ही लगते हैं। माँ छोटी-सी है और ख़ास उम्र भी नहीं है। बहुत प्यार से मिलीं। बोलीं—बेटी जा रही है, अब एक बेटी चाहिए, आपसे माँग रही हूँ। मैं इतने साफ़ प्रस्ताव के लिए सचमुच तैयार नहीं था और करीब-करीब सकपका गया। कृतज्ञ-सा भाव लिये चुप रहा, कुछ बोला नहीं। स्वाभाविक उत्साह से जैसे फूटना चाहिए था, वैसी खुशी नहीं फूटी...कहीं मन से जैसे अभी भी स्वीकार नहीं कर पा रहा हूँ। पता नहीं, न बोलकर मैंने ग़लत किया या सही। हो सकता है, टिंकू को बुरा लगा हो। मगर मैंने देखा, टिंकू को सभी ने जैसे स्वीकार किया हुआ है। अब तो लगता है, यह सब होकर रहेगा। दिनेश और उसके परिवार के लोग मुझे काफ़ी महत्त्व दे रहे थे। परिचित एक भी नहीं था। मगर लोग अच्छे ही लगे। जैसे बौद्धिक या पढ़े-लिखे परिवेश की इच्छा टिंकू को लेकर मेरे मन में हो सकती थी, वह सब तो नहीं ही है, टिपीकल पंजाबी मामला है। माँ तो जल्दी के लिए कहती थी। ऐसी स्थितियों को मन्नू ही सँभाल सकती है। वहाँ से थोड़ी देर के लिए भीष्म की तरफ़ गए। वह काफ़ी प्रसन्न हो गया।

आज सोचा था कि अपने मौलिक लिखने की कुछ न कुछ शुरुआत करूँगा। नहीं हो पाया। वहाँ से आकर सो गए। फ़िल्म देखी, खाना खाया और अब यह डायरी लिख रहा हूँ। कल से करूँगा। सबसे पहले तो कहानी लिखकर साक्षात्कार में देनी है।

3.2.84

आज लगभग एक महीने बाद इस डायरी को उठाया है। सोचा था, सर्दी का मौसम है, सुबह जल्दी उठकर अपना कुछ रचनात्मक लिखूँगा। वह हुआ नहीं। बहुत अच्छी सर्दी पड़ी, एक तरह से मौसम काफ़ी कुछ वैसा रहा जिसमें मैं लिखने की बातें सोचता हूँ। मगर वही मानसिक हरामीपना : सुबह पाँच बजे उठकर सोचा कि अभी तो अपना लिखने को कुछ है ही नहीं। चलो, पहले इसे ही पढ़ लिया जाए। और बैठकर पढ़ रहे हैं। पुरानी लिखी दो कहानियों को एक तरह दुबारा लिखा। एक तो बीसेक साल पहले कभी लिखी थी। नायक को लकवा मार जाता है और वह लेटा है। दूसरी 'सिद्धि' नाम से योगिनी पर है। इस तरह लिखने को सुरक्षित रखने का परिणाम मेरा लिखना नहीं हुआ। डायरी भी छूटती गई। अक्षर में ठंड या आलस्य के कारण और यहाँ बैठकर पढ़ने के कारण। हौज़ख़ास के इस मकान में, दिल्ली में अपना समय कैसे मिलेगा, समझ में नहीं आता। सुबह वही दो-एक घंटे का समय मिलता है, वह पेट साफ़ करने के प्रयासों में निकल जाता है। कभी-कभी लगता है, अब शायद मैं कुछ भी कर नहीं पाऊँगा।...नौकर की समस्या इधर विकट हो गई है। कभी बहादुर, कभी भोलेश्वर और अब चिन्तामणि। घर के छोटे और टुच्चे कामों में मेरा बहुत मन लगता है, भोलेश्वर कहाँ क्या मारने की कोशिश करता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तामणि कैसे आठ-दस रोटियाँ, दूध और मीठे की हाथ सफाई दिखाता है—ये सारे पैतरे मुझे बहुत उलझाकर रखते हैं। घर चलाने का ज़िम्मा जैसे मेरे ही ऊपर आ गया है। मन्नू तो सुबह साढ़े सात पर चली जाती है, अब घर की सफ़ाई, कपड़े धुलने, नाश्ते-खाने भी और कुछ भी काम मुझे ही देखने होते हैं। टिंकू तो आठ बजे उठी। तैयार हुई और पौने नौ की चार्टर्ड पकड़ने के लिए चली गई। शाम का उसका कुछ ठीक ही नहीं है।

इधर बहुत भयंकर मानसिक और नैतिक संकट पैदा कर दिया है टिंकू ने। ऐसा लगता है, जैसे उसने तय ही कर लिया है कि दिनेश खन्ना से शादी करेगी। दिनेश अच्छा, महत्त्वाकांक्षी और डैश वाला पंजाबी लड़का है। दाढ़ी रखता है, कानों में सोने की कीलें पहनता है। माँ का अकेला लड़का है, बाप की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई। दो बहनें हैं और दोनों की शादियाँ हो गईं। पहले क्लैरियन में टिंकू का बॉस था, फिर छोड़कर स्वतंत्र रूप से काम कर रहा है। घर में जिस तरह बातें हो रही हैं, दिनेश की माँ से, परिवार से या टिंकू जिस तरह चीज़ें तैयार कर रही है, उससे तो यही लगता है कि यह शादी होकर ही रहेगी। पहले फरवरी-मार्च में करने जा रहे थे, अब मई तय हुई है। मैं चाहता हूँ, अक्टूबर में हो। मगर लगता नहीं है कि रुकेगी। इस बार टिंकू कुछ पक्की लगती है। मैं चाहता हूँ, किसी तरह यह स्थगित हो जाए या न ही हो...दिनेश से मुझे कोई शिकायत नहीं है। लड़का ठीक ही है, मगर मेरे मन में कहीं गाँठ है। एक तो पंजाबी, फिर मैं सोचता था कि चलो, टिंकू में बौद्धिक, सांस्कृतिक या कलात्मक रुझान नहीं है तो क़म-से-कम इस लड़के में तो हो...'हम लोगों की धरोहर' की कुछ तो कद्र कर सके : अगर दोनों की वही ग्लैमर, दिखावे और पैसे की दुनिया रहेगी तो हमें तो कहीं अपनी कोई जगह नहीं दिखाई दे रही। वही पार्टियाँ, गहने, कपड़े, खाने और सतही मौज-मस्ती की दुनिया है, पंजाबी और वह भी शो-वर्ल्ड। यहाँ कहाँ किसी गहरी या रिफ़ाइंड आर्ट की गुंजाइश! थोड़े से ऊँचे धरातल पर वही रंजीत और नन्ही की कहानी। अक्सर सवाल मन में आता है कि ऐसा क्यों हुआ? टिंकू इतनी एंटी-इंटेलेक्चुअल कैसे हो गई? भीतर मन में कहीं एक दबी भावना या आस्था पाले बैठा हूँ कि नहीं, ऐसा नहीं होगा, टिंकू एक दिन लौटेगी। कला, साहित्य और सांस्कृतिक दुनिया की तरफ़ लौटेगी। हम लोगों की साधना यों हमारे साथ ही नहीं मरेगी। मगर अब लगता है, वह आस्था एक 'बैड-फ़ेथ' ही है। ग्लैमर और दिखावे की दुनिय. से वह अब शायद वापस नहीं आएगी...किसी तरह अक्टूबर तक टल जाता तो शायद सम्भव था। मगर जिस तेज़ी से घर में साड़ियों, कपड़ों इत्यादि की बातें हो रही हैं, उससे नहीं लगता कि मई से ज़्यादा मामला खिंचेगा।

और इस फ़ेथ में जहाँ मैं अपने को जुड़ा पाता हूँ, वह है रंजन...रंजन शिमला से लौट आया है। एन.सी.ई.आर.टी. के पास ही कहीं 'नीपा' गेस्ट हाउस में रुका है। परसों तक रोज़ आता रहा है। धीर-गम्भीर और बौद्धिक लड़का है, आजकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफ्का पढ़ रहा है। उस दिन डिस्कस भी कर रहा था। मैं यही सोचता रहा, कहाँ यह कलाकार क़िस्म का बौद्धिक लड़का और कहाँ दिनेश...एक दिन मैंने टिंकू से भी बात की थी। कहा था कि महत्त्वाकांक्षा की यह मूल प्रवृत्ति है कि वह दूसरे को या तो तोड़ती है या खाती है। दिनेश महत्त्वाकांक्षी है, अगर तुम तैयार हो कि अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ उससे टकराते ही छोड़ दोगी तभी शादी करना। वह तुम्हें सरयू बना देगा—घर देखो, उसकी पार्टियों की व्यवस्था करो या उसके साथ पार्टियों में जाओ। यानी उसकी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए स्थितियाँ सुविधाजनक कर दो। और अगर तुम्हें खुद कुछ करने या बनने का सपना है, तब ऐसी समझदारीवाला लड़का होना चाहिए जो तुम्हारे लिए यही सुविधाएँ दे...समझाने का कोई फ़ायदा भी नहीं है और वह समझी भी नहीं। मैंने देखा, दिनेश के सामने वह जैसे अचानक 'निल' हो उठती है। इसलिए अपना कोई स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पाएगी। लेकिन जितना मैं टिंकू को जानता हूँ, वह बहुत दिनों अपने व्यक्तित्व को स्थगित करके नहीं रह सकती। अजीब स्थिति है : मैं देख रहा हूँ कि यह बहुत ग़लत मैच है, यह एक दुर्घटना होने जा रही है, मगर कुछ नहीं कर सकता। फिर सोचता हूँ कि शायद सभी बाप इसी तरह बच्चों को सुख की दृष्टि से ही सोचते होंगे—लेकिन हर अगली पीढ़ी ने उन्हें ग़लत सिद्ध किया है। हो सकता है, मेरे सोचने के पीछे यही घनघोर स्वार्थ हो कि हमारे पीछे, हमारी किताबें, रचनाओं के साथ जो व्यवहार रंजन कर सकता है, दिनेश नहीं करेगा। अगर टिंकू दिनेश से शादी करती है तो यह तय है कि बाद के लिए हमें दूसरी तरह ही सोचना होगा। लालानी इत्यादि के साथ मिलकर एक ट्रस्ट बनाऊँगा—ताकि मेरी और मन्नू की रचनाओं का भविष्य सुरक्षित रहे...फिर भीतर से आवाज़ उठती है, टिंकू लौटेगी...

छोटा बहादुर गया। आजकल चिन्तामणि नाम का लड़का है। अपनी सारी शैतानियों के बावजूद बहादुर इस घर का, मिस्टी का एक अनिवार्य हिस्सा हो गया था। उसने बेहद शौक से प्याज़ लगाई थी, उसमें खाद-पानी देता था—जाते हुए उसे उखाड़ गया...

10.2.84

पिछले चार-पाँच दिन निर्मलाजी के मुन्ना की शादी में गुज़रे। रोज़ शाम को हम लोग चले जाते थे और खा-पीकर देर से लौटते थे। दो दिन तो खाना-पीना, नाच-गाना हुआ, फिर बरात और फिर रिसेप्शन लग रहा है, जैसे बरसों से हम लोग घर खाना ही नहीं खा रहे...मन में हमेशा डर रहता है कि क्या यही सब हमें भी करना पड़ेगा? कौन करेगा सारी व्यवस्था, अर्थ-प्रबन्ध या भाग-दौड़? कल सूफ़िया आ गई थी दफ़्तर। बहुत देर बातें करने के बाद चलते-चलते बोली, "अंकल, आप बहुत लकी हैं, हर काम आपका इतनी आसानी से हो जाता है। आपको कोई परेशानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं होती...।'' मुझे लगा, बात सच ही कह रही है। पिछले दिनों मुक़दमे का फ़ैसला सुनाया गया। चारेक साल से 'अक्षर' और डी.डी.ए. का मामला चल रहा है कि हम रिहायश की जगह का व्यावसायिक इस्तेमाल करते हैं। उसी का फ़ैसला था। रविवार को कृष्णाजी के यहाँ एक बनर्जी मिल गए थे। उन्होंने ग्रह ख़राब बताए थे, कहा था कि फ़ैसले के समय दिल मज़बूत रखिए, पूजा-पाठ बताए थे। मैंने कुछ भी नहीं किया। पहुँचा दो-ढाई बजे, मलिक साहब को लेकर—कुछ पैसों का प्रबन्ध करके। जज ने अन्दर बुलाया। बताया कि आपको छोड़ दिया गया है। मगर आपके वकील ने केस अच्छा नहीं किया। जो प्ली उसने बाद में लिया, उसे ही शुरू में लेना चाहिए था यानी लेखक की तरह मैं रहने और अपने काम करने के लिए इस्तेमाल करता हूँ। ख़ैर, प्रसन्न होकर लौटे। जज आर.एस. यादव था और मुझसे परिचित था, यानी नाम से। उसने कहा कि अगर कानूनन केस कमज़ोर होता तो मैं क्या कर सकता था!

दिमाग़ी और रचनात्मक दृष्टि से लगता है, इन दिनों घनघोर ब्लैंक पीरियड जा रहा है। कल सूफ़िया से एक और मज़ेदार बात हुई। वह सपनों को लेकर मुझसे बहुत-से सवाल पूछने आई थी। तभी मैंने बताया कि शायद एक पीरियड ऐसा आया था जब मुझे हफ़्तों कोई सपना ही नहीं दिखाई दिया और मैं जैसे आतंक से काँप उठा। मैं सचमुच अपनी ज़िन्दगी की कल्पना ही नहीं कर सकता, जब सपने दीखना बन्द हो जाएँगे। जैसे हवा-बन्द जगह में आप तड़फड़ाकर बाहर साँस लेने के लिए बेचैन हो जाएँ, यही स्थिति होगी कुछ-कुछ—जैसे पानी के नीचे दम घुट रहा हो! सुबह एक भी याद न रहे, यह अलग बात है। लेकिन दिखाई ही न दें... ?

टिंकू से पिछले दिनों से अबोला चल रहा है। वह तो इन दिनों इतनी दिनेशमय हो रही है कि किसी भी चीज़ या व्यक्ति का ख़याल ही नहीं है।

16.2.84

कल ठाकुर साहब को जयपुर से आना था। वे अंग्रेज़ी दैनिक की सम्पूर्ण व्यवस्था की पड़ताल के लिए राजस्थान गए थे। 14 को बगरोड़िया से मिलकर सीधे यहाँ आने की बात थी। तय था कि हो सका तो एक दिन को आगरा चलेंगे। मगर कल सेठियाजी ने बताया कि ठाकुर साहब 12 बजे वहाँ थे, एकाध घंटा वहाँ रहे। ठीक उसी समय यहाँ बिज्जी बैठा था और कल ठाकुर साहब से मिलने की योजनाएँ बन रही थीं। सेठिया की बातें सुनकर मुझे धक्का लगा, बुरा भी लगा। ख़ैर, हमारी कल देर तक मीटिंग थी। हर बुधवार को होती है, चोरड़िया के यहाँ। कन्हैयालाल पटावरी, माँगीलाल सेठिया, उमराव सिंह चोरड़िया और एक लोढ़ाजी स्थायी हैं, बाक़ी आते-जाते लोग। देर तक वे लोग राजस्थान में हुए मर्यादा-महोत्सव में हुए कष्टों और अव्यवस्थाओं की बातें करते रहे।...पिछले दिनों मृदुला गर्ग ने बताया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उन्हें कन्हैयालाल जैन, यानी पटावरी मिले थे और बता रहे थे कि आपके साथ मिलकर कोई पत्रिका की योजना है। उन्होंने ही बताया कि हर बुध को आप मिलते हैं। मालूम हुआ, आनन्द गर्ग जो बनाते हैं, कन्हैयालाल उसके बड़े खरीदार हैं। यही बात पटावरी ने भी बताई। लगता है, वह काफ़ी सीरियस है और लालानी ढीले हैं, क्योंकि पैसा नहीं लगा सकते। यह वह चाहते नहीं हैं कि पटावरी अपने आप शुरू करें। हालाँकि पटावरी इस स्थिति में हैं। इससे लालानी की साहित्यिक महत्त्वाकांक्षा अधूरी रहती है...सोचता हूँ, कभी अलग से बात करूँ। मगर क्या यह ठीक रहेगी? लालानी सोचेंगे, मैं उन्हें काटकर ऊपर ही ऊपर मामला फ़िट कर रहा हूँ। ये लोग आपस में इतने जुड़े हैं कि मैं ही ग़लत या ऊपरी व्यक्ति सिद्ध कर दिया जाऊँगा। वैसे इन दिनों लालानी की एक ही थीम है, उमराव सिंह के लड़के से अपनी पुत्री वर्षा की शादी। उमराव इतने उत्सुक नहीं हैं। शायद लड़की उतनी गोरी नहीं है।

21.2.84

आजकल अपना पुराना लिखा उपन्यास 'उधार की ज़िन्दगी' पढ़ रहा हूँ—पांडुलिपि में। इसे मैंने दिसम्बर '67 में लिखना शुरू किया था और प्रायः रोज़ लिखकर मई, '68 में तीनेक सौ पन्ने लिख डाले थे। अन्त के दस-बीस या पचास रह गए थे। लगभग पन्द्रह साल हो गए हैं। मुझे याद है, यह वही ज़माना था जब शोभना से घनिष्ठता थी और प्रभा इत्यादि के साथ हम लोग घूमने जाया करते थे। अजीब संयोग था, जिस तरह का उपन्यास था, लगभग वही ज़िन्दगी में जी रहा था। आज पढ़कर दंग हूँ कि कलकत्ता तब मेरे भीतर कितना जीवित और जीवन्त था—एक-एक सड़क, मोड़, होर्डिंग, भीड़, ट्राम की पटरियों की चमक, विज्ञापनों की बत्तियाँ...और अपनी ज़िन्दगी के पुराने दबे-ढँके सपने, कुंठाएँ—सभी कुछ शायद मैंने बेहद बेबाकी और साफ़गोई के साथ लिखे थे। आज तो लगता ही नहीं कि वह मैं ही था जिसने वह सब लिखा था। सचमुच चकित और मुग्ध हूँ कि कैसे छोटी-से-छोटी बात, विचार और अनुभवों के पहलू एक के बाद अपने-आप खुलते रहते हैं। आज उतनी गहराई से शायद मैं न लिख पाऊँ...मुझे मालूम है, उपन्यास मैंने चन्दर को केन्द्र बनाकर लिखा है, मगर जितनी प्रामाणिकता है, उस हिसाब से कौन विश्वास करेगा कि वह मैं नहीं हूँ? कभी-कभी तो लगता है, जैसे मैंने एक निहायत ही 'ब्लू' किताब लिख डाली है—क्योंकि मुख्य है सेक्स...इसे पढ़ते हुए मैं तय कर रहा हूँ कि ज़रा मौसम ठीक हो जाए तो टाइप पर इसे दुबारा लिखना शुरू करूँ। कम-से-कम एक ज़्यादा संशोधित ड्राफ़्ट तो बना ही लूँ। फिर देखूँगा कि छपाने की हिम्मत कर सकता हूँ या नहीं। असल में, उसके मुख्य-पात्र टी.के. के निहायत निजी फ़ैंटेसियों और घनघोर व्यक्तिवादी व्यवहार और रवैए को मैं कोई सामाजिक जस्टिफिकेशन नहीं दे पा रहा और तब से ही परेशान हूँ कि सन् साठ के आसपास आनेवाले इस युवक की क्या न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई प्रासंगिकता है, न सामाजिक कारण ? टी.के. कहाँ से और क्यों आ गया ? वह क्या किन्हीं आर्थिक, सामाजिक स्थितियों का परिणाम नहीं है ? एक समाजशास्त्री इस प्रकार के चरित्र को कहाँ रखना चाहेगा ? इस विशेष मनोविज्ञान के क्या सामाजिक कारण देगा ?—यही सब अगर मैं सन्तोषजनक ढंग से दे सकूँगा तभी शायद बिना किसी अपराध-बोध के इसे प्रकाशित कर सकूँगा और इस बात का भी जायज़ा ले सकूँगा कि आर्थिक असफलताओं और राजनीतिक विश्वासघातों ने देश के युवावर्ग से सारे आदर्श छीन लिये थे, वह दिशाहीन होकर अपने में वापस लौट रहा था, एक आत्महन्ता प्रतिहिंसा से भरा...यही वह काल है जब भगवानों की दुकानदारियाँ देश के कोने-कोने में छा गई थीं, जब काला धन, समानान्तर अर्थव्यवस्था बना चुका था, जब साहित्य में चरसिए और भँगेड़ी बीटनिक हो रहे थे, वियतनाम युद्ध चरम पर था, हरे कृष्णा-हरे रामा कमज़ोर था और डैस्परेशन नक्सली आन्दोलन के रूप में अपने विद्रोह को व्यक्त कर रहा था। मैं मानता हूँ, टी.के. के रूप में न सिर्फ़ मेरी कुंठा और सेक्स ग्रन्थियाँ व्यक्त हुई हैं, न मेरा अपना मास्टर्बेशन है, वह कहीं न कहीं अपने समय को ही व्यक्त करता है। आज मैंने उपन्यास को पढ़ लिया है। लगभग यह भी तय है कि जल्दी से जल्दी इस पर बैठकर काम करना चाहिए। एक मन है कि हाथ से ही सारा लिख डाला जाए। दूसरी इच्छा है कि इसे टाइप करना ज़्यादा अच्छा रहेगा। बहरहाल दोनों ही स्थितियों में दो महीने तो चाहिए ही और इधर मन्नू मेरी जान को लगी है कि समय रह नहीं गया है, कुल दो महीने हैं और आप टिंकू की शादी के बारे में कुछ भी नहीं सोच रहे हैं...यानी जगह तय करो, खाने-पीने-सजाने की व्यवस्था के बारे में निर्णय करो, पैसों का प्रबन्ध करो और रोज़ बैठकर हर रोज़ नई योजनाएँ बनाओ...आजकल वह रंजन को लेकर दुखी है। सुदर्शना से तय करने के बाद मन्नू को लगता है, जैसे यह भी हाथ से गया। 'मैं जिस पर भावनात्मक रूप से टिकने की कोशिश करती हूँ, वही सहारा धोखा दे जाता है...' अब उसे अपने साथ पिछले पच्चीस वर्षों में मेरे द्वारा किए गए सारे अत्याचार और अन्याय याद आ रहे हैं...और वह हिस्टीरिकली रोती है...।

12.3.84

अभी सुबह ग्यारह बजे जयपुर से लौटा हूँ। पिछले सप्ताह दो-तीन बार फ़ोन आया, शान्ति भार्गव का। वे वहाँ डॉ. पुरुषोत्तम दास भार्गव की पत्नी हैं। पिताजी जब सादाबाद में थे, तो उनकी घनिष्ठता थी—एक भार्गव परिवार से। उन्हें बाद में भी सब लोग 'कोठीवाले' कहकर याद करते थे। कहिए, एक तरह एक ही परिवार था। मुझे तो शायद कुछ भी याद नहीं है। कुछ बेहद धुँधली तस्वीरें हैं। हो सकता है, वह सब सचमुच मेरी अपनी याद हो! हो सकता है, घर-बाहर से सुन-सुनकर मन में कुछ यादें बन गई हों और उनमें मैं इतना डूबा रहा हूँ कि वह सब मेरे साथ ही घटित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ लगता हो! बहरहाल, शान्ति भार्गव का फ़ोन था : राजेन्द्र, जब मेरी शादी हुई थी तो तुम चार साल के थे, अब 11 मार्च को मेरी शादी की वर्षगाँठ है और तुम्हें होना ही है। मेरे सब बच्चे अमेरिका-कनाडा से आए हैं, तुम्हें भी आना ही है। इस भावना भीगे आग्रह ने मुझे कमज़ोर बना दिया—आई वाज़ रादर टच्ड...तय किया कि जाऊँगा। माधवी को फ़ोन किया, वह बड़ी कैजुअल थी और शायद नहीं चाहती थी। "वे तो ऐसे ही जान को लग जाती हैं।" मगर मैं आते हुए टिकट ले आया। तीन बजे की डीलक्स बस से जयपुर को रवाना। वहाँ अजमेरी गेट पर लक्ष्मीनारायणजी मिल गए। पहुँचे। निशू आई.ए.एस. की लिखित परीक्षा में पास हो गई है। हरी एक्सीडेंट में पड़े हैं—अभी दो-एक महीने और लगेंगे। मैंने मन्नू की चिट्ठी दे दी और सलाह दी कि क्या करना है। एक तरह लक्ष्मीनारायणजी ने ही सारा ज़िम्मा ले लिया है। सुबह पिंटू आ गया। अब वह बोलने लगा है। उसे रुड़की में 11 मेडल मिले हैं। फिर भार्गवजी के यहाँ गए। वहाँ हवन हो रहा था। शान्ति जीजी और डॉ. भार्गव तो जैसे गद्गद हो गए। उनके परिवार के प्रायः सभी लोग आए थे। शान्ति भार्गव के चाचा लोग थे, उन्होंने शायद पिताजी को देखा था। जोधपुर में हिन्दी पढ़ानेवाली ननद थी, रमा भार्गव, दो लड़कियाँ थीं, लड़का था दिवाकर।

सभी ने बहुत ही सम्मान और प्यार से हम लोगों—विशेषकर मेरे—के साथ व्यवहार किया—विशेषकर लड़कियाँ और लड़का। शाम को खाना था। मैं और लक्ष्मीनारायणजी गए थे। घर आकर थोड़ा-बहुत खाया, सोए! माधवी बड़ी बेबी से दुखी थी। ऊपर से सभी कुछ बहुत अच्छा था। मगर माधवी के सारे पैसे ही उस फ़ैक्टरी में नहीं फँस गए थे, पिछले सारे समय उन्हें दो घर चलाने पड़ रहे थे। फिर उनके गाँववालों का आना-जाना, देने-लेने की प्रत्याशाएँ...। इधर हरि का एक्सीडेंट। एक तरह लगता है, दोनों के सारे पैसे डूब जाएँगे। फिर इधर का दुगुना खर्चा और। कुछ देर सत्ते पुराण रहा। उसने अहमदाबाद में जाकर आँखों का ऑपरेशन कराया, फ़ोन इत्यादि करके सुमन को बुलवाया। फिर खुद पाँच-छह दिन आकर रहा। दया भी आती है और झुँझलाहट भी होती है, क्या इसने अपनी गत बना ली है! निशू बता रही थी कि खादी के कुरता-पाजामा, बढ़ी हुई सफ़ेद दाढ़ी, आँख पर हरी पट्टी जैसे कोई बूढ़ा चला आ रहा हो! गाड़ी और स्कूटर आगरे में धूल फाँक रहे हैं। भरतपुर छोड़ दिया है और दयालबाग़ में किसी के यहाँ पड़ा है। वे लोग चले गए थे, कहीं शादी में लखनऊ तो एक दिन सुमन ने खाना पहुँचाया, एक दिन गौतम ने। सुमन कपड़े धो देती है। दयनीय और डिस्गस्टिंग...यही ज़िन्दगी चुनी है उसने अपने लिये...बहुत दिनों तक शायद बाबा की आस्था उसे सँभाले थी, अब वह भी टूट गई है।

कभी मन होता है, ऊपर के सर्वेंट क्वार्टर में लाकर रख लूँ। चलो, कुछ न दे। मगर नीचे घर में 'न्यूसेंस' न बने। मगर वह बनेगा। माधवी से कह रहा था कि मैं कभी सिविलियंस के साथ नहीं रहा। इसलिए मुझे तौर-तरीक़े नहीं आते। मगर अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं बदल नहीं सकता। जब नहीं चलेगा तो आत्महत्या कर लूँगा। सचमुच कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि इस लक्ष्यहीन ज़िन्दगी का क्या मतलब है? एक महत्त्वाकांक्षा थी, अपने भीतर कुछ असाधारण होने और ऐसा ही कुछ करने का विश्वास था—अपने ढंग से अपनी और दूसरों की ज़िन्दगी चलाने की ज़िद थी—कुछ भी नहीं हुआ। सब एक-एक करके फिसलते चले गए। अब आगे कुछ नहीं है और बढ़ती हुई उम्र है, हारी-बीमारी—अपने अशक्त-असहाय हो जाने का, गुमनाम और दर्दनाक मौत का खौफ़—यही तो होगा उसके पास। रोना आता है सत्ते की इस हालत पर...आख़िर मेरा भाई है और मैं कुछ भी नहीं कर सकता...

सन्ध्या को राजेन्द्र शर्मा की लड़की की शादी के प्रीतिभोज में गया। राजेन्द्र बहुत ही प्रसन्न हो गया। जहाँ घंटे भर बैठकर डॉ. आर.सी. मेहरोत्रा के साथ भार्गव परिवार के यहाँ आया। यहीं माधवी इत्यादि सभी आ गए। लड़कों ने तस्वीरें इत्यादि खींची, प्रेम से खाना इत्यादि खिलाया। वे पुरानी बातें करती रहीं। वहीं उनके भाई सत्येन्द्र और भूपेन्द्र से भी मिला। लौटा तो मैं बहुत ही भरा-भरा था। शान्ति जीजी ने बताया कि जब पिताजी की शादी हुई तो बाई को हिन्दी नहीं आती थी। पिताजी ने हिन्दी सिखाने का जिम्मा इन पर ही छोड़ा था। और भी बहुत-सी बातें बताती रहीं और मैं बहुत तन्मय होकर सुनने का भाव दिखाता रहा। अपने पर आश्चर्य कर रहा था कि मैं भावुक क्यों नहीं हो रहा? पिताजी की बातें, बाई की बातें—मेरे बचपन की बातें थीं और मैं सिर्फ़ श्रोता था। सिर्फ़ एक बात मन में आ रही थी कि कभी गाड़ी लेकर मथुरा, बरसाना, सुरीर, सादाबाद, दाऊजी भाँट सभी जगहों पर जाऊँगा, लोगों से मिलूँगा—अपने बचपन को पुनर्जीवित/याद करने की क़ोशिश करूँगा। हो सकता है, इसी अक्टूबर में। सत्येन्द्र को ख़बर करूँगा।

मेरी यह भावनात्मक यात्रा कल रात को समाप्त हो गई। आज सुबह चार बजे उठकर तैयार हुआ, साढ़े पाँच की बस पकड़ी और ग्यारह बजे दिल्ली। शनिवार को मीता का पत्र आया था कि वह ग्यारह तक 12 मार्च को आ जाएगी। अभी तक तो आई नहीं है। तीन बज चुके हैं।

27.3.84

या तो इन दिनों सचमुच ही कुछ नहीं हो रहा, या फिर ऐसा कुछ नहीं हो रहा जो मुझे थोड़ा भी वेध सके। पिछले सारे समय टिंकू की शादी की सम्भावनाएँ या तैयारियाँ ही प्रमुख रही हैं। मन्नू के लिए तो यह 'होल टाइम' काम हो गया है। सुबह जब से चाय के लिए छह-साढ़े छह पर बैठते हैं, तभी से शुरू हो जाती है। न तो रिसेप्शन के लिए जगह तय हुई है, न आने-जानेवालों के ठहरने के लिए। कलकत्ते, आगरा, जयपुर से काफ़ी लोगों के आने की सम्भावनाएँ हैं। पहले तो हम लोग इसी सबको लेकर दुचित्ते थे कि शादी हो कैसे! एक बार बनता कि कुल आठ-दस लोग हों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह हो जाए, फिर होता कि एक ही तो लड़की है, आगे कुछ होना नहीं है। कुछ मेला-तमाशा हो जाए। हिसाब लगाया कि सात--आठ सौ हो जाएँगे खानेवाले। अभी तक जगह तय नहीं हुई है। अब करीब-करीब यही तय है कि पच्चीस-पचास लोग आएँगे भी, खाना-रिसेप्शन होगा। आजकल हमारे यहाँ हर समय या तो हिसाब-किताब होता है, या फिर जगहों इत्यादि की सम्भावनाएँ तय होती हैं। पिछले साल भर से सिर्फ़ हिसाब-किताब, पैसों का प्रबन्ध इत्यादि ही होता रहता है। पहले मकान था, कभी किस्तें, कभी फ़र्निशिंग, कभी शिफ्टिंग। वह समाप्त हुआ तो यह शादी। इस साली टिंकू ने जैसे साँस लेने के लिए समय ही नहीं दिया। अक्टूबर में होता तो हम लोग थोड़ी अपनी और पैसों की तैयारी कर चुके होते। घर आकर बैठे नहीं कि यह और डाल दिया सिर पर...वैसे खुद बेचारी अपना आनन्द लोक का फ़्लैट तैयार कराने में हर समय लगी रहती है। लिंटाज़ की तरफ़ से दिनेश को मिला है। अब तो मैं सचमुच सोचने लगा हूँ कि मई गुज़रे तो जान छूटे। कम-से-कम मैं और मन्नू कुछ और सोचने लायक़ तो हों...ख़ैर, अब तो जैसे इसे निपटाना ही है।

इस बीच मीता आई थी। पहले 12 को आने को थी। फिर 20 को आई। एक दिन रुकी। घर पर ही। मन्नू ठीक ही रही। मैं भी अपने को इस मामले में ज़्यादा ठहरा हुआ पाता हूँ। हालाँकि टिंकू के मन में उसे लेकर ख़ासा प्रतिरोध है, मगर अशिष्ट वह नहीं हुई। शायद घर देखकर उसे अच्छा नहीं लगा, या हो सकता है, लगा हो। मन में यह भी आया हो कि यह घर उसका अपना होता...पता नहीं। मुझे उस बेचारी पर दया ही आती है।

इधर दो-एक महीने से 'दिनमान' में काम करनेवाला धीरेन्द्र अस्थाना काफ़ी आने लगा है। उधर ही रहता है, सरोजिनी नगर। इसलिए घर भी चला आता है। अक्सर ही पीने की बैठकें हुई हैं। नया लेखक है, दो-एक ही किताबें आई हैं। कह नहीं सकता कि आगे जाकर कैसा होगा। मगर मैं उसके प्रति स्नेहशील होने का प्रयास करता हूँ। कभी हम भी उसी तरह के लेखक थे और अपने से बड़े लेखकों के लिए ऐसे ही 'रिज़ेंटमेंट' पालते थे, वे हमें साथ बैठने देते थे तो कृतज्ञ महसूस करते थे।

12.4.84

आज सुबह साढ़े तीन बजे उठा था। अरोड़ा के साथ शिकोहाबाद जाना था। पैसों के लिए मीता को भी लिख दिया था। पहले मैं पाँच को जा रहा था। मीता का पत्र आया कि सम्बन्धित अधिकारी वहाँ नहीं होंगे। आज जब भोलेश्वर को लेकर सवा पाँच की टाटा के लिए पौने पाँच पर पहुँचा तो बेचारा अरोड़ा खड़ा था। बताया कि टाटा साढ़े तीन घंटे लेट है और कल-परसों-नरसों छुट्टियाँ हैं। मैंने सोचा कि जाना व्यर्थ ही होगा। तय हुआ कि बाद में ही जाएँगे। लगता है, इस महीने नहीं। मैं चाहता था, टिंकू के विवाह से पहले ही कुछ रुपया आ जाता। ख़ैर, लौट आए। आजकल इंडिया गेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या शास्त्री भवन तक आने के चक्कर में साढ़े दस के क़रीब चन्दर आ जाता है। मैं निकलता हूँ साढ़े ग्यारह-बारह। वही पुराना क़िस्सा। लगता है, यह उसी तरह दुखी करेगा, जैसा इसने कलकत्ते में किया था। ग़नीमत है ठहरा मेरे यहाँ नहीं, 121 नम्बर में मनोहर जुनेजा के यहाँ है। अदा वही है, हर वाक्य में किसी-न-किसी बड़े नाम का बन्द, नटवर सिंह से लेकर श्रीमती गांधी तक सभी उसे बहुत अच्छी तरह जानते हैं, अफ़सर लोग सब उसके साथी हैं, मगर मुझे बचा लो, मुझे सहारा दो, मैं वापस नहीं जाना चाहता। देखता हूँ : लोग कैसे ज़िन्दगी भर कुछ नहीं सीखते...वहीं रहते हैं। शायद मैं भी नहीं सीख सका होऊँगा। लेकिन यह मेरे लिए बहुत बड़ा न्यूसेंस होने जा रहा है, यह तय है। एक दिन उषाजी, उसकी पत्नी के बारे में बातें हुईं। उन पर देवी आती हैं, किसी तान्त्रिक ने उनका दिमाग़ ख़राब कर दिया है। मुझे भगाती है, कभी माफ़ियाँ माँगती है। जो कुछ मैं जान सका, वह यह कि यह अपनी इन हवाई बातों और योजनाओं के इकहरे कीर्तन के कारण उनकी नर्व्स पर आ गया होगा। वे इसके साथ एब्नॉर्मल हो गई होंगी। और हारकर भाग आई होंगी। अब स्थिति यह है कि कहीं आसपास डिफ़ेंस कॉलोनी में ही रहती हैं और आपस में कोई संवाद नहीं है। ठाकुर साहब ने बहुत प्यार से ख़त लिखा है उसे। वे शायद 24 को आ रहे हैं। हो सकता है, वे ही साथ ले जाएँ। मैं इसकी योजनाबाज़ियों से परेशान हूँ।

टिंकू की शादी की तैयारियाँ हो रही हैं। मुझे सूची बनानी है, निमंत्रण तैयार करने हैं।

4.5.84

धीरे-धीरे टिंकू की शादी का बुख़ार पूरे घर पर छा गया है। सुबह छह बजे से दफ़्तर के लिए आने तक कामों की सूची, पैसों का हिसाब, मेहमानों के ठहरने या अन्य आयोजनों की व्यवस्था पर विचार—हर क्षण यही। मन्नू को तो चिन्ता के लिए, तनाव बनाए रखने के लिए कोई न कोई कारण चाहिए। फिर जब इकलौती लड़की की शादी जैसा कारण हो तो कहना ही क्या है! अब परेशानी यह है कि उतने ही तनाव में वह मुझे भी चाहती है। पिछले डेढ़ साल से यही सिलसिला है। पिछला सारा साल मकान, उसकी फ़र्निशिंग, पैसों की व्यवस्था, शिफ़्टिंग और बाद में सभी कुछ ठीक कराने में गया, इस साल साँस भी नहीं ली थी कि टिंकू ने लाद दी शादी। धीरे-धीरे दिख रहा है कि शादी भी बाक़ायदा हो रही है। सात-साढ़े आठ सौ लोग आएँगे, खाएँगे। रोशनी, सजावट होगी। पचास के क़रीब मेहमान बाहर से आएँगे। यानी तीन-चार दिन वही भीड़-भाड़, चिल्ल-पों, चीख़-पुकार रहेगी। मेरा मन इस सबसे बेहद ही घबराता है। कहाँ का झंझट मोल ले लिया। कुछ टिंकू की अपनी इच्छा, कुछ उसका मन रखने की वृत्ति, कुछ अपनी कमज़ोरी कि एक ही तो लड़की है, अब पता नहीं कब ऐसा अगला प्रोग्राम बने और कुछ चीज़ों को तय न कर पाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्प। दिनेश की माँ बहुत भली-सीधी महिला हैं, मगर महिला हैं, पंजाबी हैं और परम्पराओं के संस्कार से बँधी हैं। वे सभी कुछ करना चाहती हैं, जो इकलौते लड़के की शादी में होना चाहिए या किया जाना चाहिए। मानसिक रूप से पैंतरेबाज़ हैं, हम कुछ भी नहीं करना चाहते और धीरे-धीरे वे सभी कुछ लादने की प्रक्रिया में हैं। देखें चीज़ों की क्या शक्ल बनती है। सारा झंझट मन्नू ही उठा रही है, लेकिन उस थकान, खीज, परेशानी, झल्लाहट का शिकार तो मुझे ही बनना पड़ता है। कभी गहनों के लिए करोलबाग़ के चक्कर लग रहे हैं तो कभी साड़ियों के लिए चाँदनी चौक के, ब्लाउजों, फॉल के मिलान या ऐसे ही दुनिया भर के झमेले।

7.5.84

सिर्फ़ टिंकू की शादी—सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक। स्नेहजी और कृष्णाजी, मन्नू हर वक्त उन्हीं मसलों पर बहस करती रहती हैं। कल बैठकर बहुत विस्तार से एक-एक काम, उसकी हर स्टेज, उसकी ज़िम्मेदारी इत्यादि के विवरण लिखे गए। इधर गरमी भयानक है। मेरी आँख में कुछ परेशानी है। पढ़ते हुए पहले भी महसूस होता था कि एक धब्बा अक्षरों और पंक्तियों पर घूमता था, अब तो बाक़ायदा पढ़ने में बाधा डालता है। आँखों में दर्द जैसा होता है। अब तो जैसे सारी ज़िन्दगी 12 मई के बाद के लिए स्थगित कर दी गई है। बिल्कुल फ़िल्म का वह दृश्य है जहाँ एक स्तब्ध और शान्त गाँव है, वातावरण में घनगरज पहले दूर से आती हुई, हल्की है, फिर बढ़ती है—बढ़ती है और सारे माहौल पर घिरती चली आ रही है—जैसे 'ब्रिज' में टैंकों की घरघराहट, या हवाईदस्ते के हमले से पहले की बढ़ती गरज और फिर आसमान पर जहाज़ प्रकट होते हैं, पास आते जाते हैं और फिर बमबारी का सिलसिला शुरू होता है। टिंकू की शादी कुछ इसी तरह घिर रही है। अब हम लोग पूरी तरह गिरफ़्त में आ गए हैं।

सचमुच उस क्षण जैसे छाती में किसी ने छुरी ही मारी थी जब निमंत्रण पत्र पर रंजन का नाम लिखकर भेजा था। लगा जैसे लम्बी सज़ा, एक निर्दोष के नाम लिखकर हस्ताक्षर कर दिये हों। मेरी बेटी है, इसलिए बचाऊँगा नहीं, लेकिन टिंकू ने उसे धोखा ही दिया है, जिसे अंग्रेज़ी में कहते हैं—डिच करना। और उसका अपराध-बोध हम दोनों, मैं और मन्नू अपनी-अपनी आत्माओं पर महसूस कर रहे हैं। वही कहानी यहाँ फिर दुहराई जा रही है जो मेरे बीच हुई है। अजीब नाटक है।

19.5.84

लगता ही नहीं है कि रात-दिन बीत गए। आज शनिवार है और पिछले शनिवार को टिंकू की शादी थी। गार्गी कॉलेज के प्रिंसिपल के, यानी कृष्णाजी के घर के सामने के लॉन में हुई। टेंटवाले के साथ, सुमन, नन्ही, अर्चना इत्यादि ने कृष्णाजी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलाह के साथ सारा लॉन इत्यादि सजाया था और वातावरण से लेकर इस लॉन, रोशनी, सजावट—सभी की इतनी अद्‌भुत प्रशंसा हुई कि अभी तक विश्वास ही नहीं होता। सचमुच क्या सब कुछ इतना ही सुन्दर और भव्य था? गिरिराज तो अभिभूत था। खाने की व्यवस्था से लेकर सभी तक। कहता है, जे.के. वालों के विवाह के बाद दूसरी इतनी सुरुचिपूर्ण और भव्य शादी मैंने देखी है। लालानी, पटावरी—सभी ने चतुर्मुख होकर प्रशंसा की है। कहते हैं, बाहर-तेरह सौ लोग आए थे। हज़ार ने खाना खाया। रणजीत और सोढ़ी के सिवा सभी ने खाने की भी निर्व्याज तारीफ़ की। उदयपुर से वेददान, जयपुर से लक्ष्मीनारायणजी, हरि, माधवी, बड़ी बेबी, बच्चे, हीरालाल, रीठू—सभी आए थे। आगरा से ब्रजेन्द्र तिवारी, घनश्याम, श्रीमती प्रतिभा दीक्षित; अमेरिका से प्रकाश दीक्षित...बाक़ी बहुत-बहुत स्थानीय लोग। कलकत्ता से भंडारी परिवार, छोटे बाबू साहब, जितेन्द्र, मटलू, सुशीलाजी, कुसुम, प्रिंसू। इन्दौर से गट्‌टू साहब। इस प्रकार लगभग 50 व्यक्ति होंगे। पास के फ़्लैट में ठहराया था। कुछ को कृष्णा जी यहाँ। तीन-चार दिनों में कुछ बदइंतज़ामियाँ भी हुईं। मेहमानों को पानी की कुछ दिक़्क़त हुई। चार-पाँच दिन खूब हंगामा रहा और फिर शादी हो गई। दिनेश के घरवालों ने वे सारी बातें मान लीं जो हमने कही थीं। बैंड-बाजे, नाच-भाँगड़े वाली बरात नहीं थी, मिलनियाँ नहीं थीं। चुपचाप एक लम्बी-सी कार में दिनेश और दूसरे बराती आए, वरमाला हुई। मिलना-जुलना, खाना-पीना। फिर पीछे आर्य-समाजी ढंग से विवाह। माँ-बाप की जगह बैठे गट्‌टू साहब, स्नेहलता बाई साहब। मैंने कन्यादान करने से इनकार कर दिया था।...और विवाह हो गया। मीता भी आई थी—अगले दिन सुबह चली गई। ताज से आगरा। शायद उसने आगरा में कनक को बताया भी नहीं था। ख़ैर, टिंकू विदा हो गई।

जिन लोगों के आने से मुझे सचमुच खुशी हुई, उनमें सत्ते भी था। उसी दिन आ गया था। मुन्ना और उसका परिवार भी था। भूपेन्द्र मालती को मैंने बुलाया नहीं था। सुना, वे आने की बातें कर रहे हैं तो मना करा दिया। एक तो मैं बिल्कुल नहीं चाहता कि मालती आए, वह नहीं आती तो भूपेन्द्र आ नहीं सकता था। मैं यह ज़रूर चाहता था कि बच्चे आ जाएँ। मगर वे अकेले नहीं आ सकते थे। मैंने यही लिख दिया था कि जो सम्बन्ध सिर्फ़ पैसों के लेन-देन (ग़लत या सही) के होते हैं, उन्हें पैसों के साथ ही समाप्त हो जाना चाहिए। घपला वहाँ होता है जहाँ इमोशनल सम्बन्धों में पैसों की बेईमानी आती है या पैसों की बेईमानी को इमोशन से ढँकने की कोशिश की जाती है। भूपेन्द्र ने यही किया है। मेरे घर तो यही एक अवसर था, अब लगता है, समाप्त हो गया है। एक मन हुआ था चचेरे भाइयों को बुलाने का। मगर जब वे ही अपने किसी मरने-गिरने की सूचना नहीं देते तो हमें ही क्या है!

इस बेसुरेपन के सिवा सभी कुछ बहुत ही अच्छा हो गया। मन्नू ने ही सारी भाग-दौड़ करके सँभाल लिया। मेरे तो बाप के बस का नहीं था। महीना भर पागलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह घूमी है। कभी चाँदनी चौक, कभी फ़तेहपुरी, कभी करोलबाग और कभी आसपास। बहुत-बहुत मेहनत की है। मैंने तो सिर्फ़ कॉर्ड छपवाए थे—विलक्षण और अपने ढंग के अकेले। सब लोग उस कार्ड की ही तारीफ़ें कर रहे थे। मन्नू को तो हफ़्तों पहले नींद आनी बन्द हो गई थी। सुबह तीन-चार बजे उठ जाती थी और रोती थी। घबराहट में दिल डूबता था। मगर शादी के तीन दिनों में जैसे कहीं की रिज़र्व्ड शक्ति आ गई थी और उसने सभी कुछ सँभाल लिया। 'सभी कुछ मन्नू ने ही किया है, आप तो मस्ती मारते रहे हैं', हर कोई यही कहता था और खुद इस बात को स्वीकार करता हूँ। कहने को तो कह देता था कि चाहे अजित हो या कृष्णाजी, निर्मलाजी हों या लक्ष्मीनारायणजी—सारे दोस्तों ने मिल-जुलकर जो इतना बड़ा काम सँभाल लिया, उन्हें बनाकर रखने में भी तो मेरा ही हाथ है। मैंने शादी के बाद ही शराब खोली। बासु, गट्टू साहब, वेददान के साथ। एक तरह से काफ़ी कुछ मित्रों-रिश्तेदारों के भेंट में आए रुपयों से ही हो गया (हिसाब) तीन-चार दिन की मेहमानदारी, सजावट, खाना इत्यादि मिलकर कुल हमारा ख़र्च हुआ बीस। उपहारों के अलावा नक़द भेंट में आए 32-35 हज़ार के बीच। उपहारों के अलावा। आठ-दस हज़ार के वे होंगे। पन्द्रह-बीस हज़ार का हमने गहना, इतने ही के कपड़े दिये होंगे। कुल शादी सत्तर-पचहत्तर की थी, और आधे आ गए। एक तरह से सिवा भागदौड़ के हमने तो शादी काफ़ी कम में कर दी। उधर भीड़भाड़ और आयोजन का स्तर देखकर नवलखाजी, गट्टू साहब से कह रहे थे—मन्नू ने दो-ढाई लाख तो लगा दिया होगा। सबके अपने-अपने अनुमान हैं।

सभी कहते हैं, चलो, एक ज़िम्मेदारी थी, ख़त्म हुई। सच पूछो तो मुझे लगता ही नहीं कि कोई ज़िम्मेदारी थी और वह ख़त्म हो गई। टिंकू जैसी थी, वैसी है। उसके प्रति मैं जो कुछ भी महसूस करता था, आज भी महसूस करता हूँ। या तो वह पहले भी मेरे लिए ज़िम्मेदारी नहीं थी या वह शायद सिर्फ़ मन्नू की ज़िम्मेदारी थी। यह तो सच है कि दसियों बरसों से अगर मन्नू ने इसकी योजना बनाकर फ़िक्स्ड डिपोज़िट न कराए होते, या फिर उन पैसों को लालानी के पास जमा कराके योजना न बनाई होती तो इस समय में पसीना आ गया होता। अब स्थिति यह है कि टिंकू के हिसाब में 45-50 हज़ार होंगे, मन्नू के भी 65-70 हैं। घर बन ही गया, शादी भी हो गई। अब अगर कोई दुर्घटना ही न हो जाए तो हम लोग क्यों हाय-हाय करें? पैसों की वैसी हविस मुझे वैसे भी नहीं है। काम चलता रहे, बस। पता नहीं क्यों, जब हाथ में पाँच-दस होते थे तब भी कहीं कोई असुरक्षा की भावना नहीं थी, और आज तो बिल्कुल ही नहीं है।

26.5.84

टिंकू का घर बहुत ही पास है और वह लगभग रोज़ ही आ जाती है। आनन्द लोक और हौज़ख़ास में दूरी कुल सवा किलोमीटर। उसका कमरा वैसा ही है। सिर्फ़ मिस्टी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाना-पीना छोड़कर पड़ी रहती है...यानी याद दिलाती है कि टिंकू नहीं है। मुझे उस तरह उसकी अनुपस्थिति महसूस नहीं होती। जामनगर की शोध-छात्रा सुधा आचार्य ने पूछा है, कैसा लग रहा है? और मैं सोचता रहा, कैसा लग रहा है? लगता है, पहले मेरे और मन्नू के बीच एक सेतु था, मन्नू का एक साथी-मित्र था और वह अचानक ही बीच से हट गया। यानी अब मैं और मन्नू आमने-सामने हैं। बरसों से ये सीधे सम्बन्ध समाप्त हो गए थे। समझ में नहीं आ रहा कि अब हमारी सम्बन्ध-संहिता क्या होगी? जैसे नए सिरे से या तो सम्बन्ध बनाने हैं या पुराने कुछ प्रासंगिक सूत्रों को खोजकर ताज़ा करना है। अभी तो टिंकू की शादी का हिसाब-किताब है। जब यह भी पूरा हो जाएगा तो हम लोग आपस में एक-दूसरे का सामना कैसे करेंगे? अभी भी मैं सात बजे वापस पहुँचता हूँ तो लगता है, कुछ करने को ही नहीं है। बार-बार अपने से पूछता हूँ कि क्या करूँ? कुछ भी पढ़ने की इच्छा नहीं होती। गर्मी ऐसी है कि रेकॉर्ड तोड़। '77 में कभी पड़ी थी। हो सकता है, आज वह गर्मी हो जो सन् '40 में थी। अख़बार या कुछ भी पढ़ने की हिम्मत नहीं रहती। आँखें अलग परेशान किए हैं। बार-बार ध्यान आता है, शराब निकाली जाए? और मन को मार देता हूँ। यही सबसे खतरनाक मौक़ा है। इस समय बचना चाहिए। किसी के साथ हो जाए, वह बात दूसरी है। अकेलेपन और बोरडम में पीने लगना, लती होने की लाइन में जाना है। तो? क्या सचमुच मुझे लगता है कि जैसे कुछ भी करने को नहीं है? अब क्यों और किसके लिए करूँ? एक ज़िम्मेदारी थी, वह समाप्त हो गई। अजीब निरुद्देश्यता और ख़ालीपन है। मुझे मालूम है, यह अधिक नहीं रहेगा। महीना-पन्द्रह दिनों में अपने कुतुबनुमा को सही दिशा में सैर करना है। लिखने-पढ़ने की बात सोचना है। मैं तो कर लूँगा, मगर मन्नू तो जैसे भरभरा कर मेरे ही ऊपर गिरेगी। और यह तय है कि कोई भी व्यक्ति, उसका सुख-दुख, चिन्ता-आकांक्षाएँ मेरा सम्पूर्ण जीवन-लक्ष्य नहीं हो सकता, वह टिंकू हो, मन्नू, मीता या कोई और। ये सब मुझे समृद्ध तो कर सकते हैं, सीमा नहीं हो सकते। मन्नू को ऐसी कोई चीज़ बाँधकर नहीं रखती। लिखना उसके लिए इतना बड़ा स्टेक नहीं है। नतीजे में घर, खर्चे और नौकर की वही छोटी-छोटी बातें हैं। जिनमें वह खुद उलझी रहती है और मुझे उलझाकर रखने की कोशिश करती है। यानी कुछ समय बाद हमारे बीच फिर एक तनाव की स्थिति आएगी।

बहरहाल अभी तो यह सारा समय जैसे पानी के भीतर डूबे आदमी को दिखाई देनेवाले धुँधले दृश्यों की तरह ही दिखाई दे रहे हैं। पता ही नहीं, ऊपर कितना पानी गुज़र रहा है या लहरों के आकार क्या हैं?

4.6.84

इस बीच प्रकाश के लड़के सुनील और ब्रजेन्द्र की लड़की प्राची के विवाह में आगरा हो आया। यह सम्बन्ध मैंने और घनश्याम ने ही कराया था। कम-से-कम प्रारम्भिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों की शुरुआत हमारे ही द्वारा हुई थी। फिर सुना, भूपेन्द्र और मालती ने भी काफ़ी सक्रिय हिस्सा लिया। सुनील आया था टिंकू से शादी करने। प्रकाश और प्रतिभाजी दोनों बहुत उत्सुक थे। पत्र भी आए। भाभीजी देखने भी आईं। सुनील तो मुग्ध ही हो गया। मगर टिंकू ही तैयार नहीं हुई। अमेरिका जाकर पता नहीं कब आना हो। मुझे सुनील बहुत अच्छा लगा। उधर प्राची भी प्यारी लड़की थी। बहरहाल, भयानक गर्मी में आगरा गए ताज से। रास्ते में मृदुला की छोटी बहन अचला का पति बंसल, आर.के. मिल गया। उसी ने पहचाना। वह झाँसी और दिल्ली के बीच में रेलवे में एरिया सुपरिंटेंडेंट है—काफ़ी बड़ा अफ़सर। उसकी जीप प्लेटफ़ॉर्म पर ही लगी थी। घर ले गया। चाय इत्यादि पीकर ब्रजेन्द्र के यहाँ गए। वहाँ बरात का माहौल था। उसे होश ही नहीं था। लगा, यहाँ कठिनाई हो जाएगी। घनश्याम अस्थाना भी वहीं था। खाना इत्यादि खाकर उसी के घर आकर सोए। प्रकाश का कोई पता नहीं। मालूम हुआ, प्रकाश तो मिला ही नहीं। वह तो वहाँ जाकर जैसे क़ैद हो गया है। गाँव से दुनिया भर के मेहमान आ गए हैं और भाभीजी परम-कंजूसी दिखा रही हैं। न ठहरने का प्रबन्ध है, न चाय खाने का। मैं तो ख़ैर, गया ही नहीं।

शाम को आठ के क़रीब जब मैं क्लार्क शीराज़ पहुँचा तो वहाँ बरात आई ही थी और नहाने-धोने का सिलसिला शुरू हुआ था। सब लोग बैठे या घूम रहे थे। मैं बैठा लिम्का पी रहा था, तभी भूपेन्द्र के दोनों बच्चों ने आकर पाँव छुए। यही वह क्षण था जिसका मुझे डर था। मालती और भूपेन्द्र आ गए थे। मगर उन्होंने जैसे देखा ही नहीं; बल्कि मालती तो एक ख़ास क़िस्म की उद्धतता से हीरोइन की तरह घूम रही थी। अजीब लगा। जो भूपेन्द्र, सब कुछ के बावजूद सबसे पहले आकर मेरे पाँव छूता था, उसके लिए मानो मैं था ही नहीं। थोड़ी देर में मैं वहाँ से उठ आया और ब्रजेन्द्र की तरफ़ आ गया। बरात आई तो उसमें शामिल हो गया। मालती-भूपेन्द्र और मैं—हम दोनों एक-दूसरे से कतराते रहे। पिंकू-समा—दसवें में प्रथम आई हैं, सुना है उसे तीन विषयों में डिस्टिंक्शन मिला है। बाद में जब बच्चे विदा लेने आए तो मैंने पिंकू को मिठाई के लिए पचास रुपए दिये। हालाँकि इसके लिए घनश्याम ने पहले ही मना कर दिया था। पहले तो उसने ले लिये, फिर लौटा गई। ममी ने मना कर दिया है। ये सारे बच्चे मुझे प्यारे लगते हैं, मगर मालती...भूपेन्द्र...दिल में एक ख़राश बनी रही। देखो, उन लोगों ने यह किया।

प्रकाश की शब्दावली अनावश्यक रूप से कटखनी है। मैंने उससे कहा भी कि छह साल इस बात की प्रतीक्षा करो कि तुम आओगे, यहाँ आकर तुम दो घंटे का समय न निकाल पाओ। दुखी होकर बोला—दोस्त, क्या करूँ! चालीस हज़ार रुपए प्रतिभाजी को इस शादी के लिए भेजे थे। चार सुनील को घूमने को दे दिये। मेरे पास प्रतिभाजी ने सौ रुपए छोड़े हैं। मैंने अपना लिफ़ाफ़ा देकर कहा—इसे प्रतिभाजी को मत बताना। इसमें इतने रुपए हैं कि तुम भागकर दिल्ली आ सको। रख लिये। मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच सौ दिये थे। ब्रजेन्द्र को 151 रुपए दिये थे। शाम को लौटे तो मन बहुत भारी था। भूपेन्द्र का प्रसंग, प्रकाश से न मिल पाने का खेद और भयानक गर्मी। घनश्याम के यहाँ आकर खुले में सोए। पता नहीं कितने बरसों बाद सिर पर खुला आसमान था। शादी में प्रेम खंडेलवाल आग्रह करते रहे कि अगले दिन उनके यहाँ कचहरी रोड पर आएँ। ब्रजेन्द्र जा नहीं सकता था। इसलिए टाल दिया। हाँ, हम और घनश्याम अगले दिन बंसल के यहाँ जाएँगे, यह तय हो गया। सारे दिन घनश्याम के यहाँ रहे। सत्ते आ गया था। सुमन आई। शाम को भी सत्ते आया। उससे मैंने वायदा कर दिया है कि जो भी काग़ज़ हैं, वे भेज दूँगा। पावर ऑफ एटार्नी भेज दूँगा। शादीवाले दिन ब्रजेन्द्र के यहाँ गौतम आया था। मालूम हुआ, टिंकू की शादी के समय उसकी पत्नी बीमार थी और 16 को दिवंगत हो गई। तभी मालूम हुआ कि दूसरी शादी थी। वह पागल जैसी है और गौतम उससे बहुत तंग है। यह उसकी बातों से लगता था। मगर अब वह मेरे और घनश्याम के सामने बैठा रो रहा था, यह बात विस्मय पैदा करती थी। लगा कि ऊपरी तनावों और उदासीनताओं के बावजूद आदमी कभी-कभी भीतर से कितना जुड़ा रहता है। गौतम का यह एक और पक्ष था।

31 की सन्ध्या को बंसल लोगों के साथ दारू इत्यादि पीकर बहुत अच्छा खाना खाया, वहीं सो गया और अगले दिन कुतब में बैठकर दिल्ली। सारे दिन घर रहा। दफ़्तर नहीं आया। भीषण गर्मी थी। चन्दर साहब डटे हुए हैं।

15.6.84

इस बीच बहुत-कुछ हुआ। सबसे बड़ा काम न करने का बहाना रहा—गर्मी, घुटन और तबीयत ढीली होना। चन्दर का डटे रहना। इसके लिए मेरा हमेशा से ख़याल है कि यह परोपजीवी प्राणी है। ज़िन्दगी भर दूसरों के सिर पर रहा है और आज पचपन साल की उम्र में भी वहीं है, जहाँ से इसने ज़िन्दगी शुरू की थी—यानी अकेला, असफल, अकिंचन और हवाई सपनों से भरा हुआ। अब तो बहुत बूढ़ा हो गया है। सारे सिर पर गंज, सिर्फ़ कान के ऊपर मडगार्डों जैसे पट्टे, जिन्हें महीने-पन्द्रह दिनों में डाई कर लेता है। दोनों गालों पर मोटी-मोटी सिकुड़नें, बुझी आँखें। सुबह उठकर जिस तरह चैतन्य होता है तो लगता है, शरीर का एक-एक बिखरा हुआ पुर्ज़ा वापस जोड़ रहा हो। दो घंटे में जैसे-तैसे इस लायक़ होता है कि बाहर जा सके। गर्मी ने वैसे ही बुरा हाल कर रखा है। आता है तो टूटा-थका। बारह तक मेरे साथ चलने की प्रतीक्षा करता है, एकाध बार तो मैंने रेल-भवन छोड़ा, फिर देखा लम्बा चक्कर है तो इंडिया गेट ही उतर जाता है। सारे दिन इसी तरह निखिल गुप्ता के कमरे में पड़ा रहता है। सात बजे लौट आता है। उनके साथ ही कार से आता होगा। किस तरह उसकी जान को बला की तरह पड़ा होगा, यह मैं आसानी से कल्पना कर सकता हूँ। बस, एक ही चीज़ है जो आकर्षित करती है—चाहे जितना हवाई हो, है भयानक आशावादी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हालाँकि कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या यह इस आशावाद की असलियत नहीं जानता? अपने को अभी तक आई.ए.एस. ही समझता है। अफ़सरों की श्रेणी में। लेकिन आश्चर्य यह है कि अभी तक मैंने उसे शाम को कहीं जाते नहीं देखा। लगता है, सभी लोग या तो उसे टालते हैं या दफ़्तर में ही निपटा देना चाहते हैं। एक तो बोलता बहुत है और फिर इतने बड़े-बड़े नाम कि झुँझलाहट होने लगे। लगता है, वह अब इन्हीं नामों में जीने लगा है। डायरेक्टर, मैनेजिंग डायरेक्टर, सेक्रेटरी, चेयरमैन से कम कोई नाम नहीं होता।...ख़ैर, यह जानने के लिए कि क्या सचमुच वह अपनी स्थिति जानता है? मैंने पूछा—हर आदमी की ज़िन्दगी की एक थीम होती है, एक सूत्र होता है और अपने जाने-अनजाने आदमी उसी में कुछ न कुछ जोड़ता-घटाता जाता है, उसके खिलाफ भी जाना चाहता है, मगर उल्टी दिशा में भी उसी थीम के विकास के रूप में जीता है। क्या तू अपनी या मेरी ऐसी थीम बता सकता है? चन्दर सोचने लगा। ज़ाहिर है, सवाल उसे बहुत ही अच्छा लगा। अपने को काफ़ी कुरेदकर उसने बताया कि वह कम्पल्सिव आप्टिमिस्ट या अपने पोर-पोर में आशावादी है...। मैंने कहा—यह तो चरित्र हुआ। मेरा मतलब थीम से है। दो-तीन दिन हम लोग इस बारे में बातें करते रहे। मैं हर बार उसे घेरकर इस बिन्दु पर लाना चाहता था कि वह कम्पल्सिव पैरासाइट (पूर्णतः परजीवी) है। उसे इसी स्थिति में रहना है।

सात तारीख़ को हम लोग मैं, मन्नू, अजित और अर्चना राजी के बेटे की शादी में अजमेर गए। आठ को शादी थी। इन लोगों ने प्रबन्ध बहुत अच्छा किया था। बरात में लगभग अस्सी व्यक्ति थे। गर्मी तो भयानक थी ही। मगर सारा इन्तज़ाम इतना अच्छा था कि सभी कुछ हँसते-खेलते ही बर्दाश्त किया। शादी अच्छी हो गई, सभी प्रकार के रीत-रिवाजों के साथ। लौटते हुए दिन का सफ़र था। डेढ़ बजे स्टेशन गए आ गए। डिब्बा अलग था। गाड़ी रात को दस बजे पहुँचनी थी। मगर बीच में चाय, नाश्ते, खाने—सभी का निर्दोष प्रबन्ध था। गर्मी के कारण हरेक ने कुल पचास गिलास पानी पिया होगा। घर वापस पहुँचते हुए बारह बज गए।

इस सारे वक्त के दौरान जो चीज़ व्यक्तिगत रूप से मुझे परेशान करती रही, वह है—रामाधारजी का न रहना। छह को अचानक सुबह पढ़ा कि रामाधारजी 65 वर्ष की उम्र में ही चल बसे। मैं सोचने लगा कि क्या यह वही अपने रामाधार भाई हैं? तभी फ़ोन से सूचना आई। अरे, रामाधारजी चले गए? इतने अचानक? परसों ही तो आए थे? आग्रह करके। यहाँ बत्ती नहीं थी। वैदिक साथ थे। हम लोग उठकर जैनेन्द्रजी के पास चले गए। यहाँ जितनी देर बैठे, वही छेड़छाड़ की बातें। मुझे छह बजे से पहले यहाँ आना था। रामाधारजी ने ही छोड़ा। आग्रह करने लगे। चलिए, अपने ड्राइवर को भेज दीजिए। मैं छोड़ दूँगा। कहीं बाहर खाना-वाना खाएँगे। आपसे कुछ बातें भी करनी हैं। मैंने जैनेन्द्रजी होने के कारण फिर कभी के लिए कहा। उनसे मिलना अच्छा लगता है। तभी से मैं सोचता रहा कि क्या आदमी को अनजाने में ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले से 'भास' जाता है? जिस ढंग से रामाधारजी सबसे मिल रहे थे, उससे तो लगता कि अनजाने ही सबसे विदा ले रहे हों...मैं घर भी गया और बाद में निगम-बोध घाट भी। मगर लगभग बीस साल का साथ परेशान तो कर ही रहा है। ऐसे ही मैं भी चला जाऊँगा क्या?

17.7.84

ठीक एक महीने बाद डायरी लिखने बैठा हूँ। इस बीच क्या कभी अपने अन्दर झाँकने का मौक़ा ही नहीं मिला? ऐसा तो नहीं है। लगता यही है कि जब भी अकेला होता हूँ, अपने साथ ही होता हूँ, मगर लगता है, जैसे बीच में कहीं बाधा है। और वह बाधा है चन्दर। पिछले तीन महीने से बेशर्म की तरह डटा है। बीच में शायद पाँच-सात दिनों के लिए बम्बई गया और फिर आ गया। न खुलकर किसी को बुला सकते हैं, न बातें कर सकते हैं। बाहर से दो आदमी होते हैं, तो घर पर पहले ही चार। चेतराम मूर्ख, सुस्त और बिना किसी सूझवाला है। यानी मन्नू को ही हर चीज़ देखनी होती है, खाने से लेकर व्यवस्था तक। अब इस रविवार को ही निर्मलाजी, अजित-स्नेह, नामवर का बहुत पहले से तय था। शनि को आ गए ठाकुर साहब। फ़ोन किया तो मैं चन्दर को ले आया। सारे दिन यहाँ रहा। बेहद जोश में। घनश्याम को मैंने बताया कि फ़ौरन चले आओ। उसे तो मस्ती करने को कोई चाहिए। वह भी दूसरे के सिर। मैंने बताया कि कल हमारे यहाँ मीटिंग है, सामाजिक मिलना-जुलना नहीं। मौक़ा ही देखता रहता है कि कब मस्ती के लिए अवसर मिले। तय हुआ कि अगले दिन घनश्याम बस से आकर 11 बजे तक पहुँच जाएगा। तभी तक पहुँचेंगे ठाकुर साहब। फिर ये तीनों कहीं चले जाएँगे। ख़ैर, अगले दिन घनश्याम तो नहीं आया। ठाकुर साहब आ गए। अब वे बाहर जाने को कह रहे हैं और चन्दर है कि चलो यहीं इस कमरे में बैठते हैं। मेरे लिए धर्मसंकट था कि इधर हम लोग बातें करें और ये लोग अलग बैठें। साथ बैठने का मतलब कि कोई गम्भीर बात हो ही नहीं। ठाकुर साहब इतने ज़्यादा अपने में डूबे, पुराने घिसे-पिटे मज़ाकों पर मुग्ध कि वे एक ही बात को पीसते हैं। मैंने देखा है कि वे बहुत अच्छी कम्पनी नहीं हैं। खुद ही बोलते और हँसते हैं। विषय बदल चुकता है और वे उस पुराने को धुनते हैं। ख़ैर, मैंने रोका नहीं और वे चले गए। ये लोग अभी बैठे ही थे कि पाँच बजे के करीब अचानक अटैची लेकर राजुरकर आ गए। यह चार दिनों में तीसरी अटैची थी। पहले आया भास्कर। उसे भगाया। फिर कमल गुप्त। तीन दिन दिल्ली में रहा और रोज़ ठहरने की समस्या। एक दिन तो अटैची ले ही गया। आग्रह करता तो ठाकुर साहब भी आ ही जाते। चन्दर तो था ही। यानी लगता ऐसा है, जैसे आप उल्लू के पट्ठे की तरह गेस्ट-हाउस खोलकर बैठे हैं। मैंने तो ख़ैर, चन्दर से बात भी की कि क्या एक सप्ताह को तू कहीं जा सकता है? लक्ष्मीनारायणजी को आना है, सगाई के लिए छोटे बाबू साहब को आना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''राजेन्द्र, कहाँ जाऊँ? कोई जगह नहीं है। आई विल ट्राई टू कम्पेन्सेट, आई एम रियली ग्रेट-फुल।'' दया भी आती है। मगर कहने को मन भी करता है कि अगर तीन महीने किसी को रखने की बात भी होगी तो सत्ते को क्यों नहीं रखूँगा? उसे ज़रूरत भी है। हर आदमी मज़ाक उड़ाता है—'चन्दर गया?' अब क्या कहूँ?

ख़ैर, दोपहर को बड़ी मुश्किल से गए ठाकुर साहब और चन्दर फिर शाम को किशन सिंह के यहाँ से आ गए। मुझे लग रहा था कि ठाकुर साहब को इस प्रकार कहना ग़लत है, मगर तभी आ गए सान्त्वना और राजेन्द्र नाथ। वे टी.वी. की सीरीज़ बनाना चाहते थे, इसलिए कहानियों की सूची चाहते थे। फिर वही बैठक। मन्नू ने दारू की शुरुआत ही नहीं होने दी। उसके कुछ और लोग आना चाहते थे। किसी और दिन पर बात टल गई। उनके जाने पर मन्नू ने बताया कि अब आप लोग बैठ जाइए। वरना होता यह कि राजेन्दर आपके साथ बैठता और सान्त्वना मेरे साथ। यानी किचन देख ही नहीं पाती। तभी आ गई मन्नू की बम्बई वाली बहन की पुत्रवधू—यानी दद्दू की भाभी। सोचा था, अकेली होगी। मगर चार बच्चे, एक भाई, उसकी बच्ची। इस प्रकार छह व्यक्ति। दो अन्दर थे ही, तीन हम। यानी दस-ग्यारह। मन्नू बेचारी रसोई में। ख़ैर, आध घंटे में जब ये लोग खाने बैठे तो इनके आग्रह पर हम अन्दर गए। देर तक ठाकुर साहब के साथ, चन्दर के साथ बातें कीं। ये बीच में चले गए। हम लोग साढ़े ग्यारह तक रहे। शायद दो दिनों से जो क्षोभ उनके मन में था वह समाप्त हुआ होगा।

इस तरह सुबह से जैसे आनेवालों का सिलसिला ही बन गया था। अब इसमें कहाँ का लिखना और कहाँ का सोचना? मन्नू को सुबह कॉलेज जाना था। सभी थककर जैसे चूर-चूर हो गए। मन में धिक्कार और पश्चात्ताप...क्या साली ज़िन्दगी का रूप रह गया है? क्या यही पैटर्न मैंने चुनना चाहा था? ख़ासतौर से उस आदमी के लिए यह सब कितना खिजला और झुँझला देनेवाला है जो मानता है कि लिखना अपनी प्रेमिका से मिलना है...आप उससे चाहे बातें कुछ न करें, मगर उसके साथ एकान्त में निर्विघ्न होने का सन्तोष ही तो सुख का पर्याय बनता है। इस मेले में तो शायद आप खुलकर उधर देख भी नहीं सकते।

पिछले दिनों श्री भगवती प्रसाद खेतान ने अपने भतीजे के यहाँ खाने पर बुलाया था। आर.के. मिश्रा ने बुलाया था। कल महादेवी को सुनने साहित्य अकादेमी के आयोजन में गए थे। वे नहीं आईं। अमृता प्रीतम बोली थी। यह औरत इतनी उथली, झूठी और बचकानी है कि अपने लहजे से ही बौद्धिकता को स्थानापन्न करना चाहती है। मूर्ख पंजाबियों और मारवाड़ियों, या अहिन्दीभाषियों के बीच अपने इन बाज़ारू लटकों से वाह-वाह लूट लेती होगी—कम-से-कम अज्ञेय-जैनेन्द्र या और बुद्धिजीवियों के बीच में आकर क्यों अपने को एक्सपोज़ करती है? जैनेन्द्रजी से इतनी बकवास सुनने की उम्मीद नहीं थी। भवानी प्रसादजी ने सामने ज़मीन पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालथी मारकर वही अपनी भर्राई हुई आवाज़ में लम्बी कविता की नाटकीयता निभाई। शानी ने ही सारा प्रोग्राम संचालित किया। सब कुछ बहुत ही निराशा और क्षोभजनक था।

रात को वही चन्दर। उसे देखकर झुँझलाहट आती है। पता नहीं कब दफ़ा होगा!

18.7.84

क्यों मेरा मन किसी भी चीज़ पर री-एक्ट नहीं करता? हर चीज़ जैसे ठंडे धरातल से होकर लौट जाती है। अभी तक मैं समझता था कि ग़ुस्सा न आना अपने ऊपर नियंत्रण और संयम की निशानी है और मैं अनासक्त योगी की स्थिति में पहुँच रहा हूँ। अब लगता है कि यही तो जड़ता है जहाँ आप ग़ुस्से से बाल नहीं नोचते, ख़ुशी से नाचने नहीं लगते, घृणा से चीज़ें नहीं फेंकते और उत्साह से असामान्य नहीं हो जाते हैं। जो इमोशनल या भावना-प्रवण नहीं है, वह साला क्या लेखक होगा। लेखक होनेवाले को तो मुक्त भावनाओं और बेहद कमज़ोर स्नायुओं का व्यक्ति होना चाहिए जिस पर हर इमोशन भूत की तरह आए और आँधी के पेड़ की तरह उसे झकझोर जाए...गल नहीं सका जो कि हिमपिंड ठूँठ होगा। आज फिर बुध है और हम लोग मिल रहे हैं। वह अनिरुद्ध निगम अभी तक नहीं आया है। न उसकी कोई सूचना है। पहले तो तत्काल ही आने को लिखा था। अब तीन पत्र पचा गया है, दो हफ़्ते हो गए हैं। मैं आज कह दूँगा कि वे लोग कोई और प्रबन्ध कर लें।

24.7.84

22 जुलाई को सूचना के अनुसार अनिरुद्ध निगम को आना था। उसी के अनुसार मैंने शाम को बुला लिया लालानी और रीटा को। सारे दिन राह देखी। कोई भी नहीं आया। मैंने सोचा, यह भी गया। सारे दिन मैं और चन्दर अकेले रहे। मन्नू-टिंकू सुबह ही चली गई थीं छोटे बाबू साहब के साथ भरतपुर—मिट्ठू की सगाई करने। ख़ैर, शाम को पाँच बजे निगम प्रकट हुआ। कहा, आ तो सुबह ही गया, ग्यारह बजे इधर भी आया। जगह ही नहीं मिली। फिर इन्हें लेकर चला आया। छह बजे रीटा आ गई। फिर नहाने-धोने चली गई। आठ बजे लालानी आए। निगम बातचीत में बहुत ही गैर-प्रभावशाली है। बोलता भी नहीं है। इम्प्रेशन बहुत ही डल आदमी का पड़ता है। लालानी को भी लगा कि यह नम्बर-1 होने लायक नहीं है। नम्बर-2 या 3 होगा। ख़ैर, अगले दिन—यानी कल सन्ध्या को हम लोग शाम को मिले। उन लोगों ने अपनी मीटिंग रखी थी। कन्हैयालाल भी आए थे। इधर दो घंटे मैं और रीटा निगम को गूँधते रहे। लगा, परम्परावादी तरीक़ों से ही यह काम करेगा और शायद इसी में रिज़ल्ट दे। जब हम लोग गए तो तय हुआ। निगम बाहर रहा। दो तक की बात हुई। फिर रीटा की बात हुई— 2 हज़ार पाँच सौ तथा घर का फ़ोन। देखा, सुराना, चार्टर्ड एकाउंटेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने आर्टिकल ऑफ़ मैमोरैंडम बनाकर तैयार कर दिया है। काग़ज़ रजिस्ट्रार के यहाँ हैं। अगस्त के दूसरे या तीसरे सप्ताह तक नाम पक्का हो जाएगा। लगा, कुछ बात बढ़ रही है। काम शुरू हुआ लगता है। 1 सितम्बर से काम चालू हो जाएगा। कम-से-कम निगम को, रीटा को तो तभी से तय किया है। फिर हम लोग दारू पीकर दस बजे अलग हुए। पता चला कि चन्दर की फाइल भी माताजी के पास से आई है, लगभग O.K. होकर। लगता है, अब चीज़ें बदलेंगी।

27.7.84

कल मैंने अमर गोस्वामी को लिख दिया कि 1 सितम्बर से जॉइन करना है। मगर इस बीच एक चक्कर इधर का लगा जाए। उसकी आठ-नौ साल की नौकरी छुड़ाकर बुलाया है तो बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी और जोखिम का काम, और मन बहुत दुविधा में भी पड़ा, फिर सोचा कि देखा जाएगा। आख़िर वह खुद भी तो कुछ सोचेगा। कल ही धीरेन्द्र को भी बुलाया और उससे सारी योजना बता दी। गोस्वामी की बात नहीं की। सहायक के लिए सुझाव माँगा तो उसने राजमकल में काम कर रहे कृषक का नाम लिया। मुझे लगा ठीक है। गम्भीर आदमी है। शायद परिश्रमी भी है। काम जानता है। शायद उसे 11 सौ मिल रहे, धीरेन्द्र ने कहा, बारह-तेरह में आ जाएगा। मैं मन-ही-मन पन्द्रह तक सोचता हूँ। चलो, यह तो बहुत सही टीम बनती लगती है। गोस्वामी अगर 1 सितम्बर तक आता है तो 1 दिसम्बर से कृषक को लिया जा सकता है। अब एक बहुत ही कुशल स्टैनों की ज़रूरत है। शायद वह भी मिलेगी।

परसों लालानी ने बुलाया था 'सूर्या-सोफ़ैटी' में। शायद अपने लोगों को पार्टी दी थी। मुझे अजित और रीटा को अतिथियों की तरह बुलाया। शाम को हस्बेमामूल हम लोग चोरड़िया के यहाँ मिले जहाँ लोढ़ा ने मेरे अनुबन्ध को कानूनी भाषा में लिख रखा था। ख़ैर, वह टाइप होकर आएगा तो देखेंगे। अजित सवा आठ तक नहीं आए थे। आख़िर हम लोगों को मिलना पड़ा। पहले रीटा की मोपेड पर बैठकर उसके दफ़्तर यानी आर.के. पुरम। वहाँ से गाड़ी की व्यवस्था करके उसके घर। नहा-धोकर वह साड़ी-वाड़ी पहनकर तैयार हुई। पहुँचे होटल। पिछले साल भी लालानी ने यहीं पार्टी दी थी। वही अनीसा साबरी आई थी। सुन्दर लग रही थी। लोग कम थे। बैंक्वेट हॉल के आधे में शायद एस्कॉर्टवालों की कोई पार्टी थी। गाने चल रहे थे। स्कॉच के दौर। रीटा सिगरेट के साथ बीयर। आगे बैठे लालानी ही सबसे अधिक झूम-झूमकर दाद दे रहे थे। 'अनीसा यू आर द बेस्ट' कभी झूमते, कभी उठकर नाचते। गाने का दौर एक बजे तक चला। खाना मानो सौ आदमियों के लिए था, लोग थे कुल बीस-पच्चीस। सब मिलाकर एक शाम का खर्चा बारह-पन्द्रह हज़ार से कम नहीं था। इस तरह सुख-सुविधा, समृद्धि में बैठकर संगीत और गायन की महफ़िल अच्छी लगती है, मगर इन नए-नए रईसों के साथ मैं खुद कैसे एट-होम महसूस करने लगा हूँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही आश्चर्य है। ये सौ-सौ और पचास-पचास न्योछावर करनेवाले लोग हैं, जो मैं एक बार भी नहीं कर सकता। अब तो यह धिक्कार भी मन में नहीं रहा कि यह जगह अपनी नहीं है, भागो या कब तक दूसरों के बल पर स्कॉच, फ़ाइव स्टार होटल और ग़ज़लों का यह महँगा शौक़। सिर्फ़ बड़े साहित्यिक के नाते बर्दाश्त किए जाने का लिहाज़...फिर ख़याल आता है, नहीं, वे भी तो मेरे होने से गौरवान्वित होते हैं और उन्हें इस गौरव के लिए कुछ रुपए ख़र्च करने में क्या फ़र्क़ पड़ता है।

चलते-चलते एक लफड़ा हो गया। बैठने-गाने का प्रबन्ध फ़र्श पर था। चादरें बिछाकर। मैं अपनी प्लेट लगाकर वहीं ले आया। अनीसा और रीटा से बातें कर रहा था कि पीछे देखा, सिंडीकेट बैंक का कोई कामत, मेरी प्लेट पीछे फेंककर इस तरह पड़ गया है जैसे किसी ने गोली मार दी हो। हम सब हँस रहे थे। फिर वह उठा और बैरों को गालियाँ देने लगा। पता लगा, किसी ने उसका अपमान कर दिया। बार-बार उठकर पसर जाता था। न मैं खाऊँगा, न यहाँ से उठाऊँगा। बैरे को आकर मुझसे माफी माँगनी होगी। सब लोग समझा रहे थे और वह माँ, बहन की गालियाँ दे रहा था। इन लोगों को कोई हक़ नहीं है, हम लोगों का मज़ाक उड़ाने का। आध-पौन घंटा उसे समेटने में लग गया। जैसे-तैसे सँभालकर नीचे लाए तो तीन बज गए थे। घर आते-आते साढ़े तीन। मन्नू को भड़कना ही था। मिस्टी के लिए हड्डियाँ लाया था तो वहाँ जुट गई। सुबह वही पौने छह पर आँख खुल गई। नाश्ते के बाद सोने की कोशिश की। आध-पौन घंटे। नींद नहीं आई। सारे दिन दिमाग़ में जैसे धुन्ध भरे बादल छाए रहे। शाम को शैलेश मटियानी जब अपने लड़के को लेकर आए तो बुरी हालत थी। पन्द्रह-बीस मिनट मेज़ पर सिर रखकर सोया। घर जाकर आध घंटा सोया। रात को जल्दी साढ़े दस पर सो गया। जब जाकर आज तबीयत ठीक लग रही है। कल निहाल भी आया। मीता को मन्नू ने साड़ी भेजी थी। उसका पत्र भी मिला।

आज निर्मल वर्मा के संग्रह 'कौवे और काला पानी' पर गोष्ठी है और मुझे अध्यक्षता करनी है। अनीसा को लेकर रीटा आनेवाली थी, अभी नहीं आई है।

4.8.84

कल नए फ़्लैट में आए ठीक एक साल पूरा हो गया। किस तरह निकलता है समय! इस बीच में मानसिक और मनोवैज्ञानिक रूप से जमने की प्रक्रिया हुई, टिंकू की शादी हुई और लगता है, पत्रिका वाली बात भी बन ही गई। पंचप्रकाशन की स्थापना, निगम और अमर गोस्वामी की लगभग नियुक्ति। रीटा नाहटा की 1 अगस्त से नियुक्ति। काम इतना आगे बढ़ गया है कि अगर अब भी पत्रिका नहीं निकलती तो जाए भाड़ में साली! बहरहाल, लगता तो ऐसा ही है कि घर शुभ रहा है और अब तो फ़र्नीचर दीवारों से जुड़ाव या आसंग भी हो गया है। वैसे जितनी प्रशंसा घर की, उसकी व्यवस्था की मिलती रही है, वह अपने आपमें एक उपलब्धि जैसी है। हाँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी-कभी यह सवाल, विशेषकर गाड़ी में जाते हुए, ज़रूर मन में आता है कि यह दिल्ली जैसे शहर में सुख-सुविधाओं से भरा साफ़- सुन्दर फ़्लैट, शोफ़रवाली गाड़ी, फ़ोन...आर्थिक सम्पन्नता तो नहीं, हाँ, दबावहीनता ज़रूर कह सकता हूँ...क्योंकि आर्थिक रूप से बहुत परेशान तो शायद मैं कभी भी नहीं रहा हूँ। शायद यह अपने रवैए पर ही निर्भर करता है। बैंक में आज की तारीख़ में शायद एक हज़ार रुपया है, मगर मन में न परेशानी है, न असुरक्षा जैसा भाव। तो अपने-आपसे सवाल करता हूँ कि क्या यही सब पाने के लिए ज़िन्दगी की भाग-दौड़ थी? क्या यही जीवन का लक्ष्य था? और अगर था तो प्रयास करने पर तीस साल पहले इसे नहीं पाया जा सकता था? ये सुविधाएँ अगर अपनी पहली प्रतिबद्धता—यानी लेखन को आगे नहीं बढ़ातीं तो क्या मुझमें निर्णय-दृढ़ता और साहस है कि सब छोड़-छाड़ दूँ? अपने-आपको हाँकता हूँ कि अब अपने असली काम की शुरुआत हो जानी चाहिए। बहुत हो गया। माना कि दिल्ली में शाम अपनी नहीं है, कहीं न कहीं या तो जाना होता है या बुलाना—मगर सुबह पाँच-छह बजे से ग्यारह बजे तक का समय तो अपना है। तब क्यों नहीं कुछ गम्भीर और सार्थक काम शुरू किया जा सकता?

पिछले तीन-चार दिनों से रीटा नाहटा आ रही है, पत्रिका के सिलसिले में मुझसे जानने-समझने, तैयारियों की शुरुआत करने। एक तो अपनी बोल्डनेस को लेकर स्वयं मुग्ध है, दूसरे बहुत बोलती है।

13.8.84

पिछले दो दिनों से बहुत परेशान हूँ। सचमुच लालानी इत्यादि के साथ मेरा सम्बन्ध बहुत जल्दी टूट जाएगा? परसों मीटिंग थी और उसमें पत्रिका की मोटी रूपरेखा, मेरी और पंचप्रकाशन (पटावरी, चोरड़िया, सेठिया, लालानी की संस्था का यही नाम है) शर्तें तय होनी थीं। एक मेरे साथ और एक अक्षर के साथ। रक्षा-बन्धन की छुट्टी थी, लेकिन मैं 3 बजे की मीटिंग के लिए आया था। शर्तों का प्रारूप लालानी ने मुझे दे दिया था। उसमें मेरे साथ अनुबन्ध नहीं नियुक्ति-पत्र था। उसे मैंने काट दिया। ये या कोई भी मुझे क्या नियुक्ति देगा। उसमें एक शर्त यह भी थी कि तीन साल के बीच में मतभेद होने पर 'हंस' मेरे पास वापस लौट आएगा। तीन के बाद पंचप्रकाशन लौटाने को बाध्य नहीं है। मैंने इस अवधि को पाँच वर्ष कर दिया। दोनों ओर से छोड़ने की शर्तें तीन महीने का नोटिस था, मैंने अपनी ओर से तीन महीने और उनकी ओर से बारह महीने किया। आर्थिक बातें तय होनी थीं। बहरहाल, जैसा कि होता है लालानी बहुत लम्बी उड़ान लेकर लौटे। पहले तो यही पसन्द नहीं आया कि मैंने अनुबन्ध क्यों बदला? फिर पत्रिका के स्वरूप की बात हुई। अजित और लालानी शुरू से ही मेरे पीछे पड़े हैं कि मैं बताऊँ कि पत्रिका में क्या जाएगा, उसकी नीति क्या होगी? अजित की उत्सुकता तो सिर्फ़ इसमें है कि मुझे क्या मिलेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए मेरा सुझाव था कि अजित इस मीटिंग में न आएँ। सबसे पहले तो यही बहस शुरू हुई कि आज तक 'हंस' और 'पंचप्रकाशन' की स्टेशनरी नहीं आई। मुझे ऑफ़िस का इंडेंट नहीं मिला। यह ग़ुस्सा रीटा पर था। यह लड़की बातें बहुत करती है, काम कम। आपको कितने पेज रीडिंग मैटीरियल के चाहिए: दूसरी पत्रिकाओं में क्या है? जब रीटा ने पत्रिकाओं का बजट सेंक्शन करा लिया है तो पत्रिकाएँ आ जानी चाहिए थीं, विज्ञापन के पन्ने छोड़कर टेक्स्ट का एवरेज निकाल लिया जाना था। कंटेंट की यह लिस्ट आपको दो सालों से 20×30×8 साइज़ में दे रहे हैं : जब 23×36 तय हो गया है तो यह 160 पन्नों का क्या मतलब है? यह घिच-पिच में आदमी क्या समझेगा! आपके पन्ने भी 104 नहीं होते—यह जोड़ने का क्लैरिकल काम भी मैं ही करके बताता हूँ। टेक्स्ट के पन्ने भी तो देखिए दिखाता हूँ।...अगर आप उसके स्वरूप के बारे में कुछ नहीं बताना चाहते तो न बताइए, मना कर दीजिए। आप हर चीज़ को अपने तक ही रखना चाहते हैं। अनुबन्ध में भी आपने 'हंस' के वह पत्र वाला हिस्सा काट दिया है जिसमें सरकारी पत्र धारा इत्यादि का हवाला है। हम कैसे मान लें कि पत्रिका के अधिकार आपके पास हैं?...और भी बहुत-कुछ जैसे वह बोलता है। हालाँकि मैंने जवाब सभी बातों के दिये और मुझे लगा कि उसका सोचना भी बहुत ग़लत नहीं है। जो आदमी पाँच-छह लाख रुपया लगाने जा रहा है, वह यह तो ज़रूर जानना चाहेगा कि उन रुपयों में उसे क्या मिल रहा है। मगर ढंग निश्चय ही आपत्तिजनक था।

और तभी से मैं परेशान हूँ। क्या इसी अवसर कह दूँ कि आपके साथ मेरे सम्बन्ध मुश्किल हैं? या क्या मैं अपनी ग़लती मान रहा था; या सिर्फ़ इसलिए उतना कटु नहीं हो पाया कि बनते हुए काम को इस स्थिति में बिगाड़ना बुद्धिमानी नहीं है, या फिर यही सोच रहा था कि सम्बन्ध तय होने की ही ये सारी बातें हैं, उसके बाद तीन या पाँच साल तक मुझे इनसे सिर्फ़ व्यावहारिक सम्बन्ध रखने हैं। या कहीं मैं कमज़ोर था?...बहरहाल घर गया तो बहुत तनाव में था और वहाँ सुमन-सुधीर का होना अच्छा नहीं लगा। बार-बार मन कर रहा था कि यह सम्बन्धों की शुरुआत है, मगर स्तर यही तय हो गया तो आगे बदलना मुश्किल होगा। या तो सम्बन्ध अभी बदल दिये जाने चाहिए या तोड़ दिये जाने चाहिए। बाद में मुश्किल होगा। अभी जाकर फ़ोन पर झाड़ पिला दूँगा? फिर लगा कि या तो पत्र लिखूँ या फिर आमने-सामने बात कर लूँ। फिर लगा कि पहले अपनी तैयारी करके मैं साफ़-साफ़ बात कर लूँगा। और मैं पत्रिका का पूरा प्रारूप बनाने बैठ गया—एक-एक आइटम को विस्तार से लिखा और पूरी पत्रिका को एक तरह पन्ना-दर-पन्ना खोलकर देखा। अब इससे अधिक कुछ भी नहीं करूँगा, करना भी नहीं चाहूँगा। मगर सिचुएशंस के इस डेवलपमेंट से चिन्तित बहुत हूँ। इधर राजी से लेकर प्राय: सभी से बातें हो गई हैं। कोई शुभकामनाएँ दे रहा है, कोई बधाई। इस अवसर पर बहुत सख़्त भी नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्र को पूर्व सूचना के अनुसार अमर गोस्वामी आए थे। उन्हें दो हज़ार कुल का ऑफ़र भेजा था। उस दिन दस मिनट को वे भी मिले लालानी से। वे चाहते थे कि ये रुपए बाईस सौ हों, ताकि निश्चिन्त होकर वे 6-7 सौ का मकान ले सकें, 1500 में घर चला सकें। महीने का समय माँगा है। जैसे ही एपॉइंटमेंट लेटर मिला, वे वहाँ त्यागपत्र भेज देंगे। उन्हें रास्ते के दो सौ रुपए भी दिलाए। आदमी सोबर लगे। काम की तारीफ़ तो चारों तरफ़ है ही। यहाँ बाद में अनिता साबरी को बुलाया था लालानी ने। उसके लिए व्यवस्था करना चाहता था। एक तरह महीने के आठ हज़ार का ख़र्चा अपने ऊपर बाँध रहा है, एक्सप्लोटर ऑफ़ टैलेंट की झोंक में। पता नहीं, निभा पाएगा या नहीं। यही मैंने कहा भी था कि भावुकता में फ़हमीदा रियाज़ की तरह ऐसा कमिटमेंट मत करो जिसे निभाना भारी पड़े। यह हस्तक्षेप ज़रूर करेगा और मैं शायद इसे बर्दाश्त न कर पाऊँ। पैसे ने इसे जो कॉन्फ़िडेंस दिया है, उसने शायद यह मुग़ालता भी दिया है कि वह हर विषय का महान ज्ञाता है। ख़ैर, देखते हैं।

दस की शाम को मलिक साहब के साथ बैठे थे। उसमें मैंने चार बातें तय करने का आग्रह किया है, हमारा पुराना काग़ज़ मिलना चाहिए, बाहरी किताबों पर कमीशन का अन्तर, अटके हुए बिलों का रेगुलराइज़ेशन और पुराने हिसाब को चुकाने का तरीक़ा। काफ़ी बातें हुईं। देखें, क्या तय करते हैं!

आज सुबह रंजन आया, दोपहर में हेमेन्द्र।

18.8.84

मन्नू शायद मन में रंजन की बहुत ही प्रतीक्षा कर रही थी। प्रतीक्षा और बेचैनी बाहर भी थी। उसका ख़याल था कि टिंकू वाले झटके के बावजूद रंजन उसके बहुत निकट है, बहुत विश्वास में है। शायद यह दो प्रताड़ित और डिच्ड लोगों की निकटता थी। मन्नू के हिसाब से मैंने उसे धोखा दिया था और टिंकू ने रंजन को कम-से-कम ऐसा भावनात्मक धक्का तो दिया ही था कि दोनों की ज़िन्दगियाँ लड़खड़ा गई थीं। इसलिए अपना--अपना मन एक-दूसरे के सामने खोल सकते थे, हम लोगों को कठघरे में खड़ा कर सकते थे। रंजन ने जिस तरह जान मारकर हमारे फ़्लैट का काम कराया था, वह हम दोनों को कृतज्ञता और आभार से भरा छोड़ गया था। यहाँ तक कि मन्नू सोचती थी कि अपने घर के लिए जो 'विल' करेगी, उसमें रंजन के लिए ज़रूर कुछ छोड़ जाएगी। वह सचमुच मन्नू का बेटा हो गया था। मगर इस बार के व्यवहार से बहुत धक्का लगा। लगा, वह ग़लत जगह अपनी भावनाएँ टाँग रही थी। वह सुबह आया तब मन्नू जा रही थी कॉलेज। नहा-धोकर सुदर्शना के यहाँ चितरंजन पार्क में चला गया। शाम को मैं पहुँचा तो सुदर्शना भी थी। यानी मन्नू के लिए फ़ुरसत नहीं थी। यही अगले दिन हुआ और सोमवार को वह चला गया। हो सकता है, रात को कुछ समय मिला हो। मगर जैसा कि मन्नू कहती है, उन लोगों ने पाया कि कुछ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें करने को नहीं बचा है। सचमुच मन्नू के लिए बहुत दुख हुआ। बेचारी कितनी झूठी जगह अपने को अटका रही थी। झुँझलाहट मुझे भी आई कि यह क्या है, वहाँ तो सुदर्शना के साथ था ही, यहाँ भी उसी से चिपका हुआ है। हो सकता है, सुदर्शना भी बहुत चालाकी से उसे घेरे रखना चाहती हो कि वह यहाँ ज़्यादा न जुड़ा रहे।

इस निराशा और धक्के का स्वाभाविक परिणाम था कि मन्नू फिर वापस मेरी ओर लौटे और मेरी ज़्यादतियाँ उसे नए सिरे से याद आएँ। नतीजे में पिछले हफ़्ते से उसका मूड बेहद ख़राब था और बोल नहीं रही थी। मुझे लग रहा है, आप लोगों के बीच फिर कुछ हुआ है या होनेवाला है। मेरा इंस्ट्यूशन (पूर्वाभास) झूठा नहीं होता। जब मुझे भीतरी बेचैनी होती है तो हमेशा कुछ न कुछ होता है। इसमें दो बातें ने मदद की। एक तो रीटा के एक आदमी बलवीर को लेकर मैं शिकोहाबाद जा रहा हूँ, पैसे लाने की योजना से। दो-तीन दिन रुकना होगा। दूसरे मैं जा रहा हूँ सागर—उपन्यासों पर सेमिनार में। पहले शायद तारीखें 26-27 थीं, अब हुई 25-26। इसके बाद 31 को मुझे पहुँचना है औरंगाबाद, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय की पाठ्य-समिति में हिस्सा लेने। सोचा, दो-एक दिन वहीं कहीं बिताकर मैं आगे बढ़ जाऊँगा। बस, मन्नू को यही दरार मिल गई। लेकिन इधर सागर के लिए भोपाल से सोमदत्त ने जो प्रोग्राम भेजा है, उसमें हम सब लोग किसी विशेष जगह नहीं, भीड़ में हैं। तभी तय किया कि नहीं जाना है। कल मैंने मन्नू को पकड़ा। बताया कि नहीं जा रहा हूँ, अब तो मूड मत ख़राब करो। मगर वह अड़ी रही— तुम्हारे बीच में रोमांटिक पत्र-व्यवहार हुआ है, तुम औरतों में स्पेशलाइज़ करते हो, कभी इस औरत के मन और शरीर की बात सोची होती। मैंने हर बार कहा कि पिछले दस-बारह सालों में दो-तीन सालों में एकाध बार मिलने के अलावा क्या हुआ है। मगर वह शुरू से बीच-बीच की घटनाओं को हर बार आरोप लगाते हुए इतने विस्तार और डिटेल में दुहराती है कि कभी-कभी मुझे शक होता है कि अपने को दुखी और टॉर्चर करने के लिए उन्हें बार-बार अपने सामने खड़ा करती है : हो सकता है, बहुत-कुछ उसने अपनी कल्पना से रंग भर लिये हों और बहुत-सी उसकी सचित्र आशंकाएँ हों। इस आत्मपीड़न में ही उसे 'रस' आने लगा है। वह उन चित्रों को मन में जीती है और अपने को वहाँ न पाकर मुझ पर गुस्सा खाती है : मेरी क़िस्मत में तो आख़िरी साँस तक यही ज़िन्दगी लिखी है। तुमने मेरे साथ यह सब क्यों किया? सचमुच मुझे इस पर दया आती है और यह भी सच है कि अगर मेरी परिचित किसी दूसरी औरत के साथ यह सब हो रहा होता तो मैं उसे ज़्यादा गहराई से सहानुभूति दे पाता। मगर क्या करूँ, एक तो यातना देनेवाला मैं स्वयं हूँ और दूसरे वहाँ 'पत्नी' है; चूँकि पत्नी का एक सामाजिक हक और वैधानिक क्लेम है। इसलिए वह भावनात्मक स्तर पर जड़ और भावनाशून्य बना देती है। उसका आरोप सही है कि अगर हम लोग अब कहीं जाएँ भी तो मुझे लगेगा कि मन्नू की जगह वह होती और मन्नू को लगेगा, वह ज़बर्दस्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लदी हुई है—मेरा मन नहीं है। मैं मन से वहाँ रहूँगा भी तो भी सोचेगी कि कर्तव्यवश हूँ—मन से नहीं। अपने इस दंश का मैं क्या करूँ? न यहाँ सच्चा हो पाता हूँ, न वहाँ झूठा...हम तीनों पता नहीं किस अपराध की सज़ा भुगत रहे हैं! तीनों अपराध-बोध के मारे हैं, तीनों वंचित और प्रवंचित महसूस करते हैं और तीनों बरसों से अकेले अपनी-अपनी चारपाइयों पर रात बिता देते हैं। रंजन के लिए जब मन्नू ने टिंकू से आग्रह किया तो टिंकू ने कह दिया कि 'मम्मी, तुम आग्रह करोगी तो हम शादी रंजन से कर लेंगे—मगर हम नहीं चाहते कि तुम्हारी तरह हम सिर्फ़ एक समाज-दिखावे के पति-पत्नी बनकर रह जाएँ।' यही बात रंजन ने सुदर्शना के सन्दर्भ में कही थी कि अगर मैं अभी भी तुमसे, टिंकू से, इस घर से जुड़ा रहूँगा और सुदर्शनी से शादी करूँगा तो वही ट्रैजेडी दुहराई जाएगी जो तुम्हारे और पप्पू के बीच घटित हुई।

इस सबके बावजूद मैंने निर्मल वर्मा वाला लेख पूरा कर लिया। कुछ दुहरावों के बावजूद मुझे लगा, अच्छा ही बन गया है।

'हंस' वाली बात फिर अटक रही है। इस बार तैयारियाँ पूरी हैं, अटक रही है कि मेरे साथ अनुबन्ध क्या हो, कि मुझे अपनी पत्रिका में छूट कितनी हो। इसे लेकर दो मीटिंग हो चुकी हैं। पिछले बुध को भी सारी बातें बिना नतीजे पर पहुँच बीच में छूट गईं।

30.8.84

क्या हर आदमी को अपना जन्मदिन संसार का सबसे महत्त्वपूर्ण दिन लगता है? अट्ठाईस को मेरा जन्मदिन हर बार की तरह था और मुझे लग रहा था कि वह सबसे मनहूस दिन होने जा रहा है। मन्नू ने भयंकर तनाव फैलाया हुआ था। मुझे रीटा के बताए आदमी को साथ लेकर शिकोहाबाद जाना था। जाने से पहले बलवीर का फ़ोन आया कि उसकी भाभी अस्पताल में ऑक्सीजन पर है। मैं और स्थगित नहीं करना चाहता था। मीता का पत्र आया था कि सम्बन्धित व्यक्ति वहीं होगा। बहरहाल सुबह चार बजे हम लोग निकले। रामप्रसाद आ गया था। बलवीर ने अपना स्कूटर वहीं छोड़ दिया था। शिकोहाबाद पहुँचे। मीता देर से आई। बलवीर उसी दिन शाम को लौट आया। रात को स्कूटर लेने लौटा होगा। मन्नू शायद कर्नल आनन्द के यहाँ गई थी। ख़ैर, उसे पता लग गया कि वह आ गया है और मैं नहीं आया। अगले दिन मैंने फ़ोन किया तो चेतराम ने बताया। मीटिंग थी बुध की। तय उसमें भी कुछ नहीं हुआ। बस, तभी से भयानक तनाव घर में बना है। सब लोग, शानी, त्यागी 28 का प्रोग्राम पूछते थे और मैं बता नहीं पाता था। मन्नू प्रोग्राम बनाए थी कि 28 को जयपुर चली जाएगी। मेरा मन रोकने को हो रहा था। मगर गुस्सा था। अगर खुद नहीं सोचती तो रहने दो। मुझे ही टिकट लाने के पैसे दिये। शनिवार को सुरेन्द्र, त्यागी, मलिक साहब घर गए। हम लोगों ने रम पी और जो बना था, खाया। बेचारे चेतराम ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ढंग से अच्छा ही खिला दिया। मन्नू टिंकूवाले कमरे में ही रही। हम लोगों से पहले खाकर चली गई। मुझे गुस्सा आ रहा! आख़िर मैंने पचपन पार कर लिये हैं, वह भी पचपन शुरू कर रही है। अब उस एक बात को लेकर कितने दिनों तनाव बना रहेगा। यह जानती है कि अब इस स्थिति में आकर मैं मीता को बीच में नहीं छोड़ सकता। जब छोड़ूँगा नहीं तो साल में एकाध बार मिलूँगा भी। इस बात को लेकर क्या हर बार तनाव बढ़ेगा? हर बार मैं इस दिन अपना श्राद्ध ही करूँगा? इस बार टिंकू ने ही मुझे अपनी ओर से दो कुर्ते भेंट किए।

मगर जन्मदिन वाली स्थिति आई ही नहीं। सोमवार को दस बजे के लगभग फ़ोन आया रामपुर से कि भइयु (नेहा) नहीं रही। मैं तो स्तब्ध ही रह गया। कहा, कल सुबह आऊँगा। चिट लिखकर दफ़्तर आया। मीटिंग इस बार सोमवार को ही थी। वहाँ से जल्दी निकला—साढ़े आठ पर। मन्नू शायद दिन में माधवी से बातें कर चुकी थी। रात में इन लोगों से भी बातें हुईं—लक्ष्मीनारायणजी और माधवी। ये भी चलना चाहते थे, लेकिन ड्राइवर इनका दस से पहले आनेवाला नहीं था। ढुँढ़वाया था। फिर आया कि मैं सुबह न जाऊँ। वे लोग ग्यारह-बारह बजे तक आ जाएँगे। ख़ैर, अगले दिन आए। खाते ही हम लोग रवाना हो गए। लगभग छह बजे पहुँचे। सचमुच हेमेन्द्र बेहद दुखी था और रो रहा था। समझाया। बत्ती नहीं थी। नेहा की तस्वीर दिमाग़ में दूध की बोतल लिये हुए ही आती है। रात को उसके सास-ससुर, छोटी बहन इत्यादि आ गए थे। आसपास सरदारों को मोहल्ला है और सभी काफ़ी सहयोगी लगे। हेमेन्द्र का पुराना चेला एक सोनी भी था। खाना वहीं से आया था। अगले दिन हवन इत्यादि कराके साढ़े बारह के क़रीब वापस लौटे। नन्ही की तरफ़ होते हुए घर आए। काफ़ी थक गए थे। मैं थोड़ा-सा सोया। रात को इन लोगों ने खाना इत्यादि खाया और फिर टिंकू के यहाँ गए। आज सुबह छह बजे ये लोग रवाना हो गए। अब फिर वही वापस दिल्ली...

लगा ही नहीं कि जन्मदिन आया भी था, या आगे क्या करना है। अब जो भी होगा, देखा जाएगा। अब तो पत्रिका की ही बात आती है। देखें, यहाँ क्या स्थिति है? टेलीफ़ोन सारे ख़राब पड़े हैं, इसलिए किसी से कोई सम्पर्क नहीं हुआ। आज दफ़्तर में आया तो मालूम हुआ कि तीन दिनों से मधु ही नहीं आ रही। इस सप्ताह में बहुत कुछ था जो मन में आता रहा है और मैं सोचता रहा हूँ—मगर लिखते समय सब इतनी सामान्य और महीन बातें आती हैं कि इन्हें लिखते हुए कोफ़्त होती है।

1.9.84

अभी तक तो निश्चय यही है कि आज से लिखना शुरू करना है। सबसे पहले रामाधारजी का संस्मरण। बहुत दिनों से अधूरा पड़ा है। इधर रविवार से रुक-रुककर बारिश हो रही है। कल अच्छी हुई थी। गर्मी, नींद, आलस्य। पिछले दिनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका की बात कुछ ढीली पड़ती लगती है। शनि को मिले थे और अभी तक बात वहीं है। रीटा भी आनेवाली थी। फ़ोन सारे मरे पड़े हैं। किसी से कोई संवाद ही नहीं है। लगता है, जैसे कहीं कुछ भी नहीं हो रहा। शायद मैं शारीरिक रूप से बहुत नॉर्मल नहीं महसूस कर रहा। इधर पेशाब की हाजत हमेशा लगती है और हर दो-ढाई घंटों में तो जाना ही होता है—बहुत ही हल्की चिरराहट के साथ। शुगर देखने की तीलियाँ एकदम नॉर्मल बताती हैं। कुछ देर अगर पढ़ूँ तो नींद आ जाती है। लगता है, ध्यान को बहुत केन्द्रित नहीं कर पाता। कहीं कुछ बड़ी गड़बड़ी भीतर-ही-भीतर न चल रही हो। मैं जानता हूँ, एक बार मैगज़ीन में लगने के बाद तो छह-आठ महीने होश नहीं आएगा। इसके लिए मुझे तैयार रहना चाहिए।

इधर 'अक्षर' को भी ठीक करने की बात सिर्फ़ सोचता रहता हूँ। हो सकता है, कल टिंकू और मन्नू को ही सँभालना पड़े तो कम-से-कम चीज़ें साफ़ तो हों। यह बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातों को सिर्फ़ अपने तक ही रखने की नीति ग़लत है। मलिक साहब के साथ भी निपटना है। जैसा उन्होंने हिसाब बनाया हुआ है, उसे बैठकर ठीक करना होगा। कितना कुछ करना है और सारा समय यों ही निकल जाता है। कभी-कभी तो लगता है, 'अक्षर' में आकर सिर्फ़ समय नष्ट करता हूँ। इस समय अपना बैठकर कुछ लिखना चाहिए। पिछले साल इन दिनों मकान को लेकर जो उखड़ापन था, वह अब एक सिरे से ग़ायब है। अब अपना कमरा अपना लगता है। वहाँ बैठकर लिखने-पढ़ने की बात मन में आती है। कैसे संकल्प करूँ कि बैठकर लिखना चालू हो जाए। ये डायरियाँ भरना कहीं भी तो कुछ मदद नहीं करता।

10.9.84

इधर लालानी का व्यवहार मुझे अजीब ही लग रहा है। मैं समझता था कि मूर्ख और अनपढ़ मारवाड़ियों का पहला और अन्तिम तर्क एक ही होता है, "हमारा पैसा है, इसलिए सब कुछ वैसा ही होगा जो हम चाहेंगे।" लेकिन देख रहा हूँ कि सब कुछ पढ़ने-लिखने और इतना प्रबुद्ध होने के बावजूद लालानी भी इसी तर्क पर उतर आता है। वह फ़ैक्टरी की तरह ही पत्रिका चलाना चाहता है, ठीक वैसी ही एप्रोच के साथ। हर चीज़ को ख़ुद देखकर पास या ना-पास करना, और अपने सुझाव देना। वे सुझाव नहीं होते, दबाव होते हैं—इस तर्क पर कि पैसा हमारा है, हमने बिज़नेस किया है और हम समझते हैं। मेरे साथ के अनुबन्ध में एक पॉइंट है कि You will be absolutely free to decide the content and style of the Magazine, लेकिन Provided करके सभी कुछ अपने एप्रूवल पर रख लिया है। दिक़्क़त यह है कि अपनी बात को वह अन्तिम समझता है। यही कल 'लेटर पैड' को लेकर बात हुई। मैंने मैटर सारा नरेन्द्र को दे दिया है। अब जहाँ जो भी सुन्दर लगेगा, वह कर लेगा। इस पर लालानी बोला कि उसे तो वही करना होगा जो हम कहेंगे। बात छोटी-सी है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर एक एटीट्यूड ज़रूर बताती है। मेरे साथ होनेवाले अनुबन्ध में है कि अगर बीच में किसी भी कारण छोड़ना पड़ा तो वे मुझे दस हज़ार रुपए देंगे। मैंने यह राशि पच्चीस हज़ार की। इसी पर झाँय-झाँय हो रही है कि जब हम पहले साल आपको छह महीने का नोटिस देने की बात कर रहे हैं तो यह पच्चीस की राशि का क्या मतलब है? जब हम और मन्नू लौटे तो दोनों ही चुप और टैन्स थे। शायद दोनों ही सोच रहे थे कि यह तो बहुत दख़लंदाज़ी करेगा—इससे कैसे चलेगा? अभी तक तय नहीं कर पा रहा हूँ, इस अनुबन्ध को लेकर क्या करूँ? अपना अन्तिम रूप से निर्णय दे दूँ या फिर जैसा कहते हैं, वही करूँ? कभी लगता है कि अगर शुरू में ही तरह देता रहा तो यह आगे बहुत हावी हो जाएगा।

इधर मैंने एक शुद्ध फ़्लुक मारा है। मुझे मालूम है कि होगा बिल्कुल नहीं। मगर जिसे कहते हैं—होपिंग अगेन्स्ट होप, वही किया है। पिछले शुक्र को मैं दिनेश नन्दिनी चोरड़िया से मिलने गया। बहुत प्रेम से खाना खिलाया। 'हंस' का बताया तो उन्हें थोड़ा-सा धक्का लगा। कह रही थीं कि पता नहीं, अमिताभ का क्या इरादा है। कुछ बताता ही नहीं। हाँ-हाँ, करूँगा। तुम क्यों नहीं पूछते? वह कुछ नहीं करता तो हम लोग ही करते हैं। मगर अब तुम तो वहाँ उलझ गए हो। उन लोगों से मिले थे? मैंने बताया कि इस तरह तो उनके साथ बँधा नहीं हूँ—मैं तो अक्षर भी करूँगा। और कुछ भी करता रह सकता हूँ। अमिताभ आनेवाला था, आया नहीं। एक बार और फ़ोन करूँगा। ख़ैर, वहाँ से आया। अगले दिन मनोहर जुनेजा के यहाँ से फ़ोन किया। नीलिमा बोली। काफ़ी रूखी थी। ख़ैर, अमिताभ से बात हुई और आज सुबह मिलने का समय तय हुआ।

अमिताभ ठीक नौ बजे आ गया। एक-सवा घंटा बैठा। शुरू में इधर-उधर की सामान्य बातें होती रहीं। रामाधार व्यक्ति कैसे थे, इसी को मैं उसके माध्यम से, अपने सम्बन्धों के माध्यम से टटोलता रहा। लेख दिखाया कि किस तरह मैं जुलाई-अगस्त और सितम्बर में उन्हीं से उलझा रहा हूँ। हो सकता है, मैं सचमुच ईमानदारी से व्यक्ति रामाधार को जानने की कोशिश करता रहा होऊँ और हो सकता है, अगली बात के लिए उसे भावनात्मक धरातल पर मुलायम करता रहा होऊँ। अगर ऐसा है तो अवचेतन की बात है। बहरहाल, मैंने साफ़ ही पूछ लिया कि, "अगर उनके नाम से तुम कुछ करना चाहते हो तो क्या सोचा है और नहीं करना चाहते तो साफ़ बताओ।" उसने कहा, "करना तो चाहते हैं और ऐसा कुछ करना चाहते हैं जिसमें उनके अलग-अलग शौक़, चाहे राजनीतिक हों और चाहे तंत्र इत्यादि सम्बन्धी—सभी कुछ को समेटा जा सके।" मैंने फिर बताया कि इसमें दो चीज़ें हो सकती हैं कि या तो पत्रिका निकाली जाए, या फिर पुरस्कार दिया जाए। पत्रिका में ख़र्च आठ-दस लाख का है—मगर उनके व्यक्तित्व के सारे पहलू समेटे जा सकते हैं। पुरस्कार छोटा-मोटा देने का कोई अर्थ नहीं है। कम-से-कम पचास का हो। उसके लिए कुछ पैसे जमा किए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकते हैं और उसके इंटरेस्ट से पुरस्कार का काम हो। क्योंकि एक बार शुरू करने के बाद उसे चलना ही चाहिए। और अगर पत्रिका की ही बात है तो अभी और तत्काल ही तय करना होगा। लालानी जर्मनी गए हैं, आने के बाद ही हमारा अनुबन्ध होगा। अगर उससे पहले ही चीज़ें तय हो सकें तभी मैं उधर से हटने की बात सोचूँगा क्योंकि वहाँ मुझे अपनी स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं लगती। यही डर नहीं होता तो शायद रामाधारजी से तय कर लेता। मगर मुझे पता था कि वह उतनी स्वतंत्रता दे नहीं सकते थे। अगर तुम सोचते हो कि इतने की व्यवस्था कर सकते हो तो बताना। उसने अगले शनि को आने को कहा है। लेख लेकर और इस निर्णय को लेकर...

मैं जानता हूँ कि शुद्ध तुक्का है, वह आठ-दस लाख का निर्णय न सात दिनों में ले सकता है, न पैसे की व्यवस्था कर सकता है। ऐसे चमत्कार कम-से-कम मेरी ज़िन्दगी में नहीं होंगे। मगर मान लो, थोड़ी देर के लिए मान लो, ऐसा हो भी जाए तो क्या होगा ? कहकर तो गया है कि आपको पूरी स्वतंत्रता होगी और मैं जानता हूँ कि अगर यही रहे तो शायद मुझे पूरी स्वतंत्रता होगी—मैं ले लूँगा। मगर वहाँ बाई साहब, यानी दिनेश नन्दिनी हैं और उनकी अपनी साहित्यिक महत्त्वाकांक्षाएँ हैं : या तो वे इसे अपना प्रचार-पत्र बनाने की कोशिश करेंगी या फिर अपना माउथ-पीस। इस पर तो हम दोनों ही सहमत हैं कि जैनेन्द्र जी इसमें नहीं रहेंगे। शायद वैदिक भी नहीं रहे। जिन चार आदमियों के नाम उसमें बताए, उसमें मैं, बाई साहब, स्वामी अग्निवेश का ही नाम था, शायद वैदिक नहीं था। अच्छा, मान लो, वह तैयार हो जाता है, तो क्या मैं पंचप्रकाशन को छोड़ दूँगा ? मुझे लगता है कि अपने भावी सम्बन्धों की दृष्टि से मुझे छोड़ देना चाहिए। जब वे सारे काम अपने ढंग से ही करना चाहते हैं तो किसी और व्यक्ति को रख लें। हालाँकि यह धोखा देना लग सकता है—मगर जब आप काम अपने ही ढंग से करना चाहते हैं, तो करें...मगर कहाँ होगा यह चमत्कार... ?

12.9.84

बहुत पहले शायद 29.10.53 (या 56) को मैंने एक अनुवाद समाप्त किया था, चेख़व के लघु उपन्यास 'डुएल' का। नाम रखा था, 'द्वन्द्व-युद्ध'। पिछले दिनों टाइस-पेपर या कहूँ, पतंगी काग़ज़ों की तीन-चार इंच चौड़ी पट्टियों का एक पुलिन्दा मिला और मैं खुशी से उछल पड़ा। यही तो उस अनुवाद की पांडुलिपि है। मुझे याद है, यह मैंने दिया कलकत्ते में रामपुरिया प्रकाशन के लिए ललित कुमार शर्मा 'ललित' को। कलकत्ते जाने के लिए ख़र्चे का जो प्रबन्ध किया था, वह इस 'द्वन्द्व-युद्ध' और 'चेख़व : एक इंटरव्यू' से ही निकाला गया था। शायद इसके बदले एक टाइपराइटर ओलिवेत्ति का लिया था। ख़ैर, अब सब याद नहीं है। ललित के पास इस पुस्तक के प्रूफ़ भी देखे। फिर पता नहीं क्या हुआ ? जो संशोधित या दूसरी प्रति दी थी, वह खो गई या ललित ने इधर-उधर कर दी। बहुत दिनों से मन में था कि अपने को लिखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए मेज़-कुर्सी का अभ्यस्त इसी अनुवाद को संशोधित करते हुए बनाऊँगा। इसके बहाने कुछ लिखूँगा तो बैठने, लिखने और लम्बे समय तक रचना के साथ रहने का अभ्यास बनेगा। जहाँ तक मुझे याद है, 'उखड़े हुए लोग' लिखने से पहले (या बाद में) ही मैंने यह काम उठाया था, और आगरे में सत्ते वाले कमरे में पूरा कर डाला था। कैसी एक-सी लिखाई है और सस्ते होने के बावजूद कैसे एक जैसे काग़ज़ हैं। अपनी पुरानी पांडुलिपियाँ देखकर सचमुच कितनी खुशी होती है। काश, 'उखड़े हुए लोग' की पांडुलिपि मिल जाए! मुझे मालूम है, एक बहुत बड़ा कैलेंडर था और उसे मैंने फाड़कर बराबर काग़ज़ बनाए थे—चिकने मोटे। उन्हीं के पीछे लिखा था, वह उपन्यास। अब खोनेवाली पांडुलिपियों में सिर्फ़ एक अनुवाद और है और उसका कोई पता नहीं है। वह शायद 'फ़ादयेव' का कोई उपन्यास था और उसके शीर्षक में कहीं 'हार्ट' शब्द आता था। ढाई-तीन सौ पन्नों का होगा।

बहरहाल, आज से इस उपन्यास के अनुवाद-संशोधन का काम शुरू कर दिया है। देखता हूँ कि सुबह 'अक्षर' आने से पहले अपने लिए दो घंटे निकालना भी बहुत मुश्किल है। पाँच बजे उठकर सवा पाँच से मेज़ पर बैठो तो पौने छह के आसपास चेतराम मूर्ख को उठाने का सिलसिला। फिर चाय-पाइप यानी पेट साफ़ करने के प्रयास, अख़बार, शेव, कसरत, नहाना, नाश्ता। पिछले बीस दिनों से टेलीफ़ोन मरा पड़ा है, इसलिए नौ बजे तक मेज़ पर बैठो। कुछ पढ़ते-लिखते, साढ़े दस-ग्यारह और यहाँ आने क़ी तैयारियाँ। आज ज़िद करके घंटा-सवा घंटा बैठा तो गर्दन में दर्द का अहसास। यानी अगर रोज़ बैठूँगा तो यह साली स्पांडिलाइसिस तंग करेगी। ख़ैर, देखते हैं। कल जैसे-तैसे रामाधारजी के व्यक्तित्व विश्लेषण वाला लेख पूरा कर लिया। कुछ लम्बा हो गया है और बेहद असन्तोषजनक है। फिर कभी रिवाइज़ करूँगा तो देखूँगा।

सुबह अनुवाद का पहला वाक्य पूरा भी नहीं किया था कि मन्नू के रोने की आवाज़ सुनाई दी। जाकर चुप कराया। कारण कुछ भी नहीं बताया। मगर हम लोगों के बीच इधर पन्द्रह-बीस दिनों से भयानक तनाव है। इधर सिर्फ़ काम की बातें होती हैं। कारण तो मैं जानता हूँ मगर क्या करूँ? पिछले काफ़ी समय से इस संयोग को देख रहा हूँ कि कुछ बानक ऐसी बनती है कि जब मैं अपने को लिखने में लगाना चाहता हूँ तभी मन्नू को वे—शायद सच्चे—कारण मिल जाते हैं कि घर में तनाव और संवादहीनता की स्थिति बन जाती है। कभी-कभी लगता है कि घर में अगर कोई आता-जाता न रहे तो हम दोनों ही घर में कैसे ज़िन्दगी काटेंगे? आजकल टेलीफ़ोन न रहने के कारण यही स्थिति है। रविवार को सारे दिन कोई नहीं आया। हम लोग विधु के यहाँ लंच करने गए, फिर रात को लालानी के यहाँ।

आज मलिक साहब का जन्मदिन है। इस बार बोले कि मेरी तबीयत न ख़राब होती तो मैं ज़रूर ही यह पार्टी करता। पता नहीं, अगला जन्मदिन मनाने को मिले या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। मेरा मन भर आया। सब मिलाकर आदमी प्यारे ही हैं। इधर अपने-आप मन में निर्णय हो गया है कि अगर लालानी मेरी शर्तों पर अनुबन्ध नहीं करता तो 'हंस' की योजना को फिर स्थगित कर दिया जाए...क्या फ़ायदा हर बार झक-झक हो और कटुता की ऐसी स्थिति आ जाए कि एक-दूसरे से मिलना भी बन्द हो जाए! अभी बात समाप्त कर देना बेहतर है। इधर देखता हूँ कि चोरड़िया भी अपने सुझाव देने लगे हैं। सभी पहले राय, प्रतिक्रिया, अहसास बताने के नाम पर शुरू करते हैं और फिर पैसे के ट्रम्पकॉर्ड पर आदेश देने लगते हैं। सबसे पहला काम तो मैं यह कर रहा हूँ कि पिछले सारे वाक्य भूलकर लेटर पैड पर यह लाइन दे रहा हूँ : 'तीसरी दुनिया के स्वप्नों-संघर्षों की भारतीय कथा-पत्रिका'। मुझे मालूम है, इसी पर हंगामा होगा और मैं बात साफ़ कर दूँगा।

14.9.84

मेरे मन में एक अन्धविश्वास बैठा हुआ है। एक टोटका है। 'द्वन्द्व-युद्ध' के अनुवाद की पुरानी पांडुलिपियों को देखा। वह भी शायद 23-24 सितम्बर, 1953 को ही शुरू किया गया था। उसके हर अध्याय के नीचे तारीख़ है। देखता हूँ, लगभग मूल के दस पृष्ठ रोज़ किए हैं। अनुवाद बहुत बेहूदा, किताबी और कुछ जगहों पर ग़लत है। मगर मैंने किया है और कलकत्ता जाने से पहले उसे करके ले गया था ताकि वहाँ रहने की कुछ व्यवस्था हो सके। अब क़रीब-क़रीब दुबारा नए सिरे से करना पड़ रहा है। अक्सर पुराने को देखने को मन नहीं करता, शायद अब ज़्यादा जल्दी और बामुहावरा अनुवाद करता हूँ। सोचता हूँ कि जब नए सिरे से ही करना है तो इसे ही क्यों? किसी और किताब को क्यों नहीं उठाता? यही अन्धविश्वास है। इस अनुवाद से पहले और बाद मैंने 'उखड़े हुए लोग' लिखा था। मेरी ज़िन्दगी ने नया मोड़ लिया था। रचनात्मकता की एक नई यात्रा शुरू हुई थी। हो सकता है, यह फिर वही चमत्कार करे। कम-से-कम बैठने और लिखने की आदत तो नए सिरे से डालेगा। समय नहीं मिल पाता। सुबह सवा नौ से पौने ग्यारह तक कुल ढाई पन्ने किए। अक्षर में आकर चैप्टर पूरा किया। क्या इसे मैंने किसी भीतरी और रहस्यमय ज़रूरत के तहत उठाया है?

कल सारे दिन घर रहा। हुआ यह कि अरविन्द ने कहा—सोनल का नृत्य है वृन्दावन में। चलिए गाड़ी में। दो-ढाई बजे चलेंगे। सात से नौ तक नृत्य, फिर खा-पीकर लौट आएँगे। मैंने कहा—चलो। मन्नू ने मना कर दिया। मैंने सोचा, घंटे भर को आकर क्या करूँगा। घर ही बैठा रहा। अरविन्द नहीं आया।...सुबह रीटा आई थी और मैंने उसे अपना निर्णय सुना दिया कि मैं 'हंस' से मुक्त हो रहा हूँ। कम-से-कम लालानी अगर अनुबन्ध मेरी तरह नहीं करते तो हट जाऊँगा। जब सारी बातें समझाईं तो वह भी कन्विन्स हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परसों मलिक साहब का जन्मदिन था। शाम को रोहतक रोड पर ड्रिंक्स, खाना सभी था। मन्नू अजित के यहाँ रुक गई थी। मैं पन्द्रह-बीस मिनट को टिंकू की सास श्रीमती खन्ना के पास गया। वे लोग ज़ुबिन मेहता का प्रोग्राम देख रहे थे। उनका छोटा कुत्ता, नन्हा आनन्द लोक में मिलता था। यहाँ पहले भूका फिर जो मुझसे लिपटा तो वही चिपका हुआ सिर पर हाथ फिरवाता रहा। चलते वक्त तो बच्चों की तरह खड़े होकर दोनों हाथों से मेरे पैर को पकड़कर रोकता रहा। छुड़ा दिया तो फिर आ गया। उसका यह प्यार देखकर मन भीग आया।

18.10.84

एक एयरपोर्टनुमा जगह है, लोग भारी-भारी कोट पहने उसमें आ-जा रहे हैं। मैं कहीं बाहर से उन्हें देख रहा हूँ। चारों ओर बर्फ़ की सफ़ेद धूल और सन्नाटा है। फिर जैसे कैमरा घूमता है, एक सड़क घुमाव लेती हुई चली गई है, दूसरी एक बँगले से निकलकर उसमें मिलती है—जैसे पहाड़ी स्थानों पर होता है। सभी तरफ़ सफ़ेद बर्फ़ीली धूप है। मालूम होता है इस क्षेत्र में कर्फ़्यू लगा है। मैं बँगले की सड़क से होकर बाहर की तरफ़ मुख्य सड़क की ओर आता हूँ, तभी देखता हूँ कि मिस्टी के बराबर के छोटे-छोटे गहरे कत्थई रंग के कुत्तों का दल कुछ सूँघता चला आ रहा है। उसके पीछे काला भारी-सा मिलिटरी कोट पहने, पी-कैप लगाए कोई अफ़सर है। वह अपने क़द और रौब में कोई रूसी या जर्मन लगता है। कुत्तों का हिंसक रवैया देखकर मैं एकदम पीछे भागने की बात सोचता हूँ। कुत्ते मेरी ओर बढ़े चले आ रहे हैं। अफ़सर चिल्लाता है, भागो मत, चुपचाप खड़े रहो। शायद इस तरह कुत्ते न झपटें, सोचकर मैं दम साधकर खड़ा हो जाता हूँ। अफ़सर पास आ रहा है। एक छोटा कुत्ता झपटकर उछलता है और मेरी गर्दन में दाँत गड़ा देता है, दर्द नहीं होता लेकिन मैं देख रहा हूँ कि पास खड़ा अफ़सर भावहीन निगाहों से देख रहा है, मना क्यों नहीं करता ? क्या ये कुत्ते मुझे फाड़ डालेंगे...भयानक तनाव और आतंक का माहौल है...

21.10.84

तभी मेरी आँखें खुल जाती हैं और मैं कुत्ते को गर्दन से लटका अभी भी महसूस कर रहा है। बड़ा ही अजीब सपना है। यह पुरानी किसी स्मृति का स्वप्न रूप है या अभी आनेवाली स्थिति का प्रतीक संकेत...यह आशंका है या भावों का आभास... ? बहरहाल, यह सपना देर तक याद आता रहा और मैं इसकी जड़ें अपने पढ़े हुए, देखे, सुने में तलाश करता रहा। पिछले महीने भर मैंने चेख़व के 'डुएल' का अनुवाद। फिर से कर डाला है। वही दिमाग़ में छाया रह सकता है, मगर उसमें तो दूर-दूर तक ऐसा कोई दृश्य नहीं है। न बर्फ़ीली धूल के चमकते अहसास का, और न कुत्तों के स्क्वाड का...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तोष यही है कि यह अनुवाद मैंने 12 सितम्बर को शुरू किया था और बिना एक भी दिन नाग़ा किए 11 अक्टूबर को समाप्त कर दिया। चाहे एक पैरा किया हो, मगर किया रोज़ है। इस बीच ठाकुर साहब तीन-चार दिन रह गए, घनश्याम रह गया। लक्ष्मीनारायणजी, हरि आए, दो बार हेमेन्द्र, रेणु, उसकी साली और बच्चे आए। पहली बार तीनेक दिन रुककर बम्बई गए और फिर लौटकर रामपुर। रंजन आया, उसकी सगाई का हंगामा रहा। यानी दशहरे की छुट्टियों में कुछ असामान्य क़िस्म का हमला रहा। रोज़ पाँच-सात अतिरिक्त लोगों के ही साथ खाया। मगर काम नहीं रुका। इधर 'अक्षर' में भी यह हमला निरन्तर बना रहा। बहुत स्वाभाविक है कि साथ रुकनेवाला यहाँ साथ आता था और साथ ही जाता था। इस बीच में 'हंस' वाली मीटिंगें भी होती रहीं। लगा कि सारी बात मेरे और उनके अनुबन्ध को लेकर ही अटकी है। बाक़ी सब कुछ तो तय हो गया है, बात वहाँ अटक गई कि अलग होने की स्थिति में 'हंस' किसके पास रहेगा और मैं अक्षर पंचप्रकाशन को दूँगा तो मुझे क्या क्षतिपूर्ति मिलेगी। बहुत तरह सोचा और बात ही नहीं बन रही थी। फिर अजित की सलाह पर मैंने उन्हें ऑफ़र दे दिया कि सिर्फ़ छह महीने के नोटिस की बात रखिए...मैं साल भर काम करूँगा या बीस साल। पैसे भी लालानी ने प्रतिवर्ष के हिसाब से भर दिये हैं। उस समय सभी लोगों ने इस ऑफ़र की तारीफ़ की और कहा गया कि अब सब कुछ उन्हीं लोगों के हाथ में है। इससे यह भी तय हो जाएगा कि देरी किसके कारण थी।

एक लड़की है—सीमा गोयल। मन्नू से मिलने आती थी। उसके न माँ है, न बाप। ताऊ के यहाँ सुजान सिंह पार्क में आकर रहती है। ताऊ नहीं है, उनकी सिर्फ़ दो लड़कियाँ और ताई हैं। वाई.एम.सी.ए. में बिज़नेस मैनेजमेंट और सेक्रेटेरियल कोर्स कर रही है। हिन्दी में लिखने का शौक़ है और कॉन्वेंट में पढ़ी है। सीधी, समझदार और सुरुचि-सम्पन्न लगती है। बी.ए. किया है। हिन्दी टाइप सीख लिया है, अभ्यास नहीं है। मुझे अपने और पत्रिका की दृष्टि से सभी तरह उपयुक्त लगती है। एक तो सारे काम बहुत जल्दी सीखेगी। शाहदरा और जनकपुरी से आनेवाली लड़कियों जैसी घामड़ नहीं होगी। प्रिंसिपल की बेटी है इसलिए स्तर और रखरखाव दूसरी तरह का रहेगा। ऑफ़िस में रहेगी तो लगेगा कि हाँ, कोई है जो टेलीफ़ोन पर सूचनाएँ ले-दे सकती है, पढ़े-लिखे लोगों के बीच बात कर सकती है और मेरी अनुपस्थिति में सभी कुछ सँभाल सकती है। माँ-बाप नहीं हैं, इसलिए एक ख़ास तरह की ज़िम्मेदारी और कर्तव्य-बोध तो होगा ही। हो सकता है, लिखने की प्रतिभा का भी विकास हो जाए और 'हंस' के सम्पादकीय विभाग में भी ले लिया जाए। हिन्दी प्रदेश की है इसलिए भाषा-ज्ञान होगा। वाई.एम.सी.ए. का प्रशिक्षण। निश्चित रूप से अंग्रेज़ी में उसे ज़्यादा स्कोप और अर्थ की गुंजाइशें हैं। मगर मेरा स्वार्थ और दूरअंदेशी कहती है कि यह लड़की मेरी सहायिका, हंस की दृष्टि से सबसे अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयुक्त रहेगी। इसके लिए चाहे चार-छह महीने इसे ट्रेनिंग जैसी ही देकर क्यों न तैयार करना पड़े, इसे छोड़ना नहीं चाहिए। यह तभी हो सकता है कि जब उसे तुलनात्मक आर्थिक साधन दिये जाएँ, सुरक्षा, सम्मान, अपनापन और व्यक्तिगत प्रतिभा के लिए स्कोप दिया जाए। अफ़सोस यही है कि ऐसी लड़कियाँ अंग्रेज़ी क्षेत्र में ही जाकर खो जाती हैं क्योंकि वहाँ पैसा है, ग्लैमर है और वह चमकदमक या आगे के अवसर हैं जिनके लिए हर लड़की ललकती है। कहाँ चमक-दमकवाला किसी अंग्रेज़ी कम्पनी का पॉश, दफ़्तर और उसके रिसेप्शन पर बैठी स्मार्ट लड़की और कहाँ मेरा या हंस का दफ़्तर आनेवाले फटीचर लेखक और साथ काम करनेवाले अंकल लोग। मगर हो सकता है, उसे इस दिशा में कुछ गम्भीरता नज़र आए और इस बनावट की लड़की है तो इधर आएगी ही। थोड़ा-सा कौशल और बेईमानी तो लगा ही रहा हूँ। अगर फिर भी चली जाए तो भाड़ में... !

26.10.84

आज जब फ़ोन पर सीमा ने कहा, उसके लिए दरियागंज आना मुश्किल होगा तो मैं भी सख़्त हो गया। वह वाई.एम.सी.ए. का कोर्स नहीं छोड़ना चाहती, लेकिन टाइप के अभ्यास के लिए सोचा यह था कि वह एक-डेढ़ के बाद यहाँ आ जाया करे। वातावरण से परिचित होगी, फिर बाद में 'हंस' में ले लेंगे। शायद उसने घर में बात की होगी। लगता है, वे लोग तैयार नहीं हैं। अभी जब उसने कहा कि मैं दरियागंज नहीं आ सकूँगी तो मैंने भी कहा कि फिर तुम 'वाया' में कैसे काम करती? दरियागंज तो तुम्हें आना ही होगा। जगह दरियागंज हो या नेहरू प्लेस—अगर बाहर जाकर काम करना है तो वहीं आना होगा। यही नहीं, दस से छह या पाँच तक रुकना भी होगा। अगर तुम्हारे दिमाग़ में यह साफ़ नहीं है तो कैरियर वाली बात मत सोचो। नौकरी कोई भी करोगी तो घर से बाहर आना तुम्हारी मजबूरी है। इसलिए अब सोच लो। और मेरा वह अनुवाद वापस कर दो। या तो यह लड़की मूर्ख है या अपने को बहुत लगाती है। इसकी नियति यही है कि किसी आधुनिक दफ़्तर में क्लर्क, स्टेनो या रिसेप्शनिस्ट होकर रह जाए। पत्रकारिता या पत्रिकाओं की दुनिया के लिए यह नहीं बनी है।

इस दीवाली पर सिर्फ़ दो बार खेला। परसों और कल। न हारा, न जीता।

7.11.84

31 जनवरी को इन्दिरा गांधी की हत्या पर सुनते हैं कमल हासन अभिनेता ने एक बहुत अच्छी बात कही थी, "विश्वास ही पत्थर को भगवान बना देता है और विश्वास ही आदमी को पत्थर।" निश्चित रूप से यह बात उसने धार्मिक विश्वास के लिए कही होगी। इन्दिराजी का मैं भयानक आलोचक रहा हूँ लेकिन जिस तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी अपनी सिक्योरिटी गार्ड के दो सिखों ने उन्हें गोलियों से भूना, उसने तो जैसे भीतर तक चूलें हिला दी हैं। सुनते हैं, एक ने पहले रिवॉल्वर से गोली मारी, तभी दूसरा आ गया और उसने सामने से सारी मशीनगन खाली कर दी। मृत्यु भले ही शाम को छह बजे घोषित की हो, मगर लोगों का कहना है कि रेडियो मास्को और बी.बी.सी. ने 11 बजे ही प्रसारित कर दी थी। अब लोग डॉक्टरों के हवाले से कहते हैं कि वे मरी हुई—एकदम लुगदी पहुँची थीं और डॉक्टर उनकी शक्ल-सूरत ठीक कर रहे थे कि उन्हें जनता के सामने रखने लायक बनाया जा सके।

और उसके बाद जो प्रतिहिंसा का नंगा नाच हुआ है, एक-एक सिख को जिस तरह मारा, जलाया, टुकड़े-टुकड़े किया गया है कि इसे सिर्फ़ संहार का ही नाम दिया जा सकता है। करोड़ों की सम्पत्ति जलाई गई, लूटी गई और बर्बाद हुई। लोग कहते हैं, दो-ढाई हजार सिख मारे गए। भीड़ के लिए इतना काफ़ी था कि आदमी सरदार है। लोग चीखते रहे हैं, बिलबिलाते रहे हैं और उन्हीं की पगड़ियों से उनके हाथ-पाँव बाँधकर मिट्टी का तेल छिड़ककर उन्हें जला दिया गया है। बाप के सामने बेटे जलाए और कत्ल किए गए हैं। ट्रेनों में, सड़कों पर, घर में। मैं अगले दिन अरुणा को लेने गया था, लॉरेंस रोड और लगा, जैसे एक साक्षात् नरक भोगकर लौटा हूँ। क्या लंका-दहन हुआ होगा!

27.11.84

परसों रात, यानी कल सुबह 2.50 पर मन्नू की उड़ान थी, लुफ़्ताहंसा की। हम और दिनेश छोड़ने गए थे। ठीक साढ़े बारह बजे निकले रात में। पौने दो बजे जब वह इमिग्रेशन और कस्टम में चली गई तो लौट आए। आकर सोने की कोशिश की, मगर गहरी नींद नहीं आई। असल में सारे दिन लोग आते रहे मन्नू को विदा करने।

'तीसरी दुनिया की महिला लेखिकाओं' का सम्मेलन है—कोलोन में 28 को। सोचा, क्यों न मन्नू आसपास के देशों को भी देख ले। साहित्य अकादेमी के साथ एक पत्र वियना में शीलेन्द्र को भी लिख दिया था। तब पता चला कि अचानक आई.सी.सी.आर. का चक्र चल दिया है, और किराए तथा कोलोन को छोड़कर वे सारी यात्राएँ और आतिथ्य स्वीकार करने को तैयार हैं। नजारेथ का पत्र था कि इस सिलसिले में डॉ. शशि त्रिपाठी से मिल लेना चाहिए। मिले, उन्होंने मुखर्जी को सौंप दिया और फिर चक्कर लगे टॉमस कुक के। पासपोर्ट, 16 नवम्बर को मिला। टेलीफ़ोन ख़राब था, वह ठीक कराया। सब जगह के प्रबन्ध किए। बाहर से अनेक टेलीफ़ोन आए। दो बार वियना से विमला पंडित (सुकुमारन) ने फ़ोन किया। दो-तीन बार लन्दन से विलियम ऐश का आया, रक्षतपुरी का आया, बब्बू का आया। पिछले दस दिन भयानक तनाव में गए। मन्नू को लग रहा था कि उसकी कोई तैयारी नहीं हुई है। न कपड़े इत्यादि को लेकर, न बोलने की सामग्री को लेकर। जो मिलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोप, ख़ासतौर से वियना की ठंड की बात करता। वहीं से जूते, वहीं से कोट, लोगों को भेंट देने के लिए चीज़ें—कुछ ऐसी धमाचौकड़ी रही कि दो-तीन दिन पहले से मुझे नीम-बेहोशी सी आती थी। भीतर चेतना रहती थी कि मैं जागा हुआ हूँ और फिर आँख खुल जाती थी। पर कोई टेंशन नहीं था। मन्नू को तो उतनी ही परेशानी थी जितनी टिंकू की शादी में रही होगी। इस दौरान राजी ने बहुत मदद की—मानसिक रूप से। चलो, एक बार वह भी विदेश का चक्कर लगा आए।

28.11.84

पिछले दिन लेखकों, कलाकारों, अभिनेताओं और रंगकर्मियों ने एक शान्ति जुलूस निकाला था। साहित्य अकादेमी में जमा हुए। वहीं अचानक पैट्रियॉट वाले मिश्राजी भी आ गए। अपने आप ही बोले—"अब हम लोग तैयार हैं। पत्रिका की बात तय कर लेते हैं।" इस विषय में हमने भी कुछ सोचा है। मैंने पूछा, "हिन्दी किट आ गया।" बोले—"शुरू में हैंडकम्पोज़िंग ही रखेंगे, ऑफ़सेट से छापेंगे। चार-छह महीने में वह भी आ जाएगा।" मैंने कहा, "मन्नू चली जाती है, फिर मिल लेंगे।" बात वहीं समाप्त हो गई। चूँकि इधर से मुझे कुछ ख़ास तैयारी नहीं लग रही, इसलिए मैंने सोचा—चलो, यह भी सही। उमराव सिंह चोरड़िया से बातें हुईं। वे बोले—आप उधर कर लो। वे प्रोफ़ेशनल लोग हैं। अगर वे कर रहे हों, तो ठीक है। अभी लालानी से बात करने की ज़रूरत नहीं है। फिर प्रमिला के लड़के की शादी में 24 को कन्हैयालाल पटावरी मिले। उन्हें मैंने सारी स्थिति बताई। किस तरह सारा ग्रुप बिखर गया है और मैं आर्थिक संकट में आ गया हूँ। इस बार वे नहीं मिलेंगे, उन्हें मद्रास जाना है। शायद आगे बात हो।

मन्नू के जाने के बाद परसों मैंने सुबह मिश्राजी को फ़ोन किया। बोले—दिन में फ़ोन करके बताऊँगा। फ़ोन या सूचना नहीं आई। आज तक। मैं लक्ष्मण टंडन की बात याद कर रहा हूँ। वे बोले—ऋषि को मैं बहुत पहले से जानता हूँ। यह उसका लटका है, पहले बात शुरू करेंगे, फिर लटका देंगे ताकि अगला ही पहले फ़ोन करे। पता नहीं, इसमें उनका कौन-सा बड़प्पन तृप्त होता है! ख़ैर, इस बार मैं बात नहीं करूँगा।

22 नवम्बर को हमारी पच्चीसवीं वर्षगाँठ थी शादी की। पहले कुछ भी करने का इरादा नहीं था। फिर मिश्राजी, बबली, अजित, स्नेहजी, कृष्णाजी। फिर आ गए शीरीन, उसके माँ-बाप, टिंकू-दिनेश—ख़ासा जमावड़ा हो गया। बातें राजनीतिक ही हुईं और सार्थक हुईं। मैंने व्हाइट हॉर्स की बोतल निकाल ली थी। सब मिलाकर बहुत दिनों बाद अच्छा लगा था कि शाम बीती। खाना-पीना। बहस। उस दिन मैंने मिश्राजी से कोई बात जान-बूझकर नहीं की।

कल मैं यहाँ से सारे पुराने पत्र निकालकर ले गया। शाम को त्यागी और धीरेन्द्र आ गए थे। सुबह खोलकर सब पढ़ता रहा। तीस-बत्तीस साल की यात्राएँ कैसी विचित्र होती हैं! मन हुआ, वहीं पहुँच जाऊँ या बुला लूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2.12.84

29 तारीख़ से एक कहानी लिखने में लगा हूँ। नाम नहीं तय किया है। कुछ सच्चाई है और कुछ फ़ैंटेसी। बाहर की इस उथल-पुथल और हंगामे की दुनिया में ऐसी व्यक्तिगत और निजी कहानी लिखने पर खुद आश्चर्य कर रहा हूँ। यह क्या फ़िनॉमिना है। इस समय तो मुझे बाहरी स्थितियों पर कुछ लिखना चाहिए था। मगर नहीं—यात्रा उलटी हो रही है, भीतर अपने अन्तर्मन में और फ्रस्ट्रेशनों में। वही सेक्स के दिवास्वप्न हैं। यह और भी विस्मयजनक इसलिए भी है कि अभी मैंने राजीव गांधी के नाम खुला पत्र लिखा है और उसमें देश की स्थितियों को साहस और बेबाकी से समझने की कोशिश की है। कट-पिटकर यह पत्र कल के जनसत्ता में आया है। पता नहीं क्यों, मैं इस 2 दिसम्बर के 'जनसत्ता' की बहुत ही बेचैनी से इन्तज़ार कर रहा था। लगता था, जैसे इस पत्र के आते ही देश में तहलका मच जाएगा। लगातार फ़ोन आएँगे। लेख देखा, तो तबीयत ठंडी हो गई। 'जनसत्ता' रविवारी के मुखपृष्ठ पर था। मगर मंगलेश ने इस बुरी तरह काट दिया है कि सारे नाम निकाल दिये हैं। खूबसूरत सेंटेंस छोड़ दिये हैं। और मेरे हिसाब से लेख में कुछ भी नहीं रह गया है। मगर सबसे पहले बधाई का फ़ोन आया शर्माजी का। फिर राजी का। रात को अरविन्द और मुरारीलाल का। त्यागी का दो बार। सोमदेव की पत्नी का आया। आज लगता है, कुछ लोग सम्पर्क करेंगे। लगता है, पत्रों में प्रतिक्रिया ज़बर्दस्त होगी। श्रीकान्त जैसे लोग बहुत भन्नाएँगे।

तो एक तरफ़ तो यह लेख और दूसरी तरफ़ मन की भीतरी गुफाओं में नारी शरीर को सहलाना। मुझे तो यही सन्तोष है कि चलो लिखना तो शुरू हुआ और मैं लम्बी कहानी में जुटा हूँ। कुछ गरिष्ठ हो रही है। अगली बार ठीक हो जाएगी। क्या वह मुझे जड़मूल से झकझोर देनेवाला अनुभव यही इन्दिरा गांधी की मृत्यु और बाद का हत्याकांड था जिसने मेरे रचनाकार को जगा दिया है? और क्या मेरी गिरीशजी के सन्दर्भ में कही हुई बात ही सही है कि आप जहाँ से लिखना छोड़ते हैं—रचना-यात्रा वहीं से शुरू होती है। दिक़्क़त यह है कि इन कहानियों का तो संग्रह भी नहीं बनाया जा सकता। लोग कहेंगे बीस साल बाद लिखना शुरू किया और वह भी सेक्स-कुंठा की कहानियाँ लिखने लगे। उन सारे समाज सम्बद्ध सिद्धान्तों वाले वक्तव्यों और भाषणों का क्या हुआ? तभी से मैं खुद सोच रहा हूँ कि राजीव गांधी के पत्र और विन्ध्या सिद्धार्थ की कहानी का क्या आपसी सम्बन्ध कहीं ऐसा तो नहीं है कि राजीव के पत्र में मैंने इन्दिराजी के बीस सालों का जायज़ा लिया है और फिर अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने अन्तर्मन का—और दोनों जगह सिर्फ़ फ्रस्ट्रेशन ही पाया है? बहुत दूर की कौड़ी है। मगर रचना-प्रक्रिया भी तो कोई कम जटिल मामला नहीं है। पता नहीं, कौन-सी चीज़ कहाँ जाकर जुड़ती है। दूसरी जो चीज़ मुझे चकित कर रही है, वह यह कि क्या सचमुच मन्नू की उपस्थिति ही मेरी रचनात्मकता पर सबसे बड़ा अंकुश है? अब तो ज़िन्दगी का जो पैटर्न हो गया है, उसमें मन्नू बेचारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे ऊपर कहीं कोई दबाव नहीं डालती। भीतर से यह धिक्कार ज़रूर है कि ऐसी रचनाएँ पढ़कर कहेगी, आप अपना इलाज कराओ। यह क्या आपके अवचेतन में गन्दगी भरी पड़ी है? हमेशा सेक्स! अब तो लड़की बड़ी हो गई। ये लड़कियाँ आपकी पुत्रियों की उम्र की हैं। ये सब बातें कितना तराशती हैं आपके लिखने को!

4.12.84

कल मैंने एक स्कूटर के पीछे लिखा देखा, '13 मेरा 7'। पहले समझ में नहीं आया। फिर अचानक लगा, यह लिखा है : 'तेरा-मेरा साथ'। लिखनेवाले की इस सूझ पर दंग रह गया।

11.12.84

वह कहानी 'पोस्टमार्टम' मैंने रात को ही समाप्त कर दी थी। पढ़ने का मन नहीं कर रहा था।'पानी से जिस तरह डरे सग-गज़ीद-असद; डरता हूँ आईने से आदम गज़ीदा हूँ मैं...' ग़ालिब का यह शेर याद आ रहा था। जैसे मैं टाल रहा था कि दुबारा न पढ़ना पड़े। मगर कल सुबह पढ़कर ठीक की। लगा, कहानी में दम और जान ही नहीं है। दुबारा लिखूँगा। जिस लड़की विन्ध्या सिद्धार्थ को केन्द्र बनाकर कहानी लिखी है, वह मेरे सामने खड़ी ही नहीं होती। उसकी शक्ल को मैं सामने ला ही नहीं पाता। अजीब बात है, जब से कहानी लिखना शुरू किया है, हर युवा लड़की को ग़ौर से देखता हूँ और ऐसा नहीं है कि ऐसी लड़कियों से बातें न की हों, मगर ऐसी पढ़ी-लिखी लड़की जो कभी हॉस्टल में रहकर पढ़ी है, फिर एक क़स्बे में जाकर रहने लगी है और अब दिल्ली के लेखक से मिलने आई है—उसकी शक्ल, रूपरेखा, हाव-भाव, बातचीत का तौर-तरीक़ा क्या हो? अब आगे कैसे लिखूँगा? मैं तो बिना कल्पना के पूरा चित्र लाए लिख ही नहीं सकता। इस कहानी को दुबारा लिखूँगा। सिर्फ़ एक व्यक्ति को पढ़ने को दी है, किसी और को देने की हिम्मत ही नहीं होती। पता नहीं क्यों, लगता है, वह शायद इसे पढ़ने के बावजूद ग़लत नहीं समझेगी।

इस बीच मेहमानों का घिराव रहा। अनिल बोर्डिया की लड़की बुकलू की शादी क्या हुई, मेरे यहाँ जैसे मुसीबत आ गई। गट्टू साहब ठहरे तो वहीं उनके द्वारा तय किए गए गेस्ट हाउस में, लेकिन मैं दो घंटे को दारू पिलाने ले आया। प्रसन्न हो गए। लेकिन बेनी साहब का प्रबन्ध वहीं था, मगर आ धमके मेरे यहाँ। वहाँ हम लोग लेने गए थे, स्टेशन पर वे मिले ही नहीं। 'अब हम तो यहीं ठहरेंगे...' डट गए। आज उन्हें जयपुर जाना था, मगर टिकट कराया है कल का। असल में उन्हें चौबीस तक इधर ही रहना है, सो टाइम बिता रहे हैं। मुझे डर है कि कहीं गट्टू साहब भी न आ डटें। ये रिटायर्ड लोग हैं और इन्तहा फुरसत में हैं। आते इस इरादे से हैं कि लोग इन्हें खाने और चाय पर बुलाएँगे, लाने-ले जाने के लिए गाड़ी भेजेंगे। लगता है, दिल्ली में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी को इतनी फुसरत नहीं है। नतीजे में मेज़बान के सिर ही समय काटते हैं। पूरा ध्यान और सेवा न मिलने पर नाराज़ होते हैं। बेनी साहब पूरा ध्यान चाहते हैं। मैं उन्हें कई तरह बता चुका हूँ कि मुझे लिखना है मगर वे हैं कि पूरे 'मेहमान' हैं, और सत्ते की तरह 'न्यू सेन्स' मेहमान हैं। यह अनुभव मुझे पहले भी है। चीज़ों को फैला देंगे। एक ही काम के लिए बीस बार नौकर को बुलाएँगे—हमेशा उसे घेरकर रखेंगे। यह तौलिया फैला दे, गरम पानी दे, इसे ज़रा ठंडा कर ला, नमक ले आ। शीशी बन्द कर दे। फिर इसके साथ ही—"अरे, अभी तक खाना नहीं बना—गरम-गरम फुलका दे, पापड़ सेंक ला, ज़रा इसमें छौंक लगा दे।" मुझे लगता है, तीन नौकरों को वे अकेले व्यस्त रख सकेंगे। फिर थोड़ी-थोड़ी देर बाद—यादवजी, ये नहीं हुआ...यादवजी, वह नहीं हुआ। यादवजी, नाश्ता नहीं बना। नौकर को सुबह से तुम नचा रहे हो, नाश्ता क्या यादवजी ससुरे खुद बनाएँगे? बहुत ही चिढ़ छूटती है और कुछ सख़्त बात कहने को मन करता है। जब तक वे हैं, मजाल है दूसरा आदमी अखबार भी शान्ति से पढ़ ले। यादवजी, कपड़े नहीं सूखे। यादवजी साले ने क्या मना कर दिया था कि कपड़े न सूखें...? उनकी खाने, आराम और दूसरी भौतिक चीज़ों के लिए ललक, सब मिलाकर मैटीरियलिस्टिक दृष्टिकोण देखकर बड़ा घिनौना लगता है...यह क्या ज़िन्दगी भर कभी इन बातों से ऊपर नहीं उठ पाएँगे...? डर यही है कि कहीं यही तय न कर लें कि चलो, पन्द्रह दिन यहीं रह लें। उस मामले में गट्टू साहब ज़्यादा आत्मनिर्भर और स्वयंसेवी मेहमान हैं। इन्हें मैं बता चुका हूँ कि यह लड़का मूर्ख है, मन्द है और अपनी तरफ़ से कुछ भी नहीं करेगा। मगर वे तो खुद इतने आत्मग्रस्त हैं कि अपने से अलग कुछ सोचते ही नहीं। अब तो सोच डाला हूँ कि वे कलकत्ते में कितना बड़ा न्यूसेन्स हो गए होंगे...

शुक्र के दिन को (7) आई सन्तोषजी—रामाधारजी की दूसरी पत्नी। उन्हें बहुत-कुछ कहना था। कभी मैंने उनके सामने अपनी चिन्ता प्रकट की थी कि रामाधारजी, पता नहीं, अन्तिम समय में क्या कहना चाहते थे। एक दिन उनका फ़ोन आया कि मुझे पता है, क्या कहना चाहते थे। और वह दो बार मुझे बुला चुकी थीं बंगाली मार्केट के अपने फ़्लैट में। वे ऐसे समय बुलाना चाहती थीं जब नन्हू—यानी सुधांशु न हो। लड़का बहुत सुन्दर है। ख़ैर, फिर सन्तोषजी ने कहा, मैं ही आपके पास आऊँगी। पिछली बार वे बता रही थीं अपने और रामाधार के परिचय की कहानी—संगीत के प्रति अपने समर्पण की कथा। आजकल पूजा-पाठ, कीर्तन इत्यादि बहुत करती हैं। कहती हैं—उन्हें दर्शन होते हैं। ख़ैर, यह सब मुझे बकवास लगता है। आज उसने जो कुछ बताया वह था रामाधार और नीलिमा के बीच बढ़ती हुई कटुता...किस तरह वह बदतमीज़ी से बोलती है, किस तरह 'ब्लडी बास्टर्ड' कहती है, कैसे खुद इसे एक बार 'विच' कह दिया था फ़ोन पर...कैसे मन्नू पर जादू किया हुआ है, कैसे उनके आपस में शारीरिक सम्बन्ध हैं, कैसे कक्कू के बाहर जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही दोनों होटलों में घूमते हैं। कैसे सन्तोष ने उनके पीछे डिटेक्टिव लगाकर सारी स्थिति का पता लगाया कि कभी ताज इंटर कॉन्टिनेंटल जाते हैं तो कभी सैंटोर...घंटों कमरे में बन्द रहते हैं, कैसे नीलिमा रोती है कि मैं उसके बिना नहीं रह सकती, कैसे सन्तोष ने कक्कू की नौकरानी लूसी को पटाकर 'सच्चाइयों' का पता लगाया। लगा, औरत बहुत तेज़ है। स्वाभाविक असुरक्षा और सामाजिक लांछन के जिस धरातल पर उसे रहना पड़ता होगा, उसमें चौकन्नी न रहे तो शायद जीवित रह सकना ही मुश्किल हो...पहले जैसी आत्मीयता थी, वह कैसे समाप्त हो गई है और वहाँ क्या-क्या अपमान होते हैं। आख़िरी दिनों में कैसे सत्या ने नीलिमा से मिलकर रामाधार और इनका अपमान कराया, कैसे एक बार नीलिमा ने कह दिया कि तू तो रखैल है, कैसे हिम्मत हुई आने की ? इसने भी कह दिया—तुम्हारी माँ, आठवीं जगह कैसे आ गई...चाहे यह सन्तोष हो, या दिनेश नन्दिनी, दोनों महिलाओं को अपने होने का जस्टिफ़िकेशन यही लगता है कि डालमिया और रामाधार दोनों ही इधर-उधर भटकते रहे हैं, बीसों औरतों से सम्बन्ध रखते रहे हैं, वह तो हमारे आने के बाद ही एक ठीहे पर टिके हैं। झगड़ा प्रॉपर्टी को लेकर भी होगा, ऐसा लगता है। उधर नन्हू, नीलिमा का दूसरा पति है और सब कुछ कक्कू की जानकारी में ही होता है। कैसे यह बर्दाश्त करता है ? नीलिमा कक्कू से बड़ी ही है, नन्नू पन्द्रह साल छोटा है। ख़ैर, मैंने तो यही समझाया कि धैर्य से देखें। नन्नू लौटकर आएगा। नन्नू के गलत सम्बन्ध हैं, सही है, मगर इसे भी काट लेंगी तो उस घर से हर सूत्र टूट जाएगा, और इस समय सूत्र बनाए रखना ज़रूरी है।

18.12.84

कल मन्नू आ रही है। गुस्सा आ रहा है कि बीच में कोई सूचना ही उसने नहीं दी। कल आने की बात भी कस्टम-कमिश्नर मिश्राजी ने भिजवाई थी। वे कहीं उसी समय ब्रुसेल्स में थे और मन्नू ने कहा कि वह लन्दन से सीधे लुंफ़्ताहंसा' की फ़्लाइट से चलेगी और दस बजे पहुँचेगी। विष्णु खरे ने बताया कि कॉलोन में उसकी तबीयत ख़राब हो गई थी। पता नहीं, इस ख़राब होने का क्या अर्थ है ? क्या वहाँ का प्रोग्राम बिगड़ गया ? कहाँ-कहाँ गई, क्या-क्या हुआ, कुछ भी पता नहीं। इधर टेलीफ़ोन साला लगातार ख़राब रहा है, कोई सम्पर्क भी करे तो कहाँ ? मगर उसके पास तो आसपास के नम्बर हैं। ख़ैर, कल देखते हैं।

इस बीच पराक्रम सिंह जी आए, गट्टू साहब आए, लक्ष्मीनारायणजी आए। शादियाँ हुईं, दारूबाज़ी चली। मगर उस कहानी 'पोस्टमार्टम' के बाद पता नहीं क्या हुआ है कि क़लम छूने का मन नहीं करता—जैसे विरक्ति हो गई है! मन में भी कुछ नहीं है कि लिखने की बात सोचूँ। बस, उसी कहानी को बैठकर दुबारा लिखूँगा। पता नहीं, बनेगी भी या नहीं। इधर बारह तारीख़ को भयानक दुर्घटना जैसे टल गई। हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कि मैं प्रगति मैदान के सामने से आ रहा था। गाड़ी में सामने बैठा था कि गोपाल बोला—ब्रेक फ़ेल हो गया और उसने गाड़ी मोड़ दी दाहिने। धाँय से गाड़ी डिवाइडर में लगी। पहिया इत्यादि सभी कुछ टूट-फूट गया। मुझे अरुण के भतीजे की शादी में जाना था। कपड़े खून से तर हो गए। मैं घबराया नहीं। एक साहब (कोई कुलकर्णी थे) ने स्कूटर पर बैठाया और यहाँ छोड़ गए। ख़ैर, चोट तो क़रीब-क़रीब बिल्कुल नहीं लगी। गाड़ी की ज़रूर चटनी बन गई। उसी दिन इंग्लैंड-भारत के बीच टेस्ट मैच था, इसलिए दिन भर क्रेन का प्रबन्ध नहीं हुआ। शाम को सात बजे क्रेन मिली। यहाँ लाकर डाला। अब शुरू हुई इंश्योरेंस की भाग-दौड़। आज जैसे-तैसे सर्वेयर आया था। बीस-पच्चीस दिन लगेंगे। तब तक स्कूटरों में 12-13 रुपए एक तरफ़ के दो और आओ-जाओ। चलने के कारण कल से कमर में दर्द है। ठंड पड़ने लगी है।

आज ही गिरिराज का उपन्यास 'परिशिष्ट' पूरा किया है। घपला तो है, मगर लगा कि लड़का वयस्क हो रहा है। सँभालने की कोशिश की है। बहुत सन्तोष नहीं हुआ।

22.12.84

हो सकता है, यह वर्ष की आख़िरी प्रविष्ट हो। कल वसन्त बाबू साहब के लड़के—मिट्ठू-संजीव की शादी में हम लोग भरतपुर जा रहे हैं। सुबह गाड़ी से निकलेंगे। कुसुम और प्रिंसू आए हैं। कौन-सी गाड़ी लेंगे मालूम नहीं। छुटकू भी आ रही है। दो गाड़ियाँ जाएँगी। कल शाम की शादी है। वहीं से कलकत्ता। अब कलकत्ता से कब लौटना है, यही देखने की बात है। कोशिश तो करूँगा कि इसी वर्ष लौट आऊँ।...अभी थोड़ी देर में लालानी के प्रोग्राम में सूर्यासोफ़ेटी जाने का प्रोग्राम है। वही अनिसा साबरी...खाना-पीना। आज की रात क़रीब-क़रीब जागते ही बीती है। अरुणा को लौटना था। सुबह मिलने आई थी। शाम को घर पहुँचे तो लक्ष्मीनारायणजी-माधवी आ चुके थे। सत्ते बैठा था। मैं अजित-स्नेह जी के साथ पहुँचा था। कृष्णाजी वहीं थीं। ख़ैर, क़ाफी गप्पें लड़ाईं। ग्यारह के करीब सोए। तीन बजे फिर उठ गए। सब पहुँचे पालम एयरपोर्ट। वहाँ अरुणा के घरवाले थे। विदा वग़ैरह में समय लगा। लौटे पाँच बजे। नींद नहीं आई। अक्षर में ही सो गया। लगता है, इन आठ-दस दिनों न लिखने-पढ़ने की कोई बात दिमाग़ में आएगी, न समय मिलेगा। पता नहीं क्यों, कलकत्ते जाने का मन नहीं करता।

2.1.85

फिर वही नया वर्ष! कितनी बार इस दुहराव से गुज़रना हुआ है? हर बार वही आशाएँ, वही आश्वासन, धिक्कार और संकल्प! क्या फ़ायदा इस सबका? कितना अच्छा होता, आदमी के पास सपने जैसी कोई चीज़ न होती! न उन्हें पूरा करने की धमाचौकड़ी और अधूरे रह जाने की कचोट—जो बीत गया, वही समय अपना। इसलिए इस बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्प यही कि जैसे भी होगा, अपना रचनात्मक लिखने की कोशिश करूँगा। अपने को नया करूँगा, चाहे उसके लिए कोई भी प्रयोग क्यों न करना पड़े।

शायद पिछला वर्ष सामाजिक रूप से अच्छा ही रहा। टिंकू की शानदार शादी हुई, मन्नू विदेश गई और कलर टी.वी. आ गया। व्यक्तिशः रचनात्मक पुनर्स्थापना के लिए मैंने कुछ प्रयास किए। कुछ कहानियाँ लिखने की कोशिश की। कथा-सन्दर्भ संशोधित करना है ताकि नया संग्रह दिया जा सके। नया उपन्यास शायद अभी नहीं होगा। शुरू की ही नोक-पलक ठीक हो जाएँ, यही बहुत है। जो कहानी अभी भी तंग कर रही है, वह है 'पोस्टमार्टम'। सोचता हूँ, मैंने क्यों लिखी ? मन्नू पढ़ेगी तो कहेगी कि पचपन के हो गए, अभी भी मन में वही सब भरा है। आप किसी सायकैटरिस्ट को दिखाओ। अक्सर मैं भी अपने से पूछ रहा हूँ कि एक तरफ़ तो राजीव गांधी को खुला ख़त जैसी रचना, जिसमें देश, व्यवस्था, मूल्यों पर बातचीत है, दूसरी तरफ़ उसी साँस में 'पोस्टमार्टम' सेक्स-फैंटेंसी की कहानी। ये दोनों अपने मूल में कहाँ जाकर मिलती हैं ? क्या यह कहने से बात कुछ साफ़ होती है कि पिछले दिनों मनुष्य की आदिम हिंसा का जैसा बर्बर विस्फोट हुआ, वही व्यक्तिगत धरातल पर सेक्स की आदिमवृत्ति के प्रकाशन में भी कारण बना ?

मानसिक रूप से नए साल में कुछ निश्चिन्तता महसूस होती है और लगता है, अब शायद रचनात्मकता की ओर ज़्यादा ध्यान जाएगा। इन चुनावों में कांग्रेस को ऐसा बहुमत मिला है जो न कभी नेहरू के समय मिला, न इन्दिरा के। प्रान्त के प्रान्त विपक्षियों से साफ हो गए। 508 सीटों में से चार सौ सीधी कांग्रेस के पास। निरंकुश बहुमत। लगता है, जैसे बहुत फड़फड़ाने के बाद बीमार ने हाथ-पाँव हताशा में पटक दिये हों। अब कुछ नहीं हो सकता। उनका जो मन होगा, वही करेंगे। उनसे शायद अब विरोध भी बर्दाश्त नहीं होगा। इस दिशा में कुछ भी करना बेकार होगा। जो भी कुछ अपना करना हो, करो। लगता है, अब थोड़ा स्थायित्व आएगा, नौजवान लोग हैं, शुरू में कुछ करने की कोशिश भी कर सकते हैं। हो सकता है, राजनीति की फ़िज़ूलियात छूटकर ध्यान कुछ अधिक सामाजिक और सर्जनात्मक की ओर जाए...चूँकि संसद में विपक्ष नहीं रह गया, इसलिए पत्र-पत्रिकाओं को ही यह निडर भूमिका निभानी होगी।

व्यक्तिगत और राष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर यह पिछला वर्ष भयानक नाइट मेथरिस अनुभवों का साल रहा है। अभी भी ऐसा लगता है, जैसे कहीं से बहुत ही अपमानित-प्रताड़ित होकर आए हैं और घर में या खुद अपने सामने उस अपमान को स्वीकार करने में डर लगता है।

इस बीच भरतपुर, कलकत्ता हो आए। मन्नू-टिंकू-दिनेश सभी थे। टिंकू-दिनेश जहाज़ से गए और वैसे ही आए। हम दोनों बार ट्रेन से। कलकत्ता जाकर अच्छा नहीं लगता। कहता भी हूँ कि जो भी मित्र आत्मीय हैं, उनसे तो दिल्ली में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुलाकात हो ही जाती है और कलकत्ता इतना आकर्षक शहर रह नहीं गया है कि वहाँ जाने का मन हो...

4.1.85

मन में ऐसी जड़ता, निश्चिन्तता या स्थगन समा गया है मानो कुछ भी नहीं करना। इधर तो ठंड ही दम निकाले ले रही है। फिर भी इसी मौसम में तो मैंने सब कुछ लिखा है। चुनाव के बाद के सारे माहौल और परिवेश के सन्दर्भ में शायद यह बात मन में उठती है, अब तो जो कुछ करना है, वे ही करेंगे। हमारे लिए करने को कुछ भी नहीं है, किए कुछ करना भी नहीं है। जब प्रतिपक्ष था तो लगता था, बोलने का कुछ अर्थ या सार्थकता है, अब क्यों और किसे सुनाने के लिए बोलें? उस बुलडोज़री बहुमत का क्या यही परिणाम होने जा रहा है कि सारी रचनात्मक बेचैनी स्थगित हो जाए...

ठंड इतनी है कि तस्वीर में बर्फ़ और पानी देखकर झुरझुरी आती है।

10.1.85

परसों सुबह घनश्याम का फ़ोन आया कि ब्रजेन्द्र तिवारी की मृत्यु हो गई। अरे, कैसे? ब्रजेन्द्र की? परम नियमित योगाभ्यासी और ज़िन्दगी को लेकर दुनिया भर के सपने पालनेवाला, अपनी आर्थिक प्रगति या समृद्धि से परम सन्तुष्ट ब्रजेन्द्र एकदम ही चला गया? मालूम हुआ, 3 जनवरी को हुई। ब्लड-कैंसर डिटेक्ट हुआ, बम्बई गया, वहाँ से बफ़ैलो, अमेरिका और वहीं मर गया...यानी जानेवालों में हम लोग आ गए...पता नहीं, कौन, कब, टपक ले! ओमप्रकाश जी वाले लेख की पहली कविता याद आने लगी है। पहले प्रकृति और नारी का सौन्दर्यबोध था, आज आपस में बाँधती है मौत की अनिवार्यता, दहशत...अगर कल को मेरे साथ ऐसा कुछ हो जाए तो कुछ भी तो नहीं समेटा गया। सभी कुछ तो बिखरा और अधूरा पड़ा है। कौन समेटेगा? क्या होगा? टिंकू, मन्नू के तो बस का नहीं है...समेटना भी शुरू करूँ तो कैसे और कहाँ से समेटना शुरू करूँ?

अजीब बात है, इस वर्ष दिमाग़ में कोई योजना नहीं है। लिखने की न कोई तस्वीर है और न इच्छा। मुन्ना रेणु के साथ आया हुआ है। एक इंटरव्यू के लिए अहमदाबाद गया है। इस समय उसे पौने पाँच हज़ार मिल रहे हैं। दिनेश मिल में गया तो हो सकता है, हज़ार-डेढ़ हज़ार ज़्यादा मिले। इस उन्नति पर अच्छा लगता है। प्रसन्न है।

30-31.1.85

इधर जान-बूझकर लिखना कम किया है। ऐसा नहीं है कि अपने भीतर झाँकने की ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई। सोचा यही था कि कोशिश करूँगा कि कहानी के सिवा कुछ न लिखूँ। और कुछ लिखने के दबाव को इधर की ओर मोड़ने की कोशिश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करूँ। मगर इधर 'मोहन राकेश की डायरी' छपकर आई तो सारा निश्चय रखा रह गया। कमलेश्वर ने उसमें सारी कारीगरी दिखा दी है। मुझसे ओंप्रकाशजी और विश्वनाथ ने कहा था कि डायरी में कमलेश्वर और राजेन्द्र अवस्थी के बारे में सबसे आपत्तिजनक बातें लिखी हैं। आपसे लड़ाई थी और लड़ाई धीरे-धीरे मनों में जमा हुई थी, इसलिए कटु रिमार्क समझ में आते हैं। इन दोनों से तो सम्बन्ध अच्छे ही रहे हैं। बहरहाल उस पर मैं अलग से लिख रहा हूँ। राकेश के लिखने की तड़प और निष्ठा देखकर श्रद्धा होती है—सारी हरामख़ोरियों के बावजूद... '69 के बाद शायद डायरी नहीं लिखी गई। शायद यही समय है जब वह अपने-आपसे और लेखक सेल्फ़ दोनों से कट गया था। इसके बाद सारा समय तिकड़मों का समय रहा है। अपने को हीरो बनाने का समय रहा है। मैं अब जैसे भी हो, अपने लिखने पर दुबारा आना चाहता हूँ। कल से 'पोस्टमार्टम' कहानी का पुनर्लेखन।

6.2.85

लगता है, जैसे एक पठार से गुज़र रहा हूँ, जहाँ सिर्फ़ सपाट चट्टानें हैं, कहीं पेड़-पौधा या घास-बेल कुछ भी नहीं उगता—ऐसे कैसे चलेगी ज़िन्दगी ? न कुछ याद रहता है, न लिखने के लिए मन में कुछ कुलबुलाता है। अजीब-सा एक सन्तुष्टि-भाव है। कभी सर्दी का बहाना, कभी कब्ज का, कभी किसी छोटी-मोटी बात के हो जाने का सहारा। पन्द्रह दिनों से उस 'पोस्टमार्टम' कहानी को संशोधित करने की बात सोच रहा हूँ। शुरुआत ही नहीं होती।

अब तो लगता है, ज़िन्दगी के अभाव और दबाव ही एक सपने के पूरा न होने की तड़प पैदा करते हैं और वह लेखन का निमित्त बनता है। आर्थिक दबाव महसूस होने बन्द हो गए हैं और घर पर एक अरेंजमेंट जैसा तराश लिया है। मैं और मन्नू दो ही व्यक्ति हैं। कभी कोई आ गया, या शाम को कहीं चले गए—बस, घर के धरातल पर यही 'घटना' है। कुछ विषय हैं जिन पर हम लोग बात नहीं करते, जैसे—मीता या उससे मेरे आजकल के सम्पर्क। ज़्यादातर बात आर्थिक धरातल पर ही होती है। टिंकू-दिनेश अपने काम और जीवन में सन्तुष्ट ही लगते हैं। अक्सर शाम को दारू पीते हैं। पिछले दिनों शानी, दिव्या इत्यादि की तरफ़ गए। कभी-कभी अपना सिर फोड़ने का मन करता है, यह लेखक की ज़िन्दगी है? फिर इसमें और किसी घसियारे ब्यूरोक्रेट की ज़िन्दगी में क्या फ़र्क़ है ?

सपना ? यानी भविष्य ? सचमुच कोई सपना नहीं रह गया है मन में—या भविष्य अपरिवर्तनीय ढंग से निर्धारित हो चुका है ? मैं पिछले दिनों यही सोचता रहा कि आख़िर लिखने की, कहानी या उपन्यास लिखने की बात मेरे मन में क्यों नहीं आती ? क्या बाहर या भीतर चेतना को झकझोर देनेवाला कुछ भी नहीं होता ? पाता हूँ कि बाहर भी बहुत-कुछ है और भीतर भी कम नहीं है। हाँ, इन दोनों को एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिन्दु पर मिलाकर बिजली पैदा करनेवाला महीन तार कहीं टूट गया है। मुझे लगता है कि मेरे लिखने की प्रक्रिया हमेशा यह रही है कि बाहर की कोई बात, घटना भीतर के किसी आधारभूत अनुभव को स्फुरित कर देती है और कहानी अपने-आप रूप लेने लगती है। अब ऐसा होता ही नहीं। या तो भीतर के अनुभव ही ऐसे नहीं रह गए कि बाहर अभिव्यक्ति के लिए समान स्थितियाँ तलाश करें—या जो कुछ बाहर होता है, वह कहीं भीतर गहरे में जाकर कुछ कुरेद ही नहीं पाता। नतीजे में भीतर एक झूठी स्मृतियाँ अलग हैं और बाहर घटनाएँ अलग। जो अनुभव इस तरह के साधारणीकरण खोज सकते हैं, वे सब वर्जित हैं या उनके लिए कहीं न कहीं सफ़ाई देनी होगी। मैं खुद आश्चर्य करता हूँ कि लिखने के नाम पर यही क्यों मेरे दिमाग़ में आता है? क्या यह बात भी सच ही है कि बौद्धिक रूप से आप चाहे जितनी ऊँचाई या दूरियाँ नाप लें, रचनात्मक धरातल पर जब भी शुरू करेंगे तो अपनी पिछली छूटी हुई कड़ी ही उठाएँगे। यानी अपनी रचना-यात्रा आपको रचनात्मकता के ही माध्यम से पूरी करनी होती है। बौद्धिकता या वाग्मिता न उसका विकल्प बन पाती है, न शॉर्टकट...बहरहाल, कुछ भी हो, पर शुरू तो हो। यह एक जगह ही खड़े-खड़े इंजन का धुआँ और सीटी छोड़ते रहना तकलीफ़देह हो गया है।

11.2.85

शायद तीसरी या चौथी बार आज 'नदी के द्वीप' पढ़कर समाप्त किया। नए सिरे से लगा कि सचमुच हम लोगों में अज्ञेय में ही सबसे ज़बर्दस्त प्रतिभा है। कुंठाओं और ईर्ष्याओं के कारण कहते हम जो रहें लेकिन एक-एक शब्द चार सौ पन्ने के उपन्यास का कैसी सावधानी और सरोकार के साथ चुना गया होगा, यह लेखक के नाते मैं महसूस कर सकता हूँ। चकित होना पड़ता है यह सोचकर कि उपन्यास 1951 में प्रकाशित हुआ, यानी तीन-चार साल पहले से तो उस पर काम हो ही रहा होगा। क्या 35-36 की उम्र में हम लोगों में वैसी बौद्धिक तैयारी, अनुशासन और बारीकियाँ थीं? क्या हम लोग विश्व के नवीनतम साहित्य या विचारों से उस तरह परिचित थे? पैंतीस साल पहले क्या हमारे पास अभिव्यक्ति की वह सूक्ष्मता थी? क्या मानसिक स्थितियों की वैसी महीन गतिशील छाया-छवियों को पकड़ने की जद्दोजहद थी? एक-एक ऑब्ज़र्वेशन और अभिव्यक्ति पर चकित होना पड़ा है। अद्भुत संयम और अनुशासन से इस व्यक्ति ने अपने को बनाया है। वैसे सारा उपन्यास भुवन के बहाने अपनी वकालत और जस्टिफिकेशन का ही उपन्यास है। ठंडे और निर्जीव द्वीप कैसे एक-दूसरे तक पहुँचने की कोशिश करते हैं और फिर छिटक जाते हैं। अगर भुवन, रेखा, गौरा ठंडे, बेजान और नकली चरित्र हैं तो उनकी इस विशेषता को अब तक निबाहा गया है। वे कविताओं में जीने, सोचने और बोलनेवाले लोग हैं और अपने द्वीपत्व को लेकर आक्रान्त हैं, अपराध-बोध से पीड़ित हैं, एक-दूसरे की तरफ़ बढ़ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और इंट्रूडर होने की भावना से लौट आते हैं, क्षमाएँ माँगते हैं और कृतज्ञ होते हैं। हर मानवीय जैस्चर उनके लिए इतना कुछ अतिरिक्त है कि उसे सँभाल नहीं पाते। देवशिशु की चतुर्दिक् वन्दना तो है ही...मुझे लगा, कहीं राजी सेठ अपने 'तत्सम' में इससे बहुत भीतर तक प्रभावित हुई है। वैसे अपने को लेखक और बौद्धिक लगनेवाला कौन-सा लेखक अपने समय में उससे प्रभावित नहीं है ? हम सबमें 'नदी के द्वीप' के शब्द प्रयोग, स्वप्निल चरित्र, स्थितियाँ या और दूसरी अनुगूँजें मिल जाएँगी। अपने इस उपन्यास से कितना वयस्क कर दिया था अज्ञेय ने हिन्दी गद्य को...सब मिलाकर कम्युनिज़्म के हौवे से परेशान तो हैं ही। वह भड़ास उन्होंने चन्द्रमाधव के माध्यम से निकाली है। उसे बाक़ायदा खलनायक बनाकर उसमें इन महान व्यक्तियों के लिए ईर्ष्या, टुच्चापन, जालसाज़ी, बैक-बाइटिंग सभी कुछ है।

23.2.85

परसों भवानीप्रसाद मिश्र नहीं रहे। 'जनसत्ता' से फ़ोन आया। उस समय तो कुछ भी नहीं लगा। फिर सोचने लगा—'भैया, दादा, मुन्ना' कहकर भावविह्वल हो जानेवाला स्वर क्या कभी नहीं सुनाई देगा ? वही तो एकमात्र व्यक्ति हैं जिन्होंने त्रिवेणी सभागार में मंच पर मुझसे कहा था कि पुरस्कार ठुकराकर तुमने बड़ा काम किया। तुम्हीं जैसों के बल पर धरती टिकी हुई है। सही बात है कि अच्छा ही लगा था। और यह भी सही बात है कि कविताओं के बीच रोने लगना, भाषणों में भावुक होकर अवरुद्ध हो जाना, या आत्मीयता को मैंने हमेशा ही सीरियसली नहीं लिया। लगा, यह पंडित सुन्दरलाल जैसा लटका है। मैं उनके धन-मोह को भी अच्छी दृष्टि से नहीं देखता था, प्रोड्यूसर ए-मैरिटस, 'गांधी वाङ्मय' के सम्पादक, 'गंगनांचल' के सम्पादक और पेस-मेकर लगाए साल की बीसियों सभाओं, गोष्ठियों, कवि-सम्मेलनों में भागना। आख़िर कितना पैसा चाहिए इन गांधीवादियों को ? न खाने का शौक़, न पीने की लत। वही चार कपड़े। क्या करेंगे धन का ? लेकिन इसके बावजूद उनकी कविताएँ मुझे प्रिय थीं। उन्होंने कविता को इतना सरल, सार्थक और गहरा कर दिया था कि बातचीत लगती थी। बातें करते हुए वे कब कविता बोलने लगते थे, पता ही नहीं लगता था। हिन्दी कविता इतनी पारदर्शक और आसान कभी नहीं रही।

25.2.85

पता नहीं, मुझे वह घटना लिखनी चाहिए या नहीं—क्योंकि भवानी भाई के नाम के साथ ही अक्सर वह याद आती है। मैं कलकत्ते से नया-नया आया था। दीदी जब भी आती थी, ज़रूर मिलने की कोशिश करती थी। उस दिन भी उन्होंने गाड़ी भेजी और जे.के. हाउस के अलग कमरे में बैठे हम लोग बातें करते रहे। शायद पीछेवाला कमरा था। सुधा (सिंहानिया) भाभी भी थीं, मगर वह काम से आती-जाती रहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। उन्होंने बताया—भवानीप्रसाद मिश्र आए हैं। उनके चेहरे पर हल्का-सा अनखाने का भाव आ गया, 'इस समय?' मेरे मन में भी आया, 'ये यहाँ कहाँ आ पहुँचे?' मुझे अच्छा नहीं लगा कि भवानी बाबू यहाँ (शायद मेरी जगह) तक आएँ। उस दिन मैं कुछ ज़्यादा ही रुका। खाना खाया। अच्छा है, तपने दो। पूँजीपतियों के चक्कर लगाने का कुछ प्रसाद तो मिले। गांधीवादी कवि, गांधीवादी लेखक...मैं शायद उस समय भूल गया था कि मैं भी तो वहीं बैठा था खुद! फ़र्क़ यही था कि इतने लम्बे परिचय के बावजूद मैं न वहाँ अनिमंत्रित गया और न ही अपने को लादा। बिना पूर्व सूचना के, या बुलाए तो वे भी नहीं गए होंगे। बहरहाल मेरे भीतर का सैडिस्ट उस दिन बहुत तृप्त हुआ। डेढ़ घंटे तो तपे ही होंगे कवि। फिर विदा लेकर निकलते हुए दरवाज़े पर भेंट हुई—शायद एक-दूसरे से कतराते और आँखें चुराते हुए...इस अनुभव के बाद पिछले साल हम दोनों भीलवाड़ा में साथ थे। दो-तीन दिन। आत्मीय और सुखद अनुभव था। वे कुछ पहले आ गए थे और दो-एक दिन बाद तक रहे। मन में अच्छा नहीं लगा, दो दिनों के लिए बुलाए जाने पर यह सात दिन डटे रहने का क्या मतलब? आतिथेय भी तो दुखी हो जाते हैं, उपेक्षा करने लगते हैं।

आज सुबह 'बाणभट्ट की आत्मकथा' समाप्त की। अद्भुत और सरस विद्वान थे—द्विवेदीजी।

26.2.85

जब से राकेश की डायरी आई है। अरविन्द मेरी जान को लगा है कि हज़ार रुपए साल तब तक दूँगा जब तक कि आप अपनी डायरी मुझे छापने को नहीं देते। देखें, आप कितने साल लेते हैं! एक दफ़ा घर पहुँच गया। मैं भी गम्भीरता से सोचने लगा कि क्या अपनी डायरी का कुछ हिस्सा दिया जा सकता है? सोचा, क्यों न सन् '70 से '80 तक की डायरी को तैयार कर दिया जाए! इस दृष्टि से आज देखने लगा—तो पाया कि डायरी सारी दो ही बातों से भरी हुई हैं, एक तो हर साल-छह महीनों में पत्रिका की योजना और दूसरा, लिखने को स्थगित किए जाने की अपनी हरामख़ोरी की भर्त्सना। देखता हूँ, बहुत-कुछ घटित ही नहीं हुआ है, या फिर मैंने उसे व्यर्थ समझकर लिखा ही नहीं है। पुस्तकों पर अलग से लिखा है। यानी अगर यह छपे तो शायद बहुत गहराई नहीं आ पाए। मैंने यह भी देखा कि स्वतंत्र रूप से चिन्तन, जैसा वात्स्यायन या मलयज जैसे लोगों में है, वह सब नहीं है। जो कुछ है, वह किताबों के ही साथ जुड़ा है। शायद बहुत गहराई से मैंने अपना विश्लेषण भी नहीं किया है। सब मिलाकर मुझे डायरी छपाने लायक नहीं लगती। हाँ, यह ज़रूरी लगता है कि कुछ स्थानों पर निशान लगाकर किसी से कहूँ कि इसे नक़ल करके पांडुलिपि तैयार कर दे। दिक़्क़त यह है कि यह डायरी मैं किसी और के हाथ में दे भी नहीं सकता। एकमात्र व्यक्ति जो यह काम कर सकता है, वह मीता है। उसे डायरी भी दी जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती और वह यह काम कर भी सकती है।...पुरानी डायरियाँ पढ़ते हुए कुछ बातों की जब तारीखें देखीं तो दिल को ज़्यादा धक्का लगा। अरे, इस बात को दस साल हो गए? अभी कल की ही सी तो घटना लगती है!

आज से कैरोल एश की किताब लाइफ ऑफ फ्रीडम यानी 'सिमॉन द बोउवा' की जीवनी पढ़ रहा हूँ। अच्छी लग रही है।

2.3.85

आजकल पता नहीं क्यों, मैं बहुत जल्दी भावुक हो जाता हूँ। गला भर आता है और आँखें पसीजने लगती हैं। यही मुरादाबाद में हुआ। प्रतिभा अग्रवाल के साथ मुरादाबाद जाने का प्रोग्राम बना। पहले रवि को फिर बुध को। गाड़ी से गए थे। मलिक साहब का ड्राइवर रामचरन था। गाड़ी मीनू की। मन्नू को उस दिन जयपुर होना था, लेकिन वहाँ डीग की राजा मान सिंह वाली हत्या के कारण 'हड़ताल' हो गई और प्रोग्राम स्थगित हो गया। मन्नू हमारे साथ चल दी। उद्देश्य था मास्टर फ़िदा हुसैन से मिलना। हालाँकि इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में साहित्य अकादेमी का सेमिनार चल रहा था 'परिवेश और सर्जनात्मक साहित्य' और बुध की सुबह कपिलाजी को बोलना था, शाम को वात्स्यायनजी को अध्यक्षता करनी थी। मैं अज्ञेय को सुनना चाहता था। ख़ैर, पहुँचे मुरादाबाद।

मास्टर फ़िदा हुसैन से प्रतिभाजी का परिचय कलकत्ते से था। कलकत्ता में वे तीस साल 'मून लाइट' थिएटर में रहे और वहाँ उन्होंने तीन सौ से अधिक नाटकों का निर्देशन-अभिनय किया। इससे पहले अल्फ्रेड थिएटर में थे अदेशर इरानी के साथ। कलकत्ते में इनका नाम था प्रेमशंकर नरसी। शायर 'नरसी भगत' की भूमिका से प्रसन्न होकर मालवीयजी ने नाम दिया था। दिन में दो शो करते थे, रविवार को तीन। बहरहाल सत्तर साल नाटक और फ़िल्म की दुनिया से जुड़े रहे। अपने सामने सिनेमा का आना देखा, मूवी से टॉकी होना देखा। अभिनय किया, निर्देशन किया, गाने गाए और अक्सर महिला भूमिकाएँ कीं। 1898 में पैदा हुआ यह व्यक्ति 11-12 साल की उम्र से नाटक के साथ जुड़ा हुआ है। अब भी खूब स्वस्थ है। फ़िदा हुसैन पारसी नाटक का इतिहास है—जीवित। '68 से मुरादाबाद में हैं। लड़के, पोते, पड़पोते हैं। काफ़ी लम्बी-चौड़ी जायदाद है। जमा हुआ बिज़नेस है। मुरादाबाद के सामाजिक जीवन में अच्छा इज़्ज़तदार आदमी है। श्रद्धा होना स्वाभाविक है। शायद अकेली हस्ती है। हम लोग ग्यारह के करीब पहुँचे थे। दो-एक घंटे बातें कीं। हम लोगों के खाने का इन्तज़ाम उन्होंने किन्हीं अग्रवाल के यहाँ कराया था। बुरा लगा। शायद सोचा था कि पता नहीं, हम उनके यहाँ खाएँ या न खाएँ। दो बजे नगरपालिका में छोटी-सी गोष्ठी रखी थी। पचासेक व्यक्ति रहे होंगे। सारा खेल प्रतिभाजी का था, इसलिए अपनी दूसरी स्थिति से हम सन्तुष्ट थे। फ़िदा हुसैन साहब के लिए हम प्रतिभाजी के साथ लगे हुए 'कोई' थे। गोष्ठी के अध्यक्ष थे—डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे हिन्दी के अध्यक्ष थे, उन्होंने हमें काफ़ी महत्त्व देकर स्थिति को सँभालने की कोशिश की। और भी लोग थे। माहेश्वर तिवारी को तो मैं पहचान ही नहीं पाया। वहीं अपनी ओर से बोलने में मैंने सिर्फ़ मास्टर फ़िदा हुसैन साहब की बात कही। वह उदाहरण भी दिया कि आज तुलसीदास के ज़माने के बनारस के शहर कोतवाल का नाम हमें नहीं मालूम। मुझे लगता है कि मुरादाबाद आगे जाकर जिगर और फ़िदा हुसैन के नाम से ही जाना जाएगा। यह सब बोलते हुए मेरा गला बार-बार भर आता था। स्नायविक कमज़ोरी है या यह कि मैं अब चीज़ों को ज़्यादा इंवॉल्वमेंट के साथ देखने लगा हूँ। चलते हुए जैसे आप हर चीज़ को देखते हैं और आँखें भर आती हैं—हो सकता है, यही भाव लोगों और चीज़ों के प्रति हो। 'यह पुर पत्तन, यह गली बहुरि न देखौ आय...' जब से यह मालूम हुआ है कि मीता ने पचास की उम्र पार कर ली है, तब से उसके प्रति भी ऐसा ही महसूस होता है। शायद यह भाव उन चीज़ों के लिए ही है जो भौगोलिक रूप से उतने निकट नहीं हैं। यों फ़िदा हुसैन हमेशा साथ रहनेवालों के लिए कैसे हैं, क्या हैं, मैं नहीं जानता। हो सकता है, बहुत गहरे न हों और छोटी जगह पड़े हुए आदमी की तरह पब्लिसिटी के वैसे ही भूखे हों। जिस ढंग से अपनी उपलब्धियाँ दिखा रहे थे, उसी से लगा उनका सन्तोष इन्हीं बातों में अधिक है कि कहाँ उन्हें कितना सम्मान मिला, पहले उनके प्रशंसकों में नेहरू, मालवीयजी, जयप्रकाश नारायण, लोहिया रहे होंगे—अब जो तस्वीरें दिखा रहे थे, उनमें थे—कमिश्नर, आई.जी., एम.पी.। मुझे कहीं यह आदमी का उथलापन लगता है। मगर फिर सोचता हूँ कि एक सिर्फ़ लोकप्रिय अभिनेता से मैं क्यों कला-जगत के अपने अनुभवों की बातों की उम्मीद करूँ? बाद में भी सोचता रहा—इस आदमी से उसकी जीवनी लिखाई जा सकती तो कितनी बड़ी उपलब्धि होती...

लौटते-लौटते पौने नौ बज गए। सीधा उमराव सिंह जी के यहाँ आया। यहाँ लिन एडमंड और लालानी इत्यादि राह देख रहे थे। दो पैग पीकर करीम में खाना खाया। लिन-एडमंड लन्दन टेलीग्राफ़ की संवाददाता है। अब उससे मिलेंगे 13 को।

बृहस्पति, यानी 28 को साहित्य अकादेमी के साहित्योत्सव में पहुँचा। सुबह पर्चे थे। लंच में इन्द्रनाथ चौधुरी से झड़प हो गई। मुझे यह बात अजीब ही लग रही थी कि अज्ञेय इत्यादि कविताएँ पढ़ें और अमृता प्रीतम अध्यक्ष बनाई जाएँ। चौधरी नाराज़ हो गया। यह बातें सिर्फ़ हिन्दी हिन्दी में ही होती हैं। मैं किसी की कोई चिन्ता नहीं करता। मैं सब सुनता रहता हूँ, कौन क्या कहता है। आगे से आपसे सलाह लेकर करूँगा। मुझे अजीब लगा। यह आदमी तो इतना 'महान' हो गया है कि दूसरे का मत सुनना ही नहीं चाहता। राजनीतिक प्रभावों पर चढ़कर नियुक्तियाँ पानेवाले क्या सचमुच नहीं सोचते कि कितने कच्चे आधार पर खड़े हैं?

कल मैंने जो कमीनगी की है—उससे लगता है, चौबेजी छब्बे बनने गए, दुबेजी रह गए। उस दिन राजेन्द्र माथुर आए थे और तय हो गया कि मैं 'सरोकार' नाम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नवभारत टाइम्स' में एक कॉलम लिखूँगा। हर हफ़्ते मैं बँधने को तैयार नहीं था। हर वक़्त की सिरदर्द रहेगा। पन्द्रह दिनों में एक बार का तय हुआ। 500 रुपए प्रति बार। फिर मेरे दिमाग़ का चर्खा चला। सही है, 'नवभारत टाइम्स' का रविवारी सर्कुलेशन साढ़े चार लाख है। लेकिन जो पाठक मैं चाहता हूँ, वह तो 'जनसत्ता' के पास है। मंगलेश ने कहा भी था कि अगर बात न बने तो 'जनसत्ता' हाज़िर है। हो सकता है, उतने पैसे न दे पाएँ। मगर पाठक 'जनसत्ता' का ही ज़्यादा प्रबुद्ध है। उसकी साफ़-सुथरी छपाई में अपनी रचना देखकर खुशी होती है। फिर मेरे लिखने में जो डंक है, वह 'नवभारत टाइम्स' के गले शायद कभी न उतर पाए। और यही सब सोचकर मैं मिला प्रभाष जोशी से। उन्हें सारी स्थिति बताई। राजेन्द्र माथुर के प्रति अपनी भावना और अब इस प्रकार का ऑफ़र देने की अपनी कमीनगी भी नहीं छिपाई। उन्होंने कहा मैं कौशलपूर्वक बात करूँगा। अपको सोमवार को बताऊँगा। तब से बड़ी ग्लानि है मन में।

6.3.85

राकेश की डायरी पढ़ने से एक नुकसान तो बहुत बड़ा यही हुआ है कि यह डायरी की सारी एप्रोच ही बदल गई है। पहले इसे मैं प्राय: अपने लिए और अपने मन से लिखता था। जब मन, फुर्सत या कोई बात हुई तो लिख लिया, वरना टाल गए। मगर अब लगता है कि अपने बाद वालों के लिए लिखना है, इसलिए ज़रूरत से ज़्यादा गम्भीर और मिसकीन होकर लिखना चाहिए। बहुत ऊँची, महीन और दार्शनिक बातें लिखनी चाहिए। अज्ञेय, निर्मल, रमेशचन्द्र शाह और मलयज की तरह साहित्य, संस्कृति, कला की हवाई बारीकियों पर अपनी टिप्पणियाँ देनी चाहिए और सबसे बड़ी बात हर घटना-दुर्घटना को लिपिबद्ध कर देना चाहिए—यह मानकर कि मानो न्यूक्लियर-युद्ध हो गया और संसार का सब कुछ नष्ट हो गया, बची रही सिर्फ़ मेरी यह डायरी। तो आगे आनेवालों को घटनाओं, स्थितियों या सारी संस्कृति-सभ्यता की जानकारी देनेवाली सिर्फ़ यही एक पुस्तक तो रह जाएगी। और मुझे भावी पीढ़ियों के लिए शिकायत की वे दरारें नहीं छोड़नी चाहिए जो राकेश की डायरी में दिखाई देती हैं, अरे, इतनी बड़ी बात हो गई और उसका कहीं ज़िक्र ही नहीं है। जबकि ये नोट्स मैं अपनी सुविधा और याददाश्त के लिए रखना चाहता हूँ क्योंकि मुझे मालूम है, चीज़ें मुझे याद नहीं रहतीं। इन्हें लिख लूँगा तो हो सकता है, आगे काम आएँ।

आज ही कैरोल एश द्वारा लिखित सिमॉन द बोउवा की जीवनी 'लाइफ़ और फ्रीडम' समाप्त की। वह परम्परागत अर्थों में उसकी जीवनी भी नहीं है। उसके विचारों के कुछ मुद्दे लेकर उसकी रचनाओं और जीवन के विश्लेषण से उन्हें समझने की कोशिश की गई है। पुस्तक उत्प्रेरक है और स्वतंत्रता, चुनाव, मृत्यु, प्यार इत्यादि पर बोउवा के विचारों का परीक्षण करती है। मगर उसे पढ़ते हुए वही अपनी बोउवा याद आती रही। यह बात सही है कि बोउवा-सार्त्र के बौद्धिक साथ ने इस तरह के स्वतंत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुनावों को एक गरिमा और अर्थवत्ता दी है—वरना पहले या आज भी ऐसे सम्बन्धों को लेकर एक गिल्ट और ग्लानि से ही दंशित रहते हैं।

इधर मन्नू अपने को निरन्तर समेटती चली जा रही है। एक अजीब तनाव और अपने में ही घुसे रहने की आरोपमयी मुद्रा हर समय बनी रहती है। जब घर में होती है तो अपना कमरा बन्द रखती है। उधर मैं जब अपने कमरे में या बिस्तर पर होता हूँ तो अजीब समृद्धि की भावना बनी रहती है। विचार, बातें, विश्लेषण हर समय मन में एक संवाद चलते रहना। मन होता है, इन सबको लिखते रहना चाहिए, जब 'अक्षर' पहुँचकर डायरी में लिखूँगा तो आधी बातें याद नहीं रहेंगी। हो सकता है, जाऊँ और कोई बैठा हो और सारे दिन लिखने का अवसर ही न मिले। अक्सर तो चन्दर बैठा रहता है, सारे दिन का अवरुद्ध और भरा हुआ। आजकल एक योजना से भकभका रहा है। जून में भारत समारोह हो रहा है अमेरिका में। तब तक भारतीय साहित्य पर एक किताब तैयार होनी चाहिए। राजीव गांधी उसे रिलीज़ करें। सरकार उसकी पाँच या दस हज़ार पुस्तकें ख़रीदे। लेकिन मई तक एकदम तैयार हो जाए। मुझे सम्पादक के रूप में रखकर उलझाना चाहता है। वह कहता है कि पच्चीस-पचास हज़ार के फ़ायदे के अलावा जो अवसर मिलेगा, बाहर जाने का वह अद्‌भुत होगा।

आजकल इन्द्रनाथ चौधुरी का मेरे प्रति प्रेम बहुत बढ़ रहा है। उस दिन की झड़प के बाद कई बार फ़ोन कर चुका है—दारू के लिए, मिलने के लिए। उधर जयपुर और भोपाल से फ़ोन आ रहे हैं। शायद जयपुर जाना पड़े। सोमदत्त और पूर्णचन्द्र रथ के फ़ोन आए। मुझे मना करना पड़ा। वातावरण अच्छा नहीं है। इन दिनों वैसे भी भोपाल के खिलाफ़ हवा है। कौन जाकर नक्कू बने। मैंने कहा—अप्रैल में रख लीजिए। हो सकता है, वे स्थगित ही कर दें। इधर जनवादी लेखक संघ का साहिबाबाद में आयोजन है। कॉलम भी शुरू करना है। कल प्रभाष जोशी से कह दिया कि वे राजेन्द्र माथुर से बात न करें। मेरी ओर से काफ़ी कमीनी हरकत लगेगी। अब 'नवभारत टाइम्स' में ही चलने दें, देखा जाएगा। कल भवानीप्रसाद मिश्र की श्रद्धांजलि सभा थी। गरिमामयी ही लगी। कोई भाषणबाज़ी नहीं। गीता और गांधी के प्रिय कुछ भजन। हमें जल्दी आना था। बहुत दिनों बाद कल शर्माजी का फ़ोन भी आया। कभी दिन में दो-दो, तीन-तीन बार फ़ोन करनेवाले शर्मा-सरयू से कितनी दूरी आ गई है।

8.3.85

कल होली थी और अजीब-सी स्थिति थी। छह-सात साल पहले हम लोग धुआँधार होली खेलते थे—कभी निर्मलाजी के यहाँ, कभी अजित के। सारे दिन हंगामा रहता था। मन्नू को पसन्द नहीं था, एक तो रंगों और गुलाल से चमड़ी पर असर हो जाता था, फिर हुड़दंग वैसे भी नापसन्द था। फिर मैंने भी बन्द कर दिया। कमरा बन्द करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठ जाता था। लोग शोर मचाते, दरवाज़े पीटते लौट जाते थे। चारों तरफ़ यही हो गया कि हम लोग नहीं खेलते। मन्नू वैसे भी बहुत लोगों से मिलना-जुलना पसन्द नहीं करती। कृष्णाजी इत्यादि खुद ही मरी हुई हैं। अजित-निर्मलाजी उधर। नतीजे में स्थिति बेहद दयनीय हो गई। अपने-अपने कमरे बन्द किए हम दोनों ही बैठे थे। कम-से-कम मैं यही चाह रहा था कि कोई तो कम्बख़्त आए। चेतराम की पहली होली थी, सो काफ़ी उत्साह में था। वह उम्मीद कर रहा था कि बहुत लोग आएँगे। पानी, रंग, छीना-झपटी होगी। मैंने गुलाल ले जाकर रखा, मिठाई-नमकीन रखी। आखिर ऊबकर दो-एक फ़ोन किए। आए सिर्फ़ हजारीमल यादव और उनकी पत्नी। 'घर पर मैं कोई विघ्न-बाधा नहीं चाहता और शान्ति से पढ़ना-लिखना चाहता हूँ' का यह भयावह रूप था। मेज़ पर सिर्फ़ हम दोनों ही पूरी-आलू खा रहे थे—चुपचाप। शाम को त्यागी, खोसा आर्टिस्ट को पकड़ लाया, फिर राजेन्द्र मिश्र और उनकी पत्नी आ गए। बाद में टिंकू-दिनेश। यह हुई होली। पहली बार महसूस हुआ कि यह तो बहुत हो गया। इतने तो 'फ्रैंड लेस' हम लोग नहीं हैं। अगली बार से बाक़ायदा धमाचौकड़ी वाली होली होगी। लोगों को बुलाएँगे, जाएँगे। ड्राइवर के कारण और दिक्कत है। मन्नू गाड़ी छूना नहीं चाहती। शायद कॉन्फिडेंस नहीं है। ऐसे मौक़ों पर कौन चलाए?...बोउवा वाली पुस्तक समाप्त कर दी। जयपुर में जो बोलना है 'साहित्य और नारी' पर, उसी पर कुछ सोच रहा हूँ। 12 को प्लेन से जाना है। कल साहिबाबाद। 'जनवादी लेखक संघ' में। आज सुबह मन्नू के कहने पर कहानी पढ़ी 'जंगल' भीषण कहानी है। हालाँकि कहीं हेमिंग्वे के 'हैप्पी मैरी लाइफ़ ऑफ फ्रांसिस मिकॉम्बर' की याद दिलाती है, मगर फिर भी सत्येन्द्र की यह कहानी झकझोर देनेवाली है।

13.3.85

पिछले दिनों भोपाल और जयपुर से लगातार फ़ोन आ रहे थे कि मुझे आना है। जबलपुर में सोमदत्त कथाकार सम्मेलन कर रहे हैं। मैंने मना कर दिया कि माहौल ठीक नहीं है। पिछले दिनों भोपाल की ओर से आयोजित विश्व-कविता समारोह को लेकर हरिशंकर परसाई और दिल्ली में भयानक विरोध हुआ कि अभी तो मानवीय इतिहास की सबसे बड़ी ट्रेजेडी हुई है। दसियों हज़ार लोग गैस-कांड में मरे हैं और अशोक वाजपेयी को विश्व-काव्य सूझा है। अशोक का वक्तव्य था कि 'मुर्दों के साथ कोई मर नहीं जाता।' वैसे यह प्रश्न मुझे भी परेशान किए है। दुर्घटना को तीन महीने हो गए। अब तक शोक का वातावरण बनाकर रखना उचित है? यह सही है कि पड़ोस में कोई हादसा हो जाता है तो आपका आनन्द मनाना कहीं अमानवीय और आशालीन है। मगर कब तक? हिन्दुस्तान में करोड़ों लोग ग़रीबी की रेखा से नीचे हैं, रोज़ किसी-न-किसी दुर्घटना में सौ से लेकर हज़ार तक मरते हैं। प्राकृतिक प्रकोपों से मरते हैं। क्या हमें अपने सारे सांस्कृतिक कार्यकलाप स्थगित कर देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए? श्रीमती गांधी की हत्या के बाद दिल्ली में ही दो-चार हज़ार मर गए। तब क्या सांस्कृतिक गतिविधियाँ सिर्फ़ ऐयाशियाँ हैं? वह हमारे समाज और जीवन का आवश्यक कर्म नहीं हैं? बंगाल के काल पर लेखकों का दल बंगाल गया था और लौटकर उन्होंने सुन्दर रचनाएँ दी थीं, क्या वह भूख से मरनेवालों का मखौल था?—ख़ैर, मैंने तो स्पष्ट ही मना कर दिया है।

दूसरा फ़ोन राजस्थान विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग और अंग्रेज़ी स्टडी ग्रुप से था—जसविन्दर जैन का। 'नारी और साहित्य' पर तीन दिनों का। उसने जब लगातार फ़ोन करके दुखी किया तो मैं प्लेन से जाने को तैयार हो गया। कल सुबह गया, शाम को आ गया। इस पर काफ़ी कुछ सोच-विचार करता रहा और मानसिक रूप से तैयारियाँ होती रहीं। बातें तो बहुत-सी थीं। लेकिन यह साफ नहीं हो रहा था कि उन्हें ठीक तरतीब कैसे दी जाए। कुछ नोट करने की भी कोशिश की थी। लेकिन मालूम था, वह सबकुछ रखा रह जाएगा। ख़ैर, लक्ष्मीनारायणजी एयरपोर्ट पर आ गए। दिल्ली अपनी गाड़ी शाम तक रखने को बोल गया था। नाश्ता इत्यादि करके सो गया। क्योंकि पिछले दिन शानी की शादी की वर्षगाँठ थी—सो काफ़ी हंगामा रहा था। आते-आते एक होने वाला था। फिर सुबह चार बजे उठकर जाने की तैयारियाँ की थीं। दो घंटे सोए। नींद तो ठीक से नहीं आई। मगर कुछ ताज़गी ज़रूर हुई। ढाई बजे जसविन्दर ले गई। जिस सेशन की मैंने अध्यक्षता की थी, उसमें एक ने जे.एस. मिल और हैलियेट के नारी सम्बन्धी विचार दिये थे। गम्भीर पर्चा था। पहली बार लगा कि सवा सौ साल पहले मिल ने नारियों के बारे में कितने क्रान्तिकारी ढंग से सोचा था। दूसरी कमलादास की 'माई स्टोरी' पर, फिर मेरी बातचीत। शुरू ठीक किया, लेकिन फिर जो कुछ समझ में आता रहा, बोलता रहा। शायद पौन घंटे बोलता रहा। शायद वातावरण कुछ ऐसा था और सारी बातें मेज़ पर आमने-सामने हो रही थीं। हस्बेमामूल न कोई तरतीब रही, न व्यवस्था। फिर भी लगा, काफ़ी अच्छा बोला और कुछ विचारोत्तेजक बातें कहीं। बाद में सभी लोग तारीफ़ कर रहे थे। सुनील नाम के सबसे ब्रिलियेंट लड़के ने भी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। बेहद लूसिड, क्लियरकट और इंस्पायरिंग भाषण था। बाद में नीना ने भी कहा। खुद भी लगा, शायद अच्छा ही बोला। उसे कल लिपिबद्ध करने की कोशिश करूँगा। पौने दस बजे घर आ गया था। दिल्ली।

18.3.85

जयपुर से आने के बाद एक अजीब-सी निष्क्रियता और मानसिक आलस्य का शिकार रहा। क़रीब पूरा हफ़्ता। उठ तो सुबह ही जाता था। रात को भी समय मिलता था और हमेशा दिमाग़ में रहता था कि 'नारी और साहित्य' लेख को लिख डाला जाए। काफ़ी कुछ साफ़ भी था। लेकिन सिर्फ़ टालता रहा। सो जाता था, या आँखों में दर्द के बहाने टाल जाता था। लिखना भी बहुत है। अब ज़रूरत है कि लिखे हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखों को सम्पादित संशोधित किया जाए, ताकि तीन राजेन्द्र माथुर को दिये जा सकें। डर भी लगता था कि इसी तरह समय टल जाएगा और लेख के सारे मुद्दे दिमाग़ से निकल जाएँगे। ख़ैर, आज से लिखना शुरू किया। देखें, कब पूरा होता है! लगता तो है कि काफ़ी अच्छे पॉइंट्स हैं।

13 को हमारे यहाँ पार्टी थी। लन्दन टेलीग्राफ़ की लिन एडमंड आनेवाली थी। सुबह लालानी ने बताया कि वह कहीं और चली गई है। ख़ैर, तय हुआ कि हम सब तो शाम को मिलेंगे ही। मैंने भी गिलास-नमकीन जमा किए। सोडा-सॉफ्ट ड्रिंक लाया। गौतम से भी आने को कह दिया। आए अजित, स्नेह, मनोहरश्याम, चन्दर, नासिरा और शर्मा, चोरड़िया, सेठिया, गौतम, मैं, मन्नू, कृष्णाजी। लालानी बीयर और शराब ले आया। नासिरा दो घंटे पहले ही इराक से आई थी और हम वहाँ के हाल जानना चाहते थे। मगर लालानी ने बोलने ही नहीं दिया। एक शब्द पकड़कर उसके इतिहास में चला जाता था, या उसका दर्शनशास्त्र बताने लगता था। बात उसने चलने ही नहीं दी। नए-नए पैसेवाले के सारे दम्भ और दिखावटें लालानी में हैं; वही अपने को सबसे बुद्धिमान, बहु-पठित दिखाना, पैसे का गुरूर, अच्छे से अच्छे आदमी से मिलने का शौक, लेकिन उसे सुनने के लिए नहीं, बल्कि सुनाने के लिए...पहले बीयर पीता रहा, फिर लगा, अपनी ब्लैक लेबिल बच जाएगी, उसे पिया। चलते समय लड़खड़ा रहा था। विलेज के अँगीठी में खाना खाने गए तो कुछ ही देर में आउट हो गए। मेज़ पर सिर रखे सोता रहा। बाद में जैसे--तैसे उठकर गाड़ी में बैठा। हम सबका मन ख़राब हो गया। मुझे लगा, इस आदमी के साथ पत्रिका की बात कैसे निभेगी? एक वाक्य तो बोलने नहीं देता। वहाँ कैसे बोलने देगा? हर बात में टाँग अड़ाएगा। सुबह नासिरा से फ़ोन करके माफी माँगी। शुक्र है कि राजेन्द्र माथुर नहीं आए। तय किया कि अब लालानी के कहने से किसी को नहीं बुलाऊँगा। देखा कि दो पैग के बाद चोरड़िया भी चहकने लगता है। सेठिया शुरू से चुप रहे।

फिर परसों भी यही हुआ। शनिवार को धीरेन्द्र अस्थाना राकेश की डायरी पर बातें करने घर गया। थोड़ी देर बातें कीं, टेप किया, फिर दारू। नौ बजे त्यागी आ गया। वह पहले से डाउन था। यहाँ और भी पी गया। दोनों आउट हो गए। खाना खाया। बोलने में एक वाक्य का दूसरे से सम्बन्ध नहीं रह गया। बाहर निकलकर दोनों भावुक हो गए और बारी-बारी से मेरे चरण छूने लगे। जैसे-तैसे उन्हें विदा किया। धीरेन्द्र से कहा भी रुकने को, नहीं रुका। अपना रिकॉर्ड नहीं तोड़ूँगा। मगर एक-डेढ़ बजे मन्नू के पास उसकी पत्नी का फ़ोन आया, पता नहीं कहाँ डेसू के दफ़्तर आकर किया था। फिर सुबह आया। बहुत चिन्तित। त्यागी के यहाँ कोई उठा नहीं रहा था। जैसे-तैसे एक्सचेंज से पड़ोस का नम्बर लेकर बात की तो मालूम हुआ कि धीरेन्द्र राजकुमार गौतम के यहाँ सो गया। सुबह निज़ामुद्दीन में उर्दू एकादमी की ओर से कहानी पर सेमिनार था। वहाँ सीधे जानेवाला था। वहाँ मिला तो मैंने सबके सामने डाँट दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

23.3.85

अचानक सुबह बोध हुआ कि क्या उम्र मेरे ऊपर हावी हो रही है? पाँवों और पिंडलियों का दर्द, मधुमेह की चिन्ता के अलावा सबसे अधिक चौंकानेवाली बात है कि मैं अब अतीत में अधिक रहने लगा हूँ। भविष्य धीरे-धीरे धुलकर गायब होता जा रहा है। शायद आप तभी तक जवान होते हैं, जब तक स्मृतियों के मुकाबले सपने आपको अधिक खींचते हैं। स्मृतियाँ गुलेल की रबर की तरह होती हैं, जहाँ आप पीछे सिर्फ़ इसलिए खिंचते हैं कि आगे अधिक शक्ति से जा सकें। जब गुलेल सिर्फ़ पीछे ही खिंचती चली जाए तो समझ लेना चाहिए कि रबर की सारी लचक जाती रही है और वह अब आगे नहीं फैलेगी।

अभी भी नारी और साहित्य वाले लेख में ही उलझा हूँ। बीच में जैसे एकदम दिमाग़ से निकल गया था। आज फिर उधर ध्यान दिया है। लगता है, लम्बा होगा।

कल मेडिकल इंस्टीट्यूट में जाकर ख़ून टेस्ट कराया। एक डॉ. कामेश्वर प्रसाद चन्दर के परिचित थे। यह देखने के लिए कि ब्लड शुगर कितना है। पिंडलियों का दर्द, बहुमूत्र और पढ़ते हुए आँखों की पुतली के आगे काला बिन्दु...इसे डायबिटीज़ से ही जोड़ा जा रहा है। कम्बख़्त वह निकल आई तो खाने-पीने से भी जाएँगे। मेरे जैसे चटोरे आदमी की भी मुसीबत है जिसे भरपूर मीठा, तला हुआ, खूब मिर्च-मसाले का तरातर खाना पसन्द हो...

9.4.85

दिमाग़ उस 'नारी' विषयक लेख में ही लगा हुआ था, इसलिए कुछ भी लिखने का मन नहीं होता। वह भी बीच में अधूरा छूट गया, क्योंकि कानपुर जाना था। आई.आई.टी. में साहित्य और सिनेमा पर सेमिनार था। आजकल बाहर जाना पहाड़ लगता है, वही स्टेशन जाओ, स्कूटर वालों के पैतरे सँभालो, कुली करो, मील भर गाड़ी के चक्कर लगाओ, उतरकर सवारी की तलाश। सबसे बड़ा सिर दर्द स्टेशन तक जाने और आनेवाले स्कूटर को लेकर होता है, कुलियों को लेकर। ख़ैर, हुआ और शायद अच्छा ही हुआ। मैंने शतरंज के खिलाड़ी वाला लेख पेल दिया। गिरिराज के लिए जयपुर की दो रज़ाइयाँ ले गया था। मूल्य था 260 रुपए, उसने मँगवाई थीं। उसने आई.आई.टी. से 250 रुपए रोज़ का पारिश्रमिक दिला दिया। शायद सतीश बहादुर और तिवारी को भी यही दिलाया था। बहरहाल रज़ाई के पैसे की बात नहीं की। पता नहीं शायद सोचा हो कि यह पैसा दूसरे रूप में दिला दिया गया है। अगर ऐसा हुआ तो मुझे सचमुच धक्का लगेगा। इस महीने आएगा तो बात करेगा—या बाद में भेजे। बहरहाल गिरिराज की बनावट तो ऐसी नहीं है।...कल शाम को घर पर डॉ. लुत्से और बियट्रिस आए। राजी और सेठ साहब को भी बुला लिया था। मैंने लुत्से को छेड़ने के लिए कहा कि तुम कविताओं को उनके गुण के कारण पसन्द करते हो, कहानियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके समाजशास्त्र के लिए। यह दुहरा दृष्टिकोण ग़लत है। शायद उसने बात गम्भीरता से ली। काफी बातें हुईं... । इधर किसी-न-किसी कारण सुबह जल्दी निकलना होता है, या अपनी भाग-दौड़ होती है। इसलिए बैठना ही नहीं होता। सारा समय व्यर्थ जा रहा है। मन्नू को आजकल स्पेशल नहीं मिलती—बसों में परेशानी होती है, इसलिए सुबह नौ बजे ही आना होता है। करण सिंह भी नहीं आ रहा, उसे चोट लगी है।

17.4.85

अभी नारीवाला लेख पूरा नहीं हुआ और दिमाग़ में वही कुछ इस तरह अटका है कि कुछ और लिखने की बात ही नहीं सोचता। पढ़ना भी स्थगित है। सोचता हूँ कि इस तरह दो-दो महीने अगर एक-एक लेख ने लिये तो कैसे चलेगा? पहले जो एक हफ़्ते था, वह क्यों इन दिनों इस तरह खिंचता चला जाता है! क्या इसके पीछे कारण यह है कि रचनात्मक प्रतिभा छीज गई है या फिर यह कि कोई बाहरी दबाव नहीं है? मुझे दूसरी बात ही ज़्यादा सही लगती है। पहले किसी-न-किसी पत्रिका का दबाव रहता था, सम्पादक शोर मचाते थे और चीज़ अपने आप बन जाती थी। रात-दिन का ध्यान किए बिना लिखना होता था। अब जब लिख लेंगे तो देखेंगे कि कहाँ छपाया जा सकता है। इसलिए हर चीज़ को लाइतलाली से लेने की वृत्ति है। इधर हाथ-पाँवों में अजीब-सी सनसनाहट रहती है, पेशाब वही चिरपिराहट के साथ आता है। जल्दी-जल्दी। लगता है, लीवर या गुरदों में कुछ इंफ़ेक्शन है। यह कुछ और नए विकारों को जन्म दे, इससे पहले ही ठीक करा लेना चाहिए। छह महीने से ज़्यादा हो गए, डॉ. अनिल कालिया को पेशाब नहीं भेज पा रहा हूँ। ज़िन्दगी में ऐसी मुर्दनी छाई हुई है और आतंकित करती है। क्या इसी तरह इन और मन की शिकायतें लेकर बाक़ी ज़िन्दगी गुज़ारनी है? इसी को शायद अंग्रेज़ी में वेजिटेटिंग कहते हैं? जब से गाड़ी आई है, चलना कम हो गया है। हो सकता है, उसी के कारण ऐसा हो। कभी डर लगता है, लकवा तो नहीं है यह?

परसों अरोड़ा शिकोहाबाद होकर दूसरी बार लौट आया है। वे साले बहुत बदमाश हैं और पैसे नहीं दे रहे। दो बार प्रेमसिंह को भेजा, एक बार रंजन को, फिर अब अरोड़ा।

कल मोहन गुप्त को आना था। मैं इधर भूषण के रवैए से खिन्न होकर अक्षर की विक्रय-व्यवस्था बदलना चाहता हूँ। मोहन के ज़रिए बातचीत राजकमल से हो रही है। उसने प्रारम्भिक बातें शीलाजी से कर ली हैं। कल घर चलकर कुछ डिटेल की बात करते। लेकिन परसों तय करने के बावजूद जब वह नहीं आया तो मैं काफ़ी पसोपेश के बाद बीना के यहाँ चला गया। वह नहीं थी। अम्मा से पन्द्रह मिनट बातें करके सोचा कि शर्माजी के यहाँ होते चलें। सरयू से परसों के लिए कहा था। मगर अब हो सकता है, परसों मोहन से ही बातें हों। उनके यहाँ जापानी टी.वी. सोनी लग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था। बड़ा। एक सरदारजी ड्राइंग रूम में फिटिंग कर रहे थे। मुझे लगा, मेरे अचानक पहुँचने से सब लोग कुछ अचकचा से उठे। शायद उन्हें लगा, बारह-चौदह हज़ार के इस टी.वी. को देखकर मैं सोचूँगा कि शर्माजी ने यह 'ग़लत तरीकों' से लिया है। मैंने सोचा भी। सरदार टी.वी. लगाता रहा और एक नक़ली सी बहस होती रही कि इसे ड्राइंग रूम में ही रखा जाए, स्टडी में ले जाया जाए या गेस्ट हाउस में। बहस नक़ली थी और स्थिति की ऑकवर्डनेस से बचने के लिए की जा रही थी। बाद में सरयू ने बता भी दिया कि दूसरा टी.वी. मौसाजी का है। कारपेट के नीचे पूरे में फोम लगा है। हो सकता है, बीस साल की नौकरी के बाद इसमें अस्वाभाविक कुछ न हो। शर्माजी ने पूछा—अक्षर से पन्द्रह-बीस हज़ार महीना हो जाता है? मुझे मालूम था, यह जवाबी हमला है, हमारी तथाकथित समृद्धि पर। बड़ी अजीब बात है, ये तथाकथित नैतिकतावादी हर दूसरे को अनैतिक, सिद्धान्तहीन मानने को मजबूर हैं। मैंने कहा—हफ़्ते में इतना होता है। हम लोग देखकर नौ बजे निकले। शोफ़र ड्रिविन, पर्दों-वाली चमचमाती कार, और साले पुश्तैनी रईसों की तरह बैठते हुए श्री राजेन्द्र यादव... शर्माजी को तो कष्ट होना ही था। चलते-चलते कहा, मैंने 'शोले' नहीं, 'उसकी रोटी' बनाई है। किसी को क्या पता, मैं कैसे यह सब चला रहा हूँ। अब मालूम नहीं क्यों, उन लोगों से मिलकर खुशी नहीं होती। एकाध खरोंच लेकर ही लौटना होता है। क्या यह खरोंच मेरे कारण उनके मन में भी छूटती होगी? कहाँ क्या है जो टूट गया है? इतने अच्छे आत्मीय और अभिन्न थे, हम लोग! क्या बात इतनी ही है कि शर्माजी को मित्र नहीं, ज़रूरतमन्द व्यक्ति चाहिए? अपने दायरे में वही अफ़सरों वाली लाग-डाँट, छोटे-बड़े का वर्गभेद, आपसी ईर्ष्या और बाहरी क्षेत्र में ज़रूरत-मन्द लोग। कितने मित्रहीन हैं ये लोग! सरयू निभाने की कोशिश करती है, मगर शर्माजी तो सचमुच कुंठाओं के बंडल ही हैं!...घर पर दो-तीन दिनों से हरी डटे हैं।

19.4.85

दो-तीन दिनों से मोहन गुप्त के आने की बात चल रही थी। मैंने मंगल को आने को कहा था, वह नहीं आया। बुध के लिए चिट छोड़ी। मुझे आई.आई.टी. जाना था हिन्दी परिषद् के पुरस्कार-वितरण के लिए। मैंने वहाँ शायद अच्छा ही बोला। सोचा था, शायद मोहन आ जाए। नहीं आया। कहीं टाल तो नहीं रहा? हो सकता है, उत्साह में कह दिया हो कि यह हो जाएगा, बाद में पाया हो कि इतना आसान नहीं है। कल फ़ोन किया तो मिल भी गया और जाने को भी तैयार हो गया। ख़ैर, वह अपने स्कूटर पर गाड़ी के साथ। बैठे, मैं कानपुर से जो स्कॉच लाया था, वही खोली। काफ़ी विस्तार से बातें कीं। मैंने शुरू में ही तीन आशंकाएँ रखीं; हमारा जो भी मासिक तय होगा, उसकी तारीखें तो रखनी ही होंगी क्योंकि मैं उसी आधार पर आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायदे करूँगा। रुपए की स्थिति में कभी कठिनाई हुई तो शीला जी का व्यवहार क्या होगा? मैंने सुना है कि जब वे चाहें, अचानक बहुत ही ठंडी और पथरीली (कोल्ड एंड कर्ट) हो जाती है। मेरे ऊपर दबाव रहेगा और मुझे परेशान करना होगा। इस पर उसने कहा, कि ऐसा ही मासिक उन्होंने प्रेसवाले को बाँध रखा है, और वहाँ कोई कठिनाई आज तक नहीं हुई। वे अपना वादा निभाने में बेहद सचेत हैं। यह कठिनाई नहीं आएगी। वैसे वे ठंडी और पथरीली तो हो जाती हैं। न चाहें तो आदमी को पहचानने से इनकार कर देती हैं। दूसरी आशंका थी कि सारी बातें हमारे-तुम्हारे शीलाजी के बीच हो रही है। बिक्री का आदमी जगदीश शर्मा है। वह अपने को शामिल न किए जाने को अपना अपमान समझ सकता है। नतीजे में सेल के लिए प्रयास ही न करे तो शीलाजी को यह सम्बन्ध बोझ लग सकता है। तीसरे, इस सम्बन्ध का अर्थ मेरा शीलाजी और राजकमल के निकट आना होगा। अभी तक यह स्थिति नामवर के साथ थी, इसलिए हो सकता है, नामवर ही काटने की कोशिश करें। दूसरे के जवाब में उसने कहा कि यह बात उसके ध्यान में है और भेद की बात यह है कि बहुत जल्दी बिक्री का सारा ज़िम्मा उसके ऊपर आनेवाला है, जगदीश अप्रभावशाली बना दिया जाएगा। तीसरी बात को भी उसने बहुत महत्त्व नहीं दिया। 'कौन-सी किताबें बिकती हैं—कितनी बिकती हैं' की बातों के बीच मैंने वह बात फिर दुहराई कि कम-से-कम ढाई लाख की गारंटी, पन्द्रह हजार रुपया महीना और काग़ज़-छपाई का ख़र्चा अलग। व्यक्तिगत बिक्री हमारी 8-10 हज़ार की है, वह रहेगी। विज्ञापन के बारे में जो भी तय हो। भेंट इत्यादि की प्रतियाँ, सबमीशन की प्रतियाँ, उनकी समीक्षा इत्यादि हमारी। टेक्स्ट या ऐसी किताबें जिनकी क़ीमतें बढ़ाना मुश्किल है, उन पर 40 प्रतिशत कमीशन। काग़ज़-छपाई का पैसा देना मुश्किल लगे तो 15 की जगह 20 हज़ार रुपया महीना। सारे ख़र्चे हमारे। आज वह शीलाजी से बातें करके मुझे बताएगा। वह तो कहता है कि यह तो हो ही गया है। शीलाजी को उस पर बहुत भरोसा है और आगे जाकर राजकमल वही सँभालने वाला है, उसने कुछ ऐसा इम्प्रेशन दिया। पता नहीं, भीतरी स्थिति क्या है? हो सकता है, शीलाजी के दिमाग़ में कुछ और हो और यह फ़ूल्स-पेराडाइज़ में ही रह रहा हो! बहरहाल, इससे सम्बन्ध बिगड़ेंगे, ऐसा मुझे नहीं लगता। अगर यह तय हो जाता है तो मेरा काफ़ी तनाव दूर हो जाएगा। मोटे रूप में यहीं शर्तें हैं। हाँ, हमारी और उनकी किताबों का कमीशन एक ही होगा। यह भी मैंने साफ़ कर दिया है।

24.4.85

शनिवार से सुशीलाजी और पराक्रम सिंह भंडारी आए हुए हैं। ब्रुसेल्स से बब्बू आया है, सो उससे मिले। शुक्र तक रहेंगे। बीच में जयपुर या भरतपुर जाने की बात थी, वह स्थगित हो गई। दो बार बब्बू से मिल लिये और अब शुक्र या 26 तक का समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे ही काटना है। मैं पहले से और अभी भी यही सोच रहा हूँ कि पराक्रम सिंह की उपस्थिति मेरे मन में अजीब बेचैनी और कभी-कभी झूँझल क्यों पैदा करती है, रिटायर्ड आदमी हैं और कुछ काम नहीं है इसलिए खाली और फ़ालतू समय को जिन झूठे और नक़ली तरीकों से भरते हैं, उनसे मुझे क्या ? हम लोग जब कलकत्ते जाते हैं तो वे गाड़ी, फ़ोन, साथ, सरोकार—सभी लेकर सेवा में उपस्थित रहते हैं। दिल के बहुत भले और सरल हैं, कहीं कोई उलझन, जटिलता और कॉम्प्लेक्स नहीं हैं। फिर उनका रहना क्यों भारी लगता है ? विश्लेषण के बाद मैंने पाया कि उनका ज़रूरत से ज़्यादा प्रेग्मैटिक—पैसावादी दृष्टिकोण ही इसके पीछे है। वे हर बात और कार्य को फ़ायदे और नुकसान की भाषा में ही समझते हैं। उनकी हर क्षण की चिन्ता या तो आर्थिक है या फिर अपने शरीर को लेकर है। वे स्वाद, आराम, सुख—इसी में इतने लिप्त हैं कि आगे की बात ही नहीं सोचते। शायद शरीर से हम सब भी इतने ही चिपके हैं लेकिन वे जैसी तन्मयता से अपने-आप और अपने सुख के प्रति सन्नद्ध हैं, वही विरक्ति पैदा करता है। डटकर नाश्ता करते हैं (उनके अधिक खाने या डूबकर खाने के पीछे मेरा कब्ज-पीड़ित कॉम्प्लेक्स है कि न तो मैं इतना खा पाता हूँ, रुचि ले पाता हूँ) कटोरी में पाँचों उँगलियाँ डुबोकर दाल या सब्जी में ग्रास को लगभग मसलकर पूरा मुँह में जिस सन्तोष से रखते हैं, वह अच्छा भी लगता है और विरक्ति पैदा करता है।

मेरे कमरे का कूलर काम करने लगा है, इसलिए लगभग हर समय वहीं जमे रहते हैं, ज़रूरी, गैर-ज़रूरी तौर पर टेलीफ़ोन करके लोगों को बताते हैं और सुबह किसी-न-किसी रूप में घेरे रहते हैं। पाँच बजे उठा तो कहने लगे, बत्ती ऑफ़ कर दीजिए यादवजी...यानी उनके रहते मैं पढ़-लिख नहीं सकता। शायद उनकी समझ में नहीं आता कि पढ़ना क्या और क्यों है ? शायद संयुक्ता से भी जो मुझे चिढ़ होने लगी थी वह वही आत्मलिप्तता थी। वह भी हर समय अपने-आपको लेकर सेवा करते रहने में ही मुग्ध थी। पराक्रम सिंह जी की यह आत्मकेन्द्रित दृष्टि रिटायरमेंट के बाद की ही नहीं पहले की ही। अख़बार पढ़ते ज़रूर हैं, मगर सिर्फ़ अभ्यास के लिए। मैंने कभी उन्हें कोई किताब पढ़ते हुए नहीं देखा। सत्य प्रसन्ना सिंह भी कहते थे कि पराक्रम, तू कभी कुछ नहीं पढ़ता। शायद यही आत्मकेन्द्रीयता है कि सुशीलाजी ने जैसे अपने-आपको एकदम विथ ड्रॉ कर लिया है। लगभंग संन्यासी जैसी रहती हैं—मगर निर्लिप्त। हमेशा ध्यान में मस्त। उनकी उपस्थिति ही जैसे महसूस नहीं होती। कभी सोचता हूँ कि क्या आगे जाकर मैं भी इसी तरह लोगों की नर्व्स पर आने लगूँगा ? फिर सोचता हूँ कि पढ़ने-लिखनेवाला आदमी हूँ। मेरे रिटायर होने का सवाल ही कहाँ उठता है ? और अगर रिटायर हुआ भी तो पिछले पच्चीस साल से रिटायर ही हूँ।

कल बीना की शादी हो गई। मैंने उसे पाँच सौ रुपए की भेंट दी। चोरड़ियाजी और लालानी के यहाँ पुस्तकें दूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

25.4.85

पिछले दिनों विलियम ऐश ने अपना एक उपन्यास भेजा था—'राइट साइड अप' इसमें नायक को महसूस होता है, जैसे बाक़ी सारी दुनिया से उसके सम्बन्ध टूट गए हैं और वह किसी से जुड़ा नहीं है। ठीक यही स्थिति मेरी है। तब भी मुझे ग़ुस्सा आया था कि साले बिल ने मेरी थीम चुरा ली है। इन दिनों मैं नारीवाला लेख लिखने में लगा हूँ और घर से बाहर निकलकर हर स्त्री को कुछ ऐसे आश्चर्य से देखता हूँ, जैसे युगों बाद इस नक्षत्र पर वापस आया हूँ—या वे आई हैं! आश्चर्य करता हूँ कि क्या इन मूर्खाओं को पता है कि वे पुरुष जाति के कितने पुराने, गहरे और अचूक षड्यंत्र की शिकार हैं? इनकी खुशी और आह्लाद देखकर लगता भी नहीं है कि उन्हें इस सबका कोई अहसास है! क्यों हर व्यक्ति मुझे इतना अपरिचित और अजनबी लगने लगा है? बीच का कुछ टूट गया है कि मुझे पुस्तकों के लोग, वहाँ की दुनिया ही ज़्यादा परिचित और अपनी लगती है—बाहरी दुनिया अनजानी और अनपहचानी।... शायद रहने का यह नक़्शा ही मुझे खा रहा है। इस तरह की गाड़ी, फ्लैटवाली सम्भ्रान्त और अभिजात ज़िन्दगी का मैं शिकार हो जाऊँगा यह तो कभी कल्पना भी नहीं की थी। क्या अब सिर्फ़ इसमें छटपटाना ही मेरी नियति है?

आजकल राकेश की डायरी को दुबारा पढ़ रहा हूँ। घर और लेखन की छटपटाहट दिल्ली आने से पहले कितनी सच और ईमानदार है।

27.4.85

कल अमृता प्रीतम की डायरी पढ़ी। ख़ुदाया, कोई इतना आत्ममुग्ध और झूठजीवी हो सकता है! इस पुस्तक का नाम 'अमृता प्रीतम के सपने' भी हो सकता था। भावुकता भरी बातों को बड़े दार्शनिक अन्दाज़ में कहना और हर समय धुन्ध और कुहासे में बने रहना, जैसे बाहर का कुछ दिखाई ही नहीं देता। औरतें आत्ममुग्ध होती हैं, खूबसूरत औरत जवानी में आत्ममुग्ध लेखिका बन जाए तो अपनी खूबसूरती को डायरी का रूप देने के छल की शिकार हो जाती है। अमृता खूबसूरत भी रही है और साहसी भी। शायद इसीलिए वह कभी छाँट नहीं पाई कि कम्प्लीमेंट्स, उसके खूबसूरत होने को हैं, साहसी होने को हैं, या लेखिका होने को। वह आज के रोमांटिक युग में ठीक जॉर्ज सैंड के अन्दाज़ से रहना चाहती है। इन्दिरा गांधी उसकी घनिष्ठ दोस्त हैं, अक्सर फ़ोन पर बातें करती हैं, उधर सपनों और कल्पनाओं में वह अपने को पार्वती और इमरोज़ को शिव के रूप में देखती है। इमरोज़ के लिए जैसे शब्दों का प्रयोग करती है, वे झूठे, नक़ली और बनावटी लगते हैं। वह महान कवयित्री, स्कॉलर, शहीद, स्वप्नदर्शी और विद्रोहिणी एक साथ है। दुनिया के बड़े से बड़े कवियों ने उस पर कविताएँ लिखी हैं, नई कवयित्रियाँ अमृता को अपनी सास बनाना चाहती हैं। कहाँ यह शब्दों की सौदागर और कहाँ कृष्णा सोबती...जिस देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में दुर्गा भागवत और महादेवी या महाश्वेता देवी हों, वहाँ अमृता राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की कवयित्री हो, यह देखकर सिर धुनने को मन करता है। हर सम्मान, हर पुरस्कार और हर प्रतिष्ठा को लपककर छीन लेनेवाली यह मक्कार औरत कहती है कि पाब्लो नेरुदा कहता है कि 'इस धरती के प्लेनेट पर ऐसा कोई लेखक नहीं, जो नोबेल-प्राइज़ की कामना नहीं करता।' तो मैं उससे कहना चाहती हूँ, 'दोस्त, इस धरती के प्लेनेट पर दो ऐसे लेखक हैं जिन्हें यह कामना अपनी तौहीन लगती है। तुम शायद उन दोनों को नहीं जानते—एक आयन रैंड है, एक अमृता...' पृ. 51, वाह रे मुग़ालते! वे चारों सवार और एक मैं। कहाँ आयन रैंड और कहाँ साहित्य के काउंटर पर खड़ी यह सेल्स-वुमैन...सॉप्पी, सेंटिमेंटल, शैबी एंड शोइ प्रिग! आयन रैंड का ही वह वाक्य याद आता है, जहाँ पर मीडियॉक्रिटी के बारे में बोलती है।

17.5.85

इस बीच जान-बूझकर नहीं लिखा। लिखा हुआ काफ़ी जमा हो गया है, कुछ और लिखना है। सोचा, इस तरह से कुछ नहीं होगा। अब इन्हें निकलना चाहिए। राजेन्द्र माथुर बहुत उत्सुक दिखाई नहीं दिये। प्रभाष जोशी से बातें कीं। वे पाँच सौ नहीं, तीन सौ देने की स्थिति में हैं। ख़ैर, यह बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। ज़रूरी है कि वे लेख अच्छी तरह छापें। कॉलम देना हो तो बाक़ायदा उसकी घोषणा करें। वे तैयार हैं, लेकिन वे भी दो-तीन लेख चाहते हैं (शायद शुरू करने के पहले देखने के लिए) और मैं भी दो-तीन पूरे कर लेना चाहता हूँ ताकि बाद में महीने में एकाध लिखूँ और बोझ न रहे। उन्हीं में लग गया और चार लेख लिख डाले, लगभग नए। एक राकेश की डायरी पर, एक महिला लेखन, अमृता प्रीतम की डायरी के बहाने, एक अनपढ़ बनाए रखने की साज़िश और एक गिरिराज के परिशिष्ट पर...आज या कल चारों लेख भेज दूँगा, देखता हूँ क्या प्रतिक्रिया है...अभी दो और लिखने हैं, दिल्ली की हिन्दी अकादेमी, और एक पत्रिका की मृत्यु (धर्मयुग) उसके बाद मन न हुआ तो बन्द कर दूँगा और रचनात्मक लिखूँगा...इधर राजकमल से सम्बन्ध बनाने की उत्सुकता उधर से कम लग रही है। मोहन गुप्त चुप है। सोचता हूँ, शनिवार को शीलाजी से खुद ही बातें करूँगा। इधर सेल काफ़ी कम है और चिन्ता होने लगी है।

मन्नू को 21 को बम्बई जाना है। पाँच को हमने बुलाया मिश्राजी, बबली, राजी और सेठ साहब, कृष्णाजी के साथ आईं स्नेहजी और उन्हें खोजते हुए अजितजी। मैंने लगभग दस दिनों बाद शराब पी। अच्छी मस्ती रही। पता नहीं, क्यों इस तरह खिलाने से मुझे बहुत खुशी होती है! हालाँकि मैं मूलतः अपने को बहुत उदार नहीं मानता। हो सकता है, यह पिताजी वाला तत्त्व हो। ख़ैर, चलते हुए मैंने मिश्राजी से कहा, अक्षर में कुछ समस्याएँ आ गई हैं इसलिए आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ। तय हुआ, सोमवार को मिलेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

22.5.85

इस बीच शानी के जन्मदिन और सूफ़िया की शादी की सालगिरह पर 16 जनवरी को मयूर विहार में जश्न रहा। शानी से दूरी आ ही गई है। शायद हम लोग अलग-अलग दिशाओं की ओर विकास कर रहे हैं। साम्प्रदायिकता के सवाल को सिखों ने नए सिरे से बीच में ला खड़ा किया है। जगह-जगह बम विस्फोट हुए हैं। ट्रांजिस्टर में बम इस तरह फ़िट किया जाता है कि नॉब घुमाते ही बम विस्फोट होता है। पिछले दिनों तो शाम को छह से आठ बजे के बीच दिल्ली में आठ-दस बम फटे। पैनिक फैल गया। बाद में टूट-टूटकर सिलसिला चलता रहा। मैं सोचता हूँ कि यह पागलपन है या सच्ची आस्था? आतंकवादी और उग्रवादी लड़के किस प्रेरणा से आत्महत्या की दिशा में दौड़ पड़े हैं? क्या इन्हें समाप्त करने के नाम पर सरकार उसी तरह एक पीढ़ी को समाप्त कर रही है, जैसे नक्सली कहकर बंगाल की एक पीढ़ी समाप्त कर दी गई? धर्मान्ध और फ़ासिस्टों की लड़ाई में हमारा वास्तविक पक्ष क्या हो? सच बात तो यह है कि मैं अपना पक्ष तय नहीं कर पाता। 'धर्मान्ध हैं, विदेशों के पैसे और प्रशिक्षण और प्रेरणा से अव्यवस्था फैला रहे हैं' कहकर उनके कत्लेआम से तकलीफ़ होती है। आख़िर कितने लोगों को पकड़ेंगे? एक राष्ट्रीय और सामान्य सरदार की तकलीफ़ और असुरक्षा में रहने की यातना मुझे उद्विग्न करती है।

जनसत्ता के लिए चार लेख लिखकर दे दिये हैं। एक राकेश की डायरी पर, एक अमृता की डायरी और ज़नाने लेखन पर, एक गिरिराज के परिशिष्ट पर और एक किताब की समस्या पर...काग़ज़ के बढ़ते मूल्य पर। अपने हिसाब से मुझे दो और लिखने हैं। दिमाग़ ही काम नहीं कर रहा। रोज़ सुबह-शाम पर टालता हूँ। आजकल तो मन्नू भी बम्बई गई है। 30-31 को आएगी। तब तक तो पूरे किए ही जा सकते हैं। फिर कहानियाँ लिखूँगा।

24.5.85

परसों मैंने एक झकाझक फ़ियेट पर प्रेस और नखरे से लिखी नम्बर-प्लेट देखी। सामने दो अतिरिक्त रोशनियाँ—अचानक लगा, अरे, यह तो मणि मधुकर है! तिलक ब्रिज से कोशिश करके सागर के पास आवाज़ दी, 'मणि'। पीछे लाकर उसने गाड़ी रोकी और निकलकर आया। साथ एक लड़की बैठी, उसे नहीं देख पाया। उत्साह से मिला, बोला, आऊँगा। मैं तभी से आश्चर्य कर रहा हूँ कि इसके बारे में जो कुछ कहा जाता है, क्या वह सच है? लिखने से तो निश्चय ही यह गाड़ी नहीं रखी जा सकती—दो कमरों की बरसाती में इंटरकॉम नहीं रखा जा सकता। तो? इतनी खूबसूरत भाषा और कहानियाँ लिखनेवाले आदमी के साथ कहाँ क्या ग़लत है? अब तो मुझे यह बात भी सही लगती है कि इसने डॉ. भार्गव से पचास-साठ हज़ार ठगे हैं या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्नाभन ज्योतिषी बनकर यह कलकत्ता में रहा है। या इसी तरह की बातें बोलने में इतना शिष्ट, मधु, प्रभावशाली व्यक्तित्व, फिर कहाँ ग़लत है इस आदमी में ?

30.5.85

आजकल मन्नू सुबह-शाम बम्बई से फ़ोन कर रही है। वहाँ पता चला कि शिशिर मिश्रा ने जैसा मन हुआ, फ़िल्म बना ली है और अब वे मिलने से भी कतरा रहे हैं। शायद धर्मेन्द्र गोयल से एक मुलाक़ात हो चुकी है। बहुत सुखद नहीं रही। अगले दिन फ़िल्म दिखाने की बात थी, वह भी नहीं दिखाई, न कोई सम्पर्क किया। अब स्टे लेने के सिवा कोई चारा नहीं है। मैंने उस सम्बन्ध के सारे काग़ज़ निकाल लिये हैं। कल लोढ़ाजी को दिखाए। वे कहते हैं कि स्टे मिलेगा। मन्नू को रोक लिया है, बासु ने। योजनानुसार आज चलकर कल पहुँचना था। अब वह पहली तारीख़ को प्लेन से चलेगी। सात बजे तक यहाँ। मगर फ़ोन शायद इसलिए भी कर रही है कि मैं यहीं हूँ या 'वहाँ' पहुँच गया। हाँ, अगर वह यहाँ हुई भी तो फ़ोन पर तो दिखाई नहीं देगी। ज़रूर इसे लेकर बेचैन होगी।

परसों से पहले दिन लालानी के यहाँ से आते हुए उमराव सिंह रुक गए। ब्लैक लेबिल पड़ी थी। हम लोग वही पीते रहे, फिर खाना भी खाया। वे भी सहमत थे कि लालानी के साथ कोई टीम-वर्क या साथ मिलकर किया जानेवाला काम असम्भव है। मगर इन लोगों के आपसी सम्बन्ध ऐसे हैं कि उन्हें काटकर ये कुछ करेंगे नहीं। तब क्या हो ? मैंने सारी ज़िम्मेदारी एक तरह उमराव सिंह पर ही छोड़ दी है कि कुछ रास्ता निकालें। कुछ न कुछ तो करना ही है। वैसे मिश्राजी वाली बात भी बता दी कि कोई अलग कम्पनी बना लें—जिसमें पैट्रियॉट या मिश्राजी भी हों।

कल शाम को घर आए नामवर। परसों 'हमलोग' की पार्टी में मिले थे। मौर्याशेरेटन में थी। स्कॉच, शैम्पेन, बढ़िया खाना और एक से एक पैसेवाले लोग—ख़ूबसूरत लड़कियाँ, हमलोग की कास्ट। पाँच-छह टी.वी. लगा दिये थे। साढ़े आठ पर 'हमलोग' आया। केक कटा, बर्फ़ का बड़ा 'हमलोग' एक तरफ़ लगा था। साहित्यकारों में—मैं, नामवर, श्रीकान्त, श्यामलाल, राजेन्द्र माथुर और कुछ पत्रकार—राकेश कोहरवाल, रामशरन जोशी इत्यादि। औरों को मैं पहचानता नहीं था। जोशी तो था ही। ऐसी पार्टियों में मैं सोचता हूँ कि मैं यहाँ क्यों हूँ ? 'हलो जी, हल्लो जी' में क्या मिलता है ? ग्लैमर से पेट नहीं भरा क्या ? शराब अच्छी लगती है, मगर कमज़ोरी नहीं है। उसके लिए दो फ़र्लांग भी चलकर नहीं जाऊँगा। यही लालानी-उमराव की संगति में लगता है। बहुत धिक्कार आता है मन में—सारे ही सम्पर्क समाप्त हो गए। सुबह मैं चाहता नहीं कि कोई मुझसे बोले भी। ग्यारह-साढ़े ग्यारह पर गाड़ी में बन्द यहाँ आ गए। जो यहाँ मिलने आ गया, मिले—शाम को कभी इन सेठों-मारवाड़ियों के साथ, कभी कहीं या घर और टी.वी.।— लीजिए साहब, दिन समाप्त! बाहरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़िन्दगी और दुनिया से लगाव कहाँ रहा? कहीं मेरे लेख-समीक्षा लिखने के पीछे यही राज़ तो नहीं है कि लोगों से मेरा जुड़ाव नहीं है...ख़ैर, वही नामवर से तय हुआ।

नामवर के साथ रम ली, खाना खाया। लगा, सारे मतभेदों के बावजूद एक सामाजिक मील्यू में साथ बढ़ने का सम्बन्ध तो है ही। शायद हम एक-दूसरे की भाषा समझते हैं। मैंने उन्हें यही समझाने की कोशिश की कि एकेडेमिक दुनिया से जो सर्वोच्च मिल सकता था, वह तुमने ले लिया, हेड, चेयरमैन ऑफ़ द लैंग्वेजेज़, कमेटियों और बोर्डों की मेम्बरशिप, परम सम्मानित आमंत्रण, अब अगर वाइस चांसलर या एम.पी. नहीं होना तो क्या चाहिए? क्यों नहीं आज सच बोल सकते? क्यों अन्तर्विरोधों या सुविधा या मुँहदेखे की लल्लो-चप्पो करते हो? बाक़ी लोगों के स्टेक्स हैं, मजबूरियाँ और महत्त्वाकांक्षाएँ हैं, वे ये सब करें तो उन्हें क्षमा कर दो। लेकिन सच अगर हम नहीं बोलेंगे तो कौन बोलेगा? आख़िर किसी की तो यह आग सिर पर उठानी ही है।

6.6.85

क्या ज्ञान का बढ़ना ही संवेदनाओं का मर जाना है? कम-से-कम मेरे साथ यही हो रहा है और इसीलिए मैं रचनात्मक कुछ भी लिख नहीं पाता। चूँकि लोगों से कट गया हूँ इसलिए आदमी और औरत मेरे सामने जीते-जागते, भोगते-भागते लोगों के रूप में नहीं, सिर्फ़ आइडिया के रूप में आते हैं। आजकल 'नारी' पर लेख लिखने के लिए कुछ चीज़ें पढ़ रहा हूँ—जैसे जर्मेन ग्रियर की 'फ़ीमेल, यूनख' पढ़ी, केट मिलेट की 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' पढ़ी, 'सेकिंड सेक्स' को पलटकर देखा, महादेवी की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' पढ़ीं (और सन् '30-'40 की उनकी सामाजिक जागरूकता पर दंग हुआ), एंगिल्स की 'ओरिजिन ऑफ़ फ़ेमिली', 'प्राइवेट प्रॉपर्टी एंड स्टेट' पढ़ रहा हूँ। शरत की पुस्तक 'नारी' पढ़ूँगा। इन सबके कारण किसी भी औरत या लड़की को देखकर यही सोचता हूँ कि क्या यह खुद जानती है कि हज़ारों सालों की कंडीशनिंग ने इसे क्या बना दिया है? पाँच हज़ार साल पहले यह क्या रही होगी? क्या आज यह गृहस्थिन या पतिव्रता, या कुमारी मानेगी कि जिन बातों को इसने जीने-मरने का प्रश्न बना लिया है, दो हज़ार साल पहले इसका स्वरूप क्या था? क्या दूसरी औरत को देखकर इसके मन में क्षण भर को भी आता है कि यह भी उसी सामाजिकता का शिकार है जिसकी मैं हूँ? क़ैदी शायद सोचते हैं, पीढ़ियों एक ही स्थिति में रहनेवाले क़ैदियों की शायद यह चेतना मर जाती है।

जब मैं किसी युवा, सुन्दर लड़की के मर ज़ाने, मार दिये जाने या जला दिये जाने का समाचार सुनता और पढ़ता हूँ तो एक मनुष्य के मरने का दुख नहीं होता—दुख होता है कि प्रकृति की इतनी सुन्दर कलाकृति कैसी क्रूरता से समाप्त कर दी गई! ऐसी विलक्षण कृतियाँ क्या यों ही बन जाती हैं—हो सकता है, हमारी तरह वह भी टुच्ची, चालाक, खूँखार या कुछ और हो, मगर थी तो एक नायाब कृति ही...कैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई इन्हें जला सकता है, इनका गला दबा सकता है या छुरा भोंक सकता है? कैसे होता है यह? कोई दर्द, कोई तकलीफ़, कोई 'सेंस ऑफ़ लॉस' नहीं होता? मीर का शेर याद आता है, 'वे लोग तुमने एक ही शोख़ी में खो दिये...पैदा किए थे चर्ख़ ने जो ख़ाक छानकर...' आज भी औरत मुझे अपने से दूर अलग और दूसरी दुनिया की चीज़ क्यों लगती है, जो निहायत बाहरी आदमी की तरह हमारी दुनिया में आ गई है और उससे भी आश्चर्य की बात है कि वह इतना एटहोम महसूस करती है...

परसों देखी थी फ़िल्म 'उत्सव', कल दोपहर में 'होली', फिर मुखामुखम (मलयालम), फिर 'पार'...इससे पहले टी.वी. पर 'दामुल', हरिजनों पर सवर्णों के अत्याचार ही तीन-चार फ़िल्मों के कथ्य हैं, उनकी यातनाएँ, उनके घरों का जलाया जाना और उनसे हाड़तोड़ काम लेना—लगता है, इन फ़िल्मों की बाढ़ आ गई है। आश्चर्य की बात तो यह है कि सरकारी नीतियों की असफलताओं, भ्रष्टाचार, फ़ासिस्टी मनोवृत्ति की इन फ़िल्मों को सरकार ही सबसे अधिक प्रश्रय दे रही है। उन्हें पुरस्कार मिलते हैं, उनके उत्सव होते हैं, उन्हें टी.वी. पर दिखाया जाता है। बहुत जागरूक निर्देशकों ने इन्हें बनाया है। अपने ही ख़िलाफ़ जानेवाली इन फ़िल्मों को धुआँधार प्रचार देना सरकार की उदारता या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान है या फ़िल्मों के माध्यम से बनाने और देखनेवालों की भावनाओं, गुस्से का कैथार्सिस करके उनके कर्म उकसाने वाले असन्तोष को शामिल कर देना है? क्योंकि निश्चय ही ये यथार्थवाद से अधिक यथास्थिति का चित्रण करनेवाली फ़िल्में हैं। जनवाद का जो दौर साहित्य में बीस-तीस सालों से चल रहा है, वह अब फ़िल्मों का 'इनथिंग' हो चुका है! 'हम अपनी भयानकतम आलोचना बर्दाश्त कर सकते हैं, अपने सबसे घिनौने रूप को देखने का साहस रखते हैं।' यह धारणा हमें सत्ता का प्रशंसक तो बनाती ही है। 'होली' विद्यार्थियों के पतित, लक्ष्यभ्रष्ट रूप को दिखाती है, 'दामुल' अछूत मज़दूर के अन्तहीन शोषण और बेगुनाह होने पर भी फाँसी चढ़ा दिये जाने का चित्रण है, 'पार' हरिजनों द्वारा विरोध किए जाने पर जलते मकानों और ज़मींदारी हमले से भागे हुए जोड़े की कहानी है। 'मुखामुखम' सबसे अच्छी और विचारोत्तेजक है कि क्या क्रान्ति सफल होने पर सामूहिक सुविधावाद और भोगवाद में भ्रष्ट होती है, असफल होने पर व्यक्तिगत पतन में? केरल की कम्युनिस्ट सरकार इसके केन्द्र में है! यह सवाल ज़रा ज़्यादा आधारभूत और व्यापक है।

शाम को राजी अपने घर ले गई, खा-पीकर बारह बजे लौटे...नींद इधर दिन हो या रात दस मिनट पढ़ते ही आने लगती है—कुर्सी-बिस्तर, कहीं भी। पढ़ने में आँख और भी तकलीफ़ देने लगी है।

10.6.85

शनिवार रात से सोमवार सुबह तक लगता है, जैसे मैं अपनी रचनात्मक दुनिया में रहता हूँ। लिखने की बातें मन में उभरने लगती हैं और फिर यहाँ आकर सारा मकड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाल छिन्न-भिन्न हो जाता है। कल अचानक सुधीर और सुमन आ गए। ठीक दोपहर में। खाना खाने के बाद हम सो रहे थे। सचमुच दुश्मन ही लगे। फिर धीरे-धीरे बातें शुरू हो गईं। सुधीर से सचमुच संवाद नहीं बन पाता। 'और जी ?' के प्रश्न और 'आनन्दम' के उत्तर में बात कहाँ तक आगे बढ़ सकती है ? ख़ैर, उसी सिलसिले में सत्ते का भी ज़िक्र आया और सचमुच चिन्ता हुई कि आगे क्या होगा ? उम्र बढ़ती जाएगी और आत्मविश्वास या आत्मनिर्भरता समाप्त होती जाएगी। आँखों में तकलीफ़ है ही। न खाने का ठीक, न रहने का। एक बार कहीं आ जाता है तो जाने का नाम ही नहीं लेता। नतीजे में कोई भी नहीं बुलाना चाहता। जिसके यहाँ ठहरता है, उसकी मुसीबत कर देता है, मेहमान, किताबें, टेप और बाबा-बाज़ी। यानी वह इतना बोर हो जाता है कि जल्दी से जल्दी जान छुड़ाने लगता है। 'इधर 'ख़र्च नहीं चलता' पेंशन में', का रोना भी है। न यह नौकर रख सकता है, न पैसा ख़र्च कर सकता है। कहता ज़रूर है कि कहीं नौकरी कर लूँ। कोई काम शुरू कर दूँ। मगर इससे कुछ नहीं होगा, मुझे इसका भविष्य सोचकर आतंक होता है! सुमन, नन्ही, माधवी, मुन्ना—कोई भी तो अपने पास नहीं रखना चाहता। हमारे यहाँ कमरा ख़ाली है, जब तीन-चार महीने चन्दर रह सकता है तो सत्ते क्यों नहीं ? लेकिन चन्दर ने अपने को बिल्कुल स्थगित करके रखा था, यह सारी व्यवस्था को तोड़ देगा। वक्त-बेवक्त मिलनेवाले और मेहमान पकड़कर लाएगा, उल्टे-सीधे समय चाय-खाने की माँग करेगा, बेकार बीच में आकर अपनी आध्यात्मिक बेवकूफियाँ झाड़ेगा। शायद कहीं बहुत आहत भी है, घर जाने से कतराता है। और मैं सोचने लगा, क्यों न अपने परिवार पर ही एक उपन्यास लिखूँ—'ब्रदर्स कार्माज़ोव' की तरह ? मगर लिखा जाएगा मुझसे ? इधर आँखें बहुत तकलीफ़ दे रही हैं, लिखने-पढ़ने से बचने लगा हूँ। जाँच भी करवा ली। बीमारी कुछ भी नहीं है। ख़ैर, लालानी और सुनीति की बताई दवाएँ लूँगा।

शाम को आई गईं कृष्णाजी। वे मन्नू को कश्मीर ले जाने के पीछे पड़ी हैं। वहाँ शायद सारी व्यवस्था है, मगर अकेले होने के कारण जा नहीं रहीं, इसलिए बेहद आग्रह है। मन्नू को 'बंटी' फ़िल्म का स्टे ऑर्डर लेना है,' कानूनी सलाह लेनी है, इस तर्क पर डगमगा रही है। खाना खाकर बातें करने बैठे तो विषय हम लोग हो गए। कृष्णाजी ने भी वही कहा जो इधर प्रायः सभी लोग या तो महसूस करते हैं या कहते हैं, कि हम लोग बदल गए हैं, कि हम लोग भयानक जनसम्पर्क बनाकर रखते हैं, कि हम लोगों के मूल्य बदल गए हैं, कि पैसे के लिए लिखते हैं। यही धारणा शायद शर्माजी की है और यही अजित परिवार की। दोपहर को सुधीर भी यही बात कह रहा था कि मोतीलाल बनारसीदास या चौखम्बा के पास तो अनन्त पैसा है। आपके पास भी है। वह पैसे के टर्म्स में सोच सकता था, इसलिए पैसे की बात की। कृष्णाजी मूल्यों की बात कर रही थीं। उन्होंने कहा, ''यू पीपुल हैव बिकम स्मग।'' देर तक मैं उन्हें समझाता रहा कि लेखक और कलाकार की जो एक तस्वीर है कि फटेहाल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रूरतमन्द, भूखा, बेसहारा—बीवी-बच्चों की लाइलाज मौत—मैंने या राकेश ने कभी उसका समर्थन नहीं किया, बल्कि हम लोग लेखकी की छवि के विपरीत 'वेल ड्रेस्ड' होने के लिए बदनाम। कलकत्ते में भी मैं स्वतंत्र कमरा लेकर रहा और यहाँ भी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाने पड़े। अक्षर के ज़माने को छोड़कर।...जहाँ तक मुझे याद आता है, मैंने प्रलोभन और अवसर छोड़े ही हैं। बीस बरस की दोस्तियों में कभी कोई प्रत्याशा नहीं की। जो कुछ मन ने नहीं कहा, वह नहीं लिखा। जो बात जिस रूप में मन में उभरी, कह डाली। कभी किसी के पैसे नहीं मारे, लोगों की भरसक मदद की, नौकरियाँ दिलाईं या जो कुछ हो सका, किया। फिर लोगों को क्यों ऐसा भ्रम है कि हमारे सरोकार और मूल्य अब लेखकों के या पहले से नहीं रह गए हैं? हम लोग भटक गए हैं। पता नहीं, यह धारणा कैसे बनी है? पहले जब दो गाड़ियाँ थीं, तब बनीं, यह नया मकान और इसकी साज-सज्जा से बनी, या टिंकू की शादी से बनी...शायद लेखकों से यह सब उम्मीद नहीं की जाती है। सही है कि मन्नू कुछ ज़्यादा व्यवस्थित है, वह पैसों के मामले में ज़्यादा योजनाबद्ध है, चौकस है। मेरी हालत तो वही है। मुझे उसके पैसों की तरफ़ देखने या जानने की सचमुच ज़रूरत नहीं महसूस होती। शायद यह आत्म-प्रशंसा होगी, लेकिन बहुत ईमानदारी से यह सच है कि पैसा मेरी कमज़ोरी कभी नहीं रहा। आज भी सब मिलाकर चौदह-पन्द्रह हज़ार से ज़्यादा नहीं है, न कहीं बीमा, न डिपॉजिट—वही बैंक में दस का एफ.डी., और पाँच-सात हज़ार—मगर लगता ही नहीं कि होना चाहिए। जो है, वही चलता रहे। बस। बीस बरसों में अक्षर से सिर्फ़ गाड़ी की सुविधा ली है—सो वह भी मन पर बोझ है। बुर्जुआ बाबुओं की तरह अकेले गाड़ी में बैठे चले जा रहे हैं! गधे!

शायद इस इम्प्रेशन का कारण मन्नू की वह थीम है जो वह अपने नए उपन्यास के लिए बार-बार बताती है। कैसे हम तीन लोगों ने लेखन के लिए एकान्त, प्रतिबद्धता से ज़िन्दगी शुरू की और फिर कैसे सुविधाओं में ढुलक गए। हमारी प्राथमिकताएँ बदल गईं। और यही थीम लोगों ने हम पर लागू करनी शुरू कर दी। बहरहाल, लगता यही है कि जैसे अजित-स्नेह, शर्मा-शर्मी, कृष्णाजी इत्यादि सभी की यह धारणा है कि हम लोग कैलकुलेटिव, तिकड़मी और पैसा-परस्त हैं; ऐश में लोट रहे हैं। अब किस-किसको बताएँ कि हम कहाँ, क्या और कितना छोड़ते रहे हैं? वह सब, जिसके लिए लोग उलटे लटके रहते हैं? वैसे मैंने सुबह शर्माजी को, शाम को कृष्णाजी को कहा भी कि देखिए, हमें चाहिए सब कुछ, लेकिन रिरियाकर नहीं, अपनी शर्तों पर लूँगा। नहीं तो नहीं लूँगा।

10.6.85

कल जगजीत (भइए) का कोना फटा कार्ड मिला, चाचाजी नहीं रहे। उस समय कुछ नहीं लगा, फिर धीरे-धीरे मन में कुछ घिरता गया। छोटे चाचाजी (राम सिंह जी) ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अन्तिम कड़ी रह गए थे जो हमें ऊपर से बाँधे थी, यानी वंश-परम्परा थी। चाचा-ताउओं से हम जुड़े थे। अब यह भी टूट गया। यानी अब हम सब अलग-अलग हैं। शायद अब परम्पराएँ हमसे चलेंगी। चाचा के साथ सहारनपुर स्टेशन पर रहना, प्रभाकरजी से मुलाक़ात, गाज़ियाबाद हमारा और राजेन्द्र शर्मा का जाना, फिर कानपुर से होकर गाड़ी में जाना और चाचाजी को देखकर छिप जाना, सहारनपुर की पकौड़ियों की सब्जी, सत्तो—सभी कुछ याद आता रहा। सुबह साढ़े चार बजे उठकर कुर्सी पर बैठा यही सब सोचता रहा कि यह सिर्फ़ मन की ही बात होती है या सचमुच जीन्स का कुछ खिंचाव होता है? देखते-ही-देखते किस तरह सारा परिवार बिखर गया, सब एक-दूसरे से अपरिचित हो गए, ऊपर से नीचे तक जैसे दीवार दरककर टूट गई। शायद यही अनिवार्यता थी इतिहास की। सत्ते पर लम्बी कहानी लिखी जाए क्या?

13.6.85

परसों शाम को प्रभाष जोशी से मिलना था। उसी कॉलम के सिलसिले में। एक लेख और दे दिया। अब उनके पास लेख हो गए हैं—राकेश की डायरी, ज़नाना लेखन, परिशिष्ट, अनपढ़ बनाए रखने की साज़िश और एक साप्ताहिक मौत। एकाध और दे दूँगा। जल्दी ही शुरू करना चाहते हैं, कहते यही हैं। बाहर निकले तो मंगलेश, पंकज सिंह, बरेली के वीरेन्द्र डंगवाल और राकेश कोहरवाल खड़े थे। थोड़ी देर बातें कीं और फिर मैं उन्हें गाड़ी में बैठा लाया। घर पर दारू पी। वीरेन्द्र, सुनते हैं, बहुत अच्छा कवि है, बरेली में अंग्रेजी पढ़ाता है और 'अमर उजाला' का रविवारी संस्करण देखता है। बहसें, बातें। बीच में कर्नल आनन्द भी आ गए। बहुत अच्छी शाम रही। पंकज ने बन्द की हुई है।

कल सुबह गिरिराज आ गया। ये लोग सुबह ही आए थे। यानी वह और नरेश चतुर्वेदी। घर से हम लोग नरेशजी के यहाँ गए। वहाँ से शानी के पास साहित्य अकादेमी। वही लेखक संगठन की बातें हुईं। असली दिक़्क़त है चेयरमैन तलाश करने की। इसमें नरेशजी जिस तरह नन्दन, या औरों को लेना चाहते हैं, या कभी कमलापति का नाम लेते हैं, कभी विश्वनाथ प्रताप का। नवम्बर में राजीव से उद्घाटन कराना चाहते हैं। मैं सोचता रहा कि इस सबमें हमारी जगह कहाँ है? मैं क्या करूँगा इन लोगों के साथ शामिल होकर? गिरिराज आग्रह कर रहा है। वहाँ से चलने लगे तो मालूम हुआ, शानी को कहीं जाना है। कनिष्क में। समझ गया, फ़िल्म का चक्कर होगा। यहाँ दफ़्तर आया तो बासु का फ़ोन। कल मन्नू का जन्मदिन था। शायद इसीलिए सरोज कौशिक उसे खाना-खिलाने ले गई थी। शाम को आनेवाली थी। वहाँ फ़ोन कर रहे होंगे। घर में कोई था ही नहीं। बासु से मालूम हुआ, शानी को वहीं जाना था। शाम को हम और गिरिराज पहुँचे। जल्दी जाना था, टिंकू के यहाँ। बासु ने व्हिस्की निकाल ली। संकेत से कहा—शानी का आपके ज़रिए परिचय हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आपसे ही छिपा रहा था। मुझे भी लगा, यह क्या हरकत है। ख़ैर, बाद में रंजीत कपूर आ गया। बेगम का तकिया, मुख्यमन्त्री, रुका हुआ फ़ैसला और नैक्रासोव के जो नाट्य-रूपान्तर उसने किए, वे अद्‌भुत हैं और मुझे उसके लिए मन में बहुत सम्मान है। ख़ैर, इसी में देर हो गई। नौ के बाद निकले। घर पहुँचे तो बत्ती नहीं। वहाँ से टिंकू के यहाँ। देर से आने पर काफ़ी भर्त्सना हुई। सुबह फिर बासू आ गए। अभी कनिष्क में छोड़कर आया हूँ। आते ही होंगे। वहाँ राजेश जैन आ गया था।

22.6.85

सुबह का सपना। मेरे कमरे में बाहर की ओर, यानी पार्क की ओर खुलनेवाला एक दरवाज़ा है। वहाँ हम लोग बैठे हैं—मैं, मन्नू, टिंकू। एक छोटी-सी साइकिल पर जो लड़की सामने से आती दिखाई देती है वह मीता है। फ्रॉक पहने। हमें देखकर उतर जाती है और पास आती है तो साड़ी पहने है। आकर सामने बैठ जाती है। मन्नू उससे धीरे-धीरे कहती है कि अब मैं इन्हें (मुझे) तुम्हें देती हूँ। वह ना-समझ के भाव से देखती रहती है और फिर उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं, आप मुझे भिखारी मानकर भीख दे रही हैं? और तब आँखें खुल जाती हैं। क्या तुक है इस सपने की? इससे पहले मधु जैन, जलगाँव वाली हमें ताज पैलेस ले गई थी। वहाँ हम काफ़ी देर रहे। उसी रात सपना दिखाई दिया, इंडिया इंटरनेशनल का लॉन है, वहाँ मैं नामवर से बातें कर रहा हूँ। यह सही है कि पिछले दिनों 'हमलोग' की पार्टी में नामवर से बहुत दिनों बाद भेंट ताज पैलेस में ही हुई थी, इसलिए दिमाग़ में वहाँ जाने के सूत्र से नामवर दिखाई दिये। फिर वह इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में कहाँ पहुँच गए?

मन्नू आजकल प्राय: अपना कमरा बन्द ही रखती है। लगता है, किसी भीषण अन्तर्द्वन्द्व से गुज़र रही है।

7.7.85

इस बीच में सिर्फ़ किताबें पढ़ी हैं।

निकोलाई आस्त्रोवस्की की 'अग्निदीक्षा' (कही पकड़ नहीं पाया, उपन्यास)। 'स्टोरी ऑफ़ ओ' (पॉलिन रेगे) नकली नाम। फ्रांस का बेहद चर्चित उपन्यास। इस पर लिखूँगा। साद की याद ताज़ा कर दी।

स्टोरी ऑफ़ आई (म्लम) (जॉर्ज बेतले) काव्यात्मक उपन्यास...अश्लीलता के आरोप से चर्चित। अन्त में सूसन सोंटाग का अच्छा लेख है—द पोर्नोग्राफिक इमैजिनेशन।

'सिमोन द बोउवा' का लम्बा लेख मस्ट बी बॉर्न सादी दुबारा पढ़ा। जब पढ़ा था, तब भी बहुत उत्तेजक लगा था। आर.के. मिश्रा से उसकी फोटोस्टेट करा रहा हूँ।

'बियाबान में खिले किंशुक' राजी ने सुधा श्रीवास्तव का उपन्यास दिया था। पढ़ा। अच्छा, पठनीय और रोचक उपन्यास। पहले उपन्यास की दृष्टि से ख़ासा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशास्पद। पात्र सारे अति-सरलीकरण के शिकार हैं। नेहा, नीलाक्ष के अलग होने की कहानी—बेटी तुहिना।

और अब पढ़ रहा हूँ दुबारा एन्थोनी बर्गेस का क्लॉक वर्क ऑरेंज। अब इरादा स्टोरी ऑफ ओ और इस उपन्यास को मिलाकर एक लेख लिखने का है—द थीम डीह्यूमनाइजेशन ऑर ब्रूटलाइज़ेशन।

लगता है, बाहरी दुनिया से बिल्कुल ही कट गया हूँ। बाहर से कोई सम्पर्क नहीं रह गया। वही गाड़ी में बैठे, यहाँ। यहाँ से घर। या फिर किसी से मिलने। घर पर मन्नू, नौकर, भोलेश्वर या कोई आने-जानेवाला। यहाँ वही कर्णसिंह, गोपाल मधु, मलिक साहब, चन्दर, या आनेवाले। जिनसे आप रोज़ मिलते हैं, उनके आपके बीच संवेदना का अन्ध-बिन्दु बन जाते हैं। वे आपको कहीं न छूते हैं, न उत्प्रेरित करते हैं। यानी बाहरी संवाद बिल्कुल बन्द। ले-देकर किताबों की दुनिया। हमेशा लगता है, जैसे एक दलदल में रोज़ दो इंच और नीचे धसक जाते हैं। कहीं किसी की आवाज़ नहीं आती।

3.8.85

साहित्य अकादेमी का राजेन्द्र सिंह बेदी सेमिनार हुआ और अलीगढ़ में जनवादी लेखक-सम्मेलन का कथा समारोह। बेदी वाला उर्दू और हिन्दी को मिलाकर हुआ था, इसलिए डर था कि कुछ ऊल-जलूल न बोल जाऊँ। लेकिन लगा कि सबसे अच्छे मुद्दे मैंने ही उठाए। कम-से-कम नामवर इत्यादि ने डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, नित्यानन्द, डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी, विश्वनाथ त्रिपाठी इत्यादि के सामने यही कहा। तब हम लोग निर्मलाजी के पोतों के नामकरण के अवसर पर डिफेंस-क्लब, धौलाकुआँ में मिले थे। खाना था।

26.8.85

इसी बीच लगभग डायरी नहीं लिखी। कुछ बाहरी भाग-दौड़, व्यस्तताएँ, कुछ मेहमानवाज़ी और कुछ भीतरी आलस्य। इस बीच भीमसेन त्यागी से दो बार भेंट हुई। वह राजकमल लेना चाहता था, मोहन गुप्त के साथ। जब वह सम्भव नहीं हुआ तो निगाह गई अक्षर की ओर। बेटे के साथ मिलकर चलाना चाहता है। कुछ बातें यहाँ हुईं, कुछ घर। पिछले रविवार यानी 18 को मोहन और भीमसेन दोनों घर आए। बात जहाँ टिकी, वह यह कि मैं सिर्फ़ औपचारिक रूप से अक्षर से जुड़ा रहूँ, चेयरमैन बनकर—सारा काम-काज वही सँभाले। बैलेंस शीट देखी और मोटे रूप से 5 लाख की बात हुई। ढाई शुरू में, बाकी हिस्सों में। मैंने विचार करने को समय माँगा। समय उसे भी चाहिए था, ताकि गाँव की ज़मीन इत्यादि बेचकर आ सके। बाद में मैंने सोचा कि दस या पन्द्रह हज़ार रुपया महीना चलते हुए व्यवसाय से निकालना मुश्किल होगा, इस बार नहीं, अगली बार को बात टलेगी और बदमज़गी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी। इसलिए ज़रूरी है कि इस दिशा में सोचना हो तो एक साथ ही देने की बात की जाए। रॉयल्टी हर साल मिलती रहे।...दूसरी तरफ़ लालानी इत्यादि ने साफ़ कह दिया है कि हम पंचप्रकाशन को अभी चला सकने की स्थिति में नहीं हैं; क्यों न पत्रिका की योजना अक्षर से ही हो। वहाँ भी पाँच लाख देने की बात है। तय यही करना है कि पाँच लाख कैसे दिये जाएँ? कितने शेयरों के रूप में और कितने लोन की तरह? पहले तो बैलेंसशीट का अध्ययन हुआ। दो बार लोढ़ाजी आकर लम्बी-चौड़ी जानकारी ले गए। वहाँ का काम तो ढीला-ढाला ही चलता है। अभी तक बात थी बराबरी के शेयरों की, अब लालानी ने लगाई है 45-65 प्रतिशत का। इस पर भी बात होगी। पता नहीं क्यों, लालानी हमेशा इस बारे में कुछ अजीब कुंठाओं का शिकार है। वह बात नहीं बढ़ने देता। पिछले तीन वर्षों से वही अड़ंगा लगा रहा है। उमराव सिंह और कन्हैयालाल होते तो अब तक पत्रिका निकले साल बीत चुका होता। उन लोगों का भी धर्म-संकट है। आपसी सम्बन्ध हैं। फिर इस दिशा में उन सबको जाग्रत तो लालानी ने ही किया है। माँगीलालजी शुरू से तटस्थ थे। जो आप कहेंगे, वह हम कर देंगे—के भाव से। बाकी लोग काफ़ी डिसगस्टेड हैं।

ये दोनों प्रस्ताव मैंने इस शनिवार को टिंकू-दिनेश के सामने रखे। अगर इन लोगों ने रुपए दिये तो व्यवस्था कौन सँभालेगा? वे लोग रुपए-पैसों के नियंत्रण के लिए लोढ़ाजी को लगाएँगे। मैं चाहता हूँ कि टिंकू को इसमें शामिल करूँ—ताकि आगे-पीछे सँभाल सके। पत्रिका में विज्ञापन की बात हुई। दोनों ने दिलचस्पी दिखाई और लगा, पाँच-सात पृष्ठ ला सकना मुश्किल नहीं होगा। लेकिन इतने परिश्रम के बाद पत्रिका जमाएँ और फिर मैजॉरिटी शेयर्स के चक्कर में अक्षर छोड़ना पड़े, इस स्थिति पर इन्हें आपत्ति है। ख़ैर, यह बात भी करूँगा। मुझे लगता है, अपना एक सुयोग्य सहायक निगम, सेल्स-सर्कुलेशन इंचार्ज—टिंकू और पीछे से दिनेश। पत्रिका तो हम लोग जमा लेंगे। अमर गोस्वामी हाथ से निकल गया। उसे मिश्राजी ने गंगा में नियुक्ति दिला दी। 5 अक्टूबर को आया था। अब तक नियुक्ति-पत्र पहुँच गया होगा। यह प्रस्ताव मैंने उसके सामने भी रखा था। समय निकालकर भरसक मदद करूँगा का भाव है।

इस बीच छह-सात दिन पराक्रम सिंह भंडारी आकर रहे। आनन्द और मीरा को जाना था। घर में दावतें, दारू का प्रकोप रहा। विमला पंडित आई। कल के रविवार कोई नहीं आया। पिछले रविवार सुबह से शाम तक धमाचौकड़ी ही रही। ठाकुर साहब भोजाजी (चन्द्र शंकर नागर) आए। अपनी प्रकाशित पुस्तकें लेकर। अपनी षष्टिपूर्ति त्रिसन्ध्या को लेकर बहुत ही गदगद थे।

परसों से 'सारिका' का अमृतलाल नागर विशेषांक पढ़ रहा हूँ। प्रतिभाजी के न रहने से नागरजी का अकेलापन बहुत भावुक बना गया। मन हुआ, पहली फ़ुरसत में एक चक्कर लखनऊ का लगा आऊँ।...सुबह समझ में नहीं आता कि कुछ भी लिखो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कहाँ छपाओ ? धर्मयुग, साप्ताहिक बेकार हैं, रविवार में राजनीतिक धुआँधार है, सारिका रचनात्मकता से एकदम कटी हुई। छह-सात लेख 'जनसत्ता' में पड़े हैं। शायद प्रभाष जोशी तैयार हैं, लेकिन मंगलेश बीच में अड़ा हुआ है। जितने धैर्य और क्षमा-भाव से मैं इन लोगों को, पिछले तीन महीने से समय दिये जा रहा हूँ, उसे देखकर खुद आश्चर्य हो रहा है। अजीब स्थिति है, जहाँ आप जो कुछ महसूस करते हैं, कह नहीं सकते। बीच में मूर्ख, कुंठित, डरपोक और समय साधक सम्पादक बैठे हैं।

एक दिन बाद ही मेरा जन्मदिन है। इस वर्ष को क्या कहूँगा ? असफल प्रयासों का वर्ष, दस-बारह लेखों का वर्ष, भीतर और अधिक मर जाने का वर्ष ? झूठी आशाओं और हवाई भविष्य का एक वर्ष—कहीं मौत के बहुत पास आ जाने का वर्ष...सोचता हूँ, जन्मदिन पर आत्मविश्लेषण करूँगा कि क्यों मेरी चीज़ें एक सिरे से नहीं चढ़ पातीं ? कुछ भी तो कहने लायक नहीं हुआ ? कैसे कर लेते हैं लोग ? आज भी वात्स्यायनजी कैसे सुव्यवस्थित तरीक़े से कितना काम करते हैं ? 'एक जगह सब' के लिए। पिछले बीस दिनों से प्रारम्भिक कहानियाँ खोज रहा हूँ, उन्हें संशोधित कर रहा हूँ और लगता है : यार, मैंने भी काफ़ी लिखा है। तीन समीक्षा पुस्तकें लगभग तैयार हैं और नई-पुरानी दो संग्रह की कहानियाँ हाथ में हैं। ज़िन्दगी इतनी अकारथ तो नहीं गई। लेकिन एक-दूसरे व्यक्ति की ज़िन्दगी खाकर मुझे जो कुछ, और जितना कुछ करना चाहिए था उतना कहाँ किया। बार-बार मन में आता है कि 'एक जगह सब' के दो या तीन जो भी खंड बनें, वे बाक़ायदा मीता के नाम कर दूँ। यानी इन संकलनों की सारी रॉयल्टी वही ले—अलग-अलग कहानियों पर अधिकार चाहे न हो, लेकिन इन जिल्दों पर उसी का हक़ रहे। कुछ तो देना ही है उसे!

28.8.85

अब यह गिनती भी छोड़ दी है कि यह मेरा कौन-सा जन्मदिन। होगा कोई साला! शायद सभी पचास-पचपन तक रेसिस्ट करते हैं कि अभी मेरा क्या बिगड़ा है, अभी तो सभी कुछ वैसा ही है, जैसा तीस-चालीस की उम्र में था, शायद पौरुष भी रहता हो। फिर धीरे-धीरे हथियार और हाथ-पाँव छोड़ दिये जाते हैं। वही स्थिति मेरी है। दूसरे बड़े-बड़े लोग जब अंकल कहते हैं तो भीतर से वैसा विरोध नहीं जागता। अब बुढ़ापे को स्वीकार कर लेने की मानसिकता बन रही है। हालाँकि घनघोर शिकायत यही है कि न ज़िन्दगी में कुछ किया, न देखा। एक सम्भ्रान्त आदमी की आडम्बरी, मध्यवर्गीय ज़िन्दगी बिता डाली। अरे कुछ वर्जनाहीन ढंग से जीता, कुछ जीवन की गहराइयाँ और निचाइयाँ देखता—यह नक़ली और दुहरी ज़िन्दगी भी कोई जीने की चीज़ थी—ख़ूबसूरत फ़्लैट, रंगीन टी.वी., गाड़ी, वेक्यूम-क्लीनर या एयर-कंडीशनर...न रही हो पैसे जमा करने की चाह, असुविधा भी तो नहीं रही। जब जी चाहा वह मिला ही है। तो क्या सचमुच अभाव की अनुभूति ही भावनाओं की शिद्दत देती है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4.9.85

कल एक नाटक हुआ...23 तारीख़ को मन्नू की ओर से 'कला विकास पिक्चर्स प्रा.लि.' पर मुक़दमा कर दिया गया, आर.सी. चोपड़ा की अदालत में। 'बंटी' को समय की धारा बनाकर डिस्टॉर्शन कर दिया, बरबाद कर दिया। उम्मीद थी, उसी दिन स्टे मिलेगा। जज ने 3 तारीख़ दी। कल जो कोर्ट पहुँचे तो वहाँ देखा, धर्मेन्द्र गोयल। साथ शक्तिनगर का कोई ओ.पी. शर्मा, कोई मिश्रा जिसने 'रज़िया सुल्तान' बनाई थी। ख़ैर, जवाब के लिए दोपहर तक का समय माँगा। इसके बाद शर्मा जान को लग गया। खत्म कीजिए...हम तो शक्तिनगर में ही रहते हैं, इतने पुराने पड़ोसी हैं। कल ही बेचारा बच्चा आया है, मेरा तो छोटा भाई है। बहन ही मानता है मेरी मिसेज़ को। पचास से ऊपर। गठा हुआ शरीर, चिकना चेहरा, रेशमी कुर्ता और पैंट। कानों पर बाल। आध घंटे वहाँ खड़े रहे, फिर मैं और मन्नू यहाँ आ गए। उसे भी बुला लिया था। सेल्स टैक्स में काम करके आ गया। मन्नू ने बम्बई प्रसंग बताया। व्यवहार का ज़िक्र किया। उसका आग्रह था कि मुकदमा वापस ले लिया जाए। ख़ैर, दो बजे हम लोग पहुँचे। इस सारे समय अरविन्द जैन साथ रहा। उन लोगों ने जवाब दाख़िल किया। तारीख़ मिली दस। बाहर निकले तो फिर वही शर्मा—ख़त्म कीजिए! धमेन्द्र शाम की फ़्लाइट से जाना चाहता था। तय हुआ कि सात-साढ़े सात पर ये लोग हौज़ख़ास आ जाएँगे। धर्मेन्द्र वहीं से चले जाएँगे। आए पाँच आदमी—शर्मा,

धर्मेन्द्र, मिश्रा और दो और। इधर हम और अरविन्द। चाय-पानी हुआ। शर्मा तारीफ़ में लगा। घर की, फ़्लैट की। हमारी। मिश्रा के पास रज़िया के फ़्लॉप होने के क़िस्से, छह करोड़ का घाटा और अमरोही का व्यवहार। धर्मेन्द्र धीरे-धीरे खुला, मैंने 82 लाख फिल्म में लगाए हैं, आपके उपन्यास से अच्छी फिल्म बनाई है। आपने फ़िल्म देखी नहीं है। कल सुबह चलिए, शाम को लौट आइए। साढ़े नौ, पौने दस तक यही सब बातें होती रहीं। कमलेश्वरजी मेरे इतने अच्छे दोस्त हैं, नई कहानी मेरे लिए लिख रहे हैं। हमारा स्टैंड एक ही था, उपन्यास के साथ ज़्यादती की गई है। बताया, बम्बई में तहलका है कि कौन ऐसा धर्मेन्द्र गोयल है जिसने बाज़ार से बिना पैसा उठाए 80 लाख लगा दिये! अगर किसी ने नहीं ली तो बीस-पच्चीस लाख और लगाऊँगा, ख़ुद डिस्ट्रीब्यूट करूँगा। मेरा काम बिल्डिंगों का है। मुझे अस्सी की कोई चिन्ता नहीं है। पड़ा रहे। फूँक दूँगा। ख़ैर, काफ़ी झाँय-झाँय के बाद मिश्रा ने तीन विकल्प दिये: एक, फ़िल्म में कुछ परिवर्तन हो; दूसरा, फ़िल्म ऐसे ही चलने दी जाए और फ़ायदे में हिस्सा लिया जाए। तीसरा, मन्नू और बंटी का नाम ड्राप कर दिया जाए। धर्मेन्द्र ने कहा—फ़िल्म रिलीज़ हो या न हो, बदलूँगा कुछ नहीं। लाभ में हिस्सेवाली बात हमने काट दी। धर्मेन्द्र ने गुस्से में कहा—मैं आपको दस लाख देता हूँ, आप उपन्यास पर दूसरी फ़िल्म बनवा लीजिए। ख़ैर, हमने सोचने का समय माँगा। विदा हुए। शर्मा का आग्रह था कि कल फ़ोन पर बात की जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मेन्द्र नौजवान—35-40 वर्ष का लम्बा लड़का-सा है। व्यवहार में परिष्कार है। बोला—मैंने चार साल उपन्यास पर सोचा है। उससे अच्छी फ़िल्म न बना दी हो तो जो चाहे कर लीजिए। बम्बई के अख़बार भरे पड़े हैं कि जिसे गुलज़ार नहीं बना पाए, ताराचन्द बड़जात्या नहीं हिम्मत कर सके, बी.आर. चोपड़ा जिस पर फ़िल्म बनाने की बात सोचते ही रह गए, वह धर्मेन्द्र ने कर दिखाया। आप कहते हैं कि बदल दूँ!

ख़ैर, धमकी, ज़िद, ख़ुशामद, लेखक-कलाकार के अहं को सहलाना—सभी कुछ अलग-अलग धरातलों पर हुआ। धर्मेन्द्र अपने जगह बज़िद है। आज ओ.पी. शर्मा का फ़ोन अक्षर में आया था। नम्बर छोड़े हैं। मैंने नहीं किया। आएगा अपने-आप। इसी बीच कर्नल आनन्द आ गए मिसेज़ आनन्द के साथ। फिर रंजन-सुदर्शना आ गए। फिर मुन्ना। हम लोग बहुत श्योर हैं कि स्टे मिलेगा। मन्नू को कभी-कभी बहुत डर लगता है कि अरविन्द जैन उत्साही और सिंसियर बहुत है, अनुभवी नहीं है। वह बड़ा वकील हाईकोर्ट से पकड़कर लाया है। मुझे लगता है, अगली बार हो सकता है, कमलेश्वर को ले आए। अरविन्द कहता है, स्टे अगर मिल जाए फिर सारा रवैया देखिए। वैसे भी सारा व्यवहार, घर आकर इतनी देर बैठना, धर्मेन्द्र के पैसे का दम्भ तो झड़ गया है। मैं तो कलाकार बनने गया था। मैं आर्किटेक्ट हूँ।

12.9.85

ये दिन अजीब धमाचौकड़ी के हैं। सुबह से शाम तक पता ही नहीं चलता। उधर बंटी का मुक़दमा, इधर आने-जानेवालों का हमला—अक्षर और दूसरे प्रभाव-दबाव। मेरे अपने लिखने की चिन्ताएँ। इधर आठ-दस लेख जो लिखे, उन्हें संशोधित करने, छापने की समस्याएँ...

पहले ओ.पी. शर्मा धर्मेन्द्र गोयल की ओर से पीछे पड़ा रहा। दो-एक बार अलग मिला। फिर उमराव सिंह के यहाँ। स्थिति स्पष्ट है, वे लोग 'बंटी' फ़िल्म को बदलेंगे नहीं। नाम हटाएँगे। नाम हटाने का पैसा पूछने या एक राशि पर सहमत होने की रस्साकशी है। उमराव सिंह और लोढ़ा का दृष्टिकोण पैसा लगानेवाले का दृष्टिकोण है। ठीक है, आप नाम हटा लीजिए, जो दस-बीस हज़ार लेना हो, वो ले लीजिए। मैंने कहा—दस बीस हज़ार ? मन्नू ने जो स्क्रिप्ट उन्हें बिना किसी आर्थिक मुआवज़े के लिखी थी, उसी के एक लाख ले लेगी। उन लोगों को विश्वास नहीं हुआ कि लेखक भी इतना लेते हैं। लालानी ज़रूर कहते रहे कि हाँ, लेते हैं। ख़ैर, हम यही सोचते रहे कि कितना लें। उधर अरविन्द जैन ने तो जैसे अपनी ज़िन्दगी का मिशन ही बना लिया। सुबह-शाम यही समस्या। दुनिया भर के नुक़्ते तलाश किए। अनुबन्ध में तो मन्नू ने पूरी तरह हाथ काट रखे हैं, लेकिन कॉपीराइट एक्ट की धारा 57 ज़रूर लेखक को बहुत से विशेषाधिकार देती है! हम लोग ख़याली पुलाव बनाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे कि अगर स्टे मिल गया तो चार-पाँच लाख से कम नहीं लेंगे। अगर अब तय हुआ तो ढाई-तीन लाख। उस ढाई-तीन का क्या करेंगे, कितना वकील को देंगे, कितना पत्रिका के लिए रखेंगे, यही सब शेख़-चिल्लीपने होते रहे। मैंने हँसकर उमराव सिंह से कहा—जितने अधिक से अधिक दिला देंगे, आपका उतना ही बोझ कम होगा। बोला, "यह ब्लैक-मेलिंग नहीं है?" मैंने कहा, "बिल्कुल नहीं। ब्लैक मेलिंग ऐसी स्थिति पैदा कर देता है, जहाँ मेरी बात मानने या माँगी रक़म देने के अलावा कोई रास्ता न रहे। हमारी पहली, एकमात्र माँग फ़िल्म में व्यवसाय की दृष्टि से किए परिवर्तनों को स्वीकार न करना है। हम तो चाहते हैं कि जो कुछ बदला है, उसे ठीक किया जाए, अन्त में बंटी को न मारा जाए। और अगर धर्मेन्द्र गोयल की ज़िद है कि मैं कुछ नहीं बदलूँगा तो इस ज़िद की क़ीमत दे।" ख़ैर, बहुत स्वाभाविक है कि मन्नू मानसिक रूप से बहुत क्षुब्ध है। परेशान मैं भी हूँ, मगर मैं शायद कैलकुलेशन ज़्यादा कर रहा हूँ। मन में मान लिया है कि अस्सी-बयासी लाख जो कुछ भी लगा हुआ बता रहा है, वह चार-पाँच लाख और देगा। या तो फ़िल्म को हमारे हिसाब से संशोधित करे या फिर रुपया दे। मना रहा हूँ कि फ़िल्म बदलने की बात वह न माने, और सिर्फ़ पैसे दे। तर्क यह है कि सब कोई जान गए हैं कि फ़िल्म बंटी पर है। यह लड़की की सगाई जैसा है। छूट गई तो पाँच-सात साल कोई इधर झाँकेगा नहीं, अगर फ़िल्म ठीक-ठाक होती तो हो सकता है, दस कहानियों पर और बनती। इसलिए हमारा पैसा लेना जायज़ है...ऊपर से कह यही रहे हैं कि 10 तारीख़ के बाद देखेंगे...लेकिन आठ-नौ को लगा कि ओ.पी. शर्मा, या पीछे से धर्मेन्द्र गोयल ने अपनी स्ट्रेटेजी; रणनीति बदल दी। एकाध बार फ़ोन करने के अलावा कुछ नहीं किया।

दस तारीख़ को लंच के बाद पेशी हुई। अरविन्द जैन ने बहुत बुरी तरह केस प्रस्तुत किया। बहुत भावुक होकर, बहुत फ़िल्मी ढंग से। वह इसे एक ऐतिहासिक मुक़दमा बनाना चाहता है। आर.सी. चोपड़ा, एडिशनल सेशन जज, सिर्फ़ इसे तथ्यात्मक मुक़दमे की तरह सुनना चाहता है। उनका वकील मुझे सधा हुआ और दमदार लगा। एक घंटे की झाँय-झाँय के बाद जज ने फ़िल्म लाने के लिए कहा तो वे बोले—अभी तक सेंसर नहीं हुई, इसलिए बम्बई से बाहर नहीं आ सकती। मन्नू जा नहीं सकती, एक बार जा चुकी है। तय हुआ कि अगली तारीख़ 17 है। इससे पहले कोर्ट में और हमें स्क्रिप्ट देगा। चले आए। तभी से उसका पोस्टमार्टम हो रहा है।

इधर आनेवालों का ताँता है अक्षर में। कमल गुप्त और पुष्पा अवस्थी आए हैं, बाक़ी और सारे लोग हैं। मैंने अनन्त मूर्ति की कहानियाँ पढ़ना शुरू कर दिया है। मलिक साहब की ओर से भूषण का जवाब आया है। परेशानी यह है कि मेरे फ्रंट पर कुछ तय नहीं हो रहा और स्थिति यह कन्फ्रंटेशन की होती जा रही है। राधाकृष्ण के अरविन्द के साथ मैं रविवार की शाम को अपनी गाड़ी में वृन्दावन हो आया। लगभग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

80–100 की स्पीड से गए। रात को सोनल का नृत्य देखा, सुबह छह बजे वापस। यहाँ नौ बजे घर। सो अपना लिखना, मुक़दमा, मित्रों से मिलना-जुलना, अक्षर, अनुवाद के प्रूफ़ और व्यक्तिगत द्वन्द्व। सभी कुछ एक साथ...

कितना दिलचस्प है अपने-आपको बहलाना और धोखा देना...जैसे ही यह केस फँसा, दिमाग़ी हिसाब-किताब चालू हो गए। पाँच लेंगे। बहुत बदतमीज़ी की है। कुछ तो उसकी सज़ा मिले। अगर स्टे मिल गया तो पाँच, वरना तीन या ढाई। सौदा कैसे किया जाए? सीधे करना तो बुरा लगेगा। स्थिति को इतना धुँधला बनाए हुए खींचो कि अपने-आप ही बोले! फिर ठाठ से निकालेंगे पत्रिका! क्यों किसी का अहसान लें और क्यों किसी की शर्तें मानें? अपने ही पैसे लगाएँगे और विज्ञापनों का जुगाड़ करेंगे। ठीक है, थोड़ी ज़्यादती ही कर रहे हैं हम लोग, लेकिन रुपए का इस्तेमाल तो एक अच्छे कॉज़ के लिए हो रहा है। तभी अपने को समझाते हैं, नहीं, हम पैसे के लिए नहीं कर रहे, अपने सम्मान और अधिकार के लिए कर रहे हैं। कॉपीराइट की धारा 57 हमारे पक्ष में है जो कहती है कि आपने अगर किसी को कॉपीराइट एसाइन भी कर दिया है तो भी परिवर्तन, विकृति या संशोधन के आधार पर हर्जाने का दावा कर सकते हैं। हम वही माँग रहे हैं। उमराव सिंह और लोढ़ाजी की सहानुभूति धर्मेन्द्र गोयल यानी पैसा लगानेवाले के साथ है, अगले ने बयासी लाख रुपया लगाया है, बदलेगा नहीं? नाम निकाल देने की बात करता है तो दस-बीस हज़ार रुपया ले लीजिए। मैंने कहा—मन्नू के स्तर का फ़िल्मों से परिचित लेखक सिर्फ़ उस स्क्रिप्ट के एक लाख लेगा जो मन्नू ने सिर्फ़ अच्छी फ़िल्म की ख़ातिर महीना भर लगाकर लिखी है। बोले—एक लाख? उन्हें विश्वास ही नहीं आया कि सलीम-जावेद छह और आठ लाख लेते रहे हैं या राही मासूम रज़ा और कमलेश्वर दो-तीन लाख लेते हैं। आप कितना चाहते हैं? उन्होंने पूछा। मैंने कहा—स्टे से पहले ढाई-तीन के बीच, बाद में पाँच। बोले—"यह ब्लैक मेलिंग नहीं है?" मैंने कहा, "ब्लैक मेलिंग में सिर्फ़ एक ही रास्ता छोड़ा जाता है, और वह अपनी शर्त मानने का होता है। हम तो कहते हैं, हमारे हिसाब से बदल दे, हमें कुछ नहीं चाहिए। यह क़ीमत तो वह अपनी ज़िद की दे रहा है। चाहें तो इसे सौदा कह लीजिए।" "कर्रा सौदा टफ़ बार्गेन?"..."नहीं, रेस्पेक्टेबिल बारगेन।" हँसने लगे। मन में कहा—है तो यह ब्लैक मेलिंग ही, मैं स्वीकार क्यों नहीं कर पाता! मगर फिर तर्क दिया ऐसे मुफ़्त में कैसे नाम हटा लेने दें? कुछ तो देना ही होगा उसे। और अगर वह परिवर्तनों को मान गया तो? मन्नू के बम्बई आने-जाने का ख़र्चा, मुक़दमे का ख़र्चा तो लेंगे ही!...कितना दिलचस्प नाटक चल रहा है भीतर! दस तारीख़ को जब एक घंटे बहस हुई और लगा कि यह नाटक लम्बा चलेगा तो मन में भीतर निराशा हुई, खेल उस तरह नहीं हुआ। चिड़िया हाथ से निकल गई! चलो, साले को लम्बा से लम्बा खीचेंगे। साल-दो साल पैसे फँसे रहे तो अपने आप सोचेगा। जो बयासी ख़र्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकता है, वह पचासी भी कर सकता है। भीतर हिंस्र सन्तोष हुआ, साले ने शिशिर मिश्रा की अच्छी खबर ली होगी।...

19.9.85

परसों फिर तारीख़ थी 'बंटी' की। उन्होंने सिर्फ़ स्क्रिप्ट दाख़िल की है। सुबह से शाम तक पिछले दिनों वही क़ानूनी बहसें, आशाएँ, आशंकाएँ। इस बार धर्मेन्द्र गोयल भी आया था। यहाँ गिरिराज भी था। जिस चीज़ पर आश्चर्य हो रहा है, वह यह कि उधर से कोई पहल नहीं हो रही, यह जानते हुए कि हम लोग फ़िल्म को लम्बा अटका सकते हैं। समझ में नहीं आ रहा, क्या रणनीति अपनाई जा रही है! मन्नू का तो दिमाग़ ही ख़राब हो गया है। क्या झंझट मोल ले लिया है! चौबीसों घंटे वही। उसके दिमाग़ में चीज़ें उसी तरह अटक जाती हैं और ऑब्सेशन या हौवा बनकर छाई रहती हैं।

नेशनल पब्लिशिंग के लिए मैंने पिछले दिनों कहानियाँ तैयार कीं। पुरानी-नई कहानियाँ दो जिल्दों में आएँगी। सारे काग़ज़-पत्तर खोद और खोज डाले हैं। आश्चर्य हुआ कि 'देवताओं की मूर्तियाँ', 'खेल-खिलौने' के साथ बाक़ायदा इतनी कहानियाँ बची हैं कि एक अच्छा-ख़ासा संग्रह तैयार हो जाए। इन कहानियों को देखने के साथ यह भी लगा कि जहाँ तक बन पड़े, इनके लेखन की तारीख़ें भी निकाल ली जाएँ। पांडुलिपियों, प्रकाशित कटिंग्स से जो तारीख़ें निकलीं, वे तो हैं ही, क्यों न उस समय की डायरियाँ देखी जाएँ। इसी प्रेरणा से पिछले दिनों सन् '50 तक की डायरियाँ देखीं। टेबल डायरियों में अपनी महीन लिखाई में तीन-चार साल एक-एक पन्ना खचाखच भरा है, देखते हुए डर लगता है कि पढ़ूँगा कैसे? वैसे भी सन् '50 तक वे सिवा दिनचर्या के कोई महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ नहीं देतीं। एक बार तो मन होता है, छोड़ो, जला दो सालियों को... फिर मोह होता है।

लगता है, मेरी ज़िन्दगी में 1950 बेहद ही महत्त्वपूर्ण वर्ष रहा है! यह डायरी भी आन्तरिक दुनिया की कोई भीतरी झलक, अन्तर्द्वन्द्व या विश्लेषण कम, दिनभर जो कुछ किया, उसी को बार-बार दुहराती है—वही घिसे-पिटे वाक्यों और शब्दों में। 'उठे, पाख़ाने गए, शेव किया, नहाए, कपड़े धोए या इस्त्री की'' जैसे वाक्यों से आज कोफ़्त होती है। शायद तब दिमाग़ में साफ़ भी नहीं था कि डायरियाँ क्यों लिखी जाती हैं। शायद यही रहा होगा कि दैनन्दिन बातें यहाँ लिखें, भावना और विचार के लिए तो लेखन है ही। इसलिए सारी प्रविष्टियाँ याददिहानी के लिए ही लिखी गई हैं। इस लिहाज़ से सारी गतिविधियाँ काफ़ी विस्तार से हैं। बल्कि बारीक लिखाई के लगभग 360 पन्ने पढ़ना आँखों में दर्द करने लगा है। इन पन्नों से गुज़रते हुए कुछ बातें कितनी साफ़ होती हैं...'इसी वर्ष मेरा परिचय (राम) प्रकाश दीक्षित से हुआ और मुझे वह बहुत अच्छा लगता है, इसके निकट आने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन करता रहता है' जैसे वाक्य एकाधिक जगह भरे हैं! मीता से परिचय होता है (12 मई, 50), शुरू में तीन महीने मैं उसका ट्यूशन करता हूँ, पहली मुलाक़ात से प्रभावित हूँ। देखने में साधारण, टिपिकल, आगरा के बनिया परिवार की लड़की, लेकिन तेजस्वी, विदुषी और साहसी। 25-30 या 35 रुपए के ट्यूशन की बातें हैं, ऊपर आर्थिक दबाव है इसलिए। पिछले वर्ष लर्जेश की शादी होकर चुकी है और वह ससुराल चली गई है। इमोशन रूप से ख़ाली और किसी हद तक लेट-डाउन महसूस करता हूँ। लर्जेश कभी-कभी आती है, पारिवारिक रूप से सम्बन्धों में तनाव हैं, इसलिए मिलने में आत्मीयता कम और औपचारिकता ज़्यादा है। मीता के ठीक परिचय के दिनों में ही मैं सुबह सेंट जॉन्स की फ़ील्ड में साइकिल सीख रहा हूँ। आज यह संयोग बड़ा अजीब लगता है कि अपने असमर्थ और पंगु होने की सीमा को मैं साइकिल के माध्यम से अतिक्रमित कर रहा हूँ और पहुँचता हूँ मस्जिद के नीचे, रोशन मोहल्ले के पुराने घर—मीता जैन के यहाँ। सारा आगरा मेरी मुट्ठी में है। जुलाई-अगस्त तक ट्यूशन छोड़ देता हूँ, लेकिन आना-जाना बना रहता है, मिलने के खिंचाव और बेचैनी है। वह पढ़ने-पूछने आती है और सितम्बर-अक्टूबर तक मैं बाक़ायदा उसके प्यार में गिरफ़्तार हूँ, उसे लेकर कल्पनाएँ करता हूँ, पत्नी के रूप में उसके अच्छे-बुरे पक्षों को तौल रहा हूँ और अपने संयत ढंग से वह भी रेस्पॉण्ड कर रही है। बातों और पत्रों के संकेत मुखर होने लगे हैं। और यह संयोग भी कम विचित्र नहीं है कि इन्हीं तीन-चार महीनों में मैं पुराना, घुटा, सिमटा, निचली मंज़िल का अँधेरा, बदबूदार घर छोड़कर डॉ. कुंटे के बग़ल वाला घर बदल लेता हूँ—पिताजी का नया घर। एक बन्द दुनिया को छोड़कर ज़्यादा बड़ी खुली दुनिया में प्रवेश...लेकिन अभी तक मुझे याद है, मैंने पुराना कमरा छोड़कर नए में आने के लिए मना कर दिया था। मैं उसी सँकरी गली, आसपास की खुड्डियोंवाले पाखाने, अँधेरे और गन्दी हवा का इतना अभ्यस्त हो गया था कि एक-डेढ़ महीना तो इधर आया ही नहीं...कैसी प्रतीकात्मक स्थितियाँ हैं। कभी मेरा ध्यान इधर गया ही नहीं।

यही वह वर्ष था कि मैं दो और धरातलों पर संघर्ष कर रहा था। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना चाहता था और कमलेशजी के लिए प्रश्नोत्तर के रूप में दो-एक रुपए प्रति पृष्ठ के हिसाब से सौ-सवा सौ पन्ने लिखे थे, घनश्याम उन दिनों डॉ. रामविलास शर्मा का डिक्टेशन लेता था। मैं ट्यूशन करता था—30-40 रुपए महीने की और पैसा रचनाएँ पत्रिकाओं में भेजने के डाकख़र्च में लगता था। भटनागर, सन्तोष, मीता, गार्गी चड्ढा के दो-दो, चार-चार महीने के ट्यूशन किए। किसी छोटी-मोटी ऐसी नौकरी या साधन की तलाश में था, जहाँ सौ-पचास रुपए महीने की स्थायी आमदनी हो जाए। यह वह ज़माना था जब चार आने, दो आने में चार बड़े-बड़े समोसे खाए जा सकते थे—उन्हें बोलते थे, त्रिखूँट। एक आने में इक्के में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठकर राजामंडी से फव्वारे पहुँचा जा सकता था। तो रचनाएँ लौट रही थीं, जहाँ छप रही थीं, वहाँ पारिश्रमिक का संघर्ष था। अजन्ता इत्यादि दस रुपए भेज देते थे तो हफ़्ते भर की मस्ती का सामान हो जाता था। खाना और कपड़ा, घर से लेकर प्रायः सारा ख़र्चा खुद ही करने की कोशिश। नया मकान बना था, सारे भाई-बहन पढ़ रहे थे, इसलिए घर पर आर्थिक तंगी थी ही। दस-पन्द्रह लोग सुबह खाते, इतने ही शाम को। फिर मेरे मिलने-जुलनेवाले, रिश्तेदार, दोस्त, सारे दिन चाय, शर्बत, नाश्ता। इन आर्थिक तंगियों में बाई का स्वभाव...अक्सर उनसे मेरी लड़ाई ही रही...

और तब के मेरे मिलने-जुलनेवाले? तौबा! घनश्याम, प्रकाश दीक्षित, राजेन्द्र शर्मा, गिरीश आस्थाना तो स्थायी ही थे। कभी रामविलास शर्मा तो कभी विद्याशंकर। चार-छह और मिलने-जुलनेवालों को छोड़कर ये चार-पाँच तो स्थायी ही थे। राजेन्द्र तो बी.ए. के ज़माने से साथ ही रहता था, फिर प्रकाश और आ जुड़ा। आज सोचता हूँ तो लगता है कि वह घर था लंगरख़ाना...इनमें से कोई भी कभी भी आ सकता था, सुबह छह बजे या रात को ग्यारह बजे! आवाज़ लगाई और आकर बैठ गए। घंटों बैठे हैं, कविताएँ, साहित्य हो रहा है, चाय-नाश्ता, सिगरेट हो रही है। दिन में तीन-तीन बार ये ही लोग जुटते हैं। स्वाभाविक है, घरवाले दुखी, खिन्न और असहयोगी थे। फिर मैंने कोशिश की, बोझ को थोड़ा शास्त्री के रेस्त्राँ की तरफ़ डाला जाए। सारे पन्ने सिर्फ़ इन्हीं विवरणों से भरे हैं, फ़लाने आए, कचौड़ी-मिठाई खाई, चाय पी...। साला पेट था या भट्ठी? मालूम हुआ, तीन-तीन समोसे खा लिये और सबके सब घर आकर खाने पर डट गए—चार-पाँच रोटियों से कम का तो सवाल ही नहीं। सुबह से शाम तक का रूटीन, सिर्फ़ लोगों से मिलना, उनका हमारे यहाँ आना और खाना...

इसी दौरान पढ़ने और इम्तिहान की तैयारियों की कशमकश, रात को देर-देर तक पढ़ना, अपना देर से उठना, क़ब्ज़ या दूसरे शरीर-कष्ट। लेकिन कैसा रचनात्मक काल है कि फ़र्स्ट क्लास में पास भी हो रहे हैं, इश्क़ भी कर रहे हैं, दोस्तों के साथ गप्पें, घूमना-फिरना चल रहा है, घर का मोर्चा भी सँभाले हैं, पढ़ रहे हैं, पढ़ा रहे हैं, सिनेमा-घूमना-चाट सभी है फिर भी कविताएँ लिख रहे हैं, कहानियाँ लिख रहे हैं, पत्रिकाएँ पढ़ रहे हैं, गोष्ठियाँ अटेंड कर रहे हैं, उपन्यास-कहानियाँ चालू हैं, कभी हावर्ड फ़ास्ट का फ्रीडम रोड पढ़ रहे हैं, कभी लॉस्ट फॉर लाइफ़...इतनी शक्ति, ऊर्जा, रचनात्मकता, लगन, अपने-आपसे ऊपर उठने की तड़प...कहाँ से आया था यह सब?

और हाँ, सन् '50 में ही सेठ रतनलाल के 'राजेन्द्र प्रकाशन' से आया था मेरा पहला कहानी संग्रह, 'रेखाएँ, लहरें और परछाइयाँ'—बहुत गन्दी छपी हुई—जिसे आज मैं 'ओन' भी नहीं करता। कभी-कभी कोई वर्ष ज़िन्दगी का कितना महत्त्वपूर्ण होता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20.9.85

डायरियाँ 51-52 की भी पढ़ीं। उनमें उल्लेखनीय कोई बात नहीं है। हाँ, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की बेचैनी ज़्यादा है, अपने अपंग होने का अहसास बहुत तीखा है। घर पर मेरे न कमाने और साहित्यिक जमावड़ों को लेकर तनाव भी बढ़ गया है। उन दिनों मैं हर परिचित से किसी पत्र में नौकरी के लिए कहता हूँ, कोशिश करता हूँ। इन्द्रनारायण गुर्टू, हेमचन्द्र जोशी, महावीर अधिकारी, कन्हैयालाल प्रभाकर, हृषिकेश चतुर्वेदी इत्यादि...चमत्कार की आशा करता हूँ—किसी सेठ से कहूँगा और वह लाख-पचास हज़ार देकर मुझे विदेश में इलाज कराने भेज देगा। कल गिरिराज घर से आते हुए गाड़ी में तारीफ़ कर रहा था, "जिस तरह तुमने अपने व्यक्तित्व को निखारा है, उससे श्रद्धा होती है!" सचमुच आज तो आश्चर्य ही होता है, कितना लम्बा रास्ता तय किया है मैंने...सिर्फ़ हिन्दी लेकर साहित्यरत्न, विशारद के ज़रिए बी.ए. फिर एम.ए., अंग्रेजी की कुंठा, पर-निर्भर होने की कुंठा—सभी तो सिर्फ़ अपने ही बल पर पार किए हैं मैंने...आज जहाँ हूँ, वहाँ पैंतीस साल पहले कोई कल्पना कर सकता था? कितनी शक्ति, कितनी ऊर्जा और कैसा संकल्प था! कहाँ गया वह सब? आज अपनी पीठ थपथपाने को नहीं, धिक्कारने को मन करता है। वह सभी कुछ तो आज भी है, फिर कहाँ क्या हो गया है कि 'जहाँ पहुँचने पर दम टूटे, है वही काला काल!' का भाव आता है।

23.9.85

दो अच्छी फ़िल्में देख डालीं। एक तो बी.डी.ओ. पर देखी 'उमर मुख़्तार'। लीबिया का स्वतंत्रता-सेनानी जो बीस-पच्चीस वर्ष मुसोलिनी की फ़ौजों, आधुनिक युद्ध के ताम-झाम से गुरिल्ला लड़ाई लड़ता रहा और फिर पकड़कर फाँसी पर लटका दिया गया। पहले एक मदरसे में मौलवी था। बहुत शान्त, धीर और आत्म-नियन्त्रित! घोड़ों पर हमला करनेवाले दल के साथ। पैदल चलता था तो क़ुरआन पढ़ता जाता था। इन धार्मिक पुस्तकों ने लोगों को अत्याचार के ख़िलाफ़ लड़ने की कितनी प्रेरणाएँ दी हैं, कैसे सँभाल और साधकर रखा है। गीता ने विवेकानन्द से लेकर तिलक या दूसरे क्रान्तिकारियों को कितनी शक्ति, ऊर्जा और सहिष्णुता दी। गीता हाथ में लेकर फाँसी पर चढ़ गए...मुझे लगता है, बाहरी हमलों के समय धर्म एकता और दृढ़ता की शिक्षा देता है, आपस में एक-दूसरे के शोषण का स्रोत बन जाता है।

दूसरी थी टी.वी. फ़िल्म 'जनम'। एक नौजवान के संघर्ष की कथा। दूसरी अनब्याही माँ से पैदा बेटा, जिससे बाप, घर, सुरक्षा सभी कुछ छीन लिया गया है, अपने और दोस्तों के बल पर खड़ा होता है, सफल होता है फिर उसे वह सब मिलता है जो नहीं मिला था! अच्छी साफ़-सुथरी फ़िल्म थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

28.9.85

कल बंटी का मुक़दमा था। इस बार धर्मेन्द्र गोयल नहीं आया। मन्नू बहुत तनाव में थी। वह उसकी आदत है। वहाँ धीरेन्द्र तथा दूसरे लोग थे। घर लौटते हुए त्यागी, धीरेन्द्र, दर्पण—सभी साथ हो गए। दारू पी, खाना खाया। सुबह ही बासु का फ़ोन आया। आज वह रुका हुआ फैसला लेकर पहुँच रहे हैं। शाम को देखना है।

कल ही उर्दू वाला लेख संशोधित करते हुए टाइप करके समाप्त किया है। समझ नहीं पाता कि वह लेख साम्प्रदायिक है, सिर्फ़ तर्कपूर्ण। मैंने तो अपनी समझ से काफ़ी बौद्धिक स्वतंत्रता से लिखा है, फिर भी सच्चाई यह है कि मैं हिन्दी वाला हूँ और वह पूर्वग्रह कहीं न कहीं होगा ही। तटस्थता जैसी कोई चीज़ होती भी है क्या? शान प्रिंटर्स के यहाँ से मैंने लिखने के लिए बहुत अच्छा विदेशी काग़ज़ मँगाया है। बढ़िया रिबन से अच्छे काग़ज़ पर लेख टाइप करना कितना अच्छा लगता है। अच्छा कलम, अच्छा काग़ज़ हो तो शायद लिखने के सारे मनोविज्ञान में ही अन्तर आ जाता है।

पिछले दो-तीन महीनों में लगभग 12 लेख लिखे, या लिखों हुओं को संशोधित करके अन्तिम रूप दिया। अब लगता है, जैसे एकदम ख़ाली हो गया हूँ और कुछ भी सोचने को नहीं बचा है। अच्छा ही हुआ, ये सारी बातें व्यर्थ ही दिमाग़ परेशान किए थीं। अब सिर्फ़ निर्मल वर्मा वाला लेख, अन्ना कैरेनिना, पुनर्जीवन इत्यादि उपन्यासों को दुबारा पढ़ने पर होनेवाली प्रतिक्रियाएँ ही बची हैं, जिन्हें खुद ही टाइप करना होगा। 'उपन्यास और सामाजिक प्रतिरोध' तथा 'नारी और साहित्य' दो लेख अधूरे पड़े हैं। देखें, उन्हें पूरा करने का अवसर कब आता है? मन कुछ उपन्यास-कहानियों की तरफ़ भी जाता है। अभी तो 'प्रेत बोलते हैं' के प्रारम्भ-अन्त से दो कहानियाँ भी निकालनी हैं। 'उपन्यास-लेखन' और 'सती'—सचमुच कम नहीं लिखा मैंने भी...अश्कजी ने लिखा है कि चिन्तन के क्षेत्र में लाख सिर पटक लो, तुम जैनेन्द्र तक नहीं पहुँच सकते, विश्व स्तर के चिन्तकों की तो बात ही दूर है। मुझे लगता है, बात बहुत सही है। क्यों झख मार रहा हूँ मैं इस क्षेत्र में उल्लू के पट्ठे की तरह...

क्या इसी को आदमी का मर जाना कहते हैं? बीते हुए में ऐसा कुछ नहीं है जो मुझे शिद्दत से दुखी या सुखी करता हो—जिसकी याद बेचैन करती हो। आगे कुछ भी नहीं है जो दुर्दमनीय शक्ति से खींचता हो। हाथ-पाँव छोड़ी हुई, पानी पर पड़ी देह है, जिधर और जितनी खिंच जाए। सुख-सुविधा का घर है, सब कुछ मिल जाता है—चिन्ता 'अक्षर' की है। इसे पुनर्व्यवस्थित करना है। पत्रिका निकलेगी तो ठीक है, नहीं निकलेगी तो जाए भाड़ में। अजीब उदासीन और वीतरागी रवैया हो गया है। शार्पली रिएक्ट न करने को लेकर बहुत झुँझलाहट आती है। कभी-कभी मीता को लेकर ऐसा होता था। अब वह भी नहीं होता। मन होता है, कुछ झटके और विस्फोट वाला कुछ हो और यह सारी तन्द्रा एक झटके से बिखर जाए...जो कुछ है, वह तो सिर्फ़ मृत्यु है—एक खाए-पीए सूअर की ज़िन्दगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3.10.85

अजीब धमाचौकड़ी में ज़िन्दगी जा रही है। बंटी की कोर्ट की तारीख़ हुई। कहा तो सभी पत्रों के संवाददाताओं से, लेकिन कोई नहीं पहुँचा। हम ही लोग थे। स्पेशल परमीशन से मन्नू भी बोली। अच्छा ही बोली, लेकिन निर्माताओं के वकील, लोनियाल ने जान-बूझकर इतनी फ़िजूल और लम्बी बातें कीं कि जज भी थक गया। उसे नींद आ रही थी। अरविन्द जैन और तोमर हमारी ओर थे। तोमर केस कर रहा था। जज ने पूछा कि मान लीजिए, ये लोग आपका नाम हटा देते हैं तो? हम लोगों ने कोई जवाब नहीं दिया। ख़ैर, वहाँ से आए तो थककर चूर। बासु आजकल यहीं है। 29 को था रविवार और पहले आए—पुरी, प्रतिभापुरी, ब्रज तिक्कू और शान्तिवीर कौल। दो-ढाई घंटे रहे, और यह साफ़ हो गया कि प्रेमचन्द की कहानियों की अनुमति उन्हें मिलेगी नहीं, और निर्मला में मन्नू को कोई दिलचस्पी नहीं है। शान्ति बाद में रुक गया। हम लोगों ने तय किया कि यह योजना नष्ट हो जाएगी। यही पुरी लोगों से भी हमने कह दिया। फिर बासु और बहल आए। उनके साथ दारू पी, खाना खाया। दर्पण की कहानियाँ मन्नू को करनी हैं, यह तय हो गया। बासु 'महाभोज' के लिए कह रहे थे। इससे पहले 'रुका हुआ फ़ैसला' दिखा चुके थे। बोले—इस फ़िल्म के बाद मुझे विश्वास हो गया है कि मैं 'महाभोज' बना सकूँगा। टी.वी. के लिए या मुद्रा एडवर्टाइज़िंग के लिए बनाया तो किसी बाज़ारू समझौते की ज़रूरत ही नहीं है। ख़ैर, बाद में बात करने को कहकर विदा हुए। मुकदमे के बाद 30 तारीख़ को बासु ने कुतुब में बुलाया था। चुन्नीलाल रिटायर हुए थे। उनके भाई कर्नल को बुलाया था। कर्नल बूढ़ा और मरियल-सा आदमी लगता है—बीवी एकदम जँची हुई युवती। नीचे उसने डांस भी किया, शराब भी पी और खूब डटकर खाया भी। मैं पकड़कर ले गया था त्यागी को। ख़ैर, अच्छा रहा। टिंकू-दिनेश भी आ गए थे।

परसों यहाँ नासिरा शर्मा आ गईं। सुबह 'गंगा' का पैट्रियॉट में मुद्रण प्रारम्भ था। अच्छा-खासा सम्मिलन। नामवर, शीलाजी सभी थे। भगवान सिंह जी भी। विश्वनाथ प्रताप आए। बाद में कमरे में चाय-पान हुआ। ब्लैक मनी के बारे में विश्वनाथ बोले कि इस सिस्टम में ब्लैक मनी समाप्त तो नहीं हो सकता। तरीक़ा यही है कि दाढ़ी की तरह रोज़ शेव कर लीजिए। मैंने कहा कि कुछ दाढ़ियाँ तो बहुत सैक्रोसेंट हैं, आप उन्हें छू भी नहीं सकते। खूब ही हँसी हुई। आज ही अमर गोस्वामी ने भी जॉयन किया। यहाँ नासिरा, ब्रजेश्वर मदान, और रमेश रंजन को मैंने 'न दे मुझको जुबाँ और' लेख सुनाया। उर्दू पर। पसन्द तो बहुत आया। कम-से-कम दिखाया उन लोगों ने यही। कल शाम को बासु घर आनेवाले थे—बहल के साथ। देर हो गई, इसलिए नहीं आए। पाँच या छह को आएँगे। 'रजनी' के कलाकारों का सम्मान होगा। लायन्स की ओर से। तब बात करेंगे। शाम को रंजन और सुदर्शना दोनों आए। तभी डॉक्टर अनिल कालिया भी आ गया। प्रताप का फ़ोन आया है कि कमलेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आए हैं और कहीं भी इन्तज़ाम नहीं हो रहा—दो दिनों ड्राई था। अगर हो तो दे दूँ। मैंने कहा—नहीं है। बासु इत्यादि खुद लेकर आनेवाले थे। नहीं आए। मन में कहा—कमलेश्वर खुद फ़ोन करता तो शायद दे देता—लगा भी कि यह कमलेश्वर के नाम पर अपने लिए ले जा रहे हैं।

9.10.85

पिछले दिन बहुत ही भाग-दौड़ वाले रहे। छह को लॉयन्स क्लब वालों ने 'रजनी' की टीम को सम्मानित करने का निश्चय किया था और मन्नू के पीछे पड़े थे, मगर 'मैंने सारी रजनी तो नहीं लिखी' के तर्क देकर वह बचना चाह रही थी। पाँच को बासु आने वाले थे। नहीं आए। मन्नू सुबह उनकी प्रेस कॉन्फ्रेंस में भी नहीं गई। प्रिया तेंडुलकर आई थी। शाम को वे ले गए। साढ़े सात बजे से ले जाकर बैठा दिया। वसन्त साठे सवा आठ पर आए। बासु नौ पर आ गए थे, लेकिन दारू पीने बैठ गए होंगे। सारी उपस्थिति सेठ-लाला लोगों की औरतें और बच्चे। मन्नू बहुत ही खिन्न-क्षुब्ध। कहाँ ला फँसाया। सुलक्षणा पंडित भी आ गई थीं। ख़ैर, जैसे-तैसे प्रोग्राम समाप्त हुआ। बासु हमें लेकर कनिष्क में चले आए। दारू पी, खाना खाया। मन्नू ने 'महाभोज' का ऑफ़र लौटा दिया था। उस पर बातें हुईं। मैंने तीन बातें कहीं : बासुजी, टिंकू की शादी आपने देखी। बारह-पन्द्रह सौ लोग थे। हम न तो किसी को फ़ायदा पहुँचाने की स्थिति में हैं, न नुकसान। पद भी नहीं है। जो आए थे, वे दोस्ती में आए थे। हमारी-आपकी दोस्ती को पन्द्रह-सोलह साल हो गए। कभी आपने देखा, या आपको लगा कि उसके पीछे स्वार्थ है? बोले—बिल्कुल नहीं। मैंने कहा—लम्बे वक्त तक दोस्ती निभा सकने की क्षमता है मुझमें। दूसरी बात, आपने सन् '70 में 'सारा आकाश' में साढ़े सात हज़ार दिये थे। आज पैसा दस-आठ गुना गिर गया है। अगर उस हिसाब से भी दें तो वही स्थिति रहेगी, हालाँकि तब आपकी स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। तीसरी बात कि जब हमने आपके 'लीन डेज़' में साथ दिया तो 'ग्रीन डेज़' में भी हक़ बनता है। बासु ने सुना और फ़ौरन ही 21 हज़ार का अनुबन्ध तीस में कर दिया। कहा—यह सिर्फ़ टी.वी. वाली फ़िल्म का है। मैं इसे 35 एम.एम. में बनाऊँगा—अगर फ़िल्म बाक़ायदा चली या कहीं और गई तो शेयर रख लेंगे। सारी बात तय हो गई।

सात को शर्माजी का जन्मदिन था और तय हुआ कि बासुजी चलेंगे। उसी सिलसिले में मुझे याद आया कि शर्मा-दम्पती से दोस्ती कराने का श्रेय तो बासु को ही है। वे 'सारा आकाश' को टैक्स-मुक्त कराने लाए थे। इन्द्रप्रस्थ ऑडिटोरियम में दिखाई। शर्माजी दिल्ली प्रशासन की ओर से थे—डिप्टी-सेक्रेटरी, फ़ाइनेंस। हाल में ही परिचय हुआ और उन्होंने हमें घर छोड़ा था। अगले दिन जब मैं 'अक्षर' आ गया तो बासु का फ़ोन आया कि घर पहुँचिए। हम लोग, यानी करण राजदान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिया तेंदुलकर। ख़ैर, दोपहर को पहुँचे। दो बजे ये लोग आए। मेरे साथ डॉ. कर्ण सिंह चौहान भी थे। वहाँ मन्नू की सहकर्मी सन्तोष गोयल और गोयल थे। अच्छी दोपहर रही। शाम को पहले उमराव सिंह चोरड़िया के यहाँ बसु ने, हमने दारू पी और फिर शर्माजी के यहाँ गए। वहाँ अजित और कृष्णाजी भी थे। तीन फ़ादर भी। अच्छी सन्ध्या रही। दारूबाज़ी इन दिनों कुछ ज़्यादा हो गई। चार तारीख़ को राजेन्द्र मिश्र ने घनश्याम पंकज के साथ खाने पर बुलाया था। तीन को आलोक पंडित त्यागी का चचेरा भाई आ गया था। इसलिए मैं, त्यागी, पंडित और धीरेन्द्र बैठ गए थे। कल कुछ नहीं किया। आज फिर बुधवार है। शाम को बैठना है लालानी इत्यादि के साथ।

इन पिछले दो-तीन महीनों में अपने लेखों का संशोधन, पुनर्लेखन और पुनर्पाठन ही होता रहा। 4 को जे.एन.यू. में चेख़व पर सेमिनार था। सुबह उन्होंने पौने दस बजे बुला लिया था। वहीं खाना खाया। सुबह के अध्यक्ष रघुवीर सहाय, दोपहर बाद वाली का मैं। उसी में नामवर भी बोले। वहाँ से सीधे जनवादी लेखक संघ में आकर 'अनपढ़ बनाए रखने की कला' लेख सुनाया। काफ़ी बहस हुई। बाद में सुना, लोग प्रशंसा भी कर रहे थे। पढ़ते हुए मुझे लगा, यह मैं क्या चलताऊ और पत्रकारी बकवास कर रहा हूँ? क्या ऐसे ही पिछले लेखों को लिखने में मैंने पन्द्रह-पन्द्रह दिन लगाए हैं, तीन-तीन बार टाइप किया और कराया? पैंतीस साल कलम घिसने के बाद लिखने का यह स्तर? एक तरफ़ निर्मल और वात्स्यायन हैं, लगता है जैसे मोती जड़ रहे हों—कॉमा, फुलस्टॉप में भी व्यक्तित्व की छाप...हर बात का निजी और मौलिक दृष्टिकोण...अब पुरानों को ही सँवार-सुधारकर पुस्तकाकार दूँगा, नया नहीं लिखूँगा।

10.10.85—1:20

अभी-अभी मैं ठाकुर साहब को अपनी 'अक्षर' की योजनाएँ बता रहा था। अरविन्द जैन का फ़ोन आया कि आर.सी. चोपड़ा, एडिशनल डिस्ट्रिक्ट जज ने हमारा केस डिसमिस कर दिया है। मामला शुद्ध खाने-पीने का लगता है।

आज ही मन्नू के नाम का टेलीफ़ोन 270321 सोढी को दे दिया। वह पास के एक्का हाउस में ले गया है। चार-छह महीने में जब उसका आ जाएगा तो लौटा देगा।

18.10.85

आज सुबह से बहुत तनाव था। ठीक समय पर हम लोग हाईकोर्ट में पहुँचे। केस था—एस.बी. वाड के यहाँ। जब दस-बीस तक न अरविन्द आया, न अनूप सिंह तो मैं भी थोड़ा घबराया। उत्तेजना तो थी ही। मन्नू का बुरा हाल था। ऊपर दूसरी मंज़िल कमरा नम्बर नौ। धर्मेन्द्र के वकील लोनियाल को घूमते देखकर मन्नू का दम और भी खुश्क हो रहा था। हम लोग मन को समझा रहे थे कि ज़्यादा से ज़्यादा स्टे नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलेगा। अन्दर जाकर बैठे। हाईकोर्ट की भव्य इमारत और कोर्ट्स के फ़िल्मी सेट। मालूम हुआ, नम्बर 4 पर केस नहीं है, सप्लीमेंट में नम्बर 4 पर है। जब अनूप सिंह और अरविन्द में से कोई नहीं होता था तो मन्नू की तबीयत बहुत घबराती थी। थोड़ी-थोड़ी देर में डॉ. सिंघवी आते थे तो बहुत सहारा मिलता था। डॉ. सिंघवी के क़द से ही बड़े से बड़ा जज आधा रह जाता है। इस समय के बहुत-से जज तो उनके जूनियर रहे हैं। ख़ैर, नम्बर आया और सिंघवीजी ने जिस तरह दो-चार बातें बोलीं, उसी में जज ने एड-इंटरिम इंजंक़्शन दे दिया। अगली सुनवाई 29 को है। बाहर निकले तो अरविन्द इतना खुश था जैसे केस उसी ने जीता है। वह बहुत जल्दी आशान्वित और एकदम निराश हो जानेवाला व्यक्ति है। बच्चों की तरह खुश-नाखुश होता है। अच्छा भी लगता है और हँसी भी आती है। बाहर कुछ देर बातें हुईं। बाद में मिलने का कहकर चले आए। मुझे खुशी ज़रूर है, मगर उससे ज़्यादा हिसाब-किताब चल रहा है कि अब सारी स्थिति का फ़ायदा कैसे उठाया जाए। अगर वह बदलने को तैयार हो जाता है, तो अनुबन्ध वैसा ही रहेगा। और अगर अनुबन्ध को रद्द कराते हैं तो ख़र्चा और मुआवज़ा पूरा मिलना चाहिए। ख़ैर, देखेंगे।

पिछला पूरा सप्ताह इसी में गया। सिंघवीजी ने अनूपसिंह को बता दिया कि कॉपीराइट इत्यादि के मामले में दो ही व्यक्ति हैं, एक एन.के. आनन्द और एक अनूप सिंह। सलाह लेकर दोनों के परामर्श की फ़ीस के चेक दे दिये, ताकि वे लोग नैतिक रूप से विरोधी से न जा मिलें। अनूप सिंह ग्रीन पार्क एक्सटेशन में रहते हैं। बुजुर्ग सरदार। बताया कि पंजाबी साहित्य में नियो सूफीज़्म के प्रवर्तक हैं और भाई वीर सिंह के बाद उनका नाम आता है। अपनी कविताओं की चार पुस्तकें दीं। साहित्यिक देखकर उसका भी साहित्यकार प्रबल हो गया। ख़ैर, मुकदमे के काग़ज़ तैयार होते रहे कि बीच में अरविन्द को पता चला कि जज आर.सी. चोपड़ा ने अपने फ़ैसले का एक काग़ज़ बदलकर भिजवा दिया है। अरविन्द ने पैसे देकर कॉपीराइट निकलवाई थी। सारे हिन्दुस्तान में इसी कच्ची नक़ल के आधार पर ही अगले मुक़दमे होते हैं। लोढ़ाजी इत्यादि बोले कि जज अब फँस गया। आप अपनी अपील पहले फैसले की नक़ल पर ही करो और हाईकोर्ट को खुद फ़र्क़ देखने दो। सिंघवी और अनूप सिंह भी पहले बहुत खुश हुए फिर बोले—सारा मामला बहुत साइड-ट्रैक हो जाएगा। आप कैसे साबित करोगे कि आपकी ग़लती नहीं है, और नक़ल में एक पैरा आपसे ही नहीं छूट गया? अगर टाइप कॉपी दाख़िल करके काग़ज़-टाइप मिलाने की बात करोगे तो क्लर्क डिसमिस होगा। अगर यह साबित नहीं कर पाए कि जज की ग़लती है, तुम्हारी प्रैक्टिस मारी गई। घर आकर अरविन्द ढेर। मैं तो अपील ही अब पक्की नक़ल पर करूँगा। तभी पॉइंट निकला कि हो सकता है, जज ने तुम्हें फँसाने के लिए ही बदला हो और क्या ठीक है, कल नहीं बदलेगा? तभी अरविन्द ने गोविन्द मुखौटी और पी.ए. लेखी को फ़ोन किए। हमें बताए बिना ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनूप सिंह के यहाँ से काग़ज़ उठा लाया, सुबह लेखी से मिला और चीफ़ जस्टिस के पास तक पहुँचने की बात करने लगा। डर गया था। बड़ी मुश्किल से अपील के लिए तैयार किया। भागा हुआ फिर तीस हज़ारी गया। मालूम हुआ, जज ने अभी फैसला अपने ही पास रखा हुआ है! रिकॉर्ड रूम में भी नहीं भेजा। अजीब उल्लू का पट्ठा है।

14.11.85

दिल्ली में किस तरह समय बीत जाता है, पता ही नहीं लगता। इधर तो सारा समय मुकदमे में ही जा रहा है। हमने हाईकोर्ट से स्टे ले लिया। अब 18 को बहस की तारीख़ है। पता नहीं, स्टे रहेगा या हटा दिया जाएगा! कल दीवाली की मिठाई देने वह शर्मा भी आ गया था—धर्मेन्द्र का दूत। उसके साथ एक काला-सा जैन भी था। मगर शर्मा उसे बोलने ही नहीं देता। धर्मेन्द्र ने एक चाँदी का सिक्का भी भेजा था। लगता है, यह शर्मा बातचीत होने नहीं देगा। लगा होगा अब हाईकोर्ट के जज को पटाने में।

इस बीच घनश्याम आया, छह-सात दिन रहकर गया। उसका आना मुझे अच्छा लोग। पता नहीं, क्यों मुझे घनश्याम बहुत प्यारा लगता है! परिवार से बाहर सिर्फ़ दो लोग हैं जो शायद मुझे भीतर-बाहर से अधिकतम जानते हैं—एक घनश्याम और दूसरी मीता। हाँ, एक दिन अचानक आगरा से सेटिया नाम की महिला (या टीचर) का फ़ोन आया कि मीता को हार्ट अटैक हो गया और उसे अस्पताल ले गए थे। अब ले आए हैं। खतरे की कोई बात नहीं है। मुझे याद आया, सेटिया एक थी तो सही जो बी.डी. जैन में पढ़ाती थी—शायद नाम था मनमोहिनी—या कुछ और। उसने घर फ़ोन करने के लिए मना कर दिया है। मैं न तो आगरा गया, न फ़ोन किया। हालाँकि यह महसूस करता रहा कि शायद उसे मेरी ही सबसे ज़्यादा जरूरत है इस समय। मगर मेरे जाने के बाद जो कुछ होगा, जिस अशान्ति और तनाव से उसे गुज़रना होगा—इसकी भी मैं कल्पना कर सकता हूँ। वीरबाला के माध्यम से पत्र लिख रहा हूँ। कभी-कभी जब कनक कॉलेज चली जाती है, तो वह फ़ोन कर लेती है। दीवाली के बाद बताएगी कि मैं कब आगरा आऊँ। मन बहुत छटपटाया भी। ऐसे मौक़ों पर मन्नू की उदारता के लिए मन में आभार उठता है। मैंने तो यह भी सोचा कि गाड़ी से जाकर उसे ले आऊँ और यहाँ विश्राम करने दूँ। मन्नू को आपत्ति हो तो मैं दो-चार दिन कहीं और जाकर रह लूँ। आख़िर व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष आदमी की ज़िन्दगी से बड़े तो नहीं हैं।

दीवाली आई और निकल गई। बहुत ठंडी-ठंडी। 'हंस' की योजना इन लोगों के साथ समाप्त हो गई। तय हुआ कि इतने दिनों उलझाए रखने के बदले ये लोग मुझे और अजितजी को कुछ पैसे देंगे। अजित को तो यातायात के ग्यारह सौ शायद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऑफ़र किए हैं। मुझे पता नहीं। दीपावली से पहले चोरड़िया से उस हिसाब में पाँच हज़ार लिये और ऑफ़िस की कुर्सियाँ ले आया, साइकिल मँगा लूँगा, लगभग साढ़े पन्द्रह सौ बोनस इत्यादि के दे दिये।

आजकल ठाकुर साहब टिंगू का इलाज कराने के लिए यहाँ हैं। अक्सर मिलना होता है। मैंने अनुभव किया है कि ठाकुर साहब बहुत बोलते हैं, व्यर्थ हँसते हैं और अक्सर चुतियापे के फ़िकरों पर ही खुद मुग्ध रहते हैं। ताज्जुब होता है कि कभी गम्भीर बातें भी सोचते या करते हैं। पन्द्रह सालों से दारू पीने का शौक़ हुआ है। उत्साही रहते हैं और फिर किसी को बोलने नहीं देते। करीब-करीब न्यूसेंस हो जाते हैं। मुझे प्यार करते हैं, बस, यही एक सेविंग-ग्रेस है।

27.11.85

गिरिराज ने अपने रचनात्मक लेखन-केन्द्र में सलाहकार की तरह मुझे और वात्स्यायनजी, दोनों को रख लिया है। उसमें शामिल होने के लिए मैं 24 रविवार को गोमती से कानपुर पहुँचा तो मालूम हुआ, मुझे लेने खुद वात्स्यायनजी आए हुए हैं। बताया कि वे इलाहाबाद से दोपहर को ही आ गए थे। उनके साथ अजीब घुटन-भरा मौन रहता है। न मैं बोलता हूँ, न वे। घर आए। कुछ ज़्यादा ही खुले थे। बहुत नहीं, फिर भी वात्स्यायन को लेकर इतने खुलने की भी आशा नहीं थी। मैंने पूछा—आपने साहित्य के बहुत उतार-चढ़ाव देखे, बहुत लोगों के सम्पर्क में आए। कुछ लोग सचमुच आपको पसन्द आए होंगे, या उनके साथ आपने ज़्यादा निकटता महसूस की है। बताया—राहुलजी, निराला और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'। मैंने कहा—तीनों तीन तरह के लोग थे—निराला कब क्या बोल दें, नवीन गालियाँ देनेवाले, राहुलजी के बारे में मैं नहीं जानता। कहीं ऐसा तो नहीं है कि तीनों लम्बे, स्वस्थ और गोरे सुन्दर थे, और आप भी ऐसे ही थे। हँसे—नहीं, ऐसा तो नहीं है। पूछा—ऐसा व्यक्ति बताइए जो देखने में इतने प्रभावशाली व्यक्तित्व का न हो? सोचकर भी याद नहीं कर पाए। किसी से लड़ाई भी हुई, के जवाब में जगदीश सेठी का नाम लिया जो बाद में अभिनेता बना। लगा, अपनी तरफ़ से काफ़ी खुल रहे हैं। अगले दिन भी दोपहर भर साथ थे। हिन्दुओं, सिखों की उग्रता को लेकर बातें हुईं। मैंने यही बताया कि जो धर्म एक किताब से जुड़े रहे हैं, वे अधिक आक्रामक और संकीर्ण हैं और प्रायः हिंसा में विश्वास करते हैं। हिन्दू निर्मम और हृदयहीन है—तटस्थ। वह सतियों और सिखों या दुश्मनों में आग लगाकर ठंडे दिल से उस दृश्य को देख सकता है। सिख या मुसलमान छुरा मारेगा, गर्दन काटेगा। बोले—पिछले दिनों सऊदी अरब की राजकुमारी का वध हुआ और सारी जनता ने देखा, इसलाम में अपराधी को संगसार करते हैं, तो सारे दर्शक देखते हैं। मैंने कहा—फिर भी कुछ लोग तो मारते ही हैं। बात सेक्स और हिंसा पर आ गई। युद्ध की हिंसा के बाद रेप प्रायः अनिवार्य है। पुरुषों को हथियारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मारा जाता है और औरतों को सेक्स से। पूरी जाति के मनोबल को समाप्त करने के लिए। ख़ैर, कल दोपहर तक उनके साथ काफ़ी रहे। उनके काव्य-पाठ में हॉल भरा था। हालाँकि कविताओं का चुनाव और पाठ का तरीका श्रोता विरोधी ही था। मगर लोगों के उत्साह से बुज़ुर्गवार काफ़ी प्रसन्न थे। कल इलाहाबाद के लिए आसाम मेल पर चढ़ाने आए हम लोग।

यह ठीक है कि हम लोगों ने न कोई हल्की बात की, न आपस में छूट ली। मगर दोनों तरफ़ से निकट आने की आकांक्षा स्पष्ट थी। सम्मान मैं वात्स्यायनजी का हमेशा करता रहा हूँ—वह बरकरार था। मैं जानता हूँ कि इतनी विविध प्रकार की ज़िन्दगी, ऐसे अनुशासन से काम करने की लगन, हर बार इतना नया और अछूता चिन्तन, ऐसी भव्यता और गरिमा हिन्दी के किसी लेखक में नहीं है। आज निर्विवाद रूप से वे हिन्दी के सबसे अधिक सम्मानित ग्रैंड ओल्डमैन हैं। प्रतिभा की चौमुखी अभिव्यक्ति में वह सिर्फ़ रवीन्द्रनाथ से तुलनीय हैं। हर क्षेत्र और विधा को उन्होंने नया कुछ दिया है।

28.11.85

बातों के सिलसिले में ही मैंने उनसे कहा कि आप हमेशा एक विशेष व्यवस्था, अनुशासन और पद्धति से जुड़े भी रहे हैं और उसके विरोध का भ्रम भी देते हैं। वस्तुत: आप विरोध नहीं करते, सिर्फ़ उससे हट जाते हैं और फिर वापस वहीं पहुँच जाते हैं। बात अपनी बहुत-बहुत पहले की पांडुलिपियों को ऐसे व्यवस्थित और हिफ़ाज़त से रखने से शुरू हुई। पिछले दिनों राउज़ एवेन्यू में उनकी पांडुलिपियों की छोटी-सी प्रदर्शनी हुई और उसमें देखकर आश्चर्य ही हुआ कि वात्स्यायनजी ने अपनी प्रारम्भिक पांडुलिपियाँ कितनी सुव्यवस्थित कॉपियों में, साफ़-सुन्दर ढंग से रखी हुई हैं—जिल्द बँधी, बढ़िया काग़ज़ एक तरफ़ बाक़ायदा हाशिए छोड़कर। शायद दूसरों की फ़ेयर भी ऐसी न हो। अब तो मैं भी रखने लगा हूँ, लेकिन पहले वाली कैसे काग़ज़ों पर और कितनी काट-छाँटवाली हैं। शर्म ही आती है। एक तरफ़ तो यह व्यवस्था, दूसरी तरफ़ सब कुछ छोड़कर झटके से चल देनेवाला यायावर। शायद जैसी और जितनी बीहड़ यात्राएँ अज्ञेय ने की हैं, राहुलजी को छोड़कर किसी ने नहीं कीं। सारी यात्राओं में सभी कुछ सुलभ था? कहीं भी कुछ छूटा और खोया नहीं। आज काश्मीर और रोहतांग हैं, तो कल आसाम और मिज़ोरम, आज लंका में तो कल न्यूयॉर्क में। जाने-आने में कहीं कोई संकोच, झिझक और दुविधा नहीं।...मुझे लगा, यही वात्स्यायनजी के पूरे व्यक्तित्व का सूत्र है। जिस पारिवारिक माहौल और स्तर पर बचपन बीता है, वहीं से ही उस समय आई.सी.एस. आते थे। यानी वही शिक्षा-दीक्षा, संस्कार, अनुशासन। लेखक, क्रान्तिकारी न होते तो आई.सी.एस. होते। आज भी व्यक्तित्व में वही गहराई, गरिमा, ठहराव, सन्तुलन और रिज़र्वेशंस हैं—लेकिन क्रान्तिकारी भी हैं, लीक से हटने की भी तड़प है—हटते हैं और बार-बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक सुरक्षा, या अभ्यासवश वहीं लौट आते हैं। लेखन में भी वही क्लासिकीय आभिजात्य और लीक से हटकर सोचना—भाषा से लेकर चिन्तन तक में। एक तरह से भटकन से लौटना भी उस क्लासिकीय आभिजात्य के प्रकाशवृत्त में आकर गरिमामय हो उठता है। वे नागार्जुन या निराला के फक्कड़पने तक जाकर प्रसाद के पास लौट आनेवाले लोग हैं—न सिर्फ़ नार्गाजुन, न प्रसाद। वे वहीं अपनी आश्वस्ति, सुरक्षा और सही जगह पाते हैं। नेहरू के युग के वे सही प्रतिनिधि हैं—सामान्य आदमी को अपने ड्राइंगरूम में ले जाकर उसे गरिमा देना और अपनी उदारता, मानवीयता और ऊँचे खानदानी, वज़ादार होने की गरिमा को स्थापित करना।

मैंने, प्रियंवद, गिरिराज और वात्स्यायनजी ने उस दिन एक साथ शराब पी। प्रियंवद और मैंने दो-दो पैग और दोनों ने एक से आधा-आधा। शायद यह अवसर भी फिर न मिले। न जाने क्यों, प्रियंवद की कृतार्थता देखकर फ़िराक़ वाली बात ही याद आती रही : लोगो, इस क्षण को याद करोगे कि तुमने फ़िराक़ को देखा! मैं भी तो इस भावना से अछूता नहीं था।

9.12.85

बात पिछले रविवार की है। उसने सत्तर हज़ार के नोटों के बंडल कुर्सी पर निकालकर फेंक दिये। एक के बाद, एक देखने में कमीज़ और पैंट ही पहने था, लेकिन जब बंडल निकाले तो छाती-पीठ सभी जगह जमाए हुए लगे। नाम ओमप्रकाश शर्मा—धर्मेन्द्र गोयल का नुमाइन्दा...। ग्यारह बजे आ गया था और तीन बजे गया। मैंने अरविन्द जैन को भी बुला लिया था। वह बेचारा दस बजे ही आ गया था। चाय-वाय पिलाकर उसे अन्दर कमरे में बैठा दिया। साढ़े नौ पर आनेवाला था शर्मा—आया ग्यारह पर। धर्मेन्द्र की भानजी की शादी है—उसी में व्यस्त। आते ही हिसाब-किताब समझाया और दो काग़ज़ निकाले। एक में हाईकोर्ट से मुकदमा वापस लेने और दूसरे में निचले कोर्ट से मुकदमा हटाने की एप्लीकेशन थी। पिछले दिन उसने हिसाब बनाया था, अठारह अनुबन्ध के बचे, बीस वकीलों के, पाँच मन्नू के बम्बई जाने के और कुछ और। चौंसठ हुए। ''खतम करिए, आशीर्वाद दीजिए...'' शर्मा की मिठाई की दुकान है शक्तिनगर में—'संजय स्वीट हाउस'। उसी मानसिकता का आदमी है—हज़ार, दो हज़ार से ऊपर की बात नहीं कर पाता। मुझे आश्चर्य ही हुआ अपने ऊपर। उन बंडलों पर एक बार निगाह डालने के बाद मैंने उधर देखा ही नहीं। जैसे भीतर से एकदम ठंडा हो गया मैं। ''इन्हें वापस रख लीजिए...यह नहीं होगा।'' मैं एक पर अड़ा था। अक्सर कहीं धुँधला-सा ख़याल भी आता कि हो सकता है, यह भी चला जाए और फिर कभी न मिले। शायद इसी मनोवैज्ञानिक कमज़ोरी पर वह भी खेल रहा था। सामने रुपया देखकर कौन मना कर सकता है! और जब गुस्से से उसने रुपए वापस रखने लगा तो भीतर की निराशा को दबाते हुए मैंने अपनी पीठ ठोकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे पहले दो दिन आया था जैन—विनोद जैन। हमेशा धर्मेन्द्र के साथ लगा रहनेवाला काला-सा आदमी। दो दिन तीन-तीन, चार-चार घंटे लगे रहने के बाद जब वह मुझसे ही रक़म पूछने लगा तो मैंने बात को छोटा करने के लिए बोल ही दिया—डेढ़। कोई सौदेबाज़ी नहीं। मैं या तो सारा लेता हूँ, या सारा छोड़ता हूँ। एक तरह से बात टूट गई थी और मैं कानपुर चला गया था। फिर शर्मा का ही फ़ोन आया था। शुक्र की रात को अनूप सिंह जी ने फ़ोन किया कि कल वे फ़िल्म दिखा रहे हैं—रविवार को। हमने पता लगाया, साढ़े चार बजे तक जज के पास फ़िल्म की कोई सूचना नहीं थी। खुश थे कि साले न ही दिखाएँ तो अच्छा है। शनि को शर्मा दफ़्तर में बैठा रहा था और हिसाब-किताब समझाकर कह गया था, इससे ऊपर जो होगा, मैं अपने-आप करूँगा। आप मत बोलिए। उसे भी मैंने बताया था कि किस तरह शक्तिनगर के फ़्लैट के हम सत्तर-अस्सी ले सकते थे। हमने एक पैसा नहीं लिया। ख़ैर, पैसे का रौब, धमकियाँ, खुशामदों के बीच सौदेबाज़ी चलती रही। इस पर भीतर का धिक्कार और भर्त्सना भी नीचे दब गई कि कहाँ जाकर सारी बात टूटी है। नाम हटेगा, अनुबन्ध लौटेगा और पैसा मिलेगा। औरों से तो हम यही कह रहे हैं कि नाम हटा दे और ख़र्चा दे दे। हमें यही बहुत है।

मगर इन लोगों के साथ जैसे सौदेबाज़ी अपने-आपमें लक्ष्य हो गया था। मज़ा आने लगा था। देखें, यह एक-दूसरे की साँस तोड़ने का खेल कितनी देर चलता है! पहले कौन 'चीं' बोलता है!...पैसे उठाते हुए शर्मा का चेहरा लाल हो गया था, "यादव साहब, अब कभी नहीं आऊँगा। कसम से कहता हूँ, मेरा ऐसा अपमान कभी नहीं हुआ।" अरविन्द भी था। मेरे भीतर भी जुआरी आ बैठा था। "शर्माजी, यह मत कहिए। आपका घर है। आप दस बार आएँगे।" बाहर जाता फिर अन्दर आता। "घर आई लक्ष्मी को मत ठुकराओ।" मन्नू की नसें जवाब दे रही थीं। वह बीच-बीच में आ जाती और मैं उसे अन्दर भेज देता। वह सिर्फ़ डिस्गस्टेड होकर ही सारा खेल बिगाड़ सकती थी। डर भी था कि पता नहीं, साला क्या करेगा...आज नहीं आगे जब, मान लो इसने लाख-डेढ़ लाख दिया तो बाहर जाकर छिनवा भी सकता है, गाड़ी का एक्सीडेंट करा सकता है, पिटवा सकता है। मगर ऊपर से निश्चिन्त था। एक क्रूर सन्तोष, मुट्ठी में साँप का मुँह आ जाने का—उसकी तड़फड़ाहट देखने का। अरविन्द बाहर गया। शायद और झाँय-झाँय हुई—और अस्सी पर आया। फिर भीतर आया। मैं खड़ा था, शर्माजी रहने दीजिए। आज के बाद यह सौदा नहीं होगा। ख़ैर, चलते-चलते वह कह गया, "मुझे मेरे बच्चे की क़सम है, अब नहीं आऊँगा..." तीन बार स्कूटर स्टार्ट हुआ, बन्द हुआ और आख़िर चला गया। मैं अपनी ही निगाहों में हीरो बन गया था, अरविन्द भी मान गया होगा—है कोई ऐसा, जो सामने सत्तर हज़ार के नोट देखकर भी मना कर दे...फ़िल्म देखने गए। बहुत भद्दी, फूहड़ और सतही। बाद में बंटी घर से भाग जाता है और भूखा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यासा मरता है। सब लोग ढूँढ़ रहे हैं। लाश मिलती है, मुर्दाघर में। तीन रीलें खींची हैं इसी में। नॉशिएटिंग। हम लोग कुछ नहीं बोले। जज के साथ कुछ और लोग भी थे। धर्मेन्द्र गोयल भी था। बाहर निकले। बीच में बहुत ख़ातिर की उन लोगों ने। जज को तो परम वी.आई.पी. ट्रीटमेंट दे रहे थे। एक तरफ़ धर्मेन्द्र को ले जाकर मैंने कहा—देखिए, धर्मेन्द्रजी, आप दिल्ली से जाकर दिल्ली से उठ गए हैं। शर्माजी अभी वही दुकानदार हैं। यह बात हम लोगों के बीच ही तय होगी। हम और आप मिलें, यही अच्छा। जब उसने टालनेवाली अदा दिखाई तो मैं सरक आया।

उधर शर्मा अरविन्द को पटा रहा था। दोपहर को अरविन्द ने अस्सी हज़ार पर मान जाने को कहा था और मैंने मना कर दिया था। बड़ी-सी वैन के पीछे ले जाकर बोला—चलिए, नब्बे में खत्म कीजिए...अब कुछ मत कहिए, रुपए रख ही लीजिए। रुपऐ देने लगा। फ़िल्म देखने के बाद मुझे लगा, फ़िल्म कूड़ा है और हमारा केस बहुत मज़बूत है। मैंने कह दिया, एक लाख, एक बस। बाद में सुना, अरविन्द से कह रहा था—जैन साहब, आपकी कोई इज़्ज़त नहीं है। आपकी बात मानी नहीं जाती। देखने अनूप सिंह भी आए थे। हम तीनों अनूप सिंह के यहाँ आए—कल के लिए तय करने। अनूप सिंह चालीस-पचास पर ही तय करने के पक्ष में थे और कह रहे थे कि मैं लोनियाल से बातें करूँ...ख़ैर, उन्होंने दो-चार मुद्दे बताए। कल के लिए मानसिक रूप से तैयार होकर चले आए हम लोग। मन्नू कहती है—सचमुच लोहे की है आपकी नर्व्स...मैंने कहा—यह शर्मा इस खेल में मुझसे भारी पड़ रहा है।

अगले दिन यानी 5 को केस ने दूसरा ही मोड़ ले लिया। दूसरे नम्बर पर था। जज ने इसे बाद के लिए रख दिया। गिरिराज भी आ गया था। पन्द्रह मिनट में केस आ गया। अनूप सिंह नहीं थे। वे 22 नम्बर में थे। गिरिराज को बुलाने भेजा। अन्दर जज ने मन्नू से कहा कि फ़िल्म तो आपने देखी है, आप अपनी बात बताइए। और जज तथा मन्नू के बीच पचास-साठ मिनट वार्तालाप चला। मन्नू न कहीं डगमगाई, न बहकी। बहुत अच्छे ढंग से सवाल-जवाब करती रही। पहले उसका दिल डर रहा था। हाथ-पाँव ठंडे हो रहे थे। बाद में गिरिराज, अनूप सिंह—सभी ने पीठ ठोकी। सचमुच अच्छा बोली—मन्नू। सुना, धर्मेन्द्र के साथ का मिश्रा कह रहा था, ''आदर्शों की बात करती हैं, ब्लैकमेल करती हैं। क्यों फ़िल्में बनवाती हैं, रजनी ही लिखिए... ।'' बाहर अनूप सिंह बोले, ''अब ये पाँच लाख भी दें तो लेना नहीं है। मन्नूजी, आप तो लॉ कीजिए और मेरे साथ आ जाइए...'' बीच में जब लोनियाल बोलने लगा तो उसे रोककर जज ने कहा, ''देखिए, यह केस सिर्फ़ कानूनी मुद्दों से तय नहीं होगा। आर्ट-लिटरेचर के नुक़्ते फ़ँसे हैं, इसलिए इन्हें ही बोलने दीजिए।'' फिर उसने शिशिर मिश्रा को बुलवाने की बात की। अगली तारीख़ पड़ी है—11 यानी परसों...

और मैं औरों को यह बता-बताकर शाबाशी ले रहा हूँ कि पचास हज़ार के नोट ठुकरा दिये थे मैंने...बता ही नहीं रहा कि नोट सत्तर के थे और मैं माँग एक लाख रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। मेरे दिमाग़ में अलग हिसाब-किताब घुसा था। लाख ये देगा, लाख अपने पास से जमा करेंगे और जब दो हमारे होंगे तो दो चोरड़िया से, एक बासु से लेकर ठाठ से 'हंस' निकालेंगे। टिंकू को साथ ले लेंगे। मगर इतने पैसे को 'हंस' के लिए भी इस्तेमाल कैसे करेंगे? वह व्हाइट कैसे होगा? ख़ैर, मारवाड़ी बन्धु बताएँगे...

12.12.85

अभी-अभी कोर्ट से लौटा हूँ। मन्नू इंडिया गेट से ही चली गई। एकदम जैसे हत्थे से उखड़कर। हुआ यह कि कोर्ट में आज शिशिर मिश्रा आया था और उसके साथ सवाल-जवाब ऐसे रहे कि लगा, जज सारी बात को हमारे ही पक्ष में तय करने जा रहा है। उसने सुझाया कि विजय तेंडुलकर, विजया मेहता और बी.आर. चोपड़ा को फ़िल्म दिखाकर राय माँगी जाए। उपन्यास भी पढ़ने को दिया जाए। तभी उनकी ओर से प्रार्थना की गई कि ये लम्बे चक्कर हैं—हमारा इतना पैसा फँसा है, इतने प्रचार में लग गए, सारा कैरियर ही चौपट हो जाएगा। इन्होंने हमसे तीन लाख माँगे, फिर डेढ़ की बात हुई। लाख पर तैयार हो गए। अनूप सिंह कुछ नहीं बोले—अरविन्द ने 'वाइल्ड एलिगेशन' जैसी बात कही। मन्नू ने भी इस पर कुछ नहीं कहा—अपनी बात कहती रही। लगता है, जज का मूड बदल गया। वे जल्दी तारीख़ माँगने लगे। 19 हुई। मन्नू का मूड एकदम उखड़ गया। फ़ोन पर भी बहुत अपसेट थी। धर्मेन्द्र के साथ के एस.के. मिश्रा ने बाहर आकर ब्लैक मेलिंग इत्यादि की बात की। एक तरह धमकी देते हुए। अब सबसे पहले मन्नू को सँभालना है। लगा तो मुझे भी कि कहीं कुछ गलती हो गई। याद आया, पिछले वर्ष 12 दिसम्बर के दिन ही मेरी गाड़ी का एक्सीडेंट हुआ था। इस बार फिर हो गया। लेकिन तब भी एक खरोंच नहीं लगी थी। लगता है, शायद यही इस बार भी हो। अब जो होगा, देखा जाएगा।

आज मुझे इटावा जाना था। भोजाजी के लड़के की शादी हो रही है। सारे लोग आएँगे। सो दो-एक दिन पिकनिक ही हो जाए। मगर लगता नहीं है कि अब जाना हो पाएगा। अपसेट तो मैं भी हो गया हूँ और किसी काम में मन नहीं लग रहा। इच्छा होती है कि कोई आए तो जी हल्का हो। मौसम इतना खराब है कि शायद ही कोई आए। अभी जाने का तय नहीं किया। कल फिर सोचेंगे कि जाना है या नहीं। आज कमलाकान्त द्विवेदी की लड़की की शादी है, आज लोकभारती वाले रमेश के लड़के की शादी का रिसेप्शन है और आज 'विरासत' नाम का नाटक है जिसे नेशनल स्कूल के लिए सत्यदेव दुबे ने निर्देशित किया है।

1.1.86

पुराना वर्ष एक क्षोभ के साथ समाप्त हुआ। मलिक साहब ने रोहतक रोड पर पार्टी रखी थी। हालाँकि मोहनलाल भास्कर आया हुआ था, पिछले दिनों की अनिवार्यता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्दर था, सबको काटकर मैंने सिर्फ़ मुहम्मद असलम को साथ लिया। असलम 'इंडिया टुडे' में पाँच-छह महीने पहले आया है और हिन्दी साहित्य का प्रेमी, सीधा-सा लड़का है। शायद हम लोगों के साथ ज़्यादा एट-होम महसूस करता है। रास्ते में मैंने बता दिया था कि वहाँ शानी होगा। कॉम्प्लेक्स रिडन आदमी है, मगर नया साल साथ मनाने की परम्परा के तहत जा रहे हैं। ख़ैर, वहाँ नामवर, केदारनाथ सिंह, विष्णु खरे, सुकुमार चटर्जी, अवध, चंचल इत्यादि थे। बातचीत में असलम ने कहीं 'लेकिन दरवाज़ा' का ज़िक्र कर दिया। कहा कि मुझे तो इधर के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में लगता है। बस, शानी भड़क गए। आपको महफ़िलों में बैठने की तमीज़ नहीं है। आपने पढ़ा क्या है? आप जाहिल हैं। वह नम्रता से कह रहा है कि यह मेरा ख़याल है, "शानी साहब, मैं आपकी इज़्ज़त करता हूँ,"..."इज़्ज़त गई भाड़ में..." अब हमेशा की तरह शानी साहब आपे से बाहर। किसी तरह सँभाला। थोड़ी देर में कहीं उसका पैर लगभग आध घंटे भर से मुझे पैर मार रहे हैं—फिर वही बिफरना, नाटक करना। उठकर चल देना। मनाकर लाया जाना—तनाव। मैं इस नाटक से आजिज़ आ गया हूँ। यह आदमी न किसी की तारीफ़ बर्दाश्त कर सकता है, न किसी का बोलना। दूसरे का मत तो कहीं महत्त्व ही नहीं रखता। और कुछ न सही तो मेरा मेहमान है असलम। यह तो ध्यान रखना चाहिए था। यही अवध के यहाँ हुआ, यही अरविन्द के यहाँ। धीरे-धीरे सारे घर इसके लिए बन्द होते जा रहे हैं। पता नहीं, क्या चाहता है? मैंने भी सोच लिया है कि अगली बार झाड़ना है, फिर चाहे जो हो।

यह सब लिखते हुए भी मन बहुत क्षुब्ध है। स्वाद कड़वा हो गया। ख़ैर, साल का नया दिन है। नहाया नहीं हूँ। ठंड अधिक है। इस बार कार्ड बहुत आए हुए हैं। लन्दन से विलियम ऐश और रंजना ऐश आए हुए हैं। इंडिया इंटरनेशनल में ठहरे हैं। कल हमारे घर आएँगे। परसों मुक़दमे की तारीख़ है। लगता तो यही है कि यह वर्ष हंगामे का वर्ष होगा।...बीच-बीच में यह भी लगता है कि शायद बहुत-सी अधूरी योजनाएँ भी पूरी हों। सबसे पहले तो यही देखना है कि मुक़दमा किस सिरे बैठता है। कभी हम लोग सोचते हैं कि क्या मुसीबत मोल ले ली है। काफ़ी प्रोटेस्ट हो गई, अब खत्म करो इसे। टी.वी. सीरियल 'दर्पण' मन्नू लिख रही है। भारतीय कहानियाँ। अच्छा आ रहा है। हाँ, लेखन को लेकर न वैसा खिंचाव महसूस होता है, न सार्थकता दिखाई देती है। किसे फ़ुरसत है बैठकर 'वार एंड पीस' या ब्रदर्स कर्माज़ोव पढ़ने की!

5.1.86

इतना ग़ैर-रचनात्मक सर्दी का मौसम शायद पिछले कई सालों से नहीं रहा। सारे साल मैं प्रतीक्षा करता हूँ, स्थगित करता रहता हूँ कि अमुक काम जाड़े में करूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठंड के बावजूद मैंने अपनी अधिकांश चीज़ें प्रायः इन्हीं दिनों लिखी हैं। लेकिन इन दिनों कुछ मन ही नहीं करता। कुछ दिमाग़ में भी नहीं है। झलक की तरह कुछ चीज़ें आती हैं और सरक जाती हैं। सोचता था कि 'उधार की ज़िन्दगी' उपन्यास का पुनर्लेखन ही करूँगा। पता नहीं, कहाँ पड़ा है।...एक तो इस साले मुक़दमे ने बहुत बंटाधार किया हुआ है। हर दूसरे सप्ताह, या अगले हफ़्ते तारीख़ पड़ती है, तब तक दिमाग़ वहीं उलझा रहता है। पहले उसकी प्रतीक्षा और आशंका, बाद में उसका विश्लेषण। परसों तारीख़ थी और सवा ग्यारह से शाम से चार बजे तक बहस चली। अभी उनका वकील बोल रहा है। सारा रुख़ अभी तो अनुकूल ही चल रहा है। मगर ऐसी अनुकूलता तो नीचे के कोर्ट में भी लगी थी। सचमुच कह सकना मुश्किल है कि क्या होगा। कमज़ोरियाँ हमारी तरफ़ भी कम नहीं हैं। मगर लगता है, उनके वकील के पास कहने को कुछ नहीं है। 'अक्षर' की तरफ़ ध्यान नहीं दे पा रहा हूँ। शायद कुछ महत्त्वपूर्ण पढ़ नहीं पा रहा। सार्त्र के नाटक, अल्टोना, बिना परछाइयों के लोग, और मक्खियाँ ही पढ़ा है, आजकल रोमियो-जूलियट और अँधेरा पढ़ने में लगा हूँ। निर्मल वर्मा ने अनुवाद इतना खूबसूरत किया है कि ईर्ष्या होती है।...रहन-सहन, आने-जाने का जो रवैया है, उससे तो यही लगता है कि यह सुख, ये सुविधाएँ ही जीवन का लक्ष्य थीं, अब कुछ और पाना नहीं है। सारा संघर्ष बस इसी 'सुख' की प्राप्ति के लिए था क्या? और तो और पत्रिका की इच्छा भी अब उतनी शिद्दत से नहीं होती। डर लगता है, पिछली प्रक्रिया मरने की थी और अब हाथ-पैर डाल दिये हैं। कुछ नहीं होता मुझसे...कल धीरेन्द्र और त्यागी आए थे। रम पी। 'ठंड बहुत है' का बहाना था ही।

9.1.86

मन में कहीं अपराध-बोध नहीं है। कल चित्रा मुद्गल ने खाने के लिए बुलाया था। अनिता के भाई अभय-साधना आए थे। वे वापस नैरोबी जा रहे हैं। शायद मुद्गलों से बहुत घनिष्ठ थे। ख़ैर, वहाँ पप्पू मियाँ भी थे। लेकिन मैं सामने से निकल गया। न शानी के यहाँ गया और न ऐसी इच्छा प्रकट की कि मिलना है। सलमा भाभी के लिए मन में बहुत आदर है। लेकिन वह मजबूर गाय हैं। शानी बहुत ही असभ्य, अशिष्ट और स्वार्थी है। शायद बैकग्राउंड न होने के कॉम्प्लेक्स का मारा। अब आगे भी जब मतलब पड़ेगा, ज़रूर आएगा। सुना है, बम्बई प्रवास के समय भारती के यहाँ पहुँच गया था। बताने कि सारी ग़लतफ़हमी शरद जोशी के कारण हुई। निश्चित रूप से उसे खुश करने के लिए मेरा भी तर्पण किया होगा। चलो, अच्छा है। ऐसे सम्बन्ध समाप्त होने का न दुख होता है, न अफ़सोस।

अजीब बात है। पहले लेख मन में घुमड़ते थे और मैं लिख डालता था। अब लेख भी नहीं आते। दो-तीन लिखने हैं, एकाध फ़ेयर करना है। कभी-कभी सोचता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ कि किसी लड़की के सम्पर्क का, या मीता से संवाद का न होना ही तो इस 'सूख' जाने के पीछे नहीं है। रचनात्मकता अपनी चतुर्मुखी अभिव्यक्ति और आलम्बन चाहती है।

29.1.86

उपन्यास लिखना शुरू किया था बुधवार, 27.3.46 को रात के साढ़े नौ के आस-पास और अपनी कॉपी के 406 पन्नों में समाप्त किया बृहस्पतिवार 23.8.46 को दोपहर ग्यारह बजे। नाम रखा था—'ये लड़कियाँ'। जहाँ अपनी लगन, रोज़ उपन्यास लिखने के धैर्य पर अपनी ही पीठ ठोक लेने का मन हुआ, वहाँ उसे पढ़कर माथा ठोक लिया। उपन्यास निहायत ही बचकाना, बेवकूफी-भरा ज़लील और जलाने लायक़ है। भाषा नक़ली और घटिया शब्दों के प्रयोग ग़लत, शब्द-भंडार बेहद सीमित और पात्र एकदम कठपुतली। बहुत मन है कि इसे निर्मम होकर जला देना चाहिए। शायद जला दूँ। अगर कुछ भी इसमें बचाकर रखने लायक़ है तो वह है उस सत्रह-अठारह साल के किशोर की मानसिकता, जिसने यह लिखा था। कहानी इतनी शर्मनाक है कि दुहराते हुए संकोच होता है। इसे किसी भी हालत में प्रारम्भिक अभ्यास से अधिक नहीं लिया जाना चाहिए। शैलेन्द्र के पिता का जहाँ ट्रांसफ़र हुआ है, वहीं उसके मामा रहते हैं और मामा की दो लड़कियाँ हैं—निशा और निरुपमा। शैलेन्द्र बहुत ही छुई-मुई, संकुचित और संकोची युवक है—मुँह से शब्द नहीं निकाल पाता। पतंग उड़ाता है, आदर्शवादी है और जनसंघी तथा गांधीवादी आदर्शों का अजीब घालमेल है। उसकी अपनी बहन है रेखा, छोटा भाई है हरेन्द्र। रेखा पहले तो शैलेन्द्र के प्रभाव में है, मगर शीघ्र ही फ़ैशन करने लगती है। निशा उसके प्रभाव में आती है। बहुत ही धीरे-धीरे उसका संकोच टूटता है। वह खद्दर पहनता है, चर्खा कातता है; सुभाष, नेहरू, गांधी की किताबें पढ़ता है, स्त्री स्वतंत्रता का विरोधी है—हामी उसी हद तक है जहाँ तक वे देश के काम में मदद दें। खुशबूदार तेल, क्रीम, पाउडर, विदेशी कपड़े, मांसाहार, सिनेमा देखना इत्यादि का वह घनघोर विरोधी है। सारा उपन्यास इन्हीं सबको लेकर बेवकूफ़ाना बहसों से भरा पड़ा है। शैलेन्द्र अक्सर अपने आदर्शों का खंडन या विरोध देखकर नाराज़ हो जाता है, रूठकर बोलना छोड़ देता है और अपने भीतर घुस जाता है। मूलतः वह रोमांटिक छायावादी है और लड़कियों को लेकर एडोलेसेंट प्लैटोनिक भावनाओं का मारा है। सीधे शब्दों में वह निशा को प्यार करता है लेकिन पारिवारिक सम्बन्धों, सामाजिक संस्कारों और अनुचित के नैतिक अंकुश में इस स्थिति को बिल्कुल भी समझ नहीं पाता। सिर्फ़ घुटता है और किसी-न-किसी बहाने निशा का सामीप्य चाहता है। मुखर्जी नाम का एक हवाई पात्र और है जो शैलेन्द्र का दोस्त है और इसके व्यक्तित्व का विस्तार है। विभाजन के दिन हैं। मुसलमान लड़के कॉलेज और बाहर लीगी झंडे लगाते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तक़सीमे-हिन्द' का नारा देते हैं और 'लेके रहेंगे पाकिस्तान' की घोषणाएँ करते हैं। शैलेन्द्र इत्यादि आज़ाद हिन्द फ़ौज से लेकर गांधी-नेहरू सबसे प्रभावित हैं, अपने को स्थिति की विकटता के लिए तैयार करते हैं, संघ में प्रशिक्षण पाते हैं और सशस्त्र संगठन तैयार कर रहे हैं।

31.1.86

ये शैलेन्द्र साहब अपने संघ में बुद्धिवादी और नेता भी समझे जाते हैं। कॉलेज के क्लासों की एकाध झड़प के बाद 23 जनवरी को नेताजी के जन्मदिवस पर आज़ाद-हिन्द फ़ौज के अफ़सरों के साथ विशाल जुलूस निकलता है और लीगी लड़के तितर-बितर करने की दृष्टि से पीछे हमला करते हैं। शैलेन्द्र और मुखर्जी के सूझ-बूझ भरे नेतृत्व से स्थिति सँभलती है। फिर 26 जनवरी का जुलूस है। शैलेन्द्र ने उसका नेतृत्व करने के लिए निशा को तैयार कर लिया है। मगर इधर उसके हावड़ा के कोई सुधीर भाई आए हुए हैं—जो इन सब आदर्शवादी बातों को बकवास समझते हैं। उनके आते ही निशा अपनी सारी शैलेन्द्रियन देशभक्ति छोड़कर विलायती कपड़ों, क्रीम-पाउडर में लौट आई है। उधर जुलूस तैयार है और काफी प्रतीक्षा करने के बाद शैलेन्द्र दौड़कर घर आता है कि निशा को नेतृत्व के लिए ले चले। धारा-144 भी तोड़नी है और विभाजन के पक्षधरों को जवाब भी देना है। मगर शैलेन्द्र पाता है कि निशा और सारा परिवार उस समय किसी सिनेमा में जा रहा है। शैलेन्द्र निशा को एक तरफ़ ले जाकर चलने का आग्रह करता है, विद्रोह के लिए उत्तेजित करता है और जब वह असमर्थता बता देती है तो हताश होकर अपने कमरे में बन्द हो जाता है। अब वह किसी को मुँह दिखाने लायक़ नहीं है। यहीं वह आत्महत्या कर लेता है। जुलूस का नेतृत्व करती है निरुपमा। यहीं उपन्यास समाप्त है।

उपन्यास के पहले चैप्टर में ही एक प्रतीक है। भाभी के यहाँ शैलेन्द्र पतंगें देख रहा है। एक पतंग के पास एक पक्षी उड़ रहा है; पतंग ऊपर उठती है शायद पक्षी समझ रहा है कि वह उसे ऊपर लिये जा रहा है, मगर एक बिन्दु पर साथ छूट जाता है और पतंग नीचे गिरने लगती है। इस तरह उपन्यास एक बचकानी, अधकचरी और सतही भावुकता की आत्महत्या में समाप्त है। नहीं, आज अपने नाम या किसी भी उपनाम से यह उपन्यास नहीं आएगा। इसे नष्ट करना ही है। सिर्फ़ यही देखकर अच्छा लगा कि कैसी लगन और मेहनत से मैंने इसे पाँच-छह महीने में नियमित लिख डाला है। इसके पीछे तो निश्चय ही लजेश, प्रेम और लक्ष्मी हैं—हरेन्द्र बिजेन्द्र ही है। मुखर्जी नक़ली और हवाई पात्र है। हरेन्द्र जिन लड़कों के साथ बिगड़ता है, उन्हें शायद मैंने देखा भी नहीं था—इसलिए वे भी झूठे हैं। न कहीं ऑब्ज़र्वेशन की मौलिकता, न मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, न भाषा का कोई प्रयोग। कह सकते हैं एक बहुत ही कच्चे दिमाग़ का दस्तावेज। जनसंघ, गांधीवाद, समाजवाद का अजीब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घपला। अच्छी बात सिर्फ़ यही है कि मैं उस समय मानसिक रूप से था, वही इसमें भी आया हूँ—बेहद भावुक, एब्नॉर्मल और कुंठाग्रस्त। चलो, यह क़िस्सा भी ख़त्म हुआ। न जाने कब से दिमाग़ में था कि इसे और पहले उपन्यास को थोड़ा ठीक-ठाक करके छपने लायक बनाऊँगा और प्रारम्भिक रचना कहकर चला दूँगा। अब लगा—इसमें कुछ नहीं हो सकता। बेकार और बकवास है।

12.2.86

परसों मेरी हँसी किसी भी तरह नहीं रुक रही थी। टेलीफ़ोन पर मैं ज़ोर-ज़ोर से ठहाके लगा रहा था और लगभग सारे दिन ही हँसता रहा। किसी ओ.पी. गुप्ता का फ़ोन था। बताया—वे मुझे जानते हैं और हम अक्सर शक्तिनगर से बस में साथ ही सफ़र किया करते थे। ये गुप्ता 'वसंती' के सह-निर्माता भी ऐसे ही कुछ थे। इनका नया सीरियल एप्रूव हो गया है, पुरवाई। फ़ौरन काम करना है और उसमें मेरी मदद की तत्काल ज़रूरत है। मैं सोचने लगा—पता नहीं, शायद लिखने का काम है। नहीं, लिखने का काम सुबोध लाल (यू.पी.एस.सी. में सेक्रेटरी हैं) कर रहे हैं, निर्देशन रंजीत कपूर का है। वे सबके सब सहमत हैं कि मैं इस सीरियल की मुख्य भूमिका करूँ! और मैं बेसाख़्ता हँस पड़ा। मज़ाक के लिए मैं ही मिला। नहीं, हम लोगों ने बहुत गम्भीरता से सोचा। दो-तीन ही व्यक्ति हमारे सामने हैं—अशोक कुमार, हबीब तनवीर और आप। लगता है, जैसे यह भूमिका आपके लिए ही लिखी गई है। कब आ जाऊँ? ख़ैर, जब लगा कि मजाक नहीं है तो शाम को आने को कह दिया। रविवार था, इसलिए सारे दिन घर ही था। बुक-फ़ेयर जाना था। टाल गया। रात को वे साहब रामगोपाल बजाज को लेकर आए। मैंने किसी को बताया नहीं था। मज़ाक ही हो। मगर दोनों बहुत गम्भीर थे। बजाज मुझे समझा रहा था। मैंने कहा—न तो मैं कभी कैमरे के सामने आया, न मैंने कभी अभिनय किया। बोले—वह हम सब करा लेंगे। नाटक से फ़िल्म की एक्टिंग अलग है। रोल था कि एक परिवार है जो तीस-पैंतीस साल पहले अफ्रीका चला गया है और वहाँ उन्होंने काफ़ी धन कमाया है। बड़ा भाई हमेशा हिन्दुस्तान को लेकर भावुक रहता है, यहाँ आना चाहता है। छोटा भाई वैसी शिद्दत से महसूस नहीं करता। 'भारतीय लोग आएँ और हिन्दुस्तान को बसाएँ' की पुकार पर परिवार वापस आता है। बड़ा भाई पचपन साल का है, समृद्ध और संवेदनशील है और यह रोल मुझे करना है। महीना भर का दफ़्तर के समय जैसा काम है, गाड़ी ले जाएगी, छोड़ देगी। आपका हर्जा हम पूरा करेंगे...। वह पूरी योजना दे गया। मैंने अपने पाँव के बारे में भी पूछा था। बोले—वह हमारे ध्यान में है, कोई भी एक्सीडेंट बता देंगे। ख़ैर, बाद में सम्पर्क करने को कहकर चले गए। रामगोपाल बजाज रुक गए। वे उनकी योजना की गम्भीरता बताने लगे। पैसे का अन्दाज़ा दिया कि कम-से-कम पाँच हज़ार तो हर प्रसंग के हैं ही। ज़्यादा-कम भी हो सकते हैं—या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक साथ तय भी हो सकता है।...बहरहाल, उन्होंने कल सम्पर्क नहीं किया और मैं मित्रों को बता-बताकर हँसता रहा। हो सकता है, अपने प्रस्ताव पर उन्होंने पुनर्विचार किया हो!

सोमवार को प्रेमचन्द के पौत्र अतुल; रवि-टिंकू के भाई ब्रिज टिंकू; प्रतिभा, मन्नू और रमेशचन्द्र पुरी, शान्तिवीर कौल ने मिलकर 'निर्मल' का मुहूर्त कर दिया। टी.वी. सीरियल बनेगा। मन्नू लिखेगी, कौल निर्देशन करेगा और कार्यभार संयोजक होंगे पुरी। कम्पनी अतुल-टिक्कू की होगी। मन्नू को अगले एक महीने में लिखकर देना है। उधर बेचारा हरि जयपुर में ज़िन्दगी-मौत के बीच झूल रहा है। रोज़ दो-चार ख़ून की बोतलें चढ़ती हैं।

मैं आजकल सिंगर पढ़ रहा हूँ, नोबेल पुरस्कार विजेता। बहुत प्रभावित नहीं कर रहा। कुशल कहानीकार है, चमत्कार और ईश्वरीय शक्तियों के आसपास कहानियाँ बुनता है। अब सिर्फ़ उपन्यास पढ़ूँगा। आजकल घनश्याम अस्थाना यहाँ है।

19.2.86

पिछले दिनों सिंगर पढ़ता रहा—इसाक बाशेविस सिंगर। राजेन्द्र मिश्र इसकी बहुत तारीफ़ करते थे। कहानियाँ पढ़ीं तो लगा कि दैवी शक्तियों के चक्कर में ज़्यादा है। मगर एनिमीज़ पढ़कर तो दंग रह गया—क्या आत्मविश्वास है, कितनी गहरी सूझ है और कहानी पर कैसा अधिकार है! वाह! बेहद ही मुश्किल स्थिति को बेहद खूबसूरती से सँभाला है। ख़ैर, इस पर अलग से नोट लिखूँगा। इन दिनों लिख कुछ नहीं रहा। 'उत्तर प्रदेश' को लेकर लेख लिखा था पिछले दिनों। सूची बनाई—दो पुस्तकें तैयार हो गई हैं—एक ये लेख जो लेखकीय परिवेश को लेकर लिखे हैं, दूसरे वे जो साहित्यिक समस्याओं या पुस्तकों को लेकर हैं। इसी साल दोनों नई पुस्तकें लानी हैं।

अभिनय के लिए जो साहब—या ग्रुप पीछे पड़ा था वह ठंडा है। हो सकता है, उन्होंने विचार छोड़ दिया हो। मैं एक तरह से तैयार ही हो गया था। हिचक थी कि अपने स्तर से गिरा हुआ काम है—पब्लिसिटी का अब क्या कोई और तरीक़ा नहीं बचा? तेरह प्रसंगों में जब लगातार चेहरा दिखाई देगा तो प्रचार तो होगा ही। गिरीश कर्नाड, इस्मत चुग़ताई और भीष्म साहनी के बाद शायद मेरा ही अभिनय होगा। कहीं लालच भी है। पत्रिका के लिए पैसे जमा करने हैं। सत्तर-अस्सी या एक लाख रुपए अगर इस तरह आ जाते हैं तो काम बहुत आसान हो जाता है। भीतर अभी भी यही हिसाब है।

क्योंकि रुपयों की ज़रूरत पड़ेगी ही। दो का ज़िम्मा मैंने लिया है। बाक़ी पाँच गौतम कर रहा है। तीन इधर-उधर से लेंगे। इरादा है, दस लाख को ध्यान में रखकर ही पत्रिका निकाली जाए। लगता है, गौतम काफ़ी गम्भीर है। उसी पर काम कर रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है। बैलेंस शीट और दूसरी जानकारियों का विश्लेषण चल रहा है। पिछले रविवार को नवलखाजी से भी बातें हुईं। लगता है, सभी मानसिक रूप से तैयार हैं। अभी तो सिर्फ़ यही विचार चल रहा है कि अक्षर के साथ शामिल करके इसे किया जाए या अलग से। अक्षर में भी जान तो लानी ही है। सिर्फ़ डर एक ही लगता है कि गौतम और मेरे बीच तनाव की ऐसी स्थिति न आ जाए कि सम्बन्ध ही ख़राब हो जाएँ। विज्ञान, पैसे, सोच और रुचि अभी तो मुझे सभी अनुकूल ही लगते हैं और हर बार की तरह इस बार भी लग रहा है कि शायद बात बन ही जाए। लक्ष्य-तिथि हमने तय कर ली है—8 जुलाई। यानी फ़रवरी में सारी चीज़ें समझ ली जाएँ। मार्च में पैसे जमा कर दिये जाएँ—अप्रैल से काम शुरू हो जाए और जून में पहला अंक निकल आए। डर भी लगता है कि कहीं एकदम ही तो जुआ नहीं है? जमा भी पाऊँगा या नहीं? स्तर कमज़ोर हुआ तो गालियाँ पड़ेंगी। पत्रिका असफल हो गई तो अक्षर भी हाथ से चला जाएगा। बहरहाल रिस्क ही है। शुरू में मैं एक लाख से ज़्यादा नहीं रख पाऊँगा। वह भी मन्नू से लेकर। मन्नू से रुपया लेना कैसा रहेगा? यह एक ऐसा दबाव होगा जो व्यक्तित्व या सम्बन्धों के दूसरे हिस्सों को भी प्रभावित करेगा—या शर्त में बाँधेगा।

मैं सत्तावन का हो रहा हूँ, लेकिन अभी भी यह समझौता अपने-आपसे नहीं कर पा रहा हूँ कि उम्र-दराज़ हो गया हूँ और किसी भी दिशा में आगे कोई भविष्य नहीं है।

27.3.86

अजीब 'अनप्रोडक्टिव' मानसिकता से गुज़र रहा हूँ। कुछ भी लिखने को मन नहीं करता। जैसे लेखों को लिखना एक बौद्धिक उत्तरदायित्व था और वह पूरा कर लिया। अब न डायरी लिखने की इच्छा होती है, न लेख-कहानी। उम्र का हौवा बढ़ता जा रहा है—एक हौला-सा दिल में बैठा हुआ है—लो, अब साठ का हुआ! अब रह ही कितने दिन गए हैं! कुछ भी तो नहीं किया जाता। पैरों में भड़कन, कन्धे में दर्द, क़ब्ज़ और आलस्य। यही हैं इन दिनों की मानसिक व्यस्तताएँ—बिस्तर पर लेटता-बैठता हूँ तो किसी सुदूर भविष्य में लिखे जानेवाले उपन्यास-कहानियों के पात्र होते हैं, स्थितियाँ होती हैं, किसी वर्णन की कुछ पंक्तियाँ होती हैं। मेज़ पर बैठकर कुछ नहीं होता। बिल्कुल कोरा दिमाग़ होता है और आर-पार फैला विस्मृति का समन्दर होता है। इसे अब उम्र की निशानी मानने लगा हूँ कि कुछ भी याद नहीं रहता—पढ़ते हुए कुछ भी रजिस्टर नहीं करता। कल अगर कुछ लिखने भी लगा तो पिछला मूड और सूत्र कैसे याद रखूँगा? वह गहरी अन्तर्दृष्टि और ऊँची उड़ान, जो बिस्तर पर लेटकर मन के आगे लहराती है, क्या शब्दों में पकड़ी जा सकती है? लगता है, हर क्षमता और शक्ति ने साथ छोड़ दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्नू कलकत्ता गई है, अच्छे मूड में नहीं गई। सीरियलों के लिखने का काम खत्म हो गया। कॉलेज से छुट्टियाँ ले ली हैं। पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगता, बाहर आना-जाना अच्छा नहीं लगता। नतीजे में बोर होती है। कहीं बाहर जाकर दस-बीस दिन रहने की बात सोचती है, मुझसे नाराज़ होती है कि सब लोग कहीं न कहीं बाहर जाते हैं—बस, हम लोग ही नहीं जाते। अब अगर कहीं जाएँ भी तो आपको अच्छा नहीं लगेगा। एक तो मेरे साथ जाना, फिर वही उसकी याद...बहरहाल मन्नू की यह समस्या अब और विकराल होगी। उसने मुझे कोई पत्र नहीं लिखा। दो-एक बार सिर्फ़ फ़ोन पर कामचलाऊ बातें कीं। पत्र लिखा राजी को। राजी उस दिन रात को फ़ोन पर कह रही थी, "आप लोगों को बहुत पहले अलग हो जाना चाहिए था। कितना सच वाक्य था और कितनी देर मन में गूँजता रहा। क्या अलग होने की कोशिश नहीं की थी हम लोगों ने? कुसुम के साथ बाद में कितनी जगहें मन्नू ने नहीं खोजीं। मैंने अलग कमरे तलाश नहीं किए? महीना भर शंकर मार्केट रहा, गाज़ियाबाद रहा और दूसरी जगहों पर रहने की बात सोची। नहीं हुआ। अब हिम्मत नहीं पड़ती। लगता है, यों ही घुटते-घुटते काफ़ी दिन कटेंगे...14 को कानपुर गया था, आई.आई.टी. के सेमिनार में, फिर लौटते हुए मीता से मिला।

लगता है, इधर व्यस्तता और बढ़ेगी। गौतम के साथ बातें काफ़ी आगे बढ़ गई हैं। तय हुआ है कि दो अप्रैल से काम शुरू कर दिया जाए। उसके बच्चे के जन्मदिन से। नया पैसा डेढ़ लाख मैं लगाऊँगा, या लगवाऊँगा और ढाई वह लगाएगा। ढाई का प्रबन्ध और करेगा। सारा ख़र्चा 'हंस' के ज़िम्मे जाएगा। 'अक्षर' की जो भी बिक्री होगी, उससे क़र्ज़ और रॉयल्टी चुकाई जाएगी। 'हंस' का पहला अंक प्रेमचन्द के जन्मदिन, 8 जुलाई को आएगा। जैसे-जैसे समय निकट आ रहा है, मेरा डर बढ़ता जा रहा है। जिसे कहते हैं, 'लाइफ़ टाइम' जुआ खेल रहा हूँ। अगर फेल हो गया तो एकदम समाप्त। मगर मित्रों और हित-चिन्तकों का विश्वास है।

12.4.86

कल ही लखनऊ से लौटा हूँ। गोमती से। प्रगतिशील लेखक संघ की स्वर्ण जयन्ती थी। भावुकता और पुराने साथ के खिंचाव में पहुँच गया अपने ख़र्चे से! 8 को लखनऊ मेल से चलकर। सभी मित्र थे और मिलकर अच्छा लगा। पहले तो कहीं ठहरने का ही प्रबन्ध नहीं था, फिर बार्लिंगटन में कमरा मिला। ठीक ही था। तभी गिरिराज से भेंट हो गई। वहीं घनश्याम और हरि नारायण मिले। गिरिराज को जहाँ महत्त्व नहीं मिलता, वहाँ वह बेचैन होने लगता है। वहाँ से भी भागा। साथ थे—ज्ञानरंजन, यात्री, प्रियंवद और मैं। खाने का प्रबन्ध था फिर भी हमने 'कपूर' में खाया। कमरे पर आकर लेटे और शाम को कुछ देर फिर गोष्ठी में भाग लिया। मीता को भी आना था, नहीं आई। उधर गिरिराज ने ऐसा कुछ घमासान मचाया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साढ़े आठ बजे सामान उठाकर कानपुर चल दिये। लखनऊ में दिन कितना लम्बा हो गया था! सुबह आध-पौन घंटे स्टेशन पर भी खड़े रहे। रवीन्द्रालय के अतिथिगृह में अनेक मित्रों से भी मिले। फिर बार्लिंगटन में जाकर नहाना-खाना भी हुआ। नाश्ता यहीं कर गए थे। फिर गिरिराज के साथ गप्पें लगाईं—बाहर लॉबी में भी बैठे रहे। खाना आराम से खाया, घंटा भर कमरे में लेट लगाई—चाय पी और साढ़े चार पर रवीन्द्रालय भी पहुँचे। फिर घंटे भर बाद देवेन्द्र गोस्वामी से टी.वी. पर जाकर मिले—चाय-नाश्ता किया और साढ़े आठ बजे कानपुर के लिए भी निकल लिये। साढ़े दस पर आई.आई.टी. में थे। गिरिराज के चक्कर में अगले दिन नहीं जा पाए। अपनी बेचैनी में वह कहीं रुकता ही नहीं है। सुधा भाभी से मिले। बहुत दिनों बाद प्रियंवद के साथ शाम को लॉन में बैठकर शराब पी। वहीं गिरिराज से झाँय-झाँय हो गई। शायद उसे कष्ट था कि विद्यानिवास मिश्र की जानकारी में ऐसा क्यों हुआ...

ख़ैर, पिछले दस-बारह दिनों से 'हंस' में लगा हूँ। 2 अप्रैल को मैं और मन्नू नवलखाजी के यहाँ गए। गौतम की लड़की का जन्मदिन था और तय था कि उसी दिन हम अपना पार्टनर-शिप का अनुबन्ध करेंगे। वहाँ वातावरण बहुत उल्लास का नहीं लगा। नवलखाजी कलकत्ते थे। नेहा—गौतम की पुत्री—को बुखार था, फिर भी हमने उपहार दिया। पता चला सुबह ही गौतम का एक्सीडेंट हो गया कार का। इसलिए हल्का-सा खटका बैठ गया—नक्षत्र बुरे हैं। मैंने कहा—नक्षत्र अच्छे हैं कि एक्सीडेंट के बावजूद, शरीर पर खरोंच नहीं आई। खटका मुझे भी लगा कि क्या इस बार भी घपला ही होनेवाला है? फिर दुनिया की पार्टनरशिप इत्यादि याद करके तैयार हो गए। साढ़े आठ पर नवलखाजी आए और दो रुपए के काग़ज़ पर हस्ताक्षर हो गए। हम और गौतम बराबर के पार्टनर रहेंगे—दो डायरेक्टर उसके रहेंगे, दो हमारे। एक लाख का पेड-अप कैपिटल हमारा है, हम डेढ़ और रखेंगे—ढाई वह रखेगा। ज़रूरत पड़ने पर ढाई का लोन लाएगा। यह सारा रुपया 'हंस' में लगेगा। व्यवस्था इत्यादि का ख़र्चा भी 'हंस' पर जाएगा। सारे बोझों से मुक्त होकर पुराने या नए स्टॉक से 'अक्षर' का पौने दो लाख का घाटा पूरा किया जाएगा। मुझे लगता है, वह हो सकता है। इधर 'अक्षर' पर बोझ नहीं होगा, उधर 'हंस' में विज्ञापन होगा, 'अक्षर' का नाम प्रचारित-प्रसारित होगा तो सारा घाटा दो साल में पूरा हो जाएगा। अब दूसरी औपचारिकताएँ पूरी करनी हैं।

इधर मैं अनिरुद्ध निगम के माध्यम से सेल और सर्कुलेशन की व्यवस्था कर रहा हूँ—उधर अपने लिए हरिनारायण को तय कर लिया है—1500 में। एक की और ज़रूरत पड़ेगी। उधर कमलेश्वर ज़ोर-शोर से 'गंगा' में आ रहा है, इधर मैं 'हंस' में। 'सारिका' है ही। अवस्थी 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' का सम्पादक बन ही गया है। लगता है, मज़ा आएगा। कम-से-कम वातावरण तो बनेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24.4.86

लालानी के बारे में मेरी धारणा पक्की होती जा रही है, नए-नए पैसेवालों के सारे गुण उसमें मौजूद हैं: वही पैसे और ज्ञान का अहंकार, वही अनुभव और सफलता का दम्भ, वही अपने को सबसे महान, सुसंस्कृत समझने का गुरूर...वही इस्तेमाल करके फेंक देने की वृत्ति—कल अनिसा साबरी को देखकर तकलीफ़ हुई। बुध था और हम लोग वहाँ बैठे थे—मैं, लोढ़ा, उमरावजी और लालानी। तभी अनिसा आ गई—अपनी माँ के साथ। माँ पेशेवर लगती थी। अनिसा का चेहरा सुन्दर है, लेकिन शरीर सचमुच फैल गया है—लम्बी तो है ही। अब नीचे से भारी भी हो गई है। उसका अचानक आना उन्हें अच्छा नहीं लगा। शायद लालानी से बहुत दिनों बाद मिली थी। स्वर में शिकायत थी और लालानी भड़क रहा था। आपके घर परेशानी होती है, इसलिए वहाँ फ़ोन नहीं करती। अब एक छोटे-से होटल में पहाड़गंज में रुकी हूँ। निश्चय ही हालत बुरी थी और पैसे लेने ही आई थी। मगर लालानी ने इतना सख़्त रवैया रखा कि शायद उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। वह लालानी की मिज़ाज-नवाज़ी के लिए कुछ भी कहती तो जैसे वह काटने दौड़ता। उसने कहा—सारी दुनिया में आपको लेकर हमारे इश्क़ के चर्चे हैं और आप नज़र उठाकर नहीं देखते। 'मैं तो हाड़-मांस का नहीं सिर्फ़ इश्क़ का ही बना हूँ।' जवाब था। बार-बार बता रहा था कि कितना व्यस्त और परेशान रहा है। ताइवान जाना है, काग़ज़ तैयार कराने हैं, विदेशी-मुद्रा का प्रबन्ध करना है, यात्रा की व्यवस्था करनी है, इत्यादि। बहरहाल, जिस ढंग से गई, वह अपमानजनक ही था।

20.6.86

कल मन्नू शिलांग गई। कुछ स्थान परिवर्तन की बात, निर्मला के एपिसोड लिखने की बात। संयुक्ता साथ गई है। सारा प्रबन्ध थुंगन का है। वही टैक्सी में ठीक पाँच बजे लेने आया था। वहाँ स्टेट गेस्ट हाउस में प्रबन्ध है। बहुत दिनों बाद डायरी लिखने बैठा हूँ। इस बीच मॉस्को हो आया। बृहस्पति, यानी 3 मई को ओमप्रकाश पालीवाल का फ़ोन आया कि आपको मॉस्को ले जाना चाहते हैं, भीष्मजी का सुझाव है। क्या आपका पासपोर्ट तैयार है? मैंने भीष्म से बात की तो उसने चलने की सिफ़ारिश की। ख़ैर, एफ्रो एशिया-पीस एंड सॉलिडेरिटी की तरफ़ से जाना था। पासपोर्ट मैंने भिजवा दिया। रविवार को एम्बैसी गए और वीसा भी बन गया। अगले दिन रात को नए इन्दिरा गांधी एयरपोर्ट पहुँचे—वहाँ से मॉस्को। एक करोड़ की आबादीवाला भव्य शहर है। होटल मॉस्को में रुके। बाहर जाकर चलना बहुत पड़ता है और कैलिपर काटता है। हालाँकि कॉन्फ्रेंस तक गाड़ियों का अच्छा प्रबन्ध था—आने-जाने छोड़ने को। हालाँकि होटल के एकदम सामने था—लेकिन ट्रैफ़िक नियम ऐसे थे कि डेढ़ किलोमीटर का चक्कर लगाकर आना पड़ता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेनिन की समाधि और 'गुम' नाम का बाज़ार देखा। यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ्रैंडशिप, यानी लुमुम्बा यूनिवर्सिटी गए। वहाँ कुछ लड़कियों ने बाद में भी बुलाया—वहाँ की प्राय: सभी भारतीय लड़कियों ने हम लोगों की रचनाएँ पढ़ी हुई थीं। 12 को पहुँचे, 18 को वापस।

'हंस' के काम में लगा हूँ। बहुत धीमे चल रहा है। पता नहीं, जुलाई में निकाल भी पाएँगे या नहीं। चर्चा तो बहुत ज़ोरों पर है।

6.8.88

कानपुर

आई.आई.टी गेस्टहाउस

छोटा-सा कमरा है और इसमें ए.सी. लगा है। दो पलंग, एक छोटी मेज़, दो आरामकुर्सियाँ, लिखने की मेज़। पीछे की तरफ़ का दरवाज़ा खोल दिया है और घास का लॉन, बाउंड्रीवाल, हरे पेड़ों के पीछे लाल बिल्डिंगों की कतार...एकदम एकान्त। लिखने के लिए शायद इससे अच्छे माहौल की कल्पना नहीं की जा सकती। कहीं कोई आवाज़ नहीं है। न फ़ोन, न किसी के आने का डर। पाँच बजे उठा था, बिजली की केतली में चाय का पानी रखा, टी-बैग और शूगर-क्यूब निकालकर दो कप चाय पी और फिर पढ़ने बैठ गया। ज्याँ जेने का 'थीफ्स जर्नल्स' उसकी बेबाकी, साफ़गोई और अपने को कहीं भी बचाने की कोशिश न होने पर चकित हूँ। कहूँ कि इतने साफ़ आत्मस्वीकार मैंने कभी नहीं पढ़े। साथ ही उनसे ऊपर उठने की कोशिश...स्थितियों और कार्यों का दार्शनिकीकरण या काव्यात्मकता... बचाने या प्रायश्चित्त के लिए नहीं, न उससे अलग होने के लिए बल्कि उसी में डूबे रहते हुए। चोर, डाकू, हत्यारे, भिखारी, लौंडेबाज़, रंडियाँ—यही उसकी दुनिया है और उसी में आकंठ डूबा है—विश्वासघात (ट्रैचेरी) को अपना सबसे बड़ा गुण बताता है। लौंडेबाज़ी करता है, कराता है—औरतों का न कहीं कोई ज़िक्र है, न आकर्षण, किताब अभी बची है पचास पन्ने।

कल ही पाओले फ्रेरे की पेडागॉगी ऑफ ऑप्रेस्ड पढ़कर समाप्त की है। कहूँ कि कामू के रिबेल के बाद यह दूसरी गम्भीर विवेचनात्मक किताब है जो मैंने इस साल पूरी समाप्त की है। सचमुच उन किताबों में है जो आपको बदल देती हैं। रिवेल व्यक्ति के रूप में मुक्त होने का गम्भीर दार्शनिक विवेचन है तो यह समाज के रूप में शोषण-दमन से उठ सकने का शास्त्र...हालाँकि स्थितियों को समझने, उनके बीच निर्णय लेने, मूल्यांकन के जो तरीक़े हैं, वे काफ़ी हद तक इतने व्यक्तिपरक हैं कि हर जगह ग़लत क़दम उठाने की गुंजाइश है। फिर भी तीसरी दुनिया के लोगों के लिए एक नया शास्त्र, मंत्र तो यह किताब देती ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

31 जुलाई की रात को चलकर पहली अगस्त को यहाँ आ गया था। तीन महीने के लिए 'अतिथि-लेखक' बनकर रहना है। हफ़्ते में दो बार लेक्चर होंगे—दिलचस्पी रखनेवाले विद्यार्थियों के सामने। लेकिन अभी शुरू नहीं हुए। इन पाँच-छह दिनों में सिर्फ़ पढ़ता और अपने को मानसिक रूप से जमाता रहा। आठ को दिल्ली जाना है। यहाँ अपने पुराने लेखों को मिलाकर, छाँटकर तीन किताबों की पांडुलिपियाँ तैयार करूँगा—कुछ लिखूँगा। अगर अपना कुछ रचनात्मक इस बीच नहीं लिख पाया तो मान लूँगा कि अब लिखना मेरे बस का नहीं है। हालाँकि महीने में दो बार दिल्ली जाना कहीं मानसिक स्थिरता को डिस्टर्ब करेगा, मगर फिर भी देखना तो है ही...

दिन भर की चर्या लगभग बन गई है। नहा-धोकर साढ़े आठ-नौ तक नाश्ता करने कैंटीन में जाना, ऑफ़िस जाते हुए गिरिराज का चक्कर...पढ़ना (या लिखना?)... पन्द्रह-बीस मिनट की झपकी...डेढ़ बजे खाना...शाम को पाँच के आसपास गिरिराज के घर या कोई और प्रोग्रम। गिरिराज के घर की पारिवारिकता, उनका सरोकार अच्छा लगता है। रात को फिर वापस...अभी तो तीन चीज़ें लिखनी हैं, साहित्य अकादेमी के लिए प्रसाद के यथार्थवाद पर लेख, गिरीशजी और गिरिराज के व्यक्ति-चित्र...

8.8.88

परसों शाम जीजी की तरफ़ गए थे। वहाँ मैं अपना चश्मा भूल आया। डॉ. सुमन राजे के यहाँ तो गाड़ी से ही नहीं निकला था। इसलिए रात को गिरिराज के घर ही 'फ़ेयरवेल टु आर्म्स' फ़िल्म देखते रहे। साढ़े ग्यारह यहाँ आ गए। सुबह नाश्ते और खाने के लिए कैंटीन तक आना-जाना, फिर गिरिराज के यहाँ से गेस्ट हाउस। लगता है, दिन भर में कम-से-कम इतना मेरे स्वास्थ्य और पेट के लिए अच्छा है।...परसों शाम को रंजीत कपूर आ गया था। उसका नाटक 'एक घोड़ा पाँच सवार' कानपुर को देखते हुए बहुत अच्छी प्रस्तुति थी—शुरू से आख़िर तक बाँधकर रखनेवाली। विदेशी नाटक का एडेप्टेशन। हॉल भी भरा था हालाँकि सारे दिन काफ़ी बारिश हुई थी। ...रंजीत कपूर के साथ 5 की शाम अच्छी बीती। दारू थी, खाना आ गया था। उसने एक नाटक की थीम बताई—विदेशी। वह तब से मुझे उद्विग्न किए हुए है। शायद उसने किया भी था। चेख़व की तीन बहनों में एक बहन कहती है, "काश, हमारी अब तक की जी हुई ज़िन्दगी सिर्फ़ एक रफ़-ड्राफ़्ट होता और हम उसे फ़ेयर कर पाते!" इन्हीं पंक्तियों से प्रेरित होकर नाटक लिखा गया है। एक साहब अपनी ज़िन्दगी के रफ़-ड्राफ़्ट को देख रहे हैं और बीच-बीच में रुकवाते हैं। सोचते हैं, ग़लत कहाँ हुआ है, वहाँ से फ़ेयर करें तो कैसा हो—कुछ समझ में नहीं आता और हारकर मान लेते हैं कि उसके सिवा कुछ भी नहीं हो सकता था। मुझे थीम बार-बार अपनी ज़िन्दगी को देखने की प्रेरणा देती है, ग़लती कहाँ हुई है? जहाँ से ग़लत हुआ है, अगर वहाँ कुछ और हुआ होता तो? क्या होता? और वह क्या सही ही होता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज लगभग तीन महीने से घर से बाहर हूँ। 17 या 18 जून को गिरीशजी के घर गया था। फिर वहाँ से सीधे यहाँ आ गया। 31 जुलाई को हमने प्रेमचन्द दिवस पर प्यारेलाल भवन में 'मोटेराम का सत्याग्रह' नाटक देखा। मन्नू भी साथ थी। हबीब तनवीर का नाटक ताज़ा और दिलचस्प था। 31 को मैं गाड़ी में सामान रखकर सीधा प्यारेलाल भवन तीन-चार बजे पहुँचा। अंकुर की 'बूढ़ी काकी' थी, कहानी का प्रदर्शन अच्छा नहीं था। वहाँ से घर और फिर वहाँ से ताज होटल में डॉ. ओमप्रकाश के लड़के की शादी का रिसेप्शन। खुद आई.ए.एस. में आ गया है, नृत्यांगना स्वप्न सुन्दरी से शादी की। वहाँ से भयानक बारिश में सीधे पुरानी दिल्ली स्टेशन। एकदम सिरे पर डिब्बा था। मन्नू, गोपी, गोपाल...सभी आए थे। तीन महीने को दिल्ली से विदाई...अब आगे पता नहीं, क्या होगा...

सचमुच घर में रहना मुश्किल हो गया था। सुशीलाजी के हार्ट अटैक की खबर आई तो मन्नू कलकत्ता गई। इसी बीच मुझे मीता की तबीयत खराब होने की खबर लगी और मैं आगरा चला गया। इसके तीन-चार या पाँच दिन बाद मुझे करैरा जाना था। पुन्नी सिंह ने बुलाया था—निराला जयन्ती पर। भीष्म और अब्दुल बिस्मिल्ला साथ थे। वहाँ से लौटते हुए मैं फिर मीता से मिला। आगरा उतरा और सुबह घनश्याम के यहाँ चला गया। शायद यह 4 मार्च की बात है। मन्नू से झूठ बोल दिया कि दो की जगह तीन दिन रुकना पड़ा। अगले महीने आ गए घनश्याम अस्थाना। अब उनकी याददाश्त का तो कहना ही क्या! वही तारीख़ें याद करना...जब तुम 4 मार्च को वहाँ थे और 3 अप्रैल, 1950 को यह हुआ था। मन्नू ने पकड़ लिया और मुझे तभी लगा कि मामला ग़लत हो गया। दो दिन रिंकी का इंटरव्यू कराके घनश्याम तो विदा हुए और हम लोगों के बीच एक संवादहीन, ठंडापन महीने के लगभग चलता रहा। सचमुच बड़ी घुटन और दूरी महसूस होती रही। आख़िर एक दिन मन्नू ने कहा कि 29 साल साथ रहने के बाद भी अगर हमें एक-दूसरे पर विश्वास नहीं है, आपस में संवाद नहीं है तो साथ रहने का कोई लाभ नहीं। वैसे भी आप समानान्तर ज़िन्दगी जीने में विश्वास करते हैं, अब वही हो और अलग हो। आप अपना टाइम ले लीजिए और अलग इन्तज़ाम कर लीजिए...दुश्मनी कोई नहीं है और हम अलग रहकर अच्छे दोस्त बने रह सकते हैं। महीने भर में आपका प्रबन्ध हो जाएगा...मैंने कह तो दिया कि हो जाएगा...लेकिन भीतर से भरभराकर कुछ गिरा। साठ साल की उम्र में अब अलग प्रबन्ध...इतना पैसा नहीं है, होटल में रहूँ या अलग घर का प्रबन्ध करूँ...किसी दोस्त के साथ ही रहूँगा...मन्नू ने पूछा तो मैंने यही सब कहा। कहने लगी—मैं आपका घर जमा दूँगी; नौकर चाहिए, नौकर दे दूँगी। यहाँ से जिस चीज़ की ज़रूरत हो, ले लीजिए...अब वह भी रिटायर होगी और आपको उसके साथ ही रहना चाहिए...मन्नू की यह उदारता बेहद ही क्रूर और वीभत्स लगी। उससे तो कह दिया कि अभी उसके रिटायर होने में सात-आठ साल हैं और मेरी कोई योजना उसके साथ रहने की नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मन में लगता रहा, जैसे 'पतित्व' की नौकरी से निकाल दिया गया हो! भीतर बेहद ही गुस्सा आता रहा। यह तो मेरी अपनी बनावट है कि साठ साल पर पहुँचने के बावजूद मन में न कहीं थकान है, न परास्तता...अभी भी कुछ भी करने की क्षमता अपने भीतर पाता हूँ...इस ग़ुस्से के बीच भी लगा कि यह शुद्ध ब्लैक-मेलिंग है, अपनी शर्तों पर मेरी ज़िन्दगी निर्धारित करने का दबाव है और यह मुझे स्वीकार नहीं है। और मैं दो-तीन दिनों सुन्न रहा। फिर नई प्लानिंग चलने लगी। पहले तो समझ में ही नहीं आ रहा था कि कहाँ रहूँगा...दरियागंज में उमरावजी के पुराने खाली घर में? हरिनारायण के साथ या होटल में...मन्नू की शायद राजी से लम्बी बात हुई होगी। उसका फ़ोन आया, जब उसने पूछा कि ज़िन्दगी में फिर से स्थापित होने का इरादा है? मैंने बहुत साफ़ कहा कि नहीं, उसके साथ सेटिल होने का सवाल ही नहीं है। उसकी अपनी ज़िन्दगी का पैटर्न बन गया है और मेरा अपना। वह सम्भव होता तो बीस साल पहले हो जाता। साठ साल की उम्र में आदमी इस भाषा में नहीं सोचता। ख़ैर, राजी बातें तो समझदारी की करती है। उसने भी बताया कि मन्नू के मन में इस बार कोई दुविधा नहीं है। उसी का सुझाव था कि टिंकू-दिनेश को विश्वास में लेकर बातें कीजिए... निर्मलाजी से बातें हुईं...संयुक्ता से हुई।

फिर दिमाग़ में आया कि इस समय सबसे अच्छा तरीका है गिरीशजी के यहाँ जाने का। वे दोनों अकेले हैं और लगभग बोर होते हैं। मुझे यह विश्वास ज़रूर था कि मैं बहुत बुरा मेहमान नहीं हूँ। उन्हें एक दिन शाम को बुलाया और प्रस्ताव रख दिया कि मैं पेइंग-गेस्ट बनकर रहूँगा, हज़ार से ज़्यादा नहीं दे पाऊँगा। "तुम्हारी भाभी से पूछकर बताऊँगा," कहकर वे चले गए। उधर गिरिराज से कहा कि तुम वहाँ बुलाने को कहते रहे हो, अब मैं आने के लिए तैयार हूँ। उसे बायोडाटा भेजा, निर्मलाजी को दिया कि अगर सम्भव हो तो दिल्ली में ही हो जाए। साउथ कैम्पस में। पुरानी में नहीं। लेकिन निर्मलाजी के तो अपने कैलकुलेशंस हैं। अवचेतन में शायद मन्नू को समय दे रहा था कि अपने निर्णय पर शायद पुनर्विचार करे...बने-बनाए सुविधाजनक घर को छोड़ने की इच्छा भी नहीं थी और यह भी लग रहा था कि शायद यह झटका ही मुझे रचनात्मक जड़ता से निकाल ले। मुक्त और दबावहीन होकर शायद हम दोनों ही लेखन में लौट सकें...देर बहुत हो गई है, मगर अब पाँसा तो फिंक ही गया है। मन्नू ने फिर पूछा तो मैंने सख़्ती से कह दिया कि प्रबन्ध हो रहा है, हफ़्ते-दस दिन में चला जाऊँगा। लगा, इस बार 'ब्रेक इज़ टोटल'...संयुक्ता से मिलकर थुंगन को एप्लीकेशन भी दी कि टुच्चे से टुच्चे पत्रकार को जब फ़्लैट मिल सकता है तो मुझे क्यों नहीं? अगर लेखक की तरह फ़्लैट मिल जाए, काका, बापा, रवीन्द्र भारती नगर में तो सचमुच सारी समस्या ही हल हो जाए...आख़िर लोग विभाजन में अपना घर बार लुटा-कर आए तो कौन जानता है, किसकी उम्र क्या थी? सबने अपनी-अपनी नई ज़िन्दगियाँ शुरू कीं...आदमी तो भयंकर आशावादी और दुर्दमनीय क्षमताओं वाला प्राणी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मैं 17 या 18 जून को गिरीशजी के यहाँ पहुँच गया। 19/1932-ए, गोविन्दपुरी एक्सटेंशन, कालकाजी, नई दिल्ली। चितरंजन और कालकाजी के मिलन-बिन्दु पर...सबसे कह दिया कि लिखने के लिए गया हूँ। हालाँकि ये ढाई महीने बेहद ही अन-प्रोडक्टिव रहे...दोनों ही बेहद भले, सज्जन और आत्मीय थे—मगर आपसी सम्बन्धों में कहीं कुछ ऐसी मजबूरी, निर्भरता और शिकायतें थीं कि मुझे उनका अध्ययन ज़्यादा ज़रूरी लगता था। भविष्यहीन ज़िन्दगी और बेहद डिफ्रैसिंग वर्तमान...आरती और अनिल की योजनाओं से भयभीत, चौकन्ने, निकलने को छटपटाते लेकिन उसी शिकंजे या दलदल को समर्पित...मुझे लगा कि मेरा आना उन दोनों के लिए ही एक ताज़ी हवा जैसा रहा है...सुबह तीन-चार बार चाय के सिवा मेरी कोई माँग नहीं थी। गिरीशजी चौबीस घंटे घर की सेवा में, सफ़ाई में लगे और भाभीजी अपना प्यार, झुँझलाहट और खीज उन पर उतारतीं...ख़ैर, उन पर तो मुझे अलग से लिखना है। ढाई महीने में मैंने सिर्फ़ एक सम्पादकीय लिखा। चार-पाँच उपन्यास-कहानी संग्रह पढ़े और विद्यार्थी जैसी दत्तचित्तता से कामू का रिबेल पढ़ा। प्रसाद पर लेख की रूपरेखा बनाई। मीता को आने के लिए लिखा तो वह वहाँ से निकल ही नहीं पाई। वही सुबह साढ़े ग्यारह तक गोपाल का आना, अक्षर और शाम को हफ़्ते में चार बार दारू...और दिमाग़ में एक चक्कर खाता विचार...अपनी आत्मकथा लिखी जाए—'अब मैं वहाँ नहीं रहता'। लगा कि आत्मकथा का इससे अच्छा शीर्षक हो ही नहीं सकता...मेरी सारी ज़िन्दगी अपनी जगहें छोड़ने और हट जाने (आगे बढ़ना तो कहना बहुत प्रिटेंशस लगता है) की रही है...भौगोलिक रूप से, मानसिक और वैचारिक रूप से...मेहनत करके लिखूँ तो सचमुच अद्भुत ही हो सकती है। लेकिन अब लगता है कि मुझसे होगा नहीं। ऊपरी बातों का कोई अर्थ नहीं है और असली बातें ईमानदारी से लिखने के लिए 'जैने' जैसा कलेजा चाहिए...उस उपन्यास को उठाने की हिम्मत तक नहीं होती जो लगभग पूरा लिखा है...बहरहाल, नाम मुझे इतना अच्छा लगा कि सिर्फ़ इसे सार्थक करने को लिखने का मन करता है। कितने स्तरों पर सही नाम है, 'अब मैं वहाँ नहीं रहता'...

पता नहीं, अच्छे के लिए होगा या बुरे के लिए—लेकिन लगता है, सन् '88 ज़िन्दगी को कई धरातलों पर बदलेगा। हालाँकि अभी पता नहीं है कि अक्टूबर के बाद मैं कहाँ रहूँगा, मगर हो सकता है, वह घर मिल ही जाए। भीतर कहीं यह भी है कि रहना तो हौज़ख़ास ही है। इस घर में या तो संयुक्ता रहेगी या हरिनारायण। दोनों मेरे साथ भी रह सकते हैं। कम-से-कम तीन कमरों का तो होगा ही...इधर 'हंस' के स्तर पर भी बदलने के दबाव। गौतम की बेवकूफ़ियों, हवाई और अव्यावहारिकताओं ने 'हंस' की व्यवस्था का सत्यानाश कर डाला है। रोकने पर भी शुरू में अन्धाधुन्ध ख़र्चे किए और अब देखा कि हम लोगों ने अपने लगाए लगभग तीन लाख शेयर कैपिटल (अलग से व्यवस्था करके एक मेरा, दो उसके) पौने तीन लाख उधार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डेढ़ लाख बाज़ार के देने का और लगभग एक लाख अमानती तथा दूसरे सदस्यों का पैसा। हिसाब लगाएँ तो इस समय हम लोग लगभग आठ लाख के नीचे हैं, पता नहीं, इसमें अक्षर भी बचेगा या नहीं...एक तो वैसे भी उससे कोई मदद नहीं थी और अब तो उसने 'साँचा' भी निकाल दिया है। निहायत ही बकवास...न मैटर देने का कोई तरीक़ा, न सम्पादन का कोई सेंस। भ्रष्ट अनुवाद। उसका कोई रूप ही नहीं है। इसे तो बन्द होना ही है। लाख-पचास हज़ार खोकर...मुझे लगने लगा है कि 'हंस' को अगर ज़िन्दा रहना है तो गौतम से हटकर अलग से कोई व्यवस्था करनी होगी। लड़का दिल का बहुत अच्छा है, रुपए-पैसे को लेकर बहुत उदार है—मगर निहायत अव्यावहारिक। मेरे हिसाब से यह घाटा आधा होता। फ़ायदा तो शायद पत्रिका नहीं करती, मगर ऐसी पैनिक वाली स्थिति नहीं आती। दो-एक बार नवलखाजी से बातें हुई हैं और मैंने साफ़ कहा है कि लाख-पचास हज़ार और लगाकर हम एक साल की मोहलत ही लेंगे, स्थिति में अन्तर नहीं आएगा। बिना व्यवस्था ठीक हुए कुछ भी नहीं होगा। वे भी आगे लगाने के मूड में नहीं है। घाटा आधा-आधा कर लिया जाए और मैं कोई नया, अधिक व्यावहारिक आदमी तलाश करूँ—मुझे यही सबसे ठीक लगता है।

दूसरा विकल्प है कि किसी 'हाउस' से बात करके पत्रिका उन्हें दे दी जाए और सम्पादन व्यवस्था 'अक्षर' की रहे। इसमें वर्तमान सेटअप बना रहता है। ऐसे दो ही स्थान दिखाई देते हैं, या तो आनन्द बाज़ार पत्रिका या मित्र प्रकाशन...मैंने फॉर्मूला कुछ ऐसा बनाया है कि उन्हें घाटा नहीं होगा। आनन्द बाज़ार की बात उषा महाजन के ज़रिए खुशवंत सिंह से हुई ताकि वे आगे बात कर सकें—वे पैंगुविन के सलाहकार हैं और पेंग्विन आनन्द बाज़ार वाले निकालते हैं। एस.के. राय के माध्यम से मित्रवालों से बात चल रही है। आनन्द बाज़ार वाली बात बनती नहीं लगती। मित्र में दम है। उधर गौतम ने संजय डालमिया को भी एक प्रस्ताव बनाकर दिया हुआ है। और हमेशा की तरह वह उस पर बहुत निर्भर कर रहा है। मुझे बिल्कुल भी उम्मीद नहीं है। अब कल जाकर देखता हूँ कि कहाँ क्या हुआ है। सबसे पहले तो यही देखना है कि क्या मेरा वहाँ से अनुपस्थित रहना सही होगा...इन्हीं दिनों कुछ किताबें लगी हैं और उन्हें भी सँभालना है। बंटी आगरा विश्वविद्यालय में, कथा-यात्रा कानपुर में जानी हैं। आज दिल्ली जा रहा हूँ। 12 की सुबह आऊँगा। ज्याँ जेने की 'थीफ़्स जर्नल' के कुछ उद्धरण : "Betrayal, theft and homosexuality are the basic subjects of this book'—141.

'My courage consisted in destroying all this usual reasons for living and in discovering others. The discovery was made slowly'—145.

"Only the German police, in Hitler's time succeeded in being both police and crime. The masterly synthesis of opposites, this block of truth, was frightful, charged with magnetism that will continue to pertub us for a long, long time'—157.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'What will guide me, as something learned, is not what I have lived, but the tone in which I tell it. Not the anecdotes, but the work of art. Not my life, but the interpretation of it.'— 170.

'Sorrow at the loss of a beloved person reveals to us our bonds with mankind.'—185.

15.8.88

कमरे के बगल में—सामने आई.आई.टी. का स्टेडियम है और वहाँ पन्द्रह अगस्त की रस्म निभाई जा रही है। अभी भाषण हुए थे। पता नहीं, कौन-कौन बोले थे और इस समय 'आओ बच्चो तुम्हें दिखाए झाँकी हिन्दुस्तान की' गाया जा रहा है। जिसकी टेक 'वन्दे मातरम्' से हो रही है। बैंड के साथ प्रधानमन्त्री का भाषण नहीं सुन पाया। वहाँ उस ब्लॉक की बत्ती ही नहीं है। शाम को समाचारों और अख़बारों में आएगा ही। सिर्फ़ एक लीक ही रह गई है। इस बेहूदगी को बन्द क्यों नहीं कर दिया जाता? क्या राष्ट्रीय फ़िजूलख़र्ची के लिए 26 जनवरी ही काफ़ी नहीं है?

कल सारे दिन गिरिराज के यहाँ था—12 बजे चला गया था। सारे दिन वहीं रहा। 'इजाज़त' फ़िल्म मँगाकर देखी। सुबोध घोष की कहानी 'लाक्षागृह' की कहानी ज्यों की त्यों मार दी है और यह गुलज़ार की बेईमानी है कि कहीं ज़िक्र नहीं है। वहाँ से आकर सोचा था कि यहाँ आकर कुछ काम करेंगे। शाम को गिरिराज भी यहीं था। फिर उसने बताया कि प्रभा खेतान का कलकत्ते से फ़ोन आया था। अब वह नौ बजे करेगी। मजबूरन फिर जाना पड़ा। फ़ोन आया ठीक दस बजे और तभी से मैं सोच रहा हूँ कि यह परिवर्तन 'हंस' के लिए ठीक रहेगा या नहीं। हुआ यह कि 9 को मैं दिल्ली गया था। हालाँकि मीरा और गिरिराज ने बहुत आग्रह करके कसम सी दिला दी थी कि मैं हौज़ख़ास ही ठहरूँ। मगर मैं तय नहीं कर पा रहा था। मन में पक्का था कि टिंकू के पास ही जाना है। फिर भी हुआ कि चलो, वहीं चलते हैं। गाड़ी पुरानी दिल्ली पहुँची पाँच बजे। बारिश हो रही थी—हल्की। स्कूटरवाले से ग्रेटर कैलाश कहा, फिर आई.टी.ओ. पर हौज़ख़ास बोला, मेडिकल कॉलेज पर फिर मुड़वाकर ग्रेटर कैलाश जा पहुँचा। हालाँकि यह संकोच भी था कि सुबह छह बजे उन्हें जगाना ज़्यादती है। कितनी परायी हो जाती है बेटी! घंटी बजाई, शर्माजी ने खोला। ऊपर गए। दिनेश बम्बई था। ख़ैर, मन्नू ने बताया कि प्रभा का फ़ोन आया है कलकत्ते से। वह 10 को आएगी। शाम को 'हंस' का आयोजन था। अक्षर गए, गोपाल आ गया था। मन्नू को लेकर लौटते हुए अर्चना भी आ गई। शाम को पहुँचे श्रीराम सेंटर। प्रसन्ना के निर्देशन में 'शतरंज के खिलाड़ी' था। शुरू में मैंने बहुत ही संक्षिप्त भाषण दिया और नाटक शुरू हुआ। नाटक ढीला और बेकार ही था—हॉल भरा हुआ। बहुत से लोगों से मुलाक़ात हुई। एस.के. राय ने बताया कि मैं बात करूँगा, दुबारा—मित्र प्रकाशनवालों से। ख़ैर, घर आए। टिंकू की गाड़ी में। मन्नू भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ थी। वहीं खाना खाया। मन्नू चली गई तो टिंकू बैठकर मिस्टी के टिक्स निकालने लगी। तब मैंने बात छेड़ी—दो महीने बाद अलग प्रबन्ध करना है। वह मदद करने को तैयार हो गई है। मन्नू और हौज़ख़ास के बारे में बोलते हुए मैंने कहा कि मन्नू मुझे ब्लैकमेल कर रही है तो बोली—इसमें ब्लैकमेल की क्या बात है! लगा, उसकी सारी सहानुभूति मन्नू के साथ है। मैं चुप हो गया। टिंकू मेरे लिए हमदर्द है, यह भ्रम पता नहीं मैं कब से पाले हुए था। अब लगा कि अपना क्रॉस खुद ही ढोना है, अकेले...

बासु का फ़ोन आया और अगले दिन मिलने की बात हुई। सुबह गए। शाम को हौज़ख़ास में आने का तय करके अक्षर और गौतम से बातें हुईं। बताया कि शायद संजय डालमिया इसके लिए तैयार हो जाए...मैंने प्रभा खेतान से मिलने की बात भी बताई। कल भी बात हुई थी। ख़ैर, उमरावजी के यहाँ आध घंटा बैठकर घर पहुँचे। लालानी, बम्बई गया है। मन्नू ने बताया कि परसों गुलज़ार की तरफ़ से किसी ने गाज़ियाबाद से फ़ोन किया था कि क्या 'महाभोज' ख़ाली है? मैंने मना कर दिया। गुलज़ार की संवेदना स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को कुशलता से रेखांकित कर सकती है, 'महाभोज' को नहीं। फिर प्रभा आ गई। और आते ही 'हंस' की बात करने लगी। मैंने सारी बातें बताईं। गौतम की जगह दूसरे को लेने की भी। उससे पूछा तो बोली कि एक लाख कर सकती हूँ, मैंने कहा—तब एक लाख के लिए दद्दू से कहूँगा। प्रभा ने बताया कि प्रतिभा-प्रतिष्ठान के चेयरमैन डॉक्टर साहब हैं। उनसे पूछना पड़ेगा। मैंने कहा कि डेढ़ कर दो तो गौतम के शेयर्स लिये जा सकते हैं। कहने लगी—पहले शेयर्स कीजिए, फिर बाद में उधार चुकाने की योजना बनाइए...। कहने लगी कि मैंने अपनी सारी कमाई चालीस-पचास लाख की उसी ट्रस्ट में दे दी है। और वह सिर्फ़ साहित्य के लिए है। आगे भी दूँगी। लेकिन पहले डॉक्टर साहब से मुक्त हो लूँ। सलाह आपने ही दी है कि डॉक्टर साहब से मत लड़ो और ज़रूरी और ग़ैर-ज़रूरी लड़ाइयों में फ़र्क़ करो...(यह वाक्य लगता है, उसके भीतर उतर गया है। कभी उसे पत्र में लिखा था) ख़ैर, खाना बना खाकर चली गई।

उससे पहले ही बासु आ गए थे और हम लोग दारू पीने लगे। बासु ने मुझे डाँटना शुरू कर दिया। क्या घपला है, आप हौज़ख़ास आइए...आपके जन्मदिन पर हम भी आएँगे...केका, टिंकू और मैं...। हालाँकि छह-सात हज़ार ख़र्चा हो जाएगा लेकिन आएँगे और आप यहीं आकर ठहरेंगे...मन्नू ने अपनी यातनाओं के लिए वही क़िस्से सुनाने शुरू कर दिये... ''देखिए, मन्नूजी, हरामी हम सब हैं। मगर हो सकता है, इन्होंने कुछ ज़्यादा कर दिया हो...यह इनकी ग़लती है।'' और इस सबके दौरान मैं यही सोचता रहा कि मन्नू पर अत्याचार किए हैं, मन्नू ने कुछ भी नहीं किया? मुझे तो पुराना एक भी क़िस्सा, प्रसंग याद नहीं आता! यों देखा जाए तो कैसे भयानक समय में मन्नू ने यह बखेड़ा फैलाया है! 'हंस' बन्द हो रहा है, अक्षर हाथ से जा रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और मुझे अचानक साठ साल की उम्र में इस स्थिति में डाल दिया जाता है कि अलग अपने रहने की व्यवस्था करूँ, सारा सेटअप बनाऊँ और ज़िन्दगी को ठीक उसी अन्दाज़ में शुरू, करूँ जैसे अपना सब कुछ छोड़कर आनेवाले पाकिस्तानी शरणार्थियों ने की थी। ठीक है, मेरे मन में न कहीं हताशा-बोध है, न पराजय। भाव यही है कि ज़िन्दगी को नए सिरे से शुरू करना है तो करना है—करेंगे! हाँ, गुस्सा आता है कि इस बुढ़ापे में यह बड़ा फ़्लैट लेकर अकेली रहेगी? ('मैं तो हमेशा ही अकेली रही हूँ' का आरोप!) मेरे पास न पैसा है, न आय के साधन। नई जगह तीन-चार हज़ार से कम में क्या आएगी। दो-ढाई ही सही, मगर हर महीने कहाँ से होगा? फिर सब कुछ की नए सिरे से व्यवस्था करने के लिए एक लाख तो हो। फ्रिज़, फ़ोन, कुर्सी-मेज़—सभी तो चाहिए। फिर चारेक हज़ार का महीने का ख़र्चा। यानी छह-सात हजार की मासिक आय और एक लाख शुरू में—चार महीने का समय। हालाँकि संयुक्ता से कहकर मैंने थुंगन को वह एप्लीकेशन दे दी है कि लेखक के रूप में मुझे मकान मिलना चाहिए। अच्छा नहीं लगा, फिर भी सोचा, चलो, कोई तो रहेगा। संयुक्ता, हरिनारायण या स्वयं मैं। मगर उसमें भी चार-छह महीने लगेंगे। कहाँ मिलेगा? रवीन्द्र, भारती नगर में मिले तो ठीक है।

ख़ैर, आज तो प्रभा वाली बात ही गूँज रही है। फ़ोन पर बताया कि डॉक्टर साहब से बातें हुईं। वे 9-10 को दिल्ली रहेंगे (सितम्बर) कहते हैं कि दद्दू से ट्रांसफर वाली बात करके रखिए...दद्दू बिज़नेसमैन है, उसे साहित्य में शौक़ होगा, मगर है तो बिज़नेसमैन ही। मैं अपनी कमाई साहित्य में ही लगाऊँगी। दद्दू को छोड़िए, मैं, प्रतिभा-प्रतिष्ठान आप और मन्नू बाई साहब रहेंगे। यह आप देख लीजिए कि बाद में (यानी टिंकू की ओर से) कोई दिक्कत नहीं होगी। अक्षर भी रहेगा न? हमारी किताबें छपेंगी? 'हंस' में मेरा नाम जाएगा? हम इसे आठ-दस साल में ज्ञानपीठ तो क्या है, 'मैगसेसे एवार्ड' से ज़्यादा गौरवशाली बना देंगे...यानी पैसे की कोई कमी नहीं होगी...। और तभी से मैं सोच रहा हूँ कि क्या मेरा जन्मदिन सचमुच ही ज़िन्दगी का कोई आधारभूत मोड़ लेकर आ रहा है? यह क्या है? नाटक! 'हंस' को मरने नहीं देंगे। प्रभा कहती है, और मैं परेशान हूँ। गौतम पढ़ा-लिखा आदर्शवादी युवक है, प्रभा सिर्फ़ अपनी महत्त्वाकांक्षा से आ रही है। महत्त्वाकांक्षाएँ गौतम की भी यही रही होंगी। मगर यहाँ बात की जा सकती है। वहाँ तो कलकत्ते से सिर्फ़ ऑर्डर आएँगे...दद्दू से एक बार बात तो करनी होगी। अगर इस बीच संजय डालमिया या मित्र प्रकाशन वाली बात कुछ रूप ले ले तो? मुझे लगता है, संजय वाली बात मुझे सूट नहीं करेगी। वे लोग गौतम को तो लेंगे नहीं, क्योंकि उसकी कोई उपयोगिता नहीं है। 'हंस' या 'अक्षर' लेंगे तो मेरी स्थिति वेतनभोगी की होगी। हो सकता है, फ़्लैट, गाड़ी, टेलीफ़ोन, शोफ़र, तनख़ा—सभी कुछ मैं तय कर लूँ मगर 'हंस' की स्वतंत्रता, आक्रामकता उनसे बर्दाश्त होगी? अगर वे उसे बड़ा प्रतिष्ठान बनाएँगे तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या मुझे लक्ष्मीचन्द्र जैन में तब्दील कर देंगे? अभी तक नौकरी नहीं की तो क्या अब नौकरी में जाना मेरे लिए बहुत श्रेयस्कर है? अगर बनती है तो मैं आज भी ये विकल्प छोड़कर मित्र प्रकाशन वाली बात पर ही जाऊँगा। उस व्यवस्था में मैं सम्पादकीय विभाग का मालिक रहूँगा—अंक पूरा तैयार करके, पेस्ट इत्यादि करके हर महीने दे दिया और एक बँधी हुई रकम ले ली—वे छापें, बेचें, काग़ज़ का कोटा खाएँ और विज्ञापन बटोरें...यह ऑफ़र मैंने एस.के. राय के माध्यम से भिजवाया था। चूँकि उनके पास प्रेस और वितरण या व्यावसायिक व्यवस्था है इसलिए उसे छापना-बेचना क़तई घाटे का सौदा नहीं रहेगा। इधर हमारे ऊपर भी आर्थिक दबाव हटेगा। लेखकों, चित्रकारों को हम देंगे, स्टाफ़ और सारी व्यवस्था हम सँभालेंगे...और एक बँधी हुई रक़म हमें मिलेगी। हो सकता है, इसमें हम 'अक्षर' का सारा घाटा पूरा कर लें...मैंने यह प्रस्ताव पहले आनन्द बाज़ार को दिया था, खुशवन्त के माध्यम से—यानी उषा महाजन द्वारा वहाँ से कोई रेस्पोंस नहीं मिला—अब बात मित्र प्रकाशन में है। अगर यह हो जाता है तो मैं सब कुछ छोड़कर इसी प्रयोग को करूँगा...इसमें गौतम को भी शायद हटाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। बाक़ी अगर कोई और व्यवस्था करनी हुई तो राधाकृष्ण प्रकाशन के अरोड़ा को साथ लूँगा...राधाकृष्ण को वाणी वाले ख़रीद रहे हैं...

18.8.88

परसों दद्दू को सारी बातें बताते हुए पत्र लिखा है। गिरिराज को भी मैंने सब कुछ बता दिया है। 15 को प्रियंवद आ गया था, दारू पी। कल पेट ऐसा साफ़ हुआ कि लिखना पड़ रहा है। बात कितनी ज़लील और घृणास्पद है कि यह भी डायरी के स्मरणीय दिनों की तरह लिखनी पड़ रही है—क्योंकि दुर्लभ घटना है। परसों विद्यार्थियों या साहित्य से रुचि रखनेवालों से मिलना था। सारे दिन बिजली आती-जाती रही। गिरिराज के यहाँ तो थी ही नहीं। हम ठीक समय पर पहुँचे, मगर कोई नहीं आया। लौट आए। सुधा भाभी छह बजे गाड़ी भेजनेवाली थीं, खाने को बुलाया था। साढ़े सात तक जब कोई नहीं आया तो फ़ोन किया। बहुत-बहुत माफी माँगते हुए आज के लिए कहा है। अगर आज भी गाड़ी नहीं आती तो फिर कभी अगले महीने जाएँगे। अभी सुबह से अपनी अधूरी चीज़ें निकाल ली हैं। सचमुच, मैंने बहुत लिखा है। दो-ढाई-ढाई सौ पन्नों के अधूरे उपन्यास, एक अधूरी लम्बी कहानी। कल सारे छपे हुए लेखों को पुस्तकाकार करने के लिए निकाला। काफ़ी बड़ी चार किताबें बन रही हैं। दो उनकी जिन्होंने मुझ पर लिखा है। एक इंटरव्यूज़ की, एक मेरे ऊपर लिखे हुए लेखों की। एक कहानी-संग्रह, एक विविध विषयों पर लिखे हुए लेखों की—'काँटे की बात' नाम से। एक उपन्यासों पर समीक्षा और एक कहानियों पर...अब इन सबको ठीक करना है। आज से ही काम शुरू कर रहा हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

26.8.88

अपने-आपको लिखने के मानसिक माहौल में लाने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ रहा है। छोड़े हुए बहुत लम्बा अरसा हो गया न...हर चीज़ विश्लेषण या टिप्पणी के रूप में ही दिमाग़ में आती है। एक कहानी कुलबुला रही है। मगर मन में है कि शायद मैं उसके मूल आइडिया को लघु-कथा के रूप में ही लिख पाऊँगा। डिटेल्स याद ही नहीं आते। लोग कैसे परम-विस्तार के साथ ज़िन्दगी के टुकड़े, विवरण देते चले जाते हैं। मेरे दिमाग़ में तो कुछ भी नहीं है। दो-तीन दिनों में मैंने सिर्फ़ यह किया है कि अपने सारे लेख-कटिंग (जो भी साथ ला पाया हूँ) उन्हें अलग-अलग फ़ाइलों में लगा दिया है। अब बैठकर उन्हें रिवाइज़ करना है, छोड़ देना या जोड़ना-घटाना है। देखता हूँ, लगभग छह किताबें एकदम तैयार हैं : एक अपने इंटरव्यूज़, अपने ऊपर लेख, कहानियों पर लेख; उपन्यासों पर लेख, काँटे की बात नाम से सामान्य विषयों पर लेख और अपनी अप्रकाशित कहानियाँ...अगर 'हंस' के सम्पादकीय और शामिल कर दिये जाएँ तो एक किताब और...और कुछ नहीं तो कम-से-कम इन्हीं किताबों को तैयार कर ले जाऊँ तो काफ़ी काम हो।

वैसे सोचता हूँ कि अधूरे उपन्यासों में से एक को तो कम-से-कम पूरा कर लूँ...उन्हें भी एक बार पढ़ूँगा...यहाँ रूटीन लगभग सेट हो गया है। सुबह उठकर वही कुछ लिखना-पढ़ना, चाय-पानी के साथ अपने को तैयार करना। पाँच-सवा पाँच बजे आँख खुल गई तो अपनी चाय खुद बना ली। टी. बैग, शुगर क्यूब ले आया हूँ बिजली की केटली है ही—पाँच मिनट में चाय हाज़िर...न बाद में कोई गन्दगी, न किसी की निर्भरता...साढ़े छह के आसपास बेड टी आ जाती है। नहाना-धोना, जाँघिए-बनियान धोकर, साढ़े आठ-नौ पर नाश्ते के लिए जाना, फिर यहाँ आकर पढ़ना, लेखों की छँटाई यानी कुछ और काम। एक के आसपास खाने जाना। आध-पौन घंटे की नींद...फिर एक चाय और काम...पाँच बजे गिरिराज का आगमन। घर जाकर चाय—दस तक वहीं। खबरें सुनकर पैदल ही वापस। कम-से-कम यहाँ कुछ चलना तो होता है। हो सकता है, यह मेरे स्वास्थ्य के लिए ठीक रहे। परसों पहली बार तीन-चार 'विद्यार्थियों' के सामने रचनात्मकता पर बातचीत की थी। हो सकता है, आगे कुछ और लोग आएँ। गिरिजा कुमार माथुर का लड़का पवन माथुर यहीं, इसी गेस्ट-हाउस में है। इंटेलीजेंट लगा। सात बजे सुधा सिंहानिया ने जीप भेज दी थी। उसके यहाँ गए। उसका तो जैसे कायाकल्प हो गया है। कहाँ वह इतनी मोटी-बेडौल हो गई थी कि सिर्फ़ मांस का बोरा लगती थी, और कहाँ अब एकदम छरहरी, सुन्दर भी लगती है।

परसों से यहाँ बड़ी छटपटाहट महसूस हो रही है। मंगल को 'निर्मला' देखकर उठने ही वाला था कि अंग्रेजी ख़बरें आने लगीं। बताया कि प्लेन-क्रैश हो जाने से पाकिस्तान के राष्ट्रपति ज़ियाउल हक़ की मृत्यु हो गई है। साथ में 30-35 शीर्ष सेना अधिकारी थे, अमेरिकन राजदूत था। कोई भी नहीं बचा। बेचैनी थी और अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ से जाना जाए। दिल्ली में भी क्या किया जा सकता था, मगर लगा, मुझे दिल्ली होना चाहिए था।

29.8.88

20 को सात-आठ बजे अचानक हरिनारायण आ गए। खुशी हुई। उन्होंने बहुत-सी बातें बताईं कि गौतम ने दिलचस्पी लेना छोड़ दिया है, गोयल को यहाँ से हटाकर धीरेन्द्र के यहाँ लगा दिया है। मन्नू अक्सर कॉलेज से लौटकर आती है, अर्चना भी दो-एक बार आ चुकी है, इत्यादि...लगता है कि गौतम के पास अभी संजय का कोई सन्देश नहीं आया। हरिनारायण अपने साथ फ़ाउंटेन हैड, पैडेगॉगी ऑफ़ द अनप्रेस्ड के कुछ हिस्सों के अर्चना के अनुवाद लाए थे, निर्मलाजी का मूनिस रज़ा का अनुवाद, कुछ पत्र। ख़ैर, लगातार लगकर मैंने सब ठीक कर दिये। शैलेश ने मेरे लेख पर अठारह टाइप्ड पन्नों का उत्तर दिया है। उसे काफ़ी छोटा करना पड़ा है। वे कल शाम को गए हैं। रविवार को गिरिराज ने अपने यहाँ एक गोष्ठी की थी, दोपहर को दो बजे। तीन बजे तक सब आ गए—लगभग पन्द्रह लोग—हृषीकेश, राजेन्द्र राव, प्रियंवद, सुमति, सुरेश अवस्थी, इत्यादि...इत्यादि। 'क्यों लिखें?' पर बातचीत हुई। अच्छी और गम्भीर बातचीत थी। काफ़ी देर चली और बाद में राजेन्द्र राव, प्रियंवद रुक गए। कमरे में आकर दारू पी। दस के लगभग सब चले गए। वैसे तो सभी कुछ अच्छा रहा लेकिन हरिनारायण के आने से पहले मैं जिस रचनात्मक मन:स्थिति में आ गया था, वह छिन्न-भिन्न हो गई। उस समय तो मैं कहानी लिखने की बात सोचने लगा था। सारे लेख अलग-अलग छाँटकर पुस्तकों के रूप में तय कर दिये थे। अब तो बस बैठकर उन्हें रिवाइज़ कर देना है। और अब दिमाग़ में है कि 25 को जाना है।

31.8.88

परसों रात को चला था और कल सुबह आई.आई.टी. चला आया—स्कूटर से। अभी तक दिमाग़ अपने ठीहे पर बैठ नहीं पाया है। दिल्ली सीधे मैं हौज़खास ही गया था, गोपाल आ गया। जहाँ मन को समझा रहा था कि नया कुछ भी नहीं है, हमेशा की तरह ही मैं घर जा रहा हूँ, वहीं यह भी भावना थी कि वैसा 'अधिकार' रह कहाँ गया है? ख़ैर, स्थिति को कुछ हद तक बचाया वहाँ ठाकुर साहब वाली भाभी, टिंगू, नेहा ने। वे लोग तीन-चार दिनों से हैं। भाभीजी का 'वीसा' बनना है—ठाकुर साहब उन्हें बुला रहे हैं और यहाँ एम्बैसी वालों को कुछ पता ही नहीं है। दिक़्क़त है कि मैं कुछ समय के लिए आया हूँ, इसलिए कुछ भी नहीं कर पाऊँगा। हर दिन की तरह दफ़्तर गया। अर्चना भी आ गई थी। मालूम हुआ कि सन्तोषी अभी तक आया नहीं है और शोभा की तबीयत खराब हो गई थी, इसलिए अब तो अपने समय के बाद ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आएगी। यानी पत्र वगैरह कुछ भी नहीं लिख पाया। नवलखाजी से समय 29 का ही तय हुआ—सोमवार को दोपहर बाद। 27 को रक्षा बन्धन था। नलिनी, सुमन और रेणु वहीं दफ़्तर में आ गई थीं। वहीं राखी बाँधी। मालूम हुआ कि भूपेन्द्र-मालती भरतपुर लक्ष्मीनारायणजी के यहाँ जाते रहते हैं।

28 को जन्मदिन था। औपचारिक रूप से किसी ने भी बधाई नहीं दीं, शब्दों में। मन्नू कुर्ते का कपड़ा लाई थी। रोज़ की तरह ही दिन निकला। सुबह शरद कुमार आ गया था। कलकत्ते जाएगा। उससे मैंने प्रभा को घुमा-फिराकर यही समझाने को कहा कि अभी बहुत महत्त्वाकांक्षी न बने। काफ़ी देर बातें हुईं। फिर आए उषा और महाजन...शाम को हमने अजित-स्नेह, नामवर इत्यादि को बुला लिया था—राजेन्द्र कुमार मिश्र रुके नहीं। चले गए। दारू पी, खाना खाया। टिंकू-दिनेश भी आए थे। टिंकू अगले महीने विदेश-भ्रमण को जा रही है। यूरोप, इंग्लैंड, अमेरिका।

अगले दिन शाम को चार बजे नवलखाजी से मुलाक़ात हुई। उनके घर। घंटे भर बातें हुईं। बहुत खूबसूरत, मुलायम और तार्किक ढंग से उन्होंने जो बातें कहीं, उनका सार यही था कि उन्हें उधार का सारा रुपया चाहिए, गौतम के शेयरों का पूरा पैसा चाहिए। यानी प्रभा को तत्काल कम-से-कम साढ़े तीन-चार लगाने होंगे। दफ़्तर में मैंने अरोड़ा को बुलाकर बात पक्की कर ली है। दो में वह आएगा और सारा कुछ सँभालेगा—यानी चलाएगा। लगभग यही बात हारिस से भी की है। यहाँ कल प्रभा का फ़ोन आया। पत्र में उसने लिख भी दिया है कि वह सम्पादक बनना चाहती है।...तो इस तरह रहा मेरे जन्मदिवस का 'प्रवास'।

अक्सर मैं मन में सोचता हूँ कि अब साठवें वर्ष में चल रहा हूँ। साला न कहीं दिमाग़, मन, चेतना में उम्र का अहसास है, न शरीर में। वही सपने हैं, वही आकांक्षाएँ हैं और वही मानसिकता। सचमुच, कुछ भी तो नहीं महसूस होता। लोग इस उम्र तक कैसे लद्धड़ हो जाते हैं! पता नहीं, गिनाने लायक़ और उपलब्धियाँ हैं या नहीं, लेकिन ज़िन्दगी की दो ही उपलब्धियाँ मानता हूँ : एक तो मैंने शायद किसी के लिए दुर्भावना नहीं पाली—किसी के लिए भी 'इल-विल' जैसी चीज़ मन में नहीं महसूस होती; दूसरे, सामाजिक आक्रोश अभी तक बरक़रार है। शायद असुरक्षा की भावना या आशंका का न होना भी इसके पीछे हो...कभी-कभी यह भी सोचता हूँ कि मौत और भविष्य से बेख़बर और बेख़याल ज़िन्दगी पशु की भी तो ज़िन्दगी है। हालाँकि दो महीने बाद कहाँ रहूँगा, यह सवाल सामने मँडरा रहा है, मगर इसे लेकर कोई आतंक नहीं है। कोई न कोई रास्ता तो निकलेगा।... संयुक्ता ने जब कहा था मन्नू के सामने ही कि आपके घरवाली बात में कुछ समय लगेगा तो मन्नू कुछ नहीं बोली थी। यानी मन में शायद वह ठान चुकी है कि हमें अलग ही रहना है। संयुक्ता को नया मकान सफ़दरजंग एन्क्लेव में मिल रहा है। कहती है, आप यहाँ आकर रहिए। एक कमरा तो ख़ाली होगा ही—फिर मैं तो अक्सर बाहर ही रहूँगी। उधर उस कम्बख़्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर में बिल्कुल नहीं लगता कि मैं नहीं हूँ, या आगे नहीं रहूँगा। लगता है, कुछ दिनों को गया हूँ, आगे आऊँगा और रहने लगूँगा। राजी कहती है कि आप एसर्ट क्यों नहीं करते, गिरिराज-मीरा कहते हैं कि तुम बात क्यों नहीं करते? जब सारी बातें इस हद तक तय हो चुकी हैं, फिर न तो बेशर्म की तरह एसर्ट करने की ज़रूरत है, न बात कर सकने की गुंजाइश...

2.9.88

कल यहाँ आए हुए महीना हो गया। रुपए भी मिल गए। साढ़े चार हज़ार—खाने, रहने के अलावा। लेकिन महीने भर में बहुत सन्तोषजनक काम नहीं हुआ। अपना लिखना प्रायः नहीं। कुछ अच्छी पुस्तकें पढ़ीं और अलग-अलग पुस्तकों के लिए पांडुलिपियाँ छाँटने का मूल काम पूरा हो गया। बाज़ार गए और वहाँ भाभीजी की मदद से छह सौ रुपए की एक साड़ी मन्नू के लिए ख़रीद ली। उससे पहले एक साड़ी के साढ़े तीन सौ मीरा को दे दिये थे। लगता है, जब हैं तो क्यों न सबको दिये जाएँ! सोमवार को पाँच सौ शालिनी—बड़ी बेबी को भेजने हैं। राखी पर सौ-सौ नन्ही और सुमन को दिये थे—डेढ़ सौ का बैग गोपाल को दिलाया था। अपने लिए इस बार लेना है। अजीब बात है, एक तरफ़ ख़र्च करने का भी मन होता है और उधर यह भी इच्छा है कि वक़्त-ज़रूरत के लिए इस बीच में पच्चीस-तीस हज़ार जमा कर लिये जाएँ।

श्री नवलखाजी से जो बातें हुई थीं, उसी आधार पर परसों गौतम को एक पत्र लिखा। गिरिराज से कॉपी निकालने को कहा था, वह भूल गया। उसने यही बताया कि संजय डालमिया को जो ऑफर हमने दिया, नवलखाजी ने लगभग वही प्रभा से अपने लिए चाहा है। वहाँ भी हम पाँच-छह की उम्मीद कर रहे हैं, यानी हम लोगों का घाटा पूरा हो, अब वे उम्मीद कर रहे हैं कि प्रभा उनका घाटा पूरा कर दे—यानी लोन भी पूरा दिया जाए और शेयर मनी भी पूरा ही मिले। यही उस दिन की बातचीत का सार था। मैंने यही कहा है कि चीज़ों को हमें इतना मुश्किल नहीं बना देना चाहिए कि अगला 'सोचेंगे' का नाम लेकर भाग खड़ा हो। हम दोनों ने शुरू किया है और उसे चलते रहना चाहिए। हम अपनी बेवकूफ़ियों, अनुभवहीनता और अयथार्थवादी दृष्टि की क़ीमत दूसरों से क्यों चाहते हैं? और हमने क्या सिर्फ़ खोया ही, यश-सम्मान, प्रतिष्ठा, अनुभव सभी कुछ नहीं पाया है? आज हम पत्रिका निकालेंगे तो ज़्यादा ठोस योजना बनाएँगे...इत्यादि। मैं यह मानकर चलता हूँ कि गौतम यह पत्र नवलखाजी को ज़रूर दिखाएगा। यह भी लिखा है कि प्रभा नए व्यक्ति के साथ आने से हिचकिचाती है, उमरावजी मेरे चाहे जितने घनिष्ठ मित्र हों, लेकिन तुम भी शायद उनके साथ न आना चाहो। नवलखाजी के साथ शुरू की बातचीत में घाटा आधा-आधा बाँटने की बात हुई थी और वही मैंने आगे कह दिया था। अब यह लगभग बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदलना लगता है। अगले के दिमाग़ में आ सकता है कि अभी से दिक़्क़त खड़ी की जा रही है तो आगे भी असुविधा हो सकती है। यही मैंने गौतम को लिखा है। देखो, नौ को क्या होता है! प्रभा से बात शायद 10 को होगी।

8.9.88

एक कहानी—'पोस्ट-मार्टम' मेरे पास लिखी रखी थी। 29.11.84 को शुरू की थी और 8.12.84 को समाप्त की। लगभग पौने चार साल हो गए। तब से कहीं अटकी थी कि दुबारा लिखनी है। पिछले चार-पाँच दिनों में लिख डाली। लम्बी है—छपकर पच्चीस-तीस पन्नों की। कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं जो लिखे जाने में जैसे भीतर से निचोड़ लेती हैं। हम लोग अपनी हर कहानी में कहीं न कहीं अपने को बचाते रहते हैं। शायद मैंने ज़िन्दगी में यही कहानी ऐसी लिखी है जहाँ अपने-आपको बिल्कुल नहीं बचाया—कहीं स्पेअर नहीं किया। अगर टोटल-कन्फ़ैशन कुछ होता हो तो मैं इस कहानी को लूँगा। कभी लगता है कि यह शायद मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी है और कभी लगता है, यह सिर्फ़ बुढ़भस। कभी यह कहने को मन करता है कि इतनी ईमानदारी से कहानी सिर्फ़ टॉल्स्टॉय ही लिख सकता था, कम-से-कम भारत में तो किसी ने नहीं लिखी। 'टूटना', 'वहाँ तक पहुँचने की दौड़', 'ढोल' इत्यादि को मैं अपनी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ मानता हूँ, इसमें 'प्रतीक्षा' और 'किनारे से किनारे तक' भी शामिल हैं, मगर यह उन सबसे अलग और श्रेष्ठ है—निकृष्ट और अधम से उदात्तीकरण की यात्रा। अब इसका नाम 'बाप' भी हो सकता है और पुनर्जन्म भी...ऐसी बातें आती सबके दिमाग़ में होंगी, मगर लिखता कोई नहीं है। मज़े की बात है कि जो घटना मैंने इसमें ली है, वह कभी मेरे साथ नहीं हुई। उन दिनों शायद सन्ध्या वात्स्यायन के पत्र आते थे। उसे मैंने न तब तक देखा, न आज। जानता ही नहीं कि कैसी है—मगर उसने जैसे मेरी कल्पना को पंख लगा दिये थे और उसी एक कमीने दिवास्वप्न को मैंने इसमें आधार बनाया है। दिक़्क़त यह है कि इसे अपने नाम से छपाने की हिम्मत आज भी नहीं पड़ती...दिल्ली जाकर टाइप कराऊँगा फिर बिना नाम दिये अर्चना को पढ़ाऊँगा...

परसों मीता आई थी। कल लखनऊ में काम था। आज सुबह छह बजे गई है। बारिश हो रही थी। बीमार रही इस बीच। काफ़ी दुबली हो गई है। उसका आना अच्छा ही लगा। ख़ासतौर से कहानी लिखने के सन्तोष के बाद...आज रात को दिल्ली जा रहा हूँ। 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' पता नहीं, जब लौटूँगा तो 'हंस' का क्या स्वरूप होगा और सन्तुष्ट लौटूँगा या हार-टूटकर! गिरिराज ने 'संडे' में मेरा भविष्य पढ़ा। उसके हिसाब से इस हफ़्ते बंटाधार है। अन्धविश्वास ही है, मगर हो सकता है, सब अच्छा ही हो! प्रभा और डॉक्टर श्रॉफ़ भी आएँगे परसों। तब तक मुझे नवलखाजी वाले मामले को सुलझा लेना है। पत्र की पता नहीं, क्या प्रतिक्रिया हुई है। 'हंस'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी तक नहीं आया है। पहली को सोढ़ी ने दे तो ज़रूर दिया होगा, लेकिन डिस्पैच नहीं हुआ क्या? अरोड़ा का क्या हुआ? हारिस भी आनेवाला था। आज से जैसे अक्षर की चिन्ता सवार हो रही है।

15.9.88

कल सुबह लौटा हूँ। बीच में यात्रा से जैसे डर लगने लगा था। अब निकल गया है। क्योंकि कल यानी 17 की रात को फिर जाना है, 20 की सुबह आने के लिए।

दिल्ली पहुँचकर घर गया। फ़ोन किए। शरत कुमार की चिट्ठी आई थी। एक घर और एक दफ़्तर। प्रभा से मिलकर प्रभावित हुआ। वह उसे काफ़ी सीरियस लगी। गौतम से बात हुई। अंक लेट आया। इस बार साफ़-सुथरा छपा है...सुन्दर भी लगता है। शाम तक प्रभा का फ़ोन आ गया। डॉ. श्रॉफ़ नहीं आए हैं। अगले हफ़्ते आएँगे। हम लोग शाम को मिलेंगे। इधर मन्नू ने निर्मलाजी से कह रखा है। उन्हें पूनम की समस्या हल करने के लिए घर चाहिए—जहाँ कोई भी न हो। 4.30 से 6.30 तक। मैं टालना चाहता था। मन्नू नें उन्हें प्रभा के बारे में बता दिया। 'बट वी आर आल्सो रेसिंग अगेंस्ट टाइम्स' करके वे हँस पड़ीं। उन लोगों को ख़बर देने का कोई तरीक़ा नहीं है। हम अलग बैठ जाएँगे। ख़ैर, आलोकधन्वा की कविताएँ सुनते हुए ठीक सात पर मैं घर था। निर्दोष, नगेन्द्र, निर्मलाजी आ गए थे। पूनम और ससुराल से आनेवाले साहब नहीं आए थे। साढ़े सात पर प्रभा आ गई तो हम लोग इधर मेरे कमरे में बैठ गए। बातें हुईं। नया अंक दिखाया। अपनी अनूदित कविताएँ देखकर खुश हुई। बातें हुईं।

मैंने नवलखाजी वाला प्रस्ताव रखा कि गौतम के शेयर पड़े रहने दो, और तुम आ जाओ। उसने दो-टूक मना कर दिया कि मैं गुमनाम फ़ाइनेंसर होकर नहीं आना चाहती। आऊँगी तो अपनी योजना के साथ आऊँगी और मान्यता भी चाहूँगी। मैंने दूसरी स्थिति बताई कि उनका उधार दे देंगे—तीन-चार किस्तों में और शेयर्स की बात कर ली जाए। उसने बताया—अभी तो मैं कुल डेढ़ दूँगी, बाक़ी ट्रस्ट के मकान-किराए का आता रहेगा, हर महीने। अब आई बात उनका नाम सम्पादक की जगह देने की। मैंने कहा—यह गलत हो जाएगा। बाद में होगा। तुम्हें साल-दो-साल निरन्तर लिखकर वह पोज़ीशन अर्जित करनी होगी। अगर यह नाम मैं अर्चना का देता हूँ तो लोग पहले स्वीकार नहीं करेंगे, बाद में शायद कर लेंगे। तुम्हारा तो बिल्कुल नहीं करेंगे, बल्कि उलटे तुम्हारी सारी साहित्यिक छवि समाप्त हो जाएगी कि यह पद तुमने पैसे के बल पर ख़रीदा। तुम्हारा नाम वहाँ दिया जा सकता है, जहाँ गौतम का जा रहा है, यानी प्रबन्ध-सम्पादक। मान गई। मूल रूप से यही बात हुई। अब अगले रविवार को डॉक्टर श्रॉफ़ आएँगे। उनकी और नवलखाजी की मीटिंग हो जाएगी। वह कल साढ़े छह पर आने को कहकर चली गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबह मैंने गौतम को फ़ोन किया। सोचा, पहले हम लोग बातें कर लें। मैं चाहता था, वह साढ़े चार पर आए, पर उसने साढ़े पाँच कहा। ख़ैर। सुबह इटैलियन लड़की फ्रैंचेस्का आर्सिनी आ गई। मन्नू की तबीयत ख़राब थी। वह लेटी रही। यह लड़की कल भी आई थी। मेरे ऊपर डैसर्टेशन लिख रही है। किताबें, हंस इत्यादि खरीदकर ले गई। लगभग सुन्दर है और हिन्दी बोलने की कोशिश करती है। दो घंटे बातें हुईं। उसे कुछ चीज़ें दीं। कानपुर आने को कहा। वह आएँगी। 1-2 अक्टूबर के आसपास।

शाम को प्रभा साढ़े पाँच पर ही आ गई। गौतम को आने में देर हुई। लगभग आगे-पीछे ही आए। वही बातें हुईं। 'हंस' से सम्बन्ध गौतम का बना रहेगा। इस समय इतना ही दे सकती है और तीसरा पार्टनर बनने का कोई सवाल ही नहीं। एक साथ अगर ज़्यादा माँगा गया तो साल भर रुककर वह अपनी पत्रिका निकालेगी। वह सारी बात को आर्थिक कम, भावनात्मक धरातल पर अधिक ले रही थी। पत्रिका का चरित्र, प्रेमचन्द की परम्परा, यादवजी का महत्त्व, गौतम का लगाव इत्यादि। अब आप ही सोच लीजिए कि एक मरते हुए मरीज़ को अगर बचाना है तो पहले उसका दिल बचाना होगा, पेट को तो बाद में सँभाल लेंगे। अगर आप चला सकते हैं तो ज़रूर चलाएँ। मैं हट जाती हूँ, लेकिन जो अर्जेन्सी यादवजी ने बताई है, उसकी बात है तो मैं हाज़िर हूँ। गौतम आर्थिक बात नवलखाजी पर छोड़ देता था। तब उसने कहा कि मैं तो अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा भेज रही हूँ। डॉ. श्रॉफ़ तो इसे आँखों के अस्पताल में लगाना चाहते थे। मैंने उन्हें पर्सुएड किया। पत्रिका को देखते हुए तुम्हें भी बाबूजी से बातें कर लेनी चाहिए। शायद गौतम इस स्थिति में नहीं था। तय हुआ कि साढ़े नौ बजे नवलखाजी से मिला जाए। इस बीच में हमें टिंकू के यहाँ जाना था। बाहर गौतम के जाते हुए प्रभा भी गई। वहीं वे लोग बातें करते रहे। आकर प्रभा ने बताया कि यह तो तैयार है, लेकिन खुद निर्णय नहीं ले सकता। ताज्जुब है, चालीस-पैंतालीस साल का व्यक्ति इमोशनली इतना इमेच्योर है। एडल्ट नहीं हुआ है। थोड़ी देर बात करके वह चली गई। हम लोग टिंकू के यहाँ गए।

साढ़े नौ बजे मैं ग्रेटर कैलाश पहुँचा। नवलखाजी आ चुके थे। उसी स्टडी में बैठे। कुछ बातें हुई ही थीं कि प्रभा आ गई। वही सब दुहराया गया। उधार तो चुकाना ही है, उसका तरीक़ा क्या हो? तीन-चार इंस्टॉलमेंट में दे दिया जाए। शेयर्स का 50 प्रतिशत। प्रभा ने 25 बोला। वह यही आग्रह कर रही थी, पहले दिल बचाना है। गौतम के शब्दों में अगर उसे अकेले ही आना है तो 'शी 'ल हैव टु पे द प्राइस, उसका कहना है कि हम एम.बी.ए. करने लड़के को अमेरिका भेजते हैं, तो तीन लाख ख़र्च कर डालते हैं। गौतम ने कुछ सीखा ही है। यही सब बातें होती रहीं। मैंने भी कह दिया कि 'हंस' के हित में मैं सब कुछ मान लूँगा, लेकिन मेरे ऊपर बोझ ढाई के साथ अब एक का और पड़ गया। पूरे पाँच लाख के घाटे में ढाई मेरा, फिर एक यह। बात डॉ. श्रॉफ़ के आने तक के लिए स्थगित हो गई। प्रभा को रात को जाना था। हम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह टिंकू के यहाँ आए। प्रभा ने भी कहा कि सारी ज़बानी मुलायमियत के बावजूद नवलखा पैसे को लेकर बहुत चौकस हैं। ख़ैर, देखेंगे। उसने सारी बातें जल्दी-जल्दी टिंकू के यहाँ घसीटकर पत्र बनाया और फिर हम लोग घर आ गए। तब बारह बजे थे।

अगले दिन मैंने गौतम को बताया कि लगता नहीं है कि ये चीज़ सम्भव होगी। एक तो यह कि प्रभा अपने-आप नहीं आ रही, मैंने तैयार किया है। मगर हमने अजीब विभाजन कर लिया है। जब अमूर्त सम्पत्ति की बात करते हैं तो प्रभा के लिए अतिशयोक्ति करते हैं, फिर जब मूर्त सम्पत्ति की बात अपने लिए करते हैं तो वहाँ सख़्त जाते हैं। वहाँ 'बिज़नेस' हो जाता है। कहाँ मिलेंगे ? अगर यह साफ़ कर लें कि यह एक ऐसा मिशन है जिसमें बिज़नेस की सम्भावनाएँ हैं। दूसरे ऐसे बिज़नेस होते हैं जिनमें आदर्शों की गुंजाइश होती है। यही सब बातें करके मैं अगले दिन यानी मंगल को चला आया। गौतम के अन्तर्द्वंद्व को मैं समझ सकता हूँ।

26.9.88

कल रात को ही प्रसाद के उपन्यासों—'कंकाल' और 'तितली' पर लेख समाप्त किया है। सुबह रिवाइज़ किया। लगता है, लेख में बहुत-सी नई बातें उठाई गई हैं—पहली बार...अगर इस पर कुछ और काम हो सकता तो निश्चय ही लेख अद्‌भुत बनता। चूँकि चीज़ें मुझे याद नहीं रहतीं, इसलिए बहुत श्रम करना पड़ा। 'कंकाल' और 'तितली' दो बार पढ़े। ख़ैर, आज दिल्ली जाना है। अब दिल्ली का पसारा दिमाग़ पर हावी है। वहाँ अजीब नाटकीय स्थिति छोड़ आया था। डॉ. श्रॉफ़ को शनिवार को दिल्ली आना था। इसलिए मैं सुबह ही पहुँच गया था। फ़ोन किया तो पता चला, वे अभी आए नहीं हैं। रविवार को शाम को साथ खाना था। इसलिए शाम को आलोकधन्वा की कविताएँ सुनते हुए घर आ गए, शायद टिंकू के यहाँ जाने के लिए। उसे आज रात ही रवाना होना था। बहुत लोग छोड़ने जा रहे थे और पार्टी थी कहीं और। इसलिए पालम नहीं जाना है। टिंकू सुबह भी आई थी, उसे मैंने पाँच हज़ार रुपए और पन्द्रह डॉलर दिये।

डॉ. श्रॉफ़ अगले दिन सुबह तक नहीं आए। खबर आई कि दोपहर या शाम तक आएँगे। दोपहर को सीधे उनसे ही बात हो गई। वे पालम से ही वृन्दावन जा रहे थे। कल सुबह नौ तक आएँगे, क्योंकि रात को शायद वहाँ रुकना पड़े। दोपहर को उनका आदमी भी चिट्‌ठी लेकर आ गया। ख़ैर, दोपहर के बाद जैनेन्द्रजी के यहाँ गए, शाम को हिमाचल भवन में मंजूर एहतेशाम के पुरस्कार समारोह में। कमलेश्वर ने घर छोड़ा। सुबह डॉ. श्रॉफ़ आए ग्यारह बजे। घंटे भर बातें हुईं और मैंने सारी बात उन्हें समझा दी। गौतम का मोह और प्रताप सिंह जी की व्यावसायिक दृष्टि...अब यह डॉ. श्रॉफ़ पर है कि कैसे सँभालते हैं, प्रभा का सन्देश भी दे दिया कि बात तोड़ें नहीं, लेकिन दृढ़ रहें...उसी दिन सन्ध्या को मिलने की बात तय हुई क्योंकि मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज ही जाना था। हालाँकि वे एकाध दिन और रहेंगे। बाद में नवलखाजी से मिलकर तय कर लें। सारे दिन अक्षर में रहे। अर्चना आई और ठीक साढ़े सात बजे मैं पूसा रोड पर डॉ. हरिमोहन के यहाँ पहुँच गया। सबसे ऊपर डॉ. श्रॉफ़ रुके थे। लगा, आदमी बहुत ही समझदार और तेज़ है क्योंकि उनका सुझाव था कि हम शेयर के उनके पूरे दो लाख दे देते हैं, इससे अक्षर का कर्ज़ कम होगा और घाटे वाले उनके हिस्से को उधार में से तय करा देते हैं। बैंक गारंटी देंगे। मुझे यह सुझाव बहुत सही लगा। गौतम आठ पर आया। बातें वहीं-वहीं घूमती रहीं कि मेरे शेयर पड़े रहें, या इतने रुपए मिलें...इत्यादि। आख़िर में मैंने एक प्रस्ताव रखा : मैं एक रुपए के संकेत मूल्य (टोकन-पेमेंट) पर अपने सारे शेयर्स गौतम के नाम दे देता हूँ। उधार भी मेरा वैसा ही बना रहे, सिर्फ़ गाड़ी और फ़ोन की सुविधा मेरे लिए वैसे ही रहे और ढाई हज़ार रुपए मेरे उधार के सूद का हर महीने मिलता रहे...प्रभा और गौतम अक्षर सँभालें...यह मैं धमकी या ब्लैक-मेलिंग के लिए नहीं कह रहा, क्योंकि 'हंस' तो मुझे निकालना ही है और उसी समर्पण-श्रम के साथ निकालना है। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वही मेरा निश्चय है।

चूँकि सारी बात एक अन्धी गली में आ गई है, इसलिए मैं एक और विकल्प खोल रहा हूँ। बच्चे को बचाना है तो काटकर आधा-आधा लेने की बजाय गौतम को ही दे देना पसन्द करूँगा। आप लोग बैठकर तय कर लीजिए...मैं जा रहा हूँ। एकदम चारों तरफ़ स्तब्धता छा गई। गौतम जैसे भावोद्वेलित हो उठा। उसने दोनों हाथों से माथा पकड़ लिया...मेरे लिए यह प्रस्ताव अकल्पनीय और अविश्वसनीय है। डॉ. श्रॉफ़ बाहर तक छोड़ने आए...और मैं चला आया। कनॉट प्लेस में गोपाल के साथ खाना खाया, ढाबे में...और स्टेशन आते ही कहानी और प्रसादवाले लेख मेरे दिमाग़ में लग गए। मीता ने कहानी का नाम दिया है—'हासिल'...अब आज से मेरे दिमाग़ में दिल्ली घूम रही है, वहाँ का क्या हुआ होगा। कल टेलीफ़ोन कई बार बजकर कटा, हो सकता है कलकत्ता से आ रहा हो...गिरिराज ने 'हासिल' और नवीन कुमार नैथानी की कहानी पर जो राय दी है, उससे लगा, उसकी कहानी की समझ बहुत गहरी नहीं है। जेम्स बाल्डविन की कहानी भी मुझे समझानी पड़ी। अब उसका अनुवाद कर रहा है, उसे भी ठीक करना पड़ेगा। बिना सोचे-समझे या अनुभव के साथ इन्वॉल्व हुए कैसे वह धाँय-धाँय लिखता चला जाता है, इस पर मुझे आश्चर्य है। एक अहसानकारी और अफसरी कुर्सी ने उसे आत्मविश्वास से भर दिया है और हर चीज़ पर उसकी राय फ़ाइनल है। उसे न अध्ययन करने की ज़रूरत है, न सोचने की। तभी उसका लेखन मशीनी और बेजान है। कभी कोई नई बात आ जाए तो आ जाए...हिन्दी और महात्मा गांधी उसके सिर पर सवार दो प्रेत हैं। लिखे हुए को लेकर इच्छाएँ और आकांक्षाएँ इतनी ज़बर्दस्त हैं कि हर प्रकाशक, सम्पादक सिर्फ़ उसकी ही रचनाएँ छापता रहे, उन्हीं पर आलोचक बहस करें, निर्देशक फ़िल्में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीरियल और नाटक बनाएँ, पुरस्कार मिलें। ऊपर से तटस्थता और ज़र्रा-नवाज़ी का भाव... सचमुच क्या हम सभी ऐसे ही हास्यास्पद हो जाते हैं ? यह सब हो, अच्छा लगता है, मगर मेरा तो अपनी रचनाओं को लेकर बहुत ही लापरवाही का भाव है। शायद इसीलिए मेरी समझ में नहीं आ सकता कि महीने में निहायत कैजुअल ढंग से तीन बड़ी कहानियाँ लिखकर उनकी महानता के प्रति आश्वस्त और परम सन्तुष्ट कैसे रह सकता है...ख़ैर, मेरे लिए तो व्यवहार और उदारता में बहुत अच्छा है, मगर मीरा और बच्चों का मुझे अपने प्रति भाव अधिक निश्छल और अफ़ैक्शनेट लगता है...गिरिराज के प्रति भी मैं मन में ऐसी भावनाएँ नहीं लाना चाहता, मगर उसके लेखन-सम्बन्धी हल्केपन से झुँझलाहट होती है—इतना समझदार आदमी इस कमज़ोरी से क्यों नहीं उबर पाता। मैंने कहा भी कि तुम लेखन को लेकर इतने ग़ैर-वफ़ादार क्यों हो ? क्या नहीं दिया लिखने ने ? दस-बारह हज़ार महीना, सम्मान, प्रतिष्ठा और सन्तोष—सभी तो है...

6.10.88

फ्रैंचेस्का ओर्सिनी...इटैलियन लड़की, लम्बी-दुबली और सुन्दर—हिन्दी पढ़ने के लिए आई है और मेरे ऊपर अपना शोध-प्रबन्ध लिखना चाहती है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान में है। पिछले महीने गया था तो हरिनारायण ने बताया था, आई थी। फिर मुझसे मिलने आई। मुश्किल से हिन्दी बोलती है। अगले दिन घर आई। और तय हुआ कि दो दिनों को कानपुर आ जाए तो निश्चिन्तता से बातें हो सकेंगी...फिर एक महीने बात नहीं हुई। मैं साहित्य अकादेमी के प्रसाद के सेमिनार में गया, तब भी भेंट नहीं हुई। संयुक्ता से कहलाया कि आ रही है या नहीं। यहाँ आया तो उसका कार्ड आया हुआ था, और 2 अक्टूबर की शाम को लगभग 4 बजे आई। संकोच तो था ही उसको साथ ठहराने में। ख़ैर, बगलवाले कमरे में प्रबन्ध हो गया। कल गई है। दो-तीन दिन जैसे अपने-आपको और अपने लिखे को, उसके बहाने खँगालने का अवसर मिला। सुबह नाश्ता करके नौ-साढ़े नौ बजे गिरिराज के जाने के बाद हम लोग बात करते थे—टेप लेकर। प्रश्नावली बना लाई थी। निर्विघ्न साढ़े बारह-एक तक। फिर खाना और आराम। शाम को वही गिरिराज के यहाँ—साढ़े दस-ग्यारह तक। बच्चों और मीरा को भी बहुत पसन्द आई। 22 वर्ष की लड़की अकेली दुनिया घूम रही है—एक हमारी टिंकू भी गई है। मीरा के मन में शायद बार-बार यह भी उठता था कि नौकरी छोड़कर अब सिर्फ़ गृहस्थी चला रही है। अक्सर वह कहती है कि हमें लगा कि बच्चों की देखभाल ज़्यादा ज़रूरी है। कहीं यह अपना जस्टिफ़िकेशन होता है, कहीं हमारे जैसों पर आरोप...ख़ैर, कल गाड़ी का प्रबन्ध करके उसे स्टेशन पर छोड़ आया। पता नहीं क्यों, इस युवा-सुन्दर, समझदार विदेशी लड़की के साथ ढाई दिन रहकर जैसे एक ताज़गी आ गई—नए लोगों के सपने, इनकी भाषा, दुनिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देखने का नज़रिया और आत्मविश्वास...बाप से नहीं बनती, वह कंजूस, मीन और स्वकेन्द्रित है। वह और उसका परिवार, बस। बोलने में भी जैसे कुछ ख़र्च होता हो...माँ उदार और मुखर है—हालाँकि मतभेद हैं। जब इसने नाक छिदवाई तो प्रार्थना करती रही—प्लीज़-प्लीज़, मत करो...

इस दौरान स्वयं मैंने अपनी कहानियों को नई दृष्टि से देखा तो लगा कि प्रमुख पात्र के विकास का एक सूत्र है...रूमानी-नॉस्टेल्जिया से लेकर, अतीत-वर्तमान को एक साथ देने के फ्लैश बैक—यानी द्वन्द्व अतीत से मुक्त होने का। खेल-खिलौने, नीराजना इत्यादि...फिर कहीं बँधे, अवरुद्ध, छटपटाने की कहानियाँ— 'जहाँ लक्ष्मी क़ैद है'। कमज़ोर लड़की में अतीत को मिटा देने का दबाव और भविष्य की प्रतीक्षा...नए को सहानुभूति से समझने की कोशिश (किनारे से किनारे तक, मरनेवाले का नाम) भ्रमभंग, मूल्यों का टूटना, सब कुछ का नकार, मेहमान, खुली हुई साँझ और सम्बन्ध...और फिर हारकर जिससे भयंकर घृणा हो, खुद वही बन जाने का दर्द...टूटना...यानी हमारी पीढ़ी किस तरह स्वयं यथास्थिति का हिस्सा बनती चली गई, बिरादरी बाहर होती गई और नए आनेवालों की भाषा उसे अपरिचित लगने लगी...सचमुच वह लड़की मुझे अपने भीतर उतरने के लिए इतना कुछ दे गई कि कल उसके जाने तक मुझे इसका अहसास भी नहीं था। बहुत दिनों की बेचैनी थी और मैं उसका कृतज्ञ हूँ—कभी-कभी इस तरह का नया व्यक्ति किस तरह नए कैटेलैटिक एजेंट बन जाता है, शायद खुद भी नहीं जानता होगा...सौन्दर्य क्या आदमी को इस तरह रूपान्तरित करता है?

2.11.88

परसों आई.आई.टी. में मेरे तीन महीने समाप्त हो गए। क्या किया? शायद कुछ भी नहीं। जो कुछ किया है, वह दिल्ली में भी किया जा सकता था। सिर्फ़ आराम या वनवास की अवधि को काटना—पुराने ऋषि-मुनियों की तरह एकान्त वास के शाप को भोगना...इस बीच प्रभा के साथ 'हंस' की बात लगभग तय होकर समाप्त हो गई। मैं दिल्ली गया भी और वह आई भी। दो-तीन दिन रही। तय था कि चेकों का लेना-देना होगा। लेकिन गौतम ने आग्रह किया कि ड्राफ़्ट से पैसा दिया जाएगा। उसने कहा भी कि तुम मेरे बैंक-मैनेजर से पूछा लो। बात 17-18 की है। उसने बताया कि कलकत्ता पूजा के मूड में है, 26 से पहले नहीं होगा। यहाँ 27-28 को ही आ पाएगा। चूँकि आगे की सारी आर्थिक ऑडिटिंग दिनेश अग्रवाल को ही करनी है, इसलिए मैंने प्रभा से उसे भी मिला दिया और दिनेश का सारा ज़ोर इस बात पर रहा कि हम उन्हें इतना पैसा क्यों दें। तीन उन्हें दें, डेढ़-दो बाज़ार का दें, फिर चलाने के लिए लाएँ—इस सात-आठ में तो नया काम ही किया जा सकता है। बहरहाल जो भी हो, बात समाप्त हो गई थी और मैं 18 की सुबह यहाँ आ गया था। दो दिन राह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर प्रभा को फ़ोन भी किया और सारी बात समाप्त ही लगी। बस, अब एक ही सम्भावना लगी कि हो सकता है, दिनेश और प्रभा के बीच यह बात हुई हो कि मैं और गौतम पहले स्थिति को आपस में सुलट लें—फिर वह दृश्य-पटल पर आए...इधर गौतम के फ़ोन आए कि 'अक्षर' की जगह बदलकर गुडविल ले लें...मैंने साफ़ मना लिख दिया। वह पटौदी हाउस में धीरेन्द्र की किसी जगह 'अक्षर' को ले जाने की बात कर रहा था। फ़ोन पर पता नहीं क्यों, प्रभा ने भी कहा था कि आप अपनी जगह को हाथ से मत जाने दें...शायद उसे इसका आभास था...बहरहाल 'हंस' का अब जो भी होगा, देखा जाएगा। इधर मेरे रहने का भी ठिकाना नहीं है। इन्हीं सब बातों को देखते हुए मैंने गिरिराज को स्वीकृति दे दी कि दो महीने का कार्यकाल और बढ़ा दिया जाए...ज़रूरी हुआ तो बीच में छोड़कर चला जाऊँगा। अभी मन में तय नहीं है कि दीवाली और विवाह की वर्षगाँठ 22 नवम्बर, वहाँ रहकर मनाई जानी चाहिए या नहीं...जब आपसी सम्बन्ध ही समाप्ति पर हैं तो विवाह की वर्षगाँठ का क्या अर्थ है?...देखता हूँ, मन्नू का मूड क्या है?

दार्जिलिंग से लौटते हुए एक दिन फ्रैंचेस्का फिर यहाँ रुकी थी—बग़ल वाले कमरे में। वहाँ उसने 'सारा आकाश' पढ़ा। बहुत व्यक्तिगत बातें हुईं—उसी की सुनता रहा। लिखने में दिलचस्पी रखनेवाला एक और नया प्राध्यापक है अंग्रेज़ी का संजय कुमार...उसके साथ जब वह बात कर रही थी तो मुझे लगा कि साली बहुत पढ़ी-लिखी है। बाइस साल की उम्र के हिसाब से बहुत इंटेलिजेंट, पढ़ी-लिखी, सन्तुलित और स्वीट है। गिरिराज कहता है, स्पायी हो सकती है। बात सही भी हो सकती है, मगर मुझसे क्या लेगी? मेरे द्वारा क्या लेगी? मुझे इसमें गिरिराज की ईर्ष्या बोलती लगती है—मेरे ऊपर रिसर्च कर रही है, यह तकलीफ़ तो है ही...।

29-30 अक्टूबर को हम लोग—मैं और गिरिराज—इलाहाबाद गए थे। ट्रेन से। पहले शैलेश मटियानी के यहाँ गए—टूरिस्ट-होटल में सामान रखकर। फिर वहाँ से लोकभारती आए। शाम को नरेश मेहता और अश्कजी से मिले। अगले दिन सुबह दिनेश के यहाँ मार्कंडेय आ गया। वहाँ से अमरकान्त, रघुवंश से मिलते हुए लोकभारती से स्टेशन—विभूति उस समय इधर आए हुए थे। उनसे सम्पर्क ही नहीं हो पाया। इलाहाबाद जाकर लगता है कि लोग लेखन को लेकर कितने सीरियस हैं।

5.11.88

ज़िन्दगी में बहुत कम बार मेरे साथ ऐसा हुआ है, जैसा कल हुआ। कल गिरिराज के यहाँ मन्नू का फ़ोन आया, दस बजे के आसपास। गौतम कहता है कि मेरे पास तो पैसा नहीं है, अगली कम्पोज़िंग बन्द कर दी जाए। हरिनारायणजी ने पूछा है कि क्या करें...मैंने आठ को आने की बात की। मन्नू ने फिर पूछा तो कहना पड़ा कि तब तक रोककर रखें...लगा, क्या सचमुच 'हंस' बन्द हो जाएगा? ख़ैर, चिन्ता को स्थगित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके पौने ग्यारह से पहले ही कमरे पर लौट आया और सॉल बेलो की कहानी पढ़ता रहा। ग्यारह के बाद नींद आने लगी। सो गया। थोड़ी देर बाद आँख खुली और फिर नींद गायब। मैं तो सोचता था कि कैसी भी मुसीबत हो, मैं नींद के द्वारा उससे लड़ सकता हूँ। पढ़ने को मन नहीं किया : 'आगे क्या होगा ?' का सवाल ही परेशान करता रहा। उठकर रम निकाली और एक पैग बनाकर सोचता रहा कि क्या करना है। आर्थिक, साहित्यिक और पारिवारिक, तीनों धरातलों पर ऐसा एक साथ संकट तो शायद बहुत दिनों बाद आया है। एक तूफ़ान है, पता नहीं उसमें क्या कुछ बचा रहता है। इस समय गिरिराज का यह सहारा न होता तो क्या होता ? क्या इस भयानक संकट के समय दिल्ली से बाहर रहकर मैं बहुत ग़लत कर रहा हूँ ? मगर वहाँ होता तब भी क्या कर लेता ? हम और गौतम सिर्फ़ सिर फोड़कर चिन्ताएँ करते...धीरे-धीरे कुछ बातें साफ़ होने लगीं कि क्या करना है ? हो सकता है, इन्हीं में कोई रास्ता निकल आए !

सबसे पहले तो नवलखाजी से ही जाकर बात करनी है। मगर वे भी क्या बताएँगे ? इतना तो साफ़ ही है कि अब उनका पैसा निकलना मुश्किल है—न शेयर्स का निकलेगा, न लोन का। 'अक्षर' बन्द भी हो जाए तो कुछ नहीं निकलेगा। चार लाख पगड़ी में, एक मकान-मालिक, दो बाज़ार और एक में आधा-आधा। अगर किसी तरह उन्हें समझाया जा सके कि वे सब कुछ छोड़ दें या एक लाख के शेयर्स मेरे नाम ट्रांसफर करके लोन जब-जैसे हो पर छोड़कर गौतम चुप हो जाए, उस स्थिति में मैं, मृदुला, कुसुम मोदी, उमराव सिंह, विभूति नारायण व नाहटा से बात करूँ। सिर्फ़ इस आधार पर कि दो बाज़ार का चुकाकर ढाई से आगे 'हंस' निकाला जाए। यानी सिर्फ़ 'हंस' निकालने के लिए पैसा लगेगा। शायद प्रभा को यही लगा था कि तीन वह इन्हें दे, दो बाज़ार का चुकाए और फिर 'हंस' निकालने को दे। अगर यह आधार बन जाता है तो एक बार प्रभा से भी बात की जा सकती है। प्रभा के बारे में जितना ही मैं सोचता हूँ, उतना ही लगता है कि ग़लती उस दिन 'इंडिया इंटरनेशनल सेंटर' में ही हुई। प्रभा 'हंस' के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध चाहती थी और मैं 'हंस' पर ही टिका रहा...मृदुला कर सकती है...कुसुम अंसल भी कर सकती है। सोचना सिर्फ़ इतना है कि दोनों की महत्त्वाकांक्षाएँ किस हद तक 'हंस' के चरित्र को प्रभावित करेंगी...उमराव सिंह या पटावरी के साथ दिक़्क़त लालानी की है। फिर उन लोगों का विज़न छोटा है, कभी भी परेशानी पैदा कर सकते हैं। सबसे पहले तो जाकर दिनेश से बातें करनी हैं। सोचता हूँ कि दिल्ली में दो-चार दिन रुककर इन सम्भावनाओं को देख लूँ...अगर 'हंस' बन्द करना पड़ा तो 'अक्षर' भी जाएगा। किताबें किसे दूँगा ? रहने की जगह कहाँ होगी ?

संयुक्ता ने अपने साथ रहने का ऑफ़र दिया था। अगर मेरा अपना फ़्लैट हो जाता है, तब तो कोई बात ही नहीं है, वरना दिक़्क़त होगी। 22 को मेरी शादी की सालगिरह है। मैं सोचता हूँ कि कुछ भी भयानक घटने से पहले एक काम और भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर डाला जाए...22 की सुबह हम लोग गाड़ी से निकलें। संयुक्ता और फ्रैंचेस्का जो भी चले, उसे साथ ले लें। सुरीर-भरतपुर होते हुए दो दिनों में लौट आएँ। शायद यह यात्रा हमारे सम्बन्धों को नया धरातल देने में मदद दे। फ्रैंचेस्का लड़की मुझे अच्छी लगने लगी है, उसे कंट्री-साइड दिखाने का अवसर भी मिलेगा। बहुत स्वार्थी और भयानक विचार मन में आता है, क्यों न उसे तैयार किया जाए कि वह 'सारा आकाश' का अनुवाद करे...अगर शमशेर को रंजना अरगड़े मिल सकती है तो आज या दस साल बाद मुझे भी ज़रूरत है (क्या यह शिष्याओं के ग्लैमर के बीच 'बाबावाद' की आकांक्षा है) मगर उसके लिए शायद विदेशी लड़की इतनी श्रद्धामयी नहीं होती। वैसे भी वह बहुत पढ़ी-लिखी और अपनी स्वतन्त्र इच्छाशक्तिवाली और महत्त्वाकांक्षिणी लड़की है। आई.आई.टी. का ही एक अंग्रेज़ी का युवा प्राध्यापक संजय कुमार आया था, उससे अंग्रेज़ी साहित्य और यूरोपीय साहित्य पर उसने जिस स्तर पर बातें कीं, मैं उसी से काफ़ी प्रभावित हुआ। चूँकि यहाँ किसी विदेशी के रहने पर सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती है और दोनों बार उसे एकाध दिन ही रुकना था, इसलिए अलग कमरा मेरे ही नाम से लिया था। गिरिराज को शक है कि किसी मिशन पर भी वह हो सकती है। मगर मुझे लगता है, इसके पीछे उसकी लेखकीय ईर्ष्या ही है। मुझसे क्या ले लेगी? यहाँ तो उसने जगहें इत्यादि देखने की भी उत्सुकता नहीं दिखाई। यहाँ एक डॉक्टर बेरा हैं, वे एयरोफ़िजिक्स या ऐसी ही किसी चीज़ के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने हवाई जहाज़ दिखाने को कहा था तो भी उसकी दिलचस्पी नहीं जागी। हाँ, उसका दस दिनों को दार्जिलिंग जाना ज़रूर चकित करता है। दिल्ली से इतनी दूर—फिर तीन दिनों को ट्रैकिंग पर सीमा तक पहुँची थी, उस दिन बासु के साथ शाम को खाना खाने गए जनपथ में। असमिया के कुछ फ़िल्म डाइरेक्टर भी थे। नशे में उनमें से एक बोला था, शी मे बी ए फ़ॉरेन स्पाई। यह मैं जानता हूँ कि भाषा और साहित्य के साथ आनेवालों में ही ऐसे लोग होते हैं—खुद लुत्से ने जैसे ईस्ट जर्मनी से दूसरे को डिफ़ैक्ट कराया था। मगर इस लड़की को लेकर कहीं भी तो शक नहीं होता। पिछली बार भारत आई थी तो दक्षिण भारत गई थी। इस बार आकर दार्जिलिंग हो आई तो आश्चर्य क्यों है?

14.11.88

कानपुर

इस बार दीवाली पर ताशों का जुआ नहीं खेला, लेकिन ज़िन्दगी की सबसे बड़ी ब्लाइंड चाल चल आया हूँ। हो सकता है, इसके पीछे कोई और रास्ता न देखकर आत्महत्या की इंस्टिक्ट जान पड़ी हो। मंगल की सुबह यानी 8 को दिल्ली पहुँचा था। गौतम ने नवलखाजी से समय तय कर रखा था। उनके दफ़्तर में मिले। सारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति यही बनी कि 'अक्षर' को समाप्त करने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। या तो उसे वहाँ से हटाकर गौतम के छोटे भाई धीरेन्द्र के पटौदी हाउस के दफ़्तर में ले जाया जाए या बन्द कर दिया जाए। यहाँ की पगड़ी चार-साढ़े चार मिलेगी। मैंने समझाया कि दो लाख मार्केट का देना है। 25 प्रतिशत मकान-मालिक लेगा। इस तरह हमारे पास कुल एक लाख बचेगा। मैंने समझाया कि यह सारा सौदा दो-तीन महीने में होगा, तब तक इस एक में से भी काफ़ी कुछ ख़र्च हो चुका होगा। क्या फ़ायदा! नवलखाजी ने कहा कि आगे मैं एक पैसा भी नहीं लगाऊँगा। जो भी लोन है, उसे भूल जाने को तैयार हूँ। मगर मार्केट का ख़ासतौर से मस्ताना जोगी का देना ही होगा। इसके बाद हम चले आए। अंक तो रोक ही दिया है। मुझे लगा, रास्ता एक ही है—या तो बन्द कर दिया जाए, या फिर अलग से चांस लिया जाए। शाम को उमरावजी से मिला। स्थिति समझाई। उन्होंने भी यही कहा कि अगर पौने तीन लाख का लोन डेढ़ में निपटाते हों तो फ़ौरन समाप्त कर दीजिए, वरना बिना ब्याज पाँच साल में लौटा देंगे। मैंने उनसे पक्का किया कि अगर बात बनती हो तो तत्काल देने के लिए एक-डेढ़ हो जाएगा? बोले—हाँ।

दीवाली वाले दिन गौतम को बुलाया था। घर पर मैंने कहा कि मेरे सामने तीन ही विकल्प हैं, प्रभा, मृदुला और कुसुम अंसल। ख़ैर, प्रभा के नाम से ही भड़कता है वह। मैंने यह भी कहा कि उमराव-लालानी ग्रुप से बात बनेगी, मुझे लगता नहीं है। लेकिन पैसा इन्हीं से लेना पड़ेगा—उधार। बात बनी तो ठीक, वरना लौटाना होगा। ख़ैर, दीवाली के पहले निर्मलाजी आ गई थीं। अगले दिन फ्रैंचेस्का आई। थोड़ी देर बातें करके उसके साथ ही दिनेश अग्रवाल के यहाँ पहुँचे। दरियागंज। वह भी साथ ही थी। प्रभा को जो पत्र मैंने लिखा था, वह मन्नू को तो पढ़ाया ही था, गौतम को भी पढ़ा दिया और दिनेश को भी। मैं जानना चाहता था कि आख़िर हमारे यहाँ से निकलकर प्रभा-दिनेश के बीच क्या बातें हुईं? उसने बताया कि चलते-चलते प्रभा ने कहा था कि दो-एक महीने चुप ही रहना है, लेकिन अगले दिन मन्नू से उसने साफ़ इनकार किया था। मैंने कहा—यही बात मुझे भी परेशान किए है कि साथ आने को मना करने के बावजूद उसने यह क्यों कहा कि जगह को हाथ से मत जाने दीजिए...बोले—मैं बात करूँगा। मैंने दिनेश से कहा—मैं तो जुआ खेल रहा हूँ, अब आपको सँभालना है। ख़ैर, वहाँ से चले आए। फ्रैंचेस्का ने कितना समझा, कितना नहीं—कह नहीं सकता।

उसी दिन शाम को फिर उमरावजी के यहाँ बैठे। आपके आधार पर डेढ़ तत्काल देने का मैं वायदा कर आया हूँ, अब आप तय कर लीजिए...'संयोग' से लालानी भी वहाँ थे—किसी और के काम से आए थे। वही बातें। जब तक काग़ज़ न देखें, कैसे कुछ हो सकता है? राजेन्द्रजी 'हंस' के सिवा किसी में इंटरेस्टेड नहीं हैं। वे 'हंस' के लिए कुछ भी कर सकते हैं। मैंने कहा—आपकी योजना तीन पत्रिकाओं की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डू यू एक्स्पेक्ट मी टू एडिट ऑल द मैगजिन्स ? चुप हो गया। मैंने उमरावजी से कहा कि आपकी स्थिति यह है कि आप बिना लालानी के कुछ नहीं करना चाहते, और पाँच-छह साल का अनुभव है कि उन्हें कुछ करना नहीं है। रुपया आप मुझे दें, अगर आप लोग कुछ करेंगे तो ठीक है, वरना जिस भी नए व्यक्ति से बात करूँगा, उससे लेकर लौटा दूँगा। उन्होंने 'हाँ' कहा। शायद बालमुकुन्दजी ने भी कहा था लालानीजी से कि पत्रिका निकालना आपके बस का नहीं है। जब भी निकालो तो यह लाखों की पुस्तकें लाइब्रेरी को दान दे दूँगा। इसलिए बड़ा चैलेंज्ड और उत्साहित दोनों अनुभव कर रहे थे। लालानी को कहानियाँ कमज़ोर महसूस हुई हैं 'हंस' में। आप कानपुर रहने के कारण देख नहीं पा रहे, उसने कहा। ख़ैर, यह बात मैंने साफ़ कर दी कि 'हंस' को मैं ब़दलूँगा नहीं। और घर आ गया। लालानी, ज्यॉफ्री आर्चर की कहानियों की बहुत तारीफ़ कर रहे थे। दो की तो बेहद ही। दीपावली के दिन पहुँचवा दी। दोनों कहानियाँ बेहद साधारण और पत्रकारिता से भरी थीं। बहरहाल, किस दिन क्या हुआ, यह याद नहीं है। मगर जो कुछ 8 और 13 के बीच हुआ, वही याद करके दर्ज करने की कोशिश कर रहा हूँ। मैंने फ़ोन पर उमरावजी को कहा कि लालानी की स्थिति उस बूढ़े की तरह है जो दुनिया भर की सेक्स-फैंटेसियों में ही इतना डूबा रहता है कि अगर कहीं मौक़ा पड़ जाए तो घबरा उठता है, और उस स्थिति से बाहर निकलना चाहता है। ख़ैर, उमरावजी से रुपए की बात पक्की की। उन्होंने कहा—मैं कन्हैयालाल से बात करूँगा। मैंने भी कहा कि काग़ज़ देखेंगे, निर्णय करेंगे, इन बातों में मुझे कोई दम नहीं लगता। आप यह मान लीजिए कि 'हंस' और 'अक्षर' को पचास लाख का घाटा है। लोन सिर्फ़ मेरा और गौतम का है, जब हम दोनों में से कोई उसे पाँच-सात साल नहीं माँग रहा तो आपको क्या अन्तर पड़ रहा है ? आपको तो चलती हुई पत्रिका सँभालनी है जिसके संघर्ष और कष्ट की अवधि हम अपने बूते पर पार कर पाए हैं...

अगले दिन दिनेश से बात हुई। उसने फ़ोन पर प्रभा से बातें की होंगी। वह नहीं आ रही। नवलखाजी से उनके घर पर मिले 11 को। गौतम नहीं था। उनका सारा आग्रह यही था कि गौतम के ज़रिए बाज़ार का पैसा मिलना ही चाहिए। उन्होंने कम-से-कम चार बार कहा कि बाक़ी सारा पैसा मैं छोड़ रहा हूँ। चूँकि एक साथ राइट-ऑफ़ नहीं किया जा सकता, इसलिए पहले इंटरेस्ट छोड़ा जाएगा, फिर धीरे-धीरे समाप्त किया जाएगा। सच बात तो यह है कि मैं यह आश्वासन लिखित चाहता था। लेकिन वह कह नहीं पा रहा था और वे सिर्फ़ बात कह रहे थे। लेकिन वे छह महीने बाद ही माँगने लगे तो ? कहा था—उमराव सिंह ने। "मैं कह रहा हूँ न, उस पैसे को हमने मरा हुआ समझ लिया है।" इतना बड़ा आदमी कह रहा है तो मानना होगा। ख़ैर, बात करके लौट आए। उमरावजी से कह दिया, रुपया चाहिए। शाम को आने की बात हुई। चूँकि फ़ोन नहीं मिला। इसलिए सवा सात बजे पहुँचे। हिचकिचाहट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो थी ही। मैंने कह दिया कि अगर आप लोगों से बात बनी तब तो ठीक है, वरना यह बिना इंटरेस्ट का लोन है और मार्च तक चुकाया जा सकेगा। ख़ैर, जब टटोला गया तो कुछ पैंतीस हज़ार मिला। बाकी मंगल को चालीस मिलेगा। 75 का चेक रहेगा। पहले से जैन (फ़िल्मों से भी जुड़े हैं) के साथ दारू पी। उन्होंने ही घर छोड़ा। एक-एक पैग यहाँ भी लिया, टिंकू की लाई हुई 'टीचर्स' से। 19 को उमराव सिंह कलकत्ते जाएँगे। यानी मुलाक़ात होगी दिसम्बर के पहले हफ़्ते में। अगले दिन यानी रविवार को गौतम 12 के करीब आया। तभी हारिस भी आ गया। 35 उसे दिये। मंगल को शेष रुपए मँगाने को उमरावजी को पत्र लिखा। किसको क्या देना है, यह तय किया और बताया कि नवलखाजी ने कहा था कि रुपए नहीं देने की बात उन्हें न बताई जाए। उन लोगों से सिर्फ़ इतना कहा जाए कि जब स्थिति होगी तभी देंगे। लेकिन मैंने गौतम से कहा कि हिसाब में रुपए दिखाई तो देंगे, और इस मुद्दे को ही केन्द्र बनाकर यह लोग मुझे दबा तो सकते हैं। गौतम ने कहा कि यह तो लिखित में एग्रीमेंट हो जाएगा।

गौतम के जाने के बाद थोड़ी देर हारिस से बात हुई। वह दुबारा आना चाहता है, यह बहुत साफ था। शाम को हरिनारायणजी को सारी स्थिति समझाई। उन्हें क्या-क्या करना है, यह भी बताया। हाँ, इस बीच मृदुला आई थी। उसने कहा—मेरी स्थिति नहीं है। जब मैंने कुसुम अंसल की बात बताई तो बोली—वह महिला ठीक है। एक तो उसका 'अहं' नहीं है, दूसरे पति से विद्रोह करके वह अपना व्यक्तित्व बनाना चाहती है। अलग हो सकने की स्थिति नहीं है, इसलिए वहीं रहते हुए। मैंने कुसुम से बातें कीं। दो बार फ़ोन किया, वह घर में नहीं थी। मैंने भी नाम नहीं बताया। तीसरी बार बात हुई। बोली—राजेन्द्रजी, मैंने दो स्कूल चला रखे हैं, उन्हीं में उलझी हूँ। अभी नहीं। मैंने सीधे ही कहा कि 'हंस' के तीस अंक हमने निकाल दिये, शुरू का सारा संघर्ष लगभग पूरा हो चुका है, गौतम ने साँचा निकाल दिया है, इसलिए वे जा रहे हैं। अगर आप 'हंस' जॉयन करना चाहें तो हम लोग बातें कर सकते हैं। आख़िर लिखने की बीमारी आपसे छूटेगी तो नहीं। बोली—29 तक तो मैं बहुत व्यस्त हूँ। मैंने कहा—मुझे अन्तिम निर्णय 21-22 तक लेना है। बोली—कितना लगाना होगा, मैंने कहा—पाँच लाख। बोली—पाँच लाख में हो जाएगा? मैंने कहा—हाँ, और वह भी दो साल में। बोली—सुशील से पूछना होगा। तय हुआ कि 21 को चारेक बजे मैं फ़ोन करूँगा। मैंने कहा—वह हो या न हो, एकाध पेज तो करा ही दीजिए—विज्ञापन। बोली—कार्ड भेज दीजिए। वह मैं ज़रूर करा दूँगी। बाद में मन्नू ने बताया कि अर्चना क़तई इस पक्ष में नहीं है कि कुसुम के साथ हो। यह डर मुझे भी है। लेखकीय महत्त्वाकांक्षाओं में वह चाहेगी कि उसी की रचनाएँ छपें, समीक्षाएँ छपें, पत्र छपें...मृदुला ने बताया था कि यह नहीं होगा...और कुछ नहीं हुआ और इससे बात बनी, तो यही करना होगा। अर्चना को समझा देंगे...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह यह है स्थिति...और अब मुझे विज्ञापनों के एडवांस के लिए विभूति से बात करनी है, प्रभा से करनी है। पी.सी. जैन से करनी है। पर जहाँ भी सम्भव हो, वहीं क़रनी है। अभी पत्र लिखूँगा। अभी गिरिराज ने बताया—नरेश सक्सेना भी आया हुआ है। और अब मैं फिर आई.आई.टी. में हूँ...।

20.11.88

यह सात दिन लगभग बेकार ही गुज़रे। कुछ करने को मन ही नहीं हुआ। चाहूँ तो कह सकता हूँ कि नई रणनीति बनाता रहा, अपने-आपको तौलता रहा। वहाँ जाकर फँसना तो है ही, सबको सँभालना क्या मेरे बस में होगा ? गिरिराज का आग्रह है कि भले ही आते-जाते रहो, लेकिन दिसम्बर तक की अवधि पूरी कर दो। एक ख़ास तरह की उन्मुक्तता और दबावहीनता तो है ही। दिन में दो बार सो लो, या जागते रहो, कौन आता है, कौन जाता है, कहीं आना या जाना है—किसी तरह की कोई मानसिक जवाबदेही नहीं है। वह तो मैं अपनी सुविधा के लिए सुबह पाँच-साढ़े पाँच पर उठकर पढ़ना या लिखना शुरू कर देता हूँ। खुद बनाकर चाय पीता हूँ, फिर दो-तीन गिलास पानी। बेड-टी आ जाती है। साढ़े सात तक बाथरूम, शेव, मन हुआ तो कुछ आसन, नहाना और साढ़े आठ पर नाश्ते के लिए मेस। कॉर्न फ़्लेक दूध, अंडाफ्राई और पूरी छोटी टिकिया मक्खन लगाकर एक टोस्ट, जैम काफ़ी। नौ पर प्राय: गिरिराज आता है, पत्र लिखे हों, तो ले जाता है, बातें करते हैं और मैं अपने काम में चालू। ग्यारह के क़रीब पन्द्रह मिनट की झपकी, एक कॉफ़ी, सवा बजे भोजन। दो सब्जियाँ, दाल-रोटी, चावल, कभी-कभी मांस। मैं एक रोटी, सब्जी-दाल लेता हूँ। फिर थोड़ा चावल और बाद में दही, फिर कुछ मीठा। इसी में पेट इतना भर जाता है कि शाम को खाने की इच्छा नहीं होती। एक घंटा सोना, कॉफ़ी, कुछ पढ़ना। फिर गिरिराज के साथ घर। वहाँ खाने के नाम पर चुगना और आखिरी खबरें सुनकर वापस...आजकल 17 की रात से गिरिराज बम्बई है। कल शायद दिल्ली में मिलेगा।

और अब जाकर 'हंस' सँभालना है। 22 को तो शायद हम लोग भरतपुर सुरीर जाएँगे—एन इमोशनल जर्नी, संयुक्ता भी साथ होगी। सम्भव हुआ, तो फ्रैंचेस्का को भी गाँव का दृश्य दिखाएँगे...

प्रभा का पत्र आया है। बात टूटने की सारी ज़िम्मेदारी उसने गौतम पर डाली है। घाटे की बात से घबरा गई है; मगर कहती है कि इसमें 'अहं' का सवाल नहीं है। मेरी फ़ैमिनिन फ्रेलटी वाली बात से नाराज़ है। ख़ैर, मन्नू आएगी तो पता लगेगा। मैंने उससे विज्ञापन के एडवांस माँगे हैं। इधर हमने 'हंस' की आजीवन सदस्यता एक हज़ार कर दी है। जब व्यक्तिगत रूप से ही माँगना है तो क्यों न एक हज़ार ही माँगे जाएँ और सिर्फ़ सौ व्यक्ति ऐसे तलाश कर लिये जाएँ तो एक साल का झंझट ही कटे...इधर नरेश सक्सेना, प्रियंवद से बात की है, विभूतिनारायण को तार दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परसों हरीश अग्रवाल आए थे, उनके दोस्त हैं कि अभी नहीं निकल पाएँगे। यों विभूति तो सारे का ही प्रबन्ध कर सकता है, मगर फिर भी चाहें तो तीनों यहीं से लाख-डेढ़ लाख कर सकते हैं। बाक़ी औरों को लिखूँगा। हालाँकि मैं अपने-आपको इतना हवाई नहीं मानता, लेकिन इस समय तो लग रहा है कि डेढ़-दो लाख जमा करना मुश्किल नहीं है। हो सकता है, समस्या इसी तरह हल हो जाए और हमें किसी से कुछ भी समझौते की ज़रूरत न पड़े।

26.11.88

जिस उम्र में सामने घटित होती या सुनाई जाती, हर बात के लिए आपके पास खुद समानान्तर अनुभव हों, तब समझिए आप बूढ़े हो गए हैं, क्योंकि अब कुछ 'नया' नहीं रह गया है जो आपको चकित, रोमांचित या उत्सुक करे—अब तो सब कुछ दुहराया जा रहा है! यह अनुभूति हुई मुझे इधर दो-तीन बार फ्रैंचेस्का से मिलकर, बातें करके...

यह पेन गोपाल ने लाकर दिया है नेपाल से। बहुत अच्छा लिखता है और अच्छा लगा कि उसे मेरे सन्दर्भ में इसका ध्यान आया। इस बार मैं बीस की रात को कानपुर से चलकर 21 को सुबह दिल्ली पहुँचा। स्टेशन पर गोपाल नहीं था। हारकर स्कूटर लेकर घर। मन्नू कलकत्ते गई थी और पता चला, गोपाल मुझसे आध घंटे पहले ही आया है। लक्ष्मी बच्चे लेकर। चेस्का से समय तय था। वह आई—एक प्रश्नावली बना लाई थी। उसे 7 दिसम्बर को जाना है और इस बीच शायद एक-दो बार मुलाक़ात होगी। शायद इससे पहले ही काम समाप्त कर लेना चाहती है। 'अक्षर' में उमरावजी ने पैसे भेज दिये थे। गौतम से बातें हुईं। प्रेस का काम समाप्त कर रहा है। मैंने कहा कि कोई ऐसा काम मत छोड़ो कि मुझे तुमसे पूछना पड़े। अभी तो सभी कुछ सद्भाव से हो रहा है। मैंने कुछ पत्र लिखाए। अब तो दिमाग़ में यही है कि आठ-दस जगहों पर लिखकर मित्रों से कहूँ कि मुझे 25-25 आजीवन सदस्य दे दो। इसी से समस्या हल होगी। पंडितजी से बातें हुईं।

22 को मेरी शादी की शायद 30वीं वर्षगाँठ थी। 22 नवम्बर, 59 को हुई थी। सोचा था कि सुबह की उड़ान से मन्नू कलकत्ते से आ जाएगी, फिर दोपहर बाद गाड़ी से पहले भरतपुर चलेंगे। अगले दिन सुरीर होते हुए वापस आ जाएँगे। संयुक्ता से पूछा भी था कि अगर तुम चलोगी तो फ्रैंचेस्का को भी ले लेंगे, वरना हम और मन्नू। डर यही था कि इतने सारे समय बातें क्या करेंगे? मगर सुबह पता लगा कि फ़्लाइट आएगी नहीं। कलकत्ते फ़ोन किया। वे लोग दमदम गए थे। दिनेश ने बताया, स्ट्राइक है। यानी मन्नू किसी भी तरह आई तो रात तक आ सकेगी। बाहर जाना स्थगित। सोचा, चलो, अक्षर का काम ही करें। कुसुम अंसल से बात नहीं हुई। राजी से हुई। याज्ञिक से हुई। राजी ने बताया कि उनका रिलायंस में काफ़ी सम्बन्ध है, ज़रूर कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करा सकेंगे। वैसे भी उपेक्षित महसूस करते हैं मेरी ओर से। शाम का समय तय हुआ। सबसे पहले मैं गया सुबह ग्यारह के आसपास नाहटा के यहाँ। वहाँ उसे लगभग 25 सदस्यों के लिए तैयार किया। वह पन्द्रह की बात कर रहा था। रमेश अग्रवाल से बातें हुईं। और सभी ओर से। दफ़्तर से शाम को पंडितजी को साथ लेकर याज्ञिक के यहाँ पहुँचा। राजी और सेठजी भी थे। दो घंटे बहुत ही प्रसन्न गोष्ठी हुई। रात को वे मेरे साथ ही आए। अगला दिन भी इसी प्रयास में निकल गया। पत्र लिखवाए। व्यवस्था सम्बन्धी बातें हुईं। जयव्रत कोहली कल आएगा। शाम को संयुक्ता के यहाँ जाना था। आठ के लगभग बब्बू और मन्नू आ गए। संयुक्ता के यहाँ जाना स्थगित। बब्बू से बहुत देर बातें हुईं। अब मुलाक़ात नहीं होगी। दफ़्तर में विभूतिनारायण भी आए। तय हुआ कि वे भी मेरे साथ गाड़ी में कानपुर चलेंगे। रास्ते में बातें करेंगे। मन्नू से भी कलकत्ते की बहुत-सी बातें होती रहीं। उसकी तबीयत ख़राब है। प्रभा से फ़ोन पर ही बात हुई। मुझे अब विश्वास हो गया है कि असली बात वही है। उस दिन अगर मैं उसका लाड़-दुलार कर देता तो सब कुछ ठीक हो जाता। ख़ैर, 23 को बहुत ही व्यस्त दिन दिखाई दे रहा था। सारे दिन मिलने-जुलने आनेवाले थे। शाम को शर्माजी की भतीजी की शादी में जाना था और फिर स्टेशन...

वही हुआ भी। अब तो हर क्षण लगता है कि वहाँ हर समय की ज़रूरत है। यहाँ बैठकर डायरी लिखते हुए सारी चीज़ें जितनी आसान, दूर लगती हैं; वहाँ वहीं समस्याएँ आती हैं। अर्चना आई, जयव्रत कोहली आए। उनसे सारी समस्याएँ बताईं। विज्ञापन की व्यवस्था की। उनका कहना है कि मैं आधा दिन दे सकूँगा। दो महीने बाद हो सकता है, मुझे बाहर जाना पड़े। मकान बिकते ही मैं स्कूल बनाऊँगा। लगता है, पुलिस में रहकर इसने बहुत पैसा बनाया है और अब प्रायश्चित्तस्वरूप स्कूल खोल रहा है। बहरहाल विज्ञापन का ज़िम्मा लिया। लौटकर एक बार और अरोड़ा से बातें करूँगा। सुबह अरविन्द आ गया था। उससे भी बातें हुईं। विज्ञापन का तय हुआ। अचानक देखा, गिरिराज। 21 को तो गया ही था। आज 23 को फिर। एफ्रो-एशियन कॉन्फ्रेंस थी, उसमें आया था। 21 को नरेशजी भी आ गए थे, गिरिराज, अरविन्द सभी थे। गिरिराज कह रहा था कि नरेशजी से भी कुछ करने को कहा है, वे हाँ कहते हैं। ख़ैर, सन्ध्या को घर गए। वहीं से सूर्या-सॉफ़्टी। गिरिराज साथ था। उनके यहाँ सिलसिला लम्बा था। पौन घंटे का रास्ता होगा, सोचकर बिना खाए ही निकले। साले गोपाल ने सवा नौ से पहले ही स्टेशन लाकर रख दिया। मन्नू गिरिराज को छोड़ने चली गई। हम वहीं बड़े खाकर प्लेटफ़ॉर्म पर पहुँचे। विभूति को खोज लिया, अनवर भी साथ था। उसने बच्चों की तरह अपने किए को बताना शुरू कर दिया। साला अभी भी कहीं बहुत सीधा है। विभूति के साथ के सिपाहियों ने टिकट बदलवाकर उन्हें हमें ही पास कर दिया। और हम लोग 'हंस' और वर्तमान साहित्य की बातें करते रहे। लगभग 12 बजे तक। इस बीच उन्होंने मुझे तैयार कर लिया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हम लोग इलाहाबाद चलें। वे ग्यारह-बारह बजे तक वहाँ से लखनऊ चलेंगे—मुझे रास्ते में कानुपर छोड़ देंगे। ट्रेन में बातें इस तरह उभरीं कि कुछ विज्ञापन और कुछ आजीवन सदस्य बनाकर वे दो-तीन लाख की व्यवस्था कर देंगे। साढ़े आठ तक घर आए। उपराष्ट्रपति आनेवाले थे, इसलिए वे बेहद ही व्यस्त हो गए। कहा कि जा नहीं पाएँगे। जाने की व्यवस्था कर देंगे। मुँह-हाथ धोकर नाश्ता किया और हम लोग कुम्भ के इनके दफ़्तर में गए। देखा, विभूति का काफ़ी रौब और दबदबा है और उन्हें याद बहुत रहता है। वहीं अमरकान्त का लड़का बिन्दु आ गया। अपने किसी मित्र को लेकर आया था। उससे दाल सप्लाई की बातें हो रही थीं—लगभग 11 क्विंटल रोज़ दाल की ज़रूरत पड़ेगी। घर आकर देखा, उनके एक गाज़ियाबादी मित्र थे—आठ-दस ट्रक रोज़ आलू और आटे की बात कर रहे थे। निकलना ढाई से पहले नहीं हुआ। आठ बजे कानपुर पहुँचे।

जो बातें उभरीं, वे इस प्रकार थीं। विभूति अपने भाई को व्यवस्थित करना चाहते हैं। वे अक्षर में 49 प्रतिशत शेयर्स लेंगे। ओमप्रकाश गर्ग उनके बेहद ही विश्वसनीय व्यक्ति हैं और वे वहाँ एक प्रेस चला रहे हैं। वे व्यवस्था देखेंगे। सब मिलाकर तीन-चार लाख कैश—चाहे आजीवन सदस्यों के रूप में हो, चाहे शेयर्स के—मिलेगा। सौ पृष्ठ विज्ञापन होंगे। उमरावजी का लौटाने के लिए पैसा तत्काल मिलेगा—यानी सात-आठ तक। इस बीच ज़रूरी हुआ तो हम लोगों की एक मीटिंग और होगी। मैं अब निश्चिन्त होकर आराम से उन लोगों के प्रभाव से निकल सकता हूँ। सुबह उन्होंने एक बात कही कि बिल्कुल दिल्ली-यू.पी. बॉर्डर पर जहाँ उनका प्रेस है, वह बहुत बड़ी बिल्डिंग है—लगभग 3000 वर्ग फीट की। हॉल, कमरे, सर्वेंट-क्वार्टर इत्यादि सभी हैं। बहुत आराम से उस जगह का किराया 18-20 हज़ार महीना आ सकता है। या उसे ही इतने लाख में बेचा जा सकता है। सरकार को अगर सात लाख के करीब लौटा दिये जाएँ तो वह बिल्डिंग अपनी हो सकती है। मुझे सारे समय फिर यही लगता रहा कि क्या इसे 'अक्षर' के साथ नहीं जोड़ा जा सकता? चलते-चलते भी मैंने कहा कि अगर ऐसी जगह है तो जिसे भी बताएँगे, वह ले लेगा—मगर क्यों न उसे 'अक्षर' का ही एसेट बना दिया जाए?

सारा मामला इस तरह तय हो गया, यह तो सोचा भी नहीं था। हालाँकि इस तरह के आशावाद का मैं शिकार नहीं होना चाहता और विश्वास करते हुए डर लगता है। संशय भी होता है कि अब इन नए लोगों से पता नहीं कैसे निभेगी? अंग्रेजी में जिसे कहते हैं—इट इज़ टू गुड टू बिलीव। मगर हो जाए तभी कुछ। फ़ौरन ही गिरिराज और मन्नू से बातें करने को मन कर रहा है। गिरिराज कल आएगा। यानी कल तक किसी से बातें ही नहीं कर सकते। फिर इधर हम लोगों ने जो कोशिशें की हैं, उनसे जो रुपया जाएगा उससे पारिश्रमिक, उमराव सिंह इत्यादि का चुकाएँगे, ताकि नया पैसा 'हंस' में ही लगाया जा सके। अक्षर की पुस्तकें छप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकें...मैंने विभूति से कहा था कि क्या इस कुम्भ से हंस और अक्षर की सारी समस्याएँ (वह स्थान लेकर) हल नहीं हो सकतीं? बोले—आप मेरे सिद्धान्त तुड़वाएँगे। मैंने कहा—धर्म की ख़ातिर वे लोग डकैती करके मन्दिर बनवाते हैं। तभी मुझे ख़याल आया। सुबह ये लोग एनकाउंटर की बातें कर रहे थे, अपने तीन-चार सिपाहियों के साथ। सिद्धान्त निकाला था कि सिपाही हो या थानेदार, पहला कोल्ड-ब्लडेड मर्डर या एनकाउंटर वह अफ़सर के कहने पर करता है। फिर पैसे लेकर दूसरों की दुश्मनियाँ निपटाता है—वह सरकारी वर्दी में किराए का हत्यारा हो जाता है। यह फिसलन-भरा रास्ता है।

पता नहीं, यह 1988 जाते-जाते क्या रंग लाएगा...

2.12.88

अब यहाँ रहना एक अस्थायी पड़ाव जैसा लगता है। दिल्ली में जबकि रोज़मर्रा के बहुत ज़रूरी काम पड़े हैं तो मैं यहाँ क्यों डटा हूँ? अभी पिछले दिनों तक यहाँ की दिनचर्या लिखने और पढ़ने के लिए नाकाफ़ी-सी लगती थी, अब समय काटना मुश्किल हो गया है। वही साढ़े चार-पाँच बजे उठकर लिखने के बारे में सोचना, दो-एक पत्र जैसी चीज़ें लिखना और फिर नहाना-धोना। 9 बजे गिरिराज के आने के बाद फिर पढ़ना। जो कुछ भी लिख लेता हूँ, उसे देखकर हर बार आश्चर्य होता है कि क्या मैंने ही लिखा था? कौन है जो यों लिख लेता है? इन दिनों तो ख़ैर, विभूति वाले चक्कर में डटा हूँ कि अगर यह हो जाए तो पाँच-सात साल का झंझट ही ख़त्म। मगर झंझट ख़त्म कहाँ होगा, फिर आपसी सम्बन्धों के तनाव, एडजस्टमेंट आएँगे। ख़ैर, वह तो ज़िन्दगी भर का सिलसिला है। अब तो लगता है कि दिसम्बर भर यहीं रहना होगा। आज जा रहा हूँ, नौ को लौटूँगा—तब तक आधा महीना ख़त्म हो चुका होगा।

इन दिनों बुद्धदेव गुहा का 'कोजागर' उपन्यास खत्म कर डाला है। 'कोजागर' का अर्थ है—पूर्णमासी की रात। उपन्यास आदिवासियों पर है और किसी ठेकेदार के कारिन्दे सायन मुखर्जी की डायरी के रूप में लिखा गया है। डूबकर प्रकृति वर्णन है—वहाँ का रहन-सहन, परिवेश। जानवरों, मछलियों, पक्षियों, पेड़ों, मिट्टी, नदी, तालाब, जंगल और विभिन्न मौसम। लगता है, जैसे बरसों लेखक ने अध्ययन किया है, निरीक्षण-पर्यवेक्षण किया है। किस तरह वहाँ रहते हुए लेखक वहीं की आदिवासी लड़की तितली से विवाह कर लेता है। लगता है, शायद आदमी ज़िन्दगी में ऐसा एक ही उपन्यास लिख सकता है। बांग्ला में जंगलों, आदिवासियों पर लिखने की पुरानी परम्परा है। विभूतिनारायण वन्द्योपाध्याय का 'अरण्यक' आज भी याद है। उससे पहले हिमालय आदि पर 'कांकर' और 'देवतात्मा हिमालय' इधर आदिवासियों पर महाश्वेता तो लिख ही रही है। बहरहाल, 'कोजागर' पढ़कर अच्छा भी लगा और हीनताबोध भी हुआ...दूसरी रचना पढ़ी गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'धीर समीरे'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गोविन्द के बेटे की मृत्यु के बाद से उसमें जो धर्माभिरुचि और आध्यात्मिकता बढ़ रही है, वह मन में खिझलाहट पैदा करती है। 'तुम्हारे लिए' पढ़ा था तो रूमानीपन से चिढ़ छूटी थी—इसे पढ़कर भी लगा कि क्या यह व्यक्ति कभी भी अपने-आपसे नहीं पूछता कि कोई भी उपन्यास आख़िर क्यों लिखना चाहता है? इसमें ब्रज की चौरासी कोस की यात्रा है—पाँच हज़ार लोगों का काफ़िला है और वह ब्रज की परिक्रमा कर रहा है—उपन्यास धर्म और यात्रा-वर्णन। कहानी सनन्दा नाम की गुजराती महिला की है जिसका लड़का खो गया है...मालूम हुआ, पहले जब अपनी माँ के साथ आई थी तो नन्दन नाम के लड़के से परिचय-प्रेम हुआ। जूनागढ़ जाकर शादी हुई। लड़का किसी बड़े घर का है। इन लोगों को न अपना नाम बताता है, न पता। लेखक बनना चाहता है। निकम्मेपन से घबराकर 'ससुराल' से भाग खड़ा होता है। लखनऊ में लेखक बनने की कोशिश करता है और ज़ाहिर है, जनवादी या प्रगतिशील लेखक संघ के चक्कर में पड़ जाता है। यहाँ इनके ख़िलाफ़ भड़ास निकालने की काफ़ी गुंजाइश निकाली है। उधर बाप को शादी का पता चलता है तो लड़का उठवा लेता है। इस यात्रा में सुनंदा पर दो बार हमला होता है और अलीगढ़ का एक वकील उसे बचाता है। ख़ैर, कहानी तो जैसी है वैसी है, मगर इस प्रश्न को कुरेदने की कोशिश ईमानदार है—वह क्या आस्था है जो हज़ारों-लाखों लोगों को यों बाँधे हुए है? अच्छा-खासा जीवन छोड़कर कष्ट सहने, मरने-खपने को प्रेरित करती है? अगर मैं भूल नहीं करता तो ब्रज की इसी यात्रा पर लक्ष्मीनारायण लाल ने भी एक उपन्यास लिखा था। शायद बहुत अच्छा नहीं था। इन्दिरा गोस्वामी ने वृन्दावन की विधवाओं पर भी लिखा है। मुझे लगता है ये सब बाहरी लोग हैं और श्रद्धा या भक्ति के बीज लेकर आते हैं। असली उपन्यास तो वहीं का कोई व्यक्ति लिखेगा। मगर है कौन? शायद रांगेय राघव लिख सकता था, घनश्याम लिख सकता था, मैं लिख सकता था। नागरजी ने 'बूँद और समुद्र' में सिर्फ़ छुआ भर है। अब तो उधर का कोई लेखक जैसे रह ही नहीं गया।

अभी तो 'हंस' ही मेरे सिर सवार है...

14.12.88

कोई भी सोच सकता है कि बारह-साढ़े बारह लाख का 'हंस' और 'अक्षर', ये लिये मैं हँस सकता हूँ, लोगों को छेड़ सकता हूँ, पत्र लिखता हूँ, पढ़ता हूँ और सोता हूँ—दिन और रात में सपने देखता हूँ? दस दिनों पहले तक लगता था कि सभी रास्ते खुले हुए हैं और दिक़्क़त नहीं होगी। विभूतिनारायण ने इतना बड़ा आश्वासन दिया है, दस-बारह मित्रों को आग्रह करके सौंप दूँगा और अगर छह-सात ने भी 25-25 आजीवन सदस्य दिलाने का आश्वासन पूरा कर दिया तो इस डेढ़-दो लाख से उमराव सिंह इत्यादि का क़र्ज़ा चुकाऊँगा और आगे चल पड़ूँगा। व्यवस्था ठीक हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएगी तो साल भर में स्थिति साँस लेने लायक़ होगी। चूँकि 'अक्षर' की स्थिति शून्य है तो पाँच गौतम के, पाँच मेरे (हमारे) और दो उमराव सिंह के—बारह तो सीधे हैं ही—जो गड्ढे में चले गए हैं। आश्वासन दिये थे प्रियंवद ने, नरेश सक्सेना ने, विभूति ने। नाहटा, शर्माजी तथा दो-एक मिलाकर छह तो पक्के ही थे, ताकि उमराव के डेढ़ तत्काल दिये जा सकें—बाक़ी जो आएँगे, उनसे आगे चलाएँगे। मगर सब समय चाहते हैं। प्रियंवद समय ले रहा है, परसों शिवमूर्ति, सृंजय के साथ आया था, रात भर रहा—'करने की कोशिश करूँगा, आजकल ऐसी जगह नहीं हूँ,' कह-कर ढाई दे गया, तीन के पते लिख गया और शीघ्र भेजने का वायदा। शिवकुमार शिव का कोई पता नहीं है, नाहटा रो-पीटकर पन्द्रह करा दे तो बहुत है। प्रियंवद दिसम्बर के अन्त तक कुछ करने को कहता है, शर्माजी पर भरोसा नहीं है। परसों गिरिराज के साथ इलाहाबाद गाड़ी में बैठकर गया था। दिन-भर भागदौड़ या पचासों टेलीफ़ोनों के बावजूद शाम को 7 बजे सम्पर्क हुआ। गए और रात को साथ रहे। वे सारी बातें सम्भव नहीं होंगी। रो-पीटकर पच्चीस-पचास करा दे, वही बहुत है। यानी सब मिलाकर स्थिति ऐसी नहीं है कि उमराव सिंह के रुपए दिये जा सकें, बाक़ी में मुसीबत का समय निकाला जा सके। यानी घूम-फिरकर वही उमराव-लालानी की तरफ़ जाना होगा, जो 40-60 शेयर्स की स्थिति रखना चाहते हैं, 'हंस' को अपनी नीति के हिसाब से बदलना चाहते हैं और उनसे रोज़ खिट-खिट की आशंका है। जैसे पिंजरे में छटपटाता चूहा किसी चमत्कार मार्ग की राह देखता है, शायद वही स्थिति है। दिल्ली जाने में डर लगता है, वहाँ करूँगा क्या? सम्पादकीय भेज दिया है, मिल गया होगा।

सचमुच इस विकट समय में जिन मित्रों ने मेरी मानसिक और नैतिक शक्ति को साधने में मदद दी है उनमें मन्नू, गिरिराज, मीता, अर्चना और हरिनारायण और अपने ढंग से 'फ्रैंचेस्का... इनके लिए मन में बेहद कृतज्ञता का अनुभव होता है। बात मज़ाक में कहता हूँ मगर सही है कि मुझे मित्र और आत्मीय बहुत ही अच्छे मिले हैं, मैं उन्हें किस रूप में मिला हूँ, पता नहीं। इन लोगों से कभी उऋण हो पाऊँगा? बहुत करने की कोशिश करते हैं—संयुक्ता, उषा महाजन और दूसरे लोग। शर्माजी और नरेशचन्द्र चतुर्वेदी की ओर से उदासीनता ही मिली है...

18.12.88

अजीब जड़ता का आलम है। दिमाग़ जैसे डल और ठस हो गया। चूँकि यहाँ कोई तनाव, कोई बन्धन नहीं है, इसलिए लिखने के लिए भीतरी दबाव भी नहीं है। सिर्फ़ एक बँधी हुई दिनचर्या है और वही लोग हैं। यह बात अब कुछ-कुछ महसूस हो रही है कि बाहरी दबाव न होने से आदमी किस तरह धीरे-धीरे बुझता है। अपने को जीवित रखना कितना कठिन है। तारीफ़ करनी पड़ती है गिरिराज की कि जैसा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो, लिखता है। अपनी ऊर्जा को इतने दिन जिलाए रखना कम श्रेयस्कर नहीं है। दो-चार दिनों की छुट्टियाँ तो ठीक हैं, मगर लगता है कि मैं मूलतः बड़े शहरों की खींचतान, भाग-दौड़ में ही अपने-आपको जीवित या सक्रिय रख पाता हूँ। वही मेरी मानसिक बनावट हो गई है। सोचा, गिरिराज का व्यक्ति-अध्ययन ही लिख डालूँ। कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं, मगर आगे नहीं चल रहा। कल प्रियंवद के यहाँ से हरिनारायणजी से बातें हुईं—लगता है, मुझे तत्काल ही दिल्ली होना चाहिए। 21 को लखनऊ जाकर 22-23 को दिल्ली जाऊँगा।

30.12.88

इस वर्ष और कानपुर की शायद यह अन्तिम टिप्पणी है। कल पाँच महीने पूरे हो जाएँगे। आई.आई.टी. के गेस्ट हाउस के S-31 में रहते हुए क्या किया है मैंने ? हर दसवें-बारहवें दिन दिल्ली—वहाँ चार-पाँच दिन और वापस। अक्सर प्रयागराज से रात को साढ़े बारह बजे जाना और सुबह सात बजे वहाँ पहुँचकर अपने-आपको दिल्ली में झोंक देना। फिर रात को वापसी। दिल्ली पहुँचकर अपनी असली जगह पहुँचने का सन्तोष और यहाँ आकर घर लौट आने की अनुभूति। उपलब्धि के नाम पर शायद यही कहूँगा कि कुछ लेखों को व्यवस्थित करके पुस्तकाकार देने की कोशिश। कुछ पुस्तकों को ध्यान से पढ़ना और बहुत-बहुत अपने भीतर रहना। शायद इस तरह अलग रहना अपनी क्षमताओं और शक्तियों के पुन:चार्जिंग में सहायक ही हुआ है। मगर यह तय हो गया है कि बौद्धिक और मानसिक रूप से एलाइव मैं शायद दिल्ली या महानगर के तनावों में ही रह पाऊँगा। वह मेरे अन्तरंग का हिस्सा है। वहाँ चीज़ें कौंधती हैं और थोड़ा ध्यान देने पर ही उनके रूप स्पष्ट होने लगते हैं। यहाँ कोशिश करने पर भी अनुभव एक रूप नहीं ले पाता। गिरिराज के ऊपर एक स्कैच लिखने की कोशिश कर रहा हूँ—व्यक्ति का अध्ययन। कुछ उभरकर ही नहीं आ रहा। वहाँ नरेशजी पर कैसी आसानी से लिख दिया था! शायद मैं चुनौतियों में रहकर ही लिख सकता हूँ। इस बीच गिरिराज की मशीनी ज़िन्दगी से कितना प्रभावित हुआ हूँ, नहीं कह सकता। लेकिन अपने लिखे को लेकर शंका करने और क्यों और क्या लिखें के सवाल को ज़रूर मैंने गिरिराज के भीतर जगा दिया है। जिस आसानी से और बिना सोचे-समझे वह अब तक लिखता रहा है, उस पर मानो विराम लग गया है। ऊपर से देखने में लगता है, शायद मैंने छूत की बीमारी की तरह गिरिराज को अपनी ग़ैर-रचनात्मकता ही दी है—अगर क्या यह ज़रूरी नहीं था। कम-से-कम विवेक और प्रश्नहीन ढंग से लिखते चले जाना भी उतना ही दयनीय है। जितना बिल्कुल न लिखना।

शायद मैं कह सकता हूँ कि अपनी रचनात्मक क्षमताओं को दुबारा जाँचने का अवसर भी मुझे इस दौरान मिला है और लगा कि मैं उतना वीरान अभी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ हूँ। भीतर की दुनिया अभी भी वैसी ही जीवन्त और समृद्ध है। कोशिश करूँ तो इसके लिए अभिव्यक्ति फिर पा सकता हूँ। हाँ, यहाँ अपने और गिरिराज के साथ ही मैं इतना जुड़ा रहा हूँ कि न तो आई.आई.टी. में कोई नया सम्बन्ध बना, न कानपुर शहर में। शायद भौगोलिक दूरियाँ और सबसे कटे होने ने ही इसमें सबसे अधिक भूमिका अदा की है। वैसे भी यह सब शाम को ही हो सकता था। दिन का समय निश्चय ही मैं अपने लिए रखना चाहता हूँ। शाम को किसी से कल्टीवेट नहीं किया। हाँ, ए.पी. शुक्ला से मिलने को मन कर रहा है। बाकी तो गिरिराज परिवार, महीने में दो-एक बार प्रियंवद, सुरेश अवस्थी, कमल मुसद्दी, सुमति अय्यर, अमरीक सिंह और इधर भदौरिया। सो इनमें से कुछ किसी भी सम्पादक से इतना शिष्टाचार निभाते...यहाँ के मानदेय के कारण मेरी व्यक्तिगत स्थिति ज़रूर सुधरी है। बैंक में पच्चीस-तीस हज़ार रुपए वक्त-ज़रूरत के लिए हो गए हैं, मगर 'अक्षर', और 'हंस' गड्ढे में चले गए हैं। जाकर अब इन्हें देखना है।

इस बार दिल्ली जाकर देखा कि चीज़ें जहाँ की तहाँ हैं। काग़ज़ छपाई का पैसा पंडितजी ने अपने पास से और मन्नू से लेकर दे दिया है। 'अक्षर' के अपने जो 25-30 हज़ार थे, वे भी समाप्त ही हो गए हैं। उमराव-लालानी स्थिति का फ़ायदा उठाकर अपने ढंग से चीज़ों को तय करना चाहते हैं—शुद्ध व्यावसायिक दृष्टि से। शेयर अनुपात 45-55 रहेगा। ज़रूरत हुई तो पत्रिका की रूपरेखा पर पुनर्विचार करना होगा। चूँकि आपको हमारा विश्वास नहीं इसलिए मन्नू और अजित का निर्णय अन्तिम होगा...इत्यादि-इत्यादि...हाँ, एक और रास्ता खुलता नजर आता है। पिछली बार रमेशचन्द्र अग्रवाल से मिलने की बात हुई थी। इस बार मिला। वे एक साथ आने को तैयार हैं। व्यवस्था, प्रोडक्शन इत्यादि की चिन्ताओं से मुझे मुक्त करके सम्पादकीय पर ही मैं एकाग्र रहूँ—यही वे चाहते हैं। शेयर अनुपात पचास-पचास। हाँ, वे चाहते हैं कि हमारे-उनके अलावा कोई और न हो। यानी गौतम को अलग कर दिया जाए। किसी भी अगले निर्णय के लिए हरेक की शर्त यही होती है। वे दो लाख के लिए माँगते हैं पचास। इसे कम कराने के सिलसिले में ही मैं नवलखाजी से मिलना चाहता था—हो ही नहीं पाया। अगली बार मिलूँगा। मुझे लगता है, रमेशजी से ही ठीक रहेगा। तीन-चार ऑफ़िस हैं, विज्ञापन हैं। पत्रिका को वितरण और विज्ञापन के सिवा और क्या चाहिए? जिसे कहते हैं—फिंगर क्रॉस करके बैठना! वहीं किए बैठा हूँ। मन्नू के सिवा अभी तक यह बात किसी को भी नहीं बताई है। (कल गिरिराज को भी बता दी) अब यही है कि क्रिसमस 25 दिसम्बर, 1988 रविवार को शाम के छह बजे हुई यह बात टिकी रहे। सबसे बड़ी चिन्ता उमराव-लालानी ग्रुप से सद्‌भावनापूर्ण ढंग से बाहर निकलना है। इस बार शायद इन्हें बहुत ही बुरा लगे...क्योंकि मुसीबत में तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही काम आते हैं। अजीब मानसिकता है, धर्म या शौक़ के नाम पर लाखों ख़र्च कर देंगे (आचार्यश्री के चातुर्मास के लिए शायद चालीस लाख जमा किए थे) लेकिन जहाँ ज़रा भी बिज़नेसवाला पक्ष आया, एकदम हिसाबी हो जाएँगे...ख़ैर, देखते हैं, क्या होता है :

कल यहाँ से चला जाना है। सब कुछ समेटना बहुत बड़ा झंझट लग रहा है और कुछ भी करने को मन नहीं करता। एक तरह उखड़ ही गया हूँ, मानसिक रूप से। गिरिराज पर लेख अधूरा है और उसे छूने को जी नहीं चाहता।

22.11.1994

Dear Tinku,

This was the day, Mannu and I come togather, now niether of us wants to remember it. Let me explain that perhaps I have not been fair to her, and she is justifiably bitter and sore, She refused to forget and forgive four or five 'inhuman' incidents in 35 years of our married life and flows them out of proportion to torture herself and keeps those wounds a fresh by recalling them periodically to support this agony. She has a long list of things and duties which she expected of me and failed of worse. Calcutta provided her the emotional bond she needed most to live by. But as it looks Calcutta limit the understanding and vision by setting a 'model' where there are no hobbies, no vacations and nothing beyond family obligations. They are nice, professional and most depended people, but living so they served as weaper to reject me. Perhaps they unconsciously restricted manner to see of her own reality independently. This comparision alongs made her misreable. She wanted best of both, failing which she induldged in self pity and self-bashing. Lonely she thinks deep in her suffering never striving to come out, except occasionally sharing with you he grudges against me. Since I and you could never have established a dialogue, your move naturally identifid with her. For both of you I am the 'undesirable outsider and this is the life we have been living for 35 years. I may be utterly wrong, but at times you both look like two sisters of same age, sticking to the same frame of minds against a common 'enemy', who has 'wranged' both.

I paid equally and have no face to foresent my self an innocent victims. I am not. I have no moral ground to protest against you hating and detesting me. Even by proxy because I might have failed utterly in my duties as patheshi yet I have you most. I am not that expressive, but you know it that you are the only person in the world who I loved and still love most. I wish you could perosition, while throwing stones at a sinner.

—Pappu

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1.1.95

नाम : राजेन्द्र यादव
वर्तमान पता : 78-A, पॉकेट-I,
फेज-I, मयूर विहार
दिल्ली—110091

तो यह है मेरा नया पता। आए हुए ठीक एक महीना 20 दिन हुए हैं। 9 नवम्बर को मैं यहाँ आ गया था। 1 नवम्बर से यह जगह (फ्लैट) मेरे नाम हुई है। केदारनाथ सिंह की यह जगह खाली थी। बीच में आकर देखा—दक्षिण दिल्ली से दूरी के अलावा जगह ठीक ही लगी। ग्राउंड फ्लोर पर साफ-सुथरे तीन कमरे, ड्राइंग रूम। पता चला, बेटे सुनील की शादी में जो सोफासैट, फर्नीचर यहाँ रखा है, वह रखा रहेगा—गैस-फ्रिज तक। उन्हें मैं इस्तेमाल कर सकता हूँ। सामान कुछ ज़्यादा ही भव्य है—सफाई देनी पड़ती है कि मेरा नहीं है, वर्ना हर चीज़ को लेकर सब सोचते हैं कि 'हंस' की अन्धाधुंध कमाई से ऐश हो रहे हैं।

बहुत दिनों से चल रहा था कि हमें और मन्नू को अब कुछ दिनों को अलग रहना चाहिए। शायद यह पिछले तीस सालों से हमारे बीच स्थायी रैक है। सबसे पहले कुछ दिन कसौली में रहे, फिर सतीश कुमार की मदद से शंकर मार्केट में कमरा लिया, फिर गाज़ियाबाद में यात्री के पास, फिर कुछ समय पराक्रमसिंह भंडारी के कम्पनी द्वारा दिया गया ग्रेटर कैलाश का फ्लैट। मगर ये सारे प्रबन्ध महीने-दो महीने ही चले। कभी मन्नू कुछ दिनों को भागती थी, कभी मैं। पिछले कुछ दिनों की व्यवस्था लम्बी थी। '89-'90 में पहले मैं गया गिरीश अस्थाना के यहाँ कालकाजी—शायद जून में। फिर वहीं से गिरिराज के पास आई.आई.टी. में कानपुर—अतिथि लेखक की तरह। 'हंस' के लिए हर दस-पन्द्रह दिनों में आना होता था। कभी गिरीशजी के यहाँ रुका, कभी टिंकू के यहाँ और कभी 103 में। फिर वापस ही आ गया। मन्नू दो साल उज्जैन रहीं—बीच-बीच में आना-जाना बना रहा। कनपटी की नस से परेशान, उसे इन्दौर की व्यवस्था एक साल पहले ही समेट लेनी पड़ी। और तब लगा कि अब प्रबन्ध मुझे करना है। तलाश अमूर्त रूप में चल ही रही थी कि सीमा-प्रसंग ने लगभग स्थिति अनिवार्य और तत्काल बना दिया। माँ-बेटी दोनों साथ थीं। टिंकू पहले भी यही कहती थी कि हमें अब साथ नहीं रहना चाहिए। मन्नू अपने लिए भरतपुर या कहीं मध्यप्रदेश में जगह की बात सोचती रही। दो कमरों का छोटा-सा मकान—अपनी व्यवस्था। फिर शायद सही ही लगा कि ज़िन्दगीभर मर-खपकर यह छोटा-सा फ्लैट, अन्य सुख-सुविधाएँ जुटाई हैं तो उसे यहीं रहना चाहिए। जाना होगा तो मैं ही जाऊँगा। खास तरह के रहने, आराम और सुविधाओं का मुझे अभ्यास हो गया था और इस उम्र में अलग व्यवस्था सचमुच झंझट ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लगता था—शायद मैं मानसिक रूप से टाल भी रहा था कि यही सब यों ही चलता रहेगा, सम्बन्धों में तूफान आते ही रहते हैं—मगर मन्नू की दृष्टि से सही लगा। अगर अलग व्यवस्था होनी ही है तो जाना मुझे ही चाहिए। केदारजी के उस मकान ने रास्ता खोल दिया। लगभग तीन हज़ार देने हैं। शिफ्टिंग से लेकर छोटी-मोटी घर-गृहस्थी की चीज़ों के लिए उदार सहयोग दिया—मैत्रेयी और डॉ. शर्मा ने...शुरू में जो मुसीबत-झंझट या आफ़त जैसा लग रहा था, अब वैसा नहीं लगता। सबसे बड़ी सुविधा हुई किशन की। घर तो सारा सँभाल ही लेता है—खाने से लेकर सफाई तक। इधर ड्राइविंग भी सीख गया है। कम-से-कम सीधी-सीधी जगहों पर ले ही जाता है। हर कोई पूछता है, कैसा लग रहा है। मैं सोच नहीं पाता कि कैसा लग रहा है। वही दिनचर्या है, सुबह साढ़े चार के आस-पास उठना, मेज़ पर बैठकर कुछ लिखने-पढ़ने की कोशिश, छः-साढ़े छः पर चाय। अखबार, बीच-बीच में पानी के गिलास। शेव-नहाना, नाश्ता-नौ-साढ़े नौ तक। फिर आध-पौन घंटे की नींद-ग्यारह-साढ़े ग्यारह के आस-पास रवानगी। अक्सर शाम को सात से आठ के बीच या तो वापस या इधर-उधर कहीं आना-जाना अक्षर से दूरी लगभग वही है। 12 किलोमीटर रास्ता ज़्यादा खुला है, खाली ट्रैफिक लाइट चार हैं। हौज़खास से सात या नौ थीं। समय कम लगता है। हाँ, इधर सालभर से एक चीज़ लगभग नियमित हो गई है—शाम को दो ड्रिंक लगता है, शाम से ही जो जमुहाइयाँ इत्यादि आने लगती हैं और जैसे सिस्टम डिमांड करता है कि शराब चाहिए। जिसका डर था, लगभग वही हो गया है कि ज़िन्दगीभर का झंझट न लग जाए। सोचता हूँ कि अब ज़िन्दगी साली रह भी कितनी गई होगी। डेढ़-दो पैग का जुगाड़ तो हो ही सकता है। एक अच्छा नुक्ता यह भी है कि पहले सालों से पेट साफ करने के लिए जो इसबगोल, हरड़ या और दवाइयों का चक्कर बना रहता था—उस सबसे लगभग मुक्ति मिल गई है। पूरा सन्तोष चाहे न मिलता हो, कुछ तो हो ही जाता है। सो यह है यहाँ की दिनचर्या।

अभी जानबूझकर मयूर विहार बाज़ी नहीं की है, यानी लोगों से मिलना-जुलना लगभग नहीं ही है। एक-दो बार विजयमोहन सिंह, शानी आए हैं। तीन-चार बार सुधीश पचौरी और रवीन्द्र त्रिपाठी। वीरेन्द्र जैन, महेश दर्पण, हरिनारायण और अरविन्द जैन एक-एक बार। हाँ, इन दिनों कनाडा से हरिप्रकाश आकर डटा हुआ है। सुबह-शाम गप्पें रहती हैं, फिर अपना-अपना काम। खर्चा खुद ही कर रहा है, इसलिए बोझ बिल्कुल नहीं है। दो बार मीता आ चुकी है। सीमा-श्रीनंद भी एक-दो शाम साथ हुए हैं और बस...मन्नू और टिंकू अभी नहीं आई हैं। टिंकू शायद आए। मन्नू का तय नहीं है। लगता है, यह 'प्रवास' या बनवास इस बार लम्बा ही खिंचेगा—शायद तब तक जब तक कि किसी एक के साथ बीमारी इत्यादि की मानवीय मजबूरी न आ जाए। मन्नू शायद अपने को समझा यही रही है कि यह अलगाव अब अन्तिम है...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज साल का पहला दिन पता नहीं कैसा कटेगा! कल सुबह चार बजे गोवा के लिए निकल जाना है। एन.बी.टी. की गाड़ी आएगी। रात को मीता आ जाएगी ताज से। दोनों ही जाएँगे। उसने कभी कहा था कि हम लोगों ने साथ समुद्र नहीं देखा है। मैंने सोचा कि इस बार दिखा ही दिया जाए। गोवा में पुस्तक मेला है, और नागपुर की तरह 'लेखक से मिलिए' कार्यक्रम के लिए जब अरविन्द ने पूछा तो मैंने कहा, एक और व्यक्ति का खर्चा अगर मैं दूँ तो क्या उसे ले जाना सम्भव है? बोला, हो जाएगा। अब देखें, वहाँ क्या बनता है। चौवालीस सालों में शायद यह पहला अवसर है जब इस तरह खुले आम ले जा रहा हूँ। शायद इस तरह खुलकर उसका नाम लेते हुए लिख भी पहली बार रहा हूँ।

एक कचोट और अपराध-बोध भीतर अभी भी है कि मुझे कभी मन्नू को भी इस तरह ले जाना चाहिए था। मीता के साथ मैं न जाने कितनी जगह गया हूँ। मन्नू के साथ शायद बहुत कम। अगर तैयार हो गई तो ज़रूर ले जाने की कोशिश करूँगा। शायद मैंने उसके साथ ज़्यादतियाँ भी बहुत की हैं। सही है, न कभी ज़ोर से बोला, न अपशब्द कहे—मगर किया तो यही जो मैंने चाहा। साथ रहते हुए उस बेचारी को एक 'अलगाव' ही देता रहा और अगर आज वह 'बिटर' हो गई है तो गलत कहाँ है? भयंकर हीनता-बोध में वह इसका सारा दोष अपनी एपियरेंस को देती है, क्योंकि जितनी भी महिलाओं ने मुझे आकर्षित किया; सभी सुन्दर न भी हों, अलग तो थी हीं—शोभना, संयुक्ता, सरयू, अब सीमा। बीच में उषा प्रियम्वदा, मीता तो स्थायी शूल रही है।

जो एम्बेसेडर हमें लेने आई थी, उसके पीछे की सीटों और बैक-विंडो से लगी हुई जगह पर और सामानों के साथ एक पतला-सा रिंच या पाना पड़ा था। मेरी निगाह उसी पर गई और लगा कि मेरे काम का है। बेंत और बैसाखी बनाने के लिए जो क्रच मेरे पास है, उसका पेंच कभी कस जाता है और मुझे उसकी ज़रूरत पड़ती है। अपना शायद आगरा के होटल में छूट गया था। दस-बारह रुपए का होगा, मगर कहाँ खोज कर लाया जाए! इसे ही मारना है। मगर अभी नहीं। गोवा के एयरपोर्ट पर छोटा-सा दढ़ियल कुरियन लेने आया था। एन.बी.टी. में अंग्रेजी का असिस्टेंट एडीटर था। एक साथ टिकट नहीं मिले थे, इसलिए मीता आध घंटे बाद दूसरे प्लेन से आई थी। लेने आए थे कोंकणी अकादमी के घूझे...तीस-पैंतीस किलोमीटर दूर पंजीम या पणजी में पुस्तक मेला था, वहीं सर्किट हाउस में रुकना था।

सारा भू-दृश्य केरल जैसा ही था—वही पहाड़ी उतार-चढ़ाव, बैक वाटर्स, घूमती सड़कें, पुल-गाँव यानी छोटे-छोटे मकानों का सिलसिला। बरांडों में लटकते बड़े-बड़े कपड़ों या रंगीन काग़ज़ों के सितारे—क्रिसमस और नये वर्ष का स्वागत। आज नये वर्ष का दूसरा दिन था। कल भयानक हंगामा रहा होगा। सारा गोवा ही तो उत्सव के मूड में बदल जाता है। पहली बार देखा था और मीता का आग्रह था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम लोग कभी समुद्र नहीं गए। चलें, पुस्तक मेले में 'अपने लेखक से मिलिए' कार्यक्रम में गोवा ही सही। बेहद कचोट और दुख था कि मन्नू को इस तरह कभी नहीं ले गया। काश, इस बार ही ले जाता तो शायद उसका सारा मलाल धुल जाता! कमरे पर शाम को रामप्रकाश त्रिपाठी और रोहिताश्व आ गए थे। रोहित 'हंस' का कहानीकार है और हैदराबाद का रहनेवाला है। बहुत बोलता है और याददाश्त अच्छी है। मीता से परिचय के साथ ही उसे याद आ गया कि यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में 'आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास' किताब है। गोवा के दौरान मीता से उसकी काफी घनिष्ठ दोस्ती हो गई। पाँच बजे गाड़ी आ गई और हम सभी लोग मेले गए। इस बीच अरविन्द आकर खोज-खबर ले गया था। वहीं मराठी साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष सुभाष भेंडे मिले। ऐसे बुजुर्ग लोग जब कहते हैं कि हम विद्यार्थी काल से पढ़ रहे हैं तो लगता है, जैसे आपकी उम्र सौ-डेढ़ सौ साल है। कार्यक्रम सवाल-जवाब के रूप में था। पहले तो कोई नहीं था, फिर सत्तर-अस्सी लोग आ गए। ठीक ही रहा, अगले दिन अखबारों ने काफी कवर किया था। प्रोग्राम था, वहाँ से रोहिताश्व के साथ जाएँगे। त्रिपाठी भी साथ थे, एक खल्वार मिश्रा थे।

रोहित दोनापावला नाम की जगह ले गया। बहुत सुन्दर स्थान माना जाता है। वहीं उसका घर है। पहले तो समुद्र में अन्तरीप की तरह प्लेटफॉर्म पर घूमते रहे। चारों तरफ रोशनियाँ, सुहानी हवा और रूमानी वातावरण। रोहित लगातार अपने और गोवा के बारे में बताता रहा। यहाँ हर दस-कदम पर 'बार' है, मगर कोई लड़खड़ाता-झूमता सड़कों पर नहीं लुढ़कता। फैनी या ड्रिंक उनके जीवन का सहज भाग है। काश्मीर न रहने से लाखों टूरिस्ट अब गोवा ही आते हैं। लड़के-लड़कियाँ मुक्त भाव से मिलते, लिपटते, प्रेम करते हैं मगर कोई उन्हें तंग नहीं करता। लड़की बारह बजे भी सड़क पर जाए तो कोई सीटी तक नहीं बजाता। बहुत खुला-मस्त समाज है। हम लोगों ने फिर एक बार में फैनी सिड्रा का मेल पिया। पहली बार मुझे फैनी अच्छी लगी। हलका सुरूर। गाड़ी मँगा ली थी—हम लोगों ने 'राजधानी' में जाकर खाना खाया। दोपहर में कमट में जाकर खाया था। एन.बी.टी के रवि राजपाल के साथ। अगले दिन मैंने अपनी तरफ से रोहित को इन्वाइट किया था।

सुबह मीता-रोहित का प्रोग्राम साढ़े छह बजे उठकर समुद्र स्नान का था। ये लोग गए भी। मीता ने काफी एन्जॉय भी किया। दोपहर को वहीं सर्किट हाउस में खाना खाया और शाम को सुभाष भेंडे के कार्यक्रम में गए। 'प्रयास' नाम की संस्था कुछ करनेवाली थी। गोवा टूरिज्म की फैरी के टिकट कल यानी चार के थे और पाँच को हमें लौटना था। मड़गाँव से सत्ते के किसी पुराने साथी का बार-बार फोन आ रहा था। रेडियोवाले भी एकटक चाहते थे। शाम को दामोदर भावजी के साथ हमलोग दौना चावला की एक खुली बार में बैठे। दामोदर के एक उपन्यास 'कार्मेलीन' की बार-बार चर्चा हो रही थी, साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत। बाद में मैंने पढ़ा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे बहुत अच्छा लगा। क्रिश्चियन गरीब लड़कियाँ घरेलू नौकरानियाँ बनकर किस तरह कुवैत, सऊदी अरेबिया जाती हैं! द्वन्द्व मराठी और कोंकणी का है। दामोदर पहले बार चलाता था, अब डिपार्टमेंटल स्टोर है। बार बन्द कर दिया। गरीब गोआनी घर के लिए आधा किलो चावल और सौ रुपए की बैठकर दारू पीने की स्थितियों ने ही उसे बार बन्द करने की प्रेरणा दी। वहाँ से दामोदर ने हमें शेरे पंजाब में छोड़ा। सरदार लोगों की फ़राख़दिली देखकर तबियत खुश हो गई। शायद दो मित्र परिवार थे, पहले तो घंटों खाना खाते रहे, फिर बाहर फुटपाथ पर बैठकर आइसक्रीम। कुर्सियाँ लगी थीं। एक छोटे बच्चे ने आइसक्रीम कप गिरा दिया तो पास बैठे निहायत अपरिचित सरदार ने अपने पास से दूसरी आइसक्रीम ला दी। इन लोगों ने पास ही बैठे भिखारी जैसे व्यक्ति को आइसक्रीम का एक बड़ा कप पकड़ा दिया। औरतें-आदमी-बच्चे प्लास्टिक की कुर्सियों पर बैठे लगातार आइसक्रीम खा रहे थे। शायद इस शाम हज़ार रुपए फूँक दिये होंगे। इन लोगों की जीवन्तता, ज़िन्दगी को उत्साहित करने की मानसिकता, मुझे हमेशा छोटा महसूस कराती है। सवारी कोई नहीं थी, इसलिए रोहित ने पहले मीता को सर्किट हाउस में छोड़ा फिर आकर मुझे ले गया।

अगले दिन यानी 4 जनवरी को कोवला बीच जाना था, सैंट फ्रांसिस का पाँच सौ साल पुराना शव देखना था, मंगेश मन्दिर जाना था। गाड़ी दस बजे आ गई थी—बीच में अनेक बार मारुति वैन आती थी। वह रिंच अभी भी वहीं रखा था। घंटेभर की यात्रा करके हम लोग गिरिजाघर पहुँचे। हज़ारों की लाइन लगी थी। पुराना गिरजाघर पहुँचे—भव्य-विशाल। शायद यह शव अन्तिम बार दिखाया जा रहा था। मेला लगा था। ईसाई लोग अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न हैं। हरियाली भरे रास्ते। काजू और नारियल के पेड़ों से खेत भरे हैं। सुपारी, इलायची, लौंग यहाँ की पैदावार है। रोहिताश्व हमें पीछे की तरफ से ले गया। ठीक काँच के ताबूत के पास। शव क्या था, एक सिकुड़ी-सिकुड़ाई-सी चीज़ थी। भूरी। सुना है कि अब इतना भुरभुरा है जैसे राख-कोयले की शकल में बची रह गई हो—छूते ही बिखर जाएगी। शायद केप ने सन्त के शरीर का कोई हिस्सा माँगा था, मगर शव बिखर जाने के डर से नहीं दिया गया। श्रद्धालु उस काँच को ही चूम रहे थे, चरणों की ओर से। श्रद्धालुओं की आस्था देखकर आस्था होती है—मन्दिर हो, मक्का हो या चर्च—सभी श्रद्धालुओं का व्यवहार एक ही है। कैसे यह तत्त्व आत्मा के भीतरी हिस्सों तक पहुँच जाता है। वहाँ से हम लोग मंगेश मन्दिर तक गए। लता मंगेशकर यहीं की है। उसी ने अपने पैसों से इसका जीर्णोद्धार कराया है—बाप की प्रेरणा से। लेकिन बाप कभी इस जगह नहीं आया। ये लोग गाँव के नाचने-गानेवाले लोग थे और पंडितों ने उन्हें इतना अपमानित किया कि उसने मन्दिर न आने का निर्णय ले लिया। वहाँ से हम लोग कोवला बीच पर आए। मैं एक जगह बैठ गया और ये लोग रेत में घूमते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर मडगाँव में कामत भोजन करते हुए हम लोग वापस आए। 'प्रयास' का कार्यक्रम था। यहाँ से मामला था टूरिस्ट-लांच के लिए।

सरकार के पर्यटन विभाग की ओर से घंटे भर की टूरिस्ट यात्रा होती है। डैक पर दो-तीन सौ कुर्सियाँ लगा दी जाती हैं। बीच में जगह छोड़कर आर्केस्ट्रा होता है। लोक-नृत्य और संगीत। बल्बों की झालरें और स्पॉट-लाइटें। पहलेवाली उम्र होती तो कहता, सारा वातावरण बेहद स्वप्निल था। चारों तरफ अँधेरे में झिलमिलाती बत्तियाँ, शहर की रोशनियाँ, पानी में सरकती बड़ी नाव, संगीत-नाच और ठंडी हवाएँ। सबके हाथों में शराब, बीयर, फैनी और सॉफ्ट ड्रिंक के गिलास और बोतलें और पैंतालीस बरस पुराना साथ। कहीं कुछ नहीं था और बस, एक स्वप्न जैसे स्क्रीन पर चल रहा था। सब कुछ बड़ा अनरीयल, वायवी और दिक्काल से मुक्त। शायद हम लोगों की बीच की सबसे स्मरणीय शामों में से एक थी वह...।

इसी दौरान एक दिन हम लोग हिप्पियों के गाँव भी गए थे। चालीस-पचास किलोमीटर दूर। बीच में ऊँची पहाड़ी के बिल्कुल समुद्री किनारे पर गोवा का पुराना क़िला था। लम्बा-चौड़ा, पुराना, भुतहा और इतिहास-गन्धी। अब जेल बना दी गई है। जहाँ क़िले की ओर जाते हैं वहीं पहले एक ओर बनती हुई पुरानी इमारत है। उस सारी जगह को बम्बई के किसी सेठ ने ले लिया। फ्रेंच, पोर्तुगीज़ और पता नहीं किस-किस वास्तु शिल्प में पुराने रहस्यमय क़िलों जैसी वह चीज़ बन रही है—ठीक नीचे समुद्र तल से ऊपर उठती हुई—एक-दूसरे पर सवार कई मंज़िलें। करोड़ों की होगी। अन्दर कोई नहीं जा सकता। सिर्फ छतरियाँ, सीढ़ियाँ, कमरे और ऊपर के बुर्ज दिखाई देते हैं। समुद्र तल से ऊपर पहुँचने के लिए अन्दर लिफ्टें। सुनते हैं वहाँ शूटिंग होती है फिल्मों की, पार्टियाँ होती हैं और ब्लू-फिल्में बनाई जाती हैं। दूर समुद्र के पार एक अन्तरीप पर बने गवर्नर हाउस के सामने। मैं यही सोच रहा था कि लोगों के पास कितना पैसा है—शायद एक विराट पाँच-सितारा होटल से अधिक धन उसमें लगाया जा रहा है। हो सकता है, आगे जाकर उसे होटल ही बना दिया जाए। अन्दर पचासों नौकर-चाकर, दरबान होंगे—दिखाई भी दे रहे थे। लाखों रुपए तनखाहें, हज़ारों और लाखों की एक-एक चीज़, फिर चालू खर्चे। यह तो हिन्दुस्तान के एक सिरे पर छोटे से गोवा का एक कोना है—पहाड़ों पर, समुद्र के किनारों पर, दिल्ली के फार्म हाउसों में—लाखों बड़ी-बड़ी कोठियों और शहरी बिल्डिंगों में, होटलों और रिज़ोर्टों में—करोड़ों-अरबों रुपया बह रहा है—कहाँ से आ गई है यह सारी समृद्धि...प्रयास के कार्यक्रम से चलते हुए चन्द्रलेखा ने कहा था, "सर, जो कुछ आप देख रहे हैं, यह सब टूरिस्ट गोवा है। यहाँ गरीब और संघर्ष करते अपने-आपमें जीते-मरते लोग भी हैं।" और सचमुच गोवा की इस चार दिन की यात्रा में दिखाई ही नहीं दिया कि कहीं बिहार-पूर्वी उत्तर प्रदेश जैसे मरने-मारने-वाले लोग भी हैं—कहीं गाँव की दुश्मनियाँ और हत्याएँ भी हैं, जलाए जाते घर भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिप्पी गाँव कहीं अन्दर दूर जाकर समुद्र के किनारे है। पतली-सी सड़क, धूल भरी पगडंडियों से वहाँ जाना होता है। आज उनका साप्ताहिक मेला या हाट थी। हज़ारों मोटरसाइकिलें, कारें और दूसरे वाहन बाहर खड़े थे। लड़के-लड़कियाँ मस्ती में आ रहे थे। हाट की तरह कपड़े और तम्बू लगाकर एक-दूसरे से सटी दुकानें थीं। श्वेत-अश्वेत हिप्पी अपनी चीज़ें सजाए लेटे या बैठे थे। चीज़ें लगी थीं। कपड़े-पुराने सामान। सुनते हैं, शराब, मोटरसाइकिलें सभी बिकते हैं। कुछ वे स्वयं बनाते हैं, कुछ मँगाते हैं। देशी-विदेशी का फर्क मिट गया था। ये हिप्पी यहाँ दस-बीस सालों से रह रहे हैं। गाँजा-भांग या दूसरी इसी तरह की ड्रग लेकर झूमते-डूबने के दृश्य ही इनके साथ जोड़ दिये जाते हैं। मगर ये सिर्फ फ्रीक या ड्रॉप आउट ही नहीं हैं, इनका बाक़ायदा अपना एक कल्चर या पंथ है, दर्शन और जीवन-पद्धति है। कन्धे से कन्धा रगड़ते इस मेले से लौटकर आना एक अलग अनुभव था।

अगले दिन मीता फिर रोहिताश्व के साथ समुद्र-स्नान गई। उसी दिन दोपहर को हमें चलना था। एयरपोर्ट आए। वही एम्बैसेडर थी और उसके पीछे वही रिंच रखा था। मैंने चुपचाप हाथ बढ़ाकर पहले मुट्ठी में पकड़ा फिर थैले में रख लिया। अब यह कसे पेंच खोलने के काम आएगा। छोटी-सी चोरी थी। दो घंटे में दिल्ली आ गए। भयानक ठंड—मीता को यह मेरी नये वर्ष की पहली भेंट थी।

4.2.95

78ए, पॉकेट-I, फेज-I, मयूर विहार

कवि केदारनाथ सिंह के इस फ्लैट में आए आज तीसरा महीना है। पहले बहुत कोशिश करता रहा कि उधर दक्षिणी दिल्ली में ही कोई जगह मिले, लेकिन वहाँ के किराए असम्भव थे। तभी केदार जी ने बताया और मैं यहाँ शिफ्ट कर गया। हौज़खास से हटना है, यह बहुत पहले से तय था और मैं बरसों से ऐसी ही किसी व्यवस्था की तलाश में था। मन्नू के उज्जैन जाने से स्थिति थोड़ी स्थगित हुई। फिर जब वह यहाँ आ गई तो लगा कि अब कुछ करना होगा। पहले तो वही कभी उज्जैन, कभी इन्दौर, कभी मनासा तो कभी भरतपुर में छोटी-सी जगह लेकर रहने की बात करती रही। फिर औरों ने और स्वयं मैंने समझाया कि जान झोंक कर तुमने अपना यह हौज़खास का फ्लैट बनवाया है, तुम यहीं रहोगी। ज़ाहिर है, हटना मुझे ही था। आपसी उपस्थिति का दबाव कटुता में बदल रहा था। दोनों ही सहमत थे कि मित्र बने रहकर ही हो तो ज़्यादा शोभन है। सो मैं यहाँ आ गया। तीन कमरे का छोटा-सा फ्लैट है, बाक़ी एक कमरे में किशन है, एक में सामान। केदार के लड़के सुनील की शादी का फर्नीचर, फ्रिज इत्यादि हैं ही। मेज़-कुर्सी और अपने बेड के सिवा कुछ नहीं लाना पड़ा। रोज़मर्रा की काफ़ी चीज़ें मैत्रेयी ने दी हैं, बाकी खरीदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई हैं। अभी दस दिन पहले केदारजी की पुत्र-वधू ने ड्रेसिंग टेबल, डबल अलमारियाँ, फ्रिज इत्यादि वापस मँगाए तो मैंने अलग अलमारियों की व्यवस्था कर ली। लगभग दस-बारह हज़ार खर्चा हुआ है।

अभी हरिप्रकाश छह हफ्ते के लिए आया था। दो-चार दिन रहता और फिर चला जाता। बेचारा घर का सारा ऊपरी खर्चा वही करता था, वर्ना मैं हूँ और किशन है। किशन ने गाड़ी चलानी सीख ली है, अभी दक्ष नहीं है, मगर दफ्तर या इधर-उधर ले ही जाता है। अपने को सौभाग्यशाली मानता है कि किशन अभी तक बिगड़ा नहीं है। व्यसन लगभग कुछ नहीं है। टी.वी. देखना, अच्छा खाना, पहनना और जँचकर रहना इस उम्र के स्वाभाविक तकाज़े हैं। लगभग घर यही चला रहा है। खाना, सफाई, कपड़े, गाड़ी। प्रेम आकर सिर्फ झाड़ू-पोंछा कर जाती है। पैसे दे देता हूँ—हर चीज़ खुद ही लाता है। मेरा स्वभाव है कि बहुत दूरी या नौकर-मालिक का सम्बन्ध नहीं रख पाता। मज़ाक करता, छेड़ता रहता हूँ। वह प्रसन्न, सुखी और सन्तुष्ट रहता है, यह मुझे बहुत अच्छा लगता है। वह सचमुच घर का बराबरी का सदस्य है। पैसे बचाने, ज़्यादा पाने की इच्छा को मैं गलत नहीं मानता, आखिर यहाँ आकर पड़ा ही इसलिए है। अप्रैल से अक्षर उसे पैसे देने लगेगा। उम्र की रूमानी भावनाएँ शायद बीना के प्रति श्रद्धा और प्यार से पूरी कर लेता है। बीना भी इसे बहुत प्यार करती है।

अक्सर लोग और मैं अपने-आपसे पूछते हैं कि इस 'परिवर्तन' से कैसा लग रहा है? जवाब देने के लिए सोचना पड़ता है। क्योंकि मूलत: शायद कुछ भी नहीं बदला है। जगह बदलनी है और अकेला रहना है, इसके लिए मैं मानसिक रूप से तैयार था। बाकी दिनचर्या तो वही है जो वहाँ थी। सुबह चार या पाँच के बीच उठना, लिखना-पढ़ना। छह-सात के आस-पास किशन को जगाकर चाय, फिर चार-पाँच गिलास पानी, अखबार, पड़ना और कब्ज से लड़ना, हमेशा नहाने या न नहाने के भूत को भीतर पाना। नाश्ता करके सोना और फिर अक्षर। हाँ, डेढ़-दो पैग रोज़ की आदत-सी बन गई है। लगभग मैंने इसे स्वीकार कर लिया है। औरों के साथ या अकेले। सुजीत, जे.पी. सभी तो लेते हैं। क्या उन्हें भी इतना ही गलत लगता है? मुझे भीतर से तो लगता ही है। सबसे अधिक आश्चर्य और धक्का इस बात का है कि यहाँ फोन नहीं है और मुझे इसकी कोई कमी सचमुच महसूस नहीं होती। हौज़खास में दो-दो फोन थे और तार लम्बे लगाकर मैं हमेशा उन्हें पास रखता था। एक से बात करता तो दूसरा बजता रहता। शायद आने-जाने के दौरान गाड़ी में ही वह समय होता था, जब फोन न हो। अब सिर्फ अक्षर में होता है, बारह से छह-सात तक...सोचता हूँ कि जिस स्वतंत्रता की ज़रूरत मेरी प्रकृति को है, फोन न होना भी उसी का हिस्सा है। अब अगर पहले से तय न हो तो न 'अचानक' कहीं से कोई आता है, न कहीं भागना होता है। लगभग बारह बजे तक किसी तरह का कोई दबाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। कभी-कभी डर जाता हूँ—जिसे मैं अपनी निस्संगता, संवेदनहीनता या जड़ता समझकर अपने को धिक्कारता रहता हूँ, वह शायद मेरे भीतर की स्वतंत्रता है जो हर बार अपने-आपको एसर्ट करती है—दिनचर्या या सम्बन्धों की 'स्वतंत्रता' या सम्बन्धों से निरपेक्षता की बाहरी अभिव्यक्तियाँ हैं। मैं किससे कब मिलता हूँ, कौन आता-जाता है, कौन मेरे साथ आकर ठहरता है—मैं किसी के लिए जवाबदेह नहीं हूँ। (हालाँकि अनकांशसली डर और जवाबदेही जैसी तो है ही) 'नैतिक' और सामाजिक अंकुश अब शायद उतने दमनकारी नहीं हैं। शायद यही 'स्वतंत्रता' है कि न तो कभी सचमुच मुझे उम्र महसूस होती है, न थकान या पराजय बोध। लेखन की ऊर्जा, ताज़गी और निर्भीकता भी शायद वहीं से आती है। नैतिक अंकुशों से मुक्ति की आकांक्षा, प्रयास और सुविधाएँ ही शायद मेरी ऊर्जा का स्रोत हैं।

अक्सर अपने को याद दिलाता रहता हूँ—उल्लू के पट्ठे, तुम सड़सठ के लगभग हो रहे हो (या हो चुके हो), तुम्हारे आस-पास के बूढ़े कितने भयानक लगते हैं और तुम हो कि उम्र की बात सोचते ही नहीं हो? क्या अस्सी के होकर भी ऐसे ही बने रहोगे? या तब भी कहीं उम्र का पराजय-बोध नहीं होगा? धिक्कारता भी हूँ कि दूसरे तो हमेशा याद दिलाते ही हैं, मगर जब तुम स्वयं महसूस नहीं करते तो क्यों अपने को रिमाइंड कराते रहते हो कि तुम्हारी उम्र इतनी है और तुम्हें ऐसा गरिष्ठ नहीं खाना चाहिए? सेक्स की बात नहीं सोचनी, करनी चाहिए...ईमानदारी की बात है कि न तो मुझे किसी के प्रति ललक महसूस होती है, न कहीं कुछ 'मिस' करता हूँ। जिसे हमारे शास्त्रज्ञ 'अनासक्ति' कहते हैं, मैं उसे संवेदनहीनता और भावनात्मक फालिज समझता हूँ—वह कहीं अपनी भीतरी स्वतंत्रता ही तो नहीं है? कहीं पूर्वजों ने इसी मुक्ति की तलाश में बाहरी सम्बन्धों की व्यर्थता या 'माया' की कल्पना तो नहीं की थी? गीता में जो 'निरासक्ति' की बात है, आकांक्षा, आशाएँ पैदा करती है, दूसरों से आप कुछ न कुछ 'चाहने' लगते हैं, जब चाह पूरी नहीं होती या वहाँ कुछ गड़बड़ होती है तो गुस्सा, फ्रस्टेशन, कुंठाएँ या दूसरी विकृतियाँ आती हैं। गुस्सा ही नहीं, मुझे तो भावनात्मक रूप से कोई आवेग ही पैदा नहीं होता, इसका कारण यही भीतरी 'स्वतंत्रता' का स्वाद ही तो नहीं है? कामू और सार्त्र जिस 'स्वतंत्रता' की बात करते हैं, क्या वह अपने एसेन्स में भारतीय 'अनासक्ति' का ही तो कोई रूप नहीं है? अपने से डर भी लगता है, हानि-लाभ, प्यार-द्वेष कुछ भी तो 'भीतर' से नहीं झकझोरता और मन होता रहता है कि ऐसा कुछ हो जो मुझे हिला दे। मैं भीतर से भर गया हूँ या मुक्त हो गया हूँ, इस सवाल से दूसरी तरह का क्रोध आता है। ये सारी आध्यात्मिक बातें मेरे दिमाग में क्यों आती हैं? क्या हर भारतीय सचमुच उम्र की एक स्थिति में आध्यात्मिक होने के लिए ही अभिशप्त है? नहीं, मैं कम-से-कम वह नहीं होना चाहता। बहरहाल इस भीतरी स्वतंत्रता का बोध—मुझे कहीं बाहर, या दूसरे से जुड़ने की न कमी महसूस होने देता है, न वास्तविक ज़रूरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनकर सामने आता है। मुझे कम्पनी ज़रूरी चाहिए, शायद जुड़ाव भी—फिर यह द्वन्द्वात्मकता क्या है?

23.8.95

परसों यानी—शनिवार को पटना के उर्दू लेखक शमोएल अहमद आए थे—आशा प्रभात नाम की कवयित्री और उसके पति के साथ। शमोएल ने भारतीय ज्योतिष का गहरा अध्ययन किया है और कुछ भविष्यवाणियों पर उन्हें गर्व है। लालू यादव की जीत की घोषणा उन्होंने एक महीने पहले कर दी थी। उन्होंने बताया कि ये पचास दिन आपके लिए बहुत संकट के दिन हैं। आप किसी षड्यंत्र के शिकार होंगे और डिफेमेशन केस जैसा होगा। पुलिस केस भी हो सकता है। बहुत पूछने पर भी उन्होंने विस्तार से कुछ नहीं बताया। बस, यही कहते रहे कि सावधान रहिए...तभी से मेरे दिमाग में घूम रहा है कि क्या हो सकता है? बहुत सोचने पर भी ऐसा कहीं कुछ नहीं लगता जो षड्यंत्र जैसा लगे। कोई किस सिलसिले में ऐसा करेगा? हो सकता है, मैंने किसी वक्तव्य या कहीं ऐसे हस्ताक्षर किए हों जहाँ राजनीतिक संकट की स्थिति आए!

दूसरी किसी स्थिति में शायद मैं इस बात पर सोचता भी नहीं। मगर यह बात मैंने जन्मदिन के सिलसिले में पूछी थी कि अगला साल कैसा रहेगा? लगता है, इधर कुछ ज़्यादा ही बढ़ गया है। मैं साल और जन्म के पहले दिन को लेकर बहुत पर्टीकुलर हूँ। लगता है, ज़िन्दगी के बहुत महत्त्वपूर्ण दिन हैं और जो आज होगा, वही मेरे पूरे साल की नियति निर्धारित करेगा। हालाँकि दो दिनों बाद भूल जाता हूँ। यही रट भीतर लगी रहती है कि जैसे भी हो, यह दिन हँसी-खुशी बीत जाए। आज भी बेचैनी है, कौन-कौन फोन करेगा, कौन आएगा? मन्नू-टिंकू से मुलाकात कैसे और कहाँ होगी? निश्चय ही मिलेंगी तो दोनों ही। मीता ने भी कहा था। अगर अभी दस-ग्यारह तक वह आ गई तो दिन का स्वरूप क्या होगा? बाकी तो किसी की मुझे चिन्ता नहीं है, मगर मन्नू-टिंकू या शर्मा-सरयू और सीमान्द्री नन्द एक साथ हो जाएँ तो तनाव क्या नाटकीयता पैदा करेगा? पिछली बार प्रवीण प्रकाशन के श्री किशन गुप्ता ने क्रिकेट क्लब (दिल्ली गेट) में सत्तर-अस्सी लोगों की पार्टी की थी और ये सारे लोग नहीं आए थे। घटना ताज़ा थी। और मेरे लिए तो यह शोक़ सभा जैसी थी। न जाने क्यों मन करता है कि जो आत्मीय हैं वे सब इस दिन मिलें। हो सकता है, अवचेतन में यही हो कि अगले साल हम रहें, न रहें। इस बार यहीं बुलाने का इरादा है, मिलना-जुलना, दारू-ड्रिंक यहीं हो, फिर कहीं आस-पास जाकर खाना हो।

जीवन के नये संकल्प क्या हैं और पिछला साल कैसा रहा—लगता है यह सब सोचने की मानसिक फुरसत ही नहीं है। वही सुबह उठना, लिखना पढ़ना—नहाना, सोना, अक्षर और सन्ध्या की व्यस्तताएँ। लगता है, अगर यह न हो तो सचमुच बूढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाऊँगा। पता नहीं, सड़सठ में लगा हूँ या अड़सठ में? खासी उम्र होती है अगर दूसरे की हो। मुझे सचमुच आज भी ऐसा कुछ महसूस नहीं होता। न थकान, न पस्ती। जो कुछ नहीं करना चाहता, उसके लिए यह कहकर अपने को समझा लेता हूँ कि उम्र है। इस वर्ष शायद दस-बारह ऐसी गोष्ठियों में भाग लिया जो अहं को बहुत सेंकने वाली थीं। श्रीकान्त वर्मा की गोष्ठी, जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी में उपन्यासों वाली गोष्ठियाँ, अहमदाबाद-हैदराबाद इत्यादि की गोष्ठियाँ। ऐसी जगह जाकर सचमुच लगता है कि हाँ, आप भी कुछ ऐसे हैं कि हिन्दी का सिर ऊँचा होता है। लोग पढ़ा-लिखा और दृष्टि-सम्पन्न मानते हैं, बड़े-बड़े दिग्गज प्रभावित होते हैं। ऊपर से एक सन्तुष्ट लापरवाही का भाव रखे हुए भीतर अपने को गालियाँ देता रहता हूँ कि साले, न तुमने कुछ पढ़ा, न लिखा। इसी दिल्ली में तुमसे लाख गुना पढ़े-लिखे हज़ारों लोग। एक से एक बड़ी किताबें रोज़ पढ़ते हो और रोज़ भूल जाते हो। लोग कितने नये और ताज़े ढंग से सोचते और लिखते हैं। नामवर अवसरवादी और बेईमान हो सकता है, मगर कम्बख्त ने पढ़ा कितना है और जो पढ़ा है, उससे ज़्यादा याद रहता है।

इस सन्दर्भ में मुझे कमलेश्वर की लफ़्फ़ाजी और नामवर की विद्वत्ता से डर लगता है। दोनों जानबूझकर व्यक्तिगत होंगे और सारा माहौल बिगाड़ देंगे। कमलेश्वर अनपढ़ और सतही जानकारियों वाला; राजेन्द्र अवस्थी, कन्हैयालाल नन्दन ब्रीड का आदमी है लेकिन बोलने की अद्‌भुत कला है—प्रभावी आवाज़, नाटकीय अन्दाज़ और नामवर की तार्किक विश्लेषणात्मकता। मैं तो शायद बहुत सपाट और एकरस हूँ, मगर मैटर बहुत महत्त्वपूर्ण रहता है इसलिए बहा ले जाता हूँ। कभी-कभी लगता है कि क्या वक़्त आ गया है कि हमें अपनी महत्ता और सार्थकता मंचों पर सिद्ध करनी होती है—कहीं लिखकर करते तो साहित्य की यादगार बहसें होतीं। नामवर के साथ तो मंच पर कई बार मुठभेड़ हुई है, कमलेश्वर के साथ मैं अभी भी नहीं चाहता कि एक ही मंच शेयर करना पड़े। कभी तो लगता है कि हम तीनों एक बिसात पर बैठे हुए हैं और मन-ही-मन बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे हैं कि पहले कौन उठता है। कभी-कभी तो मैं शब्दश: सोच सकता हूँ कि आगे शोक संदेश में नामवर या कमलेश्वर मेरे बारे में क्या कहेंगे या मैं ही क्या बोलूँगा! शायद वे दोनों भी यही सोचते होंगे।

पिछले दिनों हंस के कुछ सम्पादकीयों की बहुत चर्चा रही—विशेष रूप से शानी की मृत्यु पर या धर्मवीर भारती और भैरव प्रसाद गुप्त पर लिखे गए पद। इधर चार-पाँच सालों से हंस का हर सम्पादकीय लगभग एक हंगामा पैदा कर रहा है। मुझे तो यह भी मुग़ालता है कि ऐसे बेबाक, निर्भीक और दबंग सम्पादकीय हिन्दी ही क्या, किसी भी भारतीय भाषा में नहीं लिखे जा रहे। हिन्दी में तो शायद कभी भी इतनी निरन्तरता से लिखे ही नहीं गए। क्योंकि वे लोग इतने मलंग नहीं थे। 'कोई मेरा क्या कर लेगा' की लगभग आत्महंता लापरवाही नहीं थी। ईमानदारी से हंस मुझे अपने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आपमें एक चमत्कार ही लगता है। भयानक प्रशंसाओं के बीच भी मुझे अपने हर लिखे हुए को लेकर यही होता है कि एक बार इसे और रिवाइज़ करना है—ऐसा बताना है जिसके लिए कहूँ कि इससे अच्छा मैं लिख ही नहीं सकता। मगर जानता हूँ, जब संकलन में दूँगा तो यही सब इसी तरह जाएगा।

और इन दिनों या अगले कुछ दिनों सबसे ज़्यादा विवाद उठने जा रहे हैं, पुरस्कार को लेकर...अभी तक मैंने कोई पुरस्कार नहीं लिया। जो मिले भी, उन्हें भी मना कर दिया। इस बार एक लाख का शिवपूजन सहाय शिखर सम्मान ले रहा हूँ, बिहार से उनका भी पहला ही है। सिर्फ मैं जानता हूँ कि इस एक लाख का मुझे न कोई लालच है, न भीतर से इच्छा। हाँ, हंस को कुछ मदद मिलेगी—इसी भीतरी और बाहरी दवाब से स्वीकार किया है।

30.8.95

परसों दोपहर तक उत्सुकता थी कि आज क्या होगा, फिर धीरे-धीरे एक लापरवाही आई और शाम तक लगभग एक व्यर्थता-बोध। हो सकता है, अपने जन्मदिन को लेकर मैं जैसी गर्मजोशी की उम्मीद कर रहा था वैसी नहीं मिली। न मीता का फोन आया, न शर्माजी आए, न निर्मला जी, न नामवर...बीसियों सालों से जो एक परम्परा-सी बनी रही है, वह पिछले साल टूट गई। सरयू का एक औपचारिक-सा फोन आया। चूँकि इन दिनों 'अक्षर' में एक ही फोन लाइन है और लोगों को शिकायत थी कि मिलती ही नहीं है, इसलिए हो सकता है, बहुतों ने कोशिश की हो! बहरहाल सुबह से बारिश लगातार होती रही थी। यह भी एक कारण रहा होगा। शाम को वही भारत भारद्वाज, रवीन्द्र त्रिपाठी, रामशरण जोशी, श्रीनन्द—सीमा झा, लालाजी, वीरेन्द्र जैन, महेश दर्पण और हरिनारायण। अकेली महिला होने के कारण सीमा चुप ही बैठी रही। बाद में वीरेन्द्र जैन ने शेष सारे लोगों के अज्ञान पर बोलकर सारा वातावरण खराब कर दिया। भारत और वीरेन्द्र के बीच 'आप मूर्ख हैं' जैसी बातें हुईं और काफी ज़ोर-ज़ोर से झगड़ा जैसा हो गया। गलती वीरेन्द्र की थी। इधर वैसे भी वह दुस्सहनीय हो रहा है और कुछ भी बोलने को अपना साहस या अपनी ईमानदारी समझता है। अपने फूहड़ व्यवहार और वाक्यों का उसे बड़ा मोह है। सब मिलाकर वातावरण बहुत ही अशोभनीय हो गया और मैं परेशान था कि सीमा-श्रीनन्द क्या सोच रहे होंगे। अच्छा हुआ, लालाजी पहले चले गए। खाना उन्होंने ही बाज़ार से मँगाया था। अच्छा था, लेकिन बाद में कम पड़ गया। सोते समय मन में एक डिसगस्ट ही थी। वर्ष के पहले दिन और जन्मदिन में ऐसा क्या है कि अपने-आप ही एक उत्सुकता जमा होने लगती है और उम्मीद होती है कि इन दिनों कुछ विलक्षण हो, जो पहले न हुआ हो और वह ज़िन्दगी की धार को बदल दे। देखा जाए तो ये दिन भी बाकी दिनों जैसे ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भयानक सेन्स ऑफ अनरियलिटी इन दिनों मेरे मानसिक रसायन में घुलता जा रहा है—आस-पास जो कुछ हो रहा है, वह सच नहीं है। वह कहीं भीतर से न छूता है, न छीलता है। जैसे आप एक गुब्बारे में बन्द हों, और सब कुछ उसके पार होता हुआ लगे! फिरोज़ाबाद में सदी की सबसे बड़ी दुर्घटना हो गई। कालिन्दी एक्सप्रेस और पुरुषोत्तम सुपरफास्ट टकरा गईं। सरकार सवा चार सौ मृत बताती है, अख़बार पाँच सौ। निश्चय ही हज़ार से ऊपर रहे होंगे। घायल तो शायद दो-तीन हज़ार। लगा ही नहीं कि यह सब हमारे देश में दिल्ली से दो सौ किलोमीटर के भीतर ही हुआ है, न उसकी व्यथा-चेतना का हिस्सा बनी, न मौत। अखबारों और टी.वी. में रोज़ देखकर लगता है मानो यह सब भी किसी फिल्म में ही घटित हुआ है। दृश्य-मीडिया किस तेज़ी से हर घटित को अनरीयल बना रहा है! यथार्थ तसवीरों में तब्दील होता है और तसवीरें ज़िन्दगी की सचाई बनती हैं। पच्चीस-तीस साल पहले यह कितना बड़ा हादसा होता—स्वयं सेवी संस्थाएँ दौड़तीं—लोग वालेन्टियरों में नाम लिखाते, उनकी मदद के लिए अपीलें की जाती। मगर अब लगता है सरकार का काम है, करेगी। मुआवज़े, दवा-दारू सभी कुछ उनका जिम्मा है। दिल्ली में वही सेमिनार, वही पार्टियाँ, वही राजनीतिक उथल-पुथल, हमारी वही दारू पार्टियाँ और अपने जन्मदिन को सदी का सबसे महत्त्वपूर्ण मानने की बेवकूफ़ाना भ्रान्ति...

5.9.95

उस दिन (28 अगस्त) को सारी उत्सुकता, प्रतीक्षा का अन्त हुआ एक छोटी-सी पार्टी में। घर पर ही आ गए थे सब, लालाजी, रामशरण जोशी, रवीन्द्र त्रिपाठी, श्रीनन्द, सीमा, वीरेन्द्र जैन, महेश दर्पण और हरिनारायण। 'अभी दिल्ली दूर है' किताब मैंने समर्पित की है लालाजी को। किताब दी तो वह भावुक हो आया। मैंने बताया कि लालाजी से मेरी मित्रता 66-67 की है—लगभग सत्ताईस-अट्ठाइस। तब से ही लग रहा है कि मैंने सच ही कहा था 'सान्ध्य टाइम्स' के इण्टरव्यू में कि मेरी मित्रताएँ लम्बी हैं और दुश्मनी के लायक मैं किसी को समझता नहीं हूँ। मगर जन्मदिन का तनाव 'देखें, आज क्या विशेष होता है' का भाव गहरी निरपेक्ष उदासी तक लाकर छोड़ गया। अब क्या होना है?

होने को तो ज़िन्दगी की महत्त्वपूर्ण घटना ही है, टिंकू माँ बन गई—यानी मैं नाना। बेटी हुई है जिसका नाम पहले ही इन लोगों ने 'मायरा' रखा है। राजस्थानी में मायका। ग्रेटर कैलाश के हलवेशिया क्लिनिक में—2 सितम्बर को। दिनेश का पूरा परिवार आया है—दोनों बहनें, दस साल बाद परिवार बढ़ा है। स्वाभाविक है कि बेहद खुश हैं। पता नहीं, मुझे क्यों नहीं लगता कि 'कुछ' हुआ है? वंश-वेलिका बढ़ना या ऐसा ही। बल्कि आश्चर्य दूसरों के उत्साह और भावावेश पर होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मन्नू ने बताया कि खबर सुनते ही दिनेश अपनी माँ से लिपटकर बाकायदा रोया। मैं जैसे इस सबसे बाहर खड़ा होकर किसी दूसरे नक्षत्र से आए दर्शक की तरह देखता हूँ। जो बातें शर्म, ग्लानि, रहस्यमयता और संकेतों में होती हैं, उनका खुला विवेचन कहीं सौन्दर्यबोध को धक्का देता है। बच्ची पौने आठ पौंड की है। टिंकू बताती थी किस तरह पेट में हाथ-पाँव चलाती है या ये लोग बातें कर रहे थे कि नीचे सरक ही नहीं रही थी, न दर्द हो रहे थे। इंजेक्शन देकर दर्द पैदा किए गए। कहीं कुछ अटक गया था इसलिए सिजेरियन किया गया। साढ़े तीन बजे दिन को इतने बजकर इतने मिनट पर बच्चा बाहर आया। कितने इन्वॉल्वमेंट के साथ ये बातें होती हैं! मन होता है, ये सब बातें इस तरह न हों तो अच्छा है। मगर शायद हर औरत के अपने ऐसे ही अनुभव हैं और उसे बताने का उबाल है। 'जन्म' के साथ औरतें सचमुच कितनी एकाकार होती हैं! उस समय न कोई बेटी होती है, न बहन और माँ। जन्मदात्री होती है और होता है हर औरत का साधारणीकरण, मगर इतनी बड़ी और असाधारण घटना को इतने सहज ढंग से निस्संकोच बातचीत का विषय बना लेना चकित नहीं करता? जो लड़की, बच्चा होने की किसी भी प्रक्रिया का ज़िक्र सुनकर शर्म से दुहरी हो जाती है, वही कितने निस्संकोच भाव से उस पर बातें करने लगती है! शायद वही सहज और स्वाभाविक है। गाँठ मेरे ही भीतर है कि मुझे सब बहुत अनैस्थैटिक लगता है। मूल बात यह है कि मेरे संस्कारों में ही कहीं कुछ ऐसा गड़बड़ है कि मैं कमर से ऊपर की रूमानी औरत को कमर से नीचे की वास्तविक औरत से जोड़ नहीं पाता—या लगभग स्वीकार नहीं कर पाता। यहाँ तक कि जब कोई औरत मेंसिस, ब्लीडिंग या दूसरी ऐसी बात करती है तो धक्का लगता है। शायद मेरे दिमाग में उसके प्रजनन के अंग, उन पर बातें जुगुप्साजनक, गोपनीय और सोच से बाहर है। आज भी योनि मेरे दिमाग में औरत का सबसे अस्वीकार्य अंग है। क्यों है यह सब?

1.1.96

साल का पहला दिन है और सुबह के 6.12 बज रहे हैं। मयूर विहार का फ्लैट—ड्राइंग रूम में सोए हैं वेद कवि सुधीर और सामने कमरे में किशन...पाँच बजे उठकर इधर आ गया था—दो कहानियाँ सन्तोष चौबे और प्रेमपाल शर्मा की पढ़ीं। अब मंजूर एहतेशाम का उपन्यास 'दास्ताने लापता' पढ़ना शुरू किया है।

पहली बात जो मन में आ रही है, वह है कि मैं शायद दूसरे की कमियों और सीमाओं को क्षमा नहीं कर पाता। आख़िर विष्णु प्रभाकर, रामदरश मिश्र, गिरिराज किशोर, गोविन्द मिश्र या कोई और ये एक खास मीडिया क्रिटी से ऊपर नहीं उठ पाते तो मुझे गुस्सा आता है कि ये इतने आत्मतुष्ट, स्मग क्यों हैं? क्यों नहीं अपने एकान्त में अपने-आपको लताड़ते और ऊपर उठने की कोशिश करते? क्यों यह विश्वास किए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चले जा रहे हैं कि ये जो कुछ लिख रहे हैं, वह सब महान, अमर, शाश्वत इत्यादि हैं? तिकड़मों या किसी और तरह इन्हें पुरस्कार, सम्मान इत्यादि मिलते हैं तो क्यों ये भीतर से शर्म, संकोच और ग्लानि महसूस नहीं करते? मैं खुद जानता हूँ कि मैं शायद मीडियॉकर से कुछ ऊपर हूँ और हमेशा अपने लेखन को लेकर हीनताबोध से ग्रस्त रहता हूँ कि मेरी तैयारी कुछ और ठोस होती, मेरी याददाश्त बेहतर होती और मुझे एकाग्र हो सकने का और मौका मिलता तो शायद मैं कुछ 'काम' का लिखता। अभी तो बिल्कुल-बिल्कुल काम का नहीं है—और आगे जाकर कोई याद करने नहीं जा रहा। मगर अपने-आपको धिक्कारता और लड़ता तो हूँ। महीनों अपने लिखे पर एक शब्द नहीं बोलता। लोग सम्मान, प्रशंसा करते हैं तो एक सफल अभिनेता बने रहने का अहसास रहता है, सालों को पता ही नहीं कि मैं भीतर से कितना खोखला हूँ। मन होता है कि अभी सारा मेकअप उतार कर असलियत उजागर कर दूँ।

शुरू से 'हंस' के साथ रहनेवाले हरिनारायण इस वर्ष से अलग हो गए। अपना 'कथादेश' निकालेंगे। नया प्रबन्ध करना है। पता नहीं क्यों, मैं बिल्कुल भी विचलित या चिन्तित नहीं हूँ।

28.8.96

फिर वही जन्मदिन और फिर वही मयूर विहार का फ्लैट। कल ही शिवकुमार शिव गया है। आज रक्षाबन्धन भी है। अभी भी सोचता हूँ कि शायद मन्नू बुलाएगी। आज दफ्तर बन्द है। अभी किशन राखी बँधवाने बीना के यहाँ दिलशाद गार्डन जाएगा। दस-बारह तक लौटेगा। इस सारे साल को मैं कैसे याद करना चाहूँगा तो लगता है, आज पेट साफ हुआ, आज नहीं का मानसिक तनाव ही स्थायी रहा। घटा तो इस वर्ष भी बहुत कुछ—अभी पन्द्रह अगस्त को पटना में जाकर मैंने पुरस्कार लिया—लालू से। हंगामा पहले से ही था—आज तक अखबारों में चल रहा है। पटना के तो सारे अखबार भरे पड़े हैं। हालाँकि मैंने बार-बार कहा है कि मैं ये पुरस्कार 'हंस' के लिए ले रहा हूँ। मगर ले तो रहा हूँ। इतना विवाद तो शायद पूरी ज़िन्दगी में कभी नहीं उठा। मुद्दा मेरे पुरस्कार लेने का तो था ही, उसमें आ जुड़ा बथानी टोला का नरसंहार। बिहार में रणवीर सेना ने बथानी टोला में 11 जुलाई को बीस-बाईस हरिजनों-मुसलमानों को क्रूरता से मार डाला। 13 अगस्त को रामजी राय का पटना से फोन आया कि इस नरसंहार के विरोध में मुझे अस्वीकार कर देना चाहिए यह सम्मान। नामवर से लेकर अनेक लोगों से मैंने बात की। डॉ. अवधेश नामक एक सज्जन मिलने भी आए गोरखपुर में। प्रेमचंद जयन्ती पर जमा हुए लोगों के हस्ताक्षर थे, जिसमें इस पुरस्कार का विरोध था। नामवर ने कहा भी और अगले दिन जनसत्ता में बड़ी टिप्पणी भी छपी। नामवर इत्यादि ने कहा कि हमने हस्ताक्षर बथानी टोला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को लेकर बिहार सरकार के विरोध में हस्ताक्षर किए थे, पुरस्कार के सम्बन्ध में नहीं। रामजी राय के फोन मुझे, राजकिशोर, नामवर और मैनेजर पाण्डेय को भी पहुँचे थे—लम्बी-लम्बी बहसों वाले। साथ में यह आग्रह भी कि यह एक ऐतिहासिक क्षण होगा और आनेवाली पीढ़ियाँ आप पर गर्व करेंगी। अगले दिन डॉ. अवधेश नाम के एक साहब जन-संस्कृति मंच की ओर से आए भी। मेरा कहना यही था कि मुझे यह पुरस्कार स्वीकार नहीं करना चाहिए। इस निर्णय पर पहुँचने में आपको एक महीना लगा क्योंकि घटना 11 जुलाई की है और आज 14 अगस्त है। अब आप घंटे भर में मुझसे फैसला चाहते हैं। यही बात दस-पन्द्रह दिन पहले होती और हम लोकतांत्रिक ढंग से कोई निर्णय करते—हो सकता है, तब फैसला बदला जाता। अब सम्भव नहीं है। यह एक आदमी की ब्रेनबेव है। फिर साहित्यकार को आप बदलते राजनीतिक फैसलों से क्यों चलाना चाहते हैं? कल तक आप लालू से बातें कर रहे थे, कल आप समता से, जनता से तालमेल करेंगे—लेखक क्या करे? यही बात मैंने वहाँ कही भी। 15 को मैं और राजकिशोर सुबह प्लेन से पटना पहुँचे और वहाँ वही हुआ जो मैं नहीं चाहता था। सम्मान लालूजी के ही हाथ से लेना पड़ा और ड्राफ्ट भी 'हंस' के नाम से नहीं, मेरे ही नाम से बना। मंच पर सारे राजनेता, अफसर बैठे थे, हम लोग नीचे। हालाँकि मुझे सुनने के लिए हॉल बुरी तरह भरा था। आत्म-प्रशंसा का मारा हुआ महेन्द्र यादव अपने आक़ाओं को प्रसन्न करने में लगा था। बहरहाल, बहुत प्रसन्नता नहीं हुई जाकर। वहाँ मैंने कहा भी और सितम्बर के सम्पादकीय में विस्तार से लिखा भी है। अभी भी मन में यही आ रहा है कि नहीं भी लेता तो क्या था? इस दाग़ से तो बच जाता।

धोखा सचमुच कृष्णाजी ने दिया। जाने को तैयार हो गई थीं। टिकट भी बन गया था, मगर ऐन समय पर गईं ही नहीं। तबीयत खराब है के बहाने रुक गईं, जातीं तो एक बहुत बड़े धर्मसंकट से बच जाता। पुरस्कार मुझे उन्हीं के हाथ से लेना था। कल राखी भी थी—सुमन, नन्नी आए थे। शाम को दिनेश, टिंकू, मन्नू, मायरा—सभी आए थे। जे.पी. के साथ बैठकर पीते रहे। रात को आया रवीन्द्र त्रिपाठी।

23.3.97, होली

इधर डायरी लिखना बिल्कुल बन्द रहा। कुछ था ही नहीं। फिर पिछले दिनों डायरी, लेख, टिप्पणियाँ सब एक ही जगह चलता रहा। लगता है कि या तो भीतर झाँकने की फुरसत ही नहीं मिली या फिर ज़रूरत नहीं समझी गई। महीने में एक 'धाँसू' सम्पादकीय लिखना ही जैसे एकमात्र बोझ रह गया। हालाँकि दबाव ज़रूर बना रहा कि अब मुझे उपन्यास को रिवाइज़ कर लेना चाहिए। सन् '67-'68 का उपन्यास अभी भी अधूरा पड़ा है। इस बार 'स्त्री आरक्षण' पर जैसे-जैसे सम्पादकीय पेलकर मन हुआ कि पुरानी डायरियाँ देखी जाएँ। 'अक्षर' से पिछली डायरियाँ उठा लाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच हैं और उनमें काफी लिखा गया है। कल सारे दिन उन्हीं में लगा रहा। एक निहायत बचकाना, अधकचरा उपन्यास भी है। शुरू करने की तारीख पड़ी है—7-3-46 और समाप्त करने की—22-8-46—कुछ हाथ के लिखे 406 पृष्ठ। शायद इतना ही बड़ा दूसरा उपन्यास भी है और वह भी तभी लिखा गया होगा। दोनों ही निहायत बेवक़ूफ़ी के और अति भावुक। माना कि तब उम्र कुल 16-17 की रही होगी। मगर भाषा, भाव कुछ भी तो ऐसा नहीं है कि विशेष कहा जा सके। कई बार मन हुआ कि नष्ट कर दिये जाएँ दोनों। मगर न हिम्मत होती है, न मन। बाद में हो सकता है कोई उत्साही व्यक्ति निकालकर छपवाने की बात सोचे। चाहूँगा कि न ही छपे। कुछ बातें ज़रूर ध्यान देने की हैं। अद्‌भुत लगन थी, लगभग रोज़ लिखने की। समझ का हाल यह है कि हिन्दुत्व और राष्ट्रीयता एक है। ब्रिलियेंट, क्रान्तिकारी, मेधावी पात्र बंगाली हैं। चचेरी बहनें ही प्रच्छन्न प्रेमिकाएँ हैं और नायक शरतचन्द्र के देवदास की तरह आत्म बलिदानी और आत्महंता है। यह समझना मुश्किल है कि उपन्यास उन बहन-छाप प्रेमिकाओं के लिए संदेश के रूप में लिखा गया है या राष्ट्रीय भावनाओं के लिए? नायक या पात्रों को बौद्धिक आदर्शवादी युवा होने का विश्वास है और बहनें भी ऐसा ही समझती हैं—मगर सारे चित्रण बहसें या हरकतें निहायत बेवक़ूफ़ाना लगते हैं। कुछ भी तो नया या अलग नहीं है।

हाँ, एक बात ज़रूर है कि उस समय का सारा संवेदनशील प्रसिद्ध युवा जिस मानसिकता में जीता था या जो भी उसकी बनावट थी, उसका ईमानदार दस्तावेज़ ज़रूर है। हम सब निम्न मध्यवर्गीय युवक उन्हीं मन:स्थितियों और परिस्थितियों से गुज़र कर आए हैं। साधारण शिक्षित परिवार ज़रूर है, लेकिन सभी की आकांक्षाएँ और प्रयास वही मध्यवर्गीय हैं—बी.ए., एम.ए. करो और नौकरी से लग जाओ। मुझे याद है तब हमारे यहाँ या तो राष्ट्रीय भावनाओं वाले हलके-फुलके उपन्यास आते थे। हम खुद रॉबर्ट ब्लेक या सैक्शन ब्लेक के उपन्यास पढ़ते थे या 'दीदी' देवदूत और बाल-सखा—या कल्याण। लड़कियाँ स्त्री-सुबोधिनी जैसी पुस्तकें। सब मिलाकर न वैसा बौद्धिक वातावरण था, न संस्कार। ऐसे में मेरा लिखते चले जाना लगभग एक अकेली और निहायत निजी लड़ाई थी। झाँसी और बाद में आगरा में शायद ऐसे तीन उपन्यास लिखे थे। अभी तो सिर्फ दो हैं। उससे पहले सुरीर में आठ-दस खंड 'देवगिरि' नाम के तिलिस्मी उपन्यास के थे, जिन्हें नष्ट कर दिया। तब क्या मैं बारह-तेरह की उम्र से ही लिखने लगा था? अजीब बात है कि पचास-पचपन सालों में आठ-दस हज़ार पन्नों के बाद भी लगता है कि 'अपना' तो कुछ भी नहीं लिखा। सारे पैटर्न दूसरों के ही सैट किए हुए हैं। उस समय वही सब था जो पढ़ता-सोचता था और आज भी वही है। उस साँचे से बाहर कहाँ निकला? ऐसा कहाँ और क्या लिखा है जो सिर्फ मेरा था, मेरी ज़िन्दगी था, मेरा अपना सोचा था? जब कवित्त-सवैयों में सत्यनारायण की कथा लिखी थी, तब भी मौलिक नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद थोड़ी-बहुत सचाई रही होगी उन कविताओं में जो मास्टर साहब यानी पंडित रामस्वरूप शर्मा की प्रशस्ति में लिखी थीं या परसा चौकीदार और केशी महाराज का मज़ाक उड़ाते हुए बनाई थीं। याद है, परसा लगभग अच्छा था और एक साँवली-सी लड़की खरीद लाया था। शहर की थी और उलटे-पल्ले की सूती साड़ी (या धोती) पहनती थी, खड़ी बोली बोलती थी। अस्पताल में सबके आकर्षण का केन्द्र थी और सबकी निगाहें उस पर थी। काफी कुछ मामला पटा लिया था, चुन्नी लाल रसधारियों के परिवार के किशोरीलाल राम के युवक ने। तीस-पैंतीस के होंगे। मुझे अभी भी वह दृश्य याद है कि अन्धे परसा ने पीछे से उन्हें कमर से पकड़ा हुआ था और धृतराष्ट्र जैसी पकड़ रही होगी कि किशोरीलाल चीख-चिल्ला रहे थे कि परसा मार डालेगा—अरे कोई छुड़ाओ...बहरहाल, पचास साल में सिर्फ एक ही बात हुई है कि पहले प्रभाव बहुत सीधे-सीधे थे, फिर उनसे निकलकर अपनी बात, अपने अनुभवों को कथा-रूप देने का सिलसिला शुरू हुआ। छोटी-मोटी कहानियों को 'सारा आकाश' से। वहाँ मेरे पास आस-पास की और अपनी ज़िन्दगी थी।

इधर दस-बीस साल में जो वैचारिक लिखा है, उसके प्रभाव और स्रोत इतने संश्लिष्ट और मिश्रित हैं कि उनके उद्‌गम खुद मुझे नहीं मालूम। चूँकि समस्याएँ और मसले सीधे-सीधे अपने हैं, इसलिए 'नया' लगता है। यह साली मौलिकता भी कितना बड़ा पाखंड है। अपने से बाहर निकलकर देखो तो औरों की हालत मुझसे भी बुरी है। बहरहाल, अभी तो फिर वापस रख लिया है, कभी मौक़ा मिला तो इस पर शायद काम हो...पुरानी चीज़ें देखते, उलटते-पुलटते हालत उस बुढ़िया जैसी होती है जो कबाड़ा छाँटने के इरादे से पुराना बक्सा खोलता है, गले-फटे, पुराने कपड़े, चिथड़े निकालती, फिर एक-एक के साथ जुड़ी स्मृतियों को दुबारा जीती हुई सभी कुछ उसी तरह वापस रख देती।

कल रविवार था और सारा दिन अतीत-यात्रा में बीता। डायरियाँ थीं, पाँच—खचाखच भरी हुई। पहले की मालूम नहीं कहाँ हैं—ये अक्तूबर 20-1958 से शुरू होती हैं—और दिल्ली आने के बाद लगभग 1988 के अन्त तक की है। लगभग 30 वर्ष। लगातार नहीं हैं। जो सबसे ज़्यादा स्ट्राइकिंग है वह यह कि हैंडराइटिंग पिछले बीस वर्षों में बेहद ही इम्प्रैसिव है—शुरू में अक्षर कच्चे हैं, फिर जब सधे हैं तो इतने बारीक हो गए हैं कि उन्हें पढ़ने में शायद मैग्नीफाइंग ग्लास लगाना पड़े। आश्चर्य होता है, कैसे मैं इतने बारीक अक्षरों में पन्ने-दर-पन्ने भरता चला गया। फिर जब से अच्छे चिकने काग़ज़ की डायरियाँ शुरू कीं तो अक्षर आश्चर्यजनक रूप से साफ-सुथरे, सुन्दर और पठनीय हैं। इन दैनंदिन डायरियों के अलावा, आधे-अधूरे उपन्यास, कहानियाँ; और दूसरे लेखन को देखकर लगता तो है क़ि दिन बेकार शायद नहीं गँवाए हैं, हालाँकि हर जगह न लिखने पर अपने को धिक्कारने और समय बेकार खोने को ही रोया गया है। पढ़ते हुए लगता है कि डायरियाँ काफी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंडन और रोज़मर्रापने से भरी हुई हैं—अनावश्यक वर्णन और भावुक बखान पन्ने-दर-पन्ने चले गए हैं। अक्सर आस-पास के दोस्त परिचितों को लेकर रि-एक्शंस हैं, एक गलत समझे जानेवाले 'निष्पाप' आदमी के शहीदाना आत्मकथन। कहीं विमल कश्यप नाम की उस महिला को लेकर ईर्ष्यालु टिप्पणियाँ हैं जिसे सत्येन्द्र शरत ने मेरे पास कलकत्ता रहने के लिए भेजा था और जो पहले चन्दर या फिर औरों के साथ घनिष्ठ होकर अपना भविष्य खोज रही थीं। चन्दर लगभग एक विलेन की तरह है जो मेरा समय, पैसा और परिचितों के बीच गलतफ़हमियाँ पैदा करके मुझे यातना दे रहा है।

मैं आज भी यही सोचता हूँ कि जिस तरह विमल ने पहले मुझ में, मेरे लेखन, रहन-सहन, कमरे और कपड़ों के रख-रखाव में दिलचस्पी ली थी, उससे उसकी नीयत साफ थी। मगर मैं तो मन्नू, मीता और श्यामलता के बीच झूल रहा था। शायद इसी से वह विरक्त हो गई। बाद में तो खासी दूरी और रिक्तता आ गई थी। पूरे तीस साल डायरी के हर पन्ने पर मीता, मन्नू को लेकर तनाव, द्वन्द्व और अन्तरसंघर्ष ही भरा पड़ा है। उस समय हम लोग जिन यातनाओं, कष्टों से गुजरे हैं, उनको पढ़-पढ़कर आज लगता है कि क्या सचमुच वह सब इतना महत्त्वपूर्ण था कि इसमें इतने पन्ने भरते चले जाएँ? आधे से अधिक का तो कोई मतलब ही नहीं। सख्ती से सम्पादन किया जाए तो शायद दो-ढाई सौ पन्नों की एक सुगठित अन्तर्यात्रा बनाई जा सके। वैसे भावुकता, उल्लास और आत्मविश्लेषण के बहुत से क्षण भी रहे हैं। सन् '70 से एक पत्रिका निकालने की योजना को लेकर जिस तरह इस उस अफसर, नेता या पैसेवाले के पीछे मैं भागता रहा हूँ वह दयनीय, जुगुप्साजनक और लगभग अपमानजनक है। राकेश, कमलेश्वर को गालियाँ देते हुए चाहता मैं भी वही सब रहा हूँ, मगर आकांक्षा यही रही है कि सब कुछ अपने आप आए और सम्मानपूर्वक ऑफर किया जाए।

अपने को समझता चाहे जो रहूँ लेकिन कुल मिलाकर एक मीडियोकर की औसत ज़िन्दगी ही रही है जो यह चुनाव ही नहीं कर पाता कि उसे चाहिए क्या? अन्तर्द्वन्द्व और अन्तर्विरोध भी ऐसे जो कहीं बड़े सृजन तक नहीं ले जाते। यह उस समय के सारे मध्यवर्ग की ट्रैजेडी थी या सिर्फ मेरी? हाँ, एक ही बात ज़रूर सन्तोषजनक लगती है कि मेरी लड़ाई अपनी हीनता ग्रन्थियों से लड़ने की रही है—सारा संघर्ष उनके पार जाने का है। भयानक आर्थिक संकट के क्षण भी रहे हैं और भावनात्मक दवाबों के भी। उन्हीं के बीच उलटा-सीधा लेखन, आत्मावलोकन चलता रहा है। शायद इस दौरान किताबों ने ज़रूर बहुत बड़ा एस्केप दिया है। यह सारी अवधि मन्नू से निरन्तर दूर हटते जाने की अवधि भी रही है। उसी की परिणति है कि आज दो सालों से यह निर्वासन भोग रहा हूँ। अगर एक बार और अवसर मिलता तो किस तरह जीता मैं अपना जीवन...टिंकू और उसकी पीढ़ी के द्वन्द्व दूसरे रहे होंगे, मगर यह तय है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हमारी तरह खंडित और टूटी-बिसरी ज़िन्दगी, उन लोगों की नहीं है। हम लगभग आत्मनिर्वासन और आत्मनिष्कासित में जीनेवाले लोग रहे हैं।

25.3.97

यह बात सही है कि सारी डायरियों में बेहद विस्तार है, दुहराव है और लगभग आत्मग्रस्त धिक्कार है। तनाव, फ्रस्ट्रेशन्स, कुढ़न, ईर्ष्याएँ, ग़लत समझे जाने का शहीदी जस्टिफिकेशन है, कुंठा और हीनताभाव भरा है—मगर इस सबके पार जाने की तड़प है; और जो चीज़ कहीं नहीं है वह पराजय, हार जाने की टूटन या असफलताओं को अपने ऊपर हावी होने देना। बीच में एक पीरियड है जब मृत्यु की बहुत बातें लिखी हैं, मगर वह बढ़ती उम्र की अनिवार्य परिणति के रूप में है—'सब ठाठ पड़ा रह जाएगा, जब लाद चलेगा बंजारा' का भाव—'यह पुर पत्तन, यह यही बहुरि न देखो आय' की कचोट है। मगर समाधान के रूप में ईश्वर कहीं नहीं है। शायद जिजीविषा का कारण यही हो। अगर मेरे पास ईश्वर होता तो मैं हाथ-पाँव ढीले कर सब कुछ उसी पर छोड़ देता—न मेरा अपना कोई संकल्प होता, न निर्णय और न उदय, 'कबीर कूता रमिका' होकर रह जाता।

28.6.97

कल सुरेन्द्र प्रताप सिंह की अन्त्येष्टि थी। लोदी रोड श्मशान गृह में। दिनभर की उमस और भयानक गर्मी के बाद शाम को हलकी बूँदा-बाँदी थी, लोग सचमुच बहुत थे—राजनीति, संस्कृति, साहित्य और दूरदर्शनों के। वह हिन्दी का बहुत महत्त्वपूर्ण पत्रकार था। 'धर्मयुग' में सहायक की तरह काम करके कलकत्ता के 'रविवार' फिर दिल्ली राजेन्द्र माथुर के साथ 'नवभारत टाइम्स' का कार्यकारी सम्पादक, इंडिया टुडे और फिर सहारा का कार्यकारी सम्पादक। अब दो साल से दूरदर्शन के सबसे लोकप्रिय कार्यक्रम 'आजतक' का एंकर-पर्सन। अपनी प्रतिभा, प्रभाव और स्तरीयता के लिए उसे जो चतुर्दिक प्रतिष्ठा मिली, वह शायद हिन्दी-अंग्रेजी के किसी ही पत्रकार को मिली हो। मीडिया की सबसे तुनुक मिज़ाज खिच्चड़ और बंगालीवाद की मारी हुई बुढ़िया अमिता मलिक उसके इंटरव्युओं और 'आजतक' की टैक्नीकल एक्सीलेंस की भयानक प्रशंसिका थी। वह बेहद अनप्रिटेंशस अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का पत्रकार था। कल की भीड़ देखकर लगा कि वह अपने अनेक प्रोमाइज़िंग तेवर के लिए युवाओं में ज़्यादा लोकप्रिय था। 'उपहार' सिनेमा की अग्नि दुर्घटना पर उसने विस्तृत कवरेज दी थी। उसी सिलसिले में उसने वहाँ दुर्घटना के तत्काल बाद अनेक घंटे बिताए थे और वह सब अपनी आँखों से देखकर एडिटिंग टेबल पर फूट-फूटकर रोया था। शायद वही उसका आखिरी प्रोग्राम था। फिर ब्रेन हैमरेज में कोमा में चला गया—दस दिन अपोलो में रहा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी नहीं लौटा। शाम को मैं बी.बी.सी., स्टार, ज़ी.टीवी. और दूरदर्शन पर उसको दी जानेवाली श्रद्धांजलियाँ देखता रहा और सेंस ऑफ लॉस अधिक गहरा होता चला गया। उम्र अधिक नहीं थी, कुल 49 वर्ष। भीतर से विश्वास नहीं है कि सिर्फ 'उपहार ट्रेजेडी' के धक्के से ही उसे ब्रेन हैमरेज हुआ। सन्तान नहीं थी और 'उत्कृष्टता' की ज़िद में टॉप बने रहने का संघर्ष, जबावदेही और तनाव तो बने ही रहते होंगे। मुलाक़ातें अनेक हुईं लेकिन लम्बी बैठक एक या दो से अधिक नहीं हुई। मुझे लगता है, कारण कुछ और भी रहे होंगे और सबका इकट्ठा प्रभाव इस उपहार में हुआ। मालूम नहीं, पहले से कुछ शिकायत थी या नहीं। तब से ही लग रहा है कि हिन्दी का पत्रकारिता जगत और दिल्ली की दूरदर्शनी दुनिया ने सचमुच एक केन्द्रीय व्यक्ति खो दिया है।

लोदी रोड श्मशान-गृह में कल उसके शव को लेकर तरह-तरह के कर्मकांड हो रहे थे। आर्य समाजी रीति-रिवाजों से श्लोकों, फूलों, हवन सामग्री की गन्ध वातावरण में व्याप्त थी। वह दूसरों के हाथों में था और वे जो चाहे नहीं कर रहे थे—वे एक परम्परा और संस्कार निभा रहे थे। क्या उसने यह सब चाहा होगा? जीवित होता तो क्या इस सबका समर्थन करता? पता नहीं] उसे इस सबमें विश्वास था या नहीं! मुझे तो बिल्कुल नहीं है। तब क्या मेरे साथ भी वे यही करेंगे? मन तो होता है कि कहूँ कि बिजलीघर में न कोई घड़ा-फोड़ी कर्मकांड होगा, न श्लोकबाज़ी। बस, लोग चुपचाप आएँ और चले जाएँ। मगर फिर लगा कि वह मरना तो बहुत फीका, फुप्स और नॉन-इवेंट होकर रह जाएगा। यह सब तमाशा न हो तो मरने का सारा मज़ा ही जाता रहे। कुछ तो धूम-धड़का हो कि लोग जाने और मानें कि हाँ, कोई मरा है। एक साहित्यिक व्यक्तित्व की आखिरी पेशकश! मास्टर प्रस्तुति...!

तब क्या मरना यही होता है कि आप दूसरों के या और आगे बढ़कर कहूँ तो परम्परा और कर्मकांड के हाथों में सौंप दिये जाएँ? तब क्या समय और इतिहास से लोहा लेते रहना ही 'जीवन' और 'जीवन्त' होने की निशानी है? शायद मरने का यही लक्षण है कि परम्परा और परिवेश आपके ऊपर हावी हो जाएँ—वे ही आपके अस्तित्व और व्यक्तित्व को निर्धारित करें। इतिहास में वैसे हों या पुराणों में, जब वे समाज-संस्कृति के नाम पर आपके सूत्र-संचालक होते हैं तो वे आपको 'शव' मानकर चलते हैं। तब का इस सबका प्रतिरोध और विरोध ही जीवन है? दूसरे आपको परिवेश या सिर्फ एक सिचुएशन में बदल डालते हैं। फिर आप 'अहं' का विसर्जन जैसे गरिमामय शब्दों में उसका जस्टीफिकेशन और महिमान्वीकरण करते हुए अपने को भले ही उच्चतर आत्मा का नाम देते रहें। जीवन्त और खुद्दार आदमी की तरह इस सबको, दूसरों के हाथों की कठपुतली बनने को यानी शास्त्रों, कर्मकांडों और परम्पराओं के बुलडोज़रों के आगे हथियार डालने से इनकार कर दें—या फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें बहलाने, नए अर्थ देने के संघर्ष का हिस्सा बनें। एक जगह वह व्यक्तिगत विद्रोही होता है तो दूसरी जगह सामाजिक क्रान्तिकारी।

शायद इसी महीने के प्रारम्भ में सरयू के पिता की मृत्यु हुई। उस परिवार में सिर्फ शर्माजी की चलती है और वे परम कर्मकांडी ब्राह्मण हैं। एक शाम बैठने के लिए हम भी गए—ब्रजेश के घर उदय पार्क...वहाँ पंडब्बी बीच में बैठे गरुड़पुराण से मृत्यु के विवरण पढ़कर सुना रहे थे। जीवन से वैराग्य पैदा करने की दृष्टि से सांसारिक स्वार्थ और आदमी के अकेले होने के विस्तार के बाद यमराज और नरक के वर्णन। यमराज जीव को किस तरह कुत्ते की तरह बाँधकर ले जाएगा और फिर किस तरह उसे अपने किए पापों के लिए यातनाएँ दी जाएँगी। बाज़ारों में जो नरक यातनाओं के चित्र मिलते हैं, उसी सबका शाब्दिक विस्तार था। सुनकर मेरे मुँह से निकला कि इस लोमहर्षक और बीभत्स वर्णन को सुनने के बाद तो अपना मरने का सारा उत्साह ही जाता रहा...

काश, दूसरों के इस सर्वभक्षी सपाटीकरण रेजिमेंटेशन के खिलाफ ही आदमी मृत्यु से विद्रोह कर सकता! सारी फासीवादी व्यवस्थाएँ आदमी के अपने व्यक्तित्व, विवेक और विरोध को इसी तरह मारती हैं और फिर आदमी ही उस सबके खिलाफ खड़ा होता है। सकल सिर्फ उन मुर्दों का है जो व्यवस्था का हिस्सा बन गए हैं—परम तुष्ट ही नहीं, जीवन की सार्थकता उन्हीं सड़ांध भरे श्लोकों में तलाश करते हैं—आत्मिक शान्ति के नाम पर...

26.7.97

अपनी गाड़ी DDC-1911 मारुति पिछले दिनों शिवकुमार शिव, रिहंद ले गया। सत्तर हज़ार में बेच दी। गाड़ी 11 साल से मेरे पास थी और किशन से पहले उसे गोपाल ने चलाया था (उसी शिव से दस हज़ार और आने हैं) कल 'अक्षर' के नाम से जेन-1511 आ गई। आसमानी रंग की है और मैं अभी तक स्वीकार नहीं कर पाया हूँ कि यह पौने चार लाख की गाड़ी मेरी है। कभी शायद सोचा भी नहीं था कि इतनी महँगी गाड़ी मेरी होगी। कल कम्पीटेंट में कनॉट प्लेस गए और दो घंटे में ले आए। अभी इसमें पाँच-सात हज़ार और लगने हैं। 'अक्षर' की बीना बोली कि इतने में तो एक फ्लैट आ जाता है। मन में अपराधबोध है—जैसे मारुति के समय था और अकेले बैठकर जाना गलत लगता था—जबकि दिल्ली में बसों के पीछे लटके पचासों लोग अपने-अपने गन्तव्यों को जाते रहते हैं। अभी भी एयरकंडीशंड गाड़ी में परम बुर्जुआ की तरह यात्रा करना अपराध लगता है। फिर सोचता हूँ कि सन् '64 से लेकर आज तक मैंने इस 'अक्षर' और 'हंस' के लिए चौबीस घंटों के हिसाब से तिल-तिलकर अपने को झोंका है। इन सैंतीस सालों में मैंने क्या इतना भी अर्जित नहीं किया कि आराम से चल सकूँ? इस उम्र में इतना अधिकार तो मुझे होना ही चाहिए। क्या यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब झूठा रैशनलाइज़ेशन नहीं है ? किन आदर्शों से हम शुरू हुए थे और कहाँ पहुँचे ? आज मेरे पास क्या नहीं है ? लगभग डेढ़ लाख के यूटीआई, ढाई लाख के विजया बैंक में फिक्स्ड-डिपॉजिट, साढ़े छह लाख उमराव सिंह चौरड़िया की प्रकाश कम्पनी में जमा। पिछले तीन-चार साल से लगातार आठ हज़ार महीना का इंटरेस्ट, चार-पाँच हज़ार अक्षर से लेना। यह सब इधर छह-सात साल में कैसे हो गया ? आज भी आराम से रहता हूँ, लगभग छह-सात हज़ार हर महीने खर्च होते ही हैं खाने और दूसरी चीज़ों में। अब शायद यह बढ़ती हुई उम्र और असुरक्षाबोध ही है, वर्ना सचमुच न मैंने कभी वर्तमान की बात सोची, न भविष्य की। मगर कुछ समय को छोड़कर आर्थिक अभाव भी नहीं देखा—आर्थिक दबावों में हमेशा ही बना रहा।

8.8.97

फिर वही 28 अगस्त और वही मयूर विहार। सुबह के पाँच बजे और मुझे लगता है—Fad-up हो गया हूँ। क्यों यह तारीख इतनी जल्दी आती है और हर साल उम्र को घटा जाती है ? मरने की बात अभी भी नहीं सोचता मगर हर चीज़ खरीदते या रखते वक्त यही खयाल आता है कि 'पीछे से यह भी निकलेगा' बाद मरने के मेरे घर से यह, 'सामां निकला' इन कपड़ों, चीज़ों, कमरे का क्या होगा बाद में। इतने दिनों में कभी गम्भीर रूप से बीमार नहीं हुआ—किसी दिन 'पकड़ा' जाऊँगा तो क्या सचमुच नामवर की तरह दयनीय हो जाऊँगा ? यह साला मरने का रिवाज क्यों है ? आदमी अनन्त काल तक क्यों नहीं जी सकता ? युधिष्ठिर से यक्ष ने पूछा था, 'संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है ?' उन्होंने भी तो यही उत्तर दिया था कि आदमी दूसरों को रोज़ मरते देखता है और खुद जीता चला जाता है। उसे कभी खयाल भी नहीं आता कि एक दिन उसे भी मरना है' मुझे भी अभी मरना-वरना नहीं है। चलने दो, जब तक दुनिया का कारोबार चले...

याद नहीं है कि यह कब से हो रहा है, जन्मदिन पर मरने की ही बात याद आती है, क्योंकि अब भविष्य नहीं दिखाई देता है, साथ होता है सिर्फ़ अतीत—पीछे भेड़िए की तरह झपटता और मांस का एक टुकड़ा नोंच ले जाता। आगे भागते हुए 'चलो जो बचा है, वही ग़नीमत है' का अहसास छोड़ता। उस दिन मुन्ना (हेमेन्द्र) आया था—आगरा से। उसे अपनी फैक्टरी के लिए रुपया चाहिए इसलिए आगरे की सम्पत्ति से हिस्सा लेना है। भूपेन्द्र सत्येन्द्र से मिला। बता रहा था कि दोनों कितने बुड्ढे और दयनीय हो गए हैं। भूपेन्द्र गंजा हो गया है, दिखाई नहीं देता, टाँगें मुड़ गई हैं—लगता है, साल-सवा साल से ज़्यादा नहीं चलेगा। मालती नहीं थी, नागपुर गई थी। अकेला था और बेटी थी साथ। जसवन्त टाकीज़ की दुकानें तीनों बेच दी हैं और हमारी दुकानें, घर बेचकर दिल्ली आने की बात सोचता है। मैं जानता हूँ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद भूपेन्द्र भी जानता है कि मालती के सम्बन्ध भूपेन्द्र के दोस्त बालकिशन से रहे हैं। जब हम लोगों ने बँटवारे की कार्यवाही की थी तो सत्ते को देने के लिए रुपयों का प्रबन्ध और दूसरी सलाहें उसी ने दी थीं क्योंकि इधर गौतम था। ख़ैर, यही हाल सत्ते का है। आँखों से दिखाई नहीं देता। गन्दे, अनकबुहरि घर में पड़ा रहता है—हर चीज़ से बेहद मोह। गौतम साथ है, सो कभी लड़कर उसे भगा देता है और फिर बुला लेता है। दबाकर दस-बारह रोटियाँ खाता है। लगा, आगरे में होता तो क्या मेरा भी यही हाल होता?

लगता है, अब 'हंस' के दिन फिर रहे हैं। विशेषांक को लेकर बहुत उम्मीदें हैं कि विज्ञापन इत्यादि से इतना हो जाएगा कि सालभर बिना कष्ट के निकले। बड़ा हो गया है और दो हिस्सों में बाँटना है। टिंकू और मन्नू अपनी जगह हैं। मन्नू का शरीर साथ नहीं दे रहा, कभी साँस, कभी कनपटी का दर्द, कभी कुछ। घर में कुछ-न-कुछ बिगड़ता-खराब होता रहता है। काफी टेंशन में रहती है। उसे लेकर काफी चिन्ता है। टिंकू का शायद ठीक ही चल रहा है। मस्त बेटी मायरा है, अगला कुछ भी होता है। अगले महीने दिनेश की लन्दन में प्रदर्शनी है सो शायद दोनों ही महीने भर के लिए जाएँगे। मन्नू के सिवा 'परिवार' की ऐसी कोई चिन्ता नहीं है कि परेशानी हो। पता नहीं, एटीट्यूड है या स्थितियाँ कि परिवार जिस तरह कुछ मित्रों को आक्रान्त रखता है, वैसा मेरे साथ बिल्कुल नहीं है। मुझे अकेला होना शायद क़तई परेशान नहीं करता। लगता है, यही शायद मुझे सबसे अधिक सूट करता है। बस, किसी दिन 'मरे पड़े हैं' की तसवीर कभी-कभी कौंधती है। कोई कहता है—सब समेटो बाबा, तमाशा खत्म हो रहा है।

5.12.97

पिछले पन्द्रह दिनों से ज़िन्दगी अजीब हंगामों की गिरफ्त में आ गई है। संयोग ही कहा जाएगा कि इधर कुछ झटके नवम्बर में ही हुए हैं। हौज़खास छोड़कर मयूर विहार आना या नवम्बर में ही शादी होना—या कुछ महत्त्वपूर्ण चीज़ों का नवम्बर में लिखना—फिर इसी नवम्बर में अचानक 'प्रसार भारती' का सदस्य चुना जाना। चीज़ें जिस तरह विकसित हो रही हैं, उससे लगता है कि ज़िन्दगी का वह पैटर्न जो अब तक चला आ रहा था, एकदम बदल जाएगा। हो सकता है, ऐसा कुछ न हो...

हुआ यह कि इस 22 नवम्बर को शादी की वर्षगाँठ थी। अब न वैसा उत्साह रह गया है, न आशा। भीतर से यही मनाता हूँ कि यह कम्बख्त दिन अब आए ही नहीं; या यह रिचुअल जैसे-तैसे बीत जाए। टिंकू से पूछा कि क्या करना है तो उसने भी ठंडे ढंग से कह दिया कि जैसा भी आप ठीक समझें। फिर भी सोचा कि हौज़खास में मन्नू के साथ ही रहेंगे। शाम को वहाँ गए। तब तक कुछ नहीं हुआ था। सुबह जब अक्षर गए तो बीना ने बताया कि जयपाल रेड्डी के यहाँ से फोन आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सूचना मंत्री को मेरी याद क्यों आई ? फिर जस्टिस सावन्त के यहाँ से फोन आया कि आपको प्रसार भारती के सदस्य के रूप में मनोनीत किया गया है। कुछ जानकारियाँ ली गईं। सोचा होगा, कोई हिन्दी-समिति जैसा मामला। कूरियर से कुछ काग़ज़ आए। सच पूछें तो मुझे प्रसार भारती के बारे में जानकारियाँ ही नहीं थीं। इसीलिए जब हौज़खास गए तो मन्नू से शायद ज़िक्र भी नहीं किया। जो काग़ज़ भेजे गए थे उनमें सिर्फ इतना पूछा गया था कि प्रसारण-कौल जैसी किसी चीज़ से आपके या आपके परिवार के कोई सम्बन्ध हैं या नहीं। यानी व्यावसायिक हित। ज़ाहिर है नहीं थे और वही लिखकर प्रसार भारती बोर्ड के मेम्बर होने की स्वीकृति दे दी। अगले दिन नियुक्ति पत्र आ गया—छह-सात मेम्बर थे; चेयरमैन, निखिल चक्रवर्ती, एक्जीक्यूटिव मैंबर एस.एस. गिल, मेम्बर बी.जी. वर्गीज, आबिद हुसैन, रोमिला थापर, यू.एन. राव, मैं, पद्मनाभन इत्यादि। हम सब पार्ट-टाइम मेम्बर होंगे, गिल होल टाइम। इसके बाद से टेलिफोन, मिलनेवालों और बधाइयों—या अखबारों में आलोचना-प्रत्यालोचनाओं का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह आगे बढ़ता ही लग रहा है।

'प्रसार भारती'—बी.बी.सी. की तरह 'स्वायत्त' संस्था होने जा रही है—यानी रेडियो, टी.वी इत्यादि अब मिनिस्ट्री नहीं, 'प्रसार भारती' करेगी—राजनेताओं और मंत्रालय का कोई दखल नहीं होगा। यानी यही सबसे हाई-पावर कमेटी होगी। हज़ारों करोड़ का बजट है और दुनिया का सबसे बड़ा नेटवर्क है। मैं आज तक न तो समझ पा रहा हूँ और न अपने साथ रिकॉन्सायल कर पा रहा हूँ कि उस इतनी ऊँची कमेटी में मेरा नाम क्यों और कैसे आ गया ? मैंने तो सपने में भी नहीं सोचा था। ज़्यादा से ज़्यादा कल्पना की होगी तो राज्यसभा में जाने की। जहाँ सेक्रेटरी, चीफ सेक्रेटरी, एम्बैसडर जैसे लोगों को चुना गया है, वहाँ मैं ? हिन्दी ही नहीं, सारे भारतीय संचार-माध्यमों के नियंत्रण-नियोजन का मामला। सबसे सही व्यक्ति तो यहाँ नामवर होते। उनको धक्का भी शायद सबसे बड़ा लगा होगा।

पहले सोचा था, होगी कोई कमेटी-वमेटी। कभी-कभी चले जाया करेंगे। मगर अब धीरे-धीरे उलझता जा रहा हूँ। अरविन्द जैन जैसे कहते हैं कि लाल लाइट वाली गाड़ी होगी, ब्लैकमैट होगा। सुना है, मंडी हाउस में हमारे चैम्बर बनेंगे। गाड़ियाँ मिलेंगी। हो सकता है, निवास भी मिले। खैर, यह सब तो पार्ट-टाइम को क्या मिलेगा—हाँ, उधर कहीं रहने की व्यवस्था हो तो मुझे आपत्ति नहीं होगी। मयूर विहार से हटकर अपनी तरफ बढूँगा।

बहरहाल, चारों तरफ सनसनी है और वातावरण में एक उत्सुकता बनी है कि आगे क्या होता है। मुझे ही नहीं, शायद आस-पास किसी को अन्दाज़ा ही नहीं था कि छोटी-सी दिखाई देती जिस मछली में अचानक ही यह काँटा फँसा है, वह धीरे-धीरे किस ह्वेल मछली के रूप में अपना आकार ले रही है। बंगलौर, मद्रास,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम्बई, दिल्ली—सभी जगह से बधाइयों के पत्र आ रहे हैं। मगर इसी बीच एक और खतरनाक चीज़ भी उभर रही है—गिल ने झटके से कुछ ऐसे वक्तव्य जारी कर दिये हैं और ऐसे कदम उठा लिये हैं कि चारों तरफ त्राहिमाम हो रहा है। लोगों के तबादले, सिक्योरिटी हटा लेना, प्रोग्राम बन्द करना, बाहरी प्रोड्यूसरों को झटकना—इस सबसे अचानक प्रसार भारती विरोधी वातावरण बन गया है—। कोई लिख रहा है कि कम्यूनिस्ट आ गए हैं, कोई कहता है—गुजराल के चमचे हैं। कोई कहता है कि इन्हें मीडिया का कोई अनुभव ही नहीं है। इधर सुना है कि निखिल दा और गिल के बीच मतभेद हैं—गिल कहता है कि ये लोग सिर्फ शोभा की चीज़ हैं, असली काम तो मुझे करना है। बाकायदा पहली मीटिंग तो 10 दिसम्बर को है, शायद तब कुछ तसवीर साफ हो।

और इस सबमें 'हंस' का क्या हो, यह अलग और समानान्तर चिन्ता है।

3.1.98

लगता है, यह नया साल कुछ-न-कुछ और भी गुल खिलाकर रहेगा। केन्द्र में अचानक गुजराल की सरकार गिर गई और देश चुनाव की तैयारियाँ करने लगा। बी.जे.पी. जिस सुविचारित व्यवस्थित तैयारियों के साथ आ रही है; अखबार, रेडियो, दूरदर्शन, ब्यूरोकेसी, जुडिशियरी, विद्यार्थियों और शिक्षण संस्थाओं में जिस तरह बी.जे.पी. घुस गई है और अपना जाल उन्होंने चारों तरफ फैला लिया है, वैसी संगठनात्मक रणनीति आज शायद किसी पार्टी के पास नहीं है। रही होगी कभी कम्यूनिस्ट पार्टियों के पास। लगता है, अब केन्द्र में आने से इसे रोक कोई नहीं पाएगा। बाकायदा उतरती नहीं लगता, लेकिन उत्सुकता ज़रूर होती है कि मेरे जैसे व्यक्ति का ये लोग क्या करेंगे? अब तो प्रसार भारती ने और भी सामने कर दिया है।

जहाँ एक तरफ लगता है कि नया साल बहुत भाग-दौड़, मीटिंगों, सेमिनारों या प्रसार भारती की गतिविधियों में बीतेगा, वहीं वस्तुतः शायद पहली बार यह साल एक लेख लिखते हुए गुज़रा। अगला सम्पादकीय 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पूर्व राग'। हुआ यह कि रेडियो के डायरेक्टर जनरल ओ.पी. केजरीवाल ने अपनी एक किताब भेज दी—'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल'। कुछ और भी सामग्री थी। इस किताब ने मुझे 15-20 दिनों उलझाए रखा। एडवर्ड सईद का जवाब देते हुए केजरीवाल ने स्थापित किया कि ओरियेंट विज़न के विद्वान किसी साम्राज्यवादी षड्यंत्र के तहत नहीं—ज्ञान की खोज में यह सब कर रहे थे। मैंने एक तरह उसी का जवाब दिया था—और नए साल की डायरी लिखने के बजाय मैं उसी लेख के बीच में था। एक अतार्किक विश्वास ही सही, मन में लगा कि बाहरी गतिविधियों के बावजूद अपनी लेखन और सोच की दुनिया वही बनी रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये साल की सन्ध्या, यानी 31 दिसम्बर को हम हौज़खास में ही थे—मैं, नामवर, निर्मला जी और मन्नू। दस-साढ़े दस पर अपने-अपने घरों के लिए रवाना। नींद आ रही थी, इसलिए मैं सो गया। टी.वी. कार्यक्रम भी नहीं देखा।

प्रसार भारती की दूसरी मीटिंग 6-7 जनवरी को है। शायद इसमें कुछ ठोस बातें हो।

9.5.98

78-बी/1 हिन्दुस्तान टाइम्स एपार्टमेंट्स,
मयूर विहार, फेज-I

यानी फिर एक नया पता। महीने भर से जगह बदलने की भाग-दौड़ थी। केदार जान को लगे थे कि उन्होंने 78-ए बेच दिया है और मुझे हर हालत में उसे खाली कर देना है। कहा तो उन्होंने दो महीने पहले था—मगर मैं अनमने भाव से इधर-उधर देख रहा था। भीतर था कि अपने आप ही कुछ हो जाएगा। बदलना झंझट लगता था—कौन, कहाँ जाएगा दुनियाभर का सामान, किताबें और झाड़-झँखाड़ लेकर। मगर पिछले महीने शाम को अचानक आ गए केदार अपने बेटे को लेकर। बेटा दक्षिण दिल्ली में एस.डी.एम. है। तीन घंटे बैठे रहे। दो-एक मकानों की उधर कुछ सूचना थी—मगर कहीं बात नहीं बन रही थी। एक तो बिल्कुल बराबर वाला ही था। उन्होंने सुधीश पचौरी को लगा दिया था। वह भी काफी भाग-दौड़ कर रहा था। एक दिन यहाँ के दरबान लोकनाथ को लेकर हम लोग इधर-उधर काफी दौड़धूप करते रहे—मगर कहीं बात बनी नहीं। संयोग से ठीक उसी समय हरिप्रकाश त्यागी की शोकसभा थी। मैं जानता था कि मेरा वहाँ जाना बहुत ज़रूरी है, मगर लगा कि फ्लैट हाथ से निकल जाएगा तो फिर पता नहीं कब मिले। सुधीश साथ था। भीतर बहुत कचोट थी—मगर क्रूर तर्क था कि मरनेवाला तो गया—जो जीवित है, उन्हें अपनी समस्याओं से निपटना है।

अगले दिन सुधीश का फोन आया कि इसी हिन्दुस्तान-टाइम्स सोसायटी में एक फ्लैट, फर्स्ट फ्लोर पर खाली है और अगले दिन सुबह मैं मकान मालिक से आकर मिल लूँ। इधर-उधर देखकर लग गया कि जगह अब चार-साढ़े चार हज़ार महीने से कम नहीं मिलेगी। यह ग्राउंड नहीं, फर्स्ट था और किराया साढ़े पाँच। दो महीने का एडवान्स। सौदेबाज़ी का मौका नहीं था। दो दिनों में तय हो गया फ्लैट सुधीश जैसा ही है—यह उसने बताया। शुरू में लीज एक साल की जो आगे बढ़ा दी जाएगी। अगले दिन चाबी भी मिल गई। आकर देखा तो बुरा नहीं लगा। पिछले शनिवार यानी दो मई को सारे दिन सामान आता रहा। दो को ही लाल रत्नाकर यानी एक चित्रकार की प्रदर्शनी का उद्घाटन था, रवीन्द्र भवन में। मुझे ही करना था। बड़ी प्रदर्शनी थी। बाद में वहाँ से प्रेस क्लब गए—मैं, रवीन्द्र वर्मा, रवीन्द्र त्रिपाठी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल रत्नाकर और [illegible] के जगदीश यादव... बाद में वहीं महेश भारद्वाज और रामशरण जोशी भी आ गए। रात को इस नए फ्लैट में ही सोए। रविवार को नोएडा में मैत्रेयी की बेटी के क्लिनिक का उद्‌घाटन था। मारीका मोहिनी ले गई थी—किशन सामान जमाने में लग गया था।

इस प्रकार पिछले रविवार से मैं यही हूँ। सामान अभी पूरी तरह जमा नहीं है, मगर धीरे-धीरे व्यवस्था पा रहा है। किशन लगभग पूरी तरह लगा है। अभी तक तो काफी ज़िम्मेदारी निभा रहा है। अपने-आपसे अक्सर एक सवाल उठता है—क्या पिछला सब कुछ एकदम दिमाग से धुल-पुँछ गया है? उस फ्लैट की अब कोई बात याद नहीं आती। जैसे सब कुछ पिछले जन्म में हो। तीन साल वहाँ रहा हूँ। अच्छा-बुरा घटा है—ज़्यादातर स्मरणीय ही है—मगर वह सब कुछ बहुत दूर, किसी दूसरे के साथ घटित हुआ था। शायद इसका कारण यही है कि यह फ्लैट अच्छा है। कमरे दो ही हैं, मगर बने कॉम्पैक्ट ढंग से हैं। घुसते ही ड्राइंग डायनिंग रूम, फिर कमरे। दो बाथरूम। एक अटैच्ड, एक कॉमन। जिस कमरे के साथ बाथरूम जुड़ा है, उसका एक अलग दरवाज़ा भी है, मगर टॉयलेट इंडियन है यानी मुझे विदेशीवाला अलग ही चुनना पड़ा है। मगर यह कमरा बेहद खुला और हवादार है। सामने ही बहुत बड़ा सोसायटी का पार्क है, फिर डी.डी.ए. का, जहाँ खिड़की के साथ मैंने अपने पढ़ने-लिखने की मेज़ लगाई है। वह खिड़की भी लगभग एक पार्क की ओर ही खुलती है। अब तो पर्दे और ए.सी. दोनों लग गए हैं। शायद यह जगह इतनी अच्छी है कि पिछला कुछ भी याद नहीं आता। रुपए ज़रूर काफी देने पड़ेंगे—मगर उन्हें भी देखेंगे। बोझ जैसा कुछ भी नहीं लगता। सुधीश ने सचमुच इसमें काफी मदद की है।

पहले सोचा था कि शायद प्रसार भारती की ओर से कुछ मिलेगा—मगर न उसकी सम्भावना लगती है और जिस तरह प्रसार भारती विवादास्पद हो गई है, उसे देखते हुए मन भी नहीं करता। पिछले दो महीने से सारे अखबारों में प्रसार भारती ही छाई हुई है। दो-तीन मीटिंग हो चुकी हैं और साफ बात है कि मीटिंगों में हम चाहे जो कुछ करते रहें—गिल अपने मन की ही करेगा। उसने दस-बारह डायरेक्टरों को एक-एक करोड़ बाँट दिया है। अब तो बी.जे.पी. सरकार आ गई है इसलिए वह हमें हटाकर छोड़ेगी। मुझे न कोई लगाव है, न विरक्ति, क्योंकि रुटीन में कहीं कोई फर्क नहीं पड़ा है। वही 'अक्षर' और वही दोस्तों का ग्रुप।

याद करने की कोशिश करता हूँ कि अभी तक मैंने कितने फ्लैट बदले हैं—कलकत्ते में सबसे पहले राजकुमारीजी जी के यहाँ कुछ दिनों रहा—जुबली लाइन्स, हेस्टिंग्स, फिर बाकायदा डायमंड हार्बर रोड, इकबालपुर, कलकत्ता, फिर अड्यालकर के साथ राशबिहारी एवेन्यू पर यशोदा-भवन—तीसरी मंज़िल पर। फिर हिन्दुस्तान पार्क के 21-बी में। ज्योति बाबू के एकदम पड़ोस में। निराला होटल में और दिल्ली—सबसे पहले रोहतक रोड की बराबरी में, फिर आर्य समाज रोड, गुरुद्वारा रोड में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर कलकत्ता—पी-61, सी.आई.टी. रोड, कलकत्ता, फिर 29/17 शक्तिनगर, दिल्ली और बीस साल बाद 103 एस.एफ.एस. हौज़खास—बीच में सतीश के साथ शंकर मार्केट, गाजियाबाद से.रा. यात्री के साथ, कालकाजी में गिरीश अस्थाना और आई.आई.टी. कानपुर—फिर मयूर विहार 78-ए, अब हिन्दुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट ये वे जगह हैं जहाँ मैं दो-चार महीने से लेकर दस-बीस साल तक रहा हूँ। मयूर विहार में तो तीन साल से हूँ। पता नहीं, यहाँ कितने दिन रहना हो!

26.6.98

पिछले कई दिनों से मन में द्वन्द्व था कि अरविन्द जैन से खुलकर बात की जाए या नहीं। आखिर कल उसे यहाँ (घर) बुला ही लिया और खुल कर अपनी बात कह दी। द्वन्द्व था अपने ट्रस्ट को लेकर। दसियों सालों से ट्रस्ट बनाने की बात सोच रहा था—उसमें कौन-कौन हों, यही परेशानी थी। मैं चाहता हूँ कि उसमें टिंकू, मन्नू, मीता तीनों तो हों ही—प्रभा, संयुक्ता और मैत्रेयी भी हों। उस समय तो यही सबसे निकट लग रहे हैं। गिरिराज, संजय दिल्ली से बाहर हैं। कठिनाई है मन्नू को लेकर। मन्नू और मेरे सोचने का तरीका इतना अलग है कि वह शायद ही आए—फिर मीता के साथ तो शायद बिल्कुल नहीं। टिंकू भी नाम सुनकर भड़केगी। मीता की छोड़ भी दूँ तो सारी महिलाएँ हैं, साठ से ऊपर हैं या पहुँच रही हैं। अगर कल मैं न रहूँ तो इनमें कोईभी वहाँ आकर नहीं बैठेगी। टिंकू अपना काम छोड़कर 'हंस' में आकर बैठने लगे, यह सम्भव नहीं है। उसका अपना फैलाव है। ले-देकर अरविन्द ही है, जिसके सामने दस-बीस साल हैं—आठ-दस सालों से लगभग रोज़ ही आता रहा है। समझता है। निर्मला जी का कहना है कि वह सब कुछ खा-पी पाएगा। बाद में कौन-क्या करता है, हष्ट-पुष्ट छोड़ो। अपने प्रभाव या स्रोतों से तुम पैसा जमा करो और बाद में अरविन्द हड़प लें, इससे क्या फायदा? बीसियों ट्रस्टों का हश्र देखा है। एक तरह से उनकी बात ठीक है और उनकी नेगेटिव थिंकिंग के साथ जाती है। तब से यही गुणा-भाग मेरे दिमाग में चल रहा है। सब कुछ इसी तरह बिखरा हुआ छोड़कर चल दिया जाए, इतनी निरासक्ति मैं अपने भीतर नहीं पाता। फिर इस सब ताम-झाम के चलते रहने का क्या हो?

यह सही है कि अरविंद बहुत तेज़ है—उसके पास एक कुटिल-बुद्धि है और वह लगभग इसी तिकड़म में रहता है कि कैसे किसी अवसर, चीज़ या लाभ को अपने कब्ज़े में कर ले। पैसे को लेकर भी बहुत विश्वसनीय नहीं है—मन्नू के इनकम टैक्स रिटर्न के पैसे लेता रहा, मगर जमा नहीं किए। बाद की परेशानियों को वह आज तक भुगतती रही। यही विष्णु प्रभाकर के साथ हुआ और यही क्षितिज शर्मा के। उसकी अपनी दलीलें हैं—मगर यह सही है कि पैसे को लेकर उस पर सौ प्रतिशत विश्वास नहीं किया जा सकता। पता नहीं, वकालत कितनी चलती है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आय क्या है और उसके पास अपने भविष्य के लिए कितना पैसा है। बहरहाल मुझे इसमें कोई गलतफ़हमी नहीं है कि अवसर मिलेगा तो वह हंस, अक्षर—सभी कुछ लेकर बैठ जाएगा, सोचना सिर्फ यही है कि क्या मैं इसके लिए तैयार हूँ ?

और यहाँ मैं उसके प्लस-पॉइंट्स भी देखना चाहता हूँ। अरविन्द साहित्य का भार है। कुछ लिखे-पढ़े, यह उसका अपना शौक़ है। वकालत पर शायद उसका ध्यान इतना ही है कि रोटी-पानी चलता रहे। वह शायद बहुत सफल वकील है भी नहीं। दन्द-फन्दी से जितना झगड़ लेता है, उसे लेकर भी ग्लानि और डिस्गास्ट महसूस करता है। उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ साहित्य को लेकर ही हैं। यहाँ उसे नाम और पहचान दोनों ही मिले हुए हैं। 'औरत होने की सज़ा' ने उसे अप्रत्याशित यश दिया है—इधर महिलाओं और कथाकारों पर जो दर्जनभर लेख लिखे हैं उन्होंने भी लिखने का आत्मविश्वास दिया है। मेरा अपना ऑब्ज़र्वेशन कहता है कि उसे साहित्य में ही रहना है। उसे एक मंच चाहिए जिस पर वह निर्भर कर सके। वह मंच 'अक्षर' और 'हंस' ही है। यहाँ उसकी पारिवारिक स्थितियाँ भी हैं। बच्चा कोई है नहीं। गगन की बहन की बेटी को गोद लिया है और उसे लेकर माँ-बाप-भाइयों में मतभेद हैं। वैसे भी गोद लिए हुए बच्चे बुढ़ापे में क्या गुल खिलाते हैं यह उसने भी गिरीश अस्थाना के केस में देख लिया है।

गिरीश जी के न रहने पर अनिल के साथ मिलकर किस तरह कालकाजी के मकान को हथिया कर भाभीजी को घर से बाहर निकाल दिया—वे किराए के मकान में या कभी लखनऊ-दिल्ली में भटक रही हैं। पुलिस-मुकदमेबाज़ी सभी हुई। यही कुछ भविष्य अरविन्द का भी है। हो सकता है, न हो। मगर अपनी सन्तान वाली निश्चिन्तता तो नहीं ही है। यानी उसे भविष्य के लिए ऐसा माध्यम भी चाहिए जिसे वह सन्तान की तरह बना, बढ़ा या पाल सके। अपनी सामाजिक-साहित्यिक प्रतिष्ठा और व्यक्तिगत निर्भरता के लिए। हालाँकि हंस-अक्षर भी एक तरह गोद ली हुई सन्तान ही होगी—मगर उसे लग सकता है कि उसे लेकर वैसी जटिलताएँ नहीं होंगी जैसी बुलबुल को लेकर आ सकती हैं—यों और ट्रस्टियों के साथ क्या उलझनें आएँगी—इनका अनुमान मुझे भी नहीं है। आज या कुछ समय तक वे तटस्थ और अपइन्वॉल्व्ड हैं—हो सकता है, कल कोई सक्रिय हो उठे। मगर आशंका बहुत ही कम है। इसलिए मेरा अपना अध्ययन कहता है कि उसे अपने स्वार्थ के लिए ही अक्षर को बनाकर रखना होगा। वह उसकी साहित्यिक और भौतिक दोनों भूखों का समाधान है। जहाँ तक मेरे और उसके सम्बन्धों की बात है—वैचारिक रूप से हम लोगों में प्राय: सहमतियाँ हैं—वाम विचारधारा के लिए वह भी उतना ही प्रतिश्रुत है। सबसे बड़ी बात है कि शायद वही एक व्यक्ति है जिसने मुझे सबसे अधिक पढ़ा है और प्राय: मेरे लेखन से परिचित है। इसके अलावा भी वह मेरा लगभग अस्सी प्रतिशत जानता है, बीस का अनुमान लगाता होगा। अब यह भी उसके स्वार्थ का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिस्सा होना चाहिए कि वह मेरी पुस्तकों लेखन को लगातार सर्कुलेशन में रखे—उन्हें आय और प्रतिष्ठा का स्रोत बनाए रहे और मुझे 'महान' घोषित करता रहे। टिंकू वगैरा तो कोई यह सब करेगा नहीं।

यही सारे द्वन्द्व थे कि मैं उससे अकेले में और साफ बात करना चाहता था। तय कर लिया था कि उससे साफ-साफ बात करूँगा। ट्रस्ट वाली बात मैं क्यों स्थगित करता आ रहा हूँ—इस बात के बाद मैंने कह ही दिया कि इसके पीछे सिर्फ तू है—जो न मुझसे उगला जा रहा है, न निगला। सारे कारण बताए—विश्वास और अविश्वास दोनों को लेकर। यह द्वन्द्व भी है कि ले जाने दो साले को—बाद में कहाँ—क्या होता है—किसका सरोकार है ? ले ले, बना दे या खा जाए। मगर फिर सोचता हूँ, तीस-चालीस लाख की जगह, दस-बारह लाख के 'एसेट्स' और 'दोस्तों-रिश्तेदारों' से ट्रस्ट के नाम ली जाने वाली रकम—आँखों के सामने कैसे किसी के हाथों में दी जा सकती है ? खैर, अरविन्द, सुनता था, तेज़ आदमी है, कुछ अनुमान तो उसे रहा ही होगा। तय हुआ कि नामों की जगह छोड़कर वह ट्रस्ट का प्रारूप बनाएगा और नाम बाद में भर लिए जाएगा। जब तक कमिश्नर आर. के. सिंह है तभी तक बना लेना चाहिए ताकि इनकम टैक्स इत्यादि की सुविधाएँ ली जा सकें। उससे बात करने के बाद बोझ कुछ हटा—जब वह गया तो टी.वी. पर 'आजतक' समाप्त हो रहा था।

31.8.98

तीन दिन पहले 28 अगस्त यानी मेरा जन्मदिन था। लगता है, उत्सुकता साल के सिर्फ दो दिनों के लिए ही रह गई है। जन्मदिन और वर्ष का पहला दिन। देखें, आज क्या होता है ! नया या शुभ ? शुभ के संस्कारों से आज भी मुक्ति नहीं है। इस 28 को भी पहला फोन मीता का था। फिर तो लाभ। 15-20 फोन आए, रवीन्द्र त्रिपाठी फूल लेकर आया। दफ्तर में यामिनी फूल और टॉफियाँ रख गई थीं—'You mean a lot to me' के नोट के साथ। यामिनी से सालभर से कोई संवाद नहीं है। पहले उसकी स्थिति पर दया आती थी, फिर लगा कि पीड़ा में रहना ही उसे शहीद होने का सन्तोष देता है—वह उससे न बाहर निकलना चाहती है, न आगे बढ़ना, वर्ना इतनी समाजसेवी संस्थाएँ हैं, किसी के साथ भी जुड़ सकती थी। रत्नेश गौड़ की न जाने क्यों याद आई। सालभर न मिलते थे, न बातें करते थे। मगर जन्मदिन पर उसका फोन ज़रूर आता था। प्रभा का फोन था और सबसे सुखद था सरयू का फोन—गोवा से। तय हुआ था कि शाम को हौज़खास में ही मिलेंगे। टिंकू-मायरा, दिनेश, नीरा-आनन्द के अलावा नामवर, निर्मलाजी और जे. पी. दास। बेहद आत्मीय वातावरण में समय बिताकर, उपहार लेकर मैं साढ़े ग्यारह बजे यहाँ हिन्दुस्तान-टाइम्स एपार्टमेंट में लौट आया। हर बार उसी दिन या अगले दिन डायरी लिखता था। वह आज लिख रहा हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है, भीतर से बहुत कुछ बदल रहा है—सारा सिस्टम या सारा पैटर्न...दो चीज़ें लगभग समाप्त ही हो गई हैं : सेक्स की इच्छा और लिखने का दबाव दिमाग में आता ही नहीं है। पहले पढ़ने का मन करता था—अब तो बीसियों दिनों से किताब नहीं उठाई। अखबार, हंस की रचनाएँ और इधर-उधर पत्रिकाओं के लेख। वायरल के बाद एक थकान और हरारत से भी अधिक अनुत्साह या हार जाने का रेजिग्रेशन बना हुआ है। लेटता हूँ तो पड़ा रहता हूँ—बड़ी मुश्किल से अपने को उठने के लिए धकेलता हूँ। लगता है, न कोई अतीत है, न आगे कोई भविष्य। अब कुछ नहीं करना। जो हो गया, उसी से क्या बना! पूरे पचास वर्ष मैंने निष्ठा से ही लिखा है—लगातार। कहीं कुछ भी तो नहीं बदला। ईमानदारी से महसूस करता हूँ कि न मुझे यश चाहिए, न स्वीकृति—पुरस्कार-सम्मान तो कहीं चेतना-वृत्त में है ही नहीं। एक अफ़सोस ज़रूर होता है कि जिस तरह का और जितना मैंने लिखा है—विचारोत्तेजक और रचनात्मक, अगर किसी द्विवेदी-पाण्डेय ने लिखा होता तो निश्चय ही हिन्दी वाले उसे सिर पर उठाए घूमते। मगर फिर सोचता हूँ कि जिनके खिलाफ़ मैं लिखता रहा हूँ, उन्हीं से मान्यता की आकांक्षा क्यों?

यह थकान और रैंजिग्रेशन ज़रूर भीतरी परेशानी का कारण है—क्या इसका कारण अपनी उम्र के अलावा बाहरी है? ज़िन्दगीभर जिन मूल्यों से निष्ठापूर्वक चिपके रहे—उन्हीं की क्रमशः समाप्ति ही शायद पराजयबोध का कारण हो। हिंदुत्व और बीजेपी की ज़हरीली हवा जिस सुनियोजित ढंग से पूरी समाज व्यवस्था के रग-रेशे में घुसी जा रही है, उसकी कोई काट हमारे पास नहीं है। शायद हम अपने सिद्धांतों या सोच को समाज और व्यक्ति की साइकी तक नहीं ले जा पाए—जबकि बीजेपी ने जिन नारों को पकड़ा है, वह हर हिंदू के संस्कार हैं। उन्हें अपील करते हुए आप अन्धविश्वास, धार्मिक रूढ़िवादिता, वर्णवादी व्यवस्था को जगाकर चारों तरफ से अन्धा बना सकते हैं। शिक्षा संस्थाएँ, प्राध्यापक और व्यापारी तबके का मध्यवर्ग जैसे हिन्दुत्व के लिए बिछा हुआ है। बाहर पर्यावरण का प्रदूषण और भीतर हिन्दुत्व एक वायरल एपिडैमिक (महामारी) की तरह व्याप्त है। इन दिनों की बीमारियों का अगर नाम लूँ तो गन्दा ज़हरीला पानी, मिलावटी खाने का तेल, अपराध और चालीस रुपए किलो टमाटर, तीस रुपए किलो प्याज़ की महँगाई—अखबारों की यही सुर्खियाँ हैं—वहाँ दो सौ भरे, वहाँ पाँच सौ भरे—बस, ये ही आँकड़े। सारे उत्तर-भारत में बाढ़, लाखों गाँव डूबने के समाचार, भूस्खलन से सैकड़ों मरते हुए लोग। नेताओं के भ्रष्टाचार, सारा वातावरण सचमुच बीमार है। अपने अन्य कारणों के अलावा कहीं मेरी बीमारी का कारण यह वातावरण ही तो नहीं है।

पहले मेरे एक दिन को दूसरे से जोड़ता था कोई फोन, कोई रोमांटिक मुलाक़ात, कोई नया विचार जिसे लिखना होता था, कोई नई घटना, व्यक्ति—नाटक-गोष्ठी—अब वह सब जैसे उबाऊ चर्चा का हिस्सा हो गया है। कैसी हास्यास्पद और बेहूदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति है कि अगले दिन का इंतज़ार सिर्फ पेट साफ होने को लेकर है : आज तो ये-ये खाया है, इतना चला हूँ (यह दूरी मुश्किल से एक फर्लांग होती होगी) अब तो पेट साफ होना ही चाहिए—नहीं होता तो फिर एक पराजय-बोध। खाने की इच्छा एकदम खत्म हो गई है—नाश्ते में एक स्लाइस, दोपहर में मुश्किल से एक रोटी या कभी-कभी सिर्फ सब्जी-दाल, रात को अनिच्छापूर्वक दो रोटियाँ। मन ही नहीं करता। सुबह साढ़े चार-पाँच बजे उठकर लिखने-पढ़ने का सन्तोष भी महीनों से नहीं रहा। रात को वही ग्यारह-साढ़े ग्यारह तक सोना—उखड़ी-उखड़ी नींद, सुबह आँख खुलती है तो छह-पौने छह का समय और फिर नाश्ते के बाद एक घंटा की नियमित बिस्तरबाज़ी—यानी दिन का अधिकांश समय लेटे हुए या सोते हुए बिस्तर पर। क्या सारे सत्तरसाला बूढ़ों के साथ यही होता है? ये जो नामवर जैसे लोग दुनियाभर की भाग-दौड़ करते हैं, क्या यह भी अपने-आपको थके-बीमार बैल की तरह पैना कोंच-कोंच कर चलाते हैं? मुझे रेल और जहाज के सफर से डर लगता है : पुल चढ़ना होगा, लम्बी रेल के डिब्बे तक पहुँचना होगा, या जहाज तक चलकर जाना-लौटना होगा। दूरियाँ और पैदल चलना अब जैसे पहाड़ हो गया है। सवाल यही उठता है कि राजेन्द्र जी, अगर आपकी यही शारीरिक और मानसिक हालत है तो आप क्यों हैं? क्या सिर्फ इसीलिए कि अपनी पराजय, थकान, हार और व्यर्थता के ये मंडेय और व्यक्तिगत धिक्कार के दस्तावेज़ लिख-लिखकर छोड़ जाएँ कि पीछे कोई शोधार्थी इनमें से आपकी जीवनी निकालेगा? सैकड़ों पन्नों की डायरियाँ, अधलिखी रचनाओं का ढेर—किसे फुरसत है कि इस कूड़े में से ऐसा कुछ ढूँढ़ निकाले जिसे अगली पीढ़ियों या इतिहास के लिए छोड़ जाए—ताकि उन्हें प्रेरणा मिलेगी...माई फुट—इस असफल ज़िन्दगी से क्या प्रेरणा लेगा कोई? क्यों लेगा?

26.10.98

कुछ अवसरों के साथ एक पूर्वग्रह (अन्धविश्वास?) सा जुड़ जाता है। इस बार का मेरा जन्मदिन शायद ऐसा ही टर्निंग पॉइंट है कि उसने मेरी सारी ज़िन्दगी को झकझोरकर रख दिया है। आज मैं वह नहीं हूँ जो दो महीने पहले था। लगभग एक एक्सीडैण्ट से निकलकर अपने टूटे-फूटे सामान के साथ 'अब आगे क्या करना है' के अनिर्णय के साथ, पूरा पैटर्न ही बदल गया है।

पिछले साल डेढ़ साल से जो भी मिलता था, यही कहता था—राजेन्द्र जी, क्या आप डाइटिंग कर रहे हैं? बहुत वज़न कम हो रहा है? एक थकान और भूख न लगना निरन्तर बढ़ता गया—लेकिन शायद मेरी जिजीविषा और मुझे कुछ नहीं हुआ के साथ दिन गुज़रते गए। पेट में दाहिनी तरफ दर्द रहता था और मैं उसे कब्ज से जोड़ता था। हाँफ़नी बढ़ रही थी। बैठे हुए टेलिफोन पर बात करते समय उधर वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछता कि क्या दूर से आ रहे हैं ? आपकी साँस क्यों फूल रही है। इधर यह थकान और टूटन और बढ़ गई। लेटो तो उठने का मन ही न हो। 'मगर मुझे कुछ नहीं हो सकता', का लापरवाह भाव। गहरी नींद लगभग गायब। पेशाब की ज़रूरत हर दो-एक घंटे पर, 28 अगस्त तक यही सब था। उधर के. पी. सिंह और नमिता के लगातार फोन आ रहे थे कि 2 सितम्बर को अलीगढ़ आकर कॉलेज पत्रिका विमोचन करना है—वह टीकाराम कॉलेज की प्रिंसिपल हो गई है। टैक्सी से मैं और रामशरण जोशी गए। भयानक थकानेवाली यात्रा थी। सड़क टूटी-फूटी और बीच में जैमिंग। कोई पेड़ गिर गया था और दोनों तरफ से सैकड़ों ट्रकों ने रास्ता रोक दिया था। लगता था कि पाँच-सात घंटे साफ नहीं होगा। जैसे-तैसे गाँव की तरफ गाड़ी निकालकर दस-बारह किलोमीटर बेहद ऊबड़-खाबड़ रास्ते से फिर सड़क पर आए। एक बजे तक अलीगढ़ पहुँचे तो के. पी. के यहाँ लेटना पड़ा। जैसे-तैसे कार्यक्रम पूरा हुआ और तत्काल निकल पड़े। टिंकू की बेटी मायरा का जन्मदिन था। सात बजे यहाँ हिन्दुस्तान-टाइम्स आकर फिर चालीस किलोमीटर किशन के साथ डी. एल. एफ. पहुँचे। वहाँ उनके दोस्त और बच्चे थे। मन्नू भी लगभग अकेली थी। उसने भी कहा कि आप बेकार ही आए। खैर, जब साढ़े ग्यारह बजे यहाँ पहुँचे तो थककर चूर थे।

उसके दो दिन बाद ही बुखार जैसा लगता रहा। लगा कुछ ज़्यादा ही गड़बड़ है। मैत्रेयी के क्लिनिक में खून-पेशाब जँचवाया तो शुगर भूखे पेट पर निकली 274—बुखार बढ़ता गया। कँपकँपी के साथ 101-102—लगा कि एकदम कुछ करना होगा। ये लोग ऑल इंडिया मैडिकल इन्स्टीट्यूट ले गए। जनरल वार्ड (प्राइवेट) में भरती करा दिया गया और फिर सिलसिला शुरू हुआ—हाथों में ग्लूकोज, इंजेक्शन और दवाओं का। एक्स-रे, अल्ट्रासाउंड टैस्टों का। यह 9 सितम्बर की बात है।

परसों यानी बुध को फिर डॉ. सराया ने बुलाया है। पूछना है कि 14-15 नवम्बर को होनेवाले 'कथाक्रम' में लखनऊ जा सकता हूँ या नहीं। जिस चीज़ से अभी तक समझौता नहीं कर पा रहा, वह है अपनी शरीर की हालत। सारी खाल लटक गई है—वज़न सिर्फ 59 किलोग्राम रह गया है। लिवर का घाव तो ठीक हो जाएगा, मगर शुगर की बीमारी और उसके परहेज़ तो ज़िन्दगी भर के लिए लग ही गए। मानसिक रूप से दबाव बन रहा है कि 'माया समेटो', खतरे की घंटी बज गई है। पुरानी परेशानी अक्षर को लेकर है। कभी ट्रस्ट की बात आती है और कभी एकदम बेच देने की। प्रभा आई थी और वह भी यही आग्रह कर रही थी कि बेच दीजिए—बाकी ट्रस्ट में कोई कुछ नहीं करता। आप शेष मित्रों से या अपने पास से रुपया लगाएँगे फिर वही व्यक्ति जो सारी व्यवस्था देखेगा—हावी हो जाएगा। न टिंकू बैठकर देखेगी, न कोई और। निर्मला जी अमेरिका गई हैं—दस तक आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएँगी। उन्हीं के माध्यम से 'वाणी' से बात करनी है। एक बार जाकर टिंकू से भी सलाह होगी।

14.12.98

अजीब बात है : जो घटनाएँ या स्थितियाँ आपको अपनी ज़िन्दगी के लिए बेहद निर्णायक लगती हैं, बाद में उनके बारे में बोलते या लिखते हुए आप के पास कहने को कुछ नहीं होता। दो महीने की बीमारी, अस्पताल या टिंकू के यहाँ रहते और उस सबसे गुज़रते हुए लगा था कि यह फेज बहुत महत्त्वपूर्ण है, आज उस पर लिखने की कोई बात ध्यान में नहीं आती। बस, यही एक निर्णय अनजाने में ले लिया गया है कि अब चीज़ों को समेटना है। इस बारे में निर्मलाजी से बातें हुईं तो उन्होंने दो-चार उदाहरण देकर बताया कि ट्रस्ट वगैरा बनाना बेकार है—आप 'हंस' और 'अक्षर' को एकबारगी ही किसी को दे दें। उनके अमेरिका जाने के पहले यह बात हुई थी। आग्रह करने पर नाम बताया कि वाणी वाले अरुण माहेश्वरी से बात हो सकती है। बात टलती रही। फिर कल का दिन तय हुआ। मैं, मन्नू उनके यहाँ डी. एल. एफ. गए। वहाँ अरुण भी था। बातें साफ ही हुईं। दो चीज़ें हैं जिनकी बात करनी है—अक्षर यानी जगह और हंस की गुडविल। इनकी कीमत क्या लगे ? बहुत इधर-उधर के बाद संकोच मैंने ही तोड़ा—कहा : बीस जगह के और पन्द्रह हंस के। अरुण के जाने के बाद निर्मला जी का कहना था कि सब मिलाकर बीस से ज़्यादा नहीं होना चाहिए। हम सब चुप हो गए। लगता है, पाँच और हो जाएँगे। मुझे यह बहुत कम लगता है। हो सकता है, इस महीने इसका कोई निर्णय हो जाए। मैं पच्चीस पर शायद तैयार हो जाऊँ।

तबियत प्राय: ठीक ही चल रही है। परहेज़ और एक्सरसाइज़ नहीं चल पा रहे। मगर न भीतर से कमज़ोरी लगती है, न बीमारी। हाँ, नाश्ता, खाना तीनों समय चल रहा है। बहुत दिनों बाद।

वहीं पता चला कि चन्द्रशेखर मुझे देखने आ रहे हैं। बेहद आश्चर्य हुआ। मैंने तो कभी उन्हें पसन्द नहीं किया, बल्कि अपनी कड़वाहट का खुलकर प्रचार किया है। बहरहाल, चार एस. पी. जी. के आदमी पूरे वार्ड का मुआयना करने के लिए रहे और नीचे पता नहीं कितने पुलिसवाले तैनात हो गए। उधर मन्नू ने सुषमा स्वराज को फोन करके प्राइवेट वार्ड में इन्तज़ाम करा लिया था, मगर एक्स पी.एम. के सुरक्षा प्रबन्धों के कारण शिफ्ट होते-होते शाम हो गई। अच्छा हुआ, चन्द्रशेखर नहीं आए। 207 प्राइवेट वार्ड में लगभग दस-बारह दिन रहा। कलाई की नस में बटरफ्लाई लगाकर कभी ग्लूकोज, कभी इन्सुलीन—पता नहीं, क्या-क्या दिया जाता रहा। नर्सें अच्छी और पिजेंट थीं। मन्नू लगभग चौबीस घंटे रहती थी सिर्फ नहाने-धोने जाती थी। शुरू में शोर मच गया था कि लिवर में जो घाव है, वह कैन्सर भी हो सकता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी के कारण भूख न लगना, वज़न घटना, हमेशा एक नीम बेहोशी का-सा आलम, कँपकँपी के साथ बुखार इत्यादि थे। लोगों का ताँता लग गया। सुषमा की तरफ से पहले बड़ा-सा गुलदस्ता आया फिर वे स्वयं आईं। अच्छा लगा। संजय सहाय, शीला सन्धु, नामवर, अच्युतानन्द मिश्र और पता नहीं कौन-कौन आए! आर.के. सिंह दो बार आए फिर उन्होंने फलों का बड़ा-सा बक्सा भिजवाया। दो-तीन बार अल्ट्रासाउंड में पता लगा कि लिवर में घाव है और शायद दवाओं से ही उसे ठीक किया जा सकता है, ऑपरेशन या सुई डालकर मवाद निकालने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। सी.टी. स्कैन वगैरा सभी कुछ हुआ। डॉ. सराया की देख-रेख में डॉ. बत्रा अटैंड कर रहे थे। खबर सुनते ही शिवकुमार शिव रिहन्द से दौड़ा चला आया। अपने को इतना असहाय, लाचार देखना, दूसरों की हमदर्दी, पहले-पहल—'ये तो अब गए' की अनकही भाषा—इस सबके बीच भीतर बहुत झुँझलाहट और प्रतिरोध-सा जागता था—शायद अपनी जानकारी में पहली बार अस्पताल में रहा था। सुबह से शाम तक भीड़ देखकर नर्सें और डॉक्टर अलग कुड़कुड़ाते थे, फिर उन्होंने सख्ती से मना कर दिया। शाम को चार से छह-सात तक ही लोग आते थे। कमलेश्वर और कृष्ण बलदेव वैद का आना सचमुच अच्छा लगा। सारे दिन दवाओं के नशे में कभी सो जाता था, कभी जागा रहता था। रात काफी बेचैनी से कटती थी—और सुबह उठकर ही पढ़ने-लिखने की कोशिश करता था। साथ में कभी हारिस छह-सात दिन शिव, अजित, महेश और वीरेन्द्र भी रहे। ज़रूरत तो नहीं पड़ी, मगर ये लोग रात को होते थे। खाना घर से आता था। अस्पताल का खाना ये लोग खाते थे। विनीत ने काफी भाग-दौड़ की।

2.11.98

बहरहाल, आठ-नौ सितम्बर से बाईस अक्तूबर तक या तो ऑल इंडिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट में रहा या टिंकू के यहाँ। बीच में टिंकू के यहाँ गया तो दो-तीन दिनों में फिर टैम्परेचर बढ़ गया—फिर वापस अस्पताल। वही ग्लूकोज, इंसुलिन गोलियाँ, मैटासर्जक, अल्ट्रासाउंड। दीवाली के बाद से यहीं हूँ। इस बीच भूख भी लग रही है और सुधार हो रहा है। एक गोली के अलावा सारी दवाएँ बन्द हैं। हाँ, दोनों समय इन्सुलिन।

20.12.98

पिछले अनेक सालों से देखा है कि मेरा लिखने का फेज प्रायः नवम्बर-दिसम्बर होता है। इन्हीं दिनों मैंने तुलनात्मक दृष्टि से अच्छी चीज़ें लिखी हैं। मगर इधर दो-तीन महीने से जितना समय मैंने बरबाद किया है, शायद ही कभी ऐसा हुआ हो। एक तो बीमारी का बहाना—फिर कुछ अजीब-सी रुटीन। शायद नींद पूरी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती, इसलिए देर से उठना—छह या उसके बाद। मेज़ पर बैठना और समय काटकर चाय-पानी-शेव, नाश्ता। एक घंटे की नींद। फिर बेकार इधर-उधर करते हुए खाना, फिर लेटकर अक्षर। रात को लौटकर टी.वी.। दारू बन्द है, इसलिए न कहीं जाना, न किसी को बुलाना। सात-साढ़े सात से ग्यारह तक बेकार। भीतर से न कोई धिक्कार है, न दबाव। मानो जो कुछ होना था, हो चुका। अब कुछ करना नहीं है। आश्चर्य होता है, लोक कैसे इतने तन्मय होकर लिखते हैं? पढ़ते ही नहीं, पढ़े हुए को याद रखते हैं? यहाँ तो पढ़ा हुआ दो घंटे बाद दिमाग़ से साफ हो जाता है। क्या इसे ही मानसिक बुढ़ापा कहते हैं? सेक्स की जैसे इच्छा ही नहीं होती। न कभी याद आती है। पता नहीं किस ज़माने की बातें हैं सब? अगर यही स्थिति रहनी है तो फिर इसके होने न होने का क्या मतलब है? कहीं किसी तरह का कोई इन्वॉल्वमेंट नहीं रह गया है? लोग रोज़ चले जा रहे हैं—आस-पास निकट का कोई जाएगा तो शायद न मुझे कोई फर्क पड़ेगा, न मेरे जाने पर किसी दूसरे को—सब नम्बर पड़ा रह जाएगा। अब हर नई चीज़ के साथ यही भाव आता है कि बाद में इसका क्या होगा? मन में है, कुछ पुरानी व्यर्थ या आपत्तिजनक पांडुलिपियों, डायरियों को नष्ट कर देना चाहिए...ज़्यादातर कच्ची...उबाऊ और बचकानी प्रतिक्रियाओं से भरी हैं। न उनका मेरे लिए कोई उपयोग है, न दूसरों के लिए बल्कि दूसरों के लिए ही धर्मसंकट पैदा होगा। अधकचरे उपन्यासों को क्यों रखे हुए हूँ? जिस तरह 'देवगिरि' की पांडुलिपियाँ भूपेन्द्र का दोस्त वसन्त ले गया—या मैंने उसे दे दी, उसी तरह बाकी को भी अब ठिकाने लगा देना चाहिए...मगर पुरानी तसवीरों की तरह पुराने लिखे को भी नष्ट करना मुश्किल होता है।

दो कहानियाँ अलग मेरी जान को लगी हैं। एक, शोभना के साथ के अनुभव हैं; दूसरी, उमा से पहली मुलाकात पर है। लगभग अपने सेक्स-अनुभव। सोचा था, चार-पाँच ऐसी कहानियों का एक संग्रह बना दिया जाए। इन दो का पुनर्लेखन करना है। शोभना वाली तो आधी लिखी मेज़ पर रखी है। पन्द्रह-बीस दिन हो गए। आगे लिखने को मन ही नहीं होता। वही-वही बातें, वही-वही विवरण। इसमें किसी को क्या मिलेगा? क्यों लिखूँ और क्यों कोई पढ़े? पढ़ने-लिखने का कोई अर्थ रह गया है क्या? यह मेरी अपनी बौद्धिक और मानसिक क्षमताओं का क्षरण है या सचमुच आस-पास के परिवेश की भौतिक सचाई है? अब चीज़ें आसानी से याद नहीं आतीं। लॉरेन्स उरैल और ए. जे. क्रौविन के नाम हफ्तों बाद याद आए—किताबों के नाम याद हैं। एक छोटा-सा सम्पादकीय लिखने में कितना समय लग जाता है, मैं ही जानता हूँ। पहले एक बार में लिख या बोल देता था। लोग अभी भी लिख ही डालते हैं। मुझे तीन-चार प्रूफ देखकर अन्तिम रूप देना पड़ता है।

शिव सेना ने दिलीप कुमार को पाकिस्तानी कहा या शिव सैनिक 'फायर' को प्रदर्शित नहीं होने दे रहे या अमेरिका के फिर इराक पर हमला कर दिया—इधर मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ कि न पहले जैसा गुस्सा है, न विरोध का जोश। व्यक्तिगत से लेकर सामाजिक निस्संगता को भीतर से मर जाना नहीं तो और क्या कहेंगे। दसियों सालों से कभी-कभी लिखी जानेवाली डायरी की इन टिप्पणी को 'एक मरते हुए आदमी का रोज़नामचा ही नाम दिया जाएगा।' 'क्रॉनिकल्स ऑफ ए डाइंग मैन'। टिंकू-दिनेश-मायरा आगरा गए हैं—कार से। भयानक ठंड और कोहरा है। खुदा न ख्वास्ता अगर दुर्घटना में कुछ हो जाए तो मुझे कैसा लगेगा? क्या तब भी मैं इतना ही निस्संग बना रहूँगा? दहशत तो होती है कि सब कुछ इस तरह समाप्त हो जाए...इस बार दिनेश से कहूँगा कि कार से आगरा न जाए—इसी रास्ते उसके पिता का एक्सीडेंट हुआ था। पता नहीं, महीना कौन-सा था?

ठाकुर साहब टिंकू के पास पिछले तीन-चार महीने से हैं। इस हफ्ते मुझे उनसे मिलने जाना था—तीस-पैंतीस किलोमीटर दूर पश्चिम विहार में—दिल्ली की सबसे घनी सड़कों से होते हुए। मगर कोहरा इतना है कि पाँच फीट दूर का आदमी दिखाई नहीं देता। दुर्घटना के डर से निकलना ही नहीं हुआ। शायद भीतर से इतना खिंचाव भी नहीं है। कोहरा और भयानक ठंड। अभी भी कमरा बन्द करके हीटर चला रखा है। खिड़की के शीशों से बाहर देखने पर लगता है जैसे किसी पहाड़ी पर बैठे हैं—घाटी से लगे मकान में।

जनवरी '99 का अंक उपन्यास-अंक है और इसे पंकज बिष्ट सम्पादित कर रहा है। थोड़ा तनाव कम है—न सम्पादकीय लिखना है, न रचनाएँ तय करनी है। थके मरियल घोड़े की तरह हाथ-पाँव डालकर मैं यह अपनी आत्मधिक्कारी डायरी लिख रहा हूँ। क्या साधन-सुविधाओं का होना ही आदमी को मारता है? शायद अभावग्रस्त आदमी ही यथास्थिति को तोड़कर बदलाव की पहल करता है? सिर्फ अपने अभाव दूर करने के लिए या सामूहिक स्थिति के सुधार के लिए? किसी सामाजिक दर्शन या आन्दोलन की अनुपस्थिति किस तरह आदमी को स्वकेन्द्रित कर देती है...सन्तोष यही है कि आध्यात्मिक पलायन अभी भी मेरी प्रवृत्ति नहीं बनी है। न ईश्वर का ध्यान आता है, न आत्मा के सन्तरणों का।

2.1.99

कल से शताब्दी का अन्तिम वर्ष शुरू हुआ। साल कितनी जल्दी बीत जाता है। नये वर्ष कुछ लोगों की शुभकामनाएँ मिलीं और कुछ को दीं। मगर सचमुच सोचूँ तो न मेरे पास नये संकल्प हैं, न योजनाएँ। एक-एक दिन बिताने और बीते हुए दिन पर चैन की साँस लेने की दिनचर्या में रहना कितना पाशविक है...क्या इस भविष्यहीनता और कन्फ्यूज़न का कारण व्यक्तिगत ही है—सारे देश की हालत यही नहीं है। हमारे पास इक्कीसवीं सदी के लिए क्या है? केन्द्र की बी.जे.पी. सरकार ने सभी क्षेत्रों में बँटाढार कर डाला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछला वर्ष दिल्ली में अपराधों का रहा। साकेत जैसी जगहों में अकेले बूढ़े दम्पतियों की आधा दर्जन से ज़्यादा हत्याएँ की गईं। ये लोग अपने कोठीनुमा मकानों या फ्लैटों में अकेले रहते थे। अधिकांश हत्याएँ नौकरों ने डकैती डालने के इरादे से या सम्पत्ति के विवादों को लेकर हुई हैं। कौन हैं ये बूढ़े ? शायद अधिकांश अवकाश प्राप्त उच्चपदस्थ सरकारी नौकर—इन्होंने ज़िन्दगीभर घूस और कमीशन में पैसे बनाए, कोठियाँ और बैंक-बैलेन्स या शेयरपूँजी जमा की और अच्छी-से-अच्छी नौकरियों पर अपने बच्चों को विदेश भेज दिया। लड़का है तो सीधा गया, लड़की है तो उसका पति ले गया। नतीजे में ये अकेले रह गए। साल-दो साल में कभी महीने-डेढ़ महीने को बाहर का चक्कर लगा आए और फिर वापस...न वहाँ बच्चों के साथ रह सकते हैं, न अलग व्यवस्था कर सकते हैं। एक विशेष जीवन जीने के अभ्यस्त वहाँ एकाकी और फालतू महसूस करते हैं। हारकर यहीं लौट आते हैं। कुछ अपनी और कुछ बच्चों की दी हुई सारी सुख-सुविधाएँ हैं—लोगों का ध्यान तो जाएगा ही। देर-सवेर मारे जाते हैं। क्या होता होगा, इनकी छोड़ी हुई सम्पत्ति का ? हो सकता है, कोई राकेश शर्मा जैसा हड़प लेता हो, रिश्तेदार क़ब्ज़ा कर लेते हों या कहीं-कहीं बच्चे आकर कोई व्यवस्था कर जाते हों। प्रकाश का भी तो यही हुआ। आगरा का मकान, सारा सामान दूसरों ने डकार ही तो लिया—भाभीजी की हत्या के बाद। प्रकाश ने आकर बहुत हाथ पाँव मारे—फिर छोड़-छाड़कर वापस चला गया। तीनों लड़के, बेटी और खुद बाहर का जमा-जमाया छोड़कर आ तो सकता नहीं है। भ्रष्ट बूढ़े अफसरों या व्यापारियों का इस तरह मारे जाना क्या प्राकृतिक न्याय के रूप में लिया जाना चाहिए—'जो ज़िन्दगीभर आपने किया, उसका फल तो भुगतना ही था' की नियतिवादी व्याख्या में या सामाजिक स्थितियों में उच्च मध्य वर्ग के उदय और अवसान के रूप में ? उनकी सम्पत्तियाँ क्रान्ति द्वारा नहीं तो अपराधों द्वारा वापस समाज को दिलाई जाएँगी...उन्हें बिखरकर समाजीकृत तो होना ही है...

28.1.99

करीब महीनेभर से एक बात बार-बार दिमाग में आ रही है : अगर किशन न होता तो इस बनवास में मैं किस तरह ज़िन्दगी बिताता ? इस कम्बख्त ने जैसे मेरा इस घर का सारा ज़िम्मा सँभाल लिया है। खुद ही सारा काम कर लेता है, सफाई से लेकर कपड़े सँभालने, खाने-पीने, रहने की हर ज़रूरत तक। बीच-बीच में हाथ-सफाई भी दिखाई है—कई बार गिनकर रखे हुए रुपयों में से पाँच या कभी छह सौ रुपए गायब भी हुए हैं। अभी पिछली बार दो हज़ार रखे थे, उसमें सौ रुपए कम हैं। हो सकता है, चीज़ें बरबाद भी हुई हों—अगर ज़्यादा सावधान होता या मेरी जगह कोई औरत होती तो चार-पाँच सौ की बचत कर लेती—मगर मैं सोचता हूँ कि इतने में मैं मानसिक शान्ति खरीद रहा हूँ—हफ्तों न रसोई की तरफ जाता हूँ, न उसके कमरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में। मुझे और घर को सँभालने के अलावा ड्राइवरी, अक्षर का काम सभी मन लगाकर क़रता है। गाड़ी को तो बेटे की तरह पालता है—इंचभर की खरोंच उसे परेशान रखती है। एकदम साफ और चुस्त-दुरुस्त रखता है। सारे लोग ईर्ष्या करते हैं कि ऐसा लड़का मेरे पास है जिसने मुझे सारी फ़िक्रों से मुक्त कर दिया है। उम्र है, मगर अभी तक न तो किसी लड़की की तरफ झुकाव देखा, न ऐसी कोई हरकत। हाँ, क्रिकेट के पीछे पागल है और रात-रातभर टी.वी. से चिपका रहता है। मेरे सारे सम्बन्धों, आदतों और ज़रूरतों को समझता है। अभी तक तो मैं सचमुच अपने को सौभाग्यशाली मानता हूँ कि किशन मुझे मिला है जिसने मेरी जटिल ज़िन्दगी को सँभाल लिया है। देखने में खूबसूरत, तन्दुरुस्त नौजवान है। मेरी तरह शायद ही कभी बीमार पड़ता हो। मेरी बीमारी में उसने जो सेवा की है, उसने भीतर तक मुझे अभिभूत और आभारी बना दिया। खाने-दवाओं से लेकर हर चीज़ इसी ने निभाई है। लड़कों वाली शायद ही कोई बुरी आदत हो। सारा घर उसके ज़िम्मे है, न कहीं ताला-चाबी, न दुराव-छिपाव। हर चीज़ को अपना ही समझकर काम में लेता और सँभालता है।

मगर जिस तरह की ज़िन्दगी इसे मिली है, वह क्या कहीं और मिलेगी? उसने शायद मेरे सिवा किसी को नहीं जाना। बारह-पन्द्रह का था तभी आया था, हिन्दी नहीं बोल पाता था और अब नियमित अखबार पढ़ता है, बातों में हिस्सा लेना चाहता है। शायद यह किसी दूसरे के यहाँ रह भी नहीं सकता। मैं भी बेटे की तरह इसका ध्यान रखता हूँ—खाने-कपड़े से लेकर 'मूड' तक। जो चीज़ मेरे मन में इस समय आ रही है, वह यही कि—अगर मैं नहीं रहूँगा तो इसका क्या होगा? सोचता हूँ, क्यों न इसके लिए कहीं छोटे-मोटे मकान की व्यवस्था कर दूँ! बेचारे को रहने की जगह तो हो जाएगी। दो-चार लाख की व्यवस्था हो ही जाएगी। आजकल दिमाग इसी तरफ लगा रहता है कि क्या किया जाए कि यह न्यूनतम आराम से रह सके। मगर क्या शादी के बाद भी यह ऐसा ही रहेगा?

इस साले को मैं बहुत प्यार करने लगा हूँ। क्या यह आदमी की वही आदिम इच्छा है जहाँ वह बेटे को सबकुछ देने की बात सोचता है? वैसे भी मेरा जोड़ा हुआ अधिकांश वह ले ले, इसके लिए मानसिक रूप से तैयार हूँ।

3.5.99

पता नहीं, कितने दिनों बाद कलम हाथ में ली है। अगर सम्पादकीय न लिखना हो तो महीनों लिखने का दबाव महसूस न हो। शायद कहने के लिए कुछ है भी नहीं। आजकल सम्पादकियों में अपने को बहुत दुहरा रहा हूँ—एक बासीपन खुद महसूस होता है। मगर पाठक हैं कि उसी के एडिक्ट हैं। जानता हूँ कि सम्पादकीय नहीं होगा तो 'हंस' का सर्कुलेशन आधा रह जाएगा। मगर बाकी पत्रिकाएँ भी तो चलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जहाँ सम्पादकीय नहीं होते। हो सकता है, अपनी अपरिहार्यता को लेकर यह मेरा भ्रम ही थे। अंग्रेजी की कहावत याद आती है—सारे कब्रिस्तान उन्हीं लोगों से भरे पड़े हैं जो अपने समय में अपने को अपरिहार्य समझते थे। सच बात तो यह है कि मैं खुद डरता हूँ कि अगर सम्पादकीय नहीं लिखूँगा तो उस निरर्थकता के शून्य को भरूँगा कैसे? क्या करूँगा—वही निरर्थक दिनचर्या क्या मुझे चैन लेने देगी—यानी सुबह उठो साढ़े चार पाँच पर और कुछ पढ़ते हुए साढ़े छह पर किशन को जगाओ। चाय पियो। पानी पीकर प्रैशर बनाओ। आठ-साढ़े आठ तक पाइप और अखबार पीते हुए 'सही क्षण' की प्रतीक्षा करो और अक्सर पेट साफ न होने के स्थायी अहसास के साथ शेव, नहाना, मालिश, कसरत, नाश्ता, सोना। ग्यारह-साढ़े ग्यारह पर उठो और तैयार होकर साढ़े बारह-एक तक 'अक्षर' पत्र या रचनाएँ पढ़ो। आने वाले लोगों से गप्पें और छह-साढ़े छह पर घर। जब से दारू बन्द हुई है, कहीं बाहर जाने का भी मन नहीं करता। लोग यहीं आ जाते हैं। बाहर जाने पर यह बोझ भी रहता है कि घर जाकर खाना बनाते-खाते ग्यारह बजेंगे। वैसे भी कोई नहीं होता तो मैं टी.वी. के चैनल बदलता रहता हूँ—कोई एक प्रोग्राम ऐसा नहीं होता जिसे पूरा देखने को मन करता हो। अक्सर तो विज्ञापनों के हस्तक्षेप से मन खिन्न रहता है। ग्यारह पर सोना। प्राय: सारी दिनचर्या इतनी बँधी, नपी-तुली और घड़ी से बँधी है कि इतनी मशीनी ज़िन्दगी की तो मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

कोई भी बाहरी तत्त्व ऐसा नहीं है जो कहीं इस नियमित-चर्या को झकझोरे या बदले। हमेशा यह अहसास कि अब तुम बीमार बूढ़े और अक्षम हो—समय रहते चीज़ों को समेटो। बचपन और किशोरावस्था की जो डायरियाँ, लेखन अभी तक सँभालकर रखे हुए हो, उसे ठिकाने लगाओ—जिन्हें रिवाइज़ करना, रखना है उन्हें रखो...मगर उनमें से कुछ भी रखते डर लगता है! बाद में लोग देखकर सोचेंगे कि कितना अधकचरा, बचकाना और बेवकूफ़ाना है! फेंकने और जलाने की हिम्मत नहीं होती—पता नहीं, शायद महत्त्वपूर्ण ही हो...शरीर हो, मन हो या लेखन स्वीकार करते प्रतिरोध होता है कि अब वह शक्ति, ऊर्जा और रोबस्टनैस नहीं रह गई है नहीं, अभी भी सब कुछ वैसा ही है, एक दिन कोशिश करूँगा और फिर से वही हो जाऊँगा।

किसी से बातचीत करते हुए इंटरव्यू में मैंने कहा था कि जिस तरह मैं दूसरे लेखकों के जीवन और रचना में ऐसा अन्तर्सूत्र तलाश करता हूँ जिसके सहारे उसके लेखन को व्याख्यायित कर सकूँ, अक्सर सोचता हूँ कि क्या खुद भी कोई ऐसा सूत्र है जिसके आधार पर मैं अपने-आपको समझ सकूँ? यानी विभिन्न दबावों, स्थितियों और अवसरों पर अलग-अलग घटी घटनाओं के पीछे क्या कोई ऐसा लॉजिक है कि लगे : सब इतना अचानक असम्बद्ध ढंग से घटित नहीं हुआ—उस सबके पीछे कोई एक तर्क या अन्तर्सूत्रता है—इस 'पागलपन' का भी एक मैथड रहा है? पहले लगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, शायद वह है मेरी अतिक्रमित करने की आकांक्षा—सीमाओं, बन्धनों और शारीरिक-मानसिक विवशताओं के पार जाने की तड़प। जैसे अपने पाँव की चोट से एक ही जगह बँधे होने की स्थिति की कल्पना के माध्यम से पार कर जाने की प्रवृत्ति। शायद वही मेरे लेखन की प्रेरणा है। अपनी शिक्षा, संस्कारों और सोच सभी सीमाओं को मैंने ज़िन्दगीभर तोड़ने की कोशिश की है। और गहराई में जाकर सोचता हूँ कि अतिक्रमण, ट्रान्सैडैन्स वस्तुतः स्वतंत्र होने की कामना है—मुक्ति की आकांक्षा—अपने मन, संस्कारों और शरीर से मुक्त होकर चीज़ों को देखने की आकांक्षा से मूर्तिभंजन की मानसिकता भी शायद अपने को मूर्तियों से युक्त करने से आई है। खुद मैंने भी अपनी कोई निश्चित मूर्ति नहीं बनने दी है। हर बार अपने को तोड़ा है, या बदला है। नहीं, मैं श्रद्धेय, आदरणीय, लेखक, चिन्तक कुछ भी नहीं हूँ—न बूढ़ा हूँ, न लँगड़ा। हर बार अपने को नये सिरे से शुरू करता हूँ और मज़ा देखिए, यह लिखते हुए मुझे अज्ञेय की वे पंक्तियाँ याद आती हैं कि मैं हर बार अपनी एक नई मूर्ति ग़ढ़ता और तोड़ता हूँ। यानी कि अपने को गढ़ने और तोड़ने की एक परम्परा हर समय रही है और मैं उस परम्परा में कैद हूँ। तो क्या अतिक्रमण करने या मुक्ति कामना की अपनी लीक है—मूर्ति भंजकों का अपना एक वंश है? काश, मेरे भीतर भी अज्ञेय जैसा आत्मविश्वास, भीतरी बाहरी अनुशासन, अन्तर्गठन और भरा-पूरापन होता कि हर पंक्ति लिखते हुए लगता है कि कुछ अलग और अमर लिख रहा हूँ!

अपने इस तथाकथित चिन्तनपरक लेखन को लेकर मेरे मन में पिछले कुछ समय से भयानक द्वन्द्व है। पहली बात तो यह कि यह साला न तो कहीं से मौलिक है, न चिन्तनपरक है—इधर-उधर से जुटाया-उड़ाया हुआ ऐसा लेखन है जो अनेक जगहों पर, अनेक समयों और लोगों द्वारा किया जा चुका है। मैं शायद उसे समय और स्थिति के अनुसार समेटकर लिख देता हूँ। सिर्फ भाषा, मुहावरा और लिखने का तरीक़ा मेरा है। मगर क्या फिर सारे मौलिक लगनेवाले लेखन की स्थिति यही नहीं है? क्या लेखन-चिन्तन मात्र की सारी प्रक्रिया यही नहीं है? वस्तु तो वही होती है जो शेष सबकी है, सिर्फ अपने समय और समस्या के सन्दर्भ में व्याख्या हमारी होती है। पचासों पंक्तियाँ लिखने के दौरान दो-एक पंक्तियाँ ऐसी ज़रूर बन जाती हैं जो हमें लगे कि हमारी अपनी हैं। शायद वह भी अवचेतन द्वारा सोखा और पकाया हुआ ऐसा कुछ है जिसके स्रोत और उद्गम हमें नहीं मालूम।

दूसरे, इस तरह के लेखन में यह सन्तोष ज़रूर मिलता है कि आप घुमा-फिराकर नहीं, सीधे-सीधे समस्या से मुठभेड़ कर रहे हैं। यानी जीवनास्थितियों से सीधे-सीधे जूझ रहे हैं। कहानी-उपन्यास या रचनात्मक लेखन आपके मन और मर्म को छूकर आपको बदलता है, नये संस्कार डालता है, और अन्य चीज़ों को पहले से अलग दृष्टि से देखते हैं। शायद वह हमें पैसिवली बदलता है। यानी स्थितियाँ, चीज़ें, व्यक्ति—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ हमारे सम्पर्क में आता है, उसे हम बदले हुए रूप में ग्रहण करते हैं। उधर चिन्तन, विश्लेषणपरक लेखन की प्रतिक्रिया तत्काल होती है—वह हमें बौद्धिक रूप से तत्पर, उद्‌बुद्ध और आक्रामक बनाता है—शायद सक्रिय भी। मगर यह बौद्धिक सक्रियता हमें जीवित मनुष्यों से काट देती है। हम उन्हें स्पन्दनशील प्राणियों की तरह नहीं, आइडिया, कन्सैप्ट और समस्याओं के रूप में देखते हैं—वे सिर्फ बेजान तसवीरें होती हैं। मैं रचनात्मक रूप से लिखने का जो दबाव महसूस नहीं कर पाता शायद उसका कारण भी यही है कि व्यक्ति मेरे सामने साकार नहीं होता, मैं उससे संवाद नहीं करता। एक अमूर्त-सा कुछ होता है, उससे सिर्फ बहस करता हूँ। वह दुख-सुख कैसे महसूस करता है, किन भावनात्मक उतारों-चढ़ावों से गुज़रता है, यह मेरे लिए अपरिचित हो गया है। शायद यह मेरे लिए अब समझ पाना मुश्किल हो गया है कि कैसे कोई मानसिक उद्वेलन में इस हद तक बेचैन हो सकता है ?

इधर अनवर और सहजों के बीच एक तीसरे विदेशी को लेकर भयंकर तनाव चल रहा है—तलाक इत्यादि की बातें हो रही हैं, स्वाभाविक है कि रात-रात भर रोते बहस करते होंगे, बाल और खाल नोचते होंगे—और इसके लिए वे शायद मुझ पर बहुत निर्भर करते हैं। उधर मुझे लगता ही नहीं है कि यह कोई ऐसी भयानक समस्या है कि इसके लिए अलग हुआ जाए, नींदें खराब की जाएँ या हत्या-आत्महत्या की स्थितियों तक पहुँचा जाए। मुझे सब कुछ नकली और किताबी लगता है। क्यों नहीं बैठकर लॉजिकली बातों को तय कर लेते ? अक्सर सहज होकर क्यों नहीं इस स्थिति को गुज़र जाने देता ? यह बौद्धिक एप्रोच मानवीय मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को न सिर्फ समझने से इनकार करती है, बल्कि इनकी गम्भीरता को भी स्वीकार नहीं करती। मेरे लिए यह दो जीवन्त-प्राणियों की भावनात्मक समस्या नहीं, एक एकेडेमिक प्रमेय है जिसे लॉजिक से हल किया जा सकता है। अपनी यह 'अमानवीयता' मुझे चौंकाती है और मैं जैसे अपने को वार्न करता हूँ कि अभी भी समय है कि इस बौद्धिक चुतियापे से निकलकर मनुष्य की संवेदनाओं से जुड़ने की कोशिश करूँ...

6.7.99

पिछली बार जब अखिलेश आया था तो वायदा ले गया था कि मैं उसके 'तद्‌भव' में अपनी कुछ पिछली डायरियाँ दूँगा। इधर उसके लगातार फोन आ रहे हैं। इस बार सम्पादकीय लिखना नहीं है इसलिए कुछ फुर्सत है। सम्पादकीय विभूति नारायण लिखेंगे—सद्‌भावना के जैस्चर की तरह। कुछ उपन्यास इन दिनों पढ़े थे, उन पर लिखना चाहता था, मगर पुरानी डायरियाँ निकाल ली हैं। पुराने पत्रों, चित्रों की तरह डायरियाँ देखना भी बड़ा इन्फैक्शस-संक्रामक काम है। हालाँकि वे मैंने लगातार लिखी नहीं हैं, मगर कुछ नतीजे चौंकानेवाले हैं। लगभग सत्तर के बाद की हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने तथा मन्नू के सम्बन्धों, तनावों के विवरणों से भरी हैं—वही त्रिकोण की यातनाओं से भरी और आत्मविश्लेषण के नाम पर प्यार में शहीद हो जाने के जज़्बों से भरी। अपनी रचनात्मकता के लगातार ह्रास का चिट्ठा। वास्तविक लेखन को डायरी लेखन से भरने की आत्मकथाएँ। पत्रिका के लिए तरह-तरह के प्रयासों की कहानी कि किस तरह भाँति-भाँति के लोगों से मिलता रहा हूँ। शायद तब तक मन्नू से वैसी संवादहीनता नहीं हो गई थी, जैसी आज है। आज तो हम दो अलग नक्षत्रों के निवासी हैं जो एक-दूसरे की भाषा नहीं समझते। इन डायरियों में सबसे झुँझला देनेवाली बात है कि ये बेहद ही बारीक और छोटे अक्षरों में लिखी हैं और आज पढ़ने में दिक्कत होती है। कुछ को तो शायद मैग्नीफाइंग ग्लास लगाकर पढ़ना पड़ेगा। पता नहीं, चावल पर गीता लिखने की इस मानसिकता के पीछे क्या है! कमज़ोर आँखों के बावजूद मैं इतना बारीक क्यों लिखता रहा हूँ?

मैं मानता और कहता रहा हूँ कि 'मृत्यु' मेरी चिन्ता में कहीं भी नहीं है। शायद है भी ऐसा ही। इधर ज़रूर मरने की बात सोचता हूँ मगर सन् सत्तर के आस-पास तो ऐसा कुछ भी नहीं है। फिर पचास की उम्र के बाद से ही डायरियों में बार-बार मृत्यु पर ही क्यों लिखता रहा हूँ? उन दिनों शायद मृत्यु एक खौफनाक अन्त की तरह नहीं आती—आती है इस रूप में कि हाय, मैंने अभी तक कुछ भी नहीं किया, सभी कुछ बिखरा पड़ा है, उसे न समेटा, न व्यवस्थित किया! सब कुछ अधूरा और अनकिया ही छूट जाएगा। यह मृत्यु भय नहीं तो क्या है? क्यों यह आशंका या भय मुझे बीस-पच्चीस सालों से लगातार हांट करता रहा है? अभी भी है। अन्तर सिर्फ यह था कि पहले यह अन्त कहीं दूर और अस्पष्ट या अनिश्चित था, आज कहीं बहुत पास है और इससे 'अचानक' का भाव खत्म हो गया है।

6.8.99

महीना भर ठीक उसी तरह निकला, जैसे पिछले दिन निकलते रहे हैं यानी पानी पर खिंची लकीरों की तरह। सिर्फ बने रहने का अभ्यास। 'हंस' का वार्षिक आयोजन हुआ 'राष्ट्र और राष्ट्रवाद' पर। राजेन्द्रप्रसाद अकादमी के सहयोग से। मुख्य वक्ता डॉ. रमाधीर सिंह, डॉ. ब्रह्मदेव और किशन पटनायक। इस बार मन में कोई टेंशन नहीं थी। जितनी सूचियाँ मिलती गईं—पत्र गए। बैनर इत्यादि बने। चाय-पानी का खर्च, हॉल की व्यवस्था राजेन्द्र अकादमी के अनिल मिश्रा ने की। अखबारों में निकला और उस दिन भारी भीड़ जुटी। पूरा हॉल भरा था, गैलरी, फर्श, सीढ़ियों पर और बाहर लोग थे। सब कहते हैं—पन्द्रह वर्षों से किसी भी साहित्यिक कार्यक्रम में इतने लोग कभी नहीं आए। अधिकांश युवा। 'हंस' के ये आयोजन शायद दिल्ली की जिन्दगी के ज़रूरी हिस्से बन गए हैं। लोग प्रतीक्षा करते हैं, आते हैं। सन्तोष है कि चलो, एक काम तो ऐसा हुआ जिससे इतने लोग जुड़ जाते हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हंस' का अंक आया। पहला सम्पादकीय विभूतिनारायण का है। दो-एक सुधीश पचौरी जैसों को छोड़कर प्रायः सभी ने तारीफ़ ही की है। मैं किसी और से सम्पादकीय लिखाऊँ—यह बात पचाई नहीं जा रही। क्या तिकड़म हो सकती है राजेन्द्र जी की! सद्भावना जैस्चर की तरह लेने को कोई तैयार ही नहीं है। सम्पादकीय मेरा भी है। इधर सम्पादकीय लिखना मुझे पहाड़ लगता है—हर बार ऐसा नया क्या विषय लिखा जाए? प्रासंगिक, प्रामाणिक और विचारोत्तेजक विषय हर बार तो नहीं ही मिलता। मुझे लगता है, जैसे मैं पाठकों की प्रत्याशाओं का कैदी हो गया हूँ। ऐसा लिखो, जिस पर पाठक सोचें, भड़कें और कंविंस हो कि हाँ इस बार दिखाई है हिम्मत...हमेशा यह दबाव कि कमाल करना है। क्या यह मेरा सहज लेखन है?

इधर पुरानी बिखरी हुई चीज़ें निकाली हैं। देखता हूँ, दो-तीन किताबों की सामग्री तैयार हो सकती है, व्यक्तित्व-विश्लेषणों की किताब तैयार ही है। इधर लिखे और पुराने कुछ मिलाकर 'औरों के बहाने' का अगला खंड। फिर एक दर्जन से अधिक कहानियों के मैंने अनुवाद किए हुए हैं—उन्हें भी एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में दिया जा सकता है। कहानियों की तो तैयार है ही—सिर्फ एक लम्बी कहानी को फेयर करना है। अरविन्द जैन स्त्री सम्बन्धी मेरे लेखों को अलग पुस्तक के रूप में दे ही रहा है। शायद राजकमल में कम्पोज़ भी हो गई है। ठाकुर साहब ने जो मेरे ऊपर लिखा है, वह भी राजकमल से आ रहा है। दो-ढाई सौ पन्नों की होगी। नाम दिया है 'राजेन्द्र यादव मार्फ़त मनमोहन ठाकौर'।

बड़बोले, शेखीखोर और उद्दंड सूचना-मंत्री प्रमोद महाजन ने रेडियो दूरदर्शन को अपने चंगुल में लिया हुआ है। सितम्बर-अक्तूबर में चुनाव है और बी.जे.पी. हर कीमत पर इसे जीतना चाहती है। प्रसार भारती में हम सब लोग अपने को अप्रासंगिक पाते हैं। फिर भी लगे हैं कि उनका मनचाहा न हो। कारगिल को 'युद्ध बना' कर उन्होंने अपने हज़ारों जवान कटवा दिये, हज़ारों करोड़ का टेलिकॉम घपला कर डाला। मुझसे तो जितना बनता है, खुलकर बोलता और लिखता हूँ मगर लगता है जैसे कहा हुआ कहीं नहीं जाता। अभी तक जो भी कुछ लिखा है, वह सब निष्प्रभावी, हवाई और आत्मसन्तोष से अधिक कुछ नहीं है। पचास साल सिर्फ घास खोदी है। क्या व्यर्थता-बोध की यह कचोट औरों को नहीं होती? भारतभूषण अग्रवाल ने कितने दर्द से लिखा है : ''इतने बड़े समय में, कितना छोटा जीवन जिया...!'

28.8.99

एक और जन्मदिन...देखते-देखते सत्तर साल भी पूरे हो गए। कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या इतनी उम्र के हिसाब से मुझमें प्रौढ़ता और गम्भीरता भी आई है या सिर्फ सतह पर फिसलती नाव की तरह सत्तर पड़ाव ही पूरे हुए हैं? पकड़ कहीं नहीं आई। एक घटना से दूसरी घटना या घटनाहीनता में दिन पूरे होते रहे। इस बार भी 'डर'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है कि अगली बार लिखने का अवसर आएगा या नहीं। पिछली बार तय किया था कि सब कुछ समेटने की कोशिश करूँगा, ट्रस्ट बनाऊँगा और व्यर्थ या अवांछनीय चीज़ों को साफ कर दूँगा। कुछ भी नहीं किया। न कुछ लिखा, न सोचा। हाँ, प्रसार भारती के कारण नाम ज़रूर अखबारों में आने लगा मगर क्या सचमुच मैंने अपनी यही छवि प्रस्तुत करनी चाही थी? कहाँ गया वह लेखक? हाँ, एक स्वतंत्र-चेता व्यक्ति की तरह आत्मविश्वास ज़रूर बढ़ा है। आशंका यह भी होती है कि कहीं इस स्वतंत्रता की कीमत न माँगी जाने लगे! आजकल फिर चुनाव का माहौल है और सारी स्थितियों से लग रहा है कि बी.जे.पी. गठबन्धन ही आएगा। हो सकता है, एक प्रतिशोध का दौर शुरू हो! यह बात एमर्जेन्सी के समय नहीं आई थी। तब भी तो मैं प्रतिरोधी था। मगर तब 'हंस' जैसा माध्यम नहीं था।

24 अगस्त को हैदराबाद से लौटकर आया था। मैंने और जे.पी. ने तय किया था कि हम लोग साथ ही मीनाक्षी-सुजित मुखर्जी से मिलने जाएँगे। दसियों वर्षों से अपने पैसों से कहीं आना-जाना ही बन्द हो गया। कहीं निमंत्रण मिला और दूसरों के खर्चे पर हो आए। 18 को गए थे ट्रेन से। जे.पी., मित्रा और मैं, ट्रेन से। वहाँ का सारा प्रबन्ध जे.पी. ने ही कराया था—गेस्ट हाउस, कारें, खाना-पीना बहुत अच्छा और ताज़गी देनेवाला रहा। मन में था कि वहीं से एक फ्लाइट पकड़कर पूना हो आऊँगा। ठाकुर साहब 15 अगस्त को नहीं रहे थे। दो महीने ज़िन्दगी-मौत से जूझते रहे, फिर 'पकड़' में आ गए। पैंतालीस वर्षों की पारिवारिक दोस्ती। शायद मेरे ऊपर लिखी पुस्तक 'राजेन्द्र यादव मार्फ़त मनमोहन ठाकौर' ही उनकी अन्तिम पुस्तक थी। जब कभी कोमा या बीमारी से ठीक होते थे, उसके दो-चार पन्ने लिखकर भेज देते थे—अन्तिम हिस्सा तो इसी तरह टुकड़ों में ही लिखा गया। ग़ज़ब की जिजीविषा थी बुढ़ऊ में। किताब आज राजकमल से आ रही है। मुझसे छिपाकर पहले तो संजय सहाय और अरविन्द जैन कुछ हैबिटेट सेंटर में करेंगे, फिर इंडिया इण्टरनेशनल का नाम सुना, फिर हुआ कि अक्षर में ही हो जाए। अब मेरा हस्तक्षेप ज़रूरी हो गया। सब मिलाकर तय हुआ कि उपेन्द्र कुमार जी के घर 189-दीनदयाल उपाध्याय मार्ग पर ही तीस-चालीस लोगों को बुला लिया जाए। सो आज वहाँ प्रीति-मिलन जैसा कुछ है। ठाकुर साहब वाली किताब भी दी जाएगी। इस बार यह भी सही। सुबह से फोन आ रहे हैं। अच्छा ही लगता है कि इतने सारे लोगों का मेरा होना ज़रूरी लगता है—औपचारिक ही सही...!

18.10.99

कल ज्ञानचन्द्र जैन की पुस्तक 'कथा-शेष' पढ़ डाली। अमृतलाल नागर के बाल-सखा ज्ञानचन्द्र ने अपने 65 साल के संस्मरण लिखे हैं। शायद दस साल की उम्र में दोनों साथ आए। मृत्यु के समय नागर जी की उम्र 75 वर्ष थी। शायद ज्ञानचन्द ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बॉसवैल की तरह उनके हर क्षण और उतार-चढ़ाव को देखा, हर क्षण को नोट किया और हर पत्र, काग़ज़ सँभालकर रखा। वे अक्सर नागर जी की रचनाओं के पहले पाठक, सम्पादक, संशोधक ही नहीं, लिपिक भी होते थे। जैनेन्द्र जी की तरह नागर जी भी बोलकर लिखाते थे। सुभाष चन्द्र यानी मुद्राराक्षस और प्रभाकर द्विवेदी से मेरा परिचय वहीं हुआ था। नागर जी की इस जीवनी को पढ़कर मुझे उनके साथ की न जाने कितनी बातें याद आती रहीं। गोकुलपुरा राजा मंडी के दिन, नागर जी का घनश्याम या अपने घर आना, घूमना, मिठाई खाना और दक्षिण भारत की यात्राएँ। उनके लखनऊ जाने पर मिलना बन्द हो गया था। मगर अक्सर कलकत्ते आते थे। मेरे विवाह के बाद 'मन्नू मियाँ' या 'मेरे असफल कथा गुरु' सम्बोधनों के साथ उनके अनेक पत्र। यह जीवनी पढ़कर सचमुच भीतर से कहीं अफ़सोस भी होता रहा। 'हंस' निकालने के कुछ समय पहले तक मैं उनसे खासा विरक्त हो गया था।

मैं उनमें संघर्षशील, स्वाभिमानी लेखक का रोल मॉडल देखता था। मैंने अपना एक कहानी संग्रह उन्हें समर्पित किया था, अमृतलाल नागर को, जिनका व्यक्तित्व मेरे मानसिक चेखव से मिलता है—या ऐसा ही कुछ। हालाँकि चेख़व की कहानियों का जो अनुवाद उन्होंने 'काला पुजारी' नाम से किया है, वह मुझे खासा नापसन्द है। हाँ, कहानियों, उपन्यासों में जो जीवन की सहजता है, वही मुझे उनका भक्त बनाती है। 'बूँद और समुद्र' के रामजी मेरे भले नहीं उतरे थे और 'अमृत और विष' की बाढ़ का वर्णन बहुत सतही लगा था—उसका औपन्यासिक उपयोग नहीं किया जा सका था। उनके प्रति मेरी विरक्ति का कारण था, मेरी निगाह में उनके स्वाभिमान का टूटते जाना। वे पिछले दिनों लगभग खुशामदी हो गए थे और सम्मानों-पुरस्कारों के लिए उनकी ललक लगातार बढ़ रही थी। हिन्दी प्रेम, हिन्दू होने का गर्व, अतीत यानी इतिहास-पुराणों के प्रति उनकी आसक्ति—सब मिलाकर उन्हें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के पास ले आई थी—हालाँकि मैंने 'हंस' के मुखपृष्ठ पर उनकी सुन्दर तसवीर छापी थी। 'कथा-शेष' पढ़कर लगा पश्चात्ताप हुआ। मुझे इतनी जल्दबाज़ी में अपनी राय नहीं बनानी चाहिए थी।

ज्ञानचन्द्र जैन ने उनके अर्थाभाव, संघर्ष के सजीव वर्णन दिये हैं। वे बहुत पारिवारिक व्यक्ति थे और बड़े होने के नाते घर-परिवार बच्चों की जिम्मेदारी का बोझ उठाए थे—कभी बम्बई फिल्मों में तो कभी लिखने के लिए आगरा लखनऊ भागते थे। स्वाभाविक था कि उन्हें झुकना भी पड़ता था और खुशामदें भी करनी पड़ती थीं—छुटभैये राजनेताओं और टुटपुजिया सम्पादकों को साधना भी पड़ता था—मगर अक्सर स्वाभिमानी ही थे। ज्ञानचन्द्र ने उनके घरेलूपने, पारिवारिक सन्दर्भों और जीवन के लिए संघर्षों का आत्मीय चित्रण किया है। सबसे ऊपर वे लिखने को लेकर पागल थे और मेरी निगाह में यही उन्हें श्रद्धास्पद बनाता है। मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ़ दो ही बातें अखरती रहीं—एक तो ज्ञानचन्द्र उनके जीवन के लगभग दर्शक बने रहे—कहीं हस्तक्षेप नहीं किया। आर्थिक रूप से कभी जुड़े हों, ऐसा कोई ज़िक्र नहीं है। हो सकता है, लखनऊ की वज़ादारी उन्हें इजाज़त न देती हो कि वहाँ उनकी आर्थिक तंगी में उन्होंने नागर जी की मदद की। दूसरे, संचित का कोई ज़िक्र नहीं है। संचित उनका सेवक था और जबसे मुझे याद है, मैंने उसे नागर जी के परिवार का अंग ही देखा था। बाद में शायद उसकी मृत्यु हो गई। जिस तरह प्रतिभा भाभी उनके साथ थीं, उसी तरह संचित साथ रहा। जैसे कोई मेरे व्यक्तिगत जीवन के बारे में लिखे और वहाँ किशन का ज़िक्र न हो—यह मुझे अच्छा नहीं लगेगा। जिस तरह किशन हर समय पैसे की बात करता है और मुझे लगता है, पैसे का ज़िक्र, हिसाब-किताब की बातें मेरे-उसके बीच संवाद बनाए रखने का एक माध्यम है—वर्ना हमारे पास कॉमन कुछ न हो। वैसे भी कुछ कहाँ है जिस पर हम बातें करें—कपड़े, पैसे या दो-चार विषय और। यही तो आत्मीयता के सेतु हैं।

बहरहाल 'कथा-शेष' नागर जी के व्यक्तित्व का गहरा विश्लेषण चाहे न करती हो, मगर उनके जीवन के तथ्य तो देती ही है। ज्ञानचन्द्र ने उसमें अपने-आपको बेहद तटस्थ और अदृश्य रखा है—कोई भी नैतिक निर्णय नहीं दिये हैं। प्रायः उनकी हर भटकन को वे बचा गए हैं। फिर भी मुझे यह मनमोहन ठाकौर की 'राजेन्द्र यादव, मार्फ़त मनमोहन ठाकौर' पुस्तक के मुकाबले अधिक मुकम्मल लगती है।

पन्द्रह अक्तूबर की रात को मैं भोपाल से लौटा हूँ। तेरह की रात चलकर चौदह को पहुँचा था। प्रेस काउंसिल और माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में सेमिनार था—अगली शताब्दी की पत्रकारिता पर। इस तरह के आयोजनों में अब अध्यक्ष या मुख्य अतिथि के रूप में ही जाना होता है। लगभग इस सम्मान की आदत ही हो गई है। डर लगता है कि कभी अगर यह सम्मान मिलना बन्द हो गया तो क्या मैं भी डॉ. नगेन्द्र जैसों की तरह 'दयनीय' हो जाऊँगा? पिछले दिनों के चुनावी दौर में जिस तरह मैं 'फोकस' में रहा, पत्र-पत्रिकाओं में बयान आए, उस सबको देखकर सोचता हूँ कि सचमुच क्या कभी मैंने ऐसी ऊँचाई की कल्पना की थी? फिर लगता है कि कोई सम्मान-वम्मान नहीं है, सब मुँह देखे की बातें हैं—बाद में पता नहीं लोग क्या-क्या कहते होंगे! अपने मन में भले ही सन्तोष दे लूँ कि मैंने ठसक के साथ अपनी शर्तों पर ज़िन्दगी बिताई है और पन्द्रह सालों से जिस तरह 'हंस' को केन्द्रीय पत्रिका बना दिया है वैसा शायद हिन्दी या किसी भी भारतीय भाषा में कभी नहीं हुआ। संस्कार या अभ्युदय, हम लोग सरस्वती, माधुरी, हंस की बातें करते हैं और धीरे-धीरे अतिरंजनाओं का जाल बनाते जाते हैं, जबकि सचाई यह है कि हंस के इस रूप की साहित्य में जो निर्णायक भूमिका रही है, वैसा कभी नहीं हुआ। नामवर सचमुच मेधावी और विद्वान व्यक्ति हैं, महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे हैं, अशोक वाजपेयी के पास सारे सरकारी देशी-विदेशी साधक थे। इसलिए इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँचाई में बोल पाए—मेरे पास तो कुछ भी नहीं था। आज जो है, वह खुद ही बनाया है। इस बात का गर्व तो है ही कि हंस को मैंने प्रतिरोध का प्रतीक बना दिया है—अगर कहीं प्रेमचन्द की आत्मा है तो वह बहुत दुखी नहीं होगी।

28 अगस्त को मेरा जन्मदिन था और उस दिन उपेन्द्र जी के लॉन में, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग पर सादा, मगर भव्य आयोजन था। साठ-सत्तर लोगों का खाना-पीना था। बेहद आत्मीय और खुला वातावरण और सभी निकट के लोग। सिर्फ सीमा और श्रीनन्द को जानबूझकर नहीं बुलाया था—तनाव हो जाता। मन्नू-टिंकू सभी थे। सभी कुछ ऐसा था कि दो-तीन दिनों लगभग नशा ही छाया रहा। टिंकू की शादी का समारोह याद आ गया।

तबीयत मोटे रूप से ठीक चल रही है, भूख नहीं लगती। कब्ज स्थायी है। डर सिर्फ यही लगता है कि किसी दिन अगर मशीन अचानक बन्द हो गई तो सब ठाठ पड़ा रह जाएगा। कितनी अधूरी बिखरी चीज़ें छूट जाएँगी। कौन ले जाएगा यह सारा तामझाम—समझ में नहीं आता, कैसे सँभालूँ?

25.11.99

'प्रसार भारती' प्रकरण समाप्त। अभी हंगामा है। इतना कि एक मिनट को चैन नहीं है। घर या अक्षर एक टेलिफोन रखता हूँ कि दूसरा बोलता है। अखबार वाले टेलिविजन के अनेक चैनल घेरे हुए हैं। हुआ यह है कि सुषमा स्वराज से लेकर प्रमोद महाजन और अरुण जेटली तक और बी.जे.पी. के सारे नेता बार-बार कहते रहे हैं कि मैं और रोमिला थापर 'लेफ्टी' हैं, गुजराल के दोस्त हैं और बी.जे.पी. के विरोधी हैं। गुजराल के दोस्त वाली बात गलत है, हाँ, हम वाम विचारधारा के हैं मगर किसी पार्टी के मेम्बर नहीं हैं, प्रसार भारती को यह सरकार बिल्कुल काम नहीं करने देती—हमारे पास अधिकार कुछ नहीं है, बोर्ड अधूरा है, न हमारे पास फाइनेन्स है, न सर्विस में हस्तक्षेप...हमारे पास किसी को दंड देने का अधिकार नहीं है। होने को प्रसार भारती स्वायत्त है, मगर जब सरकार को किसी आरोप का जवाब देने में असुविधा होती है तो ज़िम्मेदारी झटकने के लिए बोल देती है—हम क्या करें, प्रसार भारती स्वायत्त है। संसद में चन्द्रशेखर द्वारा घेरे जाने पर यही बार-बार प्रमोद महाजन कहता था। पिछले चुनाव में बार-बार वेंकैया नायडू से लेकर गोविन्दाचार्य तक यही कहते रहे कि इस राजेन्द्र यादव को हटाना है। अखबारों में निकलता था तो सब पूछते थे कि आप ही बोलते हैं, दूसरे क्यों नहीं बोलते? सही है कि चुनाव सम्बन्धी धाँधलियों, दूसरे प्रोग्रामों के बारे में सिर्फ मैं ही बोलता था—न रोमिला बोलती थी, न आबिद हुसैन। वर्गीज और यू.आर. राव का कोई स्टैंड नहीं था—मगर ये तीनों मेरी बातों से सहमत थे, मगर बाहर बोलते नहीं थे। शायद बड़े लोग थे और बाहर बोलना अपने स्तर के अनुकूल नहीं समझते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी 23 नवम्बर को हम सबके दो साल पूरे होने जा रहे थे कि अचानक फोन आए : आप और रोमिला निकाले जा रहे हैं। अखबारों में खबरें आईं और आखिरकार 22 नवम्बर को रात साढ़े सात पर पत्र आ गया कि आपका टर्म समाप्त...अब तीन दिनों से इस धाँधली को लेकर अखबारों में सम्पादकीय, वक्तव्य और दूसरी टिप्पणियाँ-भरे पड़े हैं—हिन्दी, अंग्रेजी की टी.वी. खबरें—और इधर राजनीतिक पार्टियाँ भी बोलने लगी हैं। परसों जनवादी लेखक संघ की एमर्जेन्सी मीटिंग थी। साझा आग्रह था, इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक मूल्यों की हत्या का मुद्दा बनाकर एक आन्दोलन का रूप दिया जाए। मैंने राजीव धवन से बात की। सुनते हैं, संविधान के मामलों का वह सर्वश्रेष्ठ वकील हैं, सुप्रीम कोर्ट के। राजनीतिक रूप से प्रबुद्ध और प्रतिबद्ध। मैं, प्रफुल्ल किदवई, जस्टिस सच्चर और राजीव धवन दस साल पहले नियोगी हत्या के बाद हुए भिलाई गोलीकांड की गैर-सरकारी इन्क्वायरी कमेटी में रायपुर (भिलाई) गए थे। दो दिन साथ रहे।

उसने उत्साह से सारे केस को सुना और राय भेज दी कि गैर-कानूनी है और इसे सुप्रीम कोर्ट में चैलेंज किया जा सकता है। हैदराबाद से जयपाल रेड्डी ने दो-तीन बार फोन किए कि हमें इस गैर-कानूनी कदम का हर तरह विरोध करना है। पूर्व न्याय एक्जीक्यूटिव ऑफिसर एस.एस. गिल के भी फोन आए। आखिर लेखक संघ ने तय किया कि हमारे ऊपर अयोग्यता का लांछन लगा कर हमसे जान छुड़ाई गई है, इसलिए दो याचिकाएँ डाली जाएँ—एक व्यक्तिगत और दूसरी जनहित। कुछ लेखक और अन्य सांस्कृतिक संगठन मिलकर शीघ्र ही यह याचिका डालें। मैंने व्यक्तिगत की स्वीकृति दे दी है। खर्चे के बारे में पूछा तो धवन ने कहा कि उसकी चिन्ता मत कीजिए—हम लोगों का एक संगठन है, वह यह सब करेगा...शायद आजकल में या अगले सप्ताह वह डाल दी जाए...इसमें सबसे ज़्यादा उकसाया है अरविन्द ने...।

अक्सर मैं अपने-आपसे पूछता हूँ कि क्या मुझे अधिकार छिनने का दुख सता रहा है? निर्द्वन्द्व जवाब मिलता है कि अधिकार का सुख कब था? सुविधा भी कोई नहीं थी—मीटिंग के दो हज़ार रुपयों के सिवा। न मैंने फोन का खर्चा माँगा, न यात्रा का। रेडियो, दूरदर्शन में जाने पर सिक्योरिटी वालों और दूसरों का अटैन्शन की मुद्रा में सैल्यूट देना, बड़े-बड़े अफसरों का सर-सर बोलना बेहद अटपटा लगता था और मन होता था कि मना कर दूँ...हाँ, जिसे सही समझता था या जो अपना कॉज़ लगता था, उसे लेकर न शब्दों को चबाया, न समझौता किया—सत्ता या सरकार से डरने का तो सवाल ही नहीं है। अब तो लड़ाई खुले में आ गई है। देखें...

और इसी धमा-चौकड़ी में विवाह की वर्षगाँठ 22 नवम्बर आकर चली गई। जवाहर चौधरी नहीं रहे। रचनाओं के ढेर लग गए। मन्नू को तो शायद याद भी नहीं था। हाँ, 13-14 नवम्बर को लखनऊ कथाक्रम में गया और शायद वहाँ अच्छा ही रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1.1.2000

नया वर्ष। सारे संचार माध्यमों में शोर है कि इक्कीसवीं शताब्दी शुरू हो गई, यानी दो सहस्राब्दियों के बाद तीसरी। दो हज़ार वर्षों के बाद नये मिलेनियम का पहला दिन। मेरे हिसाब से नया वर्ष ठीक एक साल बाद शुरू होगा। जब तक सौवाँ नहीं होता तब तक एक कैसे आएगा? मगर पता नहीं, कौन-सा हिसाब है कि नया वर्ष शून्य से शुरू होता है। बहरहाल, भयानक कन्फ्यूज़न है। सभी को लगता है कि मिलेनियम का हंगामा खड़ा करके बाज़ार ने अपने लिए दो वर्ष सुरक्षित कर लिए हैं—अब दो हज़ार और दो हज़ार एक के नाम पर अन्धाधुन्ध उपभोक्ता सामग्री, यानी गैर-ज़रूरी चीज़ें बेची जाएँगी। कल सरकार ने तीन उग्रवादियों को छोड़कर अपने 160 यात्री छुड़ा लिये। ये नेपाल से आनेवाले उस जहाज में बन्धक थे जिन्हें अपहर्ता लखनऊ से लाहौर, सऊदी अरेबिया और कन्धार ले आए थे। सात दिनों तक जहाज में कैद—नकाब-पोश हाई-जैकर्स की निगाहों के नीचे। सत्ताईस अबूधाबी में छोड़ दिये थे। सात दिनों से भयानक, रोमांचक नाटक चल रहा था। सभी मानते हैं कि सरकार ने गलती की और एक ऐसी शुरुआत कर दी है कि अब आगे ऐसे ही अपहरण होंगे और अपहर्ता अपनी शर्तें मनवाएँगे। हो सकता है, कन्धार में तालिबानों का ऐसा ही दबाव हो! मगर माना यह जा रहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय हो या घरेलू, इनसे सरकार चलानी नहीं आती। एक सौ साठ लोगों के बच आने की खुशी और भविष्य की दुश्चिन्ताओं के बीच नये साल की शुरुआत हो रही है।

29.8.2000

कल जन्मदिन था। पिछली बार की तरह उपेन्द्र कुमार के लॉन में पार्टी थी। खुला लॉन, खूबसूरत वातावरण और साठ-सत्तर लोग। खाना-पीना, गप्पें। कोई साहित्यिक कार्यक्रम नहीं। सिर्फ मित्र मिलन। पिछली बार खर्चा सारा संजय सहाय ने दिया था। इस बार शायद व्यक्तिगत कारणों से ठंडा था। दूर्वा में ज़्यादा उत्साह था। वह इधर अधिक आत्मीयता दिखाने लगी है। शायद उसे अपने साहित्यिक भविष्य के लिए मैं कुछ ज़रूरी लगने लगा हूँ। मगर सुन्दर अभिनेत्री है। मेरे जैसे न जाने कितनों से मिली होगी जीवन में!

इस बार मन्नू नहीं आई। नाराज़ है। कथादेश में छपे मेरे इंटरव्यू में कुछ वाक्य ऐसे आ गए हैं जिन्हें लेकर बहुत दुखी और क्षुब्ध है। नाराज़ निर्मला जी और अर्चना भी हैं। टिंकू और संयुक्ता भी प्रसन्न नहीं हैं। मैंने कह दिया कि मेरे अलग होने के कारणों में वैचारिक मतभेद और टकराहटें निर्णायक रही हैं—वह लगभग बी.जे.पी. की समर्थक है और मैं विरोधी। वैसे भी वह खाँटी घरेलू पत्नी है। मेरे 'इतर' सम्बन्धों को लेकर उग्र रही है। या ऐसा ही कुछ। मुझे लगा कि शायद मैंने उसे कहीं अधिक ही आहत कर दिया है। इसलिए साढ़े ग्यारह बजे सुबह हौज़खास पहुँचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
घर ठीक करा रही है। टाइल्स लेने गई हुई थी। बैठा रहा। वह आई डेढ़ बजे। मुझे देर हो रही थी। सिर्फ़ एक वाक्य 'मैं व्यक्तिगत रूप से माफी माँगने आया हूँ' कहकर चला आया। विश्वास था, इसके बाद ज़रूर आएगी। मगर नहीं आई।

इधर कुछ महीनों से मुझे लग रहा है, जैसे मेरे भीतर कुछ घटित हो रहा है। डर भी लग रहा है कि क्या यह 'अन्तिम तैयारी' है ? मन होता रहता है कि जो भी मुझसे नाराज़ है, सबसे क्षमा माँगकर खेद प्रकट करूँ। सचमुच अपने व्यवहार से मैंने अपने अत्यन्त आत्मीयों को नाराज़ कर लिया है। 11-12 को मैं डूँगरगढ़ था। वहाँ संस्कृति और समाज पर राजस्थानी प्रगतिशील लेखक-संघ का आयोजन था। सोचा, पास ही बीकानेर है, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का आग्रह भी रहता है। अगले दिन भालचन्द्र तिवारी और नवनीत पाण्डेय के साथ बीकानेर। 'चन्द्र' बहुत ही प्रसन्न हो गया। पता चला, अगले दिन उसके जन्मदिन पर उसका सम्मान है। रुक गया। कलकत्ते की यादें ताज़ा हो गईं। उसी दिन रातभर बस से चलकर जयपुर। माधवी का शुरू से आग्रह था। रक्षाबन्धन भी था। वहाँ बड़ी बेबी, सुमन—सभी थे। बहुत दिनों बाद पारिवारिक मिलन अच्छा लगा। निशू को लेकर माधवी से झाँय-झाँय भी हुई। बेचारी ने 'उत्साह में' मेरे लिए बहुत तैयारियाँ की थीं। शायद बीसियों साल बाद माधवी को रक्षाबन्धन के दिन रुपए दिये—वह तो मना कर रही थी, मगर सुमन और बड़ी बेबी के आग्रह के कारण लेने पड़े। मैं भावुक हो आया। 16 को लक्ष्मीनारायण जी को अपने विपश्यना कोर्स में पन्द्रह दिनों को जाना था। भीतर कहीं अनाम-सा बोझ था—लगा, हलका हो गया हूँ। एक धुन्ध-सा छँट गया है। अपने व्यवहार से क्यों सबको दुखी रखा जाए!

उसी तरह मुरलीमनोहर प्रसाद सिंह के कारण आगरा का प्रोग्राम स्वीकार कर लिया था। कार से सुबह जाकर शाम को आना था—27 को। कहीं भीतर यह भी था कि मीता से मिलकर उसकी खिंचाव को दूर करूँगा। सुबह निकले। गाड़ी ए.सी. थी, सड़क आरामदेह। आगरा में भयंकर बारिश हुई। पहुँचते हुए बारह बज गए। उन लोगों को आयोजकों के पास छोड़कर मैं सीधे पहुँचा ताज-नगरी—मनमोहन सेतिया के यहाँ मीता भी थी। क्षमा माँगने के मूड में था। लगभग एक घंटे साथ रहे। वहाँ से कार्यक्रम में। पाँच बजे निकलकर साढ़े आठ नौ तक दिल्ली...मुरली बाबू के साथ कविता भी थी। जो संकलन तैयार कर रहा हूँ, उसमें सहायता दे रही है। साँवली, गठीले बदन की जीवन्त लड़की है। लिखने की कोशिश करती है। बहुत पढ़ती है। लगभग पिता जैसा ही मानती है, लड़ती और ज़िद करती है। अक्सर में बीना-किशन उसे पसन्द नहीं करते हैं।

कभी-कभी एक वाक्य मन में कौंधता है कि 'जैसे राजेन्द्र जी को पूर्वाभास हो गया था कि उन्हें जाना है। इसलिए अपने आस-पास के सारे लोगों से मिलकर खिंचाव और दूरियाँ समाप्त कर रहे थे...बिगड़े सम्बन्ध सुधार रहे थे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल अचानक एक सज्जन आगरा से आ गए। वे रिटायर्ड प्रोफेसर थे और रामप्रसाद एंड सन्स के लिए बी.ए. के लिए कहानी-संकलन तैयार कर रहे थे। 'मेहमान' कहानी के लिए पन्द्रह सौ रुपए दे गए। अशोक महेश्वरी ने रॉयल्टी के हिसाब में तीस हज़ार का चैक भेजा। मन्नू के नाराज़ होने का बोझ और अपराध-बोध निरुत्साहित करता है।

पता नहीं, यह कैसा जन्मदिन था! इतने भव्य-स्तर पर जन्मदिन मनाना कहीं बहुत कुत्सित भी बनाता है—मगर लगता है, अरविन्द जैन, संजय, उपेन्द्र इत्यादि इसे परम्परा ही बनाने जा रहे हैं। सब मिलाकर दिन अच्छा रहा या व्यर्थता-बोझिल—तय नहीं कर पा रहा हूँ।

1.1.2001

आखिर एक शताब्दी पार कर ही ली, साल के साथ-साथ।

28.8.2002

पिछले दो-तीन वर्षों से अपने जन्मदिन पर अपने भीतर झाँकना छोड़ ही दिया है। डर लगता है या बचता हूँ? हो सकता है, जीवन की व्यर्थता का बोध हो या समय के सामने 'सम्पूर्ण-समर्पण' का भाव हो! सब मिलाकर स्वास्थ्य ठीक ही रहा है। आँखों की परेशानी है—पढ़ने में दिक्कत होती है। बचता हूँ। फिर भी कुछ-न-कुछ चलता ही रहता है। 'हंस' के सिवा अब कोई व्यस्तता नहीं है। राजनीति के भ्रष्टाचारी माहौल में जीवन और साहित्य की चिन्ताएँ दूसरे, तीसरे नम्बर पर आ गई हैं। इसी 23 अगस्त को 'राजकमल' की ओर से 'लेखक से मिलिए' कार्यक्रम हुआ था। भीड़ बहुत थी। शायद किसी लेखक के लिए ऐसे कार्यक्रम में नहीं हुई। त्रिवेणी कला-संगम का सभागार खचाखच भरा था। यही हाल था 'हंस' के वार्षिक आयोजन 'पुनर्जागरण' के वक्त 31 जुलाई को। प्रेमचन्द जयन्ती और हंस की वर्षगाँठ। सीटों के अलावा, गैलरी, सीढ़ियाँ ही नहीं, बाहर तक भीड़ थी और लगभग सौ लोग लौट गए। शायद किसी साहित्यिक प्रोग्राम में इतने लोग नहीं आए। अपनी सार्थकता और सन्तोष जैसा कुछ महसूस होता है।

मगर इस बीच जो सबसे विशेष बात हुई, वह यह कि मैंने दो कमरे का एक छोटा-सा फ्लैट खरीद लिया : पता है सैकिण्ड फ्लोर, एफ.-251, जनता गार्डन, पांडव नगर, दिल्ली-110091। लिया वस्तुतः किशन के लिए है। पास ही है। अक्तूबर अन्त में वह अपनी पत्नी और बच्चे को ला रहा है। अभी तो उसमें सोनी रह रही है। यह लड़की इसी साल अक्षर में आई और परिचित होती चली गई। बेटी जैसी लगती है। धनबाद की है और यहाँ जर्नलिज्म का कुछ करने आई है। माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय, नोएडा में एडमीशन हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पहले पीतमपुरा रहती थी। किशन अपनी पत्नी-बच्चे को अक्तूबर के अन्त में लेकर आएगा। तब तक फ्लैट खाली रहे, यह भी ठीक नहीं है। साफ बता दिया है कि तब तक खाली कर देना है। शायद जनवरी में ही दो बार फोन किया था। और मिलने आई। सुन्दर कहा जा सकता है। मैं चाहता हूँ कि सुनील से उसकी शादी हो जाए।

इधर सुनील नाम का यह लड़का पिछले दो साल से लगातार आ रहा है। साँवला, साँई बाबा जैसे बाल। बहुत कम बोलता है। दो घंटे बैठेगा और चार वाक्य बोलेगा। हर समय मिलने को उत्सुक रहता है। वह चाहता है, मेरे साथ अधिक-से-अधिक समय बिताए। दफ्तर वाले और विशेष रूप से किशन उसे कभी 'लम्बलोट जी' और कभी 'समर्पित जी' कहते हैं। निर्मला जी ने उसका नाम रखा है 'झब्बा'। विज्ञान, फिजिक्स और मैथ्स में बी.टेक और एम.टेक है। यहाँ कोचिंग करता है। पखवाड़े में दो दिन कुरुक्षेत्र जाता है, दो दिन कोटा। हर समय उसे मेरे साथ चिपका देखकर कुछ लोग चिढ़ते भी हैं। साहित्य का वाइरस लग गया है और बहुत किताबें खरीदता है। ज़ाहिर है, मैं उसका हीरो हूँ। अधिक-से-अधिक साहित्य के साथ रहकर साहित्यिकों और किताबों को सोख लेना चाहता है। उसका बस चले तो शायद मेरी तसवीर का तावीज़ बना ले। अविवाहित है और जौनपुर का रहने वाला है। यादव है। मेरे मना करने पर भी पाँव छूता है। बीसियों कुर्ते-कमीज़ें लाकर दे चुका है। कमाई काफी है। साहित्यिक प्रोग्रामों में मेरे साथ अपने खर्चे से जाता है। भोपाल, लखनऊ, जयपुर, सुजानगढ़, आगरा सभी जगह गया है। अब सितम्बर में गोवा जाने की ज़िद कर रहा है। कुछ लिखने की कोशिश करता है। अपने को सहज ढंग से व्यक्त नहीं कर पाता—रुक-रुक कर धीमे बोलता है। अक्सर यहाँ मयूर विहार आता है। गोष्ठियों में बैठता है। यहाँ भी खाने-पीने में खुले हाथ खर्च करता है। इधर अपने लिए कोई लड़की देख देने की बात करता है।

उसकी ऐसी भक्ति देखकर डर लगता है। भक्ति एक भावना है और कोई भी भावना स्थायी होती है—एक अति से दूसरी अति तक जाती है। दो-ढाई साल में वह मेरे बारे में सब कुछ जान गया है। कभी-कभी लगता है, इस उम्र में कोई-न-कोई ऐसा स्वयंसेवक होना ही चाहिए। तकदीर की बात भी दिमाग में आती है। किशन तो है ही। उसकी शादी हो ही चुकी है। परिवार यहाँ लाएगा तो उतनी निर्भरता खत्म करनी होगी। उस कमी को किसी हद तक शायद यह भरेगा। किशन आग्रह करने पर भी मेरे साथ दिल्ली से बाहर नहीं जाता। यह हर जगह जाना चाहता है। अभी मेरे जन्मदिन पर इसने मुझे एक गोल्डन टाइटन घड़ी लाकर दी है। ज़िद करता है कि सुनहरी चेन के साथ ही पहनूँ।

लिखते हुए शर्म ही आती है कि पिछले पाँच सालों से मेरा जन्मदिन दिल्ली की एक सांस्कृतिक घटना बन गया है। उपेन्द्र कुमार पहले राउज एवेन्यू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दीनदयाल उपाध्याय मार्ग) में रहते थे। वही आग्रह करके आयोजन करने लगे। अब वे तालकटोरा के पास 15 पार्क स्ट्रीट चले गए हैं और आयोजन वहाँ होता है। लगभग सौ लोग जमा हो जाते हैं। खाना-पीना-संगीत सभी कुछ। भाषण नहीं, सिर्फ मिलना-बैठना। लोगों में अजीब उल्लास। मैं नहीं मानता कि सभी मुझे प्यार करते हैं। दिल्ली में चूँकि इस तरह मुक्त मिलन की कोई सुविधा, अक्सर और जगह नहीं है इसलिए लोग जमा हो जाते हैं। बड़ा आडम्बरी (प्रिटेंशस) लगता है अपने जन्मदिन पर इस तरह गुड्डे की तरह बैठना। पिछली बार इस अवसर पर 'मुड़-मुड़ के देखता हूँ' आई थी—इस बार 'नरक ले जानेवाली लिफ्ट' संजय दूर्वा को समर्पित। ये दोनों गया से आए थे। बेहद उत्सवप्रिय लोग हैं, पार्टियाँ करना शौक है। अचानक श्रीलाल शुक्ल आ गए। गिरिराज टिकट बदलवाकर रुक गया। दूधनाथ था ही। दशकों बाद नामवर नहीं थे। उन्हें बनारस में भाषण देना था। प्रलय भी हो जाए तो वे भाषण देने का मोह नहीं छोड़ पाते। इतना हंगामी जन्मदिन शायद दिल्ली में कोई नहीं होता। इस बार पैसा दिया ए.सी. नैन ने। लालानी के मित्र। छह-सात साल से मुझसे भी मिलते-जुलते रहे हैं।

अगले दिन दूरदर्शन पर न्यूज़ थी—पार्टी के दृश्य थे। कह सकता हूँ कि अगस्त महीना लगभग मेरे ही नाम रहा। पहले 'हंस' के वार्षिक आयोजन की 31 जुलाई की हंगामी भीड़। हॉल भरा। सौ एक लोग लौट गए। फिर 23 अगस्त को राजकमल की ओर से लेखक-पाठक संवाद। राजेन्द्र भवन की तरह त्रिवेणी में भी अभूतपूर्व भीड़ और फिर यह...शायद एक लेखक इससे अधिक केन्द्रीयता की उम्मीद नहीं कर सकता। अगर मैं अपने मित्रों, पाठकों की इन उम्मीदों को पूरा नहीं कर पाता तो लानत है मुझ पर। फिर भी एक विश्वास तो होता ही है कि अगर लगन, निष्ठा और ईमानदारी हो तो एक लेखक बिना सरकारी संस्थाओं की मदद से सिर्फ दोस्तों, शुभचिन्तकों और पाठकों के बल पर सत्रह साल तक 'हंस' जैसी पत्रिका निकाले रख सकते हैं, गोष्ठियाँ करते रह सकते हैं और बिना कोई पद पाए भी सैलिब्रिटी बने रह सकते हैं।

मन्नू की 'सम्पूर्ण कहानियों' का शीर्षक है—नायक, खलनायक और विदूषक। क्या यह मेरी जीवनी का शीर्षक नहीं हो सकता?

28.8.2003 : 5.15 सुबह

सुबह का सपना था। कोई मेरी पीठ पर बेंत मारता है। जब भी कुछ गलत करता हूँ, मारता है। मैंने तय कर लिया है कि इस बार सीधे खड़े होकर कहूँगा कि 'अब मैं पिचहत्तरवें में लगा हूँ। अब तो इस तरह मत मारो?'—याद करने की कोशिश कर रहा हूँ कि यह अनकहा संवाद किससे हुआ था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

13.9.2003

पन्द्रह अगस्त को मैंने कलकत्ते फोन किया था। ठाकुर साहब के मृत्यु-दिवस पर। भाभीजी वहाँ नहीं थीं। पूना किया। भाभीजी ने बताया कि टिंकू की स्थिति खराब है। न कोई नौकरी, न व्यवसाय। सुमन पढ़ाने की नौकरी कर रही है। तभी से सोच रहा था कि क्या करूँ? व्यवस्था करने और मन बनाने में लगभग एक महीना लग गया। क्या मैं आर्थिक रूप से कुछ सहायता कर सकता हूँ? उधेड़-बुन रही। आखिर तय कर ही लिया और पचास हज़ार पहुँचाने के लिए संजय से कहा। बताया कि टिंकू यहाँ जब काम करता था तो उसके बहुत पैसे डूब गए। उनमें से एक व्यक्ति ने पचास भेजे हैं। अगर वह कलकत्ते जाए, या वहाँ व्यवस्था कर दे तो आसानी रहेगी। मैं ड्राफ्ट वगैरा नहीं बनवाना चाहता था। संजय ने परसों पहुँचवा दिये। कल टिंकू का फोन भी आ गया। शायद किसी बहुत नाजुक क्षण में ऐसा कोई जैस्चर एक मोड़ बन जाता है। टिंकू से मैंने भरे गले से यही कहा कि 'ठाकुर साहब ने मेरे साथ जितना किया, क्या उसका कर्जा चुकाया जा सकता है?' सब कुछ खोज-खरोंच कर भेजने में अपनी स्थिति शोचनीय हो गई है। पैसे तो मेरे थे, भेजे संजय के द्वारा थे—सुरक्षा और कम खर्च के कारण।

22.5.2004

मेरे साथ रहता है किशन का परिवार—पत्नी, बच्चा और वह खुद। किशन मेरा प्रतिरूप है—वह मेरे सरोकार, समाज, सम्बन्ध और सन्दर्भ सब जानता है। उसे मेरी हर सीमा और सपनों का पता है। मेरे परिचितों में कुछ उसे पसन्द हैं, कुछ नहीं। कुछ को वह बाकायदा घृणा करता है तो कुछ को बुलाने को उत्सुक रहता है। हो सकता है, संजय को इसलिए पसन्द करता हो कि वह सम्पन्न है, उसके पास गाड़ियाँ और ड्राइवर हैं, वह सौ-दो सौ उसे दे देता है। मगर पंकज बिष्ट इनमें से कुछ नहीं है, फिर भी उसे पसन्द है। वह राजनीतिक रूप से जागरूक है।

सुमित्रा बाईस-तेईस साल की लड़की है—स्वस्थ और खुश चेहरा। वह अपने बेटे को लेकर ही धन्य है और बाहर से सम्पर्क नहीं रखती। किशन उसे बहुत एनकरेज भी नहीं करता—अकेली सब्जी लेने जाएगी तो दुकानदार ठग लेगा। रिक्शा वाला बहका लेगा। वह हिन्दी बहुत ही कामचलाऊ जानती है। हाँ, टीवी सीरियल हम लोगों की अनुपस्थिति में शौक से देखती है। मैं चाहता हूँ, वह पढ़े।

ढाई साल का लड़का, राहुल, चंचल है और तबीयत खराब न हो तो बहुत कम रोता है। अब मुझसे हिल गया है, गोद में आता है तो चश्मा छीन लेता है, अपनी हर शैतानी पर हँसता है। सिरहाने की अलमारी की सारी दवाओं की शीशियाँ उलट-पुलट करता है। टेलिफोन के बटन दबाकर सुनने का नाटक करता है। सारे दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट्राइसिकिल पर बिना पैडलों पर पैर रखे इधर से उधर भागता है। छोटा-सा बच्चा मुझे अच्छा लगता है, घर में चहल-पहल, रोना, डाँट चलता ही रहता है। सबसे रोमांचक है एक बच्चे में बनती और बढ़ती हुई समझ...सम्बन्धों, चीज़ों और भाषा की। निश्चय ही परिवेश और अनुकरण के सहारे। ताज्जुब होता है, एक बड़ा होकर यही चोर, डाकू, हत्यारा या विद्वान, सन्त और विचारक भी बन जाएगा। अभी पूरी तरह हम पर निर्भर है, फिर भी अपनी पसन्द-नापसन्द आक्रामक ढंग से व्यक्त करता है। धीरे-धीरे यह विकसित होकर स्वतंत्र इच्छा शक्ति बनेगी। बहरहाल एक भरे-पूरे व्यक्ति को इस बीज रूप में देखना चकित भी करता है। क्या मैं भी कभी ऐसा ही रहा होऊँगा? समय, समाज से ऊपर बच्चा प्यार और वात्सल्य जगाता है। पता नहीं, इन्नोसेंट होता है या नहीं, मगर आदिम तो होता ही है, जिसकी प्रवृत्तियों को हमारे सम्पर्क में आने विकसित और विकृत होने का मौका नहीं मिला। जिसे इन्नोसेन्स कहते हैं, वह वृत्तियों के विकास से पहले की स्थिति है, वर्ना न दयालु होते हैं, न मानवीय—वे बहुत स्वकेन्द्रित, स्वार्थी और दूसरों के लिए विद्वेष, हिंसा से भरे होते हैं। उनका हमारे ऊपर निर्भर होना ही हमें पिता-माता या बड़ा होने का अहसास देता है। वे हमारे 'अहं' को तृप्त करते हैं और बच्चे इसे समझ कर इसे एक्सप्लॉयट करते हैं। उनकी हँसी, रोना, खेलना, झगड़ना सभी मुझे विस्मित करता है। निर्भर है इसलिए निर्द्वन्द्व विश्वास करते हैं। बहरहाल राहुल अपनी सबसे प्यारी उम्र में है।

अजीब बात है, सुमित्रा एक स्त्री उपस्थिति के सिवा कुछ भी नहीं है। हँसमुख है और काम के छोटे-छोटे वाक्य हिन्दी में बोलने की कोशिश भी करती है। मगर मेरे लिए वह पानी लाती, कुछ देती, घंटी पर दरवाज़ा खोलती या राहुल को लाने-ले जाने को बाँहें फैलाती चलती हुई गुड़िया या हाथ और पाँव है। उसे लेकर और कोई बात मुझे ध्यान ही नहीं आती। धीरे-धीरे मशीनों को चलाना बन्द करना सीख जाएगी, शायक हिन्दी में बातें भी करने लगेगी—मगर वह मुझे बिजली-पानी की तरह एक घरेलू सुविधा ही लगती है। धिक्कारता भी हूँ कि आखिर वह भी एक जीती-जागती स्त्री है, कभी मैं स्वयं उसके बारे में कुछ भी जानने की कोशिश क्यों नहीं करता? क्या उसके मन में नहीं आता होगा कि उसे भी एक स्त्री या व्यक्ति की तरह देखा जाए—जैसे मैं यहाँ आनेवाली दूसरी स्त्रियों को देखता हूँ। स्त्री है : कौन क्या है, उसे सूँघने की दृष्टि तो उसके पास है ही...

मगर ये तीनों मेरे साथ नहीं रहते। एक डेढ़ किलोमीटर दूर दूसरे अपने छोटे-से फ्लैट में रहते हैं, हाँ मेरी ज़रूरी और सुविधा के अनुसार मेरे साथ होते हैं—किशन को मैंने मोबाइल दिला दिया है—वक्त-बेवक्त सम्पर्क के लिए। रात को कमल, किशन का भाई, रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1.8.2004

कल 31 जुलाई को प्रेमचन्द-जयन्ती थी—125वीं। 'हंस' ने भी अठारह साल पूरे कर लिए। राजेन्द्र भवन में हर बार की तरह हमारा आयोजन था। विषय था—'भारतीयता की अवधारणा' बोलनेवाले—इम्तियाज़ अहमद, शेषाद्रि चारी, अल्पणा राय, गोपाल गुरु और आनन्द कुमार। संचालन किया—रामशरण जोशी ने। चार-पाँच बार की तरह भीड़ बहुत थी। हॉल भरा था, गलियारों और सीढ़ियों पर लोग थे, बाहर सौ-सवा सौ लोग लौट गए थे। सचमुच अब 'राजेन्द्र भवन' छोटा पड़ने लगा है। कमानी या फिक्की हम एफोर्ड नहीं कर सकते। राजेन्द्र भवन हमें फ्री ही नहीं मिलता, चाय-नाश्ता भी वे ही लोग देते हैं। शायद दिल्ली का यह सबसे बड़ा साहित्यिक आयोजन है। प्रसन्नता यह है कि विद्यार्थी आते हैं—आधे से अधिक वे थे जिनकी उम्र 30 के आस-पास थी। हाँ, मुझसे एक गलती हो गई। सारा आयोजन अभय कुमार दुबे के साथ मिलकर तय किया गया था, मगर मैंने संचालक का नाम अपने निमंत्रण में नहीं दिया, क्योंकि मन में जोशी को बनाने की बात थी। मुझसे लोगों को शिकायत है और शायद सच है कि ऐन टाइम पर अपने नहीं याद आते। जोशी के साथ हफ्ते में एक-दो बार बैठना हो ही जाता है। इसलिए इस बार उन्हें ही लिया। अगली बार निर्मला जी या और मित्रों को लूँगा। इसी दृष्टि से देहरादून से ओमप्रकाश वाल्मीकि को बुलाया। विशेषांक को जारी करना था।

लगता है, अब यह सब रूटीन में आ गया है। न पहले जैसा तनाव होता है, न घबराहट। सब कुछ चलता रहता है। जब हमारे यहाँ यह आयोजन हो रहा था तभी कुछ दलित साहित्यकार (सुभनाक्षर) प्रेमचन्द की 'रंगभूमि' को जन्तर-मन्तर पर जला रहे थे, क्योंकि सूरदास के लिए 'चमार' शब्द का प्रयोग किया गया है। मगर सचमुच लिखनेवाले हमारे यहाँ थे। सुमनाक्षर राजनेता है और उसने सारे मुद्दे को 'पुस्तक जलाओ' आन्दोलन में बदल दिया था।

1.9.2004

पिछला एक महीना काफी हंगामे में गुज़रा। हालाँकि जन्मदिन 28 अगस्त को था, लेकिन लगता है, सारा महीना ही वह बना रहा। पहले 22 को दलित लेखक-संघ ने लोदी रोड पर 'भारतीय सामाजिक संस्थान' में मनाया। बारिश के बावजूद हॉल भरा ही था। फिर 27 को चन्द्रभान प्रसाद ने अपने घर बुलाया—साठ-सत्तर लोग थे, मुख्यत: दलित लेखक। फिर शिवनारायण सिंह के घर भारत भारद्वाज ने आयोजित किया। साफ-सुथरा-व्यवस्थित। सौ-सवा सौ लोग यहाँ भी थे—पीना, खाना और गप्पबाज़ी...पिछली बार दो सौ से ऊपर हो गए थे, उपेन्द्रजी के यहाँ 15 पार्क स्ट्रीट पर। पाँच-छह सालों से वहीं होता रहा है और मुख्य रूप से ए.सी. जैन करता रहा था। इस बार चूँकि वह ठंडा था इसलिए शिवनारायण के यहाँ रहा...हाँ, भारत भारद्वाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और साधना अग्रवाल की बहु-प्रचारित किताब 'हमारे युंग का खलनायक' तैयार नहीं हो पाई। इस सबको लेकर भारत कुछ अतिरिक्त उत्साह में है।

तो यह रहा जन्म-मास...राजेन्द्र जी 75 के हो गए। पता नहीं, पूरा किया या प्रवेश...पहली बार मीता का फोन नहीं आया। अगले दिन पता चला, बीमार है...क्या मुझे देखने जाना चाहिए? मीता, नामवर और प्रकाश दीक्षित—यही तो कुछ लोग हैं जिनके साथ पचास साल बिताए हैं—मनाया उसे जाना चाहिए...

वही आदिम सवाल : कितने दिन के मेहमान और राजेन्द्र जी...कभी-कभी अपने मरने पर औरों की प्रतिक्रिया के चित्र आते हैं? बाद में इस फैलावे को लेकर भी चिन्ता होती है। एक महीने पहले मैंने अक्षर के सभी लोगों को बुलाकर मीटिंग भी की थी : आप लोग यह मानकर चलते हैं कि मैं हमेशा रहूँगा? कल अगर कुछ हुआ तो क्या ताला लगा दिया जाएगा? किसी विकल्प की बात सोचिए...मैं नहीं जानता, अक्षर कौन सँभालेगा। मेरे दिमाग में अभी भी पंकज बिष्ट का ही नाम आता है। ट्रस्ट के लोग, विशेषकर टिंकू-दिनेश ही सब देखेंगे...मगर फिर सोचता हूँ कि सारे बचपने के बावजूद गौरीनाथ भी शायद सँभाल ले...हाँ, उसे पंकज का परामर्श चाहिए...घर के सामान को टिंकू तय करे...किशन के काम का जो भी हो, वह ले ले...गाड़ी तो उसे ही मिलनी चाहिए, ताकि टैक्सी या ऐसा ही कुछ काम कर सके। जल्दी ही घर भी उसके नाम करना है...

यह जन्मदिन के नाम पर अभी-अभी जो महीना गुज़रा है, क्या वह मुझे लेकर ही था? क्या मैं ही इसके केन्द्र में था या मैं भी औरों की तरह सिर्फ एक दर्शक शुभचिन्तक था और जिसका दिन था, वह कहीं दूर बैठा था—या था ही नहीं? लगभग दस-बारह सालों की ऐसी कुछ तटस्थता आ गई है कि पचहत्तर हों या अस्सी, क्या फर्क पड़ता है? जैसे पहले दो चार बलात्कार के बाद शायद वेश्या सोचती है कि अब बलात्कार करनेवाला एक व्यक्ति हो या दस—क्या फर्क पड़ता है...सवाल अपने-आपसे भी होता है कि यार राजेन्द्र, पता नहीं, कब से जीते ही चले आ रहे हो, अब कब तक यह नाटक चलेगा? डर जैसा भी है कि शायद अगला दृश्य आए ही नहीं...शायद यही कारण है कि पिछले आठ-दस सालों से डायरी लिखने का मन ही नहीं होता—जब मन को न कुछ छूता है, न मथता है तो औरों के लिए दिनचर्या के ये विवरण देकर क्या करना है? अब या तो सभी कुछ प्रैडिक्टेबिल है या इनसिग्निफिकेन्ट...भीतर का उद्वेग भी अब पहले जैसा नहीं कचोटता...अजीब बात है कि भावना के केन्द्र के रूप में अब टिंकू बनी रहती है। उसकी बात सोचते हुए भावुक होने लगता हूँ—शायद रक्त का जुड़ाव..पिछले दसियों सालों से यही सवाल चुभता रहता है—सत्तर हो या अस्सी, अभी तक ऐसा क्या कर लिया जो आगे जाकर याद रहेगा...शायद सबसे ज़्यादा निन्दित-प्रताड़ित या सबसे ज़्यादा प्रशंसित और 'प्यारित' (लव्ड) आप हमारे प्रेरणा-पुरुष हैं, संस्कृति पुरुष हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने स्त्री-दलित-विमर्श को हिन्दी की मुख्यधारा बना दिया। ऐसा ऐतिहासिक काम तो कभी किसी ने नहीं किया। दूधनाथ अपने 'कथाक्रम' वाले इंटरव्यू में कहता है कि जो काम प्रेमचन्द ने नहीं किया, वह राजेन्द्र यादव के 'हंस' ने कर दिखाया है—माई फुट...साले, तुम्हें पता ही नहीं है कि मैंने कुछ भी तो नहीं किया। मैं करने लायक ही नहीं था—न नामवर जैसा अध्ययन, स्मरणशक्ति, योजनाबद्धता और षड्यंत्रकारी दिमाग...बस, जो सामने आ गया, वह कर दिया और बैठकर श्रेय लूटते रहे—इम्पोस्टर, ऐयार...अब तो पहले जैसी मानसिक एकाग्रता भी नहीं रही जब एक बार में ही सम्पादकीय या दूसरी चीज़ें लिख देता था। अब तो चार-पाँच बार भाषा सुधारनी पड़ती है, तथ्य जोड़ने-घटाने पड़ते हैं और 'यह क्या कूड़ा लिखा है?' का धिक्कार खुद ही अनसुना करना पड़ता है। क्या मैं सचमुच वीतराग हो गया हूँ या संवेदन-शून्य—न तारीफ विचलित करती है, न प्रशंसा विगलित। दिन में दो-चार लोग तो ऐसे आते ही हैं जो मेरे महान होने की तस्दीक करते हैं। मैं मन में बोलता रहता हूँ कि बस कर यार, एक कप चाय पी और फूट ले...आश्चर्य इस पर भी होता है कि अब तो बाकायदा बूढ़ा हूँ मगर कहीं से रत्तीभर नहीं महसूस होता...दूसरों को देखता हूँ तो लगता है कि देखो साला साठ-पैंसठ में ही कैसा खड़ूस लगता है...कहीं ऐसा तो नहीं है कि लगता मैं भी हूँ, मगर अपने को मुग़ालते में बनाए रखता हूँ—दूसरे भी 'युवा-युवा' कहकर इस झूठ को शह देते रहते हैं...

हाँ, इधर शरीर उम्र दिखाने लगा है—बाँहों की खाल झूलने लगी है। आँखों में ग्लूकोमा है, छाती में जलन रहती है, भूख नहीं लगती, हर ग्रास को पानी से ठेलना पड़ता है। लगभग सारे टैस्ट हो गए हैं, चिन्ताजनक कुछ नहीं लगता। हाँ डायबिटीज़ के लिए जो परहेज़ चाहिए, वह बिल्कुल नहीं रख पाता—सब खाता और पीता हूँ। अब जो हो, सो हो...लगता है, चार-पाँच साल कुछ नहीं होना...फिर भी कहीं हर चीज़ और व्यक्ति को देखकर लगता है : ये छज्जे ये चौबारा...अब आना न दोबारा...

21.10.2004

कॉपी साइज़ की एक डायरी है—तीन सौ पन्ने की। और उस पर हाथ से लिखा गया है एक उपन्यास। शुरू करने की तारीख है—7-3-46, बुधवार, रात्रि 9.30 के आसपास। लगभग हर बार लिखे जाने की तारीख हाशिए में पड़ी है। 306 पन्ने। समाप्त किया गया है : 26-8-46, मध्याह्न 12 बजे। उपन्यास अध्यायों में बँटा है। लिखाई तब अपना स्थायी रूप लेने लगी है—लेखक हैं राजेन्द्र यादव। उपन्यास का कोई शीर्षक नहीं है। झाँसी में इसे शुरू किया गया था। बीच में आगरा आ गए, कुछ दिनों पिताजी के पास सुरीर भी गए और फिर आगरा...तब मेरी उम्र क्या रही होगी? 28 या 29 से भी हिसाब लगाएँ तो 17-18 का रहा होऊँगा...दसियों सालों से सोचता हूँ, इन दो उपन्यासों को नष्ट कर दूँ, मगर हर बार उलटने-पलटने पर मोह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो आता है और वापस रख दिया जाता है—एक उम्र और समय का दस्तावेज़ है, इसे सुरक्षित ही रहना चाहिए।

उपन्यास बेहद-बेहद कच्चा, अनगढ़ और लगभग अपठनीय है : सबसे ज़्यादा क्षोभ होता है भाषा पर। छायावादी, तत्सम शब्दों से भरी नकली भाषा जहाँ 'हृदय औदास्य से परिपूर्ण हो जाता है और अपनी महती दुर्बलता के कारण शैलेन्द्र लज्जित होता है।' पढ़ते हुए खुद बेहद शर्म आती है और सब कुछ फाड़कर फेंक देने को मन करता है। फिर सवाल यह भी उठता है कि इस सबको सँभाल-सँभाल कर रखने से क्या फ़ायदा—ये कच्चे अनगढ़ उपन्यास, डायरियाँ, पत्र—सब इसलिए नष्ट नहीं कर देने चाहिए कि इनमें बचाव की अपनी ही नंगी तसवीरें हैं, बल्कि इसलिए भी इनका कोई महत्त्व नहीं है कि नए लोगों में से किसी को इनकी ज़रूरत नहीं है...शायद फ़ुरसत और धैर्य भी नहीं होगा कि मैग्नीफाइंग ग्लास लगा कर श्रीमान राजेन्द्र यादव के मानसिक-विकास का इतिहास लिखें...बहरहाल तय नहीं कर पा रहा कि इनका क्या करूँ—उस उपन्यास के अलावा सन् 45 में लिखा गया एक और उपन्यास है, डायरियाँ हैं। पढ़ते हुए डरता हूँ कि वह सब इससे भी खराब होंगे। शायद 42-43 में दस-बारह खंडों में एक तिलिस्मी उपन्यास भी लिखा था, नाम था 'देवगिरि'। याद है, उसकी पाण्डुलिपियों को भूपेन्द्र का एक दोस्त वसन्त ले गया था और वह कहीं खो गया होगा...देवगिरि में यादवों के गौरवशाली इतिहास को आधार बनाया गया था।

फूहड़, अनगढ़ और अपठनीय भाषा में लिखे गए उस उपन्यास को चूँकि इन दिनों ही पढ़ा है इसलिए उस मानसिक दुनिया को समझना ज़रूरी है : शायद उस समय के युवा की मानसिक दुनिया का कोई नक्शा समझने में सहायता मिले। उस समय स्वतंत्रता मिलने में एक-डेढ़ वर्ष की देर थी और वातावरण में आजाद हिन्द फौज की गूँज थी। कैप्टन शाहनवाज, ढिल्लो और लक्ष्मी पर लालकिले में मुकदमे चल रहे थे। बम्बई में कॉलिज विद्रोह, हो रहा था। युवक कुछ करने को बेचैन थे—मगर न तैयारी थी, न बाहर निकलने के अवसर। उसी समय के एक छोटे से परिवार की यह कहानी कुछ इस तरह है।

शैलेन्द्र झाँसी या किसी दूसरे शहर से आगरा आया है। पिता का तबादला आगरा हो गया है और वहाँ रहनेवाले मामा की मदद से उसे यहाँ मकान लेना है। ज़ाहिर है, मामा का यह मकान राजामंडी का हमारा पुराना मकान ही होगा। सारा लोकल ही राजामंडी और आस-पास का है। शैलेन्द्र निहायत झेंपू, शर्मीला और चुप्पा है, उसके मुँह से आवाज़ नहीं निकलती और किसी से आँखें मिलाकर बात नहीं कर पाता। मामी, उनकी दो बेटियाँ—निशा और निरुपमा के सामने तो उसकी ज़बान ही नहीं खुलती। मामा बीच-बीच में सिर्फ आते-जाते हैं। उपन्यास में न मामा की कोई भूमिका है, न पिता की—वे बस हैं। पहले आग्रह होता है कि वे सब साथ ही रहें, फिर पड़ोस का दूसरा मकान 30 महीने के किराए पर तय हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लगता है, दोनों मकान एक ही हैं और उनकी छतें मिली हुई हैं। कहानी इन्हीं दो घरों के अन्दर ही घटित होती है। शैलेन्द्र की बहन रेखा और निशा हमउम्र है, निरुपमा 12-13 वर्ष की है। निशा-रेखा 16-17 की होंगी।

वस्तुतः पूरा उपन्यास एक बहस है—उस समय का युवक जिस बौद्धिक और भावनात्मक तूफानों से गुज़र रहा था उसे लेकर ही धुआँधार भाषणबाज़ियों से पन्ने-दर-पन्ने भरे पड़े हैं। ये सारी बहसें दोनों बहनों के साथ ही हैं, बाद में मुखर्जी नाम का एक दोस्त भी शैलेन्द्र के साथ जुड़ जाता है। हिन्दू मध्यवर्गीय परिवार के भीतर लगातार चलती ये बहसें बहुत ही बचकानी हैं। शैलेन्द्र आदर्शवादी हिन्दू युवक है और पश्चिमी सभ्यता से बेहद चिढ़ता है। पुराने विचार, संस्कार, पूजा-पाठ, सभी कुछ उसे भारतीय लगते हैं। वह खद्दर पहनता है और धोती-कुर्ते में रहता है। साड़ी या मिलों के कपड़े पहननेवाली निशा और रेखा उसे पश्चिमी सभ्यता के पीछे पागल लगती हैं। श्रृंगार-पटार का तो सवाल ही नहीं है। शैलेन्द्र दोनों को अपनी लाइन पर लाना चाहता है। खुद शायद इंटर का इम्तिहान दे रहा है। पिता और मामा दोनों ही सरकारी नौकरियों में हैं। रहन-सहन, चाल-चलन को भारतीय यानी हिन्दू संस्कारों में ढालने की बहसें घर के अन्दर होती हैं और राष्ट्रीय स्तर पर बहसें बाहर मुखर्जी के साथ—परिवहन के साधन या तो ताँगे हैं या साइकिलें। ज़ाहिर है, रिक्शा नहीं आया है। दोनों दोस्तों के भीतर गुलामी से छूटने और कुछ करने के वलवले हैं मुकर्जी, शैलेन्द्र को जिस संघ के दफ्तर में ले जाता है, वह राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ है—जहाँ लाठी-भाला, तलवार चलानी सिखाई जाती है—शायद कुछ बम-वम बनाने की बातें होती हैं। शायद तब भगतसिंह इत्यादि के आदर्शों से प्रेरित—इस तरह की अंडर-ग्राउंड गतिविधियों को षड्यंत्रकारियों का नाम दिया जाता है। इन षड्यंत्रकारियों का काफी गुणगान है। शैलेन्द्र क्रान्ति करने की बात करता है जिसका दर्शन हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान है। ये लोग अपना एक अलग दल बनाते हैं जो आज़ाद हिन्द फौज के मुकदमों के समाप्त होने या नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जन्मदिन पर जुलूस निकालने की तैयारी में है। पुलिस के डर के साथ यह भी आशंका है कि लीगी मुसलमान भी हमला करेंगे। यहाँ बाहरी दुश्मन अंग्रेज और पश्चिमी सभ्यता है जिसे क्रिश्चियेनिटी से घाल-मेल कर दिया गया है। भीतरी दुश्मन मुसलमान हैं। घर के अन्दर अपनी बहसों, रूठने-मनाने के नाटकों के साथ शैलेन्द्र निशा, रेखा और निरुपमा को स्वयं-सेविकाएँ बना रहा है। रेखा खुला विद्रोह करके असहयोग कर देती है, धीरे-धीरे विदेशी सभ्यता से निशा निकलकर शैलेन्द्र के सपनों के हिसाब से क्रान्तिकारिणी बनने लगती है। निरुपमा चुप है, मगर शैलेन्द्र के गहरे प्रभाव में है। शैलेन्द्र और अन्य युवकों की कल्पनाओं में राष्ट्रीय झंडा लेकर जुलूस के आगे-आगे चलनेवाली यह युवती है जिसे न गोलियों की परवाह है, न लाठियों की। भारत माता की यह तसवीर शायद तब हर युवक को भावुक उत्तेजना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भर देती थी। शैलेन्द्र 'सुनीता' उपन्यास पढ़कर उसे अपने ढंग से जीना चाहता है। जुलूस वाले दिन परिवार वाले निशा को घर से बाहर नहीं निकलने देते और हताश होकर शैलेन्द्र अपने को कमरे में बन्द कर लेता है। जुलूस का नेतृत्व करती है निरुपमा—अगले दिन इस समाचार के साथ शैलेन्द्र की आत्महत्या की खबर भी छपती है। बाद के पचास पृष्ठों में उपन्यास काफी नाटकीय हो गया है।

मैं सोचता हूँ कि उपन्यास काफी प्रतीकात्मक है। शैलेन्द्र की जो भी मानसिक बनावट और वैचारिक अपरिपक्वता थी, उसे देखते हुए आत्महत्या ही उसकी परिणति थी। शैलेन्द्र कच्ची और किशोर भावुकता का शायद प्रामाणिक दस्तावेज़ है—यही युवक आगे चलकर 'सारा आकाश' में इस पारिवारिक भारतीयता की दमघोंटू रूढ़ियों से बाहर निकलने के लिए छटपटाता है—हालाँकि 'प्रेत बोलते हैं' में वह भी आत्महत्या ही करता है, मगर 'सारा आकाश' में उसे दुराहे पर ला खड़ा किया गया है। उपन्यास में शैलेन्द्र का छोटा भाई हरेन्द्र है जो विद्रोही है और शैलेन्द्र को पागल-सनकी मानता है, वह बिगड़े हुए लड़कों के साथ 'रेस्टुरेण्ट' में ऑमलेट खाने या छोटा-मोटा जुआ खेलने में अपना विद्रोह दिखाता है। बाप की जेब से दस रुपए निकाल लेता है। ज़ाहिर है, उसे बिगाड़नेवालों में मुसलमान लड़के भी हैं। अंग्रेजी कपड़ों और भाषा के दीवाने कवि रजनीश हैं जो बाद में शैलेन्द्र मुखर्जी के प्रभाव में राष्ट्रीय हो गए हैं।

कच्ची, प्रारम्भिक और परम्परागत हिन्दू रूढ़िवादिता को ही भारतीय-सांस्कृतिक समझने, प्रचारित करनेवाले युवाओं की बनावट का दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है, उम्र में उभरती सैक्सुएलिटी। सच पूछा जाए तो यह शैलेन्द्र और निशा के बीच पनपती और विकसित होती प्रेम-कहानी ही है जिसे दोनों ही स्वीकार नहीं कर पाते। निशा ममेरी बहन है और 'भाई साहब' कहती है। सारी कमज़ोरियों और कच्चेपन के बावजूद मुझे यह किशोर होते युवक की प्लेटोनिक या 'काफ लव' की बेहद प्रामाणिक कहानी भी लगती है। कहानी के अन्त की ओर अँधेरी छत के एकान्त में शैलेन्द्र निशा से एक 'चुम्बन' की माँग भी करता है और 'निशा' झिड़क देती है कि 'भाई साहब, आपके मस्तिष्क में यह कुत्सित बात आई कैसे' इस पर वह उससे दूसरी प्रतिज्ञा लेता है कि वह 'देश' को कभी-कभी नहीं भूलेगी। इस सबके बावजूद शैलेन्द्र के मन में यह आकर्षण बना रहता है जो स्पर्श की झिझकती कोशिशों में अपने को व्यक्त करता है। अपने झेंपू युग में शैलेन्द्र का एकमात्र नशा है—पतंग उड़ाना। आधे से ज़्यादा कहानी इसी पतंगबाज़ी से भरी पड़ी है। चाहे कुछ हो जाए, रोज़ शाम को उसे पतंग उड़ानी ही है, साथ में कभी निशा होती है, कभी निरुपमा। निशा के प्रति इस लगाव से रेखा लगभग छिटकी रहती है, खुलकर कुछ नहीं कहती। मुझे लगता है, आसमान में रंगबिरंगी उड़ती हुई पतंगें शैलेन्द्र के सपनों की ही प्रतीक हैं—जो आगे जाकर अपना रूप ग्रहण करने लगती हैं। अन्त की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वह ज़्यादा ठोस बहसों और गतिविधियों में शामिल होने लगता है तो यह पतंगबाज़ी कम होने लगती है। आसमान में दो पतंगों की सहयात्रा निशा और शैलेन्द्र की अगली कहानी की रूपरेखा भी दिखाती है जहाँ एक पतंग काफी दूर साथ-साथ उड़ने के बाद बिछुड़ जाती है।

अनकहे प्यार और अनसमझी राष्ट्रीयता की यह भावुक-रूमानी कहानी मुझे अपनी मूल-रूपरेखा में काफी जटिल और एक ज़रूरी दस्तावेज़ की तरह लगती है। शायद मन के भीतर कहीं यही बात रही होगी कि मैं हर बार उठाकर नष्ट करने को स्थगित कर देता हूँ। हालाँकि भाषा, वर्णन और निहायत महत्त्वहीन बातों को लेकर कहानी जितनी लद्दड़, उबाऊ और सचमुच बचकानी है कि हर पन्ना पढ़ते हुए शर्म से डूब मरने की इच्छा होती है। हालाँकि यह तत्सम शब्दों से भरी बनावटी भाषा भी कथ्य के नकली, झूठे और अधकचरे विचारों का ही एक हिस्सा लगती है। अंडा फोड़कर बाहर निकलता हुआ चूजा शायद इतना ही घिनौना, गिलगिला और बीभत्स लगता होगा...

22.10.2004

चार-पाँच साल बाद मैंने ठीक इसी बहन-प्रेम पर अंचल का उपन्यास 'महिमा' पढ़ा, गुरु-गम्भीर भाषाशैली में लिखा गया 'शेखर' पढ़ा—और बाकायदा शारीरिकता पर बदनाम द्वारिका प्रसाद का 'घेरे के बाहर' पढ़ा—सभी में भाइयों के प्रेम और आदर्शों में साथ न दे पानेवाली बहनों की कहानियाँ हैं। युवक का साथ न दे सकनेवाली या बीच में ही साथ छोड़ देनेवाली स्त्री ही आगे जाकर नई कहानियों की आधार-भूमि बनी। यह सन् '40- '50 के बीच की ऐसी सचाई है, जिसे हम शायद याद भी नहीं करना चाहते। अब ये बहुत दूर की स्मृतियाँ हो गई हैं। नई कहानी तक पहले के कथा-साहित्य को पढ़ते हुए जो एक बात बार-बार ध्यान आकर्षित करती है, वह स्त्री के प्रति अदम्य आकर्षण, साथ-साथ स्त्री-देह को नकारने की सावधानी, मगर उसे अस्वीकार न करने की विवशता। 'सुनीता' में हरि प्रसन्न 'सम्पूर्ण अनावृत' स्त्री को दूर से देखता है, 'दादा कामरेड' में एक कदम आगे बढ़ता है, मगर 'शेखर' में बहन-भाई के रिश्ते का बौद्धिक विरेचन है। शायद 'घेरे के बाहर' पहला उपन्यास है जहाँ देह के माध्यम से आसक्ति और संवाद है—वहाँ भी सम्भोग नहीं है—बहन को लेकर अपराधबोध वहाँ भी है। अपने बौद्धिक और भावनात्मक तनावों में यह युवा किस तरह स्त्री को अपने परीक्षण और प्रयोग का टारगेट बनाता है (गांधी भी तो ऐसे ही सत्य के प्रयोग करते हैं), यह दिलचस्प मगर इकतरफा खेल है। चूँकि उस समय स्त्रियाँ इतनी मुखर नहीं थीं, इसलिए स्थिति का दूसरा पक्ष सामने नहीं आता। हाँ, वह आना शुरू होता है कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियम्वदा के साथ। दिलचस्प यह भी है कि 'चित्रलेखा' वाले वासना और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषना के द्वन्द्व में युवक अपने शरीर होने को भी स्वीकार नहीं कर पाता। बहुत फूहड़ धरातल पर अगर कहूँ तो मेरे उपन्यास के नायक शैलेन्द्र की उम्र 17-18 साल है (मेरी ही उम्र) मगर कहीं भी संकेत नहीं है कि उसे स्वप्न-दोष होता है, वह हस्त-मैथुन करता है या समलैंगिक आकर्षण महसूस करता है—उसके मन में स्त्री-रहस्य को जानने का 'वोयूरिज़्म' (ताकझाँक की वृत्ति) भी नहीं है, जबकि मैं याद कर पाता हूँ कि मेरे मन में यह सब था—मैं स्त्री को उसके अनजाने ही, अपने शरीर के साथ देखना चाहता था, कभी बाथरूम में झाँककर तो कभी अश्लील चित्रों में। यह सब कुचालें थीं तो ब्रह्मचर्य का आतंक भी था और यह हमेशा हमें एक अपराधबोध में तोड़ता रहता था। हम क्यों इतने सदाचारी और ब्रह्मचारी नहीं हैं, यह धिक्कार हमें रात-दिन कचोटता और कुतरता था। यह युवा सचमुच ही बहुत जटिल और संश्लिष्ट है।

22.10.2004

अगर आज कोई मुझसे पूछे कि संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है तो मैं कहूँगा कि मानव-शिशु...किस तरह मांस का एक लोथड़ा धीरे-धीरे चेतन होता है, प्रतिक्रियाएँ करता है और कैसे बाहरी दुनिया से जुड़ता और सीखता है, यह सचमुच बेहद ही दिलचस्प है। कमल महीने भर के लिए नेपाल गया है। इसलिए किशन सुमित्रा और राहुल के साथ मेरे ही फ्लैट में रहने लगा है, पीछे वाले कमरे में। लड़का अभी पौने तीन साल का है, सारे दिन शैतानी करता है, सोता और खाता है। जाग्रत होती ऊर्जा का वह क्या करे, यह समझ नहीं पाता। हम तीन ही उसकी दुनिया हैं, कोई और आ जाता है तो सकुचाकर छिप जाता है। मुझसे खेलता है, चिढ़ाता है और चीज़ें लेकर भागता-तोड़ता है। बोलने की कोशिश करता है, मगर शब्द नहीं बना पाता। उसे पता है, मेरी सिगरेट किस दराज में है, माँगने पर बाकायदा डिब्बी खोलकर निकालता है, उसे मेरे मुँह में ठूँसकर लाइटर जलाने की कोशिश करता है। खाँसी या दूसरी दवाओं की शीशियों के ढक्कन खोलकर मुँह में उँड़ेलता है, जूते-चप्पलें लाता है। सुमित्रा से बाकायदा लड़ता है, भागकर मेरे पास आ जाता है, उसे चिढ़ाता और उसकी नकल करता है, किशन से बाहर घुमाने का आग्रह करता है। जब हम लोग दफ्तर के लिए निकलते हैं तो बेहद दुखी हो जाता है, बाद में रोता और सिर पटकता है। दिन में सोने के बाद जब मैं जाने की तैयारियाँ शुरू करता हूँ तो उसका प्रतिरोध शुरू होता है, मुझे बाथरूम नहीं जाने देगा, कुर्सी पर खुद बैठ जाएगा ताकि मैं बैठकर पाइप इत्यादि न भरूँ, मेरे कपड़े छीनेगा। वह समझता है कि मेरी ये सारी तैयारियाँ मेरे और किशन के जाने की शुरुआत है। मेरे जाने पर ही किशन भी जाएगा, इसलिए मुझे अपने तरीके से रोकना ज़रूरी है। न उसे अपने नंगेपन की चेतना है, न गिरने का डर। उसकी अपनी पसन्द-नापसन्द, ज़िदें और प्रसन्नताएँ हैं। आश्चर्य यह भी होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है कि यही आगे जाकर जीनियस, मेधावी, गुंडा या हत्यारा बनेगा। मैं आज कहाँ सोच पाता हूँ कि इस उम्र में क्या था। सारे बच्चे शायद ऐसे ही होते हैं, मगर यह मुझे यूनीक लगता है। जब यह 'बा' (बाबा का संक्षिप्त) कहकर मेरे ऊपर चढ़ता है तो सचमुच आत्मा अपने ढंग से तृप्त हो जाती है। अब अफ़सोस और धिक्कार होता है, टिंकू के इस बचपने के समय मैं कहाँ था? राहुल की इन लीलाओं पर मुझे बार-बार सूरदास के पद याद आते हैं। शायद विश्वसाहित्य में ऐसी शिशु-लीलाएँ नहीं हैं।

22.12.2004

पिछले दिनों काफी हलचल रही। संजय मेरे जन्मदिन को लेकर कुछ करना चाहता था, मगर मैं सहमत नहीं हो रहा था। आखिर गया में जाना तय हो ही गया। मैं, रामशरण जोशी और पंकज विष्ट। पहले मैत्रेयी जानेवाली थी—उसने स्थगित कर दिया तो मैंने फोन करके लता शर्मा को बुला लिया—भानपुर से। गया में सचमुच बहुत आत्मीय रहा। हालाँकि दूर्वा के पिता की मृत्यु हो गई थी और मैंने आग्रह किया था कि हम कभी फिर कर लेंगे। मगर वे लोग माने ही नहीं। 11 को आयोजन हुआ। उसमें पंकज ने एक बात अच्छी कही कि व्यक्तिगत और निजी सम्बन्धों में राजेन्द्र जी हमेशा सत्ता के विपक्ष में रहे हैं और वही विरोध आज आगे जाकर दलित-स्त्री के पक्ष में मुखर रूप से आ खड़ा हुआ है। अगले दिन 'रामबाग' यानी संजय के फार्म हाउस पर सत्तर-अस्सी लोगों का खाना था—खुले-खिले वातावरण में। संजय की माँ दलित और आदिवासी बच्चों का एक स्कूल चलाती हैं। उन्होंने नाच-गाने के कुछ कार्यक्रम दिये। वापस आकर हम लोगों ने 'गुड-बाई लेनिन' फिल्म देखी। जोशी और लता उसी दिन लौट आए अगले दिन हम लोग पटना पुस्तक मेले में गए। एक दिन पहले तस्लीमा नसरीन होकर गई थी। उस दिन मेले में दो लाख लोग आए थे। भीड़ मेरे लिए भी कम नहीं थी। मुद्रित अक्षर के लिए बिहार का प्यार आश्चर्य जगाता है। हाँ, अभी भी कुछ पढ़नेवाले हैं—यह आश्वासन लेखक के रूप में ज़िन्दा रहने की प्रेरणा देता है।

दिल्ली में फिर वही रूटीन। आजकल ठंड बहुत है। लगता है, भारत के लोग बारह महीने मौसम से ही लड़ते रहते हैं। मेरे लिए नया खिलौना मिल गया है—राहुल—यानी किशन का बेटा। अप्रैल में तीन का हो जाएगा। सृष्टि के प्रारम्भ से ही बच्चा शायद इसी तरह बढ़ता है, हम भी हुए होंगे। मगर उसकी एक-एक बात, जिद चकित करती है। आप लिख रहे हैं कि आकर हाथ में गेंद पकड़ा देगा। और दूर बल्ला या कुछ भी लेकर खड़ा हो जाएगा—क्रिकेट खेलो। मेरे बाहर से आते ही कुर्सी पर फैलकर बैठ जाएगा। सब कुछ समझता है और काफी कुछ बोलने की कोशिश करता है। अभी से नेपाली में काफी एट होम महसूस करता है। वह लड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, ज़िद करता है, चीज़ें फेंकता है तो मुझे विस्मय ही होता है—साथ ही वह पुराना वाक्य भी मन में गूँजता है, दादा या नाना बच्चों को बिगाड़ देते हैं। सुमित्रा को जिस तरह डाँटता और उससे लड़ता है, वह बेहद एम्यूजिंग है। किस अधिकार से वह उससे व्यवहार करता है! उसकी हर बात मुझे रोमांचित और प्रसन्न करती है। समझ नहीं पाता कि लोग कैसे बच्चों को मारते-डाँटते हैं—उनकी बदमाशियों को तो सिर्फ देखते और एन्जाय करते रहने को मन करता है। लगता है जैसे सृष्टि का पहला बच्चा है। सोचता हूँ, मेरे भीतर यह 'बाप'-नुमा व्यक्ति कहाँ छिपा था? अब तो सारे बच्चों को देखने की दृष्टि बदल गई है—राक्षस जैसे संवेदनहीन आदमी के भीतर यह वात्सल्य कहाँ सोया होता है? हमेशा भय कहता है—हे भगवान (!), उसे कुछ हो न जाए—चोट, बीमारी या कुछ और...यह भी जानता हूँ कि आगे जाकर पता नहीं क्या बनेगा?— लेखक, वैज्ञानिक, चोर, हत्यारा...हम सब आज जो हैं, सब इन्हीं रास्तों से आए हैं।...

31.12.2004

आज साल का आखिरी दिन है और हर चूतिए की तरह बैठकर क्या खोया—क्या पाया का हिसाब-किताब करना चाहिए। लगता है, मुझे न अब किसी को हिसाब देना है, न लेना है। जो हुआ, वह हो चुका है। जो होगा, वह देखेंगे। कभी-कभी मुझे बुद्ध की बात सही लगती है कि ज़िन्दगी शायद माचिस या टॉर्च जलाने की तरह है। कमरे या जंगल के अँधेरे में जितनी रोशनी होती है, वह मेरा जीवन है, मुझे नहीं मालूम आगे क्या होगा और पीछे क्या था?

समुद्र के किनारों पर भयंकर तूफान आया हुआ है—समुद्र के भीतर के इस भूचाल को शायद जापानी में 'सुनामी' कहते हैं। तमिल, लंका, इंडोनेशिया इत्यादि में जो भयानक तबाही मची है, वह दिल दहला देनेवाली है। सब मिलाकर डेढ़-दो लाख लोग मरे हैं। हर चैनल चौबीस घंटे वही दृश्य दिखा रहा है। मैंने भी राहत के लिए दस हज़ार का चैक देने का निश्चय किया है। समझ में नहीं आता, कहाँ भेजूँ! सबसे सही लगता है 'हिन्दू' के रिलीफ़-फंड में देना।

तो? अलविदा पुराना साल...अभी तो साल बदलने में 18 घंटे हैं—अभी सुबह के ठीक छह बजे हैं।

25.12.2005

तो आज ईसामसीह का जन्म हुआ था। भारती का भी जन्म दिन था और धीरेन्द्र का भी (धीरेन्द्र अस्थाना)। लोग कैसा चुनकर अपना जन्मदिन मनाते हैं! नामवर ने एक मई (मजदूर दिवस) और निराला ने वसन्त-पंचमी चुना—सरस्वती का दिन—वर दे वीणा वादिनी वर दे...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ैर, यह शायद इस इस साल की आखिरी टिप्पणी है। शायद मौका न मिले और मैं फोर्टिस नाम के अस्पताल में अपना घुटना बदलवाकर रिकवरी के पीरियड से गुज़र रहा होऊँ...घुटना पिछले साल डेढ़ साल से परेशान कर रहा है। चलने में तकलीफ़ होती है, सारे शरीर का बोझ एक ही टाँग पर तो है। पहले बैसाखी को बेंत बनाकर बाएँ हाथ में रखता था—फिर उसे बाकायदा बैसाखी बनाकर बाईं तरफ लगाने लगा। चलना मुश्किल होता गया। ना-कैप लगाता था और पंचगुणा तेल की मालिश करता था। महिला प्रेस-क्लब में प्रोग्राम था, लव इन द सेम सेक्स। फर्श पर देखा नहीं, आधे फुट की सीढ़ी थी। गिर गया। उठाया गया। मंच पर बैठा और सारे कार्यक्रम में हिस्सा लिया। वापस गाड़ी में आते हुए दिक्कत हुई। त्रिवेणी के सामने ही गाड़ी में ही बैठकर अनामिका को इंटरव्यू दिया। वहीं सीमा भी आई। घर पर उतरकर सीढ़ियों तक आना और फिर चढ़ना असम्भव हो गया। आकर लेटा तो उठा ही नहीं गया—बाथरूम तक मुश्किल। दो दिन बाद बम्बई जाना था। हरिकृष्ण वर्णवाल का कार्यक्रम था। अमृतलाल नागर कहानी प्रतियोगिता में वर्णवाल, मनोज कौशिक और रोशन प्रेम योगी को पहला-दूसरा-तीसरा पुरस्कार मिला था। वर्णवाल ने स्वयं ही आयोजन कराया था। स्थिति ठीक नहीं लगी, इसलिए फोन करके मना कर दिया। एक तरह तहलका मच गया—क्योंकि वहाँ सारी तैयारी कर ली थी, हॉल इत्यादि बुक हो गए थे। महेशभट्ट, निदा फ़ाज़ली सभी आने को थे। ख़ैर, बहुत समझा कर वर्णवाल को तैयार किया कि टिकिट कैन्सिल करा दे। वह स्टार टी.वी. में है और काफी प्रभावशाली है। जिस दिन जाना था, उस दिन सुबह उठा तो लगा कि जा सकता हूँ, फिर क्यों उनका प्रोग्राम खराब करूँ? किशन को तैयार किया और पहुँच गए पालम एयरपोर्ट। टिकट कैन्सिल हो गया था मगर फिर से वैलिड हो गया। हरीश को फोन किया कि कहानी में ट्विस्ट आ गया है और मैं दो-ढाई घंटे में पहुँच रहा हूँ। वह खुश हो गया और मैं बम्बई पहुँच गया। स्टार के ही गैस्ट हाउस—नहीं, खार पाली रोड पर। शाम को जुहू रोटेरी क्लब में कार्यक्रम था—फिर गैस्ट हाउस में आकर बैठे।

हरीश ने अगले दिन बॉम्बे हॉस्पिटल में डॉ. तिवारी से टाइम कर लिया था। वहाँ चलने में दिक्कत हुई तो व्हील चेयर पर शायद पहली बार ही बैठा। तिवारी अपने सीनियर लवर हेमन्त भंडारी के पास ले गए। तब देखभाल कर तय हुआ कि घुटना बदल जाएगा। बाद में हरीश ने बताया कि साढ़े तीन लाख लगेंगे। यानी बम्बई आकर दस-पन्द्रह दिन रहना तो लगभग चार लाख। ख़ैर, तिवारी के साथ खाना खाकर उसी सन्ध्या को वापसी। किशन गाँव गया हुआ था। एयरपोर्ट पर सुनील टैक्सी के साथ मिला—वह घर तक छोड़ गया।

यहाँ डॉ. राजेन्द्र कनौजिया से मिला। तय हुआ कि किसी और से भी सलाह ले ली जाए। डॉ. कनौजिया 'हंस' के लेखक हैं और बहुत कन्सर्न के साथ मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता दे रहा है। वह डॉ. अशोक राजगोपाल के यहाँ, सहगल नर्सिंग होम, कैलाश कॉलोनी में ले गया। तय हुआ कि घुटना बदला जाएगा, फोर्टिस में। किसी ने कहा कि एम्स के डॉ. सूरजभान को भी कंसल्ट कर लिया जाए। रमणिका ने मैक्स में डामारिया से टाइम कर लिया। मगर मैंने सोचा कि इधर-उधर भटकने से क्या फायदा...कनौजिया जान झोंक कर मदद कर रहा है, वह खुद भी गंगाराम हॉस्पीटल में अस्थि-विशेषज्ञ है। इस हफ्ते मैं डायबिटीज़ नियंत्रण में लगा हूँ। पहली बार फोर्टिस में 157 और पी.पी. में 259 आया। खाने-पीने पर अंकुश लगाया तो तीन दिन बाद 118 और बढ़ आया। अब मंगल यानी 27 दिसम्बर को तय हुआ कि अस्पताल में भरती होना है। खर्चा बताया 1.83 लाख। यानी दो-सवा दो। एक मैंने अशोक महेश्वरी (राजकमल) से एडवांस लिये। एक अरुण (वाणी) से लेने थे, उसने पचास हज़ार ही दिये हैं, बाकी एकाध दिन में हो जाएँगे। मन्नू ने भी कहा कि ज़रूरत हो तो बताऊँ।

मगर सबसे अजीब बात है कि इतने बड़े ऑपरेशन को लेकर न मेरे मन में कोई डर है, न चिन्ता। जो होगा, देखा जाएगा। बताते तो सभी हैं कि 60-70 प्रतिशत सही हो जाएगा और मैं चल सकूँगा, सीढ़ियाँ चढ़ सकूँगा। हाँ, पालथी मार कर बैठना मुश्किल होगा—शायद इंडियन स्टाइल बाथरूम यानी उकड़ूँ बैठना भी सम्भव न हो। अब जो भी हो...उधर जयपुर से लक्ष्मीनारायण जी भी ज़िद किए हैं कि वे आएँगे। मैं मना कर रहा हूँ। बहुत लोग हैं। इस प्रकरण में जिस बात ने मुझे अभिभूत कर दिया, वह है अपनी बीना। बम्बई से आया तो उसने हाल-चाल के लिए पूछा, मैंने कहा, घुटना बदला जाएगा। चार लाख लगेंगे। तू करेगी? बोली—हाँ, कर देंगे...मैं सचमुच भीग गया, आँसू निकल आए—यह लड़की जिसे आज हम छह-सात हज़ार महीने देते हैं, वह चार लाख का इन्तज़ाम करने को कह रही है...अगले दिन मैंने उसे गले लगाकर कहा : बीना, मेरी आधी तकलीफ़ तो तूने दूर कर दी...और सब भी जितना हो पा रहा है, कर ही रहे हैं।

मुझे ऑपरेशन—बड़े ऑपरेशन को लेकर कोई चिन्ता, परेशानी या डर नहीं है यह खुद भी मुझे अजीब नहीं लग रहा। इधर साल-दो साल से लगने लगा है कि न कोई सपना है, न आकांक्षा, न भविष्य को लेकर कोई योजना। सब कुछ जैसे कहीं अपने-आप ही उड़ गया है। अँधेर जंगल है और छोटी-सी टॉर्च से जितना दीखता है उतना ही चलते जाना है। कुछ बहुत अच्छा लिखूँगा या करूँगा। यह सम्भावना भी समाप्त हो गई है। शायद थोड़ा-बहुत अतीत बचा है—सो वह भी ऐसा नहीं कि बहुत बाँध कर रखे। अभी और यहीं की मानसिकता दिल-दिमाग पर छाई है। अभ्यास है सो लिखे-बोले जा रहा हूँ। लगता है, 'हंस' ने सब कुछ सोख लिया है। पुरानी चीज़ों को समेटने का भी भाव है। सन् '46-'47 में जो बचकाना उपन्यास लिखा था, उसे एक भूमिका लगाकर वाणी को दे दिया है—एक था शैलेन्द्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चालीस-पैंतालीस साल पहले जो कहानियाँ लिखी थीं और अश्लीलता के डर से छपाई नहीं थीं, उनका संग्रह भी 'हासिल' और अन्य कहानियाँ नाम से राजकमल को देना है। मोहन राकेश, कमलेश्वर और नामवर के पत्रों का संग्रह 'अब वे वहाँ नहीं रहते' नाम से राजकमल से आ ही रहा है। शायद अब डायरियों का ही नम्बर है। क्या 76 साल की उम्र में सभी के साथ कुछ ऐसा ही होता है?

27.12.2005

आज फॉर्टिस हॉस्पिटल (सैक्टर-62 नोएडा) में भरती होने जा रहा हूँ। लगभग सात दिनों बाद जब लौटूँगा तो शायद घुटना बदल चुका होगा। मालूम नहीं, जो है उससे स्थिति अच्छी होगी या बुरी, मगर इस बात से चकित और दुखी हूँ कि न मुझे चिन्ता हो रही है, न डर लग रहा है। एक अजीब रैजिग्नेशन का भाव है। किशन आया नहीं है, नया ड्राइवर गायब है। पंकज बिष्ट दस के आसपास आएगा और मुझे भरती करा देगा। कमल साथ रहेगा। इस बात पर निर्भर करता है कि कमरा कैसा मिलता है। बहुतों को नहीं बताया है, मगर लोग तो आएँगे ही। बाद में दो-तीन हफ्ते का विश्राम है। तब आने-जानेवालों का ताँता रहेगा। अभी इतना ही।

1.12.2008

पता नहीं, यह संयोग है या कुछ और कि 10 दिसंबर ने मुझे हिलाकर रख दिया। 9 दिसम्बर को शाम को गीता मेरे इस फ्लैट पर आई। उससे कानपुर का प्रोग्राम तय करना था। दया दीक्षित नाम की एक उत्साही लड़की, कथाक्रम में 8-9 नवम्बर को उससे मुलाकात भी हुई थी। उसने 'हंस' का 'मानसरोवर क्लब' बनाया हुआ है जहाँ कुछ सदस्य बैठकर पुस्तकों पर बातचीत करते हैं। दया चाहती थी कि गीता की पुस्तक 'स्त्री-आकांक्षा के मानचित्र' पर बात हो। इस बीच गीता की ही सम्पादित '23 लेखिकाएँ और राजीन्द्र यादव' किताब आ गई। किताब बेहद खूबसूरत छपी है, नरेन्द्र श्रीवास्तव ने किताब का ले-आउट अपनी चिर-परिचित शैली में बनाए हैं। उसने वाणी प्रकाशन के लिए सोनल मानसिंह पर 'देवप्रिया' और कृष्णा सोबती-कृष्ण बलदेव वैद की बातचीत वाली किताबों की तरह इसे भी बनाया है। सीमा ने कहा था कि जब गीता आए तो उसे भी बुला लूँ। ख़ैर, आई और ये बहुत देर बातें करती रहीं, फिर पता नहीं क्या हुआ कि सीमा भड़क गई और हमारे और गीता के लाख समझाने पर भी ठंडी नहीं हुई। श्रीनन्द प्रेस क्लब से काफी देर बाद आया, बाहर से ही फोन कर दिया कि सीमा वहाँ चली जाए। 'मैं कभी इस घर में नहीं आऊँगी' की कसम खाकर वह निकली। इस बीच उसने मुझसे कमरे से बाहर जाने को कहा और गिरीश निकम को फोन करके बाकायदा रोने लगी। उस पर दौरा पड़ गया था। कहीं तो कहती थी कि मेरी उससे कोई बातचीत ही नहीं है, मैं न उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखना चाहती हूँ, न मिलना। कहाँ उससे रो-रोकर बता रही कि वह कितना बड़ा झूठा और हिप्पोक्रेट है। और उसी का नतीजा है कि आज उसका जन्मदिन है और न वह आएगी, और न मैं जाऊँगा। कोई संवाद भी नहीं है। आज एक बार शुभकामनाएँ दूँगा, आगे फिर जब भी बातचीत हो तो ठीक है, वर्ना...

सुबह ही फोन आया मीता का। उसे गीता वाली किताब मिल गई। उसमें जयन्ती का इंटरव्यू उसने पढ़ लिया। उसके परिवार के बारे में जो लिखा है, उससे वह भड़की हुई थी—"आपने ऐसा दिखाया है मानो हम भूखों मर रहे थे।" मैंने समझाने की कोशिश की तो और भी नाराज़...यह सब क्या तुम मेरे बारे में उलटा-सीधा लिखते हो—पहले भी अमर उजाला में मेरे बारे में लिखा था, तब भी मैंने तुमसे कहा था कि मेरे बारे में बकवास लिखना बन्द करो...मैंने एस.एम.एस. किया 'अगर मेरी ज़िन्दगी में तुम इतने लम्बे अर्से से और इस तरह गुँथी हुई हो तो तुम्हें छोड़कर लिखना मेरे लिए सम्भव नहीं है।' बहरहाल बात बन्द हो गई।

मन्नू को भी आज के दिन लड़ना था। 'अन्यथा' नाम की मोटी-सी पत्रिका अमेरिका के कृष्णकिशोर निकालते हैं। छपती यहीं है। उसके लिए अजय नावरिया ने मेरा इंटरव्यू लिया। उसमें मैंने कह दिया कि हम लोग जब से 'अलग' हुए हैं, तब से अधिक घनिष्ठ मित्र हो गए हैं। अभी पिछले दिनों ही उसने अपनी 'विल' मुझे पढ़कर सुनाई। पढ़ कर मन्नू भड़क गई कि मैंने आपको 'विल' कब सुनाई? हम कहीं घनिष्ठ-वनिष्ठ नहीं हैं। आपने बलवन्त के इंटरव्यू में भी बहुत बकवास की है कि मन्नू छोटी-छोटी बातों को लेकर मुझसे झगड़ती है और मुझे झूठा सिद्ध करती है। और भी पता नहीं क्या-क्या? और खट से बात बन्द। अगले दिन मैंने फिर समझाया कि अगर तुमने विल की बातें नहीं बताई थीं तो कैसे मालूम कि लक्ष्मी के नाम अपना गैराज कर रही हो... "वो तो इसलिए कि अगर मैं मर गई तो टिंकू आपको यहाँ ले आएगी और गोपाल के परिवार को यहाँ रखोगे। अब सुन लो कि आप चाहे जितना चाहते रहो, मैं मरनेवाली नहीं हूँ। इसी इंटरव्यू में आपने मेरी तुलना किशन की पत्नी सुमित्रा से की है—खाँटी घरेलू औरत की तरह," और लीजिए, साहब बात बन्द...

सचमुच क्या मुझमें ही कुछ ऐसा है कि तीनों औरतों से एक ही दिन झगड़ा हुआ और बात किसी भी तरह के संवाद न रखने पर समाप्त हुई? मैंने तो नहीं कहा था, जो मैं महसूस करता हूँ या जो कुछ भी मेरी जानकारी है। मीता और मन्नू मेरी ज़िन्दगी में पचासों साल से गुँथी हुई हैं और सीमा इधर पन्द्रह साल से बहुत अच्छी दोस्त है और क्या तीनों को एक दिन मुझसे लड़ना था? कैसे मनहूस नए साल की शुरुआत होने जा रही है! जीवन के अन्तिम दिनों में और क्या कुछ देखना है! हो चुकीं ग़ालिब बलाएँ सब तमाम एक मर्गे नागहानी और है...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

27.3.2009

सुबह पौने छह पर फोन आया बम्बई से टिंकू का। पाँच बजे कमला भाभी नहीं रहीं। बीमार चल रही थीं। मन होता था, देखने जाऊँ। वह मेरी माँ तो नहीं, बड़ी बहन ज़रूर थी। अपने राजेन्द्र जी के लेखक पर गर्व करनेवाली—अपने राजेन्द्र जी की बेटे की तरह देख-भाल करनेवाली। कलकत्ते के दिनों में मेरे लिए उन्होंने जाने कितनों से लड़ाइयाँ मोल ली हैं और न जाने कितने दिनों मुझे डाँटा है। वे पढ़ी-लिखी नहीं थीं लेकिन ठाकुर जी के साथ ने उन्हें शिक्षित और जागरूक बना दिया था। कैसी भी गोष्ठी में वे अपनी निस्संकोच राय देतीं—बल्कि कभी-कभी हमें उनका इस तरह बीच में बोलना अखर जाता। ठाकुर साहब के न रहने पर वे दो-तीन बार अक्षर भी आईं। मुझे अपनी शादी के दिन याद हैं, वे विशेष रूप से आगरा गईं—गीता से मिलने। आकर बोलीं, राजेन्द्र जी, यह लड़की आपके साथ चलेगी नहीं। वैसे आपकी मर्ज़ी है। वह मन्नू बाईसा को बहुत प्यार करती थीं। दूर बैठकर मैं नहीं कह सकता, लेकिन निश्चय ही वे अपनी बहुओं के लिए सास से ज़्यादा माँ थीं। दोनों बेटे जान न्योछावर करते थे। ठाकुर साहब की तो वे जान थीं—मैं एक-दूसरे के लिए बेचैन ऐसा जोड़ा नहीं देखा। फिल्में बाद में टी.वी. सीरियल देखने का पागलपन और बाहर घूमने के लिए हमेशा तत्पर। ठाकुर साहब ने सचमुच उन्हें अपने और अपने साहित्यिक परिवार के लिए सुनार की तरह गढ़ा था। चरण छूकर मैं उन्हें बार-बार प्रणाम करता हूँ...

फिर एक नया दिन! लगता है, मैं सैकड़ों सालों से इसी शरीर में हूँ। पता नहीं, कब तक रहूँगा? नहीं, मैं जल्दी नहीं जाना चाहता—यह दुनिया इतनी खूबसूरत और बाँधनेवाली है कि इसे छोड़ने का मन नहीं है। दूसरी आवाज़ है कि बेटा, अब पता नहीं, कल की सुबह हो, न हो! समेट लो, जो समेट सकते हो। जो आगे आनेवालों के लिए छोड़ सकते हो, जिसे नहीं छोड़ सकते, उसे नष्ट कर दो। यह कूड़ा किसी के काम का नहीं है। मगर छँटाई है कि शुरू होने का नाम ही नहीं ले रही...

बहरहाल, मुम्बई धमाकों के बाद व्यक्तिगत जीवन में भी कुछ विस्फोट हुए। मेरे नहीं, आत्मीयों के। सीमा का फोन आया कि गिरीश जिस महिला के साथ रह रहा है, सुमिता ने श्रीनन्द को सब बता दिया है कि सीमा और गिरीश के सम्बन्ध क्या रहे हैं। सारी दुनिया जानती है और सिर्फ तुम्हें नहीं मालूम... सीमा फोन पर रो रही थीं—"मैं क्या करूँ? प्लीज़, मेरे घर को बचा लीजिए! श्रीनन्द सुमिता के यहाँ गया है। पता नहीं, क्या-क्या करे?" ज़ाहिर है, वह बेहद घबराई हुई थी—पता नहीं, श्रीनन्द का री-एक्शन क्या हो? मैंने पूछा, मैं बात करूँ? जो भी कर सकते हैं, प्लीज़ करिए—मेरी ज़िन्दगी का सवाल है। मैंने श्रीनन्द को फोन किया। बोला, "मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी कहीं और हूँ।'' मैंने कहा, ''शाम को मिलना है। ज़रूरी है।'' सीमा सारे दिन फोन करती रही। मैंने कहा, धीरज रखो। शाम तक वेट करो...सचमुच मैं भयानक टेंशन में था कि सीमा को इस तूफान से कैसे निकालूँ? उसने बताया कि श्री, राजेश से मिलने गया है। सुमिता ने सोनी को भी बताया है, वह कहती है कि उसे तो बहुत पहले से पता है। श्रीनन्द के भीतर के झंझावात की मैं कल्पना कर सकता हूँ जिसकी पत्नी सेक्सुअली किसी के साथ जुड़ी रही हो। मैंने तो उस समय सीमा को भी बहुत समझाया था, मगर वह तो प्यार या सेक्स में पागल थी। एक मन होता है, कहूँ, भुगतो—दूसरा कहता है, इस समय मुझे उसके साथ होना चहिए। व्यक्तिगत हिसाब-किताब बाद में होते रहेंगे। बहरहाल, मैं शाम का इन्तज़ार करता रहा। शाम को श्रीनन्द आया, प्रेस-क्लब में राजेश से मिलते हुए।

4.5.2009

आजकल अर्चना राजकमल के लिए मेरी रचनावली तैयार कर रही है। प्रकाशित रचनाएँ तो हैं ही, अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ, डायरियाँ या पत्रों के लिए बहुत आग्रहशील है। 'इस संडे को हम आपके घर हमला करेंगे,' कहकर बलवन्त को लेकर आई भी। मगर मैंने कुशलता से टाल दिया। फिर जब तीसरी या चौथी बार आई तो मैंने हथियार डाल दिये। ले जा यार, तू भी क्या कहेगी। पता नहीं, कब-कब की डायरियाँ, नोट्स और अधलिखे लेख—सब दे दिये। भीतर भयंकर डर था कि यह सब देखेगी तो मेरे बारे में क्या सोचेगी। फिर आया कि आखिर अर्चना से अब छिपा क्या रह गया है। लगभग 65 से वह सब जानती ही है, हम दोनों को साथ-साथ और फिर अलग-अलग जीवन में। ये डायरियाँ मेरी हैं—ऐसा क्या होगा जो अर्चना या तो जानती न हो, या फिर अपनी स्त्री-शक्ति से उसने सूँघ न लिया हो। कहीं 'रिलीफ़' महसूस हो रहा है क्या?—यह सब तो नहीं जानता, मगर लगता है, कोई ज़िन्दा खाल खींच ले गया हो...

1.9.2009

तो एक बार फिर वह स्यापा भी करना यानी पिछले हफ्ते 28 अगस्त को लगभग हंगामा ही रहा। स्थान था आफिसर्स क्लब, यानी कस्तूरबा गांधी मार्ग पर कर्ज़न रोड फ्लैट्स के पास वाली जगह। टिंकू के अनुसार क्लासी। उसी की ज़िद थी कि इस बार का आयोजन वही करेगी। नतीजा लगभग एक लाख के नीचे आ गए। 25 संजय सहाय ने दिये, पचास टिंकू ने और शेष मैंने। बेहद अपराधबोध भीतर से कचोट रहा है। डेढ़ सौ से अधिक लोगों का खाना-पीना, जिसे कहते हैं शानदार पार्टी...चाट, बारबीक्यू, स्नैक्स, ड्रिंक्स और फिर खाना। सबसे बड़ी बात सबसे मुलाकात। मगर हद है कि इस तरह के व्यर्थ के आयोजन में एक लाख खर्च हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएँ—तय किया कि आगे से यह सब चुतियापा बन्द—क्या अर्थ है इस बरबादी का? जन्मदिन ही तो है, कोई राष्ट्रीय पर्व तो नहीं है! इससे सार्थक तो अगले दिन अशोक वाजपेयी ने रज़ा फांडेशन की तरफ से रहा। अस्सी पार होने पर इण्डिया इण्टरनेशनल सेण्टर के एनेक्सी में पार्टी दी। कुँवर नारायण, के.बी. वैद, बोलनेवालों में तुलसीराम, चन्द्रभान प्रसाद, अनामिका इत्यादि। मगर यहाँ मेरा बहुत अच्छा रूप नहीं रहा। जो कुछ मैं बोला, वह बहुत अच्छा नहीं था। तुलसी राम ने मुझे सोशल थैरेपिस्ट बताया था, उदय प्रकाश ने पिछड़ी जातियों के उभार के साथ मुझे जोड़ा—जैसे यादव कुर्मी इत्यादि—दरअसल उसके पीछे गोरखपुर कांड की कुंठा बोल रही थी—वहाँ महन्त आदित्यनाथ के भांजे—कुँवर नरेन्द्र सिंह की याद में उदय को सम्मानित किया गया था—वहाँ उदय ने बी.जे.पी. के समर्थन में कुछ बोल दिया था, क्योंकि आदित्यनाथ अपने क्षेत्र के बाहुबली सांसद ही नहीं, बल्कि बी.जे.पी. के प्रवर्तक भी हैं। उदय पर जातिवाद और साम्प्रदायिकता समर्थन के आरोपों से सारे ब्लॉग और पत्रिकाएँ भरी हैं। मैंने उसी सबके जवाब में कह दिया कि क्या यह महज़ संयोग है कि हिन्दी के आधुनिक साहित्य में दस सबसे बड़े कवि ब्राह्मण हैं और कथाकार गैर-ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणों को हज़ारों सालों से वैचारिक अमूर्तन में रहने का अभ्यास है, जबकि गैर-ब्राह्मणों में संवेदना और अनुभव ही प्रमुख रहे हैं। हंगामा तो होना ही था और वह ब्लॉगों से लेकर पत्र-पत्रिकाओं में चल रहा है।

जन्मदिन के आयोजन में श्रीनन्द-राधिका तो आई थीं मगर बहुत आग्रह के बावजूद सीमा नहीं आई। हर बार मीता का फोन आता था, जो नहीं ही आया। क्या आखिरी दिनों में ये सब इसी तरह साथ छोड़ देंगे? हाँ, पहली बार मन्नू आई।

25.12.2009

तीन महीने बाद आज लिखने का समय मिला है। समय तो मिलता मगर हर बार टाल जाता हूँ।

अस्सी-अस्सी-अस्सी—जन्मदिन से ही दिमाग में यही बन रहा है। हालाँकि मैं जानता हूँ कि उम्र अस्सी से एकाध साल ज़्यादा ही है। मगर अस्सी भी कम नहीं होती और वही मुग़ालता, सामान सौ बरस का, कल की खबर नहीं। हमेशा एक महीने व्यर्थता-बोध रहता है। क्या किया इन सारे सालों में भाड़ झोंककर? अब सब भूल गए हैं कि मैंने कहानियाँ-उपन्यास भी लिखे हैं—वहाँ देखो, वहाँ सम्पादक हंस—हिन्दी के वर्तमान परिदृश्य में से एक सिर्फ—नामवर और अशोक वाजपेयी के साथ। उन्होंने अपने संस्थानों के कारण यह जगह पाई है और मैंने स्वयं अर्जित की है—यही श्लेष निचोड़ता बैठा हूँ...जब नामवर चौरासी में ऐसे फिट हैं तो मुझे ही क्या जल्दी है? मगर इधर पाँव जवाब देने लगे हैं...घर की सीढ़ियाँ चढ़ने में दम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल जाता है। इसी सिलसिले में टिंकू ने कहा, कोई ग्राउंड फ्लोर देखिए—दिनेश शायद ले ले—कुछ आप भी इन्तज़ाम कर लीजिए...इसी सोसाइटी में नीचे एक कमरे का फ्लैट बताया शिवशंकर एजेंट ने। बाल्कनी वगैरा को मिलाकर किशन परिवार के लिए जगह निकाली जा सकती है। जब से यहाँ मैट्रो चलने लगी है, अक्षरधाम बन गया है, कॉमनवेल्थ खेलों का परिसर बन रहा है तो फ्लैटों के दाम चार-पाँच गुने बढ़ गए हैं। एक कमरे का फ्लैट पचास लाख। पहले तो हम घबराए, फिर हिम्मत की। टिंकू ने घर भी देखा और मामला तय हो गया। मगर मालिक ही बैक कर गया। इधर-उधर देखने के बाद 'आकाश दर्शन' में देखा। नए सिरे से अन्दर बनवाना पड़ेगा। सैंतालीस में लगभग तय हो गया। टिंकू ने पाँच लाख एडवांस भी दे दिये। बल्ब वगैरा वह खुद देख लेगी। मैंने पाँच लाख संजय से लिये और पाँच अशोक महेश्वरी से ग्रन्थावली के एडवांस लिए। चारेक बैंक में हैं। मगर पजेशन मिलने बेड-फ्लैट तैयार होने और शिफ्ट करने में तीनेक महीने तो लगेंगे ही। हालाँकि सब कुछ टिंकू के नाम ही है, मगर कभी-कभी सोचता हूँ कि कल टें बोल जाऊँ तो क्यों बेचारी को इस मुसीबत में डाल रहा हूँ।

इस बीच मैंने एक और कमाल का काम किया। 'हंस' के मानसरोवर का कानपुर में वार्षिक आयोजन था—दया दीक्षित उत्साह के मारे मरी जा रही थी—हर वक्त फोन, जैसे भी हो, आ जाइए—किशन और मेरे लिए लखनऊ तक हवाई जहाज का किराया देने को तैयार। सोचा, हो ही आते हैं। फिर सोचा, क्यों न सड़क-मार्ग से जाया जाए—पाँच सौ कि.मी. और साढ़े नौ दस घंटे का सफर हिम्मत करके इनोवा ली और संजीव, किशन के साथ 12 दिसम्बर को कानपुर के लिए रवाना। आगरा होते हुए साढ़े नौ बजे पहुँचे। पलवल तक ही दो घंटे लग गए। सड़क कानपुर तक फर्स्ट क्लास। तेरह-चौदह को कार्यक्रम अटैंड किया और चौदह को फिर वापस। दो-तीन घंटे के लिए गिरिराज के यहाँ भी गए। अजीब एडवेंचरस यात्रा थी। शायद इस तरह की यह आखिरी है। फिर भी जितनी थकावट वाली सोचते थे, वैसी नहीं थी।

5.1.2010

नया साल आया और गया। न कहीं जाने का मन हुआ, न किसी को बुलाने का। घर ही में रज़ाई में लेटे रहे। 'ठंड बहुत है' के तर्क पर किशन दफ्तर भी नहीं ले गया। 1 तारीख को दफ्तर गए—फिर शनिवार-रविवार रज़ाई। अपने पर आश्चर्य। लगभग तीन दिन सिर्फ बिस्तर पर। नहाना-धोना स्थगित। पेशाब भी पास रखे पॉट में। डर भी लगता था, क्या यही अपना भविष्य है ? टिंकू पास ही 'आकाश दर्शन' सोसाइटी में एक कमरे का फ्लैट मेरे लिए खरीद रही है। सैंतालीस लाख। बैंक इत्यादि लेकर। मैंने संजय से पाँच लाख लिये—पाँच अशोक माहेश्वरी से अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रचनावली के एडवांस। एकाध महीने घर का पजेशन मिलने में लगेंगे—फिर काम होगा—मार्च-अप्रैल से पहले शिफ्टिंग नहीं होगी। कभी-कभी मन होता है, क्यों बेचारी को परेशान कर रहा हूँ। डी.एल.एफ से यहाँ तक दसियों चक्कर लगा चुकी है। शायद लड़का भी इतना न करता। मेरी बेटी ऐसी कर्मठ है, सोचकर ही गर्व होता है। कभी-कभी मन होता है, क्यों बेचारी को परेशान कर रहा हूँ? ऐसा न हो कि इस बीच यह दुनियावी घर ही छोड़ना पड़े...अब कितने दिन और रह गए हैं? लगता है, उस घर में शिफ्ट हो भी गए तो रहना कितने दिन होगा? मैं गर्व से कहता रहा हूँ कि मृत्यु मेरी चेतना में कहीं नहीं है। मगर अब है कि मृत्यु ही दिखाई देती है। अनीस, जागो, कमर को बाँधो : उठाओ बिस्तर कि वक्त कम है। बहरहाल, सारे काम तो फिर भी चल ही रहे हैं।

कल सुधीर सक्सेना और विकास झा—दोनों ही आ गए। हालाँकि कहीं जाने की इच्छा और हिम्मत नहीं है, फिर भी आ गए तो वक्त अच्छा ही कटा। हँसी-मज़ाक—पुरानी बातें। ठंड बहुत थी, खाने के लिए किशन को परेशान नहीं करना चाहता था। मगर सब मिलाकर शाम यादगार हो गई।

ठण्ड बेहद बढ़ गई है। नहाए हुए तीन दिन हो गए हैं। आज तो ज़रूर ही नहाऊँगा।

1.4.2010

पिछले तीन महीने से जिस तरह टिंकू ने ज़मीन-आसमान एक कर दिया है, उससे कृतज्ञता से विभोर हो जाता हूँ। कहाँ डीएलएफ, कहाँ मयूर विहार—मुझे ग्राउंड फ्लोर पर फ्लैट चाहिए था, यहाँ ऊपर चढ़ना बेहद कष्टप्रद हो गया है। पहले हिन्दुस्तान टाइम्स में ही एक देखा। पचास लाख सुन कर दिमाग सन्ना गया। टिंकू ने कहा, दिनेश बैंक इत्यादि से लेकर तीस-पैंतीस कर देगा, बाकी मन्नू और मैं करें। मगर यहाँ बात बनी नहीं। आकाश दर्शन में एक कमरे का सैट देखा। छोटा है, मगर टिंकू को विश्वास था कि उसी में दो कमरे और एक ड्राइंग रूम निकल आएगा। ज़ाहिर है, फाइनल होते-होते दो महीने लग गए—सैंतालीस का। ढाई तीन और लगेंगे। मैंने संजय से पाँच लिये, फिर अपनी ग्रन्थावली के एडवांस के लिए अशोक महेश्वरी से पाँच लिये। टिंकू के कहने पर संजय वाले लौटा दिये। अब घर का नक्शा और काम शुरू हुआ और टिंकू के चक्कर बढ़ गए। हफ्ते में तीन दिन। दिल्ली का ट्रैफिक और खुद ड्राइव करके चालीस किलोमीटर आना-जाना...कितना कर रही है यह लड़की—सचमुच, जान झोंके हुए है! क्या कोई लड़का करता...

मगर आकाश दर्शन की सोसाइटी वालों ने एक और पंगा लगा दिया है—बिना डी.डी.ए. से परमीशन लिये आप घर के अन्दर भी कुछ नहीं कर सकते। टिंकू बम्बई गई है। अब भाग-दौड़ मुझे ही करनी है। वे कहते हैं, जो बन गई है उसे तुड़वाइए और फिर परमीशन लेकर बनवाइए। आर्किटैक्ट से सर्टिफिकेट लीजिए। देखें, क्या होता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2.4.2010

आज-कल बार-बार यही बात मन में आ रही है कि मैं जो टिंकू को इतना परेशान कर रहा हूँ और वह चकरघिन्नी की तरह डी.एल.एफ. और मयूर विहार के बीच चक्कर लगा रही है, कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि सब धरा का धरा रह जाए और खलास हुआ राजेन्द्र जी तो स्वर्ग की तरफ चल दिये...कितना थक जाता हूँ। कमरे की कुर्सी से बाथरूम तक जाने में साँस चढ़ जाती है। सबसे अधिक यातनाप्रद है गाड़ी से उतरकर सीढ़ियों पर चढ़ना। किशन के सहारे से जैसे-तैसे कमरे तक आता हूँ और पन्द्रह मिनट साँस साधने की कोशिश करता हूँ। लगता है, साँस उखड़ ही जाएगी। इस बीच किसी से बात भी नहीं कर सकता। किसी तरह कपड़े उतारकर लेट जाता हूँ और घंटे भर वहीं लेटा रहता हूँ...इस तरह कितने दिन और खिंचेगा? भैया राजेन्द्र अब तुम्हारे दिन खत्म हुए लगते हैं...

25.4.2010

अब इस हिन्दुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट 78-बी-1 से तम्बू उखड़ गए हैं। टिंकू ने जो फ्लैट खरीदा है आकाश दर्शन-175, उसी में जाना है। यहाँ चारों तरफ किताबें फैली पड़ी हैं। आठ-दस बण्डल भारत भारद्वाज के यहाँ भेज दी हैं—कहरा की लाइब्रेरी में भेजने के लिए। सारा कुछ बिखरा पड़ा है। समझ में नहीं आता, यहाँ से ले जाकर वहाँ कैसे व्यस्थित किया जाएगा? मन में एक उखड़ा हुआ होने का भाव है—डेरा-डपुरा उठ रहा है। सचमुच शिफ्टिंग कितना बड़ा सिरदर्द है। कल विभास और बलवन्त आए थे। चार-पाँच घंटे किताबें छाँटते रहे। आज और आना है। फिर भी कितना कबाड़ा है! मैंने भी दोनों हाथों से जमा किया है। अभी सुबह-सुबह भारत लड़ रहा था कि जो किताबें, करीब दस बंडल छाँटे हैं, उनमें एक भी पढ़ने लायक नहीं है। सम्पादक के यहाँ मन माँगी, रही-सही रचनाएँ ही नहीं आतीं, किताबें भी आती रहती हैं। खैर, भुगतेंगे। शायद फ़िदा आज़मी का शेर है, 'इस मकां को बनाने में ही मेट धर गया।'

9.5.2010

176-आकाश दर्शन, सोसाइटी
मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-91

कितना अजीब और अविश्वसनीय संयोग है कि मैं 9 मई, 2008 को ही मयूर विहार के हिन्दुस्तान टाइम्स फ्लैट में गया था और आज भी वही दिन है जब मैं इस नए फ्लैट में आया हूँ। छोटा है, मगर टिंकू ने बड़े मन से सजाया है। चकित तो मैं इस संयोग पर हूँ। क्या सचमुच कोई अदृश्य हाथ है जो नियति को नियंत्रित कर रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है? मैं इस पर बिल्कुल भी विश्वास नहीं करना चाहता, मगर इन तारीखों के मिल जाने का क्या करूँ? आज टिंकू, मन्नू, माही, रोशनी और दिनेश—सब आए थे। यही हमारा गृह-प्रवेश था। लगता है, अगले दिन भी शुभ ही होंगे। मगर यह तय है कि यह आखिरी मंज़िल है, मुहब्बत, जिसे कहते हैं हयात, देखो तो एक इन्तज़ार-सा है।

देखते हैं, कैसे कटती है अगली ज़िन्दगी! इस बार का सम्पादकीय अभी तक पूरा नहीं हुआ। दो-एक दिन में कोशिश करूँगा ताकि इसी अंक में जा सके। इस बार हंस की सामग्री को देखने का भी समय नहीं मिल पाया। बीना ही सब सँभाले हुए है। कल से दुर्गा भी मेरे साथ है। किशन और दुर्गा भूत की तरह सामान इधर से उधर ले जा रहे हैं। बेचारों ने सचमुच जान झोंक दी है। दर्जनों किताबों के बंडल और पत्रिकाओं के गट्ठर। एक बार बलवन्त और विभास आ जाएँ तो फिर से छँटाई करूँ। अभी बैठकर लिखने की सुविधा भी नहीं बन पाई है।

17.5.2010

टिंकू ने फ्लैट सचमुच इतना सुन्दर बना दिया है कि हर कोई तारीफ करता है। मेरी सुविधा का पूरा ध्यान रखा है। अभी तो चारों तरफ बंडल बँधे पड़े हैं। धीरे-धीरे व्यवस्थित हो रहा है। मुझे यहाँ एटहोम महसूस हो रहा है, न बहुत उचटा हुआ। खासतौर पर होटलों जैसा बाथरूम, साफ सुथरा, आधुनिक। भीतर से जानता हूँ कि यही अन्तिम मंज़िल है। रहने का अभ्यस्त तो होना ही पड़ेगा। इंडिया न्यूज़ और दूसरी जगहों पर अफ़वाह है कि यह सब मेरा पैसा है जिसे मैंने टिंकू के नाम से लिया है। संशयात्माओं का इलाज भी क्या है? किशन बड़ी मेहनत से सब कुछ सँभाले हुए हैं, चीज़ें बनवा रहा है, लगवा रहा है। हाँ, न बच्चों का मन लग रहा है, न सुमित्रा का।

1.7.2010

अब नरेन्द्र मोहन हॉस्पीटल, साहिबाबाद, जा रहा हूँ। वहाँ मैत्रेयी के दामाद सुभाष कार्डियोलॉजी के हैड हैं और उन्हीं के परिचित या सहकर्मी हैं वे डॉक्टर, जो मेरे हर्निया का ऑपरेशन करेंगे। आज भर्ती करके वे सारे चैक करेंगे और शायद कल ऑपरेशन कर दें। हार्निया कोई बड़ी ऑपरेशन नहीं है, घंटे-दो घंटे में हो जाता है, फिर आराम और शायद रविवार को घर वापसी। अभी अजय आएगा और किशन तो साथ है ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5.7.2010, सोमवार

आज बेहद-बेहद मानसिक परेशानी में यह सब लिख रहा हूँ मैं। 1 जुलाई को नरेन्द्र मोहन अस्पताल, साहिबाबाद में हार्निया का ऑपरेशन कराने गया था। दिन था बृहस्पतिवार। उसके दो दिन पहले से पाखाना एकदम बन्द था। वहाँ प्रारम्भिक तैयारियों में मैंने पाखाना न आने की शिकायत की। उन्होंने एनीमा दिया। बाजार से कोई लिक्विड मँगाकर चढ़ाया। सारे दिन उसका कोई असर नहीं हुआ। अगले दिन शुक्रवार को ऑपरेशन हुआ और शनिवार को लगभग चार बजे शाम तक घर आ गया। शुरू में दर्द हुआ था तो पेन-किलर खा लिया। उसी दिन रमणिका, अजय, अजित आए। गीता, अजित अंजुम आए। कुछ नहीं हुआ। कल रविवार को पेट साफ करने की गोली खाई जिसकी आधी खाने पर दो-तीन बार समय-असमय भागना पड़ता था। कल कुछ भी नहीं हुआ। आज भी ऐसा कोई प्रैशर नहीं है। और मैं भीतर से बेहद भयभीत हूँ। यह क्या हो रहा है? आज छठा या सातवाँ दिन है। कहीं कुछ भी असामान्य नहीं है। न बोलने में, न व्यवहार में, न सोचने में। खाना-नाश्ता सभी कुछ सामान्य चल रहा है। मगर डर है कि यह क्या है और कहीं यह मानसिक परेशानी किसी एबनॉर्मल स्थिति में तो नहीं ला छोड़ेगी? ऐसा तो न देखा, न सुना। इस समय जब यह सब लिख रहा हूँ तो भी कहीं कुछ भी असामान्य नहीं है। और यही चिन्ता का कारण तो नहीं है कि मेरे साथ इतनी बड़ी असाधारण घटना घट रही है और मैं वैसा ही सामान्य हूँ? इस शारीरिक परिघटना के मुकाबले मेरा यह असामान्य रूप से सामान्य बने रहना ही कहीं बहुत जटिल स्थिति में तो नहीं डाल देगा? पूछूँगा कि क्या मुझे ड्यूश लगाकर पेट को वॉश करना चाहिए? अगर एकाध दिन कुछ नहीं हुआ तो मैं निश्चय ही पागल होने लगूँगा। समझ में नहीं आ रहा, मुझे क्या करना चाहिए...दिमाग़ी रूप से तो इस चिन्ता के अलावा कुछ भी नया या चिन्ताजनक नहीं लगता फिर भी...हाँ, लोगों और चीज़ों के नाम न याद आना ज़रूर कुछ असाधारण लगता है—जैसे पिछले दिनों अक्सर भूल जाता था कि मुझे हार्निया का ऑपरेशन हुआ है। यहाँ तक कि एक बार किशन से पूछा कि मेरा ऑपरेशन किस बात का हुआ है? मगर यह तो पन्द्रह दिन से है। पहले बहुत दिनों रैचिड ऑफ द अर्थ के लेखक का नाम ही नहीं याद आया—विश्वास और बलवन्त से पूछा, अनन्तं विजय से पूछा, तब जाकर फ्रैंक फैनन पक्का हुआ।

28.7.2010

कल यानी 27 जुलाई को सत्ते का सुबह सात बजे निधन हो गया। किसी राजू का फोन आया आगरा से। मैं शारीरिक रूप से जा सकने की स्थिति में नहीं था। हेमेन्द्र, मालती, सुमन, मन्नू को बता दिया। मन में उठता रहा, क्या मुझे जाना चाहिए? जाने की बेचैनी भी नहीं थी! वह मुझसे ढाई साल छोटा था, मेरा सगा भाई था, मगर कितनी दूरी आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई थी। लगता था, अपना नहीं, कहीं दूर का कोई था जो चला गया। उसके पास दसियों बरस से साथ रहती वह महिला थी—उमा। यह भी एक 'अन्त' था कि घर का कोई पास नहीं था। शायद घरवालों को कोई अफ़सोस भी नहीं था। मुझे भी नहीं लग रहा था कि कोई अपना सहोदर था जो आज नहीं है। उसका सारा घर-बार, ताम-झाम, मकान-सामान सब आज दूसरों का है। हम कहीं नहीं हैं। सारा दिन बहुत ही सामान्य ढंग से चलता रहा। 'अक्षर' गया, कविता, राकेश आए और सभी कुछ इस तरह देखा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। मन में कहीं कचोट या दंश भी नहीं था कि देखो, आज सुबह ही मेरा भाई चला गया है और मेरा मन भी नहीं है कि किसी को बताऊँ।

दरअसल उसने खुद अपने को अकेला कर लिया था। सबसे लड़ चुका था—भाई-बहनों में से किसी का उसके साथ कोई लगाव नहीं रह गया था। मालती और बॉबी गए थे। डर था कि कहीं मुखाग्नि देने या बाद में मालती कोई बखेड़ा न कर दे कि उसका एकमात्र भतीजा बॉबी है और वही उसका वारिस है! प्रॉपर्टी इत्यादि को लेकर सवाल उठा दे! लौटते हुए उससे बात हुई, लगा तो नहीं। सभी के मन में एक ही बात थी कि क्या सब कुछ उमा ही ले जाएगी? कौन है, कहाँ से आई है, उसका कौन-कौन है, कोई नहीं जानता। मैं भी पिछले महीने उसे देखने गया था। उमा और उसकी बहन थी। चलते वक्त उमा ने पूछा था, भाई साहब, इन्हें कुछ हो गया तो हमारा क्या होगा? मैंने कह दिया, दसियों वर्षों से तुम रात-दिन उसकी देख-भाल कर रही हो, सेवा में अपने को झोंक दिया है, सभी कुछ तुम्हें ही मिलेगा। सत्ते ने शायद कोई वसीयत भी इसी आशय की कर दी है। सच पूछो तो मैं भी चाहता हूँ कि जो औरत रात-दिन उसके साथ रही है, उसे ही सब कुछ मिलना चाहिए। न बहनों के मन में उसके लिए चिन्ता है, न भाइयों में हौसला है। हेमेन्द्र कुछ शोर करेगा। दस भाई-बहनों में कोई भी तो नहीं है जिसे उसके जाने का अफ़सोस हो। हाँ, मुझे लगता है—लो, अब हम लोगों का नम्बर भी शुरू हो गया। सभी तो सत्तर-अस्सी के हैं।

सत्येन्द्र एक अविवाहित, अकेला, अनसमझा और अतृप्त। एक बहुत सम्भावनाओं भरी लबलबाती ज़िन्दगी। बहुत कुछ करना चाहता था, बनना चाहता था, मगर एक झूठी ज़िन्दगी में ही व्यर्थ क्षोभ था। कभी उस पर लिखूँगा कि कैसे बौद्धिक रूप से तड़प लिये बह गया। अध्यात्म और सांसारिक व्यर्थता की बात करता हुआ और एक माचिस की डिबिया तक न दे सकने वाला अन्तर्विरोधों का मारा हुआ—अपने भीतर के माया-मोहों से लड़ता हुआ, एक प्यारा इनसान समाप्त हो गया।

20.8.2010

बेचारी टिंकू ने लगभग पचास लाख रुपए और छह महीने गुड़गाँव से यहाँ मयूर विहार भाग-दौड़ और लगातार जान झोंककर यह सुन्दर छोटा-सा फ्लैट बनवाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और तीन महीने पहले मैं यहाँ आ भी गया हूँ, मगर हमेशा लगता है, इसमें बहुत रहना हो नहीं पाएगा। यही अपराध-बोध मुझे रात-दिन कचोटता है। लगता है, शरीर की सारी क्षमताएँ फैकल्टीज साथ छोड़ रही हैं। पिछले महीने हार्निया का ऑपरेशन कराया, साहिबाबाद के नरेन्द्रनाथ हॉस्पिटल में, फिर सीटी स्कैन। अब एम्स में भरती होना है। टिंकू और अजय नावरिया ने भाग-दौड़ कर डॉ. सशया के माध्यम से एक प्राइवेट वार्ड का इन्तज़ाम कराया है। चलना-फिरना लगभग बन्द। छोटा-सा कमरा, उसमें मेज़ या बिस्तर। सिर्फ पाँच कदम बाहर जाना होता है तो किशन का हाथ पकड़कर चार सीढ़ियाँ उतरो और गाड़ी में बैठ जाओ। सबसे बुरी हालत पेट की है—तीन-तीन दिन तक एक बूँद पाखाना नहीं। भूख मर ही गई है। एक पतली-सी रोटी के बाद सारे दिन कुछ भी खाने को मन नहीं करता। अब तो अक्षर में लम्बा बैठने में भी पीठ में दर्द होता है। डायबिटीज़ की वजह से आँखें कभी-कभी धुँधला जाती हैं—घंटों एक शब्द पढ़ना-लिखना नहीं। लगता है चलने के दिन आ ही गए। आखिर शरीर भी तो बयासी के ऊपर हो रहा है। किसी भी काम के लिए कोई उत्साह नहीं है। न पढ़ने की इच्छा होती है, न लिखने की। निस्पन्द और निर्जीव। न कुछ लिखने की बात ध्यान आती है, विचार। हर महीने सम्पादकीय लिखना मौत जैसा लगता है। न कोई भविष्य है, न सपना। अतीत तो एकदम साफ है। पुरानी बातें भी याद नहीं आतीं। सत्ते चला गया, पुराना दोस्त हरि शर्मा नहीं रहा, सच पूछो तो भीतर न अफ़सोस है, न याद। जैसे एक रुटीन है, लोग आते हैं, अपने खेलकूद कर चले जाते हैं। अपना भी हाल यही है, 'हो चुकीं ग़ालिब बलाएँ सब तमाम, एक मर्गे नागहानी और है'। इसी तरह अपनी भी कहानी खत्म हो जाएगी। पता नहीं, कोई याद रखेगा भी या नहीं। कभी-कभी ईमानदारी से सोचता हूँ कि मैंने साहित्य या विचारों की दुनिया में क्या ऐसा दिया है कि कोई याद रखे ? कुछ तेज़-तर्रार भाषा में जो है, उसकी धज्जियाँ ज़रूर उड़ाई हैं। अपना लो कुछ भी, मौलिक नहीं है। वैसे भी इतना सब महत्वपूर्ण और मौलिक भरा पड़ा है दुनिया में कि अपनी कहाँ कोई खरोंच...शायद वैसी न बौद्धिक तैयारी थी, न क्षमता। दूसरों के किए पर ही चकित होते रहे...

तो राजेन्द्र जी, बहुत जल्दी ही अपनी कहानी भी खत्म होने जा रही है, 'अनीस, जागो, कमर को बाँधो : उठाओ बिस्तर कि वक्त कम है...'

28.8.2010

आज मेरा जन्मदिन है और मैं यह सब किशन की बेटी सुस्मिता के दिये हुए पेन से लिख रहा हूँ। पता नहीं, 81वाँ है या 82वाँ! सत्ते की बहुत याद आ रही है। हर जन्मदिन पर लड़ता था कि मैंने उसकी तारीख चुरा ली है। अट्ठाईस अगस्त उसका जन्मदिन है। किस तरह जो हम मन में मान लेते हैं, बाहर के लोग उसे स्वीकार कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेते हैं, सबसे अधिक स्वीकार करते हैं, आप खुद। ऊधो मन माने की बात। एक भूल आपके लिए ध्रुव सत्य हो जाता है।

पिछले दिन अस्पतालों में दौड़ते ही बीते। पहले नरेन्द्र मोहन में हार्निया ऑपरेशन, फिर एमर्जेन्सी में कैलाश भागवत में अपना सीटी स्कैन कराना और पिछले हफ्ते एम्स में जनरल बैक-अप के लिए भर्ती, लगातार वज़न कम होना, रात में छह-सात बार पेशाब, लगातार कब्ज। शरीर सिकुड़कर ऐसा हो रहा है कि रोना आता है। हाथों पर झुर्रियाँ, शरीर खुरदुरा, सूखा, चलने-फिरने में दिक्कत, हमेशा सहारे की ज़रूरत। मैं इसे उतार क्यों नहीं देता, क्यों ढो रहा हूँ? अब ज़िन्दगी में रखा क्या है? दूसरों पर बोझ, परेशानी का कारण, झूठी सहानुभूतियाँ लगता है। टिंकू और मन्नू के अलावा सिर्फ किशन है जो सबसे अधिक चाहता है, उसका स्वार्थ है मुझे बनाए रखना। बेचारा जाएगा कहाँ?

इस बार सचमुच मैं नहीं चाहता था कि कुछ किया जाए। क्या फायदा सौ-सवा सौ लोगों को खिलाकर-पिलाकर पचासों हज़ार का खर्चा। पिछली बार टिंकू ने किया था। मगर अजय और गीता ने ज़िद करके आज प्रेसक्लब में तीस-चालीस लोगों को बुला लिया है। पैसे संजय ने भी दिये हैं। अजय पिछले पन्द्रह दिनों से अपना घर-बार, नौकरी छोड़कर लगातार मेरी सेवा में लगा रहा है। एम्स का तो सारा काम ही उसने किया है। कैसे उतारूँगा इन लोगों का अहसान? चलो, शायद यही आखिरी जन्मदिन हो—आगे ज़रूरत ही न पड़े...और इस परेशानी की ज़िन्दगी से मुझे भी मुक्ति मिले...

5.9.2010

आखिर इन लोगों ने 28 को जन्मदिन पर आयोजन रख ही लिया। 27 को यहीं घर बैठकर अजय के साथ सूची बनी, फोन किए गए और प्रेस क्लब में ऊपर चालीस-पैंतालीस लोग आ गए। गीता बहुत उत्साह में थी और सब कुछ काफी भव्य हो गया। 27 को मनोज यहीं था और रुकना चाहता था, हालाँकि उसकी गाड़ी थी। पता नहीं, उसका लगभग हर महीने दिल्ली आना मुझे पसन्द नहीं है, कभी लाहौर जाने के बहाने, कभी वीजा-पासपोर्ट के लिए। उसका तो यह हर महीने का सिलसिला है, जबकि मुक्ता का रुकना इतना अखरता नहीं है। उसका आने को कई बार फोन आया। बेकार पैसे खर्च होंगे, मैंने ही रोक दिया। टिंकू दुहाई में थी। दिनेश, मायरा साही के साथ बहुत देर के बाद आकर चला गया था। चलो, यह खेल भी खत्म हुआ।

9.9.2010

आजकल एक अजीब शारीरिक और मानसिक जड़ता में ज़िन्दगी निकल रही है। शरीर की सारी चमड़ी इस तरह सूख, सिकुड़ गई है और खाल इतनी खुरदरी हो गई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जैसे शरीर पर टाट चिपका हो! तेल लगा कर कुछ चिकनाई देने की कोशिश करता हूँ। भूख और ज़बान का स्वाद जैसे बचा ही नहीं, बहुत बेमन से ज़बर्दस्ती एक पतली रोटी खाकर सारा दिन निकलता है। पेट हफ्तों बिल्कुल साफ नहीं होता, ईसबगोल के तरह-तरह के मिश्रण खा ली, सुबह वही निराशा। शरीर और पेट जैसे मेरा आब्सैशन हो गया है। वज़न पन्द्रह-बीस किलो घट गया है और जो देखता है, कहता है, मैं बहुत कमज़ोर हो गया हूँ। सारे दिन किशन से युद्ध होता है, वह है कि थोड़ी-थोड़ी देर बाद कुछ खिलाने की कोशिश करता है और मैं हूँ कि घोर अनिच्छा से मना करता हूँ। घर में हमेशा लड़ाई चलती रहती है।

सबसे बुरी हालत मानसिक है। न कुछ पढ़ने का मन करता है, न लिखने का। घंटों बैठा मदहोश रहता हूँ—न भीतर कोई सोच, न चिन्तन, न सपना, न विचार। जैसे इन चीज़ों से कभी वास्ता ही नहीं रहा। ऐसी सफाचट स्थिति तो कभी रही ही नहीं। सोचता हूँ कि क्या शय्या समेटने का समय आ गया है? ऐसी ज़िन्दगी का अर्थ भी क्या है? हर बात थोड़ी ही देर में भूल जाता हूँ। एक घंटा आलस और निष्क्रियता, चलना-फिरना मुसीबत लगता है। रात में पाँच-सात बार पेशाब जाना पड़ता है। पास में पॉट रख लिया है ताकि बाथरूम तक न जाना पड़े। क्या सभी कुछ पेशाब में ही बह जाएगा? लेटता हूँ तो बैठने का मन नहीं करता और बैठता हूँ तो उठकर पंखे, लाइट का स्विच ऑन करने या बिस्तर से मेज़ तक आने में बीसियों मिनट सोचता हूँ। हर वक्त चिन्ता है कि मेरे बाद इस किशन और इसके परिवार का क्या होगा? बिना दूसरे का हाथ पकड़े दस कदम चलना मुहाल लगता है। जैसे-तैसे दफ्तर जाता हूँ, कोशिश करके तीन-चार घंटे कुर्सी पर अपने को रख देता हूँ और हाथ पकड़कर गाड़ी तक जैसे-तैसे। सोचता हूँ, मुझे अक्षर के लिए, वहाँ की व्यवस्था के लिए चिन्ता है, किशन दो-चार साल और बने रह सकता है। बाद में सब पर ताला पड़ना ही है। बेचारी टिंकू बीस किलो मीटर से कैसे आएगी-जाएगी। कोई ऐसा भी दिखाई नहीं देता जो सब सँभाल ले। ऐसी असहायता की तो मैंने कभी कल्पना ही नहीं की थी। क्या मैं वही हूँ जो भयंकर आत्मविश्वास से भरा एक से एक धमाकेदार चीज़ें लिखने की योजनाएँ बनाया करता था? अपने को विकट चूतिया और महा उल्लू का पट्ठा महसूस करता हूँ—कम-से-कम शरीर ही साथ देता तो भी सँभाल लेता।

17.9.2010

दो-तीन दिनों से सत्ते का बार-बार ध्यान आ रहा है। सत्ते यानी मेरा सगा छोटा भाई विंग कमांडर सत्येन्द्र सिंह यादव। 27 जुलाई को जब वह गया तो मन में कुछ नहीं हुआ। न अफ़सोस, न उसके जाने की कचोट। बस, समाचार सुन लिया, आगरा भी नहीं जा पाया। हाँ, मालती और बॉबी गए थे। शोक शायद घर में किसी को नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। न माधवी, सुमन को, न मुन्ने को। दरअसल उसने अपने-आपको इतना काट लिया था कि किसी से कोई संवाद हीं नहीं रह गया था। संवाद मेरा भी साल-डेढ़ साल से नहीं था। हाँ, बहुत बीमारी का समाचार सुनकर मैं सुनील के साथ कार में आगरा गया था, सुबह गए—बारह एक बजे पहुँचे और चार बजे वापस भी आ गए। दो घंटे रुका था। बीमार था और लेटा हुआ था, पतली रज़ाई ओढ़कर। चलने-फिरने की स्थिति नहीं थी—वहीं प्राकृतिक ज़रूरतें पूरी करता था। हाँ, आवाज़ में वही दम-खम और कड़क। वही अपने आध्यात्मिक भाषण देने की शुरुआत की तो मैंने रोक दिया। साल भर पहले हमारी बातचीत बन्द हो गई थी, वर्ना रोज़ सुबह बिना नाग़ा फोन करता था और वही अपने भाषण, "भाई साहब, मेरे मन में कैसे-कैसे महान विचार आते हैं, मैं महान योगी हो रहा हूँ। इन्हीं ऊँचे और शुद्ध विचारों के कारण मेरे मन और शरीर में चन्दन की सुगन्ध भरी रहती है। उमा कहती है, मेरे आस-पास एक तेज़ और अजीब मस्त करनेवाली खुशबू बनी रहती है।" मैं उसे डाँट देता। जो भी मिलकर आता वही बताता कि दो-तीन घंटों से पहले छोड़ते ही नहीं हैं—वही इन भगवानों, सन्तों को गालियाँ, इनके ढोंग और आडम्बर पर भाषण। जो एक बार मिल लेता, वह फिर वहाँ जाने से कतराता दिखाई देता। "मेरे भीतर तो ऐसा प्रकाश बना रहता है कि मुझे इस बाहरी भेष की ज़रूरत ही नहीं है।" मिलने उससे शायद ही कोई जाता हो—वह उमा को कितना बोर करता होगा। "भाई साहब, उस उमा ने मेरी रात-दिन जो सेवा की है, उसे बता नहीं सकता।"

उमा शायद भोपाल की कोई परित्यक्ता महिला थी। उसका कैसे परिचय हुआ, नहीं मालूम। शायद किसी ने कहा था कि अकेली है, आठ-दस साल का लड़का है। बेसहारा है। आप भी अकेले हैं, सेवा करेगी और पड़ी रहेगी। सचमुच, उसने सत्ते की बहुत सेवा की—रात-दिन। उसकी सम्पत्ति का लालच ही रहा होगा। दयाल बाग की जीवन ज्योति कॉलोनी में सत्तर-अस्सी लाख का मकान था, कुछ सामान भी रहा ही होगा। पन्द्रह-बीस हज़ार हर महीने पेंशन आती थी। असल में उसने भाई-बहन किसी से भी कोई सम्बन्ध नहीं रखे। बाद के दिनों में तो सारे परिवारवालों से कहने लगा था कि तुम मुझसे इसलिए सम्बन्ध बनाना चाहते हो कि बाद में मेरी प्रॉपर्टी पर कब्जा कर लो। उमा के बाद उसने गौतम जैसे दोस्तों से इसीलिए झगड़ा भी कर लिया था—वर्ना गौतम अपने बेटे के साथ वहीं रहता था—रात-दिन सेवा करता था। वैसे भी उसे हर समय एक साथी और सेवक की ज़रूरत थी। मुझसे भी कहता था कि मेरी सेवा करना और मुझे जिलाए रखना उमा के लिए ज़रूरी है, क्योंकि आखिरी साँस तक मेरी पेंशन आएगी। मगर उसकी ज़रूरतें इतनी थीं कि हरेक से पैसे माँगता था। दिल्ली के कोई नागपाल थे जिनसे उसकी दोस्ती हो गई थी।

उससे भी उसने शायद तीस-चालीस हज़ार लिये थे। जानते हुए भी कि वह लौटा सकने की स्थिति में नहीं है, वे क्यों देते रहे, पता नहीं। मन्नू से दस, मुझसे दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार में दस-पन्द्रह हज़ार लिये थे। अरुण के जेठ मिलने गए तो उनसे माँगने लगा। दो-दो टेलिफोन थे, स्कूटर और गाड़ी खड़ी रहती थी। शायद उमा को ड्राइव करना भी सिखा दिया था। वह उसे इधर-उधर ले जाता था। बनारस, हरिद्वार पता नहीं कहाँ-कहाँ उसे लेकर गया था। शौक और इच्छाएँ सभी थीं। मुझसे डेढ़-दो साल छोटा था। हमेशा उसे शिकायत रहती थी कि भाइयों ने उसे धोखा दिया। उसे उसका सही हिस्सा नहीं दिया। अस्सी-इक्यासी में जब लक्ष्मीनारायण जी (माधवी के पति) और भरणपति मायाजी की मध्यस्थता में घर का बँटवारा हुआ तो आगरे का घर भूपेन्द्र को दिया गया, क्योंकि पिछले चालीस सालों में उसने न सिर्फ घर की देखभाल, बल्कि मरम्मत, रख-रखाव भी रखा। वही घर था, जहाँ सब भाई-बहन रिश्तेदार आते थे। सत्ते को शायद डेढ़-दो लाख नगद दिये गए। बाज़ार की छह दुकानों में तीन उसके और तीन मेरे नाम कर दी गई। मैं चूँकि घर में कभी कुछ नहीं दे पाया, इसलिए मैं कुछ लेना भी नहीं चाहता था। पता नहीं, क्या सोचा गया जो मुन्ना (हेमेन्द्र) को शायद कुछ नहीं दिया गया—जो घोर अन्याय था। वह बाहर मोरापुर या वहीं काग़ज़ की मिल में काम करता था। घर से उसे कुछ मतलब भी नहीं था—न लेना, न देना। शादी-ब्याह, पर्व-त्योहार भूपेन्द्र और उसकी बहू ही सँभालते थे, शायद सत्ते भी कुछ देता था। यह बँटवारा सबके दस्तखतों से काग़ज़ पर ही हुआ था, इसकी रजिस्ट्री नहीं कराई गई। स्वाभाविक ही सत्ते की घनघोर शिकायत थी कि उसके साथ न्याय नहीं हुआ। मुझे कुछ चाहिए भी नहीं था। घर के गहने-सोने या बर्तना इत्यादि बहनों को दे दिया गया। सत्ते ने अपना अलग घर दयाल बाग की जीवन ज्योति कॉलोनी में बना लिया। आज तो वह शायद साठ-सत्तर लाख का होगा। चूँकि सत्ते के आगे-पीछे कोई नहीं था, इसलिए हरेक की निगाह में उसे अपनी प्रॉपर्टी का ही स्वार्थ दिखाई देता था। उसने खुद किसी से निकट सम्बन्ध नहीं बनाए। हर वक्त साथ रहनेवाले गौतम से भी उसकी अनबन हो गई। हो सकता है, उसके पीछे उमा का आना रहा हो।

19.9.2010

सत्ते बेहद शक्की था। हरेक पर शक करता था। उमा पर भी विश्वास बहुत बाद में जमा। उसके किसी आध्यात्मिक परिचित के माध्यम से उमा का परिचय हुआ—अकेली है, एक छोटा लड़का है, पति ने छोड़ दिया है, या मर गया है। निहायत गरीबी में दिन बिता रही है। आपकी देखभाल करेगी और पड़ी रहेगी। ऐसा ही कुछ कहा होगा। शायद वह दस-बारह साल साथ रही। असीम धैर्य वाली रही होगी उमा, क्योंकि सत्ते को बर्दाश्त करना लोहे के चने चबाने जैसा था। जबान कर्कश थी और कुछ भी बोल देता था। जब आगरा के घर में रहता था तो छोटी-बड़ी बेबी से उसने एक बार कह दिया था कि विधवा हो-होकर तो इसी घर में आओगी। गौतम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कुछ ऐसा ही कहा होगा। जब उसकी आँखें इतनी खराब नहीं थीं तो उमा को लेकर कई जगह गया था। चाहता था, उमा को परिवार की तरह लिया जाए। शायद मन्नू के पास लेकर जाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी, हाँ, जयपुर लेकर कभी गया हो! मालती और भूपेन्द्र के परिवार से तो उसकी पहले ही अनबन हो गई थी। मालती चाहती थी कि जैसे भी हो, उससे बनाकर रखे। आखिर एक दिन सब कुछ उन्हीं लोगों के लिए तो छोड़ जाएगा।

20.9.2010

ग़ज़ब का जमाखोर था सत्ते। पता नहीं, कब-कब की क्या-क्या चीज़ें उसने सँभाल कर रखी थीं—यहाँ तक कि पाउडर के डिब्बे भी। क़ीमती कालीन गोल तह किया हुआ हमेशा एक तरफ खड़ा रहता था—न किसी को दे सकता था, न खुद इस्तेमाल कर सकता था। उसके रोएँ जगह-जगह से उड़ गए थे और अब गलने भी लगा था। मेरा विश्वास है कि वह अभी भी उसी घर में किसी कोने में खड़ा होगा। हमेशा उसे शिकायत रही कि न कोई उसे प्यार करता है, न किसी ने उसके लिए कुछ किया। किसी हद तक यह बात सच भी थी। शुरू से ही श्रेष्ठ होने की भावना उसमें इतनी भरी थी और बाद में एयरफोर्स का ऑफिसर बनने ने उसमें और घी डाल दिया। सुपीरियॉरिटी कॉम्प्लैक्स उसे किसी के सामने याचक या छोटा बनाने से रोकता था। वैसे भी घरों में कौन किसी को बड़ा-छोटा मानते हैं। बड़प्पन या मेधावी होने के गुण हमेशा बाहरवालों के सामने ही बताए जाते हैं। यह बात वह समझ ही नहीं पाया और भीतर से अकेला होता चला गया।

Opposition Sex की कम्पनी के लिए भी वह तरसता ही रहा। पहले चचेरी बहनों के साथ, फिर मामीजी की लड़की सुरेखा के साथ। बाहर की सुविधा नहीं थी। उन दिनों स्नेह जी हमारे यहाँ रहकर पढ़ रही थीं, स्वाभाविक था कि वह मेरे साथ ज़्यादा जुड़ी थीं। वहाँ भी उसने घुसने की कोशिश की। अफसरों की पत्नियों के साथ उसका व्यवहार कैसा था, इसका अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। शायद उनके परिवार भी उससे बचते होंगे। नौकरी छोड़ देने के बाद वह अनेक आध्यात्मिक झुकाव वाली महिलाओं से घनिष्ठ हो गया था। एक मिसेज चड्ढा को तो वह कई बार शक्ति नगर या हौज़खास में लाता था—जानते हुए कि न मन्नू उसे पसन्द करती थी, न मैं। एक बार तो हमें रात में दोनों को लौटा देना पड़ा था।

इस लप-लप प्रवृत्ति में ठहराव आया उमा के साथ, लेकिन तब तक उम्र बहुत हो चुकी थी। शायद वह अवसर मिलने पर कुछ करने लायक भी नहीं रह गया था। शादी के लिए बहुत दबाव डाले मगर उसने नहीं की। फिल्म स्टार जैसी अपूर्व सुन्दरी मिली ही नहीं। जिनके प्रस्ताव आते थे, वे घरेलू लड़कियाँ थीं। दुनिया भर के अन्तर्विरोधों का गुट्ठल था वह। उसे ऐसी लड़की की तलाश थी कि बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफसरों के बीच स्मार्टली बिहेव करे, डांस करे और छुरी-काँटे से खाने में कुशल हो—सब कहें कि सत्येन्द्र जी की वाइफ सौ में एक है। लेकिन घर में आते ही रोटी बनाए, उसके पाँव दबाए और पूजा-व्रत करे। ज़ाहिर है, ऐसा मिश्रण मिल नहीं सकता था। न इतना धैर्य था, न इतनी सूझ कि लड़की को अपने हिसाब से ढाले। शायद उसे पता भी नहीं था कि उसे चाहिए क्या? एक सम्बन्ध को इसलिए अस्वीकार कर दिया कि लड़की छुरी-काँटे से खाना नहीं जानती थी या उसके हाथ की लकीरें पति के लिए शुभ होने का संकेत नहीं देती थीं।

जिन दिनों आगरा में उसकी पोस्टिंग हुई उन दिनों वह घर ही रहने लगा था। उन दिनों उसने भूपेन्द्र के परिवार की नाक में दम कर दिया था। बड़ी बेबी या सुमन, या मालती उसकी वर्दी धोती, प्रेस करती, जूतों पर पॉलिश करती या हर समय कुछ न कुछ करती रहती। वे सब लगभग चिढ़ने लगी थीं।

फिर चढ़ा उसे अध्यात्म का चस्का। अचानक उसका हिन्दी प्रेम इतना प्रबल हो गया था कि जब देखो, हिन्दी के इस्तेमाल पर भाषण देता। शायद अपने दफ्तर में भी इसे लेकर कुछ हुआ और बाद में उसने स्वेच्छा से रिटाय़रमेंट ले लिया—लग गया स्वामियों के यहाँ चक्कर लगाने में। गणेशपुरी के स्वामी मुक्तानन्द के काफी निकट आ गया था। शायद उन्हें भी ऐसे व्यक्ति की तलाश थी जो एयरफोर्स में विंग-कमांडर की हैसियत रखता हो, टेक्नीकल चीज़ें समझता हो, उनकी बिजली इत्यादि के काम देख सकता हो। स्वामी मुक्तानन्द उन दिनों काफी प्रसिद्ध हो गए थे, गणेशपुरी नाम का आश्रम भी बना लिया था, सोने का सिंहासन था और अपना हवाई जहाज भी रखते थे। एक तरह उन दिनों भगवान रजनीश को टक्कर दे रहे थे। उनकी महानता और समृद्धि की ये सारी सूचनाएँ हमें सत्ते से ही मिलती थीं। चेले-चेलियों का तो कहना ही क्या! एक से एक बड़े सेठ, अफसर, नेता उनसे संपर्क करने को तरसते थे और बाबा थे कि किसी को घास ही नहीं डालते थे। सत्ते के अनुसार, वह खुद बाबा के इनर सर्किल में आ गया। एक बार तो वह उन्हें घर ले आया। खातिर का कहना ही क्या—कहाँ उठाऊँ, कहाँ रखूँ! ज़िद करके एक बार मुझे भी उनके पास ले गया। ज़ाहिर है, मैं बिल्कुल प्रभावित नहीं हुआ। शायद उसने अपनी गाड़ी दसियों साल इसलिए नहीं बदली कि बाबा उसमें एक बार बैठ चुके थे। बरसों घर के सामने धूल खाती रही।

दस-बारह साल वह मुक्तानन्द के करिश्मे में रहा। वस्तुत: वह घनघोर अविश्वासी आदमी था। उसका न अपने पर विश्वास था, न मित्रों या रिश्तेदारों या सम्बन्धों पर। वह मुक्तानन्द में भी विश्वास नहीं रखता था। उनसे जुड़ा था शायद उनकी गद्दी पाने के लिए। उनके न रहने पर जब गद्दी के लिए उनके शिष्यों और सम्बन्धियों में झगड़े शुरू हुए तो वापस आगरा आ गया, वर्ना हफ्तों वहीं रहता था। धीरे-धीरे उसका यह अविश्वास उन सारी बातों में भी फैल गया जिनका वह प्रवचन किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। शास्त्र, धर्म या किसी और विचार में भी उसे विश्वास नहीं रह गया था। शायद वह खुद एक गुरु बनना चाहता था। हर सामनेवाले को पकड़कर घंटों वे सब बातें कहता था जो न दार्शनिक थीं, न आध्यात्मिक—हाँ, उसमें आस्था रखने का भाव था। शायद इसी भ्रम में उसने भी एकाकार कर लिया था। लोग उससे भागते थे, बचते थे। किसके पास इतनी फुरसत, धैर्य और दिलचस्पी है कि वह बकवास सुनता!

15.10.2010

पिछले महीने दोनों भाग 'शेखर' और 'नदी के द्वीप' पढ़ता रहा और चकित होता रहा कि कितना प्रौढ़ और अनुशासित दिमाग का लेखक था अज्ञेय। क्या शब्द-चयन, क्या भाषा और स्थितियों पर गहरी पकड़...'शेखर' सन चालीस में आया और 'नदी के द्वीप' दूसरे युद्ध के बाद लिखा गया। मुझे याद है यह प्रगति प्रकाशन, 35, फीरोजशाह रोड से छपा था। हालाँकि खुद अज्ञेय इसे 1957 में सरस्वती प्रेस से प्रकाशित मानते हैं। बहरहाल हिंदी में उस समय इतनी मैच्योर रचनाएँ आ सकती थीं, यह सचमुच चकित करता था।

'नदी के द्वीप' पर मैं एक समीक्षानुमा कुछ लिखा था 'हंस', जुलाई, 1987 में। तभी प्रसाद के उपन्यासों पर भी लिखा। उन्हें पढ़कर और भी चकित हुआ कि क्या सचमुच मैंने ही लिखा है? भाषा, शब्द-चयन, विश्लेषण हमारी और अपनी बात कहने की साग्रह योजना। तब कितना कुछ था कहने के लिए! शायद कम चौकन्ना नहीं था दिमाग़। आज तो वैसा लिखना ही सम्भव नहीं है—सब सूख गया है। न वह भाषा है, न दृष्टि—सूझ तो है ही नहीं। कभी सोचा भी नहीं था कि देखते-देखते मैं इतना मोरोन (चूतिया) हो जाऊँगा। जैसे सब कुछ हो चुका है और अब कुछ करने को बचा ही नहीं है। इन दोनों पढ़ी हुई किताबों पर फिर लिखना चाहता हूँ, मगर क्या लिखूँगा? कुछ भी तो नहीं है!

20.10.2010

आज सुबह पाँच बजे के करीब मैंने सपने में आत्महत्या कर ली। किसी ऊँची जगह से छलाँग लगाई है और नीचे गिरते हुए अपने-आप से बार-बार कह रहा हूँ कि 'नो कमिंग बैक राजेन्दर—नो कमिंग बैक। अब चाहो तो भी लौट नहीं सकते—सब खत्म हो गया है।' तभी आँख खुल गई। सोच रहा हूँ, क्या मतलब है इस सपने का?

14.12.2010

शायद इससे बुरा और निरर्थक साल अपनी याद में कभी नहीं गुजरा लगता है—न कुछ लिखने को है, न सोचने को। बस, शरीर है और वह बिखर रहा है। मोटे रूप में यह वर्ष अस्पतालों के चक्कर लगाने में ही गया—कभी नरेन्द्र मोहन तो कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एम्स। आजकल फिजियोथैरेपी के लिए लालबहादुर शास्त्री अस्पताल। कमर में दर्द है और इसने उठना-बैठना मुहाल कर दिया है—हर वक्त दवाओं की मालिश, सिंकाई। बिना दूसरे का हाथ पकड़े दस कदम चलना मुश्किल। अगर किशन न होता तो कैसे निकलते ये सारे दिन? बिना शिकवा-शिकायत के बेचारा हर वक्त सेवा में हाज़िर। शायद कोई पुण्य-प्रताप ही रहा होगा कि मुझे किशन के रूप में यह वरदान मिला। वह मुझसे ज़्यादा दवाओं के बारे में जानता है। कितना विचित्र होता है, अपने सामने अपने को तिलतिल बिखरना देखकर—मगर भीतर से मैं शायद ही कभी पराजित महसूस करता होऊँ। विश्वास है, बिना टूटे ये दिन भी निकाल ही दूँगा। एक दिन उठूँगा और मेज़ पर बैठूँगा तो लिखने का दवात-काग़ज़ पर उतर रहा होगा शायद यह संकल्प न सायास है, न उसे याद करना पड़ता है।

सिर्फ वह है और पेट्रोल की तरह ऊर्जा देता है। बाहर निकलना बन्द कर दिया है, दिल्ली में भी अक्सर घर ही आ जाता हूँ। टिंकू के प्रयासों से ग्राउंड फ्लोर का घर मिल ही गया है।

लेकिन दुर्घटना दूसरे स्तर पर हुई है। बौद्धिक और रचनात्मक धरातल पर लगता है, जैसे किसी बड़े शून्य के सामने खड़ा हूँ—न आगे जाना है, न पीछे लौटना है। एक शब्द भी लिखने लायक नहीं है। सुबह आकर कुर्सी पर बैठ जाता हूँ और बैठा रहता हूँ। कोई बहुत वैचारिक हलचल भी अपने भीतर महसूस नहीं करता। एकदम रेगिस्तान, ऊबड़ और बैरन। क्यों हुआ मेरे साथ ऐसा? कहीं यह तो नहीं है कि जब से रचनात्मक लेखन छूटा है तब से मेरा सारा दृष्टिकोण नकारात्मक हो गया है, हर चीज़ का अस्वीकार, हरेक में संशय, उसका विकल्प क्या हो, यह सूझता ही नहीं है। 'संशयात्मा विनश्यते' की उक्ति को अपने साथ घटित होते हुए देखना कितना त्रासद है! त्रासद यह भी है कि अपनी इस अन्तर्मृत्यु का कोई अफ़सोस भी नहीं है। काश, कोई झूठा विकल्प ही मुझे सँभाले रहता। सम्बन्ध भी सारे औपचारिक ही रह गए हैं। तथाकथित प्रेमिकाएँ सब अपनी-अपनी दुनिया में सरक चुकी हैं। उनसे कोई संवाद भी नहीं है। सिर्फ टिंकू है जिससे कृतज्ञता-भरा जुड़ाव महसूस होता है। शायद मैंने लिया बहुत है, दिया कुछ भी नहीं है।

6.1.2011

नए साल की यह पहली एंट्री है। पहली तारीख से सोच रहा था कि साल भर का जायज़ा लूँगा। समय भी था और मन भी। मगर मेज़ पर बैठा टालता और अपने आपको धिक्कारता रहा, यह मुझे क्या हो रहा है, क्यों लिखने की इच्छा एकदम मर गई है और मैं उसका निष्क्रिय गवाह बना घंटों बैठा रहता हूँ। रात में पाँच-छह बार पेशाब के अलावा कोई तकलीफ़ भी नहीं है, फिर भी या तो कुर्सी पर बैठा रहता हूँ या फिर रज़ाई ओढ़ कर जा लेटता हूँ—सारे दिन। पेशाब का पॉट पास ही रख लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और पूरा दिन बिस्तर में ही निकल जाता है। वहीं खाना, टी.वी. और खाली दिमाग सुन्न, करवटें बदलते रहना। लिखता हूँ तो हैंड राइटिंग इतनी खराब हो गई है कि खुद पढ़ने में दिक्कत होती है। हाथ भी नहीं काँपता, फिर लिखाई को क्या हुआ है? ऐसा भी नहीं है जो मुझे खींचकर अपने-आपसे बाहर निकाल ले—न विचार, न व्यक्ति, न स्थिति। किशन वापस आ गया है और सारे काम मशीन की तरह होते रहते हैं। अक्षर जाने को भी मन नहीं करता।

सच तो यह है कि पिछला साल बहुत ही खराब गुज़रा—लगभग कुछ नहीं किया। शरीर में कुछ न कुछ गड़बड़ी चलती रही। कभी नरेन्द्र मोहन, साहिबाबाद तो कभी एम्स। हार्निया का ऑपरेशन हुआ और अपनी जाँच के लिए एम्स में चार-पाँच दिन के लिए भरती भी हुआ। पीठ का दर्द अब जाकर नियंत्रण में है। लालबहादुर शास्त्री अस्पताल में फिजियोथेरैपी कराई—दस-बारह दिन। वहाँ डॉ. विवेक मिश्रा कहानियाँ लिखते हैं, बुरी नहीं लिखते। डॉक्टर दाँतों के हैं, मगर पत्नी विपुला फिजियोथेरैपिस्ट हैं, इसलिए इस बारे में भी विवेक सब कुछ जानते हैं। बेचारों ने बड़े ध्यान से सिंकाइयाँ कराईं। दो एक बार घर भी आए। इधर एक और कहानीकार हैं ध्यानेन्द्र त्रिपाठी। जीवन्त और सक्रिय व्यक्ति हैं। किसी विदेशी कम्पनी से जुड़े हैं इसलिए न सिर्फ दुनिया भर में घूमे हैं, बल्कि बहुत विषयों पर बहुत कुछ जानते हैं। इनकी कहानी 'खेल' हमने 'हंस' के 'मुबारक पहला कदम' में छापी थी। अक्सर आते रहते हैं। लाला जी की साहित्यिक भूख अक्सर शाम की बैठकों के लिए उकसाती है। मैं ही महीने, दो महीने में एकाध बैठक रख देता हूँ। दारू और खाने का खर्चा वे ही देते हैं। पिछली बार 31 दिसम्बर को हम साथ बैठे थे—मैं, लालनी, शिवनारायण सिंह, विभास, रामशरण जोशी और त्रिपाठी। अधिकतर बौद्धिक बातें करते हैं। जोशी कहते हैं कि कभी—'राजेन्द्र जी की रस-रंजनीशा में' मैंने पीना बहुत कम कर दिया है, मुश्किल से एक डेढ़ पैग। हफ्ते-दो हफ्ते में एक दो बार। अच्छी बात यह है कि शराब मेरे सिस्टम का हिस्सा नहीं बनी है। मगर सब मिलाकर साल लगभग सूखा ही गया। घर शिफ्ट कर लिया। बस, और कहीं कोई परिवर्तन नहीं। गीताश्री से निकटता बहुत बढ़ी है। श्रीनंद सीमा दूर चले गए हैं। मैं ही आग्रह करके दस-बारह दिनों में एक बार बुला लेता हूँ—वह भी दोनों की सुविधाएँ देखकर। सबसे निकट आए हैं अजय नावरिया और सुनील। बेचारे हर समय सुलभ रहते हैं। दो-ढाई साल बाद कल दूर्वा दफ्तर में आई थी। बीच में कोई संवाद ही नहीं रहा—संजय और उसके बीच के मतभेदों के चलते उसने संजय के निकट वाले सारे मित्रों से अपने-आपको काट लिया था और नाटकों या अपने बच्चों में लगी रही। हाँ, टिंकू हर रविवार भागती-दौड़ती साथ दोपहर का खाना खाती है, यहीं मयूर विहार में उसके गुरु जी का स्कूल है और वह उसमें कुछ सीखती-सिखाती है। मैत्रेयी और उसके परिवार से सम्बन्ध लगभग समाप्त हैं। विभूति के 'छिनाल' कह देने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोध और भर्त्सना मैंने भी की थी, मगर विभूति और रवीन्द्र कालिया को अपने पद से हटा दिया जाना चाहिए, उसकी इस तालिबानी-माँग के पक्ष में नहीं था। मैत्रेयी में इधर अपने लेखन और पाठकों में लोकप्रियता ने उसके अहंकार को काफी बढ़ा दिया है। हाँ, बलवन्त विभास पास आए हैं। तो यह है साल की रूपरेखा।

20.3.2011

इस बीच हुआ बहुत कुछ, मगर लिखना नहीं हुआ। ज़रूरत ही नहीं लगी। लगता है, मैं डायरी लिखने, यानी अपना सामना करने से बचता रहा हूँ। शायद भीतर एक शून्य या निर्वात है। सिर्फ दिनचर्या में ही समय निकल जाता है। वहीं पाँच के करीब उठना, कुर्सी पर आ बैठना। कुछ पढ़ना या सिर्फ बैठे रहना। लिखने को कुछ है ही नहीं। आज पीठ में दर्द है, आज कम है। शरीर ही एकमात्र सरोकार रह गया है। शरीर पर काले-काले चकत्ते हैं और खाल पेड़ की छाल जैसी खुरदरी और सूखी हो गई है। वज़न सत्तर से घटकर सिर्फ पचास किलो। पाँव, विशेषकर पंजे—संवेदनशून्य। चप्पल है भी या नहीं, कभी-कभी तो पता ही नहीं चलता। शायद इसे ही कहते हैं कि अपने-आपको धीरे-धीरे मरते हुए देखने का गवाह बनना। दुनियादारी है कि चलती रहती है।

18 मार्च को घर पर तस्लीमा नसरीन आई थी। बहुत दिनों से टल रहा था। आना अरुण को था, वही उसका प्रकाशक है। कभी लालानी को फुर्सत नहीं थी, कभी अरुण को। शिवनारायण सिंह, अन्तरा देव सेन, रुक्मिनी सेन, सीमा, श्रीनन्द राधिका, लालानी और मैं। तस्लीमा के साथ उसकी तीन सहेलियाँ और थीं जो कलकत्ते से आई थीं। जगह थोड़ी तंग पड़ गई थी। शाम खाने-पीने में ही कटी। सीमा को तो विश्वास ही नहीं हो रहा था कि तस्लीमा साक्षात उसके सामने है। जब सब चले गए तो शिवनारायण ने मेरा और लालानी का गुणगान शुरू किया कि हम दोनों ही कितने महान हैं, श्रीनन्द भी शामिल हो गया। अपने मुँह पर अपनी तारीफ, वह भी अतिशयोक्ति में, मुझे बहुत अटपटा लग रहा था।

वैसे भी लगता है, जैसे सब कुछ बाहरी सतह पर हो रहा है, भीतर कहीं कुछ नहीं होता। सारे आत्मीय दूर चले गए हैं, मगर ट्रैजेडी यह है कि मुझे अकेलापन महसूस भी नहीं होता। बस, मैं हूँ और कमरा है—बिस्तर से मेज़ या बाथरूम...

31.3.2011

इस नए फ्लैट में मेरा छोटा-सा कमरा पीछे की ओर है। पहले जब खिड़की नहीं खुली थी तो बन्द सन्दूक जैसा लगता था। अब खिड़की खुलने से भरपूर रोशनी और हवा आने लगी है। जहाँ मैं बैठता हूँ, उसके सामने सोसाइटी की बाउण्ड्री दीवार है। बड़े-बड़े पेड़ लगे हैं और आसमान खुला नज़र आता है। फ्लैट थोड़ी ऊँचाई पर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे जो बगीचा है उसमें घास और फूलों के पौधे हैं। दरवाज़ा खोलने पर लगता है जैसे बाल्कनी में बैठे हैं। पीछे की तरफ है इसलिए बहुत लोग आते-जाते नहीं हैं। सिर्फ सुबह टहलनेवाले कुछ लड़के, लड़कियाँ या अधेड़ ही गुज़रते हैं। उन्हें टहलने के नाम पर पूरी सोसायटी का चक्कर लगाना होता है।

पता नहीं, क्या समानता है कि यहाँ बैठकर मुझे कलकत्ते का डायमंड हार्बर शेड वाला फ्लैट याद आता है। वहाँ कोने वाले ज्योति स्टोर के ऊपर तीसरे तल्ले पर कृष्णाचार्य जी के साथ मैं रहता था। खुले दरवाज़े के पार बाल्कनी थी, पतली-सी। नीचे गली के उस पार लड़कियों का चहारदीवारी वाला हॉस्टल था। वे लॉन में खेलती और आती-जाती थीं। कमलाकान्त सिर्फ उन्हें देखने के लिए ही वहाँ बैठा रहता। दाहिनी ओर सड़क थी और वहाँ ट्रामों-बसों, गाड़ियों की आवाजाही बनी रहती। हॉस्टल में भी बड़े-बड़े हरियाले पेड़ थे और उनके बीच लगा रोशनी का खम्बा था—शायद नियॉन लाइट वाला। रात में देखने पर पेड़ों के बीच चमकती रोशनी ऐसी लगती थी, जैसे आसमान में चाँद निकल आया हो! मैं इसे चाँद समझकर ही देखता रहता। रात को आँख खुलती तो सामने 'चाँद' होता। ठीक ऐसा ही यहाँ पेड़ों के पीछे चमकती रोशनी के बल्ब को देखकर लगता है। वही चाँद होने का भ्रम...शायद यही चाँद है जो मुझे पचास-पचपन साल पीछे ले जाता है। कभी-कभी लगता है, चाँद जैसा कुछ होता भी है या हम रोशनी का जो टुकड़ा सामने आसमान में टँगा देखते हैं, उसे ही चाँद मानकर भावुक हो उठते हैं।

बातें किस तरह अपने-आपको दुहराती हैं!

17.5.2011

अजीब ऊजड़ और सन्नाट रेगिस्तान है। न कहीं कोई हरियाली है, न पानी, न मरीचिका। किसी आदमी या जानवर का कोई नामो-निशान नहीं है। यह इन दिनों मेरे दिमाग की तसवीर है। घंटों बैठे—या लेटे गुज़र जाते हैं, एक शब्द लिखने का मन नहीं करता। इस बार सम्पादकीय भी नहीं लिखा। अतीत में जाने को भी मन नहीं करता। लगता है, वहाँ कुछ है ही नहीं। भविष्य का तो सवाल ही नहीं है।

जब और कुछ नहीं सूझा तो सोचा इधर पड़े हुए तीन उपन्यासों पर ही लिख डालूँ। विकास कुमार झा का 'मैक्लुस्कीगंज', मनीषा कुलश्रेष्ठ का 'शिगाफ़' और तेजिन्दर का सीढ़ियों पर चीता मुझे तीनों ही बहुत महत्वपूर्ण लगते हैं।

लगभग दो महीने बाद ये कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं। बस।

23.5.2011

कल रात-भर दर्द से तड़पता रहा। न नींद आई, न दर्द रुका। आराम किसी करवट नहीं। लगा, शायद बाकी ज़िन्दगी इसी दर्द के साथ जाएगी। पहली बार किसी ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोली के बारे में सोचा जो पूर्ण-विराम लगा दे। पता नहीं, यह 2011 निकल भी पाएगा या नहीं!

25.5.2011

मेरी उम्र में लोग या तो अतीत में जीते हैं या भविष्य में। नहीं, भविष्य तो शायद नहीं होता, होता है सिर्फ अतीत। मैं सिर्फ वर्तमान में जीता हूँ। वर्तमान का सिर्फ वह खंड, जो मेरे साथ है। अतीत की प्राय: कोई भी बात याद नहीं आती—न व्यक्तिगत अतीत, न सामाजिक या सांस्कृतिक अतीत। इसीलिए एक भयावह शून्य बना रहता है। घरों, कुर्सी या बिस्तर पर बैठा, लेटा रहता हूँ। कुछ भी पढ़ने का मन नहीं करता, लिखने की तो बात ही नहीं आती। इस तरह कैसे कोई आदमी बना रह सकता है ? लाश भी शायद ऐसी ही होती होगी। कुछ भी खाने-पीने को मन नहीं करता। लोग आते हैं, बातें करते हैं, चाय-दारू पीते हैं। उनकी चिन्ताओं और सरोकारों को लेकर आश्चर्य होता है। मेरा तो समय का पैमाना यही रह गया है कि आज दर्द है, आज कम है या कुछ समय के लिए नहीं है। मैं सिर्फ अपने शरीर की बात सोचता हूँ। मेरे सोचने में कहाँ क्या गलत हो गया है कि मैं इस बिन्दु पर आ गया हूँ।

9.6.2011

आश्चर्य है कि मेरे दिमाग में बैठ गया था कि मैं 9 जून को इस नए फ्लैट में आया था। मगर निश्चय ही वह महीना जून नहीं, मई था। बिल्कुल ही याद नहीं आया और मैं इसी खयाल में बना रहा कि आज एक साल हो गया शायद यह नई जगह मुझे फली नहीं। न कुछ अच्छा लिखा, न पढ़ा। तीन-चार महीनों से मैक्लुस्कीगंज (विकास कुमार झा) शिगाफ (मनीषा कुलश्रेष्ठ) और सीढ़ियों पर चीता (तेजिन्दर) पर लिखने की सोच रहा हूँ। न शुरू हुआ और न संकल्प बना कि लिखना ही है। सच पूछें तो यह सारा साल अपनी बीमारियों से लड़ने में ही गया। नरेन्द्र मोहन हॉस्पीटल से लेकर एम्स तक के न जाने कितने चक्कर लगे। पैसा बर्बाद हुआ, सो अलग। कभी हार्निया का ऑपरेशन तो कभी जनरल चैकअप के लिए एम्स में भरती हुआ। फिजियोथैरैपी के लिए लालबहादुर अस्पताल के महीनों चक्कर। कमर के दर्द के कारण बैठना मुश्किल। अक्षर भी अक्सर जाना नहीं हुआ। सब मिलाकर जिन्दगी का एक मनहूस और अर्थहीन साल निकल गया। इस बीच सिर्फ अपने शरीर को निरन्तर मरते देखता रहा। बिना सहारे के दो कदम चलना मुश्किल। गोष्ठियों में जाना लगभग स्थगित। वज़न घट कर पचास किलो। कमर की पेटी के सारे छेद किसी तरह पेट को सँभाले रहते हैं। हाँ, इसके बावजूद भीतर से अपने को कमज़ोर नहीं पाता और अपने-आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं अभी भी वैसा ही कड़क और ऊर्जावान हूँ। पता नहीं, यह शक्ति कब तक बनी रहेगी! आज भी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान पाता कि मैं अशक्त और बूढ़ा हो गया हूँ। शरीर और मन का यह द्वन्द्व हमेशा अपने भीतर पाता हूँ। ऐसे में किशन ही ऐसा वरदान है जो मुझे सँभाले है। मुझे किस समय क्या दवा चाहिए, इसे सब पता है। सुमित्रा भी बेचारी बहुत मन से सेवा करती है। शायद यही पुण्य कमाया है।

14.6.2011

अजीब ही सपना था। अभी सुबह-सुबह देखा। मैं मर गया हूँ। शायद हौज़खास के फ्लैट में मैंने शरीर छोड़ दिया है। ध्यान नहीं है कि विदाई के वक्त कौन-कौन लोग हैं या कुछ रोआ-पीटी हो रही है या नहीं! सूक्ष्म रूप से ऐसी जगह से गुज़रता हूँ जहाँ से 'हंस' के दफ्तर का कमरा दिखाई दे रहा है। सोचा है, सम्पादकीय अधूरा है, उसे पूरा कर लिया जाए। फिर हुआ, छोड़ो। पता नहीं कि मैं रेलवे ब्रिज पर आ गया हूँ। वहाँ हाथ में थाली-लोटा लिए सुमन और छोटी बेबी हैं और मुझे लोटे के पानी से नहला रही है। थाली के रोली चावल से मुझे तिलक करके विदा करती हैं। फिर मैं सोचता हूँ—कहाँ जाऊँ? मयूर विहार में संजीव को लेने जाते हुए एक मन्दिर मिलता है। उसके खाली कमरे में कुछ लोग फर्श साफ करते रहते हैं। सोचता हूँ, इसी में कहीं एक तरफ रहने लगूँ। किसी को पता भी नहीं लगेगा और मैं कुछ लिखता रहूँगा। बाहर वाले पता लगाएँगे कि मैं कहाँ बैठकर ये सारी गतिविधियाँ चला रहा हूँ। तभी नींद टूट जाती है।

तो कुछ इस तरह था सपना, वह याद रह गया है।

2.8.2011

परसों 'हंस' के पच्चीस वर्षों का आयोजन था और सुबह से मुझे उसे लेकर चिन्ता थी। मगर ऐसा-वैसा कुछ नहीं हुआ। सबने खुलकर सहयोग दिया और भीड़ थी कि एवाने ग़ालिब के सभागार में समा नहीं रही थी। शायद हंस के किसी आयोजन में ऐसी भीड़ नहीं हुई। उधार के शब्दों में कहूँ तो 'भव्य' और यादगार। साढ़े पाँच-छह सौ तो आए ही होंगे। लोग आबूधाबी, नासिक, पटना, उदयपुर, जयपुर न जाने कहाँ-कहाँ से आए थे। हमने सुन्दर बैनर लगवाए थे। पेन-लेटर पैड बाँटे। नाश्ता दिया और 'हंस' ने सम्भव बनाने वाले सभी सहकर्मियों को शॉल, मोमेण्टम इत्यादि बाँटे। गौतम नवलखा, अर्चना, हरिनारायण, संजीव, बीना, दुर्गा और किशन को मंच पर बुलाकर उपहार दिये। हारिस महमूद मंच-भय (स्टेज-फ्राइट) और गौरीनाथ अन्य व्यस्तताओं के कारण शामिल नहीं हो सके। स्टेज पर बैठे थे नामवर, गौतम, अर्चना, मैं और लालानी। संचालन किया अजय नावरिया ने। आग्रह और अनुरोध के बावजूद मैत्रेयी, सीमा शामिल नहीं हुईं। हाँ, श्रीनन्द आए थे। आयोजन में लगभग ढाई-तीन लाख खर्च हुए। उसकी व्यवस्था रंजन ने अकबरुद्दीन से कराई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोज (फ्रैंक हुजूर) ने अखिलेश यादव से कहकर तीन लोहिया ट्रस्ट से करा दिये। बहरहाल, हमें कहीं खींच नहीं करनी पड़ी।

बाद में सभी ने अजय नावरिया के संचालन की कटु आलोचना की। नामवर के भाषण को सबने अच्छा कहा, मगर मुझे और अनेक को लगा कि वे चुटकुलेबाज़ी से ऊपर नहीं उठ पाए। अर्चना सबसे अधिक असन्तुष्ट थी। हाँ, निर्मला जैन ने अगर-मगर लगाकर तारीफ की। इस मौके पर 'हंस' की लम्बी कहानियाँ, पच्चीस वर्षों की 'पच्चीस बरस : पच्चीस कहानियाँ', 'मुबारक पहला क़दम' पुस्तकों का अनावरण भी हुआ। निर्मला जी की पुस्तक 'कथा समय के तीन हम सफर' मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती और उषा प्रियम्वदा' की पुस्तकों का विमोचन भी हुआ।

3.8.2011

सारे दिन बधाइयों और प्रशंसाओं की प्रतिक्रिया मिलती रही। अजय नावरिया के संकलन के सब आलोचक थे। वस्तुत: नामवर भी लगभग कुछ नहीं बोले। इतनी भीड़, इतना श्रोताओं का उत्साह और नामवर की विचार के नाम पर चुटकुलेबाज़ी। मैं भीतर से बहुत उदास हूँ—निराश न भी कहूँ तो भी। हमने आयोजन को भव्य बनाने में कुछ भी कसर नहीं छोड़ी—पैसे की चिन्ता नहीं की। मिल ही गया था।

कल से मन में अवसाद भरा है। परसों भारत भारद्वाज ने फोन पर पूछा, मुझे लिखना है या नहीं? तब मैंने कुछ नहीं कहा और सारे दिन सोचता रहा—निर्णय कहीं गलत तो नहीं हो रहा? कल उन्हें बता दिया कि अब आप कुछ दिन आराम करें। अच्छा नहीं लग रहा था। स्वभावानुसार भारत बता रहे थे कि उन्हें कहाँ-कहाँ से ऑफर है, किस तरह लोग अपने यहाँ लिखाने के लिए आतुर हैं और वे क्या-क्या किताबें तैयार कर रहे हैं। कारणों में मैंने बताया कि उनकी विशेषज्ञता का क्षेत्र, यानी सरस्वती के बीस साल पहले और बीस साल बाद के साहित्य और उस दुनिया को उन्होंने काफी निचोड़ लिया। एक सुपर जज की तरह वे फ़तवे देते हैं, कुछ लोगों के लिए अतार्किक रूप से पक्षपाती हैं, अहंकार उनकी भाषा का अनिवार्य हिस्सा है।

तभी से मैं सोच रहा हूँ कि क्या मैं पंकज बिष्ट के तर्क दुहरा रहा हूँ या यह सब मेरे भी निष्कर्ष हैं? कहीं मुझे मैत्रेयी पुष्पा की ज़िद तो प्रभावित नहीं कर रही थी कि जब तक आप भारत का साथ नहीं छोड़ेंगे, मैं आपके साथ नहीं आऊँगी। मगर यह तो वह साल भर से कह रही है, अभी उसने सुधीर से भी कहा है। क्या मैं उस दबाव में हूँ या हंस में जो बदलाव लाना चाहता हूँ—यह उसकी शुरुआत है? बहरहाल, रातभर मुझे बार-बार यही खयाल आता रहा कि कहीं कुछ गलत तो नहीं हो रहा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15.8.2011

परसों यानी शुक्रवार को रामशरण जोशी गुस्से में यह घोषणा करके घर से निकले कि मैं इस घर में अब कभी नहीं आऊँगा। हुआ यों कि उन्होंने आने के लिए कहा तो मैंने बुला लिया। सोचा था कि साथ में कुछ लेकर आएँगे। कोई ड्रिंक, मगर वे आए ख़ाली हाथ। मेरे पास छोटी बेबी की दी हुई रॉयल स्टैब पड़ी थी। यह निम्नस्तरीय शराब है। जोशी जी का मूड तभी से उखड़ गया। उन्हें मुफ्त की ही चाहिए और बढ़िया भी चाहिए। अपनी वर्धा की सुविधाओं और विभूति नारायण की व्यवस्था की प्रशंसा करते रहे। अपनी योजनाएँ बताते रहे। वे हमेशा यही कहते हैं, मैंने तो शराब छोड़ रखी है, एकाध पैग लेता हूँ। मगर कभी चार-पाँच से पहले रुकते नहीं। साथ ही सोडा-नमकीन सभी चाहिए। भोजन में भी पूरे पंडित हैं। रुचि से और भरपूर चाहिए। बाद में दो-तीन बार मीठा भी। उधर कमलेश किसी चैनल से अपनी बहस समाप्त करके आनेवाली थी। दो घंटे हो गए थे और मैं चाहता था कि जोशी जी जाएँ। कहा भी। इतना उनके अहं को भड़काने के लिए काफी था। अब उनका गुस्सा था और ठंडे ढंग से प्रतिक्रिया करता मैं। 'मैं घर-बार छोड़कर यहाँ बैठा हूँ और आप मुझे भगा रहे हैं? उसी कमलेश के लिए जिसने दो साल आपकी बात नहीं पूछी और आप उसके बारे में क्या नहीं कहते थे? अब तो मैं कमलेश के आने पर ही जाऊँगा और उसे बताऊँगा कि आप उसके बारे में क्या बोलते रहे हैं।'' मैंने कहा, ''जोशी जी, यह पहली बार नहीं हुआ है, यहीं की बड़ी पार्टियों में आप आठ-दस बार यह सीन क्रियेट कर चुके हैं। असल में आपको विद्यार्थियों से व्यवहार करने की आदत है...जहाँ आप बौद्धिक रूप से महान हैं।''

मैं जोशी को समझने की कोशिश करता हूँ। वह जब देर तक देखते हैं कि उनकी बौद्धिक महानता पर कोई ध्यान नहीं दे रहा तो कोई छोटी-सी बात लेकर भड़क उठते हैं। ''आप लोग कुछ पढ़ते-लिखते तो हैं नहीं। मैं कहे दे रहा हूँ, आप बौद्धिक रूप से दरिद्र हैं। हर वाक्य में 'मैं' बता रहा हूँ, मैं कहे दे रहा हूँ...'' अन्त उनका गुस्से से भड़ककर वहाँ से निकल जाने में होता है। इस बार अपमान कहाँ था, मैं जानता हूँ—घटिया शराब, कमलेश के कारण उन्हें जाने को कहना—शायद हर जगह उनकी यह मुफ्ती आदत उन्हें सम्बन्ध समाप्त करने को मजबूर करती है। वहाँ भी शास्त्री के सिवा किसी की बात नहीं करते। वे मित्रों में भी स्पेशल ट्रीटमेंट चाहते हैं। इधर बाहर रहने के कारण आउट-ऑफ सर्किल हो गए हैं। अब शायद कोई यह भी नहीं कहते कि हमें कृतज्ञ होना चाहिए कि वे समाज-शास्त्र के होकर भी हिन्दी में लिख रहे हैं, महान होकर हमें कृतार्थ कर रहे हैं और आतिथ्य करने का सौभाग्य दे रहे हैं।

सच है, वे बच्चों की तरह भड़ककर दूसरों को अनपढ़ और गैर-जानकार बता कर अपना महत्त्व बताते हैं, अपनी ओर ध्यान खींचते हैं। मगर मुझमें भी तो शायद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई बात होगी कि दूसरों को आहत कर देता है, बेहद निकट और घनिष्ठ मित्र दूर चले जाते हैं—मैत्रेयी साथ छोड़ गई, सीमा पता नहीं कब से नाराज़ है, और अब जोशी जी चले गए। जानता हूँ, सब लौटेंगे, लेकिन गाँठ तो पड़ ही गई है...

23.8.2011

लगता है, दिमाग का कबाड़ा हो गया है। चूँकि न लिखने में मन लगता है, न पढ़ने में—जैसे-तैसे अखबार और पत्रिकाएँ उलट-पलट लेता हूँ। चुपचाप बैठे-बैठे घड़ी की तरफ देखते रहो, दस मिनट बाद उठना है, या अमुक काम करना है। तैरते हुए विचार आते हैं, उन्हें पकड़कर देर तक टिका नहीं जाता। पहले कैसे एक ही सूत्र या विचार पर पन्ने-दर-पन्ने लिखता चला जाता था, कथ्य के अनेक पक्षों का विश्लेषण करता रहता था। हो सकता है, इसका कारण पीठ का दर्द हो! आध-पौन घंटे की बैठक के बाद बैठना मुश्किल होता है, इसलिए जो भी कुछ लिखना है, उन्हीं दो-एक बैठकों में लिख लो। डायरी भी नियमित नहीं है और एकाध पन्ने में सिमट गई है। मगर दिमाग है कि खाली नहीं रहता। शैतान उछल-कूद मचाता रहता है। लगता है, जब हाथ-पाँव और कमर के नीचे का हिस्सा लगभग बेकार हो जाता है तो सबसे ज़्यादा और स्पष्ट चित्र—सेक्स-क्रियाओं के ही आते हैं। पंजाबी में इसे कहते हैं, ठरक। न जाने कौन-सी जानी-अनजानी लड़कियाँ नंगी होकर साथ आ लेटती हैं और मैं उनकी छातियाँ और दूसरे अंग सहलाता, चूमता रहता हूँ—कोशिश हस्तमैथुन की भी करता हूँ। आश्चर्य की बात है कि इन लड़कियों में परिचित महिलाएँ बिल्कुल नहीं होतीं। ऐसे बुड्ढों का समाज-परिवार में अक्सर मज़ाक उड़ाया जाता है, बहू-बेटियों को इनसे बचाकर रखा जाता है। मगर क्या किया जाए, यह बुढ़भस है तो, है। क्या साठ-सत्तर के बाद हर बुड्ढे में यह हम्बर-हम्बर जागने लगता है और वे तोतिलाओं को गोद में बैठाकर कल्पना-चित्रों का आनन्द लेने लगते हैं? साली यह बीमारी किसी से कही भी तो नहीं जाती।

1.9.2011

अपने जन्मदिन पर हुई पार्टी के बारे में लिखने की बात सोचते-सोचते आज चार दिन हो गए। रोज़ टालता रहा। 28 अगस्त को संजय निरुपम, एम.पी. की कोठी के लॉन में यह मेला लगा। सारा आयोजन गीताश्री ने किया। भाग-दौड़ से लेकर सारी व्यवस्था, निमंत्रित करना—सभी कुछ करने में उसने जान-झोंक दी। संजय सहाय ने मुझे कुछ पैसे दिये थे, चालीस हज़ार सो मैंने अपने पुराने नन्दलाल ढाबा वालों से ही व्यवस्था करा दी। और यह मेला सम्पन्न हो ही गया। अब साल भर को छुट्टी मिल गई, वर्ना 31 जुलाई को 'हंस' का कार्यक्रम, फिर 'पाखी' (पत्रिका) वालों का 27 अगस्त को शब्द-शिखर सम्मान। हंसाक्षर के नाम 51,888 का चैक। फिर मेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मदिन। न चाहते हुए भी इसका स्वरूप कुछ ऐसा बनता जा रहा है, मानो 26 जनवरी का राष्ट्रीय आयोजन हो रहा है! क्या इतने लोगों का जमावड़ा, खाना-पीना, जश्न, उत्सव। सचमुच मुझे भीतर से अच्छा लगता है, या एक परिपाटी-सी बन गई है और हर साल उसे निभाना मजबूरी हो गई है? हिन्दी जगत में शायद किसी लेखक का जन्मदिन शायद इतने भव्य रूप में नहीं मनाया जाता। क्यों होती है यह पचास-साठ हज़ार की बरबादी? क्या मैं इसे रोक नहीं सकता? सचमुच मैं दुविधा में हूँ कि क्या चाहता हूँ?

ये ऊपरी उत्सव, मिलना-जुलना, हँसी-ठहाके और भीतर से निरन्तर होनेवाले खोखलेपन, पराजय, अपनी शक्तियों का क्रमशः क्षरण, मुझसे ज़्यादा कौन जानता है? अपने-आपमें अकेला और एकाकी, रोज़ जैसे सम्पूर्ण विराम की आशंका को जीता मैं हर बार यही सोचता हूँ कि होने दो इस बार, शायद अगली बार का मौका ही न आए...सब कुछ अपने-आप समाप्त हो जाएगा। सबसे बड़ी चिन्ता यही है कि क्या होगा, किशन और उसके परिवार का? अक्षर के साथियों का?

सबसे बड़ी कचोट तो यही है कि एक बैठक में आध-पौन घंटे से ज़्यादा बैठ ही नहीं पाता, वह भी सुबह छह-सात के बीच। जो लिखता हूँ, उसके लिए भी हफ्तों सोचता हूँ। अपने ही लिखे पर आश्चर्य होता है—क्या यह सब मैंने ही लिखा है? अब एक विचार का विश्लेषण असम्भव लगता है—बात आगे बढ़ती है। मोती जैसे अक्षर चील-बिलाऊ बनकर रह गए हैं। वर्तनी की गलतियाँ, भाषा की भूलें, मान लेना कि यह शब्द मैंने लिख दिया है, मगर वास्तव में लिखा नहीं होता। वे सारे जलते विचार, समस्या का अनेक पहलुओं से विवेचन क्या अब कभी लौटेगा ही नहीं? क्या जो मैं आजकल लिख रहा हूँ, वे सब मेरे मृत्यु-लेख नहीं हैं?

मुक्ता और बेददान ये दो ही ऐसे मित्र हैं जो हर मौके पर भागे-भागे चले आते हैं—एक मुम्बई से, तो दूसरा उदयपुर से। यह प्यार मेरे लिए वरदान है...इधर कमलेश जैन एक दूसरे रूप में निकट आ रही है—मगर उस पर फिर कभी।

20.9.2011

आजकल मेरी बौद्धिक दुनिया में बाहरी परिधियों पर दो व्यक्ति छाए हुए हैं—एक अजय नावरिया और दूसरी कमलेश जैन। अजय से मेरे परिचय को लगभग दस साल होने को आए। उसकी अतिशय भक्ति मुझे कभी-कभी असहज बना देती है। 'पाखी' के मेरे ऊपर केन्द्रित विशेषांक में उसने मुझे सुकरात बताकर फूल चढ़ा दिये हैं। सारे हिन्दी जगत में प्रसिद्ध हो गया है कि वह मेरे सबसे निकट है। ज़ाहिर है, इससे उसे लाभ भी है और नुकसान भी। मेरे विरोधी उसके विरोधी हैं। वे उसे काटने में कोई कसर नहीं छोड़ना चाहते। उसने मेरे साक्षात्कारों की पुस्तक सम्पादित की है—'यातना', 'संघर्ष और स्वप्न'। पहले श्योराज सिंह बेचैन के सहायक के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में 'हंस' के दलित-विशेषांक का सम्पादन भी किया था। 'हंस' के वार्षिक आयोजन युवाओं पर केन्द्रित बहस का संचालन किया। फिर पच्चीसवें वर्ष के आयोजन का संचालन भी उसी ने किया। हंस का युवा अंक भी उसी के सम्पादन में आया। यह दूसरी बात है कि दोनों ही आयोजनों के दौरान कुछ ऐसा हुआ कि उसे आज तक गालियाँ खानी पड़ रही हैं। युवाओं वाले में नामवर ने मंच पर कहा कि मैं कहता हूँ राजेन्द्र कि इन युवाओं को ज़्यादा मुँह मत लगाओ, ये तुम्हें कहीं का नहीं रखेंगे। इस बार जब हंस से जुड़े लोगों का सम्मान किया जा रहा था तो पहले से तय किए हुए के अनुसार अजय ने जहाँ सबको शॉल देने की घोषणा की, वहीं दुर्गा-किशन को पैकेट देते हुए बताया कि इसमें दो-दो पैंट-शर्ट हैं। इसे श्रोताओं ने बैड-टेस्ट बताया और हॉल में ही विरोध किया। फिर अजय संजीव को मंच पर बुलाकर सम्मानित करने की बात ही भूल गया। बाद में क्षमा माँगते हुए बुलाया।

इन सारी गड़बड़ियों के लिए अजय मुझे दोषी ठहराता है। कोट-पैंट देने की घोषणा हम दोनों ने ही तय की थी कि शॉल तो सबको दिखाई देता है, पैकेटों में क्या दिया जा रहा है, यह बताने में कोई हर्ज नहीं है। उसका कहना है कि चलो, गलती हो गई। मगर मुझे ही मंच पर इसका विरोध करना चाहिए था। यही नहीं, जब मैंने लोगों के हवाले से मंच-संचालन की आलोचना की तो मुझे वहाँ खुलासा करना चाहिए था कि वह हम लोगों में पहले से ही तय था। सचमुच यह मेरी गलती थी। मगर वह उसे भूल नहीं, एक दलित के प्रति जानबूझकर की गई उपेक्षा मानता है। यहाँ तक कि जब लालानी द्वारा नियन्त्रित पार्टियाँ हमारे घर होती हैं तो उम्र में सबसे छोटा होने के कारण लोगों की खातिरदारी को भी वह दलित होने से जोड़ता और अपमानित महसूस करता है। इसीलिए उसने इन पार्टियों में आना छोड़ दिया है। शायद नहीं, निश्चय ही यह मेरी ज़्यादती है कि चार-पाँच पैग के बाद पिये जाना, वह भी 'गड़ाप-गड़ाप' भाव से, या चार-छह रोटियों और चावल के बाद भी खाते चले जाना मुझे कहीं असहज कर देता है और इसे मैं अपब्रिंगिंग की पृष्ठभूमि से जोड़ता हूँ। भीतर कहीं शारदा चाचा की मेरे लिए सम्बोधित कहावत याद आ जाती है : 'गँवार या तो लड़ मरे या खा मरे'। सचमुच उन दिनों मैं भी बहुत ज़्यादा खाता था। याद है, कलकत्ते में भँवर मल सिंघी के यहाँ सुशीला जी आलू की स्पेशल सब्जी बनाती थीं—कुछ अन्तरंग मित्र भी बुलाए जाते थे। मैं दो-तीन बार सब्जी लेता और अनगिनत रोटियाँ भकोस डालता। निश्चय ही मेज़बान और दूसरे मुझे खाऊ-गँवार ही समझते हों। अब दो पतली रोटियाँ और एक-डेढ़ पैग ही मेरे लिए बहुत है। दूसरों की रोटियाँ गिनने के पीछे कहीं मेरी अपनी ही कुंठा तो नहीं हैं? कीमती और महँगी शराब को ठर्रे के भाव से पीते देखकर असहज हो जाने के पीछे भी शायद सामनेवाले में संस्कारों की कमी दिखाई देती है। ये दोनों ही बातें मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद अजय को एकाधिक बार कहीं, और ज़ाहिर है, उसे बुरा लगा। अब वह मुझे दिखाकर खाता और पीता है। मन में चोट तो है ही।

21.9.2011

रही-सही कसर उसके कहानी-संग्रह की भूमिका ने पूरी कर दी...

मैंने उसके कहानी संग्रह की जो भूमिका में कहा था कि वह अतिशय संवेदनशील, दलित-कुंठा का मध्य वर्ग में शामिल होता कहानीकार है। यानी वह अपनी भाषा, संवेदना, शिल्प और कहानी की अवधारणा में मध्यवर्गीय मानदंड अपनाता है, मगर हर कहीं व्यवहार में अपनी दलित चेतना को आहत होते पाता है। दूसरी गाँठ वह दलित आकांक्षा है, जहाँ वह सवर्ण स्त्रियों के साथ प्रेम या सेक्स-सम्बन्धों को दलित द्वारा सवर्णों की इज़्ज़त को छापामार की तरह विजय-सूची में गिनता है—'एक और मोर्चा मारा' के भाव से। ज़ाहिर है, मेरे इन दोनों सूत्रों से अजय आहत हुआ। शायद अभी उसमें वह पकाव नहीं आया है जहाँ अपनी आलोचना को लांछन की तरह न ले। उससे सहमत-असहमत हो। अभी वह अपनी प्रशंसाओं के सर्टिफिकेट जमा कर रहा है। कहाँ उसका नाम छपा, उसे सूची में नीचे डाला गया था या ऊपर, पत्रिका में कहानी किस नम्बर पर दी गई। मुझे लगता है, यश और प्रशंसा की यह भूख उसे बार-बार अपनी प्रतिबद्धताएँ बदलने को प्रेरित करती है—जो उसे सबसे ज़्यादा महत्त्व देगा, वही उसका अपना है। मुझे लगता है, इस यश-लोलुपता के लिए उसके पास उपलब्धियाँ कम हैं। मुझसे शायद इसीलिए खिन्न है कि मैं उसे उछालता क्यों नहीं हूँ। हर जगह बचाव क्यों नहीं करता जबकि बाहर वह मेरे साथ (यानी मेरा चमचा) होने के लिए बदनाम है।

मुझे याद है, मेरे और राकेश के बीच इसी बात को लेकर खासी प्रतिस्पर्द्धा थी कि पत्रिका में किसका नाम कहाँ है। एक बार उसने ओम प्रकाश से 'नई कहानी' के कवर को दुबारा छपवाया था क्योंकि खुद उसका नाम कुछ उर्दू लेखकों के बाद था। मन्नू जब 'नई कहानी' का विशेषांक सम्पादित कर रही थी, तो उसको लेकर खासी बहस हुई थी कि कवर पर उसका नाम कहाँ होगा। समझौता इस पर हुआ कि नाम पहले छपेगा तो उसकी कहानी सबसे बाद में जाएगी, मेरी पहले। अगर यही बात आज अजय नावरिया में है तो मुझे उसकी यश-लोलुपता क्यों लगती है?

22.9.2011

दूसरी है किरण। दिल्ली में अकेली रहती है। अविवाहित। उम्र 50 वर्ष। लगभग दस सालों से परिचय है। माँ और भाई पास ही रहते हैं। माँ की अभी मृत्यु हुई है। पहले पटना में काम करती थी। इस फ्लैट के अलावा दो-तीन फ्लैट या प्लॉट पटना, दिल्ली में हैं। हालाँकि मुझे न वह कामकाजी महिलाओं की तरह तेज़-तर्रार लगती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, न बहुत सफल। लिखने-पढ़ने की शौकीन। स्त्री मसलों पर दूसरी जगहों और हंस में भी लिखती है—बहस के लिए चैनलों पर भी बुलाई जाती है। बेहद ही सीधी और आत्मीयता की भूखी है। कहती है, उसके भाई-बहनों की निगाह उसकी सम्पत्ति पर है। माँ बहुत सख्त थी—बचपन से ही मार-पीट, क्रूरता और सौतेला व्यवहार। उसी से तंग आकर उसने काम में अपना आत्मसन्तोष खोजा। अब जब वह नहीं है तो उसकी ज़बान से अब मुक्त होना चाहती है। शायद गीता ने मुझे कोई आपत्तिजनक एसएमएस भेजा था, जो मैंने उसे फॉरवर्ड कर दिया। बस, नाराज़ हो गई। दो साल हमारे बीच संवादहीनता रही। फिर अचानक निकट आ गए। बार-बार कहती है कि मेरे भीतर की औरत मर गई है। पचास की होने के बावजूद मैंने प्यार जाना ही नहीं। दोषी है माँ। इस माँ को मैं अपने भीतर से निकाल बाहर करना चाहती हूँ—मगर जैसे ही माँ पर लिखने बैठती हूँ कि रोने लगती हूँ।

मैं उसे बार-बार समझाता हूँ कि लिखोगी तो रास्ता मिलेगा—जीवन मिलेगा। अपने भीतर की औरत को जगाने की बात करती है। मैं कहता हूँ, किसी को प्यार करो—उससे जिससे यह भावना न हो कि उसकी निगाह तुम्हारी सम्पत्ति पर नहीं है। कहती है, आपके सिवा मैं किसी ऐसे व्यक्ति को जानती ही नहीं। तो फिर मुझे ही प्यार करो। मगर अपने कवच-कुंडल घर छोड़कर आया करो। थोड़ा खुलो और अपनी कुंठाओं से छूटो।

इधर जब से मेरी कमर में दर्द रहता है तब से बाहर निकलना बन्द कर दिया है। दफ्तर से घर ही आ जाता हूँ और टी.वी. देखता हूँ। वह भी प्रायः एक दिन छोड़कर आ जाती है—कुछ न कुछ खाने-पीने की चीज़ लेकर। खुद पूरी वेजिटेरियन, पीने का नाम-निशान नहीं। मैं भी काफी बेतकल्लुफ हो गया हूँ और उन शब्दों का इस्तेमाल करने लगा हूँ जो शायद कभी नहीं करता—'तू साली चूतिया है' ऊपर से छी:-छी: करती है, मगर भीतर से शायद खुश होती है। 'गले मिल, चूमाचाटी कर तभी तो खुलेगी।'... 'नहीं-नहीं, आप गन्दी बात मत करिए'... 'तू मेरी पत्नी बन जा, मैं तुझे वापस औरत बना दूँगा।'... 'क्या बात करते हैं, पहले अपनी पत्नी को तो छोड़िए, फिर सोचेंगे।' देखने में बहुत सुन्दर नहीं है, इस बात को लेकर भी बहुत सचेत है। कहती भी है। मगर मेरे निकट आती जा रही है। बीच में लड़ पड़ती है, फिर वही। मुझे लगता है, वह अपने-आपसे लड़ रही है। शायद मुझमें अपना कुछ पाना चाहती है।

24.9.2011

लगता है, मैं उसे खोल तो लूँगा ही कि निस्संकोच चुम्बन-आलिंगन कर सके। मगर इस खेल में अगला खतरा है। उसे लेकर ही मैं थोड़ा चिन्तित रहता हूँ। खुल तो वह जाएगी ही। अभी तो अपने लिए मेरे बोल्ड सम्बोधनों को छी-छी करते हुए भी एन्जॉय करती है, मगर कल वह अगर मेरे ऊपर हावी होने लगे तो क्या होगा? चूँकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी घनिष्ठ वह किसी से नहीं है, इसलिए गिरेगी तो मेरे ही ऊपर। पूरी तरह खुलकर ही पूरी तरह निर्भर भी हो जाएगी। पचास साल चूँकि, उसके अनुसार ही सेक्स जाना ही नहीं तो अब मरमराकर मेरे गले क्यों नहीं पड़ेगी? तब उसे मेरा किसी और से बोलना-बतियाना भी बर्दाश्त नहीं होगा। अशोभनीय सीन भी क्रियेट कर सकती है। कोई ऐसी दुर्घटना हो जाए कि सारी बातें मेरे बस से बाहर हो जाएँ। पचास साल से घुटती और जब पहल करने पर उतर आती है तो खूँखार होने में कितना समय लगता है। मैं समझ नहीं पाता कि मुझे कहाँ रुक जाना चाहिए। ख़ैर, अब तो मैं चाहूँ, तो भी इस खेल को रोक नहीं सकता। आखिर औरत को जीतने का एक थ्रिल और विजय-गर्व भी होता ही है। अब जो होगा, देखा जाएगा।

7.1.2012

नया साल कब आया और पुराना कब गया, पता नहीं। कल ही लगभग चार बजे दुबारा इस घर में आया हूँ। 22 दिसम्बर को गया था एम्स में। ओल्ड प्राइवेट वार्ड, कमरा नम्बर 4091, हार्निया का ऑपरेशन होना था। डॉक्टर लोग हर चन्द कोशिश कर रहे थे कि ब्लड-शुगर नियंत्रण में आ जाए तभी ऑपरेशन हो। स्थिर ही नहीं हुआ—कभी साढ़े तीन सौ तो कभी डेढ़ सौ। हर बार ऑपरेशन की तारीख तय करते और फिर टाल देते। आखिर पाँच तय की। सुबह से खाना-पीना कुछ नहीं। अस्पताली कपड़े। सफेद पाजामा, ढीला-ढाला कुर्ता। सारे बाल साफ। छाती और पेड़ू के—नीचे के। चौथी मंज़िल से कुर्सी पर सातवीं पर। फिर हरे कपड़े पहनाए गए। ब्लड-शुगर लिया गया—सन्तोषजनक नहीं था। तय हुआ, अभी नहीं। और लीजिए साहब, वापस कमरे में। कुछ दिन रहकर उसे नियंत्रण में लेना होगा। मैंने तय किया, यहाँ कोई फायदा नहीं। घर चलो। डिस्चार्ज शीट बनना था, बिलिंग निपटानी थी। कल होगा। यानी 6 को सुबह से कम्प्यूटर खराब। हरीश को बुला लिया था। होते-होते दो ढाई बज गए। लगभग 3 बजे कमरा छोड़ दिया। अलविदा एम्स...

8.1.2012

लगभग चार महीने (कल यहीं तक लाकर लिखना छोड़ दिया क्योंकि डायबिटीज़ की वजह से निगाह धुँधला गई) से बिस्तर पर ही लेटा हूँ, कमर के दर्द के कारण। जैसे-तैसे दफ्तर पहुँच जाता था। सारा साल अपने-आपको धीरे-धीरे मरते देखना था। अपनी मृत्यु का खुद गवाह होना शायद इसे ही कहते हैं। इस साल ढंग का न कुछ लिखा, न सोचा, लिखने के नाम पर सम्पादकीय भी जैसे सोच की ऊपरी सतह से ही लिखे जाते रहे—अपने को भीतर तक हिलते हुए लिखने की कसक हमेशा बनी रही। बार-बार अपने-आपसे पूछता हूँ कि क्या अपना सब कुछ अब किसी को सौंप देना चाहिए? अक्षर का अभी तक तय नहीं कर पाया हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16.1.2012

फ्लैट से बाहर निकलते ही खुली जगह है जहाँ गाड़ियाँ खड़ी की जाती हैं। वहीं एक कुर्सी पर एक तजुर्बेकार बैठे रहते हैं—धूप में। मैं अक्सर आते-जाते सोचता रहता हूँ कि वे क्या सोचते रहते हैं—पढ़ते-लिखते कुछ नहीं हैं। सिर्फ बैठे रहते हैं। न पढ़ते-लिखते हैं, न कुछ और करते हैं—सिर्फ बैठे रहते हैं। लगता है, जैसे सिर्फ मृत्यु की प्रतीक्षा करते रहते हैं। उधर सुबह साढ़े पाँच के आस-पास मैं कुर्सी पर आ जाता हूँ। थोड़ा-बहुत पढ़-लिख लिया बाकी सिर्फ सोचता रहता हूँ। कुछ भी करने या सोचने का मन नहीं करता। जैसे न अब अतीत है, न भविष्य। अवचेतन में अटकी प्रतीक्षा है। बैठा या लेटा रहता हूँ। मुझमें और सामनेवाले बुजुर्ग में क्या अन्तर है? अब तो टी.वी. देखने का भी मन नहीं करता। यह भी इस तरह ब्लैंक होकर कैसे बैठा रहता है?

टिंकू आई थी—खाने के वक्त। वह अपने किसी गुरु जी के यहाँ आती है। वहाँ डांस का प्रोग्राम होता है। मैंने उससे आग्रह किया कि भावना में बहे बिना वीरतापूर्वक इसका सामना करे—मैं नहीं रहूँगा तो कैसे सँभलेगा? संजय आनेवाला था—चार बजे तीनों मिलकर इस स्थिति पर बात करेंगे। वह चार बजे आई और हमने ख़ुलकर स्वागत किया। अक्षर का क्या होगा? हंसाक्षर कौन सँभालेगा? मेरा अपना बैंक एकाउन्ट कैसे स्मूथली टिंकू को स्थानान्तरित होगा। रोज़मर्रा का काम कैसे चलेगा?

वह पिछले दसियों सालों से बहुत ज़िम्मेदार, परिश्रमी और निष्ठावान रही है। वह सब सँभाल लेगी। दुर्गा और किशन को भी सम्मान और कॉन्सेशन मिलना चाहिए। संजीव फरवरी-मार्च में वर्धा राइटर इन रेसीडेन्स की हैसियत से चले जाएँगे, संगम पांडेय हंस के प्रोडक्शन का काम देखेंगे। विषय-सामग्री बलवन्त और विभास देख सकते हैं। कानूनी कार्यवाही संजय को पूरी करनी है। वह और टिंकू ओवर ऑल देखेंगे। आज तीन चार बजे हरीश, संजय, टिंकू को बुलाया है—सारे काग़ज़ इत्यादि देखने के लिए। मैं चाहता हूँ कि बाद में किसी को कोई असुविधा और परेशानी न हो। टिंकू और संजय को बता दिया है कि मेरे भीतर से लगता है कि 2013 शायद न निकाल पाऊँ। तिरासी-चौरासी का हो रहा हूँ। अब कितना और जीना है? वैसे भी किसी काम का रह नहीं गया हूँ—अपाहिज की तरह पड़ा रहता हूँ। बाथरूम तक किसी के सहारे के लिए हाथ पकड़ना पड़ता है। बाईं तरफ हार्निया का ऑपरेशन हो भी जाए तो कमर का दर्द तो बना ही हुआ है—बिना टिके पाँच मिनट नहीं बैठ पाता। बिस्तर के पास छोटी बालटी में पेशाब का पॉट है—थोड़ी-थोड़ी देर बाद पेशाब करना होता है। तो राजेन्द्र जी, इस तरह आप अपनी जीवन्त-लीला समेट रहे हैं। सारे भाई-बहन सत्तर के पार पहुँच ही रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17.1.2012

कल अक्षर में संजय और टिंकू को तीन-साढ़े तीन पर बुला लिया था। हरीश से भी कह दिया था। संजय को अक्षर और हंसाक्षर के आर्टिकिल ऑफ मेमोरंडम और दूसरे काग़ज़ दे दिये। वह अपने वकील से बातें करके काग़ज़ तैयार करा लेगा। हंस के कितने पैसे कहाँ हैं। बाहर एजेन्टों के पास कहाँ-कहाँ पैसे फँसे हैं और उन्हें कैसे लाया जाएगा, इस पर बात हुई। अपनी व्यक्तिगत एकाउन्ट मेरे साथ टिंकू भी कैसे ऑपरेट करेगी—इत्यादि को अक्षर में डायरेक्टर की तरह लेने की बात तय हुई। यह सब मेरे मुक्त होने की व्यवस्था है।

19.1.2012

खाली दिमाग में किस तरह के फितूर आते हैं, उसे मैं अपने भीतर हर वक्त महसूस करता हूँ। करवट भी बदलनी हो तो घंटे भर सोचता हूँ कल्पना में वही बात मन में घुमड़ती है। अक्सर लगता है, जैसे मैं वही काम कर चुका हूँ। रात भर नींद नहीं आती क्योंकि दिन में कई बार उनींदा हो जाता हूँ। कभी कोई शेर, कभी कोई कविता पंक्ति बार-बार घुमड़ती है। परसों सोभराज के शेर की लाइन रातभर मन में दुहराई जाती रहीं, 'छोड़कर आया था जिसको घर पे चलते वक्त मैं। वही बातें करता आया सारे रास्ते।' कल एक करवट लेटा तो कभी 'उतरन' सीरियल के टुकड़े देखता रहा, दूसरी करवट में 'बड़े अच्छे लगते हैं' की पंक्तियाँ—हालाँकि कलर्स पर एक चौबीस नम्बर है, दूसरी करवट सैंतालीस है—लेकिन लगता है, दोनों के बीच एक ही नम्बर का अन्तर है। लगता है, दिमाग का कबाड़ा हो गया है। अक्सर बिस्तर पर लेटा रहता हूँ, कभी आध-पौन घंटे कुर्सी पर आ बैठता हूँ। दो-तीन फिल्में हैं। संजय पांडेय ने हिचक कर फिल्मों की सी.डी. दे दी है, मन ही नहीं करता—कोई भी न्यूज़ चैनल या सीरियल जैसे बाँधता ही नहीं है। ऊब कर बन्द कर देता हूँ। कल शाम को कुछ तसवीरें लेने गीता दफ्तर आ गई थी, फिर घर आ गई। वह दारू पीती रही और मैं लेटे-लेटे ऊँघने लगा। पता नहीं, कब उठकर चली गई। हर चीज़ से विरक्ति और निस्पृहता। कहीं कोई चीज़ जोड़ती ही नहीं है। पता नहीं, क्यों लगता है, जैसे अब 2012 निकलेगा ही नहीं। किसी चीज़ में कोई दिलचस्पी रह ही नहीं गई है। पाइप याद नहीं आता, हाँ, बीच-बीच में सिगरेट की हुड़क उठती है। किशन और सुमित्रा से बचकर सिगरेट के दो-चार घूँट लेता हूँ, फिर घुमाकर छिपा देता हूँ।

23.1.2012

दरअसल दो-तीन दिनों से यही सवाल बार-बार मन में उठ रहा है कि मुझे क्यों ज़िन्दा रहना चाहिए? क्या समय नहीं आया है? अब न ज़रूरत रह गई है, न उपयोगिता। क्या कोई ऐसा तरीक़ा है कि एक दिन सुबह उठूँ और साँस छोड़ दूँ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न संकल्पशक्ति रह गई है, न ज़रूरत। वैसे भी इस साँसत लेटे शरीर का क्या करना है ? अपनी सारी भूमिकाएँ समाप्त हो गई हैं। टिंकू के नाम वसीयत करूँ और बता दूँ। न लिखने-पढ़ने की दिलचस्पी रह गई है, न बढ़ने की। लिखता हूँ तो अक्षर स्पष्ट नहीं बनते। कभी यह हैंडराइटिंग दूसरों के लिए ईर्ष्या की चीज़ रही है। जैसे-तैसे लिखता रहता हूँ। रोना आता है।

कल सारी रात श्रीनन्द को दो लाइन का एसएमएस मन-ही-मन लिखता रहा। आखिर तीन बजे कर ही दिया। बाएँ या दाहिने या सीधे लेटने के अलावा ज़्यादा आरामदायक दूसरी मुद्रा नहीं हो सकती ? सारी रात करवटें बदलता हूँ। शाम को विवेक मिश्र, अजय नावरिया या कमलेश जैन को बुलाता हूँ। दारू पीते हैं, मेरा मन ही नहीं करता। कभी एकाध पैग ले ली। बिना किशन के सहारे के बाथरूम तो क्या, बिस्तर तक नहीं जा पाता। तीन-चार दिनों से एक बूँद पाखाना नहीं। तीन-चार बार चक्कर टॉयलेट के। किशन और उसके परिवार को परेशान करना। इन्हें भी मुक्ति मिलेगी। मुझे भी। बस, राजेन्द्र जी, अब खेल खत्म!

□□□

पुस्तकालय
162112
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या 0 81 R वर्मा-र आगत संख्या 162112

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

081,VER-R

162112

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

GURU
Access
Class
Cat No
Tag et
E.A.R.
Recom
Data E
Checke

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेन्द्र यादव

जन्म : 28 अगस्त, 1929

1951 में आगरा विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम.ए. (हिन्दी) करने के उपरान्त लेखन को ही अपनी जीविका का माध्यम बनाया। पहली कहानी 'प्रतिहिंसा' 1947 में 'कर्मयोगी' में प्रकाशित हुई। एक कविता-संग्रह 'आवाज़ तेरी है' (1960) के अतिरिक्त अब तक कहानियाँ, उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, आलोचना, सम्पादकीयों और अनुवादों की कई किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। 1964 में अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. की स्थापना की, जिसमें अनेक रचनाकारों—अज्ञेय, कमलेश्वर, मोहन राकेश, राही मासूम रज़ा आदि—की महत्त्वपूर्ण किताबों का प्रकाशन। 1986 में अक्षर प्रकाशन से किताबों का प्रकाशन बन्द कर दिया और प्रेमचन्द द्वारा स्थापित 'हंस' पत्रिका का पुन:प्रकाशन शुरू किया। राजेन्द्र यादव बिहार सरकार द्वारा 'शिवपूजन सहाय सम्मान', हिन्दी अकादमी, दिल्ली के 'शलाका सम्मान', 'शब्द साधक सम्मान' और उत्तर प्रदेश सरकार के 'यश भारती' पुरस्कार से भी सम्मानित हो चुके हैं।

निधन : 28 अक्टूबर, 2013

सम्पादक : अर्चना वर्मा

कवि-कथाकार-आलोचक अर्चना वर्मा एक लम्बे व सफल अध्यापकीय जीवन से अवकाश पाकर अब पूरी तरह साहित्य संसार में सक्रिय। 22 वर्षों तक 'हंस' से जुड़ी रहीं और सम्प्रति 'कथादेश' से जुड़ी हुई हैं। 'निराला के सृजन सीमान्त' और 'अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर' आलोचना की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें। दो कहानी-संग्रह ('स्थगित', 'राजपाट और अन्य कहानियाँ') और दो कविता-संग्रह ('कुछ दूर तक', 'लौटा है विजेता') अब तक प्रकाशित।

सम्पादक : बलवन्त कौर

युवा आलोचक। राजेन्द्र जी के सम्पादकीय लेखों (*काश, मैं राष्ट्र-द्रोही होता, वे हमें बदल रहे हैं*) का संकलन-सम्पादन। 'स्त्री-कवि-कौमुदी' नामक स्त्री-कवियों के संग्रह का सम्पादन। 'हंस' में सम्पादन सहयोग। दिल्ली विश्वविद्यालय के मिराण्डा हाउस में असिस्टेंट प्रोफेसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकसर सोचता हूँ कि क्या ख़ुद भी कोई ऐसा सूत्र है जिसके आधार पर मैं अपने-आपको समझ सकूँ। यानी विभिन्न दबावों, स्थितियों और अवसरों पर अलग-अलग घटी घटनाओं के पीछे क्या कोई ऐसा लॉजिक है कि लगे : सब इतना अचानक असम्बद्ध ढंग से घटित नहीं हुआ—उस सबके पीछे कोई एक तर्क या अन्तर्सूत्रता है—इस 'पागलपन' का भी एक मैथड रहा है। पहले लगा है शायद वह है मेरी अतिक्रमित करने की आकांक्षा—सीमाओं, बन्धनों और शारीरिक-मानसिक विवशताओं के पार जाने की तड़प जैसे अपने पाँव की चोट से एक ही जगह बँधे होने की स्थिति की कल्पना के माध्यम से पार कर जाने की प्रवृत्ति। शायद वही मेरे लेखन की प्रेरणा है। अपनी शिक्षा, संस्कारों और सोच सभी सीमाओं को मैंने जिन्दगी-भर तोड़ने की कोशिश की है। और गहराई में जाकर सोचता हूँ कि अतिक्रमण, ट्रान्सैडेन्स वस्तुतः स्वतंत्र होने की कामना है—मुक्ति की आकांक्षा—अपने मन, संस्कारों और शरीर से मुक्त होकर चीज़ों को देखने की आकांक्षा से मूर्तिभंजन की मानसिकता भी शायद अपने को मूर्तियों से युक्त करने से आई है। ख़ुद मैंने भी अपनी कोई निश्चित मूर्ति नहीं बनने दी है। हर बार अपने को तोड़ा है, या बदला है।

—इसी खंड से

मुख आवरण चित्र : अनुपम यादव | पृष्ठ-आवरण चित्र : दिनेश खन्ना

रचनावली

ISBN : 978-81-8361-672-0
₹ 15000 (15 खंडों में)

9 788183 616720

राधाकृष्ण
नयी दिल्ली पटना इलाहाबाद कोलकाता

CC-0. In Public D...